6

श्रीशुक्लयजुषि

माध्यन्दिनीयशाखीयावाजसनेय

सॐहिता

श्रीव्याघ्रपादान्वयगिरिप्रसाद

वर्म्मरचित

श्रीवेदार्थप्रदीपाख्य

गिरिधरभाष्य

सहिता

खण्ड१

चिरञ्जीवगरुडध्वजेनलिखिता

वेश्मेति

प्रसिद्धिंगतेतिप्राचीनेविश्वा

मित्रपुरीयनवलाख्य

दुर्गस्थ

व्याघ्रपादप्रकाशकाश्मयन्त्रालयेगङ्गाप्रसा

दवर्म्मणोधिकारे

मुद्रिता

संवत् १९२७ शाका १७९२ ई॰ सन् १८७१

श्रीशुक्लयजुर्वेदे

माध्यन्दिनीया वाजसनेयसंहिता

श्रीसोमवंशोद्भवपाण्डवगिरिप्रसाददेववर्मरचित

श्रीवेदार्थप्रदीपाख्यगिरिधरभाष्यसहिता

चिरञ्जीवश्रीगरुडध्वजदेववर्मलिखिता

आर्यावर्तान्तर्गते ब्रह्मावर्तैकदेशे मथुरामण्डले धरणीधरक्षेत्रे

विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थ श्रीव्याघ्रपादप्रकाशप्रकाशयन्त्रालये

श्रीकण्वकुलोद्भवद्वारकानाथदेवशर्मणोऽधिकारान्मुद्रिता

संवत्सरे विक्रमार्कगते १९३० शाके शालिवाहनीये १७९५

हरिःओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न ऽआसुव।

चिन्तासन्तानहन्तारो यत्पादाम्बुजरेणवः
स्वीयानां तान्निजाचार्य्यान् प्रणिमामि मुहुर्मुहुः १
यदनुग्रहतोजन्तोः सर्वदुःखातिगोभवेत्
तमहं सर्वदावन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम् २

श्री शुक्लयजुर्वेद के भाष्य निर्माण होने के पूर्व मुझे योग्य है कि संक्षेप से कुछ वर्तमान व्यवस्था अपना और वेदविद्या का लिखूं जिससे पढनें वालों कू विदित हो कि किस परिश्रम से में इसविद्यातलक पहुंचा और कैसी सर्वोत्तमोत्तम वेदविद्या है और किसलिये मैने भाषा में भाष्य निर्माण किया ॥

प्रथमाध्याय

भाष्यकार के इतिहास के वर्णन में

सम्वत् १९४७ विक्रमसेन शाके १७९२ शालिवाहन राजाके

ज्येष्ठ कृष्ण ६ शुक्रवार ४९ घटी २६ पल। श्रवण नक्षत्र ५४।५
ब्रह्मयोग ५२।२१ दिवसमान ३३।३९ वृषार्क गतांश १० कला
२५ विकला ५८ श्री सूर्योदयसे इष्टघटी
३२ पल ५८ पर वृश्चिक लग्नसन्ध्यास
मयपुरुवंशमें उत्पन्न हुए विश्वामित्रपु
र के राजा श्रीजयकिशोर देव वर्मा की छो
टी राणी रुक्मिणी देवी से मेरा जन्म हुआ
और चारि वर्ष छे महीने तलक माता



पिता और ज्येष्ठभ्राता श्रीगिरिधरसिंह वर्म्मा और उनकी प-
त्नी सूर्यकुमारी और ज्येष्ठ माता गोविन्द कुमारी इन सबों के चरणों
की छाया में सुख पूर्वक पालन पोषन हुआ परन्तु भगवदिच्छा
पाइ मेरे पितृ चरणने सम्वत् १९०१ कार्तिक शुक्ला १० रविवार
कू पृथ्वीतल से पयान करि देवलोक कू शोभित किया उस सम
य उनके राष्ट्र में वडा हुलहुला मचा परन्तु इङ्गलीय गवर्नमेंट
ने अच्छे प्रकार प्रवन्ध करने का प्रारम्भ किया यद्यपि भाई व
न्धु और प्रजाके मनुष्यों ने बहुत कुछ वखेडा किया परन्तु गव
र्नमेण्ट के न्याय के आगे किसीसे कुछ न होसका जवतककि
वखेडा निवट नहीं चुकाथा कि सम्वत् १९०२ वैशाख शु-
क्ला ५ कू शीतला के रोग करि श्रीमान् गिरिधरसिंह देव वर्म्मा
स्वर्ग कू पधारे और उन से थोडे काल पीछे उनकी पत्नीभी
उन्हीं की चरण सेवा करने पतिलोक पहुंची केवल मैं अकेला

और मेरी छै वर्ष ग्यारह महीना पन्द्रह दिन की अव-
और पिता के सामने का इतना ऋण कि जो हमारे हाथसे
कठिन और कुटुम्बी भाइयों और प्रजा का वखेडा
और जीविका की हानि से क्षेभित हो मातृचरणव
शोक कू प्राप्त हुए परन्तु धर्म्मशील इङ्गलेण्डीय गवर्न-
भाइयों और प्रजा का झूठा वखेडा मिटाय मुझ कोपि
आसन पर बिठा राष्ट्र कू कोर्ट कर सम्पूर्ण ऋण का उत्त
मर्णों के पास पहुंचने का प्रबन्ध किया और हमारी माता
की अनुमती से पिता के भृत्यों कू यथा योग्य कोर्ट के काम पर
नियत किया और सवों के ऊपर मेरे पिता के वृद्ध मन्त्री धामपु
रनगीना निवासी कानूगोय मनूलाल के पुत्र मोहनलाल ऐ-
ठाने कायस्थ कू अध्यक्ष किया और वार्षिक वचत में से ह-
मारे भक्ष्य भोज्य उत्तमर्णों और कोर्ट के अधिकारियों का
यथा योग्य निबन्ध करि माता कू विद्या पढाने और मेरे यत्न स
हित पालन पोषण की आज्ञा दी और कलिकर जिला कू शिक्षा
की कि वुह मेरे लिखने पढने और भूमि के प्रबन्ध कू प्रति मा
स देखते रहें धन्य है धन्य है इङ्गलेण्डीय गवर्नमेण्ट धर्मपुञ्ज दया
शील न्याय कुशल बुधिमान परम शूर तू फलियो और फूलियो
और हजियो समस्त पृथ्वी पर चक्रवर्त्ती सापत्न रहित जो तू
न करती हमारा प्रबन्ध तो यह नहीं ज्ञान होता कि हमारी क्या द
शा होती निदान गयों का दुःख छोडि चित्त कू समझाय जैसे कि

पिता के सामने सब कार्य्य होते थे वैसेही माता यत्न पूर्वक ध
र्म्म कृत्य और पोष्य वर्गों के पालन का प्रबन्ध करनेलगी-
सम्वत् १९०३ के आषाढ मास में मेरा विद्यारम्भहुआ और
श्री शुक्लयजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखा के अध्यापक कण्व
वंशमें उत्पन्न हुए सारस्वत श्रीजीवाराम देव शर्म्मा तिवाडी
कि जो चिरकाल से हमारे पूर्ब पुरुषों कू अध्यन कराते आये
हैं मुझे वेदाक्षरों की सन्था देनेलगे और उनके पुत्र श्री बटुक
दत्त देव शर्म्मा निष्कपट हो पुत्र से विशेष मुझसे हितकरअ
ध्यन कराने और श्रीमान् इसराऐल वंशमेंपैदाहुए मुहम्मद-
मतावलम्बी शेख मुहम्मद फ़ैजबख्श फ़ारसी विद्या पढानेल
गे अबतो अच्छे प्रकार विद्याध्यन होने लगा
संवत् १९०४ ज्येष्ठ शुक्ला १५ कू श्रीमान् गुरु जीवाराम देव
शर्म्मा स्वर्ग पधारे
संवत् १९०५ चैत्र शुक्ला ५ कू गुरु बटुकदत्त देव शर्म्मा नेमे
रा उपनयन संस्कार किया और इसी सम्वत् के माघ शुक्ला ५
कू मेरी माताने विराज वंशमें उत्पन्न हुए कुमर हरिदेवसिं
ह वर्म्मा की पुत्री से विवाह कराया
सम्वत् १९०६ के वैशाख में कुछ कोर्ट के हिसाबमें हमारी मा
ता कू संका हुई और मोहन लालने समझाना नचाहा लाचार
कलकरी मे वीनती पत्र लिखा वहांसे खैर का तहसीलदार
अली रजाखां नामी नियत हुआ उन्होंने सब समझा दिया

मातृ चरण मे मोहन लाल कू प्रसन्न पत्र दिया इसपी
कुछ एक बुरें भलें के वहकाने से राजा मुडसान टीकम
र्मा ने कलिकर जिले कू समझाया उक्त कलिकर का
र अति प्राय कोपहुआ उन्हों ने कोरट का अमला एक
न बरखास्त कर तहसील वेसवां सुपर्द तहसील दार इ
लास की और हमारे भक्ष्य भोज्य के द्रव्य कू वन्दकरि द्वा
र परचपरासी विठादिये और उन्हों कू प्रासना की किकिसी
मनुष्य कू गढी में मत जाने दो तीन मही ने तक तंग रह माघ
का में वास्ते निवेदन करने अपने दुःख के सदर बोर्ड आ
गरा की हजूर में पहुचे परम दयाल ऐच ऐस वुल दरसन सेनि
यर मेम्बर और ऐफ़ ऐच रविनसन जूनियर मिम्बर की आ
ज्ञा से श्रीमान् विलियम म्युइर स्क्यू रीसिकरटरी नम्बर १२०
अप्रेल १६ सन् १८५० कू डीवी मारी सन स्क्यू र कमिश्नर डवी
जन पहिली मेरठ कू पत्री लिखी अब हमारी माता कू पहिले
से विशेष अधिकार मिला और सुख पूर्बक वे प्रावां कू लोटी
और फिर कोर्ट का अमला उन्हों की अनुमती से भरती हु
आ और यथा योग्य काम चलने लगा इसमें मेरा एक बहु
त वडा काम हुआ अर्थात् २ दो महीना आगरे में रहना हुआ
और वहां के गर्वन मेण्ट कालिज की नित्य सैर करता रहा
और सब हाकिमो सें मिलता झुलता और विद्या की परीक्षा
देता रहा इसमें मेरी विद्या औरभी वृद्धि कू प्राप्त हुई

१ भगवत कृपासे अब यें पश्चिमोत्तरदेशके अधिकारी लेफटनण्ट गवर्नर हैं अब हमारी सब आशा पूर्ण हुई कि अपने प्रतिपालक के ४ फ़ैब्रवरी सन् १८७० वीसुपी कू सासनी के मुकाम चरण छुए और संस्कृत प्रसंसा पत्र भेटकिया -

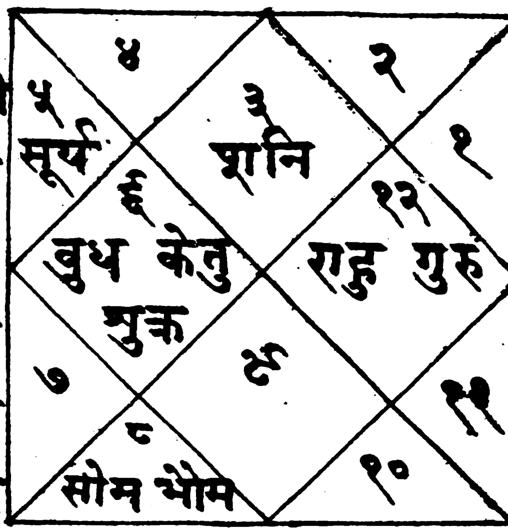
संवत् १८०७ के पौष में मौलवी साहव परलोक कू सिधारे इ-स पीछे मेंने वहुत से महात्मा ओं से फारसी विद्या की पुस्तके पढीं और कुछ थोडासा अर्बी विद्या का व्याकरण और इङ्गलेण्डीय विद्या का अभ्यास किया और साधारण से कायस्थी य वा सराफ़ी लिखना और कोर्ट के दफ़तर में हिसाव नि-कासी खत चिठ्ठी वही खाते कालिखना सीखा

सम्वत् १८१० में मेरे पिता के वृद्ध मन्त्री मोहनलाल ने तैमूरी वादशाहों और पेशवा व मरेठों के राज्य और श्रीमान् इङ्गेश्वर के राज्य के कागजात सनद दरख्वास्त वन्दुवस्त रोवकारी खत अर्जी वेशवा के दुर्ग की नीव लगने के स-मय सों लगाय नवीन कोर्ट के प्रवन्ध होने तलक सव प-ढायकर अच्छी प्रकार समझाये इसी सम्वत् के चैत्र मही-ने में गवर्नमेण्ट से वर्तमान गवर्नमेण्टी शालाओं की मुझे विद्या पढाने कू एक पाठक नियत हुआ अव में ग-णित और रेखा. वीज. गोल. इतिहास विद्यापढने लगा

सम्वत् १८११ ज्येष्ठ कृष्ण १३ त्रयोदशी वुधवार श्रीमान् चरणपति लोक कू पधारे वहुत वडा शोक हुआ कि कह नहीसकता इस समय मेरी अवस्था सात दिन ऊन चौदह वर्ष की थी परन्तु उन्हों की कृपा से में अच्छे प्रकार सव काम कर सकता था इसी सम्वत के आषाढ महीने में मेरी इच्छा कर्म काण्ड पढने की हुई सो परम गुरु वटुक दत्त-

आधान से आदि ले चतुर्थी कर्म और होम श्रा
अन्त्येष्टी श्राद्ध ब्रह्म याग वापी कूप तडाग देवतायतन
सामर्थ्यन पढ़ाया अब मेरी दोनों (अर्थात् गणित-
और कर्म्म काण्ड की सन्ध्या चलने लगी इसी सम्वत्
में कलिक्टर साहब की शिक्षा से तख़ता कोम्पास का
नकशा भी सीखने लगा

संवत् १९१३ के भाद्रपद शुक्ला अष्टमी ८ रविवार घटी
५५ पल ५९ ज्येष्ठानक्षत्र ५०।४९ विष्कुम्भ योग २४।३२



करण २५।२० दिनमान ३१।४
उदय से घटी ४७ पल ४२ विप
१२ मिथुन लगन में अर्द्धनिशा
मेरे पुत्र गरुडध्वज का जन्म
हुआ और कर्म्म काण्ड का पाठ
पूर्ण हुआ अब में उक्त गुरु से मन्त्र
शास्त्र पठन करने लगा वैशाख म
हीने में गवर्नमेण्ट की भारथीय सैना फिरि गई और उसने
देश में बड़ा उपद्रव मचाया प्रथम ही मेरठ में वखेड़ा हुआ
और तारबरकी टूटगया तब मेनें डाकके समाचार पहुचने
कू अपने अस्वार दिये हु वे अच्छे प्रकार डांक पहुचाने लगे और
रज्ञो कि कोर्ट टूटने की दरख्वास्त चैत्र मही से कलिकटरी में
दायर थी श्रीमान् वाहसन स्क्यूदर कलिकटरने कोर्ट टूटने

की लक्ष्मीनारायण कू हाथरस के मुकाम आज्ञा दी आषा
ढमहीनामेंश्रीमान् कनिष्ठ पितामह गोविंद सिंह ब्रम्मा और
चतुर्वेदी जयकृष्णदास शर्म्मा के साथ एक तोप और पंचश
तमनुष्य से हाथरस गया और वहां अपनी तोप और मनु
ष्य छोडकर वेषावां आया और तहसील इगलास तथा मथु
राकीसडककीचोकसी कराने और अपने राष्ट्र की रक्षा करने
लगा भगवत् कृपासे सव काम अच्छे प्रकार होता रहा भाद्र
पद कृष्ना में मेरे नेत्रों में वडी पीडा हुई और शुक्ला में श्रीमा
न् कोकसाहव स्पेशल कमिश्नर वहादुर आगरे से इङ्गलिश
सेना और तोपखाने सहित हाथरस पधारे और वहांसे गौस
महुम्मद खां के शिर तोडने कू कोल गये और मेरे मन्त्री ल
क्ष्मीनारायण शर्मा मातुल श्री आसाराम वर्म्मा सवार पदा
ति ले महाराज के साथ लडाई में गये फिरि महाराज विज
यकरि के हाथरस आये और मेरे नेत्रों का कुछ एक दुःख
न्यून हुआ तव उन्हों से मिलने हाथरस गया उक्त श्रीमान्
ने अतिशय कृपाकी आश्विन कृष्ण ३० अमावास्या कू महा
राज की आज्ञानुसार एक और तोप अपने कनिष्ठ पित
व्य रामप्रसाद वर्मा और कुछ सैन्य के साथ अलीगढ भे
जी और दिल्ली कू तो इससे पूर्वही गवर्नमेण्ट ने अच्छे प्र
कारजीतलियाथाकार्तिक में यहांभी सव वखेडा मिटकर
सुन्दर प्रवन्ध होगया मार्गशिर में श्रीमान् कोकस्क्यूइर के

श्रीगुरुस्तुति

माध्यन्दिनीया वाजसनेय संहित श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधर भाष्य सहिता।

खण्ड१

जो शुद्ध करिके दूसरीवार मुद्रित हुआ

१५ जनवरी यी अप्र १८७४ संवत् १९३० शाके १७९५

निवेदन

विद्वानों से प्रार्थना है कि पहिला खण्ड श्रीवेदार्थप्रदीप गिरिधरभाष्य का कैई कारणों से अशुद्ध छपगया और यही नही किंतु उस में अर्थ भी असङ्गत होगया इस कारण दूसरी वार शुद्ध भाष्य लिखकर छापा हुआ अब जिन्हों के पास यह खण्ड पहुंचे उन्हें उचित है कि पहिले खण्ड के पृष्ठे १६७ से ले १८४ पर्यन्त और १८७ से १९४ तक तथा १९९ से २०२ पर्यन्त समस्त ३० पृष्ठे उस में से निकालि कर इस खण्ड में मिलादेवें और उस के शेष पृष्ठों (१ से ८ तक ५१ से १६६ तक १८५ और १८६ तथा १९५ से १९८ तक समस्त १३० पृष्ठों को मेरे पास भेजदें उस के भेजने का जो महसूल होगा उसे मैं दूंगा॥

पुनश्च फरवरी १८७४ में समस्त भाष्य छप जावेगा और मार्च में आप के पास पहुंचेगा॥

भवदीय गिरिप्रसाद वर्मा

سری شکل یجروید مقدس کی مادھیندنی واج سینہ سنہتا معہ ویدارتھہ پردیپ گردھر بہاشیہ کا پہلا حصہ جو صحیح ہوکر دوسری دفعہ طبع ہوا - تاریخ پندرہویں ماہ جنوری ۱۸۷۴ عیسوی - سنبت ۱۹۳۰ - شاک ۱۷۹۲

التماس

علماء سی التماس ہی کہ پہلا کہنڈ سری ویدارتھہ پردیپ گردھر بہاشیہ کا کئی سبب سی ناقص چہپ گیا اور یہی نہین بلکہ اوس مین معنیون کی بہی غلطی ہوئی لہذا دوسری دفعہ صحیح بہاشیہ لکہکر چہاپا گیا اب جن صاحبون کی پاس کہنڈ ہذا پہونچی اونہین مناسب ہی کہ پہلی کہنڈ کی صفحہ ۱۶۷ اسی نہایت ۱۰۸۴ اسی ۱۹۴ تک اور ۱۹۹ اسی ۲۰۲ تک میزان کل ۳۰ صفحا ملحق کرکہنڈ ہذا مین ملادوین باقی صفحہ ایک سی ۸ تک و ۵۱ سی ۱۶۶ تک ۱۸۵ - ۱۸۶ و ۹۷ و ۸۰ اسی ۱۹۰ تک ہیگین ۱۳۰ صفحات روانہ کرین اونہون کی بہیجنی کا جو محصول ڈاک ہوگا اوسی مین دونگا +

ملتمسہ گرپرساد ورما -

مکرر آنکہ

آخر فروری سنہ الیہ تک کل بہاشیہ چہپ جاویگا اور مہینی مارچ مین آپ کی پاس مرسل ہوگا فقط -

॥ हरिः ओम् ॥

॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे । रूपनामवि-
[illegible]क्रीडति यो यतः ॥ १ ॥ नमामि वल्लभाधीशं परं ब्रह्म-
[illegible]नम् । तत्सुतं विठ्ठलेशं च तत्सुतं गिरिधारिणम् ॥ २ ॥ तद्वंश्यं
[illegible]मनीं च ब्रह्मानन्द प्रदायिनम् । तथा चारुमतीमम्बां प्रणमा-
[illegible] मुहुः ॥ ३ ॥ वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं न-
[illegible]कृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननं ॥ ४ ॥ नमामि माधवाचा-
[illegible]सायनं तत्सहोदरम् । उव्वटं भाष्यकारं च प्रणमामि महीध-
[illegible] ॥ ५ ॥ स्वगुरुं वटुनाथं च नमामि भवरूपिणम् । वेदार्थदीपकं
[illegible] लिखामि बालबुद्धये ॥ ६ ॥ दूरादसूयां निर्धूय कृपां कृत्वा ममो-
[illegible]विलोक्यः सुक्तभाष्योऽयं बुद्धिमद्भिर्द्विजोत्तमैः ॥ ७ ॥

आदि में ब्रह्मपरम्परा करि प्राप्त वेद को भगवान्वेदव्या-
[illegible] मन्दमति मनुष्यों को सोचि तिन्हों पर कृपा करि चारि प्रका-
[illegible] बाँटि ऋग्यजुःसामाथर्व नामा चारों वेदों को पैल वैशम्पा-
[illegible] जैमिनि सुमन्तु के अर्थ क्रमसे उपदेश किया और तिन्हों
[illegible] अपने शिष्यों के अर्थ । एवं परम्परा करि सहस्रशाखा वेद

हुआ। तहां व्यास का शिष्य वैशम्पायन याज्ञवल्क्यादिकों अपनेशिष्यों के अर्थ यजुर्वेद को पढता हुआ। तहां दैवयोग से किसी हेतु करि क्रुद्ध हुए वैशम्पाय नें याज्ञवल्क्य प्रति कहा कि गुरु से पढे हुए को त्यागि। तिसनें योग सामर्थ्य से अग्निरूप मूर्तिमती विद्या को उद्गमन किया। उगिले हुए यजुओं को ग्रहण करो यह गुरु नें शिष्यों से कहा तब और-और वैशम्पायन के शिष्यलोग तित्तिरि होके यजुओं को भक्षण करि गये। ते यजुः बुद्धि की मलीनता से कृष्ण (काले) हुए। फिरि याज्ञवल्क्य दुःखित हो सूर्य को आराधन करि और शुक्ल यजुओं को प्राप्त हुआ। और तिन्हें जावाल गौधेय काण्व माध्यन्दिन प्रभृति पञ्चदश शिष्यों को पढाया तथा च श्रुतिः शतपथब्राह्मण १४·९·४·३३· आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त इति। अस्यायमर्थः। 'इमानि' ये, 'आदित्यानि' आदित्य से अध्ययन किये हुए, 'शुक्लानि' शुद्ध, 'यजूंषि' यजुः, 'वाजसनेयेन' अन्न का दान जिस का तिस के पुत्र, 'याज्ञवल्क्येन' याज्ञवल्क्य करि के, 'आख्यायन्ते' (शिष्यों के अर्थ) कहे गये, इत्यर्थः। तहां मध्यन्दिनमहर्षि करि लब्ध यजुर्वेद का शाखा विशेष माध्यन्दिन है। यद्यपि इस शाखा और जावालप्रभृति चतुर्दश शाखाओं को याज्ञवल्क्य नें बहुत शिष्यों के अर्थ उपदेश किया तथापि ईश्वर की कृपा से इन्हीं पञ्चदश शिष्यों के सम्बन्ध करि लोक में प्रख्यात हुई। तिस माध्यन्दिन वेद को जे अध्ययन करते जानते वा शिष्यपरम्परा करि वर्तमान हैं तेभी माध्यन्दिन कहिलाते हैं॥ ॥ इति भूमिका॥

अथ ब्रह्मयज्ञः। स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञ इत्यादि व्रतस्याव्यवच्छेदायेत्यन्त शत० ११.५.६.३.७.१०. श्रुतिओं करि ब्रह्मयज्ञ की विधि और प्रशंसा कही गई। तहां स्वाध्याय (साधारणत्व से अपने पितृपितामहादि परम्परा करि आप्त वेद शाखा) तिस में विद्यमान ऋगादिकों से एक वाक्य कोभी दिन-दिन अध्ययन करना सोही ब्रह्म यज्ञ है और जैसे विधियज्ञ में अन्न पशु स्रुचिस्रुवा इत्यादिक बाह्य सामिग्री हैं ऐसे यहां नही इस में तो वाणी ही जुहू मन उपभृत् चक्षु ध्रुवा मेधास्रुवः सत्य अवभृथ स्वर्गलोक उदयन हैं। जितना कि इस पृथिवी को वित्तकरि पूर्ण देते लोक को जीतता है उस से त्रिगुणा जीतता है बहुत और अक्षय जो विद्वान् कि दिन-दिन स्वाध्याय अध्ययन करता है तिस से स्वाध्याय अध्ययन करना जो ऋचाएँ (ऋक्संहिता अथवा गायत्र्यादि चतुर्दश छन्दयुक्ता ऋचाएँ) और जो यजुः (यजुःसंहिता वा दैव्यादि छन्दयुक्त वा रहित मन्त्र) साम (सामसंहिता वा गीती ऋचाएँ) अथर्वाङ्गिरसः (अथर्वसंहिता वा अथर्वाओं और आङ्गिरसों करि देखे मन्त्र) दिन-दिन स्वाध्याय करता है सो क्रमपूर्वक पय घृत सोम मेद आहुतियों करि देवताओं को तृप्त करता है और तृप्त हुए देवता तिसे तृप्त करते हैं योगक्षेम प्राण रेत सर्वात्मा समस्त पुण्य सम्पदाओं करि तथा तिस के पितरों को अभिलक्ष्य करि स्वधा करिके स्वर्ग में घृत की नदी वहती हैं। जो अनुशासनों (स वै सम्भारान्सम्भरतीत्यादि विधिवाक्यों वा शिक्षादि षडङ्गों) और विद्या (उपासनविधिवाक्यों वा न्याय मीमांसा

आदिकों) तथा वाकोवाक्य (स वै गौतमस्य पुत्र वृतोऽजनं धावयेत् इ-त्युक्ति प्रत्युक्तिरूप ब्राह्मण वा उक्ति प्रत्युक्ति रूप प्रकरण) इतिहास (आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवासेत्यादिक सृष्टि प्रतिपादक ब्रा-ह्मण वा महाभारथादिकों) पुराणें (उर्वश्यप्सराः पुरूरवसमैडं चक-मेत्यादिक पुरातन पुरुष वृत्तान्त प्रतिपादकों वा वैष्णवादिपुराणें) गाथाओं (महाहिमिव वै हृदात् इत्यादिक मन्त्रों) नाराशंसिओं (समाना-न्सदमुक्षन्तिहयान् इत्यादिक मनुष्य प्रशंसापरा ब्राह्मणें) वा नारा-शंस्योगाथाः (मनुष्यों की प्रशंसा प्रतिपादन करने हारे श्लोकों) को स्वाध्याय अध्ययन करता है सो मधु की आहुतिओं करि देवता-ओं को तृप्त करता है और तृप्त हुए देव ०।

और। सह वै देवानां चासुराणां यज्ञौ प्रततावास्तामित्यादि तैत्ति-रीयारण्यक द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मयज्ञविधि है। तहां प्रथमानुवाक में यज्ञोपवीत धारण २· सन्ध्योपासन ३·४·५·६· पापक्षयार्थकूष्माण्ड होम ७· तिस होम की आख्या ८· दीक्षादिक ९· स्वाध्याय करने को उ-पाख्यान १०· पञ्च महायज्ञों के लक्षण ११· ब्रह्मयज्ञ का प्रयोग (ग्राम से बाहिर पूर्व उत्तर वा ऐशानी दिशा में जाकर कि जितनी दूर से ग्रा-म के छप्पर झोंपडी न दीखें तहां सूर्य के अभ्युदय होते प्रथमानुवाको-क्त प्रकार से यज्ञोपवीत लेकर शुद्ध प्रदेश में बैठि इत्यादिक स्व शाखा-ध्ययन करैं और जहां पर आज का पाठ समाप्त किया तिसी स्थान से कल्हि प्रारम्भ करैं) १२· अशक्त का अनुकल्प (ग्राम में दिवस वा रा-त्रि समय मन करि वा वाणी करिके खडे होते चलते बैठते सोते स्वा-

ध्याय अध्ययन करना और शौच आन्हेय महर्षि के मत में यह मुख्य-
पक्ष है १३ मध्यान्ह में प्रबल अध्ययन करै १४ वेद ग्रहणसमय जो मे-
घविजली आदिक अनध्यायकारण हैं सो यज्ञाङ्ग होने से यहां पर नहीं
१५ यहां पर केवल दो अनध्याय (यज्ञकर्ता आप अशुचि हो दूसरे
जहां यज्ञ करै सो स्थान मूत्रपुरीषादि करि अशुचि होवे) हैं और सुलभ-
त्व फलसिद्धि अनृणत्व पापस्पर्शराहित्य दिखलाया तथा जो मनुष्य
वेद का वाङ्मात्र निष्पादन करि अध्ययन करता है तिस का पाप क्षय-
द्वारा और मोक्षपर्यन्त उत्तम गति देने से वेद प्यारा सखा होता है किंच
चिन्तामणिरूप स्वाध्याय का जो त्याग करि कदाचित् विद्वत्सभा में शा-
स्त्रादिक सुनता है सो पुरुषार्थ पर्यवसान से अनृत है। क्यों कि का-
व्यनाटकालङ्कारादि श्रवण करि आयु की वृथा क्षय से अन्य कोई भी
पुरुषार्थ नहीं दीखता। जो काव्यादि पढ़ता है सो वृथा कण्ठ सुखाता है
न यहां का न वहां का। यहां के लिये कृषी वाणिज्यादि जीविका और
वहां के लिये वेद है। जो स्वाध्याय में वाजपेय राजसूयाश्वमेधादि जिस-
जिस क्रतुभाग को पढ़ता है तिस के फल को प्राप्त होता है। क्यों कि का-
यिक वाचिक मानसिक त्रिविध याग है तहां अध्ययन से वाचिक
तथा उस के अर्थ का अध्ययन काल में सन्धान से मानसिक सिद्ध
है और द्रव्यार्जन रहित के अनधिकारित्व से कायिक का तो अधि-
कार ही नहीं इस हेतु वाचिक मानसिक से ही कायिक सिद्ध है वेद-
विद् ब्राह्मण में समस्त देवता वास करते हैं तिस की निन्दा कभी न करै
१६ अनापदा में अयाजयाजन का उपवासपूर्वक स्वाध्याय करना इ-

+ मनुना स्मर्यते च। अध्या० २ वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः। वेदाभ्यासो हि वि-
प्रस्य तपः परमिहोच्यते॥१६६॥ आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः। यः स्रग्व्यपि द्विजो-
ऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम्॥१६७॥ योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्ने-
व शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥१६८॥ इति॥

त्यादिक ही प्रायश्चित्त है १७ आपदा में अयाज्ययाजन का प्रायश्चित्त भी अरण्य में जाकर स्वाध्याय करना इत्यादिक १८ प्रायश्चित्तार्थ स्वाध्यायप्रसङ्ग से अवकीर्णिप्रायश्चित्त है १९ सर्वयज्ञारम्भ में वा सायंकालीन सन्ध्यावन्दन से ऊपर ध्रुवमण्डल में परब्रह्मोपस्थान और शिशुमारोपस्थान के मन्त्र कहे २० दिगुपस्थान सुन्युपस्थान के मन्त्र हैं॥

ब्रह्मयज्ञारम्भ का शरीर न्यास कात्यायनभगवान नें सर्वानुक्रम सूत्र अध्याय ४ खण्ड १३ में कहा है जिस की व्याख्या आगे करूंगा। यहां पर इतना ही कहिता हूं कि स्वाध्याय अध्ययन से वडा पृथिवी आकाश में कोई पुरुषार्थ नहीं और जो कुछ भूत वर्तमान भविष्यत् है सो सव वेद में है। तिस वेद के दो विभाग हैं पहिला मन्त्र (संहिता) दूसरा ब्राह्मण जिस में मन्त्रों की विधि और अर्थवाद है। तिसपर भी अतिगम्भीर वेद के अर्थाववोध के लिये महर्षिओं नें ब्राह्मणानुसार शिक्षादि षडङ्ग तथा षडङ्गवत् इतिहासपुराण धर्ममीमांसादिशास्त्र कहे †॥

अव में वेदवेदाङ्गो और ऊअट माधव सायन महीधरादि आचार्यों करि कहे भाष्यों का अनुसरण करिके ऋषिछन्द देवताविनियोग सहित माध्यन्दिनीया वाजसनेय संहिता का वालकों के वोधार्थ वृजभाषा में भाष्य लिखता हूं विद्वानों से प्रार्थना है कि मेरे पर कृपा करिके इस वेदार्थप्रदीप का अवलोकन करें॥ ॥इत्युपक्रमः॥

† तथा च याज्ञवल्क्ये न स्मर्यते। अध्या० १ श्लो० ३ पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशेति॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वेदरूपकम्
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः

मण्डलं दक्षिणमक्षिहृदयं चाधिष्ठितं येन शुक्लानि यजूंषि भगवान्याज्ञवल्क्यो यतः प्राप तं विवस्वन्तं त्रयीमयमर्चिष्मन्तमभिध्यायेमां माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुक्रिय ऋषिदैवतछन्दांस्यनुक्रमिष्यामो, यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषां छन्दो न विद्यते; द्रष्टार ऋषयः स्मर्त्तारः परमेष्ठ्यादयो; देवता मन्त्रान्तर्भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स्तुतिभाजो वाऽग्नः शाखोखाग्राम्योपवेषकपालेध्मोलूखलादयश्च प्रतिमाभूताः छन्दांसि गायत्र्यादीन्येतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवत्यथान्तराश्वगर्तं वा पद्यते स्थाणुं वर्छति प्रमीयते वा पापीयान्भवत्यथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते ॥१॥ त

इषे त्वादि खं ब्रह्मान्तं विवस्वानपश्यत्ततः प्रतिकर्मविभागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋषयो वेदितव्याः परमेष्ठी प्राजाप-

*मं इति वा पाठः

त्यो दर्शपूर्णमासमंत्रा एतमृषिर्देवा वा प्राजापत्या इषे त्वा प्रा-
खानुष्टुब्विनियोगः कल्पकारोक्त एवमूर्जे त्वा वायवो वायव्यं
देवो व ऐन्द्रं यजमानस्य शाखा वसोर्वायव्यं द्यौर्मान्तरिम्खन
उखा वसोर्वायव्यं देवस्त्वा पयः कामधुक्षः प्रश्नः सा विश्वायुस्त्री-
णि गव्यानीन्द्रस्यैन्द्रं विष्णो पयः ॥२॥ यो॰

अग्न इदमाग्नेये कस्त्वा प्राजापत्या कर्मणे स्रुक् शूर्पे
प्रत्युष्टं द्वे राक्षसे उरु ब्रह्म रक्षोघ्नं सर्वत्र धूरसि धूर्देवानां विष्णु-
स्त्वान उरु हविष्या अपहतं रक्षो यछन्तां हविष्या देवस्य त्वा सा
वित्रं सर्वत्राग्नये लिङ्गोक्त भूताय त्वा हविः स्वः शूर्पो दृंह-
न्तां गृहाः पृथिव्यास्त्वा हव्यं पवित्रे लिङ्गोक्तं सवितुर्देवीः प्रो-
क्षिता अपान्यग्नये लिङ्गोक्ते दैव्याय पात्राणि ॥३॥

शर्मास्यदित्याः कृष्णाजिनमवधूतं राक्षसमद्रिर्ग्रावो-
लूखले अग्नेर्हविर्बृहत्स इदं मौसले हविष्कृदधिदेवतं वागाधि-
यज्ञं पत्नी कुक्कुटो वाग्वर्षवृद्धं शूर्पे प्रति त्वा हविः परापूतम-
पहतं राक्षसे वायुर्वो देवावस्तण्डुला धृष्टिरुपवेषोऽपाग्न
आ देवयजमाग्नेये ध्रुवमसि षण्णं कपालान्यग्ने ब्रह्माग्ने-
यं धिषणासि दार्षदं दिवः शम्या धिषणोपलं धान्यमसि षण्ण-
थं हविर्महीनामाज्यं ॥४॥ ठं

सं वपामि हविः समाप आपं जनयत्यै वेदं हविरिषे
त्वाज्यं घर्मो षण्णां पुरोडाशास्त्रिताय त्वा त्रयाणां त्रितो द्वि-
त एकत कर्मणादद इन्द्रस्य स्फ्यः पृथिवि वेदिर्व्रजं पुरीषं

वेदिर्विधान सावित्रमपारुरुमररौ आसुरे दृप्स्तस्ते वेदि-
[illegible]ा त्रीणि वैष्णवानि सुक्ष्मा त्रयाणां वेदिः पुरा घ्रघर्षें
[illegible]मसीं त्रिष्टुभं प्रोक्षणीः मैषो द्विषत आभिचा-
[illegible]निशितः स्रुवोऽनिशिता स्रुगदित्यै विष्णोर्योक्त्रमूर्जे त्रया-
[illegible]र्ठं सवितुरापं तेजोसि धामाज्यं ॥५॥

कृष्णोऽसीध्मो वेदिर्वर्हिर्लिङ्गोक्ते अदित्या आपं विष्णोः
[illegible]मूर्णम्रदसं वेदिर्भुवपतये त्रीण्याग्नेयानि गन्धर्वस्त्व-
[illegible] परिधयो वीतिहोत्रं विश्वावसुराग्नेयीं गायत्रीठं समिदा-
[illegible] सूर्यस्त्वा लिङ्गोक्तठं सवितुर्विधृतीः ऊर्णम्रदसमा त्वा
[illegible]रे घृताच्यसि त्रयाणां जुहूपभृद्ध्रुवाः क्रमेण प्रियेण
[illegible]ध्रुवा असदन्याहि मां वैष्णवे वाजजिदाग्नेयं नमो देव-
ठं स्वधा पित्र्यठं सुयमे स्रुवावंघ्रिणा वैष्णवं वसुमतीमाग्नेय-
मित ऐन्द्रठं संज्योतिषाज्यं मयीदमाग्नीः इति ग्रहणा मुपहूता
[illegible]वापृथिव्यं ॥६॥

ब्रह्मत्वं प्रतिष्ठान्तं ब्रहस्पतिराङ्गिरसोऽपश्यदग्नेष्ठा आशि-
[illegible]मेतं ते वैश्वदेवमेषा तेऽनुष्टुबग्ने वाजजिदाग्नेयमग्नीषोमयो-
[illegible]त्वारि लिङ्गोक्तानि वसुभ्यस्त्रयाणां परिधयःसं जानाथां व्यन्तु
[illegible]लरे मरुतां कपिर्बृहती प्रस्तरीमन्त्यः पाद आग्नेयो यं परिधिं
[illegible]षल आग्नेयीं त्रिष्टुभं विराड्रूपां यजुस्त्वाग्नेः प्रियं यजुः स-
[illegible]त्वभागाः सोमसुक्ष्मो वैश्वदेवी त्रिष्टुभं यजुस्त्वाथं स्वाहा
वाङ्यजुर्घृताची स्रुचौ पत्तनमाः मूर्यं पवमानऋषि रुद्रालवा-

मानान्सर्वानिति पंचार्षयो यज्ञो देवतागने ऽदब्धायो गार्हपत्यो ऽग्नये दक्षिणाग्निः सरस्वत्यै लिङ्गोक्त वेदोसि वेदो देवा मनसस्पतिर्वातदेवत्या विराजठं सं बर्हिर्लिङ्गोक्ता त्रिष्टुब्विराड्रूपा कस्त्वा प्राजापत्यठं रक्षसाठं राक्षसं ॥ ७॥ ठं

अथ याजमानठं सं वर्चसा त्वाष्ट्री त्रिष्टुब्विविष्णुस्त्रीणि वैष्णवान्यस्माद्भागोऽस्यै भूमिरगन्म देवतथं सं ज्योतिषाहवनीया स्वयंभूः सूर्यस्य सौरे अग्ने गृहपते गार्हपत्यः सूर्यस्य सौरमग्न इदमाग्नेये ॥ ८॥

पितृयज्ञः प्रजापतेरार्षमग्नये सोमाय द्वे दैवे स्वाहाकारश्रुतेरपहता आसुरं ये रूपाणि कव्यवाहनोऽग्निस्त्रिष्टुबत्रामीमदन्ता पित्र्ये नमो वः षड्लिङ्गोक्तानि परे पित्र्ये आधत्त पित्र्या गायत्र्यूर्जमापी विराट् ॥ ९॥ उ

अग्न्याधेयं प्रजापतेरार्षं देवानामग्नेर्गंधर्वाणां वा समिधाग्नेय्यश्वतरसो गायत्र्यः समिधा विरूप आङ्गिरसः सुसमिद्धाय वसुश्रुतस्तं त्वा भरद्वाजो भूर्भुवः स्वस्तिस्रो महाव्याहृतयोऽग्निवायुसूर्यदेवत्याः क्रमेण द्यौरिव यजमानाशीर्लिङ्गोक्तदेवतायं गौः सार्पराज्ञस्तृचो गायत्र्योऽग्निः परावररूपेण देवता ॥ १०॥

अग्निहोत्रं प्रजापतेरार्षमग्निर्ज्योतिः सप्त लिंगोक्तदेवता गायत्र्य आद्याः पंचैकपद अग्निर्वर्चो द्वे तस्याऽपप्रस्त्यपरां जीवलश्चैलकिः ॥ ११॥

यजमानाग्न्युपस्थानं बृहद्देवानामार्षमुप प्रयन्तइत्यनु-
वे द्वे आग्नेय्यौ गायत्र्यावुपवत्यो गोतमो राहूगणो मूर्द्ध-
न्वा विरूप उभा वां भरद्वाज ऐन्द्राग्नी त्रिष्टुभमयं ते देवश्रवा
भारतावाग्नेयीमनुष्टुभमयमिह वामदेवो जगतीम-
ग्नामवत्सारो गव्यां वाग्नेयीं वा पयो दैवत्यां वागायत्री त-
आग्नेयानींधाना आग्नेयी महापङ्क्तिः स्त्र्यवसाना॥१२॥

चित्रावसो रात्रिदेवत्यमृषयोऽपश्यन्त्तं त्वमाग्नेयमन्धस्य-
ती: संहितेति त्रीणि गव्यान्युप त्वाग्नेयं तृचं गायत्रं मधुछं-
दा वैश्वामित्रोऽग्ने त्वं चतस्रो द्विपदा आग्नेयी बन्धुःसुबन्धुश्श्रुतबन्धु-
र्विप्रबन्धुरेकैकश इडे काम्या गव्ये सोमानं ब्राह्मणस्पत्यं तृचं गा-
यत्रं ब्रह्मणस्पतिर्मेधातिथिर्वा महित्रीणाꣳ सत्यधृतिर्वारुणि-
रादित्य दैवतं तृचं गायत्रं पथि स्वस्त्ययनं कदा चनैन्द्री प-
थ्याबृहतीं मधुछंदास्तत्सवितुर्विश्वामित्रः सावित्रीं गायत्रीं प-
रिते वामदेव आग्नेयीमनिरुक्तां गायत्रीं॥१३॥

क्षुल्लकोपस्थानमासुरेरार्षं भूर्भुवः स्वः प्रकत्यदुपस्था-
नं चादित्यस्यार्षं नर्यगार्हपत्यः शꣳस्याहवनीयोऽथर्य्यदक्षिणा-
ग्निरागन्माहवनीयोऽनुष्टुबयमग्निर्न्यंकुसारिणीबृहती गार्हप-
त्योऽयमग्निरज्वाहार्यपचनोऽनुष्टु भूर्हा मा त्रिष्टुब्विराड्रूपा ये-
ग्नामनुष्टुबुपहूता महापङ्क्तिस्त्र्यवसाना तिस्रोऽपि वास्तवीः
शम्युर्बार्हस्पत्यः॥१४॥

चातुर्मास्यानि प्रजापतेरार्षं प्रघासिनो मारुती गायत्री

यज्ञमे मारुत्यनुष्टुवेऽनिरुक्तामोषूणोऽगस्त्य ऐन्द्रामारुती विराज
मकन्ननिरुक्ताग्नेय्यनुष्टुबवभृथ यज्ञदैवतं पूर्णा दर्वि द्वे और्णवा
भ ऐन्द्रावनुष्टुभावक्षं हे गोतम ऐन्द्री पङ्क्ती मनो नु मानसं तृचं
बन्धुर्गायत्रं वयꣳ सोमी गायत्री बन्धुरेषते द्वे रौद्रे अव रुद्रꣳ रौ-
द्र्यावेका पंक्तिरपरा ककुप्त्र्यंबकं द्वे अनुष्टुभौ पूर्वस्यां वशिष्ठ
एतदास्तारपङ्क्तिस्त्र्यायुषं नारायण उष्णिह यजमानाशिषꣳ शि
वो नाम क्षौरं निवर्तयामि लिङ्गोक्तदेवतमाशीः प्रायं ॥१५॥ म

अग्निष्टोमः प्रजापतेरार्षं एदं द्वे अत्यष्टी त्र्यवसाने आ
द्यावर्द्धर्चौ देवयजनदेवत्या विमा आप ओषधे कुशतरुणꣳ स्व
धितेक्षौरमापो अस्मानाप्यं दीक्षातपसोर्वासो महीनां नवनीतं
वृत्रस्याञ्जनं चित्पतिर्द्वे प्राजापत्ये देवो मा सावित्रमावोदेव्यनु-
ष्टुवाशीः स्वाहा यज्ञं चतुर्णां यज्ञ आकूत्ये चतुर्ष्मेमोङ्भण
नाम ग्निरापो देवी लिंगोक्तदेवता विराट् ॥१६॥

विश्वो देवस्य स्वस्त्र्यात्रेयः सावित्रीमनुष्टुप्ऋक्साम
यो कृष्णाजिने शर्मासि कृष्णाजिन मूर्गस्यङ्गिरोभिर्हृष्टं मेखल
ꣳ सोमस्य नीविर्विष्णो र्वास इन्द्रस्य सुसस्या कृष्णविषाणेन्द्रय
स्य दक्षेव्रतं यज्ञो दैवी धीर्ये देवा वाक्प्राणो दानो चक्षुःश्रोत्र-
मध्यात्ममग्निर्मित्रावरुणावादित्यो विश्वे देवा आधिदैवतꣳ षा
त्त्रा आपी जगतीयं ते लोष्टमपो मूत्रं पृथिव्या लोष्टमग्ने त्व-
माग्नेय्यनुष्टुप्पुनर्मन आग्नेयं त्वमग्ने वस आग्नेयीं गा
यत्रीꣳ रास्वे यत्सोममेषा ते हिरण्याज्यदैवतं जूरसि वाग्दैवतꣳ

शुक्रमसि हिरण्यं चिदसि गोः सोमक्रयणी वाग्रूयाऽध्यारोपकल्पनया॥१७॥

वस्व्यस्यनुष्टब्बृहती वा सोमक्रयण्यास्तुतिरदित्या आज्यमस्मे षण्णं लिङ्गोक्तादेवताः समख्ये पत्न्याशीरास्तारपङ्क्तिरेषते लिङ्गोक्तदेवतमास्मा कोऽसि सौम्यमभित्यर्ठं सावित्र्यष्टि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वा शुक्रं त्वा सौम्यानि सग्मेऽस्मे लिङ्गोक्ते तपसोऽर्द्धजार्द्धं सोमो मित्रो न इन्द्रस्य सौम्ये स्वानादीनि धिष्ण्यनामानि परि माग्नेयी पुरस्ताद्बृहती प्रति पन्थामनुष्टुप्पथिदेवत्यादित्याः कृष्णाजिनमदित्यै सौम्यमस्तम्भ्ना त्रिष्टुभौ वारुण्यौ सूर्यस्यानुष्टुप्कृष्णाजिनमुस्रा वूर्ध्वबृहत्यानडुही भद्रो मे सौम्य नमो मित्रस्याभितपनः सूर्यः सौरीं जगतीं वरुणस्य पंच वारुणानि याते सौम्यीं त्रिष्टुभं गौतमः॥१८॥

अग्नेस्तनूरसि पञ्च वैष्णवान्यग्नेः शाकलं वृषणौ दर्भतरुणके उर्वश्यसि त्रयाणं लिङ्गोक्तादेवता गायत्रेण त्रीण्याग्नेयानि भवतं नः पङ्क्तिरग्नावग्निर्विराडेतयोर्निर्मथ्या हवनीयाग्निदेवते आपतये वायव्यमनाधृष्टमाज्यमग्ने व्रतपा आग्नेयमर्ठंशुरर्ठंशुः प्रकृतिश्चतुरवसाना सौम्यमन्त्योऽर्धर्चौ लिङ्गोक्तदेवतो या ते त्रीण्याग्नेयानि तप्तायनी चत्वारि पार्थिवानि विदेदाग्नेयमग्ने अङ्गिरो योऽस्यामनु त्वा लिङ्गोक्तानि सिर्ठंह्यसि त्रयाणं वेदिरिन्द्र घोषश्चतुर्णमुत्तरवेदिरिदमहमापर्ठं सिर्ठंह्यसि पञ्चानां वाग्भूतेभ्यः स्रुग्ध्रुवोऽसि परिधयस्त्रयाणामग्नेः संभारा गुग्गुलादयः॥१९॥

युञ्जते श्यावाश्वः सावित्रीं जगतीमिदं विष्णुर्मेधातिथि-
वैष्णवीं गायत्रीमिरावती वसिष्ठस्त्रिष्टुभं देवश्रुतावक्षं धुरो प्रा-
चीस्वं गोष्ठमत्रहविर्धाने विष्णोर्नु तिस्रो वैष्णव्यस्त्रिष्टुभ आद्ये द्वे
यजुरन्ते विष्णोर्नु प्रतद्दीर्घतमा औतथ्यो विष्णो रराटं पञ्च वैष्ण-
वान्याददेऽभ्रिरिदमहर्ठं रक्षोघ्नं वृहन्नो परवाणीदमहं पञ्चलि-
ङ्गोक्तानि खराडस्यौपरवाणि चत्वारि रक्षोहणो वः सप्त वैष्ण-
वानि यवोऽसि यवो दिवे त्वौदुम्बरीं शुन्धन्तां पित्र्ये उद्दिवं पञ्चा-
नामौदुम्बरी घृतेन द्यावापृथिव्यमिन्द्रस्यैन्द्रं परि त्वा मधुछन्दा अ-
निरुक्तामैन्द्रीमनुष्टुभमिन्द्रस्यैन्द्राणि त्रीणि चतुर्थं वैश्वदेवं ॥२०॥

विभूरस्यष्टानां धिष्ण्या अग्नयः संम्राडाहवनीयः प-
रिषद्यो वहिष्पवमानदेशो नभोऽसि चात्वालो मृष्टोऽसिशामि-
त्रऽऋतधामौदुम्बरी समुद्रोऽसि ब्रह्मासनमजोऽसि शालाद्वार्यो
ऽहिरसि प्राजहितो वागसि सदऋतस्य द्वार्ये अध्वनार्ठंसूर्यो
मित्रस्यार्त्विजोऽग्नयो धिष्ण्याः॥२१॥

ज्योतिरसि वैश्वदेवं त्वर्ठं सोम क्रतुभिर्गेवः सौमीं गायत्री-
मनवसानां जुषाणो अप्तुदेवत्यैकपदाविराड्यजुरन्ताग्नेनयाग-
स्त्य आग्नेयीं त्रिष्टुभमयं नस्त्रिष्टुब्यजुरन्ताग्नेय्युरु विष्णो वैष्ण-
व्यनुष्टुब्यजुरन्ता देव सवितः सावित्रमेतत्त्वर्ठं स्वाहानिर्लिङ्गोक्ता दे-
वतमग्ने व्रतपाऽआग्नेयमत्यन्यान्वनस्पतिरोषधे कुशतरुणर्ठं
स्वधिते परशुर्द्यामतस्त्वं वनस्पतिः॥२२॥

अग्रेणीः शाकलं देवस्त्वा यूपः सुपिप्पलाभ्यश्च षालं

यूपो या ते दीर्घतमा यूपदेवत्यां त्रिष्टुभं ब्रह्मवनि ब्र-
यूपदेवत्ये विष्णोः कर्म्माणि द्वे मेधातिथिर्वैष्णव्यौ गा-
रिवीर्यूपो दिवः स्वरुरेष ते यूप उपावीस्तृणमुप देवां
मृतस्य त्वा पशुरग्नीषोमाभ्यां लिङ्गोक्तमद्भ्योऽपां प-
देवीरापꣳ सं ते पशुर्घृतेन स्वरुश्चासौ रेवति वाग्वर्षो
स्वाहा द्वे॥२३॥

माहिर्भू रज्जुर्नमस्ते यज्ञो देवीरापोऽर्धमापमर्धमाशीर्वा-
ते मनस्ते पशुः शं लिङ्गोक्तमोषधे तृणꣳ स्वधितेऽसी रक्ष-
लिङ्गोक्तं निरस्तमिदमहꣳ रक्षोहणं घृतेन द्यावापृथिव्यंवा-
वायव्यमग्नि राज्यस्याग्नेयꣳ स्वाहाकृते वपाश्रपण्याविद-
आप आपी महापङ्क्तिस्त्र्यवसाना पावमानश्चान्त्यः पादः सं ते
हृस्यꣳ रेडसि वसा प्रयुतं लिङ्गोक्तं घृतं वैश्वदेवं दिशः प-
दिश्यान्यैन्द्रः प्राणः पश्वङ्गप्राणदानां लिङ्गोक्तं देव त्वाष्ट्री
त्रिष्टुप्॥२४॥

समुद्रं लिङ्गोक्तानि द्वादश दिवं ते स्वरुमापो हृदयशू-
लं धाम्नो-धाम्नो वारुणं यदाहुर्वारुणी गायत्र्यनवसानाः सुमित्रि-
या न आपꣳ हविष्मतीर्लिङ्गोक्तदेवतानुष्टवग्नेर्वैश्वत्वार्यापान्य-
सूरार्षी गायत्री मेधातिथिर्हृदे सौम्यनुष्टुप्सोमराजन्त्सौम्ये श्रृ-
णोतु लिङ्गोक्तदेवता त्रिष्टुब्देवीराप आपीपङ्क्तिःकार्षि राज्यम-
नुष्टुप्समुद्रस्य समाप आपे यमग्ने मधुछन्दा आग्नेयी गायत्री-
मासदेग्रावा निग्राभ्या आपमिन्द्राय त्वा पञ्च सौम्यानि य-

त्ते सौमी विपरीताबृहती स्वाद्या: पथ्याबृहती माभेः सौम्यमर्धं आवापृथिव्यमर्धं प्रागपाक्सौम्युष्णिक्त्वामङ्गः गौतम ऐन्द्रीं पथ्याबृहतीम् ॥२५॥

वाचस्पतये प्राणदेवत्या विराण्मधुमती लिङ्गोक्ता यत्ते सौम्यर्धं स्वाहोरु यजुषी लिङ्गोक्ते स्वाङ्कृतोऽस्युपांशुः सुर्दैवेभ्यस्त्वा दैवं देवांशुर्लिङ्गोक्तमभिचारिकं प्राणाय ग्रहो व्यानायोपांशुसवनः उपयामगृहीतोस्यन्तरैन्द्रमन्तस्ते मघव देवत्या त्रिष्टुबुदानाय ग्रह आ वायो वसिष्ठो वायव्यां त्रिष्टुभमिन्द्रावायू मधुच्छन्दा ऐन्द्रवायवीं गायत्रीमयं वां गृत्समदो मैत्रावरुणीं राया वयं त्रसदस्युस्त्रिष्टुभं या वां मेधातिथिराश्विनीं गायत्रीं तं प्रत्नथा वत्सारः काश्यपो वैश्वदेवीं जगतीमच्छिन्नस्य सौम्यर्धं साध्यमैन्द्री त्रिष्टुब्भून्यन्त्वं याऽग्नील्लिङ्गोक्ते ॥२६॥

अयं वेनो वेनस्य त्रिष्टुप् सोमस्तुतिरधिदैवतमधियज्ञं च मनो न त्रिष्टुप्सोमस्तुतिरधियज्ञानुवादिन्यपमृष्टः शण्डोऽपमृष्टो मर्क आभिचारिके देवास्त्वा शुक्रमन्थिनोऽनाधृष्टासि दक्षिणोत्तरे वेदिश्रोण्यौ सुवीरः सुप्रजाः शुक्रामन्थिनौ निरस्तौ द्वे आभिचारिके शुक्रस्य मन्थिनः शाकलं ये देवासः परुच्छेपो वैश्वदेवीं त्रिष्टुभमाग्रयणोऽसि लिङ्गोक्तदेवतं ॥२७॥

सोमः पवते वैश्वदेवमिन्द्राय त्वा पञ्च लिङ्गोक्तानि मूर्धानं भरद्वाजो वैश्वानरीं त्रिष्टुभं ध्रुवोऽसि ध्रुवो ध्रुवं ध्रुवेण बृहती पूर्वोऽर्धर्चो ध्रौव उत्तर ऐन्द्रो यस्ते देवश्रवाः सौमीं त्रिष्टुभं

देवानां चात्वालदैवतं प्राणाय मे लिङ्गोक्तदेवतान्येका-
कोऽसि प्राजापत्योष्णिग्वर्धमाना मघवे त्वा लिङ्गोक्तदेव-
तोदृष्ट्वा ॥२८॥

इन्द्राग्नी विश्वामित्र ऐन्द्राग्नी गायत्रीमाघ त्रिशोक
ओमासो मधुछन्दा वैश्वदेवी विश्वे देवासो गृत्समद
मरुत्वश्वतस्रो विश्वामित्र ऐन्द्रामारुतीस्त्रिष्टुभो मरुतां त्वा
वतीयं महाँ२॥ इन्द्रो भरद्वाजो माहेन्द्री त्रिष्टुभं य आ-
वत्सो गायत्रीमुदुत्यं प्रस्कण्वः सौरीं गायत्रीं चित्रं कुत्स आ-
त्रिष्टुभꣳ रूपेण वो दक्षिणाश्चतुर्णो ब्राह्मणमद्य लिङ्गो-
क्तान्यष्टौ ॥२९॥

विष्णो वैष्णवं कदा चनादित्य देवत्ये बृहत्यौ यज्ञो दे-
वानां कुत्सस्त्रिष्टुभं विवस्वन्यजुः अदस्मै जगत्याशीर्वाम मद्य
जोबार्हस्पत्यः सावित्री त्रिष्टुभꣳ सावित्रोऽसि सावित्रꣳ सुश-
र्मासि वैश्वदेवं बृहस्पति सुतस्य लिङ्गोक्तमहं प्रजापति रूपेणात्मा
देवता त्रिष्टुबग्ना३इ पत्नीवन्नाग्नेयं प्रजापतिः प्राजापत्यꣳ ह-
रिरस्यवसामे हर्योर्येस्ते लिङ्गोक्ते देवक्रतस्याग्नेयानि षट् ॥३०॥

समिन्द्राग्निर्वैश्वदेवी त्रिष्टुभं धाना लिङ्गोक्त बहुदेवत्या
सुगावो देवी या ३॥ आवहो वयमाग्नेयौ यज्ञयज्ञमेष ते लिङ्गो-
क्ते यजुषी उरुꣳहि सुनः शेपो वारुणीं त्रिष्टुभं नमो वारुणमग्ने-
रनीकमाग्नेयी त्रिष्टुप्समुद्रे ते सौमी विराट् देवीराप: पङ्क्तिर्बृह-
ती वा पूर्वोऽर्धर्चे आप उत्तरः सौम्यो देवानामाग्नेय मेजत्तु

त्र्यवसानामहापङ्क्तिर्यस्ये ते वश्गा पुरुदस्मो गर्भो मरुतो यस्य गोतमो मारुतीं गायत्रीं मही द्यौर्मेधातिथिर्द्यावापृथिव्यामित्य ग्निष्टोमः॥३१॥

अथ षोडश्यातिष्ठङ्गोतम ऐन्द्रीमनुष्टुभं युक्ष्वाहिमधुछन्दाइन्द्रमिद्गतमो यस्मान्नैन्द्रीं त्रिष्टुप्परब्रह्मरूपेण षोडशिनः स्तुतिरिन्द्रश्चैन्द्रावारुणी षोडशिदेवत्या वा यजुरन्ताग्ने पवस्व वैखानस आग्नेयीं गायत्रीमुत्तिष्ठन्कुरुस्तुतिरैन्द्रीमहश्च प्रस्कण्वः सौरीं तिस्रोपि यजुरन्ता उदुत्यं देवानामार्षमाजिघ्रेडेकोसुरुविन्दुर्गव्ये महापङ्क्तिः प्रस्तारपङ्क्तिर्विनः शंसो भरद्वाज ऐन्द्रीमनुष्टुभं वाचस्पतिं वैश्वकर्मणीं त्रिष्टुप्विश्वकर्मन्नैन्द्री वैश्वकर्मण्यग्नये त्वा देवार्षाण्यदाभ्यदेवत्यानि त्र्यंशूनां त्वा सौम्यानि॥३२॥

सत्रोत्थानं देवानामार्षमिह रतिः पशुदैवतमुपसृजन्नुष्णिगाग्नेयी सत्रस्य बृहती यजमानानामात्मस्तुतिर्युवं तं परुच्छेप ऐन्द्रीमत्यष्टिं त्र्यवसानामाद्योऽर्धर्चे ऐन्द्रापार्वतः परमेष्ठी नैमित्तिकान्याध्यायाद्वसिष्ठस्यार्षं लिङ्गोक्तदेवतानि चतुस्त्रिंशद्ययोर्वैष्णवा वारुणीत्रिष्टुप्देवां दिवमाशीर्लिङ्गोक्तदेवता चतुस्त्रिंशतद्यर्मदेवत्या पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्वा यज्ञस्य यज्ञदेवत्या त्रिष्टुवा पवस्व सौम्यीं गायत्री नैध्रुविः कश्यपः॥३३॥

अथ वाजपेयो बृहस्पतेरार्षमिन्द्रस्य च देव सवितः सावित्री त्रिष्टुप्ध्रुवसदमैन्द्राणि त्रीण्यपाठं रसदेवत्यानुष्टुप्ग्रहालिङ्गोक्तदेवतानुष्टुप्संपृचौ यजुषी इन्द्रस्य रथो वाजस्य पार्थिव्यति

जगत्यन्त्यः पादः सावित्रोऽप्स्वन्तरश्वदेवत्याऽनवसाना पुरउष्णिग्वा-
तो वा तिस्रोऽश्वस्तुतय उष्णिक्त्रिष्टुब्जगत्यो वाजिनोऽश्वादेवस्या-
हं लिङ्गोक्तानि वाजिनोऽश्वा एषस्य द्वे दधिक्रावा वामदेव्योऽश्वदे-
वत्ये जगत्यौ शन्नो वसिष्ठो विराजं तेनो नाभानेदिष्ठो जगतीं वाजे-
वाजे वसिष्ठस्त्रिष्टुभमा मा प्राजापत्यां वाजिनोऽश्वाः॥३४॥

आपय आयुर्यज्ञेन प्राजापत्यानि प्रजापतेः स्वरमृता
यजमानोऽस्मै दिशो नमः पृथिवीयमासन्दी यन्ता सुन्वन्वाज-
स्य प्राजापत्यं तृचं त्रैष्टुभऽ सोमं तृचं तापस आद्या वैश्वदे-
व्यनिरुक्तानुष्टुप्द्वितीया लिङ्गोक्तदेवता तृतीयाग्नेयी प्र नो
लिङ्गोक्ता गायत्री सरस्वत्यै सुन्वन्नग्निः सप्तदश लिङ्गोक्तदेव-
तानि॥३५॥

अथ राजसूयो वरुणस्यार्षमेष ते पार्थिवमग्निनेत्रेभ्यो
देवार्षाण्याध्यायाद्दृशाद्यानि दैवान्यग्ने सहस्व देवश्रवा देववा-
तश्च भारतावाग्नेयीमनुष्टुभमुपार्ठंशोस्त्रीणि रक्षोघ्नानि स-
विता द्वे यजमानः॥३६॥

अपो देवा आपी त्रिष्टुब्वृष्ण ऊर्मिर्लिङ्गोक्तानि मधुमती-
रनाधृष्टा आपे सोमस्य चर्माग्नये लिङ्गोक्तान्यनिभृष्टमापर्ठं
सधमादो वारुणी त्रिष्टुप्क्षत्रस्य चतुर्णां तार्प्यपाण्डूधीवासोऽग्नी-
षाणीन्द्रस्य धनुर्मित्रस्य बाहू त्वयायं धनुर्हवाषण्णामिषव
आविः प्राजापत्यं पराणि लिङ्गोक्तानि॥३७॥

अवेष्टा मृत्युनाशनं प्राची पञ्चानां यजमानः प्रत्यस्त-

मासुरं मृत्योरोजोसि रुक्मो हिरण्यरूपौ मैत्रावरुणी त्रिष्टुब्य-
जुरन्ता सोमस्य सुन्वन्नपर्वतस्यापी त्रिष्टुब्विष्णोस्त्रीणि लिङ्गो-
क्तानि सुन्वन्प्रजापतेन प्राजापत्यात्रिष्टुब्यजुर्मध्याय मसुष्य
यजू रुद्र यद्रोद्रम् ॥३८॥

इन्द्रस्य लिङ्गोक्तानि मा ते संवरणः प्राजापत्या ऐन्द्री
त्रिष्टुभमग्नये लिङ्गोक्तानि पृथिवी मातर्भूमि हꣳसो वामदेवः
सौरीꣳ सप्तपञ्च परब्रह्माभिधायिनीमतिजगतीमियच्छत मा ना-
वूर्गेसि शारेवेन्द्रस्य बाहू स्योनास्यासन्दी क्षत्रस्याधीवासꣳ स्यो-
नाꣳ सुन्वन्निषसाद शुनः शेपो वारुणी गायत्रीमभिभूरस्यक्षा
यजमानो वा ब्रह्मस्त्वमामन्त्रणानि पञ्च लिङ्गोक्तानीन्द्रस्यस्यो-
ऽग्निः पृथुराग्नेयꣳ स्वाहाकृता अक्षाः सवित्रा लिङ्गोक्तदेवतम् ॥३९॥

अथ चरक सौत्रामण्यश्विनोरार्षमश्विभ्यां त्रीणि लि-
ङ्गोक्तानि वायुः सौमी गायत्री कुविदङ्गꣳ सुकीर्तिः काक्षीवत
आद्या सौम्य निरुक्ता त्रिष्टुब्युवमनुष्टुप्पुत्रमिव त्रिष्टुबश्विसर-
स्वतीन्द्रदेवत्येऽश्विसरस्वतीन्द्र देवत्ये ॥४०॥

इति सर्वानुक्रमणीये प्रथमोऽध्यायः॥१॥

अथाग्निं प्रजापतिरपश्यत्साध्यावापश्यन्त सोऽग्निः
पञ्चचितिकः प्रथमा चितिः प्रजापतेर्द्वितीया देवानां तृतीयेन्द्रा-
ग्न्योर्विश्वकर्मणश्च चतुर्थ्यृषीणां पञ्चमी परमेष्ठिनोऽथ
प्रतिकर्मदर्शिनो युञ्जानोऽष्टौ सावित्राणि सवितापश्यदाद्या
तृतीया चानुष्टुप्चतुर्थीषष्ठ्यौ जगत्यौ द्वितीया गायत्री पञ्चमी

त्रिष्टुबिमं नो यज्ञु रन्ता गायत्र्यनवसानाददे ऽभ्रिर्हस्तेऽनुष्टुब्यजुरन्ता ॥१॥

प्रतूर्त्तं नाभानेदिष्ठ आश्वीमास्तारपङ्क्तिर्युञ्जाथां कुक्षिर्गार्दभी गायत्रीं योगे-योगे शुनः शेप आजीं प्रतूर्वं त्रिष्टुब्विराड्रूपा यजुर्गर्भोरुयजुः पृथिव्यास्त्रीण्याग्नेयान्यन्वग्निराग्नेयीं त्रिष्टुभं पुरोधस आगत्यमयो भुव आश्वीमनुष्टुभमाक्रम्यानुष्टुब्द्यौस्ते बृहत्युत्क्राम विराडुदक्रमीत्त्रिष्टुवा त्वा द्वे गृत्समद आग्नेय्यौ परि सोमको गायत्रीं परि त्वा पायुरनुष्टुभंत्वमग्ने गृत्समदो जगतीम् ॥२॥

पृथिव्या आग्नेयमपां पुष्करपर्णं स्वराट्पङ्क्तिः शर्मा द्वे अनुष्टुभौ कृष्णाजिनपुष्करपर्णे पुरीष्योऽग्निस्त्वामग्ने त्वं भरद्वाज आग्नेयं गायत्रं सीदहोतर्देवश्रवादेववातश्च त्रिष्टुभं नि होता गृत्समदः सं सीदस्व प्रस्कण्वो बृहतीम् ॥३॥

अपो देवीः सिन्धुद्वीप आपीं न्यङ्कुसारिणीं सं ते त्रिष्टुप्पार्थिवोऽर्धो वायव्योऽर्धः सु जातोऽनुष्टुवाग्नेय्युदुत्तिष्ठ विश्वमनाः पथ्याबृहतीमूर्ध्वः कण्व उपरिष्टाद्बृहतीं सजातस्त्रितस्त्रिष्टुभं स्थिरो रासभेय्यनुष्टुबुष्णिग्वा शिवो भवाजीपथ्याबृहती प्रैतु लिङ्गोक्ता महापङ्क्तिस्त्र्यवसानाग्ने गायत्र्येकपदाग्नेय्यृतमग्निमाग्नेये ओषधयस्त्रिष्टुबनुष्टुभावोषधिदेवत्ये व्यस्यन्नाग्नेयोऽर्धर्चौ विपाजसोत्कीलः कात्य आग्नेयीं त्रिष्टुभम् ॥४॥

आपो ह्यार्षर्चं सिन्धुद्वीपस्तृचं गायत्रं मित्र उपरिष्टाद्बृहती मैत्री रुद्रा अनुष्टुब्रौद्री सर्चं सृष्टां द्वे सिनीवालीदेवत्ये उषामदित्या मखस्य मृत्पिण्डो वसवस्त्वा लिङ्गोक्तानि सर्वत्रादित्यै रास्नादिति रौख्यं कात्यायादित्योष्णि गादिति रावटं देवानां पत्नीर्वानि मित्रस्य विश्वामित्रो मैत्रीं गायत्रीं देवस्त्वा सावित्री बृहत्युत्थाय पूर्वोऽर्धर्चे औख उत्तरो मैत्रः॥५॥

आकूतिं लिङ्गोक्तान्यौ द्रुमवणानि मा स्वौख्यौ गायत्री त्रिष्टुभावग्निश्च पाद आग्नेयो द्वन्नः सोमाहुतिरग्नेयी गायत्रीं परस्या विरूप आङ्गिरसः परमस्या आरुणिरनुष्टुभं यदग्ने द्वे जमदग्निरहरहर्नाभानेदिष्ठस्त्रिष्टुभौ याः सेना अनुष्टुभः सर्वा आग्नेय्योन्त्योपरिष्टाद्बृहती॥६॥

दृशानो वत्सप्रीस्त्रिष्टुभर्चं रौक्मी नक्तोषासा कुत्स आग्नेयीं विश्वा श्यावाश्व सावित्रीं जगतीर्चं सुपर्णः कृतिश्चतुरवसाना गारुत्मी विषघ्नी विष्णोलिङ्गोक्तान्यक्रन्द द्वत्सप्रीराग्नेयीं त्रिष्टुभमग्न ऊर्ध्वबृहत्यग्ने महाबृहती पुनर्गायत्र्यावा त्वा ध्रुवोऽनुष्टुभमुदुत्तमर्चं शुनः शेपो वारुणीं त्रिष्टुभमग्ने त्रित आग्नेयीर्चं हंसः उक्ता जगतीहयजुरन्तान्ते बृहद्यजुः सीदत्वमाग्नेयी त्रिष्टुबन्तरग्नेऽनुष्टुभौ॥७॥

दिवस्पर्याग्नेयं त्रैष्टुभं द्वादशर्चं वत्सप्रीर्भालन्दनः समिधाग्निं विरूपाक्ष आङ्गिरस आग्नेयं गायत्रमुदु त्वा तापसोऽनुष्टुभं प्रेदनुष्टुप्प्र मायमाग्नेयीं वसिष्ठस्त्रिष्टुभमापो दे-

वीरस्त्वग्ने विरूप आग्नेयीं गायत्रीं गर्भो असि तिस्रोऽनुष्टु-
भो बोधा मे दीर्घतमा त्रिष्टुभꣳ स बोधि सोमाहुति राग्नेयीं य-
जुरन्तां गायत्रीं यजुर्वैश्वकर्मणं पुनस्त्वा त्रिष्टुबाग्नेयी॥८॥

अपेत लिङ्गोक्तबहुदेवत्या संज्ञानमूषदेवत्यानि त्री-
ण्यग्ने सिकताश्चितः परिश्रितोऽग्न्यꣳ सः पञ्चर्चमाग्नेयं त्रै-
ष्टुभंविश्वामित्र चतुर्थ्यनुष्टुबयं ते नुष्टुप्चिदैष्टके लोकं
लिङ्गोक्तानुष्टुप्ता अस्यार्पी प्रियमेध ऐन्द्र इन्द्र जेता माधुच्छ-
न्दसऐन्द्रीꣳ समितं चतस्रोऽह्यग्निदेवत्या उष्णिगुपरिष्टाद्बृह-
त्युष्णिक्पङ्क्त्यो मा ते वोरवास्तुतिस्त्रिष्टुप्॥९॥

असुन्वन्तं नैर्ऋतं त्रिचं त्रैष्टुभं यं ते यजमानदेवत्या
नमो विराड्नितिदेवत्यैकपदा निवेशन आग्नेयीं त्रिष्टुभं वि-
श्वावसुर्देवगन्धर्वः सीरा द्वे सीरदेवत्ये बुधः सौम्यो गाय-
त्रीत्रिष्टुभौ शुनं चतस्रः सीतादेवत्याः कुमारहारितो द्वे
त्रिष्टुभौ तृतीयापङ्क्तिश्चतुर्थ्यनुष्टुब्विमुच्यध्वमानडुही गा-
यत्री सजूर्लिङ्गोक्तदैवतम्॥१०॥

या ओषधीः सप्तविꣳशतिमनुष्टुभ ओषधीस्तुति-
माथर्वणो भिषङ्मुञ्चन्तु बन्धुर्द्वादशाना रभ्याधीना मा मा
हिरण्यगर्भः कार्यां त्रिष्टुभमभ्यावर्तस्वोष्णिगग्ने यद्गायत्री-
षं त्रिष्टुबग्ने तव पावकोऽग्निराग्नेयꣳ षड्टचं प्रथमे विष्टार-
पङ्क्ती तिस्रः सतोबृहत्युपरिष्टाज्ज्योतिः षष्ठ्याप्यायस्व गोत-
मः सौम्योगायत्री त्रिष्टुबुष्णिह आ ते वत्सारस्तुभ्यं मा द्वे

त्रिरूपस्तिस्रो गायत्र्य आग्नेय्यः ॥११॥

मयि ककुबाग्नेयी ब्रह्मादित्यदेवत्या त्रिष्टुप् हिरण्यगर्भो हिरण्यगर्भः कार्यां त्रिष्टुभं द्रप्सो देवश्रवा आदित्यो नमोऽस्तु सार्पं तृचमानुष्टुभं कृणुष्व पञ्च प्रतिसरा रक्षोघ्ना देवानामार्षं सर्वास्त्रिष्टुभ आग्नेयीर्वामदेवश्चापश्यदग्नेष्टा यजुराग्नेयमिन्द्रस्येन्द्रं सुवस्त्रिशिराग्नेयीं त्रिष्टुभम् ॥१२॥

ध्रुवास्यूर्ध्वबृहती प्रजापतिरनुष्टुब्भूरसि प्रस्तारपङ्क्तिरासाथं स्वयमातृण्णादेवता विश्वस्मा इत्येतस्य च यजुषः काण्डात्काण्डादानुष्टुभं द्व्यृचमग्निना दृष्टं दूर्वेष्टकदेवतं यास्त आग्नेयं द्व्यृचमानुष्टुभमिन्द्राग्निभ्यां दृष्टं विराडयं लोकः स्वराडसौ लोकः प्रजापतिष्ट्वा वैश्वज्योतिषं मधुश्चर्तुदेवतमषाढासि सवितापश्यद्देवा वापश्यन्निष्टकादेवतम् ॥१३॥

मधु वाता वैश्वदेवं तृचं गायत्रं गोतमोऽपां गम्भन्पङ्क्तिस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रिष्टुप्कोर्म्यं द्व्यृचं ध्रुवासि त्रिष्टुविषे बृहत्योरवंद्व्यृचमग्ने युक्ष्वाग्नेयं द्व्यृचं गायत्रमाद्यायां भरद्वाजो द्वितीयस्यां विरूपः सम्यक्त्रिष्टुब्लिङ्गोक्तदेवतर्चे त्वा बृहत्यग्निर्ज्योतिषोषिणागादित्यं गर्भं पञ्चर्चमाग्नेयं त्रैष्टुभमिमं मा पञ्चर्चमाग्नेयं त्रैष्टुभमेव द्वे द्वे चान्ते यजुषी त्वं यविष्ठोशनाः काव्य आग्नेयीमनिरुक्तां गायत्रीमपां त्वा विंशतिरिष्टकान्ययं पुरः पञ्चाशत्प्राणभृद्देवत्यानि लोकं ता इन्द्रं तिस्रः प्रतीकोक्ता एवं सर्वत्र ॥१४॥

अथ द्वितीया चितिर्ध्रुवक्षितिः पञ्चाश्विन्यस्तासां प्रथ-
माऽनुक्तास्त्रिष्टुभो यजुरन्ताः सुकश्चर्तव्यौं सजूः पञ्च
ता देवानामार्षं ता एव देवताः प्राणं मे पञ्च वायव्यान्य-
पानि मूर्धा वय एकोनविंशतिर्लिङ्गोक्त देवतानि॥१५॥
अथ तृतीयेन्द्राग्नी अनुष्टुप्पूर्वोऽर्धर्च ऐन्द्राग्न उत्तरः स्व-
देवतो विश्वकर्मा वायव्यं सन्यसि पञ्च दिग्देव-
विश्वकर्मा वायव्यं नभश्चेषश्चर्तव्ये आयुर्मे दश लि-
देवतानि मा छन्दश्चषट्त्रिंशान्मूर्धानुष्टुव्यन्त्री परोष्णि-
र्दश यजूंषि प्राणदेवत्यानि॥१६॥

अथ चतुर्थ्याशुरस्वादशाग्नेर्दशैकपा सप्तदश सर्वा-
लिङ्गोक्तदेवतानि सहश्चर्तव्यम्॥१७॥

अथ पञ्चम्यग्ने जातानाग्नेय्यौ त्रिष्टुभौ षोडशी चतु-
त्वारिंशो लिङ्गोक्ते अग्नेस्त्रिष्टुवेव चत्वारिंशाद्रश्मिनै-
कान्नत्रिंशद्राज्ञासि पञ्चायंपुरः पञ्चैतानि सर्वाणि लि-
ङ्गोक्तदेवतानि॥१८॥

अग्निमूर्धाग्नेयोऽनुवाकः प्रथमस्तृचो गायत्रो द्वितीय-
स्त्रैष्टुभो भुवस्तृतीयो जागतोऽयमिह चतुर्थ आनुष्टुभः
स्वायः सं पञ्चमः प्रगाथ एनावस्तत्र पूर्वो बृहती सतोबृ-
हत्युत्तरा ताभ्यां तिस्रो बृहत्यः संपादिताः षष्ठ उष्णिहोऽग्ने
वाजस्य सप्तमः पुनः काकुभः प्रगाथो भद्रो नस्तत्र पूर्वा क-
कुप्सतोबृहत्युत्तरा ताभ्यां तिस्रः ककुभः संपादिता अष्टमः पा-

ष्टोऽग्निं तं पदपङ्क्तो नवमोऽग्ने तमग्निर्ठं होतारमतिच्छन्दास्त्र्यवसानाग्ने त्वं द्वैपदस्तृच ॥१९॥

अयमग्निर्विरूपोऽबोधि बुधगविष्ठिरौ जनस्य सुतंभरः सखाय इषः सर्ठं समित्संवननस्त्वां प्रस्कण्वऽएना वो वसिष्ठोऽग्ने वाजस्य गोतमो भद्रो नः सौभरिरग्निं तं कुमारवृषौ येनाष्टावाग्नेय्यः षट्त्रिष्टुभौ द्वे अनुष्टुभौ तपश्चर्तव्यं परमेष्ठी सौरं प्रोथदश्वो वसिष्ठस्त्रिष्टुभमाग्नेयीमायोर्द्वे स्वयमातृण्णदेवते सहस्रस्य पञ्चाग्नेयानि ॥२०॥

रौद्रोऽध्यायः परमेष्ठिन आर्षं देवानां वा प्रजापतेर्वाद्योऽनुवाकः षोडशर्च एकरुद्रदेवत्यः प्रथमा गायत्री तिस्रोऽनुष्टुभास्तिस्रः पङ्क्तयः सप्तानुष्टुभो द्वे जगत्यौ मा नो द्वे कुत्सः ॥२१॥

अन्त्याऽनुवाके सप्तैकरुद्रस्तुतिराद्योपरिष्टाद्बृहती मा कुत्सस्य तृतीयानुष्टुब्द्वे त्रिष्टुभौ द्वे अनुष्टुभावसंख्याता बहुरुद्रदेवत्या दशानुष्टुभो मन्त्रा अवतानसंज्ञकास्ततोऽन्त्यानि त्रीणि यजूर्ठंसि बहुरुद्रदेवत्यानि प्रत्यवरोहसंज्ञका मन्त्राः ॥२२॥

मध्ये सर्वाणियजूर्ठंषि हिरण्यबाहव इति तिस्रोऽशीतयो रुद्राणां तेषामुभयतो नमस्कारा अन्येऽन्यतरतो नमस्कारा अपरे जन्मनामरुद्राः सभाभ्य इत्यादयो नमोवः किरिकेभ्यः इत्यग्निवायुसूर्यहृदयभूताः पञ्च व्याहृतयो बहुरुद्रदेवताः ॥२३॥

अश्मन्मारुतमश्मंस्तेऽश्ममय्याशीर्यं द्विषम आभि-

चारिकमिमा म आग्नेयमृतवो बृहती पङ्क्तिर्वा समुद्रस्य द्वे गायत्र्यौ षड्न्मज्जगती त्रिष्टुबापामिदं बृहत्यग्ने पावक वसूयवः स नो मेधातिथरेते आग्नेय्यौ गायत्र्यौ पावकया जगतीं भरद्वाजो नमस्ते बृहतीमाग्नेयीमृषिसुतालोपामुद्रा॥२४॥

नृषदे पञ्चाग्नेयानि ये देवा जगत्यौ प्राणदेवत्ये प्राणदा बृहती पङ्क्तिर्वाग्नेय्यग्निस्तिग्मेनाग्नेयीं गायत्रीं भरद्वाजो य इमा वैश्वकर्मणीस्त्रिष्टुभो विश्वकर्माभौवनः॥२५॥

आशुरैन्द्रीर्द्वादश त्रिष्टुभोऽप्रतिरथोऽवसृष्टानुष्टुविषुदेवत्या प्रेत योद्धृन्तोऽत्यनुष्टुब्वसौ या मारुती त्रिष्टुब्यत्र लिङ्गोक्तदेवता पङ्क्तिर्मर्माणि लिङ्गोक्तैव त्रिष्टुबुदेनं तिस्रोऽनुष्टुभ आद्याग्नेयी द्वितीयैन्द्री तृतीया लिङ्गोक्तदेवता पञ्चदिशः पञ्च यज्ञाग्निसाधनवादिन्य आद्ये द्वे त्रिष्टुभौ तृतीया पङ्क्तिर्बृहती वा चतुर्थी बृहत्येवान्त्या त्रिष्टुब्विमा नो द्वे आदित्यदेवत्ये आद्या विश्वावसोर्द्वितीयाऽप्रतिरथस्य देवहूर्विधृतिरनुष्टुब्यज्ञदेवत्या वाजस्यैन्द्र्यनुष्टुबुद्ग्राभमैन्द्राग्न्यानुष्टुबेव॥२६॥

क्रमध्वं पञ्चाग्नेय्यः आद्यानुष्टुप्ततस्त्रिष्टुप्ततो बृहती पिपीलिकमध्या ततोऽनुष्टुप्त्रिष्टुबन्त्याग्ने सहस्राक्ष विराडाग्नेयी सुपर्णो द्वे पङ्क्तिस्त्रिष्टुभौ तां सवितुः सावित्रीं त्रिष्टुभं परस्ताज्ज्योतिषं कण्वो ददर्श विधेमाग्नेयी गृत्समदस्त्रिस्थानोऽग्निर्देवता प्रेद्धो विराडाग्नेयी वसिष्ठस्य चित्तिं वैश्वकर्मण्यतिजगती सप्त त आग्नेयी त्रिष्टुप्सप्तऋषीणाम्॥२७॥

शुक्रज्योतिः षण्मारुत्य आद्या चतुर्थी चोष्णिक् द्वितीया
च तृतीया च गायत्री पञ्चमी जगती षष्ठी गायत्र्युष्णिग्वैन्द्रं दै-
वीर्मारुतमिमं त्रयोदशर्चं आग्नेयस्त्रैष्टुभोऽनुवाको यज्ञस्तुति-
र्घृतस्तुतिर्वा व सोर्धाराभिवादिनी वा घृतं मिमिक्षे गृत्समदः स-
मुद्राद्वामदेवश्चत्वारिशृङ्गा यज्ञपुरुषदेवत्यऽऋषभो मन्त्रः ॥२८॥

वाजश्च मे देवानामार्षमेतैर्यजुर्भिर्यजमानोऽग्नेः कामान्या-
चते वाजप्रसवीयर्ठं सप्तर्चं विश्वे त्रैष्टुभं वैश्वदेवं लुशोधानाको वा-
जोनस्तिस्रोऽन्नदेवत्या आद्यानुष्टुब्द्वे त्रिष्टुभौ सं मा विराजावाग्ने-
य्यौ सरस्वत्यै लिङ्गोक्तदेवतम् ॥२९॥

ऋताषाड्गन्धर्वाप्सरसः स नः प्राजापत्याः प्रस्तारपङ्क्तिः स-
मुद्रोऽसि वायव्यानि त्रीणि रुचमाग्नेय्यनुष्टुप्तत्वा वारुणीं त्रिष्टुभर्ठं
शुनःशेपः स्वर्णाग्नेयानि पञ्चाग्निं युनज्म्याग्नेय्यस्तिस्र आद्ये द्वे
त्रिष्टुभौ पङ्क्तिस्तृतीया दिवो द्वे आग्नेय्यौ परोष्णिग्महापदपङ्क्तिः इष्टो
यज्ञो द्व्यृचं यजमानाग्निदेवत्यं गालव आद्योष्णिग्द्वितीया गायत्री ॥३०॥

यदाकूताद्दष्टर्चमाग्नेयं विश्वकर्मणस्तृतीया दैवी वाद्या जग-
ती तिस्रस्त्रिष्टुभश्चतस्रोऽनुष्टुभोऽग्निरस्म्यग्न्यद्वैतवादिनीं त्रिष्टुभं
देवश्रवादेववाताश्च भारतावृचो यजुर्ये अग्नयोऽनुष्टुवाग्नेयी ॥३१॥

वार्त्रहत्याय सप्तर्चमिन्द्रोऽपश्यदाद्ये द्वे वार्त्रघ्न्यौ गायत्री त्रि-
ष्टुभौ विश्वामित्रस्य च वि नोऽनुष्टुम्मृगो न त्रिष्टुप्त्र्यमार्ठं शासो
भारद्वाजो द्वितीयां जय ऐन्द्रो द्वे विश्वानर्यौ गायत्रीत्रिष्टुभौ पृष्टो दि-
वि कुत्सस्य चाश्याम द्वे त्रिष्टुभावाग्नेय्यौ कामवत्यावश्याम भर-

द्वाजस्य च वयं ते कात्यस्योत्कीलस्य धामछदनुष्टुब्वैश्वदेवी॥३२॥

अथ सौत्रामणी प्रजापतेरार्षमश्विनौ सरस्वत्याश्च स्वाद्वी त्वा नुष्टुप्सुरासोमदेवत्या सोमोऽसि चत्वारि सौराणि परितो भारद्वाजः सौमीं बृहतीं वायोस्तृचो गायत्रः सौम्य आभूतेर्ब्रह्मक्षत्रं त्रिष्टुप्सुरासोमदेवत्या नाना हि जगती सुरासोमदेवत्या तेजोऽसि पयो देवत्यान्योजोऽसि सुरादेवत्यानि याव्याग्ᳬं हैमवर्चे रनुष्टुब्विषूचिकास्तुतिर्यदा पियेषाग्नेयी बृहती संपृचस्थ पयग्रहा विपृचस्थ सुराग्रहादेवा यज्ञं ब्राह्मणानुवाको विर्ᳬंप्रतिरनुष्टुभः सोमसंपत्॥३३॥

सुरवन्तं चतुर्ऋचं त्रैष्टुभमश्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्यं पितृभ्यः सप्त पित्र्याणि पुनन्तु मा नवर्चं पावमानमाद्ये द्वे पित्र्ये अनुष्टुभौ प्रजापतिस्तृतीयां वैखानस आग्नेयीं गायत्रीं चतुर्थी लिङ्गोक्तदेवतानुष्टुप्पञ्चम्याग्नेयी गायत्री षष्ठ्याग्नेयी ब्राह्मी च गायत्री ब्राह्मस्तृतीयः पादः सौमी सप्तमी सावित्र्यष्टमी नवमी त्रिष्टुब्वैश्वदेवी ये समाना अनुष्टुभौ पित्र्याद्या द्वितीया यजमानाशीर्द्वे सती त्रिष्टुब्देवयान पितृयाणौ पन्थानौ ब्रवीतीदᳬं हविस्त्यवनाष्टिर्यजमानाशीः॥३४॥

उदीरतां त्रयोदशर्चं पित्र्यं त्रैष्टुभᳬं शङ्खः एकादशी तु जगत्याच्या जानु दक्षार्चोऽनुवाको नव पित्र्या दशम्यैन्द्री गायत्री तृतीया चतुर्थी नवम्योऽनुष्टुभस्त्रिष्टुभ इतराः सोमो राजाष्टर्चमश्वि सरस्वतीन्द्रा अपश्यन्नाद्यास्तिस्रो महाबृहत्युपान्त्या च चतुर्थ्यन्त्ये अतिजगत्यौ शेषे अतिशक्वर्यौ त्र्यवसाने सीसेन तन्त्रमश्वि सरस्वतीन्द्र-

देवत्याः षोडश जगत्यः ॥३५॥
क्षत्रस्य योनिर्द्विपदा गायत्र्यासन्दी देवताका मा त्वा कृ-
ष्णाजिनं मृत्यो रुक्मावश्विनोर्भैषज्येन लिङ्गोक्तदेवतानि
त्रीणि कोऽसि प्राजापत्या गायत्री शिरो मे पञ्चर्चमिन्द्रशरीरा-
वयव देवताकं तृतीया गायत्र्यन्त्या महापङ्क्तिस्त्र्यवसानानुष्टु-
भोऽन्त्याः प्रति क्षत्रे वैश्वदेवं त्रया देवा दैवीपङ्क्तिस्त्र्यवसाना
प्रथमा द्वितीयैवैश्वदेवमाशीर्लिङ्गं लोमान्यनुष्टुब्लिङ्गोक्तदेवता ॥३६॥
यद्देवास्तिस्रोऽग्निवायुसूर्यदेवत्या अनुष्टुभः कूष्माण्डीर्यद्ग्रा-
मे लिङ्गोक्तदेवतꣳ समुद्रे ते द्विपदाविराडापो द्रुपदादिवानुष्टु-
बापो हृदयꣳ सौर्यनुष्टुप्प्रस्कण्वस्यापो अद्याग्नेयीपङ्क्तिरेधोऽसि स-
मिद्देवत्ये यजुषी समाववर्त्यनिरुक्ता गायत्री वैश्वानरज्योतिर्यजुर-
भ्यादधाम्याग्नेयं तृचमानुष्टुभमाश्वतराश्विरꣳभुना सौर्यनु-
ष्टुप्सिञ्चन्ति परि सौर्यैन्द्री चानुष्टुप्धानावन्तमैन्द्री गायत्री वि-
श्वामित्रस्य च बृहदिन्द्राय बृहती नृमेध पुरुषमेधयोरध्वर्यो गायत्री ॥३७॥
यो भूतानामात्मप्रवादा पङ्क्तिर्नारायणीया कौण्डिन्यस्य प्रा-
णपा मे द्वे अनुष्टुबुपरिष्टाद्बृहत्यौ लिङ्गोक्तदेवते समिद्ध इन्द्र एका-
दशाप्रीस्त्रिष्टुभ आङ्गिरस इध्मस्तनूनपान्नराशꣳस इडो बर्हिर्द्वार
उषासानक्ता दैव्या होतारा तिस्रो देवीस्त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहाकृतय
इत्येता आप्रीदेवता आयातु सप्त त्रिष्टुभ ऐन्द्र्य आमन्द्रै बृहत्याया-
तु वामदेवस्त्रातार गर्ग आमन्द्रैर्विश्वामित्र एवेद्वसिष्ठः ॥३८॥
अथ होत्रं त्रिपशोः समिद्धो अग्निराप्रीर्द्वादश विदर्भिर-

श्विसरस्वतीन्द्रदेवत्या अनुष्टुभोऽश्विना हविरिन्द्रिस्रोऽनुष्टुभ एकैका-
श्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्या य इन्द्रसवितृवरुणदेवत्या तिस्रोऽनुष्टुभोऽ
श्विना गोभिस्तिस्रोऽनुष्टुभो युवं पुत्रमिवानुष्टुप्त्रिष्टुभौ यस्मिन्न-
श्वास आग्नेय्यौजगती त्रिष्टुभावश्विना तेजसेकादशर्चैर्ठं शास्त्रं गोम
द्भ्रस्मदस्त्रचमाश्विनं गायत्रं पावकानो मधुछन्दाः सारस्वतमिन्द्रा-
याहीन्द्रं मधुछन्दा एवानुक्रमानुष्टुभमश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्यम्॥३९॥
इमं मे गायत्री त्रिष्टुभौ वारुण्यौ शुनःशेपस्त्वन्नस्त्रिष्टुभावा-
ग्निवारुण्यौ वामदेवो महीमूषु त्रिष्टुबादित्या सुत्रामाणं गयप्लात
सुनावं नौः स्वर्ग्या गायत्र्या नो मैत्रावरुणीं गायत्रीं विश्वामित्रः
प्र बाहवा वशिष्ठस्त्रिष्टुभर्ठं समिद्धोऽग्निरेकादश प्रमाऽनुष्टु-
भर्ठं स्वस्त्यात्रेयस्यार्षं वयोधा इन्द्रो देवता वसन्तेन ऋतुना षडृच
मानुष्टुभं लिङ्गोक्तदेवतर्ठं होता यक्षद्वादशाप्री प्रैषा अश्विसरस्व
तीन्द्रदेवत्या अश्विनौ छागस्य सप्त लिङ्गोक्तदेवताः प्रैषा वनस्पति
मभि यूपोऽग्निर्ठं स्विष्टकृतर्ठं स्विष्टकृदग्निर्देवं बर्हिरेकादशानु
याजप्रैषा अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्याऽग्निमद्यसूक्तावाक प्रैषो
लिङ्गोक्तदेवतो लिङ्गोक्तदेवतः॥४०॥

इति सर्वानुक्रमणीये द्वितीयोऽध्यायः २

अथाश्वमेधश्चतुरोऽध्यायान्प्रजापतिरपश्यत्तेजोऽसि सौव-
र्णीनिष्कमिमामगृभ्णन्त्संवत्सरो यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभमभिधा लिङ्गोक्ता-
नियो अर्वन्तं गायत्र्यर्धेनाश्वस्तुतिः परोऽर्धो लिङ्गोक्तोऽग्नये लिङ्गोक्ता-
न्येव हिङ्कारायेत्यश्वस्यैकान्नपञ्चाशच्चेष्टितानि हिरण्यपाणिं पञ्चर्चर्ठं सा-

[illegible]मध्यमाय्यां मेधातिथिरग्निं स्तोमेनाग्नेयं तृचं गायत्रं सु
संभरे विश्वामित्रो विरूपो यथासंख्यमजीजनो हि पावमानीं
तिं पिपीलिकमध्यामनुष्टुभं त्र्यरुणत्रसदस्यू विभूरश्वदैवतं वै
वादेवमित्र रन्तिराग्नेयानि चत्वारि कार्येन्द्रभ्रणानि लिङ्गोक्ता
न्या ब्रह्मंल्लिङ्गोक्तान्येवाध्यायात्॥१॥

प्रजापतये प्राजापत्यं यस्ते देवं यः प्राणतः स्विष्टुकामो
हिरण्यगर्भस्य युञ्जन्ति मधुच्छन्दा आदित्यदेवत्यां गायत्रीं यु
ञ्जन्त्यस्याश्वस्तुतिर्येह्वातो बृहती वसवस्त्वा लिङ्गोक्तानि लाजी
नश्वदेवत्यं कः स्विच्चतस्रोऽनुष्टुभः प्रश्नप्रतिप्रश्नभूता ब्रह्मो
होतुर्ब्रह्मणश्च वायुष्ट्वा लिङ्गोक्तानि सं शितस्तिस्रोऽश्वदेवत्या
अनुष्टुब्विराड्त्रिष्टुभोऽग्निः पशुरश्वानि त्रीण्यम्बेऽनुष्टुबश्वस्तुति
र्गणानां त्वा चत्वारि लिङ्गोक्तानि॥२॥

उत्सक्थ्या गायत्र्याश्वीयका दशर्चेमानुष्टुभं द्वितीयान्
परिष्टाद्बृहत्यध्वर्य्वादीनां कुमार्यादिभिरश्लीलभाषणं ता एव
देवता दधिक्राव्णो दधिक्रावा वामदेव्यः सुरभिमतीमनुष्टुभ
माश्वीं गायत्रीं षड्चमाश्वमुष्णिगाद्या चतस्रोऽनुष्टुभोऽन्त्या
त्रिष्टुक्त्वा षड्चमाश्वमाद्या गायत्री पञ्चानुष्टुभः कः स्विद्दश
दशर्चं ब्रह्मोद्यं होत्रादीनां प्रश्नप्रतिप्रश्नभूतमाद्याश्चतस्रोऽ
नुष्टुभः कास्विदाद्याश्चतस्रश्चतस्रश्चान्या दश त्रिष्टुभः सुभूरनु
ष्टुब् लिङ्गोक्तदेवता होता यक्षत्प्राजापत्यः प्रैषः प्रजापते हिरण्यग
र्भः प्राजापत्या त्रिष्टुभम्॥३॥

अश्वस्तूपर इत्यादयः पशवोऽध्यायेनोक्ता देवता चाप-र्येऽङ्गाल्तथा रोहितादयो गुणयुक्ता आरण्याश्च कपिञ्जलादय आध्यायाच्छादं दद्भि रित्यादि त्वगित्येतदन्तं द्रव्यदैवतमुक्तम्॥४॥

अश्वस्तूपरो ब्राह्मणोऽध्यायः शादं दद्भिस्त्वचान्तश्च जुम्ब-काय वारुणीं द्विपदां मुण्डिभ औदन्य एषा चाघनाशिन्यन्तर्जले यस्येमे कायौ त्रिष्टुभौ हिरण्यगर्भः प्राजापत्य आनो दशार्चं जा-गतं वैश्वदेवं गोतमः स्वस्तिनोविराट्स्थाना भद्रं कर्णेभिस्तृचं त्रैष्टुभं मानोऽश्वस्तोमीयं दीर्घतमास्त्रैष्टुभं द्वाविंशं शत्यृचमश्व-स्तुतिस्तृतीयाषष्ठ्यौ जगत्याविमा नु द्वैपदं वैश्वदेवं तृचं भौव-न आप्त्यो वा साधनो भौवनो वा॥५॥

अग्निश्च सप्त लिङ्गोक्तानि शियो देवानां लौगाक्षिरनुष्टु-भमनवसानां बृहस्पते गृत्समदो ब्राह्मीं त्रिष्टुभमिन्द्र गोमन्नै-न्द्री गायत्र्यौ रम्याक्षिर्ऋतावानं प्रादुराक्षिर्वैश्वानरीयां वैश्वान-रस्य त्रिष्टुभं कुत्सोऽग्निर्ऋषिराग्नेयी गायत्रीं वसिष्ठ भरद्वाजौ महाँ२॥ऽइन्द्रो माहेन्द्री वसिष्ठस्तं व ऐन्द्री पथ्याबृहती नोधा गोतमो यज्ञाहिष्ठं वसूयव आग्नेयीमनुष्टुभमेहि भरद्वाजो गाय-त्रीमृतवस्ते बृहत्युपह्वरे वत्सो गायत्रीम्॥६॥

उच्चाते गायत्रं तृचठं सौम्यमामहीयवोऽनुवीरैर्मुद्गलो यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभमग्ने पत्नीर्मेधातिथिराग्नेयीं गायत्रीमभि यज्ञं द्व्यृचमृतुदेवतं मेधातिथिस्तवायमैन्द्रीं त्रिष्टुभं विश्वामित्रो ऽमेव नो जगतीं गृत्समदः स्वादिष्ठया मधुच्छन्दाः सौम्यावनु-

क्तानां गायत्रम् ॥ ७ ॥

समास्त्वाग्निकोऽध्यायः प्रजापतेरार्षं सामिधेन्यो नवाग्नेय्यस्त्रिष्टुभोऽग्निना दृष्टा अग्निर्ऋषिः कर्माङ्गभूतमग्निं स्तौत्यूर्ध्वा द्वादशर्चेमाश्रियमोषधिं विषमपदं प्राजापत्यमाग्नेयमग्निरपश्यदग्निर्हि प्रजापतित्वेन संस्तूयते तेन प्राजापत्यम् ॥ ८ ॥

पीवो अन्ना द्वे वायव्ये त्रिष्टुभौ वसिष्ठ आपो ह द्वे प्राजापत्ये हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः प्र याभिर्द्वे वायव्ये वसिष्ठो नियुत्वान्वायव्याः षड्वायोः शुक्रोऽनुष्टुबेकया च त्रिष्टुबन्त्या (न्त्या) गायत्र्यो नियुत्वान्वायो ये गृत्समदो वायो शुक्र पुरुमीढाजमीढौ नव वायो व्यश्व आङ्गिरसोऽभि त्वा वसिष्ठ ऐन्द्रं प्रगाथं प्रथमा बृहती द्वितीया सतोबृहती त्वामिदेवं शंयुर्बार्हस्पत्यः कया न ऐन्द्रं तृचं गायत्रं वामदेवोऽन्त्या तु पादनिचृद्यज्ञायज्ञा व ऊर्जो नपातं शंयुः पाहि नो भर्गः प्रगाथ एतं (तत) तृचं प्रगाथमाग्नेयं द्वे बृहत्यौ तृतीया सतोबृहती संवत्सरोऽस्याग्नेयम् ॥ ९ ॥

इन्द्रमिडः सौत्रामणिकोऽध्यायः एकादश प्रयाजप्रैषा ऐन्द्रा आप्रीदेवत्या (ता) आद्येऽनुवाके देवं बर्हिरनुयाजप्रैषा ऐन्द्रा एकादशैवाग्निमद्येन्द्रः सूक्तवाकप्रैषस्त्वामद्य प्रतीक उभयत्रापि समिधानं महद्वायोधस आप्रिय एकादश प्रयाजप्रैषास्तथैव देवं बर्हिरनुयाजप्रैषा अग्निमद्य वायोधसः सूक्तवाकप्रैषः ॥ १० ॥

समिद्धो अञ्जन्नाश्वमेधिकोऽध्याय आद्या आप्रीस्त्रिष्टुभ रा-
स्तुतिर्बृहदुक्थोवामदेव्यो ददर्शाश्वो वा सामुद्रिर्यदक्र-
शासीरश्वस्तुतिस्त्रिष्टुभो भार्गवो जमदग्निर्ददर्श दीर्घत-
मिद्धो अद्य द्वादशाप्रीस्त्रिष्टुभोजमदग्निः ॥११॥
केतुं कृण्वन्नाग्नेयीमनिरुक्तां गायत्री मधुच्छन्दा जीमूत-
पायुर्भारद्वाजः सङ्ग्रामाङ्गान्युक्षो(क्थो)स्तोषीत्संनाहं कार्मु-
मार्त्नी नूणं जगत्यर्धेन सारथिमर्धेन रश्मीन्हरीन्रथठँ
पायितॄन् जगत्या लिङ्गोक्तदेवता द्वाभ्यां त्रिष्टुबनुष्टुभ्या-
मनुष्टुभा कशां ततो हस्तघ्नं ततस्तृचो रथदुन्दुभिदेवत्या-
र्वोऽन्त्यः सर्वास्त्रिष्टुभोऽनुक्ता आग्नेयः कृष्णग्रीव इत्या-
एकादशिन्योर्द्वयोः पशुदेवता अग्नये गायत्रायेति दशह-
वेष्टिर्देवता ॥१२॥

देव सवितर्द्वाविंशोऽध्यायो पुरुषमेधो नारायणः पुरुषो ददर्श वि-
नि देव गायत्रीठँ सावित्रीठँ श्यावाश्वो विभक्तारं मेधातिथिर्ब्रह्म-
ब्राह्मणमिति द्वे कण्डिके तपसेऽनुवाकस्य ब्राह्मणम् ॥१३॥

सहस्रशीर्षा षोडशर्चमानुष्टुभं त्रिष्टुबन्त्यं पुरुषो जगद्वी-
द्देवताद्यः षडृच उत्तरनारायणो मन्त्र आद्यास्तिस्रस्त्रिष्टु-
भो द्वे अनुष्टुभावन्त्या त्रिष्टुप् ॥१४॥

तदेव सर्वमेधोऽध्यायः आत्मदेवतः सप्तमेऽहनि सर्वहो-
विनियुक्तः सर्वमेधं ब्रह्मस्वयंभ्वेक्ष तदीयं मन्त्रगणं प्र वायुम-
त्येतस्मादाद्ये द्वे अनुष्टुभौ ततस्य द्विपदा गायत्री हिरण्यगर्भ-

अत्तसो मा माहिंसीद्यस्मान्न द्वे एताः प्रतीकचोदिता ब्रह्मयज्ञेऽध्ये-
याः सर्वैनैवमेषो ह चतस्त्रस्त्रिष्टुभ आपो ह यश्चित्प्रतीकचोदिते॥१५॥

वेनस्तत्पश्च त्रिष्टुभः सदसस्पतिं तृचेन मेधाकामो मेधाया-
चते प्रथमा गायत्री लिङ्गोक्तदेवता द्वितीयाग्नेय्यनुष्टुप्तृतीया
लिङ्गोक्तदेवतानुष्टुबिदं मे मान्त्रवर्णिक्यनुष्टुबेतया देवेभ्यः
श्रीकामोयाचते श्रियम्॥१६॥

अस्याजरासः सप्तदशाग्निष्टोमिके प्रथमेऽहनि पुरोरु-
च आग्नेय्य आद्ये द्वे ऐन्द्रवायवस्यास्याजरासो वत्सप्रीर्हरयोधूम-
केतवो विरूपो यजानो द्वे† मैत्रावरुणस्य यजानो* गोतमो द्वे वि-
रूपे शुक्रस्य कुत्सोऽयमिह मन्थिनो वैश्वदेवग्रहग्रहणे त्रीणि गाता
विश्वामित्र ऐन्द्राग्नस्याग्निर्वृत्राणि भरद्वाजो वैश्वदेवस्य विश्वे-
भिः सोम्यं मेधातिथिरयन्मरुत्वतीययोर्द्वे आयत्पराशरःशाक्त्यो
ऽग्ने शर्धात्रिर्दुहिता विश्ववारा त्वांहि हि भरद्वाजस्त्वे अग्नेर्द्वे बृह-
त्यावादित्यस्य त्वे अग्ने वसिष्ठ श्रुधि प्रस्कण्व आदित्यग्रहग्रह-
णे(अयणे) विश्वेषामदितिर्वामदेवो गोतमो महो अग्नेः सावित्र-
स्य लुशोधानाकोऽनुक्तं गायत्रं त्रैष्टुभम्॥१७॥

इन्द्रस्तुत्युक्थ्ये द्वितीयेऽहन्यैन्द्र्यः पुरोरुचो द्वादश प्रती-
क चोदिते च द्वेतिस्त्रश्चापश्चिद्वसिष्ठो गाव उप पुरुमीढाजमीढौ
यदद्य वसिष्ठ आसुते सुनीतिरातिष्ठन्तं विश्वामित्र प्र वः सुचीको
बृहन्नित्रिशोक इन्द्रो हि मधुच्छन्दा इन्द्रो वृत्रं विश्वामित्रः कुतस्त्वम-
गस्त्य आतन्नौरीवितिः शाक्त्यइमां ते कुत्सो जगतीमनुक्तं गायत्रं

* यजानो मैत्रावरुणस्य गोतम इत्येव पाठः यजान इत्यनया ग्रहणं। तस्य अयणंतु प्रकृतिप्राप्तेन धन्ना धेनुमग्नी पुवं न इत्यूहितेनैव युश्वाहीत्यनया ऽश्विनग्रहणं प्रकृतिवन्मन्त्रक्रमाल्लिंगाच्च। अनोऽत्र पुस्तके लिखितः पाठः प्रमाद एवेति निश्चयः। एवमेव देवः भाष्ये पद्धतौ सर्वानुक्रमसूत्रभाष्ये पद्धतौ संहिताभाष्ये च

† यजानो द्वे मैत्रावरुणस्य यजानो गोतम इत्ययं वैदिकपाठः। तदभिप्रायश्चिन्तनीयः॥ अनेक ग्रन्थविरोधात्। वस्तुतोऽयं पाठोऽशुद्ध एवेति प्रतिभाति

॥१८॥

सूर्यस्तुत्युक्थ्ये तृतीयेऽहनि सौर्यश्चतुर्दश पुरोरुचस्तिस्रश्च
विभ्राड्बृहज्जगतीं विभ्राट् सौर्य उदुत्यं तिस्रः प्रस्कण्व
स्यो यदद्य सुतकक्ष सुतंकक्षौ तरणिः प्रस्कण्व तत्सूर्यस्य
वरामहा ऽं॥ द्वे जमदग्निर्बृहतीसतोबृहत्यौ आयन्त इवन्नृ-
बृहत्य द्या देवाः कुत्सः आ कृष्णेन हिरण्यस्तूप आङ्गिरसोऽ
न्तं सौर्यं गायत्रं त्रैष्टुभम्॥१९॥

वैश्वदेवस्तुति चतुर्थेऽहनि वैश्वदेव्यः पुरोरुच एकादश
गतीकोक्ताः प्रवावृजे वसिष्ठस्त्रिष्टुभ इन्द्रवायू बृहस्पतिं द्वे
थातिथि अधि नः कुसीदी काण्वोऽग्न इन्द्रं प्रतिक्षत्रं इन्द्राग्नी-
मित्रावरुणा जगतीं काश्यपोऽवत्सारोऽस्मे रुद्राः प्रगाथोऽवाच्चौ
य कूर्मो गात्समदो विश्वे अद्य लुशोधानाको विश्वे देवाः सु-
होत्रो देवेभ्यो हि वामदेवो जगतीमनुक्तं गायत्रं त्रैष्टुभम्॥२०॥

अथानाराभ्याधीतं मन्त्रगणमर्वाक्पितृमेधादादित्यया-
ज्ञवल्क्यौ ददर्शतुः प्र वायुं पञ्चदशर्चः पुरोरुग्गणो द्वे च प्रती-
कोक्ते प्रवायुमृजिश्वो मित्रं हुवे द्वे मधुच्छन्दा मित्रं लिङ्गोक्ता
दस्रा युवा कव आश्विनीं विदद्यदीन्द्री कुशिको न हि स्पशं
विश्वामित्रो वैश्वानरीमुग्रा विघनिनेन्द्राग्नी भरद्वाज उपास्मै सो-
मीं देवलोऽसितो वा ये त्वा विश्वामित्रो जनिष्ठा उग्रो गौरीवितिरेन्द्री वाम-
देवस्त्व ऐन्द्रस्त्वमिन्द्रेन्द्री नृमेधः पथ्याबृहतीसतोबृहत्यौ यन्नो देवानां
कुत्सोऽद्ब्धेभिः सावित्रीं जगतीं भरद्वाजः॥२१॥

प्रवीरया पञ्च दशार्चः पुरउष्णिग्गणे द्वे च प्रतीकोक्ते प्र वीरया
वसिष्ठो वायव्यांकाव्ययो राजानेषु दक्षस्तिरश्चीनः परमेष्ठी प्रजाप-
तिर्भाववृत्तं तृचमा रोदसी जगती विश्वामित्र उक्थेभिर्वृत्रहन्त-
मा वसिष्ठ उप नः सुहोत्रो वैश्वदेवीं ब्रह्माणि मेऽगस्त्यो द्वे इन्द्रम-
रुत्संवादे नदिदाथर्वणो बृहद्दिव इमा उ त्वा द्वे बृहत्यो मेधाति-
थिरयं सहस्रं मेधातिथिः सतो बृहतीम् ॥ २२ ॥

आ न स्तपो दशार्चः पुरउष्णिगाद्यश्चतुर्ऋचं प्रतीकचोदितं चा-
नो वायव्यां जमदग्निरिन्द्रवायू सुसंदृशैन्द्रवायव्यां तापस ऋधगि-
त्या मैत्रावरुणीं जमदग्निरायातमाश्विनीं वसिष्ठः सैतु वैश्वदेवीं
कण्वश्चन्द्रमा अप्स्वैन्द्रीमाहुतिपरिणामवादिनीं त्रित आप्त्यो देवं-
देवं वो मनुर्वैवस्वतो वैश्वदेवीं दिविपृष्ठो मेध ऐन्द्रं इन्द्राग्नी अपात्सु-
होत्रो देवासो हि मनुरपाधम द्वे नृमेधोऽस्येन्मेधातिथिर्दशाम्येकाद-
श्यन्त्या च सतो बृहत्यः शेषा बृहत्यः शेषा बृहत्यः ॥ २३ ॥

इति सर्वानुक्रमणीये तृतीयोऽध्यायः ३

यज्जाग्रतः षडृच मानसं त्रैष्टुभं शिवसंकल्पः पितुं नूषिण-
हमगस्त्योऽन्नस्तुतिम (२) न्विच्चतुर्ऋचमानुष्टुभं द्वयोरनुमतिर्द्वयोः
सिनीवालीसरस्वत्यो सिनीवालि पृथुष्टुके द्वे गृत्समदस्त्वमग्ने
द्वे आग्नेय्यौ जगत्यौ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस उत्तानायां द्वे देवश्रवा
देववातश्च भारतावाद्या त्रिष्टुब्द्वितीयानुष्टुप्प्र मन्महे नोधा द्व्यृच-
मैन्द्रं त्रैष्टुभमिच्छन्ति त्वा द्व्यृचमैन्द्रं त्रैष्टुभमेव देवश्रवा देववात-
श्च भारतौ ॥ १ ॥

अथादं युत्सु गोतमश्चतुर्ऋचं त्रैष्टुभर्ठं सौम्यमष्टौ व्य-
[illegible] त्रैष्टुभर्ठं सावित्रमाङ्गिरसो हिरण्यस्तूपो द्वितीया ज-
[illegible]वतमाश्विनं तृचमुभा पिवतं प्रस्कण्वो गायत्री मप्र-
[illegible]ना त्रिष्टुभौ कुत्सः आ रात्रि पथ्याबृहतीर्ठं रात्रिदेव-
[illegible]पा भरद्वाजदुहितोषस्तदु षस्यां परोष्णिहं गोतमः
[illegible]नं वसिष्ठः सप्तर्चमाद्या जगती बहुदेवत्या पञ्च भगदे-
[illegible]त्रिष्टुभोन्त्योषस्या ॥२॥

पूषं तव सुहोत्रः पथस्पथः परिपतिमृजिश्वैते पौष्णेयो गा-
[illegible]त्रिष्टुभौ त्रीणि पदा वैष्णव्यौ गायत्र्यौ मेधातिथिर्घृतवती भु-
[illegible]नां भरद्वाजो द्यावापृथिव्यां जगतीं ये नो लिङ्गोक्तदेवतां त्रि-
ष्टुभं विहव्य आ नासत्या हिरण्यस्तूप आश्विनीं जगतीमेषवो
[illegible]रतीं त्रिष्टुभमगस्त्यः सहस्तोमा ऋषिस्तुष्टिप्रतिपादिकां त्रिष्टु-
भं यज्ञः प्राजापत्य आयुष्यं वर्चस्यं तृचं दक्ष उष्णिक् पुङ्करीत्रिष्टु-
भौ हिरण्यस्तुतिरुत न ऋजिश्वो बहुदेवत्यां त्रिष्टुभमिमा गिरः
कूर्मो गार्त्समद आदित्यदेवत्यां त्रिष्टुभर्ठं सप्त ऋषयोऽध्यात्मवादि-
नी जगत्युत्तिष्ठ तृचो ब्राह्मणस्पत्य आद्ये बृहत्यौ कण्वोऽघोरोऽ-
न्त्यां त्रिष्टुभं गृत्समदो य इमा चतुर्ऋचं प्रतीकोक्तम् ॥३॥

अपेतोऽध्यायः पित्र्य आदित्यस्य देवानां वाद्या गायत्री
[illegible] यजुः सविता ते गायत्री वायुः पुनातु चत्वारि लिङ्गोक्ता-
[illegible]सविता ते गायत्री परं मृत्योः संकसुकस्त्रिष्टुभं मृत्युदेवत्यार्ठं
[illegible] वातोऽनुष्टुबृहत्यौ वैश्वदेव्यावश्मन्वती सुचीकस्त्रिष्टुभं

वैश्वदेवीमपाघं लिङ्गोक्तदेवतामनुष्टुभं शुनःशेपो दुःस्वप्नना-
शनीमन ड्वाहमानडुह्यनुष्टुबिमं जीवेभ्यः संकसुको मृत्युदे-
वत्यां त्रिष्टुभमायुष्मानग्न आग्नेयीं त्रिष्टुभं वैखानसः परी-
मे ऽनुष्टुभमैन्द्रीं भारद्वाजः शिरिम्बिठः क्रव्यादमग्निं त्रिष्टु-
भमाग्नेयीं दमनो वह वपां जातवेदसी त्रिष्टुप्स्योना पृथिवि
मेधातिथिः पार्थिवीं गायत्रीमस्मात्त्वमाग्नेयी गायत्र्यनि-
रुक्ता ॥ ४ ॥

ऋचं वाचं पञ्चाध्यायीं दध्यङ्ङाथर्वणो ददर्शाग्निकश्व-
मेधिकवर्ज्जमाद्योऽध्यायः शान्त्यर्थो वैश्वदेव आद्यानि यजूंषि
षि यन्मे वार्हस्पत्या पङ्क्तिः कया त्वमैन्द्र्य निरुक्ता गायत्रीन्द्रो वि-
श्वस्य विराड्विपदा शं नो द्वे अनुष्टुभावहानि द्विपदा गायत्री शं
न इन्द्राग्नी त्रिष्टुब्गायत्र्यावन्त्याशीर्द्यौः शान्तिर्यजूंषि नमस्ते
अस्त्वनुष्टुभौ तच्चक्षुः पुरउष्णिक्सौरी ॥ ५ ॥

आददे नारिरस्यभ्रिर्दैवतं देवी द्यावापृथिव्यं देव्यो वम्र्यो
वल्मीकवपेपत्यग्ने वराह विहतमिन्द्रस्यौज आदाराः प्रैतु मख-
स्याश्वस्यर्जेवे यमाय देवस्त्वार्चिरसि घर्मदेवत्यानि यो घर्मः स
आदित्यो य एष तपत्यनाधृष्टा पुरस्तात्सप्त पार्थिवानि यजमा-
नाशीर्मधुप्राणदेवत्यानि गर्भो देवानामवकाशा मा माहिंसी
सी रित्येतदन्ता घर्मदेवत्या धर्ता दिव ऊर्ध्वबृहत्यपश्यं गोपां
त्रिष्टुभं दीर्घतमा हृदे त्वा परोष्णिक् त्वष्टमन्तः पत्न्याशीरहः
केतुना यजुषी घर्मदेवत्ये ॥ ६ ॥

आददे ऽदित्यै रास्नासिरिड एहि गौर्यस्ते त्रिष्टुभं दीर्घतमा इन्द्राश्विना वैश्वदेवानि समुद्राय त्वा वातनामानि स्वाहा घर्माय घर्मदेवत्ये विश्वा आशा आश्विन्यनुष्टुब्द्विविधा घर्मदेवत्यामश्विना घर्ममुष्णिगपातां ककुबमेन्यस्मै स्वरः स्वाहा पूष्णे सप्त लिङ्गोक्तदेवतानि स्वाहा सं पयो देवत्यं मधुहुतं घर्मो ऽभीमं गायत्री बृहत्यावनवसाने अतिशक्वरी वाग्नेयी समस्ता त्र्यवसाना या ते घर्म क्षत्रस्य बृहती चतुः स्रक्तिर्ब्रह्म बृहती घर्मैतदनुष्टुबचिक्रदत्य रोचिष्णग्यावती द्यावापृथिवी इधिघर्मोसमयित्य दित्यङ्क्तिर्यजमानाशीः पयसो रेतो गायत्र्यनवसाना त्विषः सं वृग्दधिघर्मो ऽनुक्तं घर्म दैवतं ॥७॥

स्वाहा प्राणेभ्यो मन्त्रवर्णिको देवता मनसः काममनुष्टुब्यजमानाशीः श्रीर्देवता प्रजापतिः संभ्रियमाणो यथाकालं प्रायश्चित्तदेवताः सविता प्रथमे ऽहन्प्रत्यहं क्रमेणोग्रश्च मारुती गायत्री विमुखाख्यो मन्त्रो ऽग्नौ विनियुक्तस्तस्मादाग्निक एवास्य ऋषिः परमेष्ठी प्राजापत्यो वाग्निर्ठं हृदयेनाश्वमेधिकानि त्रीणि तत्रोक्त एव ऋषिर्लोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिंठंशत् ॥८॥

ईशा वास्यमात्मदेवत्य आनुष्टुभो ऽध्यायो ऽनेजदेकं त्रिष्टुप्सपरि जगती वायुरनिलं यजुषी ओ३मिति परमाक्षरस्य योगिनामालम्बभूतस्य परस्य ब्रह्मणः प्रणवाख्यस्य स्थूलादिगुणयुक्तस्य ब्रह्मार्षिश्छन्दो गायत्रं परमात्मा देवता ब्रह्मार-

म्भे विरामे च यागहोमादिषु शान्तिपुष्टिकर्मसु चान्येष्वपि काम्यनैमित्तिकादिषु विनियोगोऽस्य कृतो त्रिभिर्यजुर्भिः स न्ते यत्तान्योगी स्मारयत्यग्ने नयान्ते नमस्कारोक्तिर्हिरण्मयेनादित्योपासनमोमिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः एवं ब्रह्मत्याका शरूपमन्ते ब्रह्म ध्यायेत्॥ ७॥

हरिः ओम्

ओं नमो कात्यायनाय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थःप्रदीपके
देवर्षिछन्दबोधायानुक्रमार्थःसमीर्यते

आदि में भगवान् कात्यायनाचार्य प्रारम्भित ग्रन्थ के निर्विघ्नता पूर्वक परिसमाप्ति के अर्थ देवताध्यानलक्षण मङ्गलाचरण करिके श्रोतृबुद्धि के अव्याकुलत्व के प्रतिपाद्यग्रन्थ को प्रकट करता है मण्डलं दक्षिणमक्षिहृदयं चाधिष्ठितं येन शुक्लानि यजूंषि भगवान्याज्ञवल्क्यो यतः प्रापस्तं विवस्वन्तं त्रयीमयमर्चिष्मन्तमभिध्यायेति में तिस विवस्वन्त (सूर्य) तीनों वेदमय दीप्तिमन्त को कि जो जो आकाश में जगत्प्रकाशकत्व करि दृश्यमान मण्डल और पुरुष के दक्षिणनेत्र तथा

ों को आक्रमण करि स्थित हुआ पुनः जिस विवस्वन्त
र याज्ञवल्क्य नें शुक्ल यजुः प्राप्त किये भलेप्रकार
करिके इमां माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्ना-
सखिले सशुक्रिय ऋषिदैवत छन्दांस्यनुक्रमिष्या-
इस यजुर्वेद की आम्नाय में ऋषि छन्द देवता कहता
ा यजुर्वेद के छ्यासी भेद होंने से नहीं समझपड़ता कि कोन
यजुर्वेद की आम्नाय इसलिये कहता है कि वाजसनेय के और वा-
जसनेयक यजुर्वेद के भी पञ्चदश भेद होने से नहीं जानि पड़-
ता इस हेतु फिरभी कहता है कि माध्यन्दिनीय इति तहां यजु-
ओं का वेद यजुर्वेद है इसकारण ऋचाएँ पढकर न भूले सर्कय-
ह युक्त है पुनः कैसा कि सखिले खिल शब्द करि अनारभ्या-
धीताः क्वचित्कर्मण्यविनियुक्ता मन्त्रगणा कहिये हैं प्रवायुम-
च्छा संहिता अध्या०३३ काण्डी ५५ मुञ्चन्तु मा अध्या०१२ काण्डी
६० अग्निश्च अध्या०२६ काण्डी १ इत्यादि मन्त्र हैं तिन्हों सहि-
त ननु खिलों का यजुर्वेद के मध्य होंने से किस लिये न्यारा उप-
देश किया यों कि इन्हों के क्वचित्कर्म में अविनियुक्त होने से ऋ-
ष्यादिज्ञान निष्प्रयोजन होगा इस शङ्का के निरास करने को
कहा कि इन्हों का भी ब्रह्मयज्ञ पारायण वाचस्तोमादि में विनि-
योग होंने से ऋष्यादिज्ञान आवश्यक है पुनः सशुक्रिय इति
शुक्र (आदित्य घर्म) सम्बन्धि जो मन्त्र विभाग ऋचं वाचमि-
त्यादि अध्या०३६ काण्डी १ तिस सहित और इस के भी पृथक्

कहिने का यह कारण है कि यह शुक्रिय दिवस में तथा अरण्य में पढा जाता है और इस से अन्य वेद का भाग विनानियम के रात्रि दिन अरण्य ग्रामादिक में पढा जाता है

यजुषामनियताक्षरत्वा देकेषां छन्दो नविद्यत इति यजुओं के अनियताक्षर होने से किसी-किसी का छन्द नहीं है अयमर्थः जे यजुः अनियताक्षर हैं अर्थात् जिन्हों के १७॰ १९॰ २१॰ २३॰ २५॰ ३१॰ ३४॰ ३५॰ ३७॰ ३८॰ ३९॰ ४१॰ इत्यादिक अक्षर हैं तिन्हों का छन्द नहीं है और जो इषे त्वादिक नियताक्षर हैं तिन्हों का छन्द है क्यों कि दूसरे खण्ड में उक्त कात्यायनाचार्य कहैगा यथा इषे त्वा शाखानुष्टुबिति इषे त्वा इस मन्त्र का शाखा देवता अनुष्टुप्छन्द नहां अनुष्टुपछन्द तो बत्तीस अक्षर का और यहां पर तीनि अक्षर हैं तो यह कौंनसा अनुष्टुप् है तहां पिङ्गल सूत्र से इस का निर्णय करना यदुक्तम्। छन्दः। गायत्री। दैव्येकम्। आसुरी पञ्चदश। प्राजापत्याष्टौ। यजुषां षट्। साम्नां द्विः। ऋचां त्रिः। द्वौ द्वौ साम्नां वर्धेत। त्रींस्त्रीनृचाम्। चतुरश्चतुरः प्राजापत्यायाः। एकैकं शेषे। जह्यादासुरी। तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यः। तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य एकैका ब्राह्म्यः प्राग्यजुषामार्ष्यै इति। पिङ्गलछन्दः सूत्र खण्ड ३ अस्यार्थः संक्षेपतः। दैवी गायत्री छन्द एक अक्षर का आसुरी गा॰ छ॰ पञ्चदश अ॰ प्राजापत्या गा॰ अष्ट अ॰ याजुषी गा॰ षट्॰ साम्नी॰ द्वादश॰ आर्ची॰ अष्टादश॰ ब्राह्मी॰ षट्त्रिंशत्॰ आर्षी॰ चतुर्विंश

तहां दैवी उष्णिगादि छन्दों पर एक-एक अक्षर बढ़ावे आ-
एक-एक घटावे प्राजापत्या पर चारि-चारि बढ़ावे याजुषी
क साम्नी पर दो-दो आर्ची पर तीनि-तीनि ब्राह्मी पर छे-
पर चारि-चारि जैसे इस द्व्यसप्तति ७२ कोष्ठ के यन्त्र में

	गा०	उ०	अ०	बृ०	पं०	त्रि०	ज०
	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
	१	२	३	४	५	६	७
...सुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

और जहां एक छन्द की संख्या दूसरे के समान हो जैसे दैवी त्रिष्टु-
प् याजुषी गायत्री तथा साम्नी गायत्री याजुषी जगती आसुरी बृ-
हती इत्यादि और यह सन्देह होवे कि यहां कौनसा छन्द है तहां
गायत्र्यादि छन्दों के देवताओं से कि जो चतुर्थाध्याय के खण्ड
१०। ११। १२। में हैं निर्णय करो और उन देवताओं से व्यतिरिक्त
अन्य देवता हो तो जो छन्द होसकें तिन्हों में से चाहे जौनसा छ-
न्द समझे अन्यच्च आर्षी गायत्री से आदि ले सातों छन्द और

१ दैवमादितश्च पिङ्ग० ७।१।

पञ्चमाध्यायोक्त गायत्र्यादि सप्तछन्दों की अक्षर संख्या तो समान है परन्तु वोहाँ पाद नियम है और यहां पाद नियम नहीं और यह सन्देह हो कि उन गायत्र्यादि छन्दों में भी तो कोई-कोई अनवसाना अनियताक्षरा हैं तहां यह समाधान है कि उन गायत्र्यादि छन्दों की ऋचाओं पर आचार्य ने छन्द दिया है और इन्हीं पर नहीं इति

ऋषि दैवतछन्दाᳬस्यनुक्रमिष्याम यह पहिले कहा गया अब ऋषि का स्वरूप कहिता है द्रष्टार ऋषयः स्मतारः परमेष्ठ्यादय इति

परमेष्ठी से आदिले ऋषि हैं यह युक्त है क्योंकि संहिता की आदि में दर्शपौर्णमास के मन्त्र हैं तिन्हों का परमेष्ठीप्राजापत्य ऋषि है। तहां परमेष्ठी से आदिले जिन्होंनें जिस मंत्र को देखा ते उसके ऋषि हुए। अतएव यास्कः ऋषिर्दर्शनादिति। और देखे हुए के आख्यान को स्मर्ण किया ते ही स्मर्ता हुए। तिन वेद की प्राप्ति के अर्थ तप करते हुओं पुरुषों को स्वयंभू वेद पुरुष प्राप्त हुआ। तथाच श्रूयते। अजान्ह वै पृश्नींस्तपमानान्ब्रह्मस्वयंभ्वभ्यानर्षतदृषयोऽभवन्निति। तथा अतीन्द्रिय वेद के परमेश्वरानुग्रह करि दर्शन से ऋषित्व है इत्यभिप्रेत्य स्मर्यते। युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवेति। यहां दर्शन मानस है क्योंकि मन्त्रों के वर्णात्मक होने से नेत्रों करि दर्शन असम्भव है

अथ देवता स्वरूपमाह। देवता मन्त्रान्त भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स्तुतिभाजो वा। अयमर्थः। जे मन्त्र के मध्य पठे गये अग्निसोमेन्द्रविष्णवादयः देवता तिन्हो में कोई हविभोक्ता कोई सूक्तभोक्ता हैं। तथा च यास्कः। इतीमा देवता अनुक्रान्ताः। सूक्तभाजो हविर्भाज इति निरु॰ ७॰ १३॰। अपि च। यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवतीति निरु॰ ७॰ १॰। अयमर्थः। जिस कामना को ऋषि जिस देवता में अर्थपत्य को इच्छा करि स्तुति करते हैं तिस मन्त्र का सो देवता है।

भला अग्न्यादिक तो देवता हैं परन्तु अनः शाखा शम्या उपवेशादिक कैसे देवता हो सकते हैं क्यों कि वे न तो हवि ग्रहण समर्थ और न करी हुई स्तुति को जान सकते हैं। तत्राह। अनः शाखा शम्योपवेषकपालेध्मोलूखलादयश्च प्रतिमाभूता इति यद्यपि अनः शाखादिक अचेतन हैं तथापि तिन्हों के अभिमानी देवताओं के होने से देवतात्व है। अभिमानीव्यपदेशस्त्वेति व्याससूत्रोक्तेः अ॰ २॰ पा॰ १॰ सू॰ ५॰। मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्निति श्रुतेश्च। अथ वा अग्न्यादिकों से उत्पन्न होने के कारण तिन्हों के प्रतिनिधि हैं। तथाच श्रुतिः। उतत्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः॥ ऋक्सं॰ अष्ट॰ १॰ अध्या॰ २॰ वर्ग २॰ ऋचा ६॰ अस्यार्थः॥ और त्वष्टा देवता के बनाये हुए तिस चमस (सोमधारणक्षम काष्ठपात्रविशेष) को उसके शिष्य ऋभ्वादिकों ने चारि प्रका-

र का किया॥ यद्वा यज्ञ के साधक होंने से देवत्व है। जो अनः प्रग्रावादिकों की स्तुति वोह अग्न्यादिकों की वा यज्ञ की ही है। अपि ह्यदेवता देवतावत्स्तूयन्ते यथाश्वप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानिति यास्कः निरु॰७॰४॰॥

छन्दांसि गायत्र्यादीनि इति अथ छन्दांसि गायत्र्युष्णिगनुष्टुबिति पञ्चमाध्यायोक्त गायत्री आदि छन्द जानने चाहियें। छन्दशब्दस्यायमर्थः। पुरुष के पापसम्बन्ध वारण करने के लिये आच्छादक होंने से छन्द यह कहलाया। तथा च ऐतरेयारण्यकाण्डे समाम्नायते। छादन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात्कर्मण इति। अथ वा चीयमान अग्निसन्ताप के आच्छादक होने से छन्दः। तच्च तैत्तिरीया आमनन्ति। प्रजापतिरग्निमचिनुत। स क्षुरपविर्भूत्वातिष्ठत्। तं देवा बिभ्यतो नोपायन्। ते छन्दोभिरात्मानं छादयित्वोपायन्। तच्छन्दसां छन्दस्त्वमिति। यद्वा अप मृत्यु वारण करने के लिये आच्छादन करता है इति छन्दः। तदपि छन्दोग्योपनिषद्याम्नातं। देवा वै मृत्योर्बिभ्युः। त्रयीं विद्यां प्राविशन्। तं छन्दोभिरात्मानमाच्छादयन्। यदेभिराच्छादयंस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वमिति॥

ऋषिदेवतछन्दों के ज्ञान विना ही अध्ययनादि की सिद्धि है और किस लिये ते कहे गये यह शङ्का हो तहां अनजाननें में अनिष्ट कहिता है। एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयाम भवतीति।

ऋषिदैवतछन्दों के विन जाने जो वेद पढता और दूसरे पढाता गायत्र्यादि जपता व्याहृत्यादि होमता अपने अ-याग करता दूसरे को ऋत्विज हो याग कराता तिस पुरुष का (वेद) निर्वीर्य (स्वकार्यसाधन में शक्तिहीन) यातयाम (अकर-निःफल) होता है॥

अनिष्टान्तरमाह। अथान्तरास्वगर्तं वापद्यते स्थाणुं वा प्रमीयते वा पापीयान्भवति। अथानन्तरं (ऋष्यादि वि-ना अध्ययन करने के अनन्तर) स्वगर्त (सूओं का गर्त-अ-धोस्थान-नरक) में पडता है। तथा अर्छेति (अतीन्द्रिय प्रल-र्मी करि) स्थाणु (वातादि करि भग्नशाख हुए शुष्कवृक्षयोनि) को प्राप्त होता है। तथा प्रमीयते (इस पाप से अचिर मृत्यु को पा-ता है) अथ वा विप्रमीयते (अन्ध वा वधिर होता है) एष ह वै प्र-मायुषान्धो वा वधिरो वेति। तथा पापीयान्भवति (अतिशये-न पापाचारी होता है (पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति श्रुतेः। अतिशय पाप करि चाण्डालम्लेच्छादिजाति में उत्पन्न होता है इत्यर्थः। तथा च स्मर्यते। अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च। योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जाय-ते तु सः॥ ऋषिच्छन्दोदेवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि। अवि-दित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यत इति॥

एवं ऋष्यादि के अज्ञान में अनिष्टप्राप्ति कहि कर ज्ञान से इष्ट प्राप्ति कहता है। अथ विज्ञायैतानि योऽधीते त-

स्य वीर्यवदिति। ऋष्यादिकों को विशेषेण जानिकर जो वेद पढ़ता है तिस का वेद वीर्यवान् (बलशक्तियुक्त) होता है॥

अर्थज्ञाने फलविशेषमाह। अथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवतीति। जो द्विज मन्त्रों का ऋष्यादिज्ञानवान् और अर्थ जानने हारा तिस का वेद अतिशयेन वीर्यवत् वेद में अर्थज्ञानशून्य की निन्दा और अर्थज्ञ की प्रशंसा सुनियें है तहां ऋग्वान्तर्गत दो वचन यास्क ने उदाहरण किये हैं निरु॰ अ॰१ खं॰१८ स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थं। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥ यद्गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्॥

जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते॥१॥ ऋषि देवत छन्द विनियोग अर्थ के ज्ञानपूर्वक पुरुषों को किये हुए जप होम इष्ट अवश्य फलदायक होते हैं। यतः वेदनविधिश्च स्मर्यते। स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च। मन्त्र जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पद इति॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये
गिरिप्रसादरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे प्रथमो खण्डः १

अथ संहितापठितसर्वमन्त्रसाधारणऋषिमाह। इषे त्वादि खं ब्रह्मान्तं विवस्वानपश्यदिति। इषे त्वा इस से आरम्भ करि खं ब्रह्मपर्यन्त (समस्त संहिता) को विवस्वान् ने देखा है

र स्मरण किया। आदित्यानीमानि यजूंषीति वा आहुरिति श्रुतेः॥ ततः प्रतिकर्मविभागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋषयोवेदितव्या इति। फिरि सर्वो का साधारण ऋषि जानिकर सब कर्मों के विभाग करके (इसकर्मकायह- इस कर्मकायह) शतपथादिब्राह्मणानुसार ऋषि जानना। तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपश्यद्यद्दर्शपूर्णमासाविति श्रुतेः॥ अथ सर्वेषां दर्शपूर्णमासमन्त्राणां साधारमृषिमाह। परमेष्ठी प्राजापत्यो दर्शपूर्णमासमन्त्राणामृषि इति। पहिले अध्याय से आरम्भकरि दूसरे अध्याय की अष्टाविंशति २८ कण्डिका पर्यन्त दर्शपूर्णमास के मन्त्र हैं तिन्हों का परमेष्ठी प्राजापत्य (प्रजापति से उत्पन्न परमेष्ठी संज्ञक) ऋषि है। और जहां ऋषिविशेष है जैसे पुराघ्रशंसो पप्रयत् वीतिहोत्रं त्वा विश्वावसुरित्यादिकाः (पुरा क्रूरस्येति अघशंसदृष्टा १।२८। वीति होत्रमिति विश्वावसुदृष्टा २।४।) तहां दोनों ऋषि हैं॥ दर्शपूर्णमासमन्त्राणामेव पुनरपि वैकल्पिकानृषीनाह। देवा वा प्राजापत्या इति। अथवा प्रजापति के पुत्र देवता दर्शपूर्णमास मन्त्रों के ऋषि हैं। ते देवा अकामयन्तेत्युपक्रम्य त एतं हविर्यज्ञदृदृशुर्यद्दर्शपूर्णमासाविति श्रुतेः॥ तत्र प्रकृतित्वादादौ दर्शपूर्णमासमन्त्राः। जहां कृत्स्नाङ्गों का उपदेश करिये है वोह प्रकृति। जहां विशेषाङ्गमात्र का उपदेश है और अङ्गान्तर प्रकृति में बताए गये वोह विकृति है॥ तहां प्रकृति तीनि प्रकार की है। अग्निहोत्र १ इष्टि २ और

सोम ३ इति। तहां यद्यपि कृताधान के ही दर्शपूर्णमास में अधिकार से आदि में अग्न्याधान के मन्त्र कहिने उचित थे तथापि आधान में पवमान इष्टियें करनी तिन्हों के अनन्तर आधान की असिद्धि से। और पवमान इष्टियों की दर्शपूर्णमास के विकृतत्व से सोम में भी दीक्षणीयाप्रायणीयादि में दर्शपूर्णमास के सापेक्षत्व से आदि में दर्शपूर्णमास के मन्त्र पढने के लिये युक्त हैं। ते च इषे त्वादयः भगवान्वेदपुरुष आह। तत्राद्यायां कण्डिकायां पञ्चमन्त्राः॥ द्वौ त्र्यक्षरौ। तृतीयश्चतुरक्षरः॥ चतुर्थो द्विषष्ट्यक्षरः। पञ्चमो नवाक्षर इति॥ इषे त्वा शाखानुष्टुविति। इषे त्वेत्यस्य यजुषः शाखादेवता दैव्यनुष्टुप्छन्दः॥ विनियोगः कल्पकारोक्त इति। विनियोगः कल्पकारोक्तो वेदितव्य इति शेषः। इस मन्त्र का किस कर्म में विनियोग है इस से क्या करते हैं यह कल्पकार का कहा जानना चाहिये इति शेषः कर्मानुष्ठान के समय विनियोग का जानना अत्यावश्यक है क्योंकि तिस के न जानने में दोष है। और जो कि कल्पकार महर्षि कात्यायनाचार्य ने नाना शाखागत विधिवाक्यों का संग्रह करि श्रौतसूत्र निर्माण किया। तहां। पर्णशाखां छिनत्ति शमीलीं वेषे त्वेत्यूर्जे त्वेति वा। छिनग्नीति वोभयोः साकांक्षत्वात्। संनमयामिति वोत्तरेण इत्यादि विनियोग सूत्रों करि कहा है इस हेतु से यहां नहीं कहा। ततः इषे त्वेत्यस्य शाखा छेदने विनियोगः॥ एवमूर्जे त्वेति। ऐसे ही। ऊर्जे त्वेत्यस्य शाखा देवता दैव्यनुष्टुप्छन्दः शाखाया अनुमार्जने विनियोगः॥ *

श्री० ४। २। १-३

* यहां से आरिले चतुर्थाध्याय के नवमे खण्ड पर्यन्त का अर्थ मन्त्र-मन्त्र की आदि में कहि कर शेष पीछे कहा जायगा

हरिः ओम्

ॐ३ नमो यज्ञपुरुषाय

श्री शुक्लयजुःसंहिता विवस्वद्दृष्टा

ॐ३ पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १

तत्रादौ

दर्शपूर्णमासमन्त्राः परमेष्ठी प्राजापत्यदृष्टा देवदृष्टा वा

प्रथमोऽध्यायः १

प्रथमोऽनुवाकः १

इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥

इति संहितायां प्रथमोऽनुवाकः १

इषे त्वा ॥१॥ ऊर्जे त्वा ॥२॥ वायव स्थ ॥३॥ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीः ॥४॥ यजमानस्य पशून्पाहि ॥५॥ १॥

इति मन्त्रपाठः

हरिः ओम्

ओं३ नमो भगवते याज्ञवल्क्याय

राज्ञा गिरिप्रसादेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

शाखाद्याज्यगृहान्तोऽयं वर्ण्यतेऽध्याय आदिमः॥१॥

प्रतिपदा में दर्शयाग करने को इच्छा रखता यजमान अमावास्या में प्रातःसमय का अग्निहोत्र होमिके दर्शयाग के अर्थ कात्यायनमुनिप्रणीत श्रौतसूत्र अध्याय २॰काण्डी१॰सूत्र ३॰ में कहे हुए ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेधानास्तन्वं पुषेम मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम इति मन्त्र से अग्निओं में समिदाधानरूप अन्वाधान करिके वत्सापाकरण करे॥ दर्शयाग में तीनि हविर्ये हैं। अष्ट कपालों में पाक किया हुआ अग्निदेवताकओदन॰ इन्द्रदेवताक दधि॰ इन्द्रदेवताक पय इति तहां प्रतिपदा में दधि होमने के लिये तिस की निष्पत्ति के अर्थ अमावास्या की रात्रि में गौएँ दोहनी चाहियें। तिन्हों के दोहने के अर्थ प्रातः लौकिकदोहन के ऊपर अपनी माताओं के साथ चरते वत्साओं को तिन माताओं से पलाशशाखा करि पृथक् करना है। तिस के अर्थ पलाशशाखाछेदन है। गायत्री नें पक्षिरूप धारण करिके जब कि सोमवल्लि का आहरण किया तब सोमवल्लि का पत्र (पत्ता) वा गायत्री का पर्ण (पक्ष) भूमि में गिरा तिस से पलाश हुआ यह श्रुति शतपथब्राह्मण काण्ड १॰अध्याय७॰ ब्राह्मण १॰काण्डी१॰ तथा अध्या॰८॰ब्रा॰२॰का॰१०॰ में

का प्राशस्त्य और ब्रह्मत्व कहा है तिस हेतु पलाश- छेदन है॥

अथ मन्त्रः॥ इषे त्वा। इषे त्वेति दैव्युनुष्टुप्छन्दः प्राजापत्य ऋषिर्देवा वा प्राजापत्याः शाखा देवता प- शाखाछेदने विनियोगः। तदुक्तं कात्या॰ ४·२·१· चतुर्द- कि जिस में चन्द्रमा उदय न हो वा अमावास्या में पलाश- वा शमीवृक्ष से इषे त्वेति मन्त्र वा ऊर्जे त्वेति मन्त्र से शा- छेदन करे॥ इति सूत्रार्थः॥ ॥अथ मन्त्रार्थः॥ क्रियाप- अध्याहारेण। हे शाखे वृष्टि के अर्थ तुझे छेदन करता हूं (वा- की जाती है सर्वो से धान्यनिष्पत्ति के अर्थ वोह इट्। श्रुति करि दृष्टि कही गई-वृष्ट्यै तदाह यदाहेषे त्वेति श्रुतेः शत॰१· ७·१·२·।का॰ ४·२·२·३· पलाशशाखा वा शमीशाखा की यहां विकल्पिता। तिस के छेदन में इषे त्वोर्जे त्वेति दोनों मन्त्रों का विकल्प है। तिन्हों में क्रियापद के आकांक्षत्व से अर्थावबोध के लिये छिनद्मीतिपद अध्याहर्तव्य है इत्येकः पक्षः। इषे त्वेति छेदनार्थो मन्त्रः। ऊर्जे त्वेति संनमनार्थः। संनमन (ऋजूकरण· शाखामलधूल्यादि का दूर करना यह पक्षान्तर है अर्थात् यह कर्म काण्वशाखापाठाश्रयों का है परन्तु माध्यन्दिनीय पाठाश्रय लोग दोनों मन्त्रों से विकल्पेन शाखाछेदन करते हैं। इति मन्त्रार्थः॥ ऊर्जे त्वा। ऋषिछन्द देवताविनियोगश्च पूर्ववत्॥ मन्त्रार्थस्तु। हे शाखे ऊर्जे (बल पुष्टि प्राणन) के अर्थ तुझे छेदन क-

रता हूं वा संनमन करता हूं। ऊर्जेति (सब मनुष्य पश्वादिकों को बलयति) पानादि करि दृढशरीर करती। यद्वा प्राणयति (प्रकर्षेण चेष्टा कराती। इन दोनो व्युत्पत्तिओं से वृष्टिगत जलात्मक रस ऊर्ज्शब्द करि कहा। तिस रस के अर्थ तुझे छेदन करता हूं। यो वृष्ट्यादूर्ग्रसो जायते तस्मै तदाहेति श्रुतेः १॰ ७॰ १॰ २॰। इन दोनों मन्त्रों के पाठसे अध्वर्यु इष्यमाण अन्न और बलकर आज्यक्षीरादि रस को यजमान में संपादन करता है। इषे त्वोर्जे त्वेत्याहेषमेवोर्जं यजमाने दधातीति श्रुतेः तैत्तिरीय ब्राह्मण काण्ड ३॰ प्रपाठ २॰ अनुवाक १॰॥ का॰ ४॰ २॰ ७॰ छै ६ गौओं के साथ से छैओ ६ वत्साओं को पृथक् करि प्रतिवत्स को वायव स्थेति मन्त्र से शाखा करि उपस्पर्श करै। इति सूत्रार्थः॥ दैवी बृहती छन्दो वायुर्देवता। मन्त्रार्थस्तु। हे वत्साओ तुम माताओं के सकाश से अन्यत्र चलनहारे होओ। माताओं के साथ चलने से सायं समय दोह न मिलेगा यह अभिप्राय है। यद्वा वायुसदृश से वत्सों का वायुत्व है। जैसे पादप्रक्षालन मलमूत्रादि से अशुद्ध हुई भूमि को शोषन करि वायु पवित्र करता है ऐसे वत्सा भी अनुलेपनभूतगोमयादिदान से भूमि को पवित्र करते हैं। अथवा मनुष्यों की जैसे अपने निवास के लिये गृह निर्माणसामर्थ्य है ऐसे पशुओं की तिस के न होने निरावरण अन्तरिक्ष में चरने से अन्तरिक्ष ही पशुओं का देवता तिस अन्तरिक्ष का वायु अधिपति। और सो वायु अपने अवयव ऐसे

ों को पालन करता है यह पशूओं का वायुरूपत्व है। जैसे के अर्थ पशूओं को वायु के अर्थ समर्पण करने के लिये वायुरूपत्व को संपादन करि वायवस्थेति मन्त्र प्रवर्त हुक तित्तिरिणा। वायव स्थेत्याह वायुर्वा अन्तरिक्षस्यान्तरिक्षदेवत्याः खलु पशवो वायव एवैतान्परिददातीति ब्रा॰३॰का॰२॰अ॰१॰अ॰। यद्वा तृणभक्षण के अर्थ दिवस तिस-तिस आरण्य में चरि करि सायंकाल में वायुवेग करि न के घर में समागमन के अर्थ पशूओं को प्रवर्त करने वायुरूपत्व कहा गया॥ का॰४॰ ५॰ ६॰ १०॰ वत्साओं की जे ६ गौएँ हैं तिन्हों में से एक गौ को पृथक् करिके देवो ति मन्त्रेण शाखा करि उपस्पर्श करै। तैसा करते गोसबन्धि स्स हवि इन्द्र वा महेन्द्र का होता है॥ इति सू॰॥ देवो व इ- इन्द्रदेवत्यं यजुः। हे गौओ सविता (स्वस्वव्यापार में प्रेरणोहारा) देवः (द्योतमानः परमेश्वरः) तुम्हें प्रभूत तृणोपेत वन को प्रा- करै। किमर्थं कि श्रेष्ठतम कर्म के अर्थ (लोक में चारि ४ प्रर का कर्म है अप्रशस्त प्रशस्त श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम। लोक- बधबन्धचौर्यादिक अप्रशस्त॥१॥ लोक करि श्लाघनीय बवर्गपोषणादिक प्रशस्त॥२॥ स्मृत्युक्त वापीकूपतडागादिक श्रे-॥३॥ वेदोक्त यज्ञरूप श्रेष्ठतम है तल्लक्षणं॥४॥ यज्ञो वै श्रेष्ठमं कर्मेति श्रुतेः १॰७॰१॰५॰। हे अघ्न्याः (गावः गोवध के उपपाकरूप होंने से अनमारने योग्याः) तुम इन्द्र के अर्थ भाग (इ-

न्द्र की उद्देश करि संपादयिष्यमाण हवि के हेतुरूपक्षीर) को आप्यायध्वम् (समन्तात् बढाओ॰ सब गौओं में क्षीर करो। तुम्हें अपहरण के लियें स्तेन (चोर) समर्थ मत हूजियें। अघशंस (भक्षणादि तीव्रपाप करि घातक व्याघ्रादि) भी तुम्हारे को हिंसक मत हूजियें। कैसी हो तुम कि प्रजावतीः (बहुपत्याः। अनमीवाः (अमीवाः॰ व्याधि सो नही है जिन्हों के ताः कृमिदुष्टत्वादिस्वल्परोगरहिताः) अयक्ष्माः (यक्ष्मा॰ रोगराजः॰ प्रबल रोगरहिताः। किं च तुम अपने स्वामी यजमान के यहां बहुविधा होओ॥ का॰ ४॰ २॰ ११॰ अग्न्यागार (आहवनीयागार वा गार्हपत्यागार) के पूर्वभाग में यजमानस्य पशून्पाहि तिस शाखा को खुरसे॥ याजुषी बृहती शाखा देवत्या। हे पलाशशाखे तू उन्नत प्रदेश में स्थित हो प्रतीक्षा करती हुई यजमान के पशुओं को अरण्य में चरते हुए चोर व्याघ्रादिभय से रक्षा करि। आशय यह है कि शाखा करि रक्षा की हुई गौएँ निरुपद्रव पूर्वक सायं समय भले प्रकार घर को लौटेंगी॥१॥ प्रथमा कण्डिका के मन्त्र पूर्ण लिखे गये आगे की कण्डिकाओं के आवेल पर आद्यन्त के अक्षरों की समस्या से लिखे जावेंगे॥यथा॥ इषे त्वा॰ इ–त्वा। ऊर्जे त्वा॰ ऊ–त्वा। वायव स्थ॰ वा–स्थ। दे–ह्वीः॥ य–हि॥ और तहां मन्त्रों के पृथक् करने के लिये अकारादि अक्षर दिये जावेंगे। यथा। इ–त्वा। अ॰। ऊ–त्वा। इ॰। वा–स्थ। उ॰। दे–ह्वीः। ऋ॰। य–हि। लृ॰॥१॥ ॥इतिश्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये प्रथमोऽनुवाकः॥१

अ॰ २॰ वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना दृंहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्॥ २॥ +

का॰ ४॰ २॰ १५॰ १६॰ वसोः पवित्रमिति हस्तप्रादेशमात्रा पलाशशा[illegible] वा तीनि कुशा की पवित्री करिके बाँधे॥ यजुरुष्णिक् वा[illegible]। हे दर्भमयपवित्र वसोः + इन्द्रदेवता के निवास हेतु [illegible]पका शोधक (पवित्र) तू है॥ का॰ ४॰ २॰ १९॰ द्यौरसीति दुग्धधा[illegible] करने की स्थाली (हाँडी) को हाथों से ग्रहण करै॥ दैवी [illegible] उखादेवत्या। हे स्थालि मृदा और जल से निष्पन्ना तू द्यौः (ज[illegible]वृष्टिप्रदद्युलोकरूपा) है। द्युसम्बन्धात्तद्रूपत्वमुपचर्यते। त[illegible] पृथिवीरूपा है। पृथिवी के सकाश से उठी हुई मृदा करि निष्प[illegible] से पृथिवीरूपत्व है॥ का॰ ४॰ २॰ २०॰ मातरिश्वन इति गा[illegible] से उत्तर में अङ्गारों को निकालि तिन्हों पर उखा (हाँडी) [illegible] धरै॥ प्राजापत्या जगती उखादेवत्या। हे उखे तू मातरिश्वा (मातः अन्तरिक्ष में निश्वासवच्चेष्टा करने हारे वायु) का घर्म [illegible]संचारस्थान प्रदान करि दीपक। अभिव्यञ्जक। अन्तरिक्षलोक[illegible] है। हे स्थालि तेरे उदर में अन्तरिक्षरूप अवकाश (वायुसंचा[illegible]) के सद्भाव से तूही वायु की घर्मरूपा है। द्यौरसि। पृथिव्यसि यह पू[illegible] में लोकद्वयरूपत्व उखा का कहा और यहां मातरिश्वनो [illegible]सीति अन्तरिक्षलोकरूपत्व कहिये है। तिस हेतु इन तीनों [illegible]कों के धारण से विश्वधा (विश्वधारणसमर्था) है। किं च परम

+ यजुर्वसुदेवत्यम् पवित्रम सौति। ऋषि: याज्ञ॰ ४.१.८.३ [illegible]

+ व-सि। अ॰। द्यौ-सि। इ॰। मा-तृ। उ॰॥ २॥

धाव(उत्तम वहुक्षीरधारणसामर्थ्यरूपतेज)से हे उखे तू दृढा हो तेरे दृढ होने से क्षीर न गिरेगा नहो कि तेरे भग्न होने से छिद्र कारि दुग्ध गिरै। किं च हे उखे कुटिला (टेढी) मत हो (जो उखा कुटिला होवै तो टेढे मुख होने से तत्स्थ क्षीर गिरै) इस कारण क्षीरधारणके लिये दार्ढ्य और अकौटिल्य प्रार्थना किया। किं च तेरा यज्ञपति (सम्बन्धी यजमान) कुटिल नहो क्यों कि त्वन्निष्ठक्षीरस्कन्दन करि अनुष्ठानविघ्न में ही यजमान का कौटिल्य है और सो तेरे दार्ढ्य और अकौटिल्य से न होगा यह प्रार्थना है॥ २॥

वसोः॑ प॒वित्र॑मसि श॒तधा॑रं॒ वसोः॑ प॒वित्र॑मसि स॒हस्र॑धारम्। दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता पु॑नातु॒ वसोः॑ प॒वित्रे॑ण श॒तधा॑रेण सु॒प्वा॑ काम॑धुक्षः॥ ३॥+

का॰ ४॰ २॰ २१॰ वसोः पवित्रमिति हाँडी के मुख पर प्रागग्र वा उत्तराग्र कुशाओं का पवित्रा शाखा से खोलि वा शाखा बद्ध ही स्थापन करे॥ वायुदेवत्यं यजुः। हे शाखापवित्र वसु (इन्द्र देवता के निवास हेतु पय) का शोधक (पवित्र) तू है। पवित्रा करि ढकने से दुग्ध सहित स्थाली में गिरते तृणपर्णादिकों के बध्यमानत्व से पवित्रा का क्षीरशोधकत्व है। कैसा पवित्रा कि शत संख्या धाराएँ जिसमें। तथा सहस्र धाराएँ। सूक्ष्मों पवित्र छिद्रों से स्थाली में गिरती क्षीरधाराओं के शतसहस्रसंख्याक होने से शोधकत्व है वसोः पवित्रमिति द्विरुक्तिः+॥ का॰ ४॰ २॰ २३॰ देवस्त्वेति स्थाली में आसिच्यमान पय विषै अध्वर्यु जपै॥ साम्नी त्रिष्टुप्

+ ब॰ मू॰ म॰ दे॰ चा॰ इ॰ का॰ क्षेः उ॰॥ ३॥
+ अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते निरु॰ १०॰ ४२॰

[illegible]त्या। दोहन से ऊर्ध्व स्थाली में सिच्यमान हे दुग्ध सविता [illegible] देव पूर्वोक्त रीति से वसु के शतधार पवित्रा करि तुमे शोधे। [illegible] पविता कि भले प्रकार पवित्र करता॥ का॰ ४· २· २४· एक [illegible] दुहते में दोग्धा की अध्वर्यु पूछे कामधुक्ष इति॥ दैवी बृ[illegible] प्रश्नदेवत्या। हे दोग्धः विद्यमान गोओं के मध्य कौनसी [illegible]॥३॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः। इ
न्द्रस्यत्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ
रक्ष॥४॥ +

का॰ ४· २· २५· पूर्वोक्त प्रश्न के उत्तर में अमुकी गो यह दोग्धा करि कहते सा विश्वायुरिति मन्त्र करि दोग्धा प्रति अध्वर्यु बोले॥ त्रीणि गोदेवत्यानि १· दैवी बृहती २· ३· दैवी पङ्क्त्यौ। जो गो तू ने दुही और मैं ने पूछी वोह विश्वायु शब्द करि जानना। विश्वायु (यजमान की सम्पूर्ण आयु की देने हारी है॥ का॰ ४· २· २६· जैसे पहिली गो पूछी ऐसे ही दूसरी तीसरी गोओं को दोहने से ऊपर में कामधुक्ष इति मन्त्र करि पूछे। और दोग्धा करि अमुकी यह उत्तर देते सा विश्वकर्मा सा विश्वधाया इन मन्त्रों से क्रम करि आशिष कहे॥ जो दूसरी गो तुम से पूछी वोह विश्वकर्मा (यजमान को समस्त कर्मफल की देने हारी है॥ जो तीसरी तुम से पूछी वोह विश्वधायाः (सब देवताओं को क्षीरदध्यादि हवि के दान करि पुष्ट करने हारी वा समस्त इन्द्रादि देवता-

+ सा-युः। ऋ॰। सा-र्मा। इ॰। सा-याः। उ॰। इ-च्मि। ऋ॰। वि-क्ष। ल॰॥४॥

ओं को क्षीरादि हव्य पिलाने हारी है॥का॰ ४॰२॰२३॰ औटे दूध को अग्नि से उतारि मन्दोष्ण (सुहाते) में दधि जमाने के लिये प्रातः काल के होमावसिष्ठ दधि करि आतञ्चन करै (जामन-सहेजा॰दे॥ यजुर्जगती इन्द्रदेवत्या। हे दुग्ध इन्द्र के भाग को तुझै सोमवल्लीरस करि दधि के लिये आतञ्चन (कठिन) करता हूं। यद्यपि यहां आतञ्चनहेतु दधिशेष है तथापि भावना करि तिस का सोमत्व सम्पादन करिये है। जैसे कोई पुरुष बन्धुत्व करि चाहा बन्धु होता है॰ और प्रातिकूल्य करि चाहा शत्रु होता है। तदुक्तं वशिष्ठेन। बन्धुत्वे भावितो बन्धुः परत्वे भावितः परः। विषामृतदशेवेह स्थितिर्भावनिबन्धिनीति। अथवा भोज्य पदार्थ विषत्व करि भावना किया वान्ति को करता है॰ अमृतत्व करि भावित जीर्ण हो बलहेतु होता है। तैसे यहां दधिशेष का भावना करिके सोमत्व है॥का॰ ४॰२॰३४॰ विष्णो हव्यमिति दोहस्थाली को जलसहिति अमृन्मयपात्र करि ढके॥ यजुर्गायत्री पयदेवत्या। हे विष्णो इस हवि (क्षीर) की रक्षा करि। सर्वत्र सृजन पालन और संहार में ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः अभिमानिदेवता हैं इस हेतु विष्णु को सम्बोधन करि हवि की रक्षा प्रार्थना करिये है॥४॥

अ॰३॰ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥५॥+

का॰२॰१॰११॰ यजमान स्रुच ले गार्हपत्य दक्षिणाग्निओं के आ-

+ अ-मा॰श॰१॰१॰मि॰दू॰॥५॥

चलिकर आहवनीय के पश्चात् समीप में पूर्वाभिमु-
खडे हो आहवनीय को देखते जल को दक्षिण हस्त से स्पर्श
अग्ने व्रतपते इस मन्त्र अथवा इदमहम् इस मन्त्र से स-
दि नियमों को अङ्गी करै॥ अग्ने व्रतपते आर्ची उष्णि-
हम् सामगायत्री है अग्निदेवत्ये। हे व्रतपते (अनुष्ठेय-
पालक) हे अग्ने तेरी अनुज्ञा करि कर्म को करूंगा।
कर्म करने को समर्थ होउं। तेरे प्रसाद से। सो मेरा कर्म
होके फलपर्यन्त सिद्ध हो+॥ इदमहम्। मैं यजमान इ-
अनृत (मनुष्यजन्मात्मक) से निकलि कर सत्य (देवताश-
रीर) को प्राप्त होता हूं+॥ ॥शीघ्रविनाशित्व से मनुष्यजन्म
अनृत है जैसे स्वप्नगजादिक बोधमा से निवर्त हुए अनृत क-
हलाते हैं। बहुकालस्थायित्व से देवजन्म सत्य है जैसे जाग-
रण गजादयः५। यद्वा लोक प्रसिद्धे सत्यानृते ग्राह्ये। नानृतं व-
देदिति (नही झूठ बोले) कर्म में झूंठ बोलने के निषेध से। झूंठ
बोलनें से निकल करि सत्य बोलने को प्राप्त होता हूं। इस
हेतु यह सत्यवदन कर्माङ्ग होने से कर्म काल में पालनी
यहै॥ ५॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति
तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम्॥६॥+

एवं सत्यवदनादिव्रत को अङ्गीकरि ब्रह्मा को वरण करि केअ-
पां प्रणयन करै॥ का० २-३-२० ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि यह य-

+ अग्निर्वै देवानां व्रतपतिरिति श्रुत० १.१. १.२. श्रुतिः॥

+ का० श्रौ० सू० — मा० इं०॥

+ सत्यमनुष्ठीयमान कर्मरूपेण प्रत्यक्षमिति मन्वान इदमिति विशिनष्टि।
५ इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपावर्तत इति १.१.१.४. शत श्रुतेः।

जमान ब्रह्मा को पूछता है॥का॰ २ २ ८॰ प्रणय यज्ञं देवता वर्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानोऽस्तु सप्तऽऋषीणांᳬ सुकृतां यत्र लोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च धेहि॰ यह धीरे-धीरे ब्रह्मा पढ़िकर ओम् प्रणय यह ऊँचे स्वर से आज्ञा करे कि जैसे अध्वर्यु सुनें॥का २॰३॰३॰ फिरि अध्वर्यु चमस को लेकर आहवनीय से उत्तरदिशा में वेदि के बाहिर दर्भों पर प्रणीताचमस को कस्त्वा युनक्तीति मन्त्र करि सम्प्रति (सीधेसे) स्थापन करे॥साम्नी त्रिष्टुप् प्रजापतिदेवत्या। यहां मन्त्र को प्रयुक्त करता हुआ अध्वर्यु यज्ञारम्भकर्म में अपना कर्तृत्व त्यागि कर प्रजापति का यज्ञकर्तृत्व प्रश्नोत्तररूप मन्त्रवाक्यों से प्रतिपादन करता है। प्रणीता (जल) के धारक हे पात्र तुझे कौन पुरुष आहवनीय के उत्तर भाग में स्थापन करता है इति प्रश्नः। सब वेदों में जगन्निर्वाहकत्व से प्रसिद्ध जो प्रजापति है सोही परमेश्वर हे पात्र तुझे स्थापन करता है इति उत्तरम्। पुनरपि किस प्रयोजन के लिये तुझे स्था॰ इति प्रश्नः। तिस प्रजापति के प्रीत्यर्थ तुझे स्था॰ इत्युत्तरम् †॥ परिस्तरण करि दो-दो पात्रों को रखि शूर्प और अग्निहोत्रहवणी को लेवे। का॰ २॰३॰१०॰ कर्मणे वामिति शूर्पाग्निहोत्रहवणी का अध्वर्यु आदान करे॥ प्राजापत्या गायत्री स्रुक्शूर्पौ देवते। हे अग्निहोत्रहवणि हे शूर्प तुम दोनों को कर्म के अर्थ में ग्रहण करता हूं इति शेषः। और सूचित कर्म के अर्थ तुम दोनों को मैं ग्रहण करता हूं॥ शकट में अ-

† सर्वकर्माणि परमेश्वरप्रीत्यर्थमनुष्ठेयानीति भगवद्गीतास्वर्जुनं प्रति भगवतोक्तम् भ॰ गी॰४॰ २४॰ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ ८॰२७॰ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ १८॰५६ सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

...हियों का हवि के अर्थ पृथक् करना प्रोक्षण के अर्थ ...ण करना इत्यादिक अग्निहोत्रहवणि के व्यापार हैं ...ों का निर्वाप (फटकने) के लिये धारण उलूखल में डा... करि निकालना इत्यादि सूर्प के व्यापार हैं ॥६॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥७॥ +

...॰ २॰ ३॰ ११॰ प्रत्युष्टं वा निष्टप्तमिति अग्निहोत्रहवणि और ... का गार्हपत्य में प्रतपन है॥ आसुरी वृहत्यो द्वे राक्षसे ...जाति प्रत्येक जलाया अर्थात् इस अग्निहोत्रहवणि ...र सूर्प में स्थित राक्षसलोग जलाये। और अरातयः (हवि ... दक्षिणादान के प्रतिबन्धकलोग) भी जलाये अर्थात् अ... ...था यज्ञसाधन नही है॥ सूर्पादि में निगूढ राक्षस निःशे... ...ष करि नष्ट हुए। और अरातयः भी निष्टप्त हुए॥ का॰ २॰ ३॰ ...१२॰ उर्वन्तरिक्षमिति शकट (गाडा॰ छकडा) प्रति जावे॥ प्राजा... ...पत्या गायत्री ब्रह्मरक्षोघ्नदेवत्या सर्वत्र॥ विस्तीर्ण अवकाश को अनुसरण करि चलता हूं। आशय यह है कि चलते हु... ...ए पुरुष के पार्श्वस्थित राक्षस इस मन्त्र से निकाले जाते हैं॥७॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वन्हितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥८॥ +

...का॰ २॰ ३॰ १२॰ १३॰ गार्हपत्य के पश्चात् स्थित व्रीहियुक्तसर्वा...

+ प्र-यः। अ०। नि-यः। द्व०। उ-मि। उ०॥७॥
+ धू-मः। अ०। दे-त। द्व०। वि-म। उ०। उ-य। प्र०। अ-क्ष। त्वष्य-ब्रा। आ०॥८॥१४॥

ङ्गोपेत शकट के धुर (बलीवर्द वहन योग्य प्रदेश) को धूरसीति मन्त्र करि स्पर्श करै ॥ धूर्देवत्यं यजुः। व्रीहिरूप हवि के धारक शकट के दोनों बलीवर्दों के (गाता) वहनप्रदेशों में कोइ हिंसक अग्नि शास्त्रदृष्ट है तिसै प्रार्थना करिये है+। हे वन्हे तू धूः (हिंसक) है। जो कि धूः है इस हेतु हिंसा करते पापी को विनाश करि। किं च जो राक्षसादि यागविघ्न करि हमारी हिंसा करने को उद्युक्त है तिसै नाश करि और जिस आलस्यादिरूप वैरि को हम अनुष्ठान करनेहारे हिंसा करने को उद्दित हैं तिसै भी विनाशि। शकटस्थिताग्न्यतिक्रमणनिमित्त अपराध दूर करने को अग्न्याधारभूता शकट की धूः इस मन्त्र करि स्पर्श करिये है॥ का॰ २·३·१४· देवानामित्यादि ह्वार्षीदित्यन्त मन्त्र करि शकट के दीर्घकाष्ठ ईषा तिसके अग्र का भूमिस्पर्श नहीं इस लिये तिस के आधारत्व करि स्थापित उपस्तम्भनकाष्ठ के पश्चाद्भाग में तिस ईषा (   ) को स्पर्श करै ॥ ब्राह्म्यनुष्टुप् शकटदेवत्या। हे शकट तू देवताओं का सम्बन्धि है। कैसा कि अतिशयेन व्रीहिरूपहवि का प्रापक। तथा अतिशयेन शुद्ध वा दृढता के अर्थ चर्मादि से अतिशयेन वेष्टित। अतिशयेन व्रीहिओं से पूरित। देवताओं का अतिशयेन प्यारा। देवताओं का अतिशयेन आह्वान करनेहारा (व्रीहिओं से पूर्ण शकट को देखि देवता आह्वान करते ही शीघ्र आते हैं ॥८॥

उरु॒तम॑सि ह॒वि॒र्धान॒ꣳ दृꣳह॑स्व मा ह्वा॒र्मा ते॑ य॒ज्ञप॑ति॒र्ह्वा॑र्षीत्। विष्णु॑स्त्वा क्रमतामु॒रु वाता॑याप-

+ अग्निर्वा एष धुर्यस्तमेतदत्येष्यन्भवतीति १·१·२·१० श्रुतेः।

हतꣳ रक्षो यच्छन्ताम्पञ्च ॥ २८ ॥ +

॥ अह्रुत (अकुटिल) है अर्थात् आरोहण में भङ्ग होने भय नहीं है। व्रीहिरूप हवि का धारक पोषक है। इस हेतु हूꣳ ॥ ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीदिति पूर्ववद्व्याख्येम् काण्डी॰ २॰ ३॰ १५॰ पीछे फिरिके विष्णुस्त्वेति दक्षिण चक्र (पहिया) ॥ यजुर्गायत्री शकटदेवत्या। हे शकट विष्णु (व्यापक॰य) तुरे चरण उठाकर चढे भाव यह है कि मैं चढने को समर्थ न हूं ॥ का॰ २॰ ३॰ १६॰ उरु वातायेति हवियों (शकट में भरे हुए धान्य यवों) को देखे ॥ दैवीपङ्क्तिर्हविष्या: ॥ हे शकट अपने अन्तर्वर्ति व्रीहिओं वायुसंचार के अर्थ विस्तीर्ण हो। अर्थात् शकट स्थित व्रीहिओं के तृणादिकों करि आच्छादित होने से संकोच में वायुप्रवेश न होने से आच्छादन को दूर करि जैसे वायु प्रवेश करे तैसे संकोच को त्यागि। वायुरूपप्राणप्रवेश से मन्त्र करि हवि को सप्राण करिये है। किं च वायुप्रवेशरहित सब वस्तु विकारवत्व होतीहै। और वरुण बन्धकारित्व से यज्ञनिरोधक की निवृत्यर्थ यह मन्त्र है + ॥ का॰ २॰ ३॰ १७॰ १८॰ अपहत व्रीहिओं से अन्यत् तृणादिक जो हों तिन्हें निकाले और तृणादिकों के अभाव में व्रीहिओं को ही स्पर्श करे ॥ यजुर्गायत्री रक्षसम्। राक्षस (यज्ञविघातक॰ तृणादिक) निकाले ॥ का॰ २॰ ३॰ १९॰ यच्छन्तामिति पञ्चाङ्गुलियुक्त हस्त करि व्रीहिओं को ग्रहण करे ॥ दैवीपङ्क्तिर्हविष्या: ॥ पञ्चसंख्याका अङ्गुलियें व्रीहि-

+ इदं कर्मेडकार्या मन्त्राणपुक्तानि

+ यद्वा दैवं वरुणः पाशेन बध्नाति ... (marginal note, partly illegible)

रूप हवि को ग्रहण करें॥९॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि॥१०॥

का॰२.३.२०-२२. देवस्य त्वेति अग्निहोत्र हवणी में तीनि मुष्टि मन्त्र पूर्वक चौथी चुपके से डाले. एवं अग्नीषोमीय को यथा देवत औरों को॥ देवस्य त्वा प्राजापत्या बृहती सवितृदेवत्या सर्वत्र। अग्नये जुष्टम् प्राजापत्या गायत्री लिङ्गोक्तदेवत्या। अग्नीषोमाभ्याम् याजुषी पङ्क्तिः लिङ्गोक्तदेवत्या। हे हविः सविता देवता का प्रेरित में अग्नि के अर्थ तुझ प्यारे को ग्रहण करता हूं। और अग्नीषोम व्यासक्तदेवताओं के अर्थ तुझ प्या॰। कि न्हीं करि कि अश्विनीकुमारों के बाहुओं (अंस मणि बन्ध के मध्यभाग दण्डाकार) और पूषा के हस्तों (पञ्चाङ्गुलियुक्त अग्रभाग) करि। क्योंकि अश्विनीकुमार देवताओं के अध्वर्यु हैं और पूषा देवताओं का भागधुक् इस हेतु ग्रहण साधन में अपनी बाहुओं प्रति अश्विनीकुमार के बाहुओं की भावना करना और हस्तों में पूषा के हस्तों की। अर्थात् सर्वात्मक अग्नि के हवि को तादृश मनुष्य कैसे ग्रहण करने को समर्थ है इस लिये सविता से अनुज्ञात अश्विनीकुमारों के बाहुओं पूषा के हाथों से ग्रहण करता हूं। किं च सत्यं देवा अनृतं मनुष्याः [श॰]१.१.२.१७. श्रुते। देवताओं के सत्यरूपत्व से तिन्हों के

+ है-मू॰।अ॰।अ-मि।इ॰।उ॰॥२॰॥

[illegible]क हवि को गृहण करना फलपर्यवसायित्व से सत्य होता है। और देवतास्मरण के अभाव में मनुष्यों के अनृतरूपत्व से किया अनुष्ठान निःफलत्व से अनृत होता है यह देवता [illegible] का अभिप्राय है। हवि ग्रहण करते अध्वर्यु को देवता से [illegible]ते हैं कि मेरा नाम ग्रहण करैगा। विन नाम लिये हवि [illegible] करते में तिन्हों का कलह होवे यह कि इसे मेरे अर्थ लिया। [illegible] कलह के निवृत्यर्थ अग्नये जुष्टम् अग्नीषोमाभ्यां जुष्टम् [illegible] देवतानिर्देशपूर्वक हविर्ग्रहण है इत्यभिप्रायः॥१०॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्याः
पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वानाभौ साद-
याम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष॥११॥

का० २·३·२३·भूतायत्वेति शकट में जो परिशिष्ट हवि तिसे स्पर्श करै॥प्राजापत्या गायत्री हविर्देवत्या॥हे शकटावस्थित व्रीहिशेष भूत (भुवन-यागान्तर ब्राह्मणभोजन और फिरि भी सद्भाव) के अर्थ तुझे शेष छोड़ना हूं इति शेषः। कुछ अराति (अदान) के अर्थ नही॥ का० २·३·२४·स्वरिति पूर्वाभिमुख हो यज्ञभूमि को देखै यजुर्गायत्री सूर्यदेवत्या। मैं स्वः (यज्ञ+) को देखता हूं॥ दृꣳहन्तामिति शकट से उतरै॥प्राजापत्या गायत्री गृहाः देवताः॥पृथिवी में वर्तमानाः दुर्याः(गृहाः) दृढाः हों। हवि लेकर उतरते अध्वर्यु के भार करि गृहक्षोभ की सम्भावना है सो इस मन्त्र से दूर करिये है॥ का० २·३·२६·उर्वन्तरिक्षमिति उत्तर देश प्र-

+यज्ञो वै स्वर्ह देवाः मर्त्य इति १·१·२·२३·श्रुतिः॥

+भू-पे-प्र०।स्व-म्।दृ-ह-म्।उ०।अ-मि।अ०पृ-क्षा-ल०॥११॥

ति चले॥व्याख्यातम् काण्डी ७॥का॰२॰३॰२७॰ गार्हपत्य वा आहवनीय के पश्चात् कि जिस में पाक करै तहां शूर्पस्य हवियों को पृथिव्यास्त्वेति स्थापन करै॥साम्नी पङ्क्तिः हविर्देवत्या। हे हविः पृथिवि के नाभि(मध्य) में तुझे स्थापन करता हूं।जैसे सोते हुए बालक पुत्र को माता अपनी गोदी में स्थापन करती है वैसे इस हवि को अदिति(अखण्डिता-पृथिवी) के अङ्क में स्थापन करता हूं।हे अग्ने अपने समीप में इस स्थापित हव्य को तू रक्षा करि।पुत्र ऐसे सोते को बाधकों से पालि॥११॥

म॰४॰ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्॥१२॥+

का॰२॰३॰३२॰ द्वौ वा त्रीणि कुश के अन्तर्गर्भ पत्र साग्र पवित्रे स्थ इति क्षुरिकास्थानीय कुशाओं से छेदे॥दैवी जगती लिङ्गोक्त देवत्या। हे पवित्रे(शोधके कुशाद्वयरूपे) तुम वैष्णव्यौ(यज्ञसम्बन्धिनी +) हो॥का॰२॰३॰३३॰ हविर्ग्रहण में जल करि तिन्हों से उत्पवन करै सवितुर्व इति॥प्राजापत्या पङ्क्तिरापो देवता। सर्वों के प्रेरक की आज्ञा से हे जल तुम्हें उत्पवन करता हूं किस करि कि अच्छिद्र पवित्र(शोधक वायुरूप) करि के ‡। सूर्य की रश्मिओं करि के उत्पवन करता हूं। वायु और सूर्यरश्मिओं का पाद प्रक्षालनादि करि उपहतभू

+ यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः॥ १.१.२.१३

+ प॰ व्यौ।अ॰।स-भिः।१०।दे-यै।७।गो-स्व।२०।अ-मि।लृ०।आ०।दे-वि।ई०॥१२।१३॥
‡ यो वा अयं पवत एषोऽच्छिद्रं पवित्रमिति १.१.३.६. श्रुतेः।

शुद्धि हेतुत्व प्रसिद्ध है॥ का॰ २·३·३५· उत्पूता जल
पूरिता अग्निहोत्रहवणि को सव्यहस्त में स्थापन करिके
इति दक्षिणहस्त करि ऊपर को चलावै॥ देवीराप इ-
वृत्रतूर्य" इत्यन्तस्य यजुषः आपो देवता। हे देवीः(द्यो-
का:) आपः तुम आज के दिन में इस प्रवर्तमान यज्ञ
अग्रे नयत:(निर्विघ्न समाप्त करो। कैसी हो जल कि पुरतः
देश प्रति गमनशीलाः। तथा अग्रेपुवः(जहां पूर्वभागमें
ती हो तहां अपहतिनिवारण करिके शोधनशीलाः। य-
अग्रेपुवः(प्रथम सोमरस को पान करतीओं। किं च यज्ञप-
यजमान) को फलभोग के अर्थ प्रेरो कैसे यजमान कि भ-
प्रकार से दक्षिणादानादि करि यज्ञ को पुष्ट करता तिस यज्ञ
के पालक को तथा देवयुवम्(देवताओं को यज्ञादि करि मि-
श्री करते वा चाहते को॥१२॥

युष्मा इन्द्रो" वृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं
वृत्रतूर्ये प्रोक्षितास्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नी-
षोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्ध-
ध्वं देवयज्यायै यद्वो" शुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्त-
च्छुन्धामि॥१३॥ + + पूर्वकण्डिकायां मन्त्राणि

मन्त्रशेषः। हे आपः इन्द्रो देवः वृत्रवधनिमित्तभूत में
अपने सहाय होंने को प्रार्थना करता हुआ और तुमभी
के सहायक हुए॥ का॰ २·३·३६· प्रोक्षिता स्थेति तिन्हों का

हाथ से प्रोक्षण करै॥ दैवी बृहती आपो देवता। हे आपः तुम प्रोक्षिता हो। अ
संस्कृता अन्यसंस्कारक्षमा नहीं होते॥ का॰ २·३·३७·३८· ह
वि को अग्नयेत्वा· अग्नीषोमाभ्यां त्वा· और यथादेवत अन्य
हवियों को प्रोक्षण करै॥ द्वे लिङ्गोक्ते याजुषी बृहती· याजुषी त्रि
ष्टुप्। हे हवि अग्नि के अर्थ तुम्हारे को प्रोक्षण करता हूं॥ अ
ग्नीषोम॰॥ का॰ २·३·३९· कृष्णाजिनोलूखलादि पात्रों को दैव्या
येति प्रोक्षण करै॥ पात्रदेवत्यं यजुः। हे यज्ञपात्रो तुम शुद्ध
होओ किमर्थम् कि दैव्य (देवतासम्बन्धि) कर्म के अर्थ। तदेव क
र्म विशिष्यते देवयज्या (देवसम्बन्धिनि यागक्रिया दर्शादि
का) के अर्थ। किं च नीचजाति तक्षादिकों ने तुम्हारे जिस अ
ङ्ग को पीडा दीई (छेदन तक्षणादिकाल में अपने अशुद्ध हा
थों से स्पर्श किया। तिस तुह्मारे अङ्ग को प्रोक्षण करिके शुद्ध
करता हूं॥१३॥

अ॰ ५· शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वग
सि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि।
पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु॥१४॥+

का॰ २·४·१· शर्मासीति कृष्णाजिन को हाथ से ग्रहण करै॥ दै
व्यनुष्टुप्। कृष्णाजिनदेवत्या। हे कृष्णाजिन (काले हिरण के च
र्म) तू उलूखल के धारणार्थ शर्म (सुखहेतु) है+॥ का॰ २·४·२·
पात्रों से परें कृष्णाजिन को झाडे अवधूतमिति॥ आसुर्यनुष्टुप्
राक्षसम्। कृष्णाजिन गुप्त राक्षस झाडने से भूमि में गिराये ऐसे

+ शा-सि। अ॰। अ-घः। दृ॰। अ-तु। उ॰। अ-त्यः॥ क्र॰। ग्रा-तु। ल॰॥१४॥
+ अजिनस्य चर्मेति मानुषं नाम शर्मेति दैवं नाम।

अरातयः भी गिरायें॥ का॰ २.४.३. अदित्यास्त्वगिति कृष्णाजिन को दोनों हाथों से प्रत्यग्ग्रीव बिछावे॥ आसुर्यनुष्टुप् कृष्णाजिनम्। हे कृष्णाजिन तू अदिति (भूमिदेवता) की त्वग्रूप है तिस हेतु भूमि तुम्हें जानें कि यह मेरी त्वचा है†॥ का॰ २.४.४.५. वामहस्त से न छूटे कृष्णाजिन पर दक्षिणहस्त से अद्रिरसि अथवा ग्रावासि इति उलूखल को स्थापन करे। विकल्पित मन्त्रों में प्रतित्वेति शेष जोडें॥ द्वे उलूखलदेवत्ये यजुरनुष्टुप् आसुरी गायत्री। हे उलूखल यद्यपि तू दारुमय है तथापि दृढत्व से पाषाण है। कैसा कि पृथुबुध्नः (मुसलघातोपद्रव से चाञ्चल्यरहित स्थूलमूलः) हे उलूखल तैसा तू ग्रावा (दार्ढ्येन पाषाणसदृश) है। नीचे बिछाई हुई कृष्णाजिनरूपा भूमि की जो त्वचा है सो तुम्हें अपना करिके जानें॥ १४॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि॥ १५॥ †

का॰ २.४.६. अग्नेस्तनूरिति ओखली में छरने के लिये हवि डाले॥ आर्ची उष्णिक् हविर्देवत्या। हे हविः तू आहवनीयाग्निका शरीर है। जो कि अग्नि डालते ही हवि अग्नि होजाता है इस कारण हवि अग्नि का शरीर है। कैसा हवि कि यजमान की वाणी का खोलने वाला। अपां प्रणयन काल में खोलनेवाला। अ-

† अ-मि। अ॰। बृ॰-त्यः। इ॰। स-ष। उ॰। ह-हि। ऋ॰॥ १५॥
पुरा यज्ञो देवेभ्यः रुष्टः कृष्णमृगो भूत्वागमत्तदा देवा ज्ञात्वा तदीयां त्वचमुत्क्षिप्य जगृहुस्तस्माच्चर्ममभिस्तरणमित्यभिप्रायः श्रुतावाम्नातः। १.१.४.१.

पां प्रणयनकाल में मौन हुई यजमान वाणी का हवि आवपन का-
ल में विसर्ग होता है। तिस हेतु हवि वाणी का खोलने वाला है।
इस हेतु देवताओं की तृप्ति के अर्थ तुझे ग्रहण करता (उलूख-
ल में डालता) हूं॥ का॰ २॰४॰ ११॰ बृहद्ग्रावेति मुसल को ग्रहण
करे॥ आसुरी जगती मुसल दे॰। हे मुसल तू यद्यपि दा-
रुमय है तथापि दृढता करिके पाषाण सदृश है। तथा दीर्घत्व
करि बडा है॥ का॰ २॰४॰ १२॰ स इदमिति मुसल को उलूखल
में स्थापन करे॥ मुसलदेवत्यं यजुः। हे मुसल तू देवताओं (अ-
ग्न्यादिकों) के उपकारार्थ इस हवि (व्रीहिरूप) को शमन (भक्ष-
णविरोधि तुषों के दूर करने में शान्त) करि। तस्यैव पदस्य व्या-
ख्यानम्। भलेप्रकार शान्त जैसे तैसे शमन करि। द्विविधा
शान्ति है बाह्यतुषापनयनाद्या सो पहिले अवघात से होती
है। और अन्तः स्थित मालिन्य के अपनयन से दूसरी फली-
करण करिके होती है। तिस द्विविध तण्डुल संस्कार को करि
इत्यर्थः॥ का॰ २॰४॰ १३॰ हविष्कृदेहीति हवि कूटने वाली (वाले)
यजमान की पत्नी वा अग्नीध को अध्वर्यु तीनि वार कहि
कर बुलावे॥ यजुः पङ्क्तिः अधिदैवतं वागधियज्ञं पत्नीदे॰।
हे हविष्कृत् (हवि करनेहारी, हारे) यहां आ। तीनि वार कहे अ-
र्थ को देवता मानते हैं इस हेतु तीनिवार आह्वान है॥ १५॥

कुक्कुटोसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वय-
ꣳ संघातंसंघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति

त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूत्तꣳ रक्षः परापूता अरा-
तयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः
सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण
पाणिना ॥१६॥

अध्वर्यु हविष्कृदेहि इस से आह्वान करता है ति-
साथ ही आग्नीध्र कुक्कुटोसीति मन्त्रकरि शम्या से
को कूटता है दोंनो वार मन्त्र पढ करि उपला को
एकवार कूटता है इसी मन्त्र से॥ आर्ची त्रिष्टुप् वा
।हे शम्यारूप यज्ञायुधविशेष तू कुक्कुट है असुरों
और मधुजिह्व है देवताओं का। असुरलोग क्व क्व (कहां
) यह तिन्हे मारने को इच्छा करि सर्वत्र चलता वोह कक्कु
।यद्वा कुक (कुत्सित) शब्दको कुटता (विस्तारता) सो कुक्कु
।यद्वाकुक्कुटाख्यपक्षिवत् ध्वनिविशेष को असुरों की भय
अर्थ विस्तारता यह कुक्कुट है। मधुजिह्वकनामा कोईक
ओं का मृत्य है। मधुर्मधुरभाषिणी जिह्वा जिस की त
हे यज्ञायुध तू असुरों को पराभव करि के यजमान का अ
और रस बोलि (अन्न और रस जैसे आवे तैसे शब्द क
।तेरे शब्द करि असुरों के पराभव में तिन्हों के अन्न औ
को यजमान प्राप्त होता है। फिरि तुम करिके हम अ
के साथ क्रियमाण संघात-संघात (तिस-तिस सङ्ग्राम) +
जीतेंगे (अर्थात् हमलोगों की कभी भी पराजय न होगी

+ सम्यक् हमलोगों द्वारा पहे संघाती युद्धे

+कु-ष्मा।अ॰।व-सि।इ॰।म-तु।उ॰।प-य।।क्र॰।अ-क्ष।।लृ॰।वा-ङ्गु।श्ला॰।है-
मा।ई॰॥१६॥

मनुराजा का एक वृषभ था तिस में असुरघ्नीवाणी स्थित हो शब्द करती थी तिसे सुन करि असुर मरते थे फिरि किलात और अकुली नामा असुरों के याजकोंने मनु के निकट जाकर तिस ही वृषभ से यज्ञ कराया तिस वृषभ के मरते वोह वाणी मनु की स्त्री में प्रविष्ट हुई फिरि तिस स्त्री से भी तिन्हों नें मनु को यज्ञ कराया ततः सो वाणी यज्ञपात्रों में प्रविष्ट हुई इस हेतु से असुरों के पराभव के लिये तिस वाणी के प्रकटनार्थ शम्या करि दृषत् और उपल का हनन है इति श्रुत्युक्तोऽभिप्रायः शत० १.१.४.१४.॥ का० २.४.१६. तुषों के विमुक्त होने पर अध्वर्यु शूर्प को हाथों से ग्रहण करे वर्षवृद्धमसीति॥यजुर्गायत्री शूर्पदेवत्या। हे शूर्प तू वर्षवृद्ध है (वर्षा में वढे वंश की शलाकाओं से वनने के हेतु शूर्प का वर्षवृद्धत्व है॥का० २.४.१७. प्रति त्वेति उलूखल से बाहिर निकाल कर हवि को शूर्प में डाले॥यजुर्बृहती हविदेवत्या। हे हविः वर्षवृद्ध (शूर्प) तुझे अपना करिके जाने व्रीहि शूर्प का वर्षवृद्धत्व से भ्रातृत्व है॥का० २.४.१८ परापूतमिति तुषों को फटके॥आसुरी उष्णिक् राक्षसम्। राक्षसलोग निकाले (शूर्प करिके तुषों के निकालने में राक्षस भी तिन्हों के साथ भूमि में गिराये। और अरातयः (हवि के प्रतिकूल आलस्यादि शत्रु) निकाले॥का० २.४.१९. अपहतमिति पृथिवी में गिरे तुषों को भेले करि उत्कर देश में डाले॥ यजुर्गायत्री राक्षसम्। राक्षसलोग दूर में चला-

के मारे॥ का॰ २॰४॰२०॰ वायुर्व इति सतुषों और निस्तुषों को पृथक् करे॥ यजुरुष्णिक् तण्डुलदेवत्या। हे तण्डुलो सूर्प चलने से उठा वायु तुम्हें सूक्ष्मकणों से पृथक् करे॥ का॰ २॰४॰२१॰ सूर्प में स्थिति तण्डुलों को पात्र में रखि देवो व इति मन्त्र से अभिमन्त्रण करे॥ साम्नी त्रिष्टुप् तण्डुल देवत्या। हे तण्डुलो सविता देवता तुम्हें अछिद्र पाणि (मिली अङ्गुलियों के हाथ) करि ग्रहण करे॥ पात्री प्रक्षेपसमय भूमि में पतन न हो इस हेतु सवितृ ग्रहण प्रार्थना करिये है। कैसा सविता कि हिरण्यपाणि। (हिरण्य युक्त अङ्गुलीयादि आभरण युक्त पाणि जिसके यज्ञ दैत्यों से प्राशित्रहार करि छिन्न हुए सविता के हाथ देवताओं ने स्वर्णमय किये यह सविता का हिरण्यपाणित्व है इति बह्वृच श्रुतौ कथा॥ १६॥

अ॰ ६॰ धृष्टिरस्यपाग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामिभ्रातृव्यस्य बधाय॥ १७॥+

का॰ २॰४॰२६॰ धृष्टिरसीति उपवेष को ग्रहण करिके+॥ दैवी बृहती उपवेषदेवत्या। हे उपवेष तू धृष्टि (प्रगल्भ-धीठ) है तीव्र अङ्गारों के इधर उधर चलाने में प्रभुत्व से इस का प्रागल्भ्य है॥ का॰ २॰४॰२६॰ अपाग्न इति उपवेष से खरस्थ अपरभाग अङ्गारों को खर के प्राग्भाग में करे। तहां

+ का॰ ४॰२॰१२॰ पलाश शाखा के मूल से उपवेष बनावे

+ ध-सि। अ॰। अ-ध। द॰। आ-ह। उ॰ ध्रु-य। न्न॰॥ १७॥

तीनि अग्नियें है। पहिली आमात् (अपक्व को भक्षण करने वाला लौकिको ऽग्नि। दूसरा क्रव्यात् (मांस का खानेवाला चिताग्नि। तीसरा देवयज (यागयोग्य। तैसे तीनि अङ्गारों को गार्हपत्य से प्राग्भाग में पृथक् करि के तिन्हों में से यागयोग्यता हीन आमात् क्रव्यात्संज्ञक दोनों अग्निओं को छोडि गार्हपत्य प्रति कहिता है॥ प्राजपत्यानुष्टुप् अग्निदेवत्या। हे अग्ने हे गार्हपत्य आमादग्नि को परित्याग करि। तथा क्रव्यादग्नि को दूरि में छोडि॥ का॰ २॰ ४॰ २७॰ उपवेश करि दूरस्थ अङ्गारों से आदेवयजमिति एक अङ्गारे को लेकर॥ दैवी जगती अग्निदेवत्या॥ हे गार्हपत्य देवताओं के योग्य तीसरे अङ्गार को समीप में ला॥ का॰ २॰ ४॰ २७॰ ध्रुवमसीति देवयज अङ्गर को कपाल करि ढकै॥ कपालदेवत्यं यजुः। हे कपाल तू स्थिर है (अङ्गार के ऊपर में होने से भी इधर उधर नही गिरता) पृथिवी को दृढी करि अर्थात् पुरोडाशपाकसमय में तेरे किये व्यवधान से भूमि का दाहकृत शैथल्य न होगा। किं च तुम्हें अङ्गार परस्थापन करता हूं। किस लिये कि भ्रातृव्य (शत्रु॰ असुर॰ पापी) के बधके अर्थ। कैसे तुम्हें कि ब्राह्मण ने पुरोडानिष्पत्ति के अर्थ स्वीकार किया। तथा क्षत्रियों ने और समान कुल में हुए यजमानों ने पुरो॰-किया॥ २७॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रा-

स्य बधायाधर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि
त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य
बधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चित
स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्॥१८॥

३०॰ मध्यम कपाल को उपधानान्तर सव्याङ्गुलि को
न छोडे अग्ने ब्रह्मेति मध्यम कपाल में अङ्गार स्थापन क-
री उष्णिक् अग्निर्देवता। हे अग्ने निधीयमानाङ्गार
लोगों करि क्रियमाण ब्रह्म (प्रौढ) कर्म को गृहण क-
॥ नाशक राक्षसों के बध करिके अनुग्रहण करि यज्ञ
ब्राह्मण को अनुग्रहण करि अर्थात् मुझ अङ्गुलि दा-
क को दृढ करि॥ का॰ २॰ ४॰ ३१॰ पूर्ववत् स्थापित कपाल
पश्चिम भाग में दूसरे कपाल को धरुणमिति स्थापन करे॥
ल देवत्यं यजुः। हे द्वितीय कपाल तू पुरोडाश का धारक
इस हेतु अन्तरि को दृढ करि। पुरोडाश पाकोत्पन्नाज्वाला
रि अन्तरिक्ष लोकोपद्रव जैसे नहो तैसे करि। यद्यपि य-
ह कपाल ज्वाला और अन्तरिक्ष के मध्य में व्यवधायक न-
हीं है तथापि अन्तरिक्ष को दृढता के अर्थे कपालदेवता प्रा-
र्थना करिये है। ब्रह्मवनीत्यादि पूर्ववत्॥ का॰ २॰ ४॰ ३२॰ प्र-
के पूर्व भाग में धर्त्रमिति तीसरे को स्थापन करे आर्ची
ष्टुप् कपाल देवत्या। हे कपाल तू धारक है। दिव को दृ-
र ज्वालाग्र करि दाहका अभाव द्युलोक का दार्ढ्य है

† अ-घा॰ अ॰। ध-य। दृ॰। उ॰। वि-मि। क्ष॰। चि-त॥ लू॰। भु-भू। श्रा॰॥ १८॥

अन्यत्पूर्ववत् का॰ २॰ ४॰ ३३॰ प्रथम के दक्षिण भाग में चौथे को विश्वाभ्य इति स्थापन करै॥ यजुस्त्रिष्टुप्। हे चतुर्थ कपाल सब दिशाओं की दृढता के अर्थ तुम्हें स्थापन करता हूं। एवं तीन्यों कपालों के उपधान करि तीनों लोकों को जीतता है। चौथे से दिशाओं को जीतता है। आशय यह है कि तदन्त पुरोडाश लोकत्रयरूप होके देवताओं को तृप्त करता है॥ का॰ २॰ ४॰ ३४॰ आग्नेयपुरोडाश के अष्टाकपालत्व और चारों के स्थापितत्व से अविशिष्ट चारों के मध्य में दो-दो दक्षिण और उत्तर में चितस्थेति प्रत्येक को स्थापन करै॥ यजुर्गायत्री कपालदेवत्या। हे कपालविशेषाः तुम प्रथम कपालोपचयकारिणः हो तथा ऊर्ध्व उपहित द्वितीयादि कपालों के उपचय कारिणः हो॥ का॰ २॰ ४॰ ३८॰ भृगूणामिति अङ्गारों से कपालों को आच्छादन करै॥ आसुर्यनुष् कपालदेवत्या। हे कपालो तुम भृगुनाम को और अङ्गिरानाम को देवर्षियों के तपोरूप इस अग्नि करि तप्त होओ॥ इस अग्नि का तदीय तपोरूप से भावना करै इत्यर्थः॥ १८॥+

अ॰ ७॰ शर्मास्यवधूतᳪं रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिव स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु॥ १९॥+

का॰ २॰ ५॰ २॰ जैसे अवघात के अर्थ कृष्णाजिन प्रयोग है वै-

+ श-र्म-ता-अ॰। अ-ध-व॰। दू॰। स-तु। ऊ॰। धि-तु। रु॰। दि-सि। त्व॰। धि-तु। आ॰॥ १४॥

यहां भी॥ शर्मासि। अवधूतम्। अदित्याः इति मन्त्रत्रयं व्या-
र् काण्डी १४॰॥का॰ २॰५॰३॰ तिस चर्म पर धिषणासी-
र (चाकी के नीचिरले पाट) को स्थापन करै॥ आसुरी
दृषद्देवत्या। हे शिले पेषणाधारभूते तू पवनात्मिका त-
तू धिषणा (बुद्धि वा कर्म को व्याप्त वा देती) है वा पर्व-
धारण करने वाली है। अदिति (भूमि) की त्वचा कृष्णाजि-
न तुरु जैसी और तेरे अवस्थान को अनुजानै॥का॰२॰५॰
दृषद के पश्चिम भाग में नीचे को शम्या स्थापन करै दिव
ति। यजुरुष्णिक् शम्यादेवत्या। हे शम्ये द्युलोक की स्तम्भन
रनेवाली तू है। पतनवारण के अर्थ अन्तरिक्षरूप करिस्त-
भन कारित्व है + ॥का॰२॰५॰५॰धिषणासीति दृषद पर उप-
ला (चाकी के ऊपरले पाट) को स्थापन करै॥प्राजापत्यानुष्टुप्
उपलादेवत्या। हे उपले (उपरितनशिल) तू धिषणाव्यापारधा-
रिका) है। कैसी कि पार्वतेयी (अधस्तनदृषद् की पुत्री बाल
स्वरूपा ✱ अतः पर्वती मातृसमा तुरु पुत्री को जानैं॥१९॥

+ अन्तरिक्षेण हीमे द्यावापृथिवी विष्टब्धे इति श्रुतेः १॰२॰९॰

धान्यमसि धिनुहि देवान्प्राणाय त्वोदाना-
य त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे
धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णा-
त्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयो-
ऽसि॥२०॥+

का॰२॰५॰६॰ धान्यमसीति तण्डुलों को चाकी में डालिकर

+ धा-न्। ऽ।प्रा-त्वा। दू॰। उ- त्वा। उ॰। व्या-त्वा। क्र॰। दी-ना। ल॰। च-त्वा। आ॰। म-सि। दू॰॥२०॥

✱ कनीयसी ह्येषा दुहितत्वे भवतीति श्रुतेः १॰२॰१॰१६॰

प्राणाय त्वेति प्रतिमन्त्र करि पीसै ॥ धान्यमसीति षण्णां हवि
र्देवता १ यजुर्बृहती २.४.६. दैवी बृहती ३ दैवी पङ्क्तिः ५ प्रा
ची त्रिष्टुप् । हे हविः तू धान्य (तृप्तिकरनेवाला) है इस का
रण अग्न्यादिक देवताओं को तृप्त करि ॥ १ ॥ हे तण्डुलो तु
म्हें प्राण (प्रकर्षेण अनिति सर्वदा मुख में चेष्टा करने वाले श्वास वायु
प्राणदान) के अर्थ पीसता हूं इति शेषः एवमुत्तर मन्त्रयोर्योज्य
म् ॥ २ ॥ उदान (ऊपर को चेष्टा करनेवाले उत्क्रान्त वायुदान)
के अर्थ ॥ ३ ॥ व्यान (व्याप्त हो चेष्टा करनेवाले बलहेतु वायुः)
के अर्थ ॥ अभिप्राय यह है कि देवताओं का हवि सजीव हो
ता है इस हेतु इन मन्त्रों से हवि का प्राणादिदान करि सजीव
त्व करियै है ॥ ४ ॥ का० २. ५. ७. दीर्घामिति पिसे तण्डुलों को
कृष्णाजिन पर पतन करै ॥ दीर्घा (अविछिन्ना) प्रसिति (कर्मसं
तति) को अनुलक्षण करि आयु (यजमान की आयुवृद्धि) के अ
र्थ हे हवि तुझे कृष्णाजिन पर स्थापन करता हूं । भाव यह
है कि यजमान की आयुवृद्धि के होते में कर्मसंतति वर्तै
है । यद्वायमर्थः । पूर्वमन्त्रों से हवि का प्राणादिदान करि स
जीवत्व किया इस करि पुनः आयु दीजियै है । हे हविः दी
र्घा प्रसिति (कृष्णाजिनाख्या) में तुझे स्थापन करता हूं । कि
मर्थम् कि तेरी आयु की वृद्धि के लिये † । देवो व इत्यादि म
न्त्रशेषो व्याख्यातः काण्डी १६. ई ॥ का० २. ५. ८. कृष्णाजि
न पर रखे पिष्ट को चक्षुषे त्वेति देखै ॥ हे हवि यजमान की

† प्रसितिः प्रसयनात्तन्तुर्वा जालं वेति निरु० ६. १२. यास्कोक्तेः पिष्टग्राहकत्वात्प्र
सिति शब्देन कृष्णाजिनमुच्यते ।

चक्षुपाटव के अर्थ तुझे देखता हूं इति शेषः। यद्वा चक्षु आदि वाह्येन्द्रियादिदान के अर्थ तुझे देखता हूं। भाव यह है कि हवि के सजीवत्व करने में चक्षुरादिकों की अपेक्षा होती है सो इस से करिये है॥ का॰ २.५.९. पात्रान्तर से आज्यस्थाली में आज्य को करै महीनामिति॥ आज्य देवत्या दैवी त्रिष्टुप्। हे आज्य तू महीओं (गौओं) का पय (क्षीर) है†॥२०॥

+क्षीरीत्यनत्वात् घृतं पयः। प्राच्चनोच्यते महीतिगो-नाम निघं॰ २.११.

अ॰ ८॰ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन। सꣳ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्॥ २१॥+

का॰ २.५.१०. पवित्र सहित वडे पात्र में देवस्य त्वेत्यादि संवपामीति पिष्टों को आवपन करै॥ देवस्य त्वेत्यादि हस्ताभ्यामित्यन्तं व्याख्यातम् कण्डिका १०. अ॰। संवपामि दैवी बृहती हविर्देवत्या। इन पिष्टों (पिसेहुओं) को वडे पात्र में भले प्रकार स्थापन करता हूं॥ का॰ २.५.१२.१३. उपसर्जन्यः (पिष्ट में डालने योग्य जल) आग्नीध्र के डालते अध्वर्यु पवित्राओं से ग्रहण करै समाप इति॥ समापो यजुः आपो देवता। उपसर्जनीरूप जल पिष्टरूप ओषधीओं के साथ भले प्रकार एकी हों। तथा ओषधीएं (पिसीहुई) रस (उपसर्जनीरूप जल) करि भले प्रकार एकी हों ‡। तथा रेवत्यः (जल) ओषधीओं (पिष्टाख्याओं) करि भले॰ ᵠ। मधुमतीः (माधुर्यो-

१.२.२.२।

+दे-मू। अ॰। सं-मि। दृ॰। स-मू। उ॰॥ २१॥
‡ आपो हि ओषधीनां रसः। ᵠ रेवत्य आपो जगत्य ओषधय इतिश्रुतेः

पेताजल) माधुर्यो पेतों (पिष्टरूपा ओषधीओं के साथ भले॰। अर्थात् जल और ओषधीओं के परस्पर प्रीति हेतुत्व से संपर्क होवे॥ २१॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देव-स्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके॥ २२॥

का॰ २॰ ५॰ १४॰ जल और पिष्टों को मिश्रित करे जनयत्यै त्वेति॥ प्राजापत्या गायत्री हविर्देवत्या। हे जलपिष्ट रूपपदार्थ-द्वय तुम्हें भली भाँति मिश्री करता हूं। किमर्थं कि यजमान की प्रजा के उत्पादनार्थं। जल और पिष्ट का जैसे मिश्रण तैसे शुक्रशोणित के मिश्रण करि यजमान की प्रजोत्पत्ति होती है तिस लिये तुम्हें मिश्रण करता हूं। यद्वा पुरोडाश की उत्पत्ति के अर्थ तुम्हें मिश्र॰॥ का॰ २॰ ५॰ १५॰ मिश्री किये पिष्ट के अवदानाङ्कित समान दो पिण्ड बनाकर पुनः विन मिलाये इदमग्नेः इदमग्नीषोमयोरिति क्रमपूर्वक स्पर्श करे॥ द्वे हवि देवते १॰ दैवी बृहती २॰ दैवी जगती। यह अग्निसम्बन्धि होवे॥ यह अग्नीषोमसम्बन्धि हो॥ का॰ २॰ ५॰ १७॰ इषे त्वेति आज्य को गलाने के अर्थ पात्र में अग्नि पर रक्खे॥ दैव्यनुष्टुप् आज्यदेवत्या। हे आज्य वृष्टि के अर्थ तुम्हें गलाता हूं॥ का॰ २॰ ५॰ १८॰ घर्मोऽसीति पुरोडाश (पिण्ड) को

१ ज-मि। अ॰। इ-ग्नेः। इ॰। इ-यो॥ उ॰। इ-त्वा। ऋ॰। घ-युः। ऌ॰। उ-मू। आ॰। अ-तु। ई॰। दे-के। ऊ॰। २१॥

कपालों में पकावै॥ यजुर्गायत्री पुरोडाशदेवत्या। हे पु तू घर्म (दीप्यमान-प्रवर्ग्य)† है। तथा विश्वायुः (सर्वायुः जिस से यजमान सर्वायु को पाता है इति भावः॥ का० २ ...प्रथा इति पुरोडाश को बढावै जितना कि कपाल में ...प्राची गायत्री पुरोडा०। हे पुरोडाश तू स्वभाव से उरु ...विस्तीर्ण जैसे तैसे प्रसरनेहारा। इस कारण यहां भी वि ...प्रख्यात हो। किं च तेरा यज्ञपति (यजमान) उरु (विस्ती ...यादि करिके) प्रख्यात हो॥ का० ५. २. २१. अग्निष्टे ...जल करि पुरोडाश को सर्वतः स्पर्श करै॥ प्राजापत्या गा ... पुरो०। हे पुरोडाश अग्निः श्रपण के अर्थ तेरी त्वचा (त्व ...ऊपरले भाग) को विनाश न करै। अर्थात् अतिदाह क ...स्यामता न हो। अवघात पोषण से उत्पन्न और श्रपण से उ ...न हुआ हवि का उपद्रव जलस्पर्श करि शमन करिये है ...ति भावः॥ का० २. ५. २२. देवस्त्वेति पकावै॥ प्राजापत्यानु ...प् पु०। हे पुरोडाश सविता देवता वर्षिष्ठ (अत्यन्तवृद्ध) ना ...क (द्युलोकवर्ति नाकनामा अग्नि *) में तुझे रखि कर पक्व करै। मनुष्य का श्रपण करने में कर्तृत्व नही है यह समझ ...कर देवस्त्वेति कहा गया॥ २२॥ †

मा भेर्मा संविक्था। अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यज-
मानस्य प्रजा भूयात्त्रिताय त्वा द्विताय त्वैक-
ताय त्वा॥ २३॥ †

* दिवि नाको नामाग्नी रक्षोहणि विविक्तवनानां कि नाम स्वर्गस्थि::

*मा-क्था॥ अ०। अ-तृ। इ०। त्रि-त्वा। उ०। द्वि-त्वा। ज०। ए-त्वा। त्व०॥ २३॥
† श्रप्यमाणतया दीप्यमानत्वात्

का॰ २॰५॰२४॰ पक्वापक्वज्ञान के लिये मा भेरिति दोनों पुरोडा-
शों को स्पर्श करै॥ यजुर्गायत्री पु॰ हे पुरोडाश तू भय मत क-
रि। चलन मत करि॥ का॰ २॰ ५॰२५॰ अतमेरुरिति अपक्व
की भूभल करिके दावै वेद वा उपवेश करिके॥ आर्ची गा-
यत्री पु॰। यज्ञः (याग का हेतु पुरोडाश) अतमेरुः (भस्माच्छा-
दन करि ग्लानिरहित) होवै। यजमान की पुत्र पौत्रादि प्रजा
ग्लानरहिता हो। अर्थात् यजमान की प्रजा को कदापि दुःख
न हो॥ का॰ २॰५॰ २६॰ पिष्टलिप्तपात्र का प्रक्षालन और पिष्ट-
लिप्ताङ्गुलियों का प्रक्षालन पात्र में स्थित ही उल्मुक से तपाक-
र् गार्हपत्य के उत्तरतः परस्पर संगति को न प्राप्त होते को औ-
धावै त्रितायत्वेति प्रति मन्त्र से॥ १॰ दैवी बृहती त्रित देवत्या २॰
दैवी बृहती द्वित देवत्या ३॰ दैवी पङ्क्तिः एकत देवत्या। हे पात्र्य-
ङ्गुलिप्रक्षालनोदक त्रितनामक देवता के अर्थ तुम्हें ओज-
ता हूं इति शेषः। तथा द्वित के अर्थ तु॰। तथा एकत के अ॰॥
॥ पहिले किसी हेतु से डरे हुए अग्नि ने जल में प्रवे-
श किया फिरि देवताओं ने तिसे जानि कर ग्रहण किया तहां
अग्नि ने जल में वीर्य छोडा फिरि त्रित द्वित एकत तीनि पुत्र
हुए ते देवताओं के साथ यज्ञ में पात्री प्रक्षालनजललक्षण
भाग को लेते हुए यह श्रुति में कथा है शत॰१॰२॰३॰१॰॥२३॥
म॰ ४॰ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो
हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य

बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो बधः॥२४॥+

का॰२॰६॰१३॰देवस्य त्वेति स्फ्य लेकर॥देवस्य त्वेति व्याख्यातम् कण्डिका १०॰ऋ॰॥आददे यजुः पङ्क्तिः स्फ्यदेवत्या।देवताओं के उपकारार्थ वेदिखननादिद्वारेण अध्वर करने हारे स्फ्य को ग्रहण करता हूं॥का॰ २॰६॰१३॰तृणसहित सव्यहस्त में करिके दक्षिणहस्त से स्पर्श करि संहितास्वर से इन्द्रस्य बाहुः यह जपै॥ प्राजापत्या जगती स्फ्यदेवत्या। हे स्फ्य तू इन्द्र का दक्षिण बाहु है+। कैसा कि सहस्रभृष्टिः (सहस्रसंख्याक शत्रुओं का भूंजने हारा। शततेजाः (बहुधा दीप्यमानः। किं च वायु (केवल इन्द्र बाहु सदृश ही नही किंतु वायुसदृश भी) है। अत एव तीक्ष्णतेजाः (जैसे वायु वन्हि को प्रदीपन करि तीव्रज्वाला को उत्पन्न करने से तीव्रतेजा होता है। एवं स्फ्य भी स्तम्बछेदरूप कर्म करने से तीव्रतेजा है। तथा द्विषतो बधः (द्वेषि असुरों का हन्ता॥२४॥

+ येन बाहुना धृतस्तत्समानवीर्योपेतत्वाद्धि स्फ्यस्य बाहुरूपत्वारोपः॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं माहिंसिषं ब्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳪ शतेन पाशैर्यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥२५॥+ पृ-मू।अ॰।व्र-मू। द्यु॰।व-द्यौः।उ॰।ब-क्॥ऋ॰॥२५

का॰ २॰६॰१५॰१६॰ पृथिवि देवयजनीति तृण के नीचे भूमि-

+ दे-मू। अ॰। आ-भ्यः-इ॰। इ-ध।। उ॰॥२४॥

को स्फ्य से प्रहार करै॥ वेदिदेवत्यं यजुः। हे पृथिवि हे देवयज-
नि (देवता यजे जाते हैं जिसमें) तेरी ओषधीओं (तृणरूपाओं)
का मूल नहीं विनाश करता हूं॥ का॰ २·६·१७· व्रजं गच्छेति पु-
रीष (स्फ्यप्रहार करि खुदी मृदा) को ग्रहण करे॥ देवी जग-
ती पुरीषदेवत्या। हे पुरीष (स्फ्यप्रहारोत्पन्ना मृदा) तू व्रज (स्थि-
त होने के लिये चलती हैं गौएँ जहां तिस) को प्राप्त हो। तिस
कैसे कि गोष्ठान (गोयुक्तस्थान॰ गोत) को॥ का॰ २·६·१८· जि-
सस्थान से पुरीष ग्रहण किया तिस वेदि के स्थान को वर्षतु
त॰ इति देखै॥ देवी पङ्क्तिः वेदिदेवत्या। हे वेदे तेरे अर्थ द्युलोका-
भिमानी देव वर्षै (जलसेक करै। अर्थात् वर्षण करि खननजनि-
तदुःखशान्ति हो॥ का॰ २·६·१९· बधानेति स्फ्योत्खाता मृदा
को उत्कर में डाले॥ सावित्रं यजुः। हे देव सवितः जो हमलो-
गों को द्वेष करता और जिस शत्रु को हम द्वेष करते हैं तिस
उभयविध शत्रु को इस पृथिवी के छोर पर बन्धन करि (तहां
उत्कर में डाली हुई धूलि विषें निगूढ शत्रु का बन्धन करि
कि जहां भूमि के छोर पर अन्धतामिस्रनरक है+। किन्हों से
बन्धन करना तहाह कि शतसंख्या को बन्धनरज्जुओं से।
किं च इस अन्धतामिस्रनरक से तिसे कभी भी मत छूट-
ने दे॥ २५॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं-
गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव स-

+अ-मू॰न॰।प्र-म्।वृ॰व-धौ॥उ॰।व-क्।अ॰।अ-म्नः॥त्व॰।द्व-म्।आ॰।व-म्।
ई॰।व-धो॥ऊ॰।व-क्।मु॰॥२६॥

+अन्धे तमसि बध्नाति यस्मान्न मुच्यते अथवा पृथिव्याभागेति ९·२८·[illegible]॥

वितः परमस्यां पृथिव्याᳫं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳫं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥२६॥+

का॰ २·६·२१· अपाररुमिति दूजीवार प्रहरण आदिक करै॥ आसुरी गायत्री असुरदेवत्या। पृथिवि के सम्बन्धि देवयजनाख्य वेदिस्थान सें अररुनामा असुर को अपबध्यासम् (निकालिकर) जेसे हत हो तैसे करता हूं॥ इस मंत्र से दूसरी वार प्रहार करै और व्रजम् वर्षतु बधानेति तीनों मन्त्रों का प्रयोग तथा अर्थ पूर्ववत्॥ का॰ २·६·२२· अररो दिवमिति उत्कर के अभिमुख हाथों को रखै॥ यजुरनुष्टुप्। हे अररो (असुर) दिव (द्युलोक यागफलरूप) को तू मत प्राप्त हो॥ का॰ २·६·२३· द्रप्सस्त इत्यादि तीसरी वार प्रहरणादिक करै॥ यजुर्गायत्री वेदिदेवत्या। हे वेदिदेवते तुरु पृथिवी सें जो द्रप्स (उपजीव्य रस) है सो द्युलोक को न जावे॥ व्रजं गच्छेत्यादि पूर्ववत्॥२६॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परि गृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परि गृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परि गृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च॥२७॥+

का॰ २·६·२५· जिस स्थान से अररु निकाला तहां वेदिका परिमा-

+अ-मू॰। अ॰। ब्र-मू॰। द्रू॰। व-यो॥ उ॰। ब-कू। कं॰। अ-प्र॥ त्व॰। वृ-नू। आ॰। ब्र-मू॰। द्रू॰। व-यो॥ ऊ॰
+ग-मि। अ॰। त्रै-मि। दू॰। जा-मि। उ॰। सु-सि। क॰। स्यो-सि। त्व॰। ऊ-च। आ॰॥२७॥

ण निश्चय करने के लिये दक्षिण पश्चिम उत्तर तीनों दिशाओं में स्फ्य से तीनि रेखाएँ करै गायत्रेणेति प्रतिमन्त्र करि। इस कर्म को पूर्वपरिग्रह कहिते हैं॥ गायत्रेण १ त्रैष्टुभेन २ जागतेन ३ त्रयाणामासुरी अनुष्टुब्विष्णुर्देवता। ते प्राञ्चं विष्णुं निपाद्य छन्दोभिरभितः पर्यगृह्णन्निति श्रुतेः १॰२॰५॰६॰। हे विष्णो तुम्हें गायत्र्यादि तीनों छन्दों की स्फ्य में भावना करि तीनों दिशाओं में परिग्रहण करता हूं। एवं त्रिष्टुप् जागत उत्तर मन्त्रों में। ततः छन्दोदेवता तीनों दिशाओं में असुरों से तुम्हें पालन करेंगे। पूर्वदिशा में आहवनीय पालक है इतिभावः। प्रजापति के पुत्र देवता और असुरों ने स्पर्धा (लडाई) किई जब देवताओं को हारे जानि भूमि को असुरों ने बांटा तहां देवताओं ने वामन रूपविष्णु को आगे में करिके असुरों के निकट जाकर याचना कीई कि हमारे अर्थ भी भूमि का अंश देना उचित है। फिरि असुरों ने देवताओं को निरादर से कहा कि यह विष्णु जितने भू भाग में शयन करै तितना आपलोगों का है। फिरि देवताओं ने हम को इतना ही बहुत है यह कहिकर पूर्व में विष्णु को डालि गायत्रेणेत्यादि मन्त्रों से यज्ञभूमि को ग्रहण किया। सो यज्ञो विष्णुः जहां ठैरा है वोह ही यज्ञभूमि है यह तिन्हों करि विदित होने से वेदि यह तिस भूमि का नाम हुआ यह शत॰१॰२॰५॰१-७॰ श्रुति कथा समझ करि वेदि ग्रहण है॥ का॰२॰६॰३१॰ वेदिखनन से पहिले किया पूर्व परिग्रह पीछे किया उत्तर परिग्रह है। तहां भी पूर्ववत् तीनो दिशाओं में सुक्ष्मा स्योना ऊर्जस्वतीति मन्त्रों करि स्फ्य

से तीनि रेखाएँ करै॥ त्रयाणां वेदिर्देवता १० प्राजापत्या गायत्री २० आसुरी जगती ३० आसुरी पङ्क्तिः। हे वेदे तू सुक्ष्मा (खनन करि अश्मादि दोष दूरि होने से शोभना भूमि) है। शिवा (उग्र असर के निकालने से शान्ता) है। गुणद्वयस्यान्योन्यसमुच्चयार्थौ चकारौ एकोऽयं मन्त्रः॥ स्योना (सुखरूपा) है। सुखदा (देवताओं के भली भांति बैठने योग्या) है। चकारौ पूर्ववत्। द्वितीयोऽयं मन्त्रः॥ ऊर्जस्वती (अन्नवती) है। पयस्वती (दुग्धावती) है। चौ पूर्ववत्। तृतीयोमन्त्रः॥२७॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम्। यामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो ऽअनुदिश्य यजन्ते॥ प्रोक्षणीरासादय द्विषतो बधोऽसि॥२८॥ +

का० २०६०३२० पुरा क्रूरस्येति मन्त्रेण खोदी हुई वेदि में लोष्टकृत विषमता की निवृत्ति के अर्थ समीकरणरूप मार्जन करै॥ अघशंसहष्टा चन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप्। आत्रेय माख्यायिका मन्त्रेऽभिप्रेता। कभी देवताओं का असुरों के साथ संग्राम उपस्थित हुआ तब देवताओं ने आपुस में मन्त्र किया कि जो इस भूमि का उत्कृष्ट देवयजनस्थल है तिसे चन्द्रमा मे स्थापन करिके युद्ध करैं तहां जो हमारी पराजय हो तो देवयजन में याग करिके फिरि दैत्यों को पराजय करेंगे यह भली भांति विचारि भूमि के सारभाग देवयजन को चन्द्रमा में स्थापन करते हुए सो कृष्णवर्ण अबभी चन्द्रमा में दीखता है इस आख्यान को मन्त्र कहिता है शत०१०२०५०१८॥ मन्त्रार्थस्तु।

+ पु-न्ते। अ० प्रो-य। इ० द्वि-सि। ज०॥२८॥

हे विरप्शिन् (विष्णो परमेश्वर +) तू सुनि अनुग्रह करि इति प्रैष:। विसृप (नानायोधयुत *) क्रूर (युद्ध ५) से पहिले अर्थात् देवता जीवदानु (जीव की धारण करने हारी सारभूत) जिस पृथिवी को ऊँची ग्रहण करिके स्वधाओं (वेदों ॐ) सहित चन्द्रमा में स्थापन करते हुए धीरा: (मेधावीलोग) तिसी (चन्द्रस्थापृथिवी) को अनुदिश्य (दर्शन से संपादन करिके सोही भूमि इस वेदी में है यह भावना करि) याग करते हैं॥ का॰ २॰६॰३४॰ प्रोक्षणीरासादयेति आग्नीध्र प्रति प्रैषा (अध्वर्यु का वचन) है॥ यजुरुष्णिक् प्रैष:। हे आग्नीध्र तू प्रोक्षणी (जलों) को वेदी में स्थापन करि॥ का॰२॰६॰४२॰ द्विषतो वध इति स्फ्य को उदगग्र करि उत्कर में फेंके॥ यजुर्गायत्री अभिचारिकम्। हे स्फ्य: तू द्वेषीओं (शत्रुओं) का हिंसक है॥ २८॥

अ॰ १०॰ प्रत्युष्टꣳ रक्ष॒: प्रत्यु॑ष्टा॒ अरा॑तयो॒ निष्ट॑प्तꣳ रक्षो॒ निष्ट॑प्ता॒ अरा॑तय:। अनि॑शितोऽसि सपत्न॒क्षिद्वा॒जिनं॑ त्वा वाजे॒ध्याय॑ै॒ संमा॑र्ज्मि। प्रत्यु॑ष्टꣳ रक्ष॒: प्रत्यु॑ष्टा॒ अरा॑तयो॒ निष्ट॑प्तꣳ रक्षो॒ निष्ट॑प्ता॒ अरा॑तय:। अनि॑शितासि सपत्न॒क्षिद्वा॒जिनी॑ त्वा वाजे॒ध्याय॑ै॒ संमा॑र्ज्मि॥ २९॥ +

का॰ २॰६॰४६॰ जैसे सूर्प और अग्निहोत्रहवणी प्रतपन किया (तैसे स्रुव का भी करना॥ है व्याख्याते काण्डी ७॰॥ का॰ २॰६॰४६॰ वेदाग्र करि भीतर से पूर्व को संमार्जन करे मूल से ले अग्रपर्यन्त अनिशितो ऽसीति मन्त्र से फिरि वेदग्र

+ प्र॰-य:॥ अ॰॥ नि॰-प:॥ इ॰॥ अ-र्ज्मि॥ उ॰॥ प्र॰-य:॥ स॰॥ नि॰-य:॥ ल॰॥ अ॰-र्ज्मि॥ आ॥ २९॥

+ विरप्शीति महन्नाम निघ॰ ३॰३॰ विविधं रपति वेदत्रयरूपेण शब्दं करोतीति विरप्शी। यज्ञो वेदित्वं गतो विष्णु:।
* विविधं सर्पन्ति योधा यस्मिन्निति विसृप्।
५ क्रूर शब्दोऽत्र संग्रामवाची। संग्रामो वै क्रूरमिति १॰२॰५॰१९॰ श्रुते:।
ॐ स्वधाशब्दो यद्यप्यन्नवाची तथाप्यत्रान्नहेतुभूता वेदत्रयी कथ्यन्ते। यां चन्द्रमसि ब्रह्मणा दधुरिति श्रुते: १॰२॰५॰१८॰ ब्रह्मणा वेदेन सहेत्यर्थ:।

...हिर में स्रुवपुष्कर का बुध्न से ले मूलपर्यन्त पश्चिम
... संमार्जन करै इसी मन्त्र से फिरि अग्निसमीप में जाकर
...र तपाके जल उपस्पर्श करि अध्वर्यु के अर्थ समर्पण
...जापत्या बृहती स्रुवदेवत्या। हे स्रुव तू अनिशित
... विषय में तीक्ष्ण उपद्रवकारी नहीं होता) है यतः
...क्षित (शत्रुओं का मारने हारा। अत एव तुझे भलेप्रका
... करता हूं। कैसे तुझे कि वाजिन (अन्नवन्त+) यद्वा य
...न‡) को। किसलिये संमार्जन करता हूं कि वाजेध्या (यज्ञ
...की दीप्ति के अर्थ। अर्थात् शोधित स्रुवा करि घृत लेने और होम
...ते में अग्नि प्रकाशे है। तिस के प्रकाश से आहुतिफलभूत अ-
...न प्रकाशित होता है॥ का॰ २.६.४७.४८. अनिशितेति मन्त्रे
...ण तीनों स्रुचाओं (जुहू उपभृत् ध्रुवा) को संमार्जनकरि (प्रत्यु
ष्टमिति तपा-तपाकर) वेदि में स्थापन करने को अध्वर्यु के
अर्थ देवे॥ प्रत्युष्टम् निष्टप्तम् व्याख्याते। अनिशितेत्यपि व्या-
ख्यातम्। स्रुव के पुरुष होने से आदि में संमार्जन है।
स्रुचा का स्त्री होने से पीछे*। जुह्वादिक स्रुचाओं के स्त्रीलि-
ङ्गत्व से अनिशिता वाजिनीमिति विशेषणों का स्त्रीत्व वि-
शेष है॥२९॥

अदि॑त्यै॒ रास्ना॑सि॒ विष्णो॒र्वे॒ष्पो॒ऽस्यू॒र्जे त्वाद॑ब्धेन
त्वा॒ चक्षु॒षाव॑पश्यामि॥ अ॒ग्नेर्जि॒ह्वासि॑ सु॒हूर्दे॒वे-
भ्यो॒ धाम्ने॑धाम्ने मे भव॒ यजु॑षेयजुषे॥३०॥ +

+ यज्ञश्चारा अन्न हेतुत्वादन्नवानः।

+ योषा वै स्रुगृषा स्रुव इत्यादि ३.३.१.२.५ श्रुतेः।

† अ-सि।अ॰। वि-सि। इ॰। उ- त्वा। उ॰। अ-बे। अ॥३०॥

‡ यज्ञो हि देवानामन्नमिति श्रुतेः। ५.१.१.२.। वाजं यज्ञाख्यमन्नमर्हतीति वाजिनः।

का॰ २॰७॰१॰ आग्नीध्र योक्र (त्रिगुण मुञ्जमयी रशना) करि गार्हपत्य से नैर्ऋत्य दिशा में ईशानाभिमुखी बैठी हुई यजमानभार्या को परिधानवस्त्र से वाहिर नाभि से नीचे कटिप्रदेश में प्रदक्षिण वेष्टित करै अदित्यै रास्नासीति॥ हे योक्र देवत्ये १॰ यजुर्गायत्री २॰ दैव्यपङ्क्तिः हे योक्र तू अदिति (पृथिवी) की रशना (करधनी) है॥ का॰२॰७॰ २॰ ३॰ तिस योक्र के दक्षिणपाश को प्राङ्कुस्थानीय उत्तरपाश में द्विगुण खुरसि करि दक्षिणयोक्रपाश को ऊपर को उद्गूहन करै विष्णोर्वेष्योऽसीति॰ ग्रन्थि न करै॥ हे दक्षिणपाश तू विष्णु (यज्ञ) का वेष्य (व्यापक) है॥ का॰ २॰७॰४॰ ऊर्जे त्वेति आज्य को गार्हपत्य से उतारि करि पत्नी के आगे में रखि पत्न्याज्यमवेक्षस्वेति कहै॥ आज्यदेवत्यानि त्रीणि १॰ दैव्यनुष्टुप् २॰ यजुः ३॰ साम्नी जगती। हे आज्य तुझै ऊर्जे (अन्नरसलाभ) के अर्थ अग्नि परसे उतारता हूं इतिशेषः। उतारा हुआ घृत सुस्वादु होता है॥ का॰२॰७॰४॰ अदब्धेनेति पत्नी आज्य को देखै॥ हे आज्य तुझै अनुपहिंसित आखों से अधोमुखी होकर देखती हूं। किं च हे आज्य तू अग्नि की जिह्वा है (जब आज्य अग्नि में होमा जाता है तब जिह्वा ऐसी ज्वाला उत्पन्न होती है अतः तू अग्नि की जिह्वा है। कैसा है तू कि देवताओं के अर्थ सुहूः (भले प्रकार होमिये है वोह। यद्वा जिह्वाविशेषणम् भली भांति बुलाइयें हैं देवता जिस से वोह। अर्थात्

देखि देवता आते हैं। इस हेतु मेरा धाम्ने धाम्ने(तत्त-
ोपभोगस्थानसिद्ध्यर्थ) हो। यजुषे यजुषे(तत्तद्या-
के अर्थ योग्य)हो॥३०॥

सवितुस्त्वा प्रसव ऽउत्पुनाम्यछिद्रेण पवित्रेण
सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसव ऽउत्पुनाम्यछि-
द्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्र-
मस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामना-
धृष्टं देवयजनमसि॥३१॥+

इति सँहितायां दशमोऽनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुर्वेदे माध्यन्दिनीयायां वाजस-
नेयसँहितायां दीर्घपाठे प्रथमोऽध्यायः १

का॰२॰७॰७॰ सवितुस्त्वेति आज्य को उत्पवन करे॥ सविता देवता की आज्ञा में वर्तमान हो तुम्हे उत्पवन करता हूं। व्याख्यानमन्यत् काण्डी १२॥ का॰२॰७॰८॰ और प्रोक्षणी को पूर्ववत् उत्पवन करे सवितुर्व इति॥ प्राजापत्या पङ्क्तिरापो देवता। तुम्हें उत्पवन करता हूं इति व्याख्यातम् काण्डी १२॥ का॰२॰७॰९॰ तेजोऽसीति अध्वर्यु वा यजमान आज्य को देखे॥ आज्यदेवत्ये द्वे१ यजुस्त्रिष्टुप् २ आर्षी

+सं-मि।अ॰।इ॰ति-सि।उ॰।धा-सि।म॰॥३१॥

उष्णिक्। हे आज्य तू तेज (शरीरकान्ति का हेतु होने से तेज) है। शुक्र (स्निग्धरूपत्व से दीप्तिमान्) है। अमृत (विनाशरहित) है। बहुत दिवस रखने से ओदनादिवत् पर्युषितत्वादि दोषों के अभाव से वा यज्ञहेतुत्व से अविनाशित्व है॥ का॰ २ ७ ११ १२ धाम नामेति एकवार मन्त्र पूर्वक और तीनिवार चुपके से चारि स्रुवाओं को घृत से पूर्ण करै॥ हे आज्य तू धाम (देवताओं की चित्तवृत्ति का स्थान) है। तथा नाम (अपने प्रति नमानेवाला) आज्य को देखि भोजन के लिये सब नमते हैं। तथा देवताओं का प्रिय है। अनाधृष्ट (अनभिभूत गतसारत्व दोष करि अतिरस्कृत चरुपुरोडाशादिक चिरस्थिति से गतसार होते हैं ऐसा नहीं) है। देवयजन (यागसाधन) है ऐसे तुम्हें ग्रहण करता हूं इति वाक्य शेषः॥३१॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः१
इति भाष्ये दशमोऽनुवाकः१०

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृवैयाघ्रपद्यान्वयविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरैणिकिरणेय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये शाखाद्याज्यग्रहान्तः प्रथमोऽध्यायः॥१॥

ओम् तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु

हरिः ओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वेदुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः१

अ॰१॰ कृष्णो॑ऽस्याखरेष्ठो॒ऽग्नये॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ वेदि॑रसि ब॒र्हिषे॑ त्वा॒ जुष्टां॒ प्रोक्षा॑मि ब॒र्हिर॑सि स्रु॒ग्भ्यस्त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॒म्यदि॑त्यै॒ व्युन्द॑नम्॥१॥

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

राज्ञागिरिप्रसादेन श्रीवेदार्थप्रदीपके॥

इध्मप्रोक्षादिपिण्ड्यान्तोद्वितीयोऽध्यायईर्यते२

कृष्णोऽसीति आसुरी उष्णिक् इध्मो देवता। वेदिरसीति आसुरीअनुष्टुप् लिङ्गोक्त देवता। बर्हिरसीति प्राजापत्याउष्णिक् लिङ्गोक्त देवता। का॰ २॰७॰१९॰ इध्म पूलक को छुडाकर प्रोक्षण करै। और वेदि को प्रोक्षण करै। बर्हि ले वेदि में पूर्वग्रन्थि करिके प्रोक्षण करै क्रमपूर्वक कृष्णोऽसीति प्रतिमन्त्र से इति सूत्रार्थः॥ अथमन्त्रार्थः॥ हे इध्म तू कृष्ण (कृष्णमृगरूपयज्ञ) है +। कैसा है कि आखरेष्ठः (समन्तात् कठिन वृक्ष में स्थित। यद्वा खं (स्वर्ग) को राति (देता) खर (आवनीय) तहां समन्तात् स्थित॥ यज्ञ कभी देवताओं से दुःखित हो अपने छिपने के अर्थ कृष्णमृग होके वन में यज्ञियतरु के मध्य में प्रवेश करि कहीं कठिन वृक्ष में स्थित हुआ सो इस अभिप्राय से कृष्ण आखरेष्ठ ये दो शब्द कहे गये तथा च शत॰१॰१॰४॰१॰ यज्ञो ह देवेभ्योऽपचक्राम

+ इध्मपूलकस्य यज्ञसाधनत्वाद्यज्ञलोपत्वात्

+ कृ-मि। अथ वे-मि। इ। ब-मि। उ॰॥१॥

स कृष्णो भूत्वा चचारेत्यादि श्रुति:। अतः अग्नि देवता के अर्थ प्रिय तुम्हे प्रोक्षण करता हूं शुद्ध्यर्थ जल से इति शेष:॥वेदिरसीति वेदी को प्रोक्षण करे। तू वेदि (देवताओं करि असुरों से लब्ध होंने के कारण वेदि) है इस हेतु बर्हिओं के धारणोपयोगिता करि प्रिय तुम्हे प्रो०+। बर्हिरसीति बर्हिः प्रोक्षणम्। हे दर्भ बर्हि: (बहुत होंने से वेदिकी वृद्धि करने समर्थ) है। अतः स्रुचिधारण से प्रिय तु०॥१॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा॥२॥+

का०२.७.२०. प्रोक्षणी के शेषजल को बर्हि पूलक के मूल में औंधावै अदित्यै व्युन्दनमिति॥ प्राजापत्या गायत्री आपो दे०। हे प्रोक्षण शेषोदक तू अदिति (भूमि) का क्लेदन (प्रस्वेद) है॥ का०२.७.२१. अध्वर्यु हाथ करि पवित्रा प्रणीता में रख तिस बर्हि पूलक के पूर्व भाग से विष्णोरिति प्रस्तर को निकाले॥ दैवी पङ्क्ति: प्रस्तरो दे०। हे प्रस्तर दर्भमुष्टिरूप तू विष्णु (यज्ञ) की शिखा है॥ का०२.७.२२. ऊर्णम्रद समिति वेदि को दर्भों से आछादन करे॥ आसुरी गायत्री वेदिर्दे०। हे वेदे तुम्हे दर्भों से आच्छादन करता हूं। कैसी तुम्हे ऊर्णा जैसी कोमल को (जैसे स्वामी के बिठलाने को भूमि की काठिन्यता के अभावार्थ कम्बलादि बिछाते हैं तैसे दर्भों से आछादिता वेदि कोमल हो। पुनः कैसी कि देवताओं के उपकार के लिये स्वास्था (सुखपूर्वक भोजन के लिये आसन करि बैठते हैं जिसपर तिस) को॥ का० २५.२.७. भुवपये

+ पृथ्वीके प्रक्षालनेवेदे: प्रजात्यपस्य बर्हिषो धारकत्वं युक्तम्।

+ अ-सि। अ०वि-सि। क्रा-क-भ्य:। उ०। भु-हा। क्र०। ल्ह०। भू-हा। आ०॥२॥

स्वाहेति स्कन्न (हवि के ग्रहण काल में परिधियों से बाहिर विखरे ह विः) को स्पर्श करे॥ भुवपतय॰ इति दैवीजगती। भुवनपतयेति द्वे प्रा जापत्या गायत्र्यौ। त्रयाणामग्निर्देवता। एतन्मन्त्रत्रयस्यात्रोत्कर्षः। भुवनपत्यादयः तीनों अग्नि के भ्राता। स्वाहा शब्द निपात देवताओं प्रति दानवाची+। मन्त्रार्थस्तु। हविग्रहण काल में परिधियों से वाहर जो हवि विखिरा सो भुवपत्यादयः अग्नि के भ्राताओं को दिया इति॥ आशय यह है पहिले अग्नि के भ्राता वषट्कार की भय से भूमि को प्रवेश करते हुए और तिस दुःख करि अग्नि भी भाग करि जल में प्रवेश करता हुआ फिरि देवताओं करि लाया अपनें अधिकार पर स्थाप्यमान ऐसे बोला कि जो इन मेरे भाइयों करि मुझै धारण करो और तिन के लिये यज्ञ भाग की कल्पना करो। फिरि ते अग्नि के भाई परिधि हुए और तिन्हों का स्कन्न हवि भाग किया इति कथा तथा च शत॰ १॰३॰३॰१३-१६॥२॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः॥३॥+

का॰ २॰८॰१॰ मध्यम दक्षिण उत्तर परिधियों को गन्धर्वः इन्द्रस्य मित्रावरुणौ प्रतिमंत्र करि स्थापन करे॥ गन्धर्वस्त्वा इन्द्रस्य मित्रा

+ स्वाहाकारे न वषट्कारे न [illegible]

+ ग-तः। अ॰। इ-तः। इ-मि-तः। उ॰॥३॥

वरुणौ त्रीणियजूꣳषि त्रयः परिधयो देवता। आद्यो पश्चात्। हे परिधे विश्वावसु नामा गन्धर्वः तुझे आहवनीय से पीछे सर्वतः स्थापन करै (सर्वत्र वास करता-विश्वावसु) द्युलोकस्थ सोम को रक्षा करने तिस के समीप में सर्वत्र गन्धर्व वास करते हैं इति श्रुत्यन्तर कथा। किसलिये स्थापन करै। आहवनीय स्थानरूप के हिंसा परिहारार्थ। परिधि के अभाव में असुर हिंसा करते हैं। किंच नू केवल अग्नि ही का परिधि नहीं यजमान को भी असुरों से रक्षा करने पश्चिम दिशा में स्थापित है। और आहवनीय का प्रथम भ्राता भुवपतिनामा अग्निरूप तू है। स्तुति योग्य अत एव होताओं करि स्तुति किया॥ दक्षिणं परिधिं परिदधाति। हे अग्नि के द्वितीय भ्राता भुवनपतिनामा द्वितीय परिधे तू रक्षा करने को समर्थ है इस हेतु इन्द्र का दक्षिण बाहु है विश्वस्येत्यादि व्याख्यातम्॥ तृतीयमुत्तरं परिधिं परिदधाति। हे तृतीय परिधे (अग्नि के तीसरे भ्राता भूतानांपते) मित्रावरुणौ (वाय्वादित्यौ) स्थिर धारण करि उत्तर दिशा में तुझे सर्वतः स्थापन करें। अन्यत्पूर्ववत्॥३॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे॥४॥

का॰२॰८॰२॰ प्रथम परिधि को समिध छुवा करि वीतिहोत्रमिति मन्त्र से आहवनीय में आधान करै॥ विश्वावसु ऋषिः अग्निर्देवता गायत्रीछन्दस्का। हे कवे (क्रान्तदर्शिन्-भूतभविष्यतवर्तमान दूरवर्ती पदार्थों के जाननेवाले) हे अग्ने यागनिमित्त में तुझे हम इस इध्म

काष्ठ करि दीपन करते हैं। कैसे तुम्हें कि वीति होत्र। पुत्रपौत्र पशुध-
नादि की समृद्धि के अर्थ होम जिस का वा होतृ कर्म में अभिला-
ष जिस का तिसे तथा कान्तिमान और महान्त को॥ ४॥

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिश-
स्त्यै। सवितुर्बाहू स्थ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वा-
सस्थं देवेभ्य आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः
सदन्तु॥ ५॥ +

का॰२॰८॰३ परिधि को विन स्पर्श किये समिदसीति मन्त्र क-
रि दूसरी समिधा अग्नि में स्थापन करै॥ देवी बृहती अग्निर्दे-
वता। हे इध्मकाष्ठ तू अग्नि का सम्यग्दीपन है॥ का॰२॰८॰४॰
अध्वर्यु बैठिकर आहवनीय को देवता संहितास्वर से सूर्यस्त्वा इ-
ति पढै॥ आसुरी गायत्री लिङ्गोक्तदेवता। हे आहवनीय पूर्वदि-
शा में सब हिंसाओं से सूर्य तुम्हें रक्षा करै। अर्थात् जे कोई हिंसा
प्रसक्ता तिन्हें परिहरे। इतर तीनि दिशा में तीनों परिधि रक्षक हें
पूर्व में तिन्हों के अभाव से सूर्य है +॥ का॰२॰८॰५॰ दो तृण प्र-
स्तरस्थापनार्थ उदगग्रे स्थापन करै सवितुरिति मन्त्र करि॥
याजुषी गायत्री विधृति॰। हे तृणे तुम दोनों सविता की बाहू हो
प्रस्तरणधारण करि सूर्य की बाहू तुल्य हो॥ का॰२॰८॰१०॰ तिन्हों
पर प्रस्तर बिछावै ऊर्णम्रदसमिति मन्त्र करि॥ आसुरी गायत्री प्र-
स्तरो दे॰। ऊर्णा वत् कोमल देवताओं के सुखासन के अर्थ तुम्हें
बिछाता हूं॥ का॰२॰८॰११॰ आत्वा इति मन्त्र से प्रस्तर प्रति हा-

+ कुर्वे व. आसितः परिधयोभवन्नथैतत्सूर्यमेव पुरस्ताद्गोप्तारं करोतीति शत॰१॰३॰४॰८॰ श्रुतेः॥

+ स-सि। अ॰। सू-स्त्यै। वृ॰। स-स्थ॥ उ॰। ऊ-भ्यः॥ स्व॰। आ-न्तु। ल॰॥ ५॥

थ रखे॥ आसुरी अनुष्टुप् प्रस्तरो दे॰। वसवो रुद्रा आदित्याः(क्रमेण प्रातः-माध्यन्दिन-तृतीय) तीनों सवनों के देवता तुझे सर्वतः प्रसारें॥५॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद। ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम्॥६॥+

का॰२॰८॰१२॰१३॰ अध्वर्यु आग्नीध्र करि समर्पिता जुहू को लेकर सव्य हस्त से अविमुक्त प्रस्तर पर प्रागग्र रखे इतर मन्त्रों से उपभृत् और ध्रुवा को रखे॥ घृताच्यसि जुहूर्नाम्नेति साम्नी त्रिष्टुप् जुहूर्दे॰। हे जुहू तू घृताची (घृतपूर्णा) और नाम करि जुहूः (होमनेवाली) है। सो तू प्रियधाम (देववल्लभघृत+) सहित इस प्रस्तर पर स्थित हो॥ उपभृत् को रखे॥ सा-त्रि॰ उपभृद्दे॰। उप (समीप में स्थित हो आज्य को धारण करता-उपभृत्। अन्यद्व्याख्यातम्॥ ध्रुवा को रखे॥ सा-त्रि ध्रुवादे॰। जैसे होम के अर्थ जुहू उपभृत् चलते हैं तैसे यह नहीं चलती इस हेतु नाम करि ध्रुवा है। अन्यदुक्तम्॥ का॰२॰८॰१५॰ प्रियेण धाम्नेति आज्यस्थाली पुरोडाशादि प्रत्येक हवियों को वेदिपर रखिके॥ याजुषी जगती हविर्दे॰। हे हवि घृत सहित प्रियस्थान में स्थित हो इत्येकैकं हविः सम्बो-

+प्रियधाम घृतमेतन्नामयम् देवानां प्रियतम यदाज्यमिति श॰१॰७॰२॰१९ श्रुतेः।

+घृ-द। अ॰। इ॰। उ॰। प्रि-द। क॰। ध्रु-म। ल॰। पा-य। अ॰॥६॥

अवचनम्॥का०२.८.१९ ध्रुवाअसदन्निति सवों को स्पर्श करै॥यजुः विष्णुर्दे० ऋत(अवश्य भाविफलोपेत सत्य यज्ञ) के स्थान में जे हवि रखे तिन्हें हे विष्णो(व्यापक यज्ञ पुरुष) रक्षा करि और यज्ञ को तथा यज्ञपति(यजमान) को रक्षा करि॥का०२.८.२० पाहि मामिति अपने को स्पर्श करै॥याजुषी गायत्री विष्णुर्दे० मुरुयज्ञ करानेवाले अध्वर्यु को रक्षा करि॥६॥

अ०२ अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितᳬं सम्मार्ज्मि। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तमस्कन्नमद्य॥७॥+

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यᳬं सम्भ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात्॥८॥+

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवीस्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः॥९॥+

का०३.१.१३ इध्मबांधने के तृणमय जून से दक्षिण परिधि के समीप अग्नि को तीनि वार मार्जन करै अग्ने वाजजित मन्त्र करि एकवार चुपके से दो वार तैसे ही मध्यमोत्तर परिधिओं को॥ यजुः अग्नि दे० हे वाजजित(अन्नों के जीतनेवाले) हे अग्ने तुझे शोधन करता हूं। कैसे तुझे कि अन्नसम्पा-

+अ-र्ज्मि। अ०न-भ्यः। इ०।स्व-भ्यः।उ०।सु-मू।ऋ०॥७॥
+अ-म्। लृ०।क-सि। अ०।इ-हा। ई०॥८॥ +सं-तिः।ऊ०॥९॥

दनोपयुक्त तथा अन्नप्रतिबन्धनिवारक को॥ का॰ ३॰ १॰ १५॰ आहवनीय से पश्चिम हाथ जोडे नमो देवेभ्य इति॥ दैवीपंक्तिः देवा दे॰। जे देवता अनुष्ठान को अनुग्रह करते हैं तिन्हों के अर्थ नमस्कार॥ का॰ ३॰ १॰ १५॰ पूर्वमुख करि आदि में देवताओं को अत्यर्थ अञ्जलि करी स्वधा पितृभ्य इति पितरों को अत्यर्थ दक्षिणमुख उत्तान अञ्जलि करै॥ दैवीपंक्ति पितरो दे॰। जे पितर (पालक) हैं तिन्हों के अर्थ स्वधा हो + अर्थात् जो देने योग्य है सो दूंगा॥ अनेन मन्त्रद्वयेन देवाः पितरश्चोपचर्यन्ते॥ का॰ ३॰ १॰ १६॰ सुयमे म॰ इति जुहू उपभृत को लेके॥ आर्ची उष्णिक् जुहूपभृद्देवते। हे जुहूपभृतो मेरे अर्थ जैसे तुम में स्थित आज्य न गिरै तैसे धारण करो॥७॥ तथा सति आज इस अनुष्ठानदिन में देवताओं के उपकारार्थ तुम में स्थित घृत भूमि में जैसे न गिरै तैसे पोषण वा धारण करता हूं॥ का॰ ३॰ १॰ १६॰ अग्निरणा विष्णविति दक्षिणदिशा (यजनेकेस्थान) प्रति गमन करै॥ याजुषी त्रिष्टुप् विष्णुर्दे॰। हे विष्णो (व्यापक॰ यज्ञपुरुष) पाद करि तुझे अवक्रमण नहीं करता अर्थात् पाद करि अतिक्रमणदोष मुझे न हो॥ का॰ ३॰ १॰ १८॰ वसुमती मिति अवस्थान करि ईशानाभिमुख स्थित होके॥ अग्निदेवत्यं यजुः। हे अग्ने तेरी छाया (छायावत्समीपवर्तिनी) वसुमती (भूमि) को सेवन करूंगा। स एव सेवाप्रकारः कथ्यते। हे वसुमति तू विष्णु (यज्ञ) का स्थान है। अर्थात् यहां बैठि कर यज्ञ

+ स्वधाशब्दो निपातः पितृउद्देश्य देयद्रव्यस्य दाने वर्तते।

करने को समर्थ होते हैं। आहवनीय के समीपवर्तित्व से इस भूमि का यज्ञस्थानत्व है। यद्वायमर्थः। हे अग्ने तेरी धनवती (धनप्राप्तिकरी) छाया को सेवन करूंगा (तेरी पादछाया में वास करूंगा क्योंकि तू विष्णु का स्थान है॥ का॰ ३. २. १. इन इन्द्र इति हामें॥ इन्द्रदेवत्यं यजुः। पूर्वमन्त्र में यज्ञसम्बन्धि जो स्थान कहा सो ही देवताओं के विजयहेतुत्व से इनः शब्द करि परामृश्यते। देवयजनव्यतिरिक्त भूमि के असुराधीनत्व करि तहां देवताओं की पराजय में भी यज्ञप्रदेश पराजय रहित है। सो ही मन्त्र करि कहियेहै॥ इन्द्र इस देवयजनस्थान में उद्युक्त होकर इति शेषः। वीर्य (शत्रुवधरूपकर्म) करैगा अत एव यज्ञ उन्नति को प्राप्त होगा। इन्द्र के वीर्य करते शत्रुकृतविघ्नाभाव से यज्ञ का औन्नत्य है॥ ८॥ तिस हेतु हे अग्ने तू होता के कर्म को जानि और दूतकर्म को जानि +। तुरू ऐसे को द्यावापृथिवी पालन करें। हे अग्ने तू भी द्यावापृथिवी दोनों लोक देवताओं को पालन करि ऐसे अन्योन्यपालन से इन्द्र हमारे दिये आज्य हवि करि देवताओं के अर्थ स्विष्टकृत (भले अभीष्टफल का दाता) हो। जो-जो हम करें सो-सो इष्ट सर्व वे कल्परहित करें। स्वाहा सुहुतमस्तु। अर्थात् इन्द्र देवता को उद्देश करि यह आज्य दिया॥ का॰ ३. २. २. संज्योतिषेति जूहू के आज्य का विन्दु ध्रुवा में डाले॥ याजुषी गायत्री आज्य दे॰। ध्रुवास्थिताज्यरूपज्योति सहित जुहू मिच्यमानरूपज्योति संगत हो॥ ९॥

+ होत्रं होतुः कर्माणि। तथा च श्रुतिः। श॰ १।४।४।७। उभयं वा एतदग्निर्देवानां होता च दूतश्च इति

अ॰ ३॰ मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी मातोप माम्पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा॥१०॥

का॰ ३॰४॰२९॰ प्रधानयाग के अनन्तर पुरोडाशशेषप्राशन के समय होता के आशिष देते यजमान जपै॥ आशीः प्रतिग्रहणंयजुः॥ इन्द्र (परमेश्वर) मेरा अपेक्षित इन्द्रिय (वीर्य) मुझ यजमान में स्थापन करै। किं च दैवमानुषभेद करि द्विविध धन और धनवन्त हम यजमानों को सेवन करैं। किं च हम यजमानों के आशिष अभीष्टार्थ के आशंसन हों। किं च हमारे पूर्वोक्त आशिषः सत्य हों॥

का॰ ३॰४॰१८—२०॰ जब कि होता द्यावापृथिवी का उपह्वान करै तब दोनों पुरोडाशों से एक-एक अंश को छै-छै भाग करि आग्नीध्र के अर्थ देवै और सो उपहूतेति मन्त्र करि भक्षण करै॥ पृथिवीदे॰ यजुः॥ जो यह पृथिवी दीखै है सो जगत की माता (निर्मात्री) मुझ करि अभ्यनुज्ञाता और सो पृथिवी मातृत्व करि हमलोगों मैं भावितासती मुझे हविःशेष भक्षण के अर्थ आज्ञा दे। और मैं आग्नीध्र (अग्निकर्मकरनेवाला) हूं तिस कारण अग्नि हो तिस भाग को भोजन करता हूं इति शेषः। स्वाहा (जाठराग्नि में सुहुत हो॥१०॥

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा।

ब्रह्मत्वम् आङ्गिरसो बृहस्पते रार्षम्
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ता-
भ्याम्। प्रति गृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥११॥

प्रश्नाति। उपहूतो द्यौरिति यजुः द्यौर्दे॰। एवं द्यौः पिता
लक। उपह्वयतामित्यादि समानार्थ है॥ देवस्यत्वा।
प्रभृति ओम् प्रतिष्ठेत्यन्त कण्डि॰१३॰ ब्रह्मत्वम् तिस का अ-
स का पुत्र बृहस्पति ऋषि है॥ का॰२॰२॰१६॰ ब्रह्मा देवस्यत्वे-
प्राशित्र को ग्रहण करै॥ देवस्य त्वा व्याख्याता २।१०। प्रतिग-
मीति दैवीपंक्तिः। प्रतिगृह्णामि स्वीकार करता हूं इति शेषः॥
का॰२॰२॰२०॰ अग्नेष्ट्वेति विनदांत लगाये प्राशित्र को ब्रह्मा अ-
नामिका अङ्गुष्ठ सें ले भोजन करै॥ प्राजापत्या गायत्री. प्राशित्र-
दे॰। हे प्राशित्र अग्नि के मुख करि तुझे भक्षण करता हूं॥११॥

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। ते-
न यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥१२॥
मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं त-
नोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमं दधातु। विश्वे देवास इह
मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥१३॥

का॰२॰२॰२१॰ समिदाधान करने को आज्ञाप्रदान के अर्थ बोधन
किया ब्रह्मा एतं त इत्यादि ओम्प्रतिष्ठेत्यन्त मन्त्र करि आज्ञा दे॥
वैश्वदेवं यजुः। हे देव दातादिगुणयुक्त हे सवितः उत्पन्नकारक
इस समय क्रियमाण यह यज्ञ तेरे अर्थ यजमान कहिते हैं। किं

+ उ-हा। अप ते- मू। इ॰। प्र-मि। उ॰। अ-मि। ऋ॰॥११॥

च तुम्हारे प्रेरित देवताओं के यज्ञ में जो ब्रह्मा तिस ब्रह्मा और बृहस्पति के अर्थ भी कहिते हैं। जैसे बृहस्पति देवताओं का ब्रह्मा ऐसे ही तदधिष्ठित यह मनुष्य ब्रह्मत्व को करता है किं च तिस हेतु करि अपने यज्ञ को रक्षा करि। तथा तिस ही हेतु से यज्ञपति (यजमान) को रक्षा करि। तथा मुझ ब्रह्मा को पालन करि॥१२॥ किं च हे सवितः अपने मन (चित्त) को यज्ञ सम्बन्धि आज्य में स्थापन करि। कैसा मन कि भूतभविष्यद्वर्तमान तीनों कालगत पदार्थों में गमन शील को। किं च बृहस्पति इस यज्ञ को विस्तार करै। क्यों कि ब्रह्मा है। फिरि इस यज्ञ को हिंसारहित करि के स्थापन करै। क्यों कि इडाभक्षण से मध्य में यज्ञ विछिन्न हुआ इस हेतु कहा। और सब देवता इस यज्ञ कर्म में तृप्त हों। एवं प्रार्थितः सविता ओम्प्रतिष्ठ यह अनुज्ञा दे। ओम्, अङ्गीकारार्थः। प्रतिष्ठ, प्रयाण कुरु। अर्थात् समिदाधान काल में यजमान के अभिमेत प्रयाण को जानि सविता देवता अङ्गीकरि प्रयाण में प्रेरणा करै॥१३॥

॥ ब्रह्मत्वं समाप्तम् ॥

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व॥
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने
वाजजिद्वाजं त्वा ससृवांसं वाजजितं सम्मा-
र्ज्मि॥१४॥† ए-हि। अ०। अ-ज्मि। इ०॥१४॥

का॰ ३॰ ५॰ २॰ एषा त इति होता समिधा को अनुमन्त्रण करै। अतः प्राकृतमार्षम्। इयमनुष्टुबग्निदेवत्या। हे अग्ने यह तेरी

समिन्धन हेतुः काष्ठविशेष है। तिस समिधा करि तू वृद्धि प्राप्त हो। और इमें भी सब ओडी से वृद्धि को प्राप्त करि। तथा सति तेरे प्रसाद से हम वृद्धि को पावें। और अपने पुत्र पश्वादि सर्वतः वृद्ध करें॥ का॰ ३.५.४. पहिले अग्ने वाजजित् ३०७. मन्त्र करि जैसे इध्मबांधने के जून से अग्नि का मा किया तैसे यहां भी करे। तहां तीनि-तीनि परिक्रमा करि कि। परंतु यहां परिक्रमण विना एकवार इति विशेषः। मन्त्रो समानः। हे अग्ने तुझे संमार्जन करता हूं। कैसे तुझे कि अ सम्पादितवन्त को। अन्यत्पूर्ववत्॥ १४॥

अ॰ ५. अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि॥ अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि। इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि॥ १५॥ +

का॰ ३.५.१७.१८. जुहू और उपभृत् को वेदी से पीछे यजमान आकर अन्य-अन्य स्थान में रखै। तहां जुहू को पूर्व में अग्नीषोमयोरितिस्थापन करै॥ चत्वारि लिङ्गोक्तानि तत्रादौ द्वे १.२. यजुषी तृतीया ३. आर्चीउष्णिक् चतुर्थी ४. आर्चीप- अग्नीषोमयोः द्वितीयपुरोडाशदेवताओं के विघ्नरहित ह स्वीकाररूप उत्कृष्टजय को अनुसरण करि मैं उत्कृष्टजय

+ अ॰ पि॰ अ॰ इ॰। इ॰ मि॰ उ॰। अ॰ ॰। १५॥

को प्राप्त होंउगा। अन्न (पुरोडाशादि) की अभ्यनुज्ञा करि में जुहूरूपधारी यजमान प्रकृष्ट उत्साह को पहुंचूंगा॥ उपभृत् को पश्चिम में स्थापन करे अग्नीषोमाविति। जो असुरादि शत्रु हमारे यज्ञ विनाश के अर्थ द्वेष करै और जिस आलस्यादिरूप हमारे अनुष्ठानविरोधी शत्रु को विनाश के अर्थ हम उद्योग करें तिन उभयविध शत्रु को अग्नीषोमौ देवौ निरा करें। किं च में भी इन द्विविधशत्रुओं को उपभृद्रूप पुरोडाशदेवता की अनुज्ञा करि तिरस्कार करूंगा॥ उत्तरौ मन्त्रौ दर्श देवता विषयौ समानार्थौ॥ २५॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा दित्येभ्यस्त्वा संजानाथांद्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोऽक्तᳪ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि॥ २६॥ †

का॰ ३.५.२४. अध्वर्यु जुहू उपभृत् का प्रोक्षण करि पूर्ववत् यथा स्थान लाके उपभृत् को स्थापन करि जुहू से मार्जन करे वसुभ्यस्त्वेति प्रति मन्त्र करि प्रत्येक परिधियों को॥ वसुभ्यस्त्वेति द्वे १.२ देवीबृहती आदित्येभ्यस्त्वा ३. दैवीपङ्क्तिः त्रयाणां परिधयो देवता। हे मध्यम परिधे वसुदेवताओं की प्रीत्यर्थ तुम्हें मार्जन करता हूं। एवं दक्षिणोत्तरपरिधिमन्त्रौ व्याख्येयौ। तीनों परिधियों के मार्जन करि तीनों सवनों के देवता तृप्त होते हैं इति भावः॥ का॰ ३.६.३. संजानाथामिति अध्वर्यु प्रस्तरण्

† व-स्त्वा। अ०। रु-स्त्वा। इ०। आ-स्त्वा। इ०। आ-स्त्वा। उ०। सं-म्। त्र०। व्य-णा। ल०। म-हि। आ०॥ २६॥

प्रस्तर देवत्यं यजुः। हे द्यावापृथिवी (द्युलोक भूलोक हे
गृह्यमाण प्रस्तर को भले प्रकार जानो। किंच हे प्रस्तर
(प्राणापानवायू) जलवर्षण करि तुझे रक्षा करें। वायु
१.८.३.१२. इत्युक्तवात् वायु वर्षा का स्वामी है औ
अध्यात्मगतः प्राणोदानरूप मित्रावरुणशब्दसे कहिला
है। और सो प्रस्तररूपयजमान की वृष्टि से रक्षा करें +॥का०
३.६.४-७. गृहण किये प्रस्तर के अग्र मध्य मूल भागों को क्रम
जुहूउपभृत्ध्रुवास्थित घृत से लिप्त करें व्यन्तु वय इति॥
प्रास्तरं यजुः। पक्षिरूपापन्न गायत्र्यादि छन्द घृतलिप्त प्रस्तर
को लेके आस्वादन करते हुए जावें॥का०३.६.८. मरुतामिति
एक तृण को प्रस्तर से पृथक् करिके प्रस्तर को नीचे ले अग्नि
में डालें॥ प्रस्तरदेवत्योपरिष्टाद्बृहती कपिदृष्टा चतुर्थः पादआ
ग्नेयः॥ हे प्रस्तर तू मरुन्नामक देवताओं सम्बन्धिनी पृषतीः(वा
हनरूपा चित्रवर्णा अश्वाओं) को प्राप्त हो (वायुवाहनवद्वेग) अ
न्तरिक्ष को जा। वशा (स्वाधीना) पृश्नि (अल्पशरीर गौ (कामधेनु
वत्तृप्तिकरी) होकर स्वर्ग को जा। फिरि स्वर्गप्राप्ति के अनन्तर हमा
रे अर्थ भूलोक में वृष्टि ला। यद्वा। वशा पृश्नि (पृथिवी +) सम्बन्धि
भागों को लेकर स्वर्ग को जा। हे प्रस्तर तू अन्तरिक्ष को जाके तत्र
स्थ सवाहन मरुतों को तृप्त करिके स्वर्ग को जाकर और देवता
ओं को तृप्त करिके वृष्टि करि इत्याहुति परिणाम सूचित इति भा
वः॥का०३.६.१५. चक्षुष्पा इति अपने को स्पर्श करें॥ हे अग्ने

+ यजमानो वै प्रस्तर इति ८.४. १.४४. श्रुतेः॥

+ इयं वै वशा पृश्निर्यदिदमस्यां मूलि वामूलं चान्नाद्यं प्रतिष्ठितं तदेषं वशा पृश्नि शत० १.८.३.१५. श्रुतेस्तेषां पृश्नि शब्देन भूमिरुच्यते।

तू जिस कारण ज्वाला से अन्धकार को निवारण करि के नेत्रों का पालक है इस हेतु मेरे नेत्रों को पालि (अस्तर ग्रहण प्रसक्त नेत्रों के उपद्रव को निवारण करि॥१६॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः।
तं तऽएतमनु जोषम्भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाता अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम्॥१७॥+

का०३.६.१७. अध्वर्यु परिधिओं को आहवनीयाग्नि में डालें यं परिधिमिति प्रथम को॥विराड्रूपा त्रिष्टुबाग्नेयी यजुरन्ता। अग्नेः प्रियमिति यजुः। देवलदृष्टा। हे अग्ने देव आहवनीय। पणि असुर करि संरुध्यमानः सन् तू जिस परिधि को पश्चिम दिशा में असुरोपद्रवनिवारण के अर्थ स्थापन करता हुआ। तिस तेरे प्यारे इस परिधि को अग्नि में डालता हूं। अनुः (भिन्नक्रमः। यह परिधि तेरे सकाश से अपगत चित्त न हो। तुझ में ही स्थित हो॥का०३.६.१७. अग्नेः प्रियमिति दक्षिणोत्तरपरिधिओं को साथ ही डाले॥ हे परिधी तुम आहवनीयाग्नि के अभिप्रेत अन्न (अन्नत्व) को प्राप्त होओ॥१७॥

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट्॥१८॥+

का०३.६.१८. सꣳस्रवभागा इति सꣳस्रवों को होमें॥वैश्वदेवी त्रिष्टुब्यजुरन्ता। स्वाहा वाडिति यजुः। सोमसुक्ष्मदृष्टा।

+यं-ते। अ०। अ-म्। इ॥१७॥ +सं-म्। अ०। स्वा-इ। इ०॥१८॥

हे विश्वेदेवा तुम संस्रवभागाः (विलीन आज्य के भागी) हो। तथा संस्रवलक्षण अन्न करि वडे हो। किं च जे प्रस्तर पर बैठे और जे परिधिभवा हैं। ते विश्वेदेवा इस मेरी बाणी को सर्वत्र वर्णन करे कि यह यजमान भलेप्रकार यजता है यह सब देवताओं के मध्य में कहते तुम इन बर्हिओं पर यज्ञ में बैठि कर मादयध्वम् (तृप्त वा प्रसन्नहोओ)॥ स्वाहा और वाट् दोनो शब्द हविर्दान के अर्थ में। सर्वथा दत्तमिति आदर दिखलाने को शब्दद्वय प्रयोग है। यद्यपि स्वाहाकारेण वा वषट्कारेण वेति श्रुतेर्वषट्कारो दानार्थः। तथापि देवताओं के परोक्षप्रियत्व प्रत्यक्षत्व परिहार के अर्थ वाडिति शब्द प्रयुक्त है॥१८॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्। यज्ञ नमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व॥१९॥+

का॰ ३॰ ६॰ १९॰ जुहू उपभृत् को शकट की धुरि (बैलजोडने के स्थान) पर घृताची इति रखे॥ स्रुचौ देवते प्राजापत्यानुष्टुप्। हे जुहूपभृतो तुम घृताच्यौ (घृत को प्राप्त हो। तथाविधे तुम धुर्यौ (बैलों) को रक्षा करो। किं च तुम सुखरूप हो तिस हेतु हमारें सुख को स्थापन करो॥ का॰ ३॰ ६॰ २१॰ यज्ञ नमश्च तः इति वेदि को स्पर्श करै॥ यज्ञ देवत्यं यजुः अस्य मन्त्रस्य सूर्य यवमान् ऋषिः उद्दालवान् धानान्तर्वान् इति पञ्चर्षयः। हे यज्ञ तेरे अर्थ नमस्कार और उप (वृद्धि) हो+। किं च यज्ञ के शिव में संतिष्ठस्व (अन्यूनाति

रिक्त यज्ञ को करो†। मेरी शोभनयाग में शान्ति करो॥१९॥

अ॰ ५॰ अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा॥२०॥+

का॰३॰७॰१७॰ स्रुक् और स्रुवा को होम के अर्थ अध्वर्यु ग्रहण करै। अग्नेऽदब्धायविति संस्रवों को होमें॥ गार्हपत्याग्निदेवत्य यजुः। हे अब्धायो (अहिंसितयजमान) हे अशितम (भोक्तृतम वा व्यापकतम) हे अग्ने गार्हपत्य मुझै वज्र (शत्रु प्रयुक्त वज्रसम आयुध) सै रक्षा करि। प्रसिति (बन्धनहेतुभूतजाल) से मुझै रक्षा करि। अशास्त्रीययाग से मुझै र॰। दूषित भोजन से मुझै र॰ किंच हमारे पितु (अन्न हविरूप) को विष रहित करि। सुषदा योनौ (सम्यग वस्थानयोग्य घर में) मुझै स्थापन करि इति शेषः। यद्वा घर में स्थित हमारे अन्न को अविष करि। स्वाहा वाडिति पदे व्याख्याते॥ का॰ ३॰७॰१८॰ दक्षिणाग्नि में होमें अग्नये इति और सरस्वत्यै इति॥ अग्नये॰ दक्षिणाग्नि दे॰ सरस्वत्यै॰ लिङ्गोक्त दे॰ द्वे यजुस्त्रिष्टुबौ। स्त्रीपुरुष के अभिलाष पूर्वक शयन के पति अग्नि के अर्थ स्वाहा (हवि दिया॥ जीवन पर्यन्त पुरुष के यश (प्रशंसा) की बहिनि सरस्वती (वाग्रूप) के अर्थ स्वाहा॥२०॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन

+अ-दा।अ॰।अ-हा।द्॰।स॰हा।उ॰॥२०॥

† यद्वै यज्ञस्याप्नुवन्तिरिक्तं तद्वैवं तेन तद्धुयं शमयतीति श्रुतेः॥

मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यज्ञᳬस्वाहा वाते धाः ॥२१॥

का॰३॰८॰१॰ यजमानपत्नी वेद (कुशमुष्टिपूलक) को खोले वेदोऽसीति॥ वेद देवत्यं यजुः। हे कुशमुष्टिनिर्मित पदार्थ तू वेद (ऋग्गाद्यात्मक यज्ञ ज्ञाता) है। हे द्योतनात्मक वेद जिस कारण करि तू देवताओं का ज्ञापक हुआ तिसी कारण मेरा ज्ञापक हो॥ का॰३॰८॰४॰ समिष्टयजु होमें देवा गातुविद इति॥ मनसस्पति दृष्टा विराट् छन्दस्का वातदेवत्या। अस्याः पूर्वार्धेन देवता विसृजति। हे गातुविदः (यज्ञवेत्तारो देवाः +) हमारा यज्ञ प्रवृत्त हुआ यह जानिकर यज्ञ प्रति आए वा गातुं (गन्तव्य) मार्ग॰ हमारे यज्ञ करि तुष्ट हुए स्वमार्ग को जाओ। एवं देवान्विसृज्य चन्द्रं प्रत्याह। हे मनसस्पते (मनके अधिपते चन्द्रः। वा देवताओं के यजने के लिये मन के प्रवर्तक परमेश्वरः तं प्रत्युच्यते। हे मनसस्पते (परमेश्वरः) हे देव यह अनुष्ठित यज्ञ स्वाहा (तेरे हाथ में देता हूं। और तू तिस यज्ञ को वायुरूप देवता में स्थापन करि। वाते हि यज्ञोऽवतिष्ठते। तदुक्तं श्रुत्या। वायुरेवाग्निस्तस्माद्यं देवाध्वर्युरुत्तमं कर्म करोत्यर्थे तमेवाप्येतीति॥२१॥

+ गीयहैं। नानाविधि वेदवाक्योंसे प्रतिपादन करी और इति गातु (यज्ञ) है तिसके जानने वाले गातुवित्

सम्बर्हिरङ्क्ताᳬ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः। समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत्स्वाहा॥२२॥

का॰३॰८॰५॰ सम्बर्हिरिति बर्हि होमें॥ लिङ्गोक्तदेवत्या त्रिष्टुब्विराड्रूपा। इन्द्र हविः संस्कारयुक्त घृत करिके बर्हिएँ भले प्रकार अञ्जनोपेत (लिप्त)

करे। और केवल सो इन्द्र ही नहीं किंतु आदित्य वसु मरुत् और विश्व नामक गण देवों सहित लिप्त करे। वस्वादि सहित इन्द्र करि लिप्त करी सो बर्हि जो कि दिव्यं नभो (आदित्यलक्षण ज्योति) है तिसे प्राप्त हो। स्वाहा (यह बर्हि देवता के उद्देश करि दिया॥२२॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसाम्भागोऽसि॥२३॥ + - + क॰य॰अ॰र॰सि॰द्र॰॥२३॥

का॰३॰८॰६॰ अध्वर्यु आहवनीयाग्नि को परिक्रमा दे वेदी के दक्षिणभाग में उदङ्मुख बैठि प्रणीता ले वेदी के मध्य में रख तहां ही औंधावे कस्त्वेति॥ कस्त्वेति यजुः प्रजापति दे॰। व्याख्यातो अध्या॰१॰६॰मन्त्रः तहां यज्ञयोग में परं तु यहां यज्ञविमोक में नियुक्त है। पोषाय (यजमान के पुत्रादिकों के पोषण के अर्थ तुझे) औंधाता हूं इतिशेषः +॥ का॰३॰८॰७॰ पुरोडाशकपाल करि कृष्णाजिन के नीचे ही कणों को उत्कर में डाले॥ रक्षसामिति याजुषी गायत्री रक्षो देवता। हे कण समूह तू राक्षसों का भाग है (तिन्हों के नीचजातित्व से निकृष्टभाग युक्त है॥२३॥

+ यो वै यज्ञं प्रयुज्य न विमुञ्चत्यप्रतिष्ठानो वै स भवतीति श्रुत्यन्तरवचनात्।

अथ याजमानम्

अ॰ ६॰ सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥२४॥

।त्रिष्टुप्। का॰ ३.७.८-१०. पूर्णपात्र को ले पूर्व से आहव-
को फेरा दे दक्षिण से उत्तराभिमुख यजमान की अञ्जलि में सं
जल छोडे छूटते पूर्णपात्र को यजमान संवर्चसेति अञ्जलि क
करे फिरि चुपके से मुँह धोवै॥अर्थः। ब्रह्मतेज करि ह
ल हुए। क्षीरादिरस करि संग॰। तनूः (अनुष्ठानक्षम शरी
वा भार्यापुत्रादि) करि संग॰। शान्त कर्म श्रद्धा युक्त म
संग॰। यज्ञ को समीप जाते मनुष्य के ब्रह्मतेजादि प्राप्त हो
तिन्हें फिरि भी इस से पूर्ण करता है। किं च शोभनदानः त्व
को विविध स्थापन करे। हमारे शरीर का जो न्यून अ
तिसे न्यूनत्वपरिहारेण अनुकूल करिके शोधै। अर्थात् धन
की पुष्टि करे॥२४॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन् छन्दसा ततो निर्भ-
क्तो यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे वि-
ष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन् छन्दसा ततो निर्भक्तो यो-
ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्र-
ꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वे-
ष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया
अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम॥२५॥ +

का॰ ३.८.११.१२. यजमान अपने आसन से उठि वेदी की द-
क्षिणश्रोणि से ले आहवनीय के पूर्व में तीनि विष्णुक्रमसंज्ञक
पदक्षेपण (विष्णुपाद बुद्धि करि अपने पाद का भूमि में क्षपण) क-

+ दि-ष्म॥ अ॰। अ-ष्म॥ पृ॰। पृ-ष्म॥ ऊ॰। अ-त। अ॰। अ-मे। ल॰। अ-स्व॥ का॰
सं-म। पृ॰। २५॥

है दिवि विष्णुरित्यादि तीनि मन्त्रों वा पृथिवी अन्तरिक्षदिवी त्यादि ऊँचे आरोहण क्रम से॥ दिवि विष्णुरितित्रीणि यजूꣳषि विष्णुदेवत्यानि। विष्णु (यज्ञपुरुष) जगतीछन्दरूप अपने पाद से द्युलोक में विशेषेण परिक्रमा करता हुआ। तथा सति तो द्युलोक से निर्भक्तः (भागरहित करिके निकाला कौन कि जो हमें देखि प्रीति नहीं करता और जिसे देखि हम प्रीति नहीं करते सो द्विविध शत्रु॥ एव मुत्तराव पि विष्णुक्रममन्त्रौ व्याख्येयो॥ का॰ ३॰ ८॰ १३॰ अस्मादन्नादिति अपने भाग को देखे॥ अस्मादन्नादिति दैवी बृहती भागोदे॰। जो यह भाग रीखता है मुरु यजमान के भाग से निर्भक्त इति वाक्यशेषोऽनुवर्तनीयः॥ का॰ ३॰ ८॰ १४॰ अस्यै प्रतिष्ठाया इति भूमि को देखे॥ याजुषी गायत्री भूमिर्दे॰। इस साम्ने दृश्यमाना प्रतिष्ठा हेतु यज्ञभूमि से निर्भक्त इत्यादि पूर्ववत्॥ का॰ ३॰ ८॰ १५॰ अगन्मस्वरिति पूर्व को देखे॥ दैवीबृहती देवा देवता। पूर्वदिशा में स्थिति स्वः (सूर्य वा आकाश) को हम यज्ञानुष्ठान करि प्राप्त हुए॥ का॰ ३॰ ८॰ १६॰ संज्योतिषेत्याहवनीय को देखे॥ याजुषी गायत्री आहवनीयाग्निदे॰ आहवनीयलक्षणज्योति करि हम संगत हुए॥ २५॥

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥ २६॥ +

का॰ ३॰ ८॰ १७॰ स्वयम्भूरिति सूर्य को देखे॥ सूर्य देवत्यं यजुः। हे सूर्य तू स्वयंसिद्ध है। श्रेष्ठ (प्रशस्यतम) रश्मि (मण्डलशरीराभिमानी

+ स्व-हि। अ॰। सू-तैं। इ॰॥ २६॥

...गर्भ है। सूर्य की सप्त रश्मिएं हैं। चारोंदिशा में चारि। एक ऊ... एक नीचे। सातवीं मण्डलाभिमानी हिरण्यगर्भ पुरुष वोह ... है सो तू है। यतः तू वर्चोदा (तेजका दाता) है + अतः मुझे ब्रह्म... ...दे॥ का॰ ३॰ ८॰ १९॰ सूर्यस्येति प्रदक्षिणाकरै॥ याजुषीबृहती ... ॰। सूर्य की सम्बन्धिनी आवर्तन को अनुसरण करि मैंभी ...वर्तन करता हूं॥ २६॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वंमयाग्ने गृहपतिना भूयाः॥ अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥ २७॥ + अ-मा॰। अ॰। सू-नें। इ॰॥ २७॥

का॰ ३॰ ८॰ २१॰ अग्ने गृहपते इति गार्हपत्याग्नि को उपस्थान (प्रकाश) करै॥ ब्राह्मी बृहती गार्हपत्याग्निदे॰। हे मेरे गृह के पालक हे अग्ने तुझ गृहपालक के प्रसाद करि मैं शोभन गृहपालक होउं। तथा हे अग्ने तू भी मुझ गृहपति की करी सेवा से शोभन गृहपति हो। एवं सति हम गृहपतियों (स्त्रीपुरुषों) करि निष्पाद्य कर्म शतवर्ष पर्यन्त अस्थूरीव हों (निरन्तर अव्यवहित प्रवर्तें। एकपार्श्व में वलीवर्द युक्त शकट को स्थूरि कहिते हैं॰ लुप्तोपमानम्। बलीवर्दयुक्त शकट जैसे निरन्तर अव्यवहित वर्तें है तैसे हम गृहपतियों के हों॥ का॰ ३॰ ८॰ २३॰ सूर्यस्येति प्रदक्षिणा दे॥ याजुषी बृहती सूर्यदे॰ व्याख्याता २६॰ इ॰॥ २७॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीद-

+ का॰ ३॰ ८॰ १८॰ अथवा वर्चोदा के स्थान पर पुत्रदा धनदा गोदा अश्वद इत्यादि जो कामना रखता है तिसे उच्चार करै॥

महं य एवास्मि सो॒ऽस्मि॥२८॥+

का॰ ३॰ ८॰ २९॰ व्रतग्रहण में दो मन्त्र कहे गये अध्या॰१॰ काण्डी ५॰ तिन्हों के मध्य जिस (पहिले वा दूसरे) से व्रतादान किया हो यहां भी तिसी के अनुसार से व्रत को विसर्जन करे॥ अग्ने व्रतपत इति साम्नी पङ्क्तिः इदमहमिति याजुषी पङ्क्तिः द्वे आग्नेये। हे अग्ने हे व्रतपते (कर्मपालक) में नें कर्म का अनुष्ठान किया और तेरे प्रसाद से कर्मशक्त हुआ और तूनें मेरा कर्म सिद्ध किया॥ द्वितीयो मन्त्रः। हे अग्ने यह कर्म समाप्ति करि जो में पहिले था वोह ही मनुष्य हूं॥२८॥

॥ इति याजमानर्ठंसमाप्तम् ॥

॥ इति भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः६ ॥

॥ इति दर्शपूर्णमासेष्टि मन्त्राः समाप्ताः ॥

+ अ-धि। ख०। इ-सि। वृ०॥२८॥

अतःपरं पिण्डपितृयज्ञमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः

अ॰ ७॰ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहता असुरा रक्षांꣳसि वेदिषदः॥२९॥ †

का॰ ४॰ १॰ ७॰ अग्नि से थोडे पके चाँवल कि जिन्हों से स्थाली [illegible] न होवे आसादित आज्य करि अभिघारि दक्षिणतः निकालि दक्षिणाग्नि के पूर्वभागी करि प्रदक्षिण उत्तरतः ला करि सव्य करिके ठैरि तीनि समिधाएँ आधान करि बैठि प्राङ्मुख मेक्षण करि अग्नये और सोमाय दो मन्त्र करि चरु को होमें॥ द्वे देव देवत्ये यजुषी स्वाहाकारस्य श्रुतेः। कवयः (क्रान्तदर्शिनः-पितरों) के सम्बन्धि हवि के वहाने का अधिकार जिस का वोह कव्यवाहन तिस अग्नि के अर्थ स्वाहा (हवि दिया)॥ पितृसंयुक्त सोमनामक देवता के अर्थ हवि दिया॥ स्वाहाकारेण वषट्कारेण वा देवेभ्योऽन्नदानश्रुतेर्दैवाविमौ मन्त्रौ॥ का॰ ४॰ १॰ ८॰ दक्षिण से उल्लेखन करै अपहता इति॥ आसुरी उष्णिक् आसुरम्। वेदी में स्थित असुर वेदी के सकाश से निकाले तथा राक्षस भी निकाले (असुर और राक्षस जाति हैं देवताविरोधिओं की।)॥२९॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोका-

† अ-हा। अ॰। सो-हा। द्वृ॰। अ-द॰। उ॰॥२९॥

कान्यग्रणुदात्यस्मात् ॥३०॥

का॰४॰१॰९॰ रेखा के उल्मुक को दक्षिणाग्नि के एकदेश में स्थापन करें॥ ये रूपाणीति त्रिष्टुप् कव्यवाहनाग्निर्देवत्या। (स्वधा (पैतृकान्न निमित्त) पितरों का अन्न हमलोग भक्षण करें इस हेतु करि अपने रूपों को प्रतिमुञ्चमान (पितृसमान रूपों को स्वीकार) करते हुए जे असुर देवविरोधि पितृयज्ञस्थान में प्रसरते हैं। तथा जे असुर परा पुरों (स्थूलदेहों) और निपुरों (सूक्ष्मदेहों) को धारण करते हैं अपने असुरत्व छिपाने के लिये। उल्मुकरूप अग्नि इस लोक (पितृयज्ञस्थान) से तिन असुरों को प्रकर्षेण निकाले॥ ३०॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत॥३१॥

का॰४॰१॰१३॰१४॰ अत्र पितरः इति पिण्डों के संमुख संहितास्वर करि पढि के प्रदक्षिण लौटि उदङ्मुख हो यथाप्राप्ति श्वासधारण करि बैठे। प्रदक्षिण फिरि लौटि कर पिण्डसंमुख हो अमीमदन्त इति संहितास्वर से ही पढे॥ द्वे साम बृहत्यौ पित्र्ये। हे पितरो तुम इन बर्हिओं पर हृष्ट होओ। फिरि हवि में यथा भाग (अपने-अपने भाग) को बाँटि भले प्रकार वृषवत् आचरो (जैसे वृष अपने अभीष्ट घास को प्राप्त हो तृप्ति पर्यन्त स्वीकरता है तद्वत् स्वीकरो॥ जिन पितरों प्रति हृष्ट होओ यह कहा ते हृष्ट हो यथाभाग वृषवत्स्वीकरते हुए अर्थात् अपने भाग को खाते हुए॥३१॥

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय

† ऋ॰-मृ॰ आ॰अ॰-ता॰ई॰॥३१॥

नमो॑ वः पितरो जी॒वाय॒ नमो॑ वः पितरः स्व॒धा॒यै॒ नमो॑ वः पितरो घो॒राय॒ नमो॑ वः पितरो म॒न्यवे॒ नमो॑ वः पितरः पितरो॒ नमो॑ वो गृहान्नः पितरो॒ दत्त स॒तो वः पितरो॒ देष्मैतद्वः पितरो॒ वास॒ आध॑त्त ॥३२॥+

[redacted]॰४॰१॰१५॰ नमो व इति छै वार नमस्कार करे ॥ नमो वः १-[redacted]र्बृहत्यः षष्ठ्यार्ची उष्णिक् ६ षड्भिः रोक्त देवत्याः। षड्वाक्र [redacted] पितर इति श्रुते रसादि शब्देन वसन्तादि षड़ृतव उच्यन्ते। [redacted] च पितॄणां स्वरूपभूता अतस्तेभ्यो नमस्करोति। हे पितरओ तुम्हारे रस (रसभूत वसंत) के अर्थ नमस्कार। क्यों कि मधादि रस वृक्षों में उत्पन्न होते हैं इस हेतु रसशब्द करि वसन्त है। और तुमरूप वसन्त के अर्थ नमः ॥१॥ एवमग्रेतना मन्त्रा व्याख्याः। शोषाय (शुष्क होती हैं ओषधीएँ जहां) ग्रीष्म ॥२॥ जीव (जीवनहेतु जलवर्षनेहारी) वर्षा ॥३॥ स्वधा (शरद) स्वधावै शरत्स्वधा वै पितॄणामन्नमिति श्रुतेः। शरद में ही प्रायशः अन्न होते हैं ॥४ घोर (विषम) हेमन्त। हेमन्त शीत प्रचुरत्व करि दुःखदाता होनेसे घोर है ॥५॥ मन्यु (क्रोध तद्रूपी शिशिर) शिशिर ही ओषधीएँ जलाती है। हे पितरओ एवंविध तुम ऋतुरूपीओं के अर्थ नमस्कार हे पितरओ तुम्हारे अर्थ नमः इत्यभ्यास आदरातिशयार्थः ॥६॥ गृहान्न इति साम्नी अनुष्टुप् पितरो देवता। हे पितरओ हमारे अर्थ घरों (भार्यापुत्रपौत्रादिकों) को देओ। हे पितर ओ तु-

+म॰ प॰ अ॰ ३॰ उ॰ क॰ ल॰ न॰ व॰ प्रा॰ ग॰ षे॰ ई॰ ए॰ ना॰ ऊ॰ ॥३२॥

म्हारे विद्यमान से देवें। अर्थात् देते हुए हमारा द्रव्यक्षय कभी नहीं॥का॰४॰१॰१६-१८॰ एतद्व इति प्रति पिण्ड के ऊपर तीनि तीनि सूत्र स्थापन करै॰ वा ऊर्णा के वस्त्र से ऊर्णा निकालि वा पचाशवर्ष से ऊँची अवस्था का यजमान अपने हृदय के रोमों से पिण्डों को ढकै॥ प्राजापत्या गायत्री पितरो दे॰। हे पितरओ तुम्हारे अर्थ यह सूत्र ही परिधान हो॥३२॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्॥३३॥

का॰४॰१॰२२॰ आधत्तेति धर्मपत्नी पुत्रकामा मध्यमपिण्ड को प्राशन करै॥ पितृदेवत्या गायत्री। हे पितरओ जैसे जिस प्रकार यह पुरुष देवपितृ मनुष्यों के अपेक्षितार्थ का पूरण करने हारा होवे तैसे इस ही ऋतु में कुमार (पुत्ररूप) गर्भ को तुम सम्पादन करो। कैसे कुमार कि पुष्करस्रक्। जैसे अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य कमलों की माला धारण करें हैं तिस तुल्य को। अश्विसमान कहने से रोगहीन और सुन्दर पुत्र आधान करो यह सूचना की॥३३॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥३४॥

इति संहितायां सप्तमोऽनुवाकः॥७

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायांवाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

४॰१॰१६॰ऊर्जं वहन्तीति उदपात्रस्थ अवनेजनाव- र उदक को पिण्डों के ऊपर सींचे॥ अब्देवत्या विराट्। जल तुम स्वधा (पितरों की हविःस्वरूपा) हो इस हेतु मेरे रों को तृप्त करो। कैसी जल कि परिस्रुत् (पुष्पों से निक- र) को वहतीओं। और वोह सार ऊर्जशब्द घृतशब्द प- ब्द करि तीनि विध है। तहां ऊर्ज शब्द करि अन्नगत स्वा- और घृत तथा पय प्रसिद्ध हैं। और वोह त्रिविध भी कैसा अमृत (सर्वरोगनाशक और मृत्युनाशक। पुनः कैसा कि लाल (सर्वबन्धनिवर्तक) है। ऐसे त्रिविधसार वहने से ज- ों का पितृतर्पकत्व उपपन्न है॥३४॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ७

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः २

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतृ वैया- घ्रपदान्वय श्री विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मा- त्मज रौक्मिणेय नृपति गिरिप्रसाद रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरि- धरभाष्ये इध्मप्रोक्षादि पितृयज्ञान्तो द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

यज्ञात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३

अग्न्याधेयं प्रजापतेरार्षं देवानामग्नेर्गन्धर्वाणां वा

अ॰ १॰ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन्हव्या जुहोतन॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय
यज्ञागिरिप्रसादेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
अग्न्याधानादिपित्र्यान्तस्तृतीयोऽध्याय ईर्यते ३

प्रथम द्वितीय अध्यायों में दर्शपौर्णमासेष्टिविषयक मन्त्र कहे अब अष्टमी कण्डिका पर्यन्त आधान के मन्त्र कहे जाते हैं॥ का॰ ४.७.१॰ अमावास्या में अग्न्याधान करना इस से आदि ले कालविशेषादि को और ब्रह्मोदनपाकपर्यन्त कार्यों को कहि कर पीछे यह कहिता है॥ का॰ ४.८.४-७॰ चारि ऋत्विजों करि भोजनयोग्य ओदन पकाकर स्थाली में बाहिर निकालि तिस के मध्य घृतसेन के अर्थ गर्त करि तिस में घृत भरि आज्य-

...नि समिधाएँ उसी घृत में डुबो समिधाग्निमिति तीनि ऋ-
...से प्रत्येक समिधा को अग्नि में आधान करै। पहिली दूसरी
... ऋचा से आधान करै चौथी को जपै। वा पहिली से आधान
...सरी को जपै फिरि तीसरी चौथी करि आधान करै॥ चतस्र
...यत्रीछन्दोऽग्निर्देवता १ विरूपाङ्गिरसदृष्टा २ वसुश्रुत ३
...ज॥ मन्त्रार्थस्तु॥ हे ऋत्विजः तुम समिधा (भलीभाँति से
...न करिये है अग्नि तिस काष्ठरूपा समित्) करि अग्नि को परि-
...ो। पूर्णाहुति सम्बन्धि होष्यमाण घृत करि अतिथि (आतिथ्यक-
...रि पूजनीय अग्नि) को बोधन (प्रज्वलित) कराओ। इस प्र-
...लित अग्नि में नानाविध हविओं को सर्वतः होमो॥१॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जात-
वेदसे॥२॥

हे ऋत्विजः अग्नि के अर्थ तुम घृत करि के होम करो। कैसे अ-
ग्नि कि सुसमिद्ध (शोभनदीप्त) अत एव शोचिष्मन्त (ज्वलित)
जातवेद (जातं वेत्ति वा वेदयति वा जात प्रज्ञान। कैसे घृत कि तीव्र
(स्वादुतम वा समग्र वा पटुतर) ग्रहणोद्वासनाधिश्रयणावेक्ष-
णादि करि संस्कृत॥२॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा
यविष्ठ्य॥३॥

हे अङ्गिरः (तत्तद्यागों में गमनवन्न ग्ने) तिस (उक्तगुणसमयाविष्ट)
...) तुझे समिधाओं और संस्कृताज्य से प्रवृद्ध करते हैं। हे यवि-

ष्ट्र (कदाचिदपि स्थविरत्व रहित) प्रवृद्ध जैसे तैसे दीप्त हो॥ अ
उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत। जुषस्व समिधो
मम॥४॥
हे अग्ने हविर्युक्ता घृताक्ताः ये समिधाएँ तुम प्रति प्राप्त हों। हे हर्यत (प्रेप्सावन्) मेरी समिधाएँ तू सेवन (अङ्गी) करि॥४॥
अ॰ २॰ भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृ-
थिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥५॥ +
का॰ ४॰ ८॰ १॰ १६॰ आपः हिरण्य ऊषा आखूत्कर और शर्करा इन पाँच सम्भारों का सम्पादन करि स्फ्य से लिखी हुई शुद्ध भूमि में तिन सम्भारों को स्थापि तिन्हों पर यज्ञियकाष्ठ करि ज्वलित अग्नि को भूर्भुवः इन तीनि अक्षरों का उच्चारण करि आधान करै। यह आहवनीय का आधान है। एवं अष्टाक्षर होने से अग्नि का गायत्री होना श्रुति में कहा है। गायत्री सहित अग्नि का प्रजापति के मुख से उत्पन्न होने से इति सूत्रार्थः॥ मन्त्रार्थस्तु। भूरिति दैवी गायत्री अग्निर्देवता। भुवरिति दैव्युष्णिग्वायुर्देवता। सुवरिति दैवी गायत्री सूर्यो देवता। इन आधानमन्त्रों में ये तीनों व्याहृतिएँ हैं। ये ही तीनों व्याहृतिएँ पृथिव्यादि तीनों लोकों के नाम हैं। इन्हीं के उच्चारण पूर्वक प्रजापति करि तीनों लोकों के उत्पन्न होने से। अतः इनों में स्थापन करि तीनों लोकों को इन्हीं करि स्मरण करै इन व्याहृतिओं की महिमा हो। यद्वा भूर्भुवः स्वः शब्द करि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों जानियें वा आत्मप्रजापशु ये सब मेरे वशवर्तिनः हों यह प्रार्थना

+ भू-स्व॥ अ॰। द्यौ-धे। द्र॰॥५॥

करि अग्निओं को स्थापन करै इत्यर्थः॥का॰४॰६॰१७॰फिरि यजमान ईंधन के पूर्वार्ध को ग्रहण करि द्यौरिव भूम्नेति जपै॥यजुषो यजमानाशीर्लिङ्गोक्तदेवता।हे पृथिवि देवयजनि (देवता पूजियें हैं जिसमें वोह) तिस तेरे पृष्ठ (ऊपर) में अन्नाद (अन्न की आहुतिके भक्षण करनेहारो) अग्नि (गार्हपत्यादिरूप) को स्थापन कर्त्ता हूँ। किमर्थम् कि भक्षणयोग्य अन्न की सिद्धि के अर्थ वा अन्न भक्षण के अर्थ। जिस पृष्ठ में अग्नि रखिके जैसे आकाश में तारे बहुत हैं ऐसे हम पुत्र पश्वादि करि बहुत होवें इति शेषः। जैसे पृथिवी सब प्राणियों का आश्रय है ऐसे हम॰ यद्वा पूर्वार्धस्यायमर्थः। कैसे अग्नि को कि जैसे द्यौः नक्षत्रादि बहुत करि युक्त है तैसे ज्वाला बहुत्व करि युक्त को। किंच जैसे पृथिवी सब प्राणिओं के आश्रयत्व रूप करि श्रेष्ठत्व से युक्त है तैसे सब वस्तुओं के शोधकत्व रूप करि श्रेष्ठत्व से युक्त को। अत एव क्वचिद्विधिवाक्ये अग्नये पावकायेत्याम्नातम्॥५॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥६॥

का॰४॰६॰१८॰१९॰ और आयं गौरिति तीनि ऋचाओं सार्पराज्ञीनामाओं से आहवनीय का उपस्थान करै। फिरि अध्वर्यु गार्हपत्य से कर्पर करि अग्नि ले दक्षिणाग्नि को आधान करै आयं गौरिति तिसृणामृचां सार्पराज्ञी (कद्रू पृथिव्यभिमानी) दृष्ट्री गायत्रीछन्द अग्निः परावररूपेण देवता। अग्निः परावररूपेण स्तूयते। यह दृश्यमान अग्निः सर्वतः आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्निस्थानों में क्रमेण (पादविक्षेप) करता हुआ। कैसा अग्नि कि यज्ञनिष्पत्ति के अर्थ तिस-ति-

स यजमानगृह में चलता। तथा चित्रवर्णों (लोहितशुक्लादिबहुविधज्वाला-पेत। आक्रमणमेवाह। प्राचीदिशा में माता (पृथिवी) को आहवनीयरूप करि प्राप्त हुआ और तैसेंही आदित्यरूपकरि स्वर्ग में चलता पिता (द्युलोक) को प्राप्त हुआ † ॥ ६॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ७॥

एवमादित्यरूपेणाग्निं स्तुत्वा वायुरूपेण स्तौति। इस अग्नि की दीप्ति कोइक शक्ति वायुनामा अन्तः (द्यावापृथिवी के शरीर मध्य में) चलती ‡। क्या करती कि प्राणादपानती (सर्वशरीरों में प्राणव्यापार के अनन्तर अपान व्यापार को करती। अपान के अनन्तर प्राणतीत्यप्यर्थोलभ्यते सामर्थ्य से प्राणापानवायुविशेष का प्रेरक है इत्यर्थः। क्योंकि जठराग्नि में जीवनहेतु उष्णता के सद्भाव से शरीर में प्राणापान प्रवर्ते हैं तिस हेतु से अग्नि प्राणापानरूप है। एवं स्वशक्तिभूत वाय्वादित्य करि इस जगत का अनुग्रह करिके जो ऐसे को उपतिष्ठे है तिस का क्या करता है। इत्याह। कि महिषोऽग्निः दिवं व्यख्यत् (द्युलोकभोगस्थान को अनुष्ठाताओं के अर्थ विशेषेण प्रकाश करता हुआ और प्रकाश करता है। महि (महात्म्य याग कर्तृ स्वरूप) को देता * ॥ ७॥

त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥ ८॥

त्रिंशत् धामों (तीस ३० महूर्तनामा स्थानों ※) में जो वाणी विराजै (शोभै) है सो स्तूयमाना वाणी पतङ्ग (अग्नि ५) के अर्थ उच्चारण करिये है (सर्वदेवसम्बन्धिनी स्तुतिओं करि अग्नि ही स-

† स्वः शब्देन सूर्यः निघं० १।४ द्युलोक इलोकयोर्मातापितृत्वं मन्यत्रापि श्रूयते। द्यौः पिता पृथिवी मातेति।

‡ अन्तरिक्षे ऽयं निर्यद्वायुः पवत इति श्रुतेः।

* अग्निर्वै महिषः स इदं जातो महानिति श्रुतेः॥

※ धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति निरु० ९। २८। २९। अत्र धामशब्देन स्थानमुच्यते। अहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्ता धाम शब्देनाभिप्रेताः। ५ पतन् गच्छति पतङ्गः। अग्निः। सद्धरण्योः पतन् गार्हपत्यभावं गच्छति गार्हपत्यात्पतन्नाहवनीयतामित्यादि।

वीत्मक होने से स्तुति करियै है। केवल त्रिंशत् धामों में जो वाणी विराजै है सो ही अग्नि के अर्थ उच्चारण करियै है यही नहीं किंतु प्रति वस्तोः (दिन) में जो स्तुति लक्षणवाणी और जो द्युओं (यागपारायणद्युत्सवभूत दिनों) करि स्तुतिलक्षणवाणी विराजैहै सो अग्नि॰। नही अन्यदेवता के अर्थ †। सब काल में सब स्तुतिवाचा अग्नि के ही अर्थ है इत्यर्थः॥ यद्वास्या ऋचो ऽयमर्थः। धाम (स्थान) और सो त्रिंशत्संख्याकमासगतदिनभेद करिके विशेषेण राजै (दीपै) है (आलस्यरहित यजमानों के अनुष्ठान करि आहवनीयाद्यग्नीओं का स्थान मास गतत्रिंशत्संख्याक दिनों में विशेषेण शोभै है। स्तुति रूपा वाणी पतङ्ग (अग्नि) के अर्थ उच्चारण करियै है। पतङ्गः पक्षी तिसके सदृश होने से अग्नि पतङ्ग है क्योंकि जैसे पक्षी एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है तैसे अग्निभी गार्हपत्यस्थान से आहवनीयस्थान को जाता है। अहेति निपातः पूर्वोक्तनिषेधार्थः॥ इस ऋचा के पूर्वार्द्ध में अग्निमाहात्म्यज्ञापक दो वाक्यों करि जो दो अर्थ कहे गये तैसे ही नहीं होता किंतु और भी कहियै है इत्यर्थः। प्रति वस्तः (दिन) द्युओं (द्योतनों) करि यह अग्नि स्तुति करियै है इत्यध्याहारः॥ ८॥ इत्यग्न्याध्येयमन्त्राः समाप्ताः॥ ॥ इति द्वितीयोनुवाकः २

अथाग्निहोत्रहोममन्त्राः प्रजापतिदृष्टाः

अ॰ ३ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥ अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्यो-

† वस्तोः द्युः भानुरित्यहर्नामसु पठितम्. निघ॰ १.९. अहेति निपातो विनिग्रहे।

तिर्वर्च्चः स्वाहा॥ ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥९॥+
अग्निर्ज्योतिरिति दो कण्डिकाओं में अग्निहोत्र के मन्त्र हैं। सप्तलिङ्गोक्तदेवता। पञ्चैकपदा गायत्र्यः। द्वे गायत्र्यौ। अग्निर्ज्योतिः सूर्यो ज्योतिः एते द्वे तक्षा मुनिरपश्यत्। ज्योतिः सूर्यः इमां चेलकस्य पुत्रो जीवल ऋषिरपश्यत्॥ का॰ ४·१४·१४· प्रकाशित समिध के मध्य में अग्निर्ज्योति इस मन्त्र से होम करै॥ काण्वशाखीया वाजसनेयसंहिता के अध्या॰ ३· अनु॰ २· मन्त्र १· अग्निर्ज्योतिषं त्वा वायुमतीं प्राणवतीम्॥ स्वर्ग्याᳬ स्वर्गायोपदधामि भास्वतीम्॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ सै समित्प्रक्षेप है॥ मन्त्रार्थस्तु। जो यह अग्निदेव सोही ज्योति (दृश्यमानज्योतिःस्वरूप) है। जो यह दृश्यमान ज्योति सोही अग्निदेव है। देव और ज्योति का कभी भी अवियोग से एकत्व करि प्रतिपादन है। स्वाहा (ज्योतीरूप अग्नि के अर्थ हवि दिया) अयं सायंकालीनोऽग्निहोत्रहोममन्त्रः॥ काण्व ३·२·२· सूर्यज्योतिषं॰ स्वाहा॥ प्रातर्होममन्त्रः॥ सायंहोममन्त्रवद्व्याख्येयः। सूर्यसम्बन्धि तेज रात्रि में अग्नि को प्रवेश करता है इस हेतु सायंसमय अग्निर्ज्योति यह मन्त्र युक्त हुआ। उदयकाल में अग्निसम्बन्धि ज्योति सूर्य को प्रवेश करती है तिस से प्रातः समय सूर्योज्योति यह मन्त्र है+ का॰ ४·१४·१५· ब्रह्मतेज का चाहनेवाला अग्निर्वर्च्चः सूर्यो वर्च्चः इन्हों से साँझ और सवेरे होम करै॥ जो अग्नि वर्च्चः (ब्रह्मतेज) अनन्यभूत है। जिस का सो ज्योतिर्वर्च्चः अनन्यभूत है। तिस के अर्थ सुहुत हो। एवं सूर्यो वर्च्च इति॥ का॰ ४· १५· ११· अथ वा प्रातःसमय ज्यो-

+ अ-हा। अ॰। सू-हा। इ॰। अ-हा। उ॰। सू-हा। ऋ॰। ज्यो-हा। लृ॰॥९॥
+ अग्निमादित्यः सायं प्रविशति तस्मादग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे। उभे हि तेजसी सम्पद्येते उद्यन्तं वादित्यमग्निरनु समारोहति। तस्माद्धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे इति तित्तिरिश्रुतेः॥

तिः सूर्य इति होम करै॥ जो ज्योति सो सूर्य ही है। जो सूर्य सो ज्योति ही है। तिस के अर्थ सुहुत हो॥७॥

सजूर्देवेन॑ सवि॒त्रा स॒जू रात्र्येन्द्र॑वत्या। जु॒षा॒णो॑ऽअ॒ग्निर्वे॑तु स्वाहा॑॥ स॒जूर्दे॒वेन॑ सवि॒त्रा स॒जूरु॒षसेन्द्र॑वत्या। जु॒षा॒णः सूर्यो॑ वेतु॒ स्वाहा॑॥ १०॥† इतिसं॰ अ॰ ३॰

का॰ ४॰ १४॰ १४॰ पूर्वोक्त मन्त्रों (अग्निर्ज्योतिः सूर्योज्योतिः) के साथ ये दोनों मन्त्र विकल्पित हैं॥ मन्त्रार्थः। अग्निः वेतु (हमारे कर्म को प्राप्त हो यद्वा आहुति को भक्षण करै। कैसा अग्नि कि सविता देव (प्रेरक परमेश्वर) करि सहित सजूः (सामान प्रीति जिस की वो ह्व। तथा इन्द्रवती (इन्द्रदेवयुक्ता) रात्रि देवता करि सजूः। तथा हमारे विषें प्रीतियुक्त। जो उक्तगुणवान् अग्निदेव तिस के अर्थ स्वाहा हूयमान यह द्रव्य दिया॥ प्रातः सूर्य उच्यते। अग्निमन्त्रवदयं सूर्यमन्त्रो व्याख्येयः। पूर्वार्धे रात्रिदेवतायाः स्थाने उषोदेवता योजनीया॥१०॥

यजमानाग्न्युपस्थानं बृहदुपस्थानं देवदृष्टम्

अ॰ ४॰ उप॑ प्र॒यन्तो॑ऽअध्व॒रं मन्त्रं॑ वोचेमा॒ग्नये॑। आ॒रेऽअ॒स्मे च॑ शृण्व॒ते॥११॥

का॰ ४॰ १२॰ १—३॰ सायंसमय के अग्निहोत्र होम में काण्व॰ ३॰ ३॰ मन्त्र " स॒मिद॑सि समि॒द्धो मे॑ऽअग्ने दीदिहि॥ स॒मे॒द्धा ते॑ अग्ने दीद्यासम्॥ से समिधाधान के अनन्तर उप प्रयन्त ११॰ से ले परि ते ३६॰ तलक वात्सप्रसंज्ञक उपस्थान करि के आहवनीय

† स-हा॰ अ॰ ८॰ ॥१०॥

गार्हपत्य दोनो अग्नियों को उपतिष्ठे अध्यवान करें। तहां उपस्थानपक्ष में उप प्रयन्त ११॰अस्य प्रत्ना १६॰परि ते ३६॰इन तीनों ऋचाओं और चित्रावसविति १८॰ई॰को यथा स्थानस्थित तीनि-तीनि बार जपें॥ आद्ये द्वे आग्नेय्यौ गायत्र्यौ क्रमेण गोतम विरूपाभ्यामपि† दृष्टे॥ आहवनीयोपस्थानमन्त्रा आदौ। हम अनुष्ठान करनेहारे अग्नि के अर्थ मन्त्र(मनन करिके त्राण करनेवाला शब्द समूह कहते हैं। कैसे हैं हम कि अध्वर(यज्ञ)को समीप में चलते। कैसे अग्नि कि दूर और समीप में इति शेषः हमारे वाक्य सुनने को उद्युक्त॥११॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति॥१२॥

यह अग्नि जलों के रेतों(द्युलोक से वृष्टिरूप करि गिरतीहुई जलों के सार व्रीहियवादिरूपों करि परिणतों को प्रीति करता(बढाता)है।यद्वा जलों के कारणों को पुष्ट करता है। आहुति परिणाम करि वृष्टि को उत्पन्न करता है इत्यर्थः‡। कैसा अग्नि कि द्युलोक के शिरः समान(जैसे शिर शरीर के ऊपर में वर्तै है तैसे अग्नि दिन में अपने तेज करि आदित्य में प्रविष्ठ होंने से आदित्यरूप करि द्युलोक के ऊपर में वर्तै है।तथा ककुत्(गोपृष्ठवत् आदित्यरूप करि सर्वोपरि स्थित होने से ककुत्सदृश है।यद्वा महत् जगत्कारण है¶। तथा पृथिवी का पालक।दाहपाकप्रकाश करि भूलोकस्थों का उपकारी होने से॥१२॥

‡ ते वा एते आहुती उत्क्रामत इत्यादि श्रुतेः। अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजेति स्मृतेश्च।
¶ ककुदमिति महन्नाम निघ॰३॰३॰

† विरूपाङ्गिरसौ॥

उभा वामिन्द्राग्नी॰आहुवध्या॰उभा राधसः सह मा-
दयध्यै।उभा दातारविषांरयीणामुभा वाजस्य सा-
तये हुवे वाम्॥१३॥

भारद्वाजदृष्टा ऐन्द्राग्नी त्रिष्टुप्।इन्द्रशब्देनाहवनीयः। तस्य यज्ञसाधकत्वरूपैश्वर्ययुक्तत्वात्।अग्निशब्देन गार्हपत्यः।अग्रे नीयत इत्यग्निरिति यास्कव्युत्पत्तेः। स हि प्रथममाधीयते। हे इन्द्राग्नी तुम दोनों को बुलाने की इच्छा रखता हूं इतिशेषः। और हविर्लक्षण धन से तुम दोनों को प्रसन्न करने के लिये इच्छा०।क्योंकि तुम दोनों अन्न और धन के दातार हो इस लिये अन्नदान के अर्थ तुम दोनों को बुलाता हूं॥१३॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो॰अरोचथाः।तंजा-
नन्नग्न॰आरोहाथा नो वर्धया रयिम्॥१४॥

भारतौ देवश्रवादेववातश्च दृष्टाग्निदेवत्यानुष्टुप्। हे अग्ने(आहवनीय) तेरी यह गार्हपत्य योनि(उत्पत्तिस्थान)है।कैसी कि ऋत्वियः(उत्पादनयोग्य काल को प्राप्त+) जिस ऋतुकालोपेत गार्हपत्य से उत्पन्न हो तू कर्मकाल में दीप्त हुआ। हे अग्ने तिस गार्हपत्य अपने जनक को आरोहणकरि(पुनः उद्धरण के अर्थ कर्म के अन्त में प्रवेश करि। अथानन्तर हमारे अर्थ धन वढाय(पुनर्योग के अर्थ समृद्ध करि॥१४॥

+सायं प्रातः काले उत्पादनयोग्या योनिः।

अयमिह प्रथमो धायिधातृभिर्होता यजिष्ठो॰अ-
ध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चि-

त्रं विभ्वं विशेविशे॥२५॥

आग्नेयी वामदेवदृष्टा जगती। यह आहवनीय इस कर्मानु-
ष्ठानस्थान में मुख्य+ होते आधान कर्ताओं करि आहित हुआ।
कैसा कि होता (देवताओं का बुलानेवाला। अतिशयेन यष्टा।
तथा अध्वरों (सोमयागादिकों) में ऋत्विजों करि स्तुतियोग्य।
अप्नवानः (पुत्रवन्तः) भृगुवंश में हुए मुनयः वा अप्नवान् (भृगु-
प्रभृति मुनिलोग) जिस आहवनीय को विशेविशे (वनों में वा
विडिति मनुष्यनाम निघं॰ २॰ ३॰ यजमानरूपमनुष्यों के अर्थ
ग्राम से वाहिर यजनाख्य अरण्य प्रदेश में) दीपन करते हुए।
कैसे जिस अग्नि को कि चित्र (विविधकर्मोपयोगित्व करि
आश्चर्यकारि। अत एव विभूत्व शक्तियुक्त को॥२५॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सह-
स्रसामृषिम्॥२६॥

गायत्र्यवत्सारदृष्टा गोऽग्निपयोदेवत्या। इस अग्नि की प्रत्ना (
(चिरंतनकालभवा) ज्योति को अनुसरण करि के अह्रय (लज्जा
रहिता दोग्धारः) ऋषि (दोहस्थान में चलती गौ) को होम के
अर्थ शुद्ध पय दुहते हुए। सायंदोहनकाल में अग्नि के प्रकाश
न होने से दुहा दुग्ध भूमि में गिरेगा इस शंका करि दोग्धाओं
को लज्जा होती है जब कि अग्नि का प्रकाश हुआ फिरि यह शं-
का कहां। कैसी ऋषि कि सहस्रसंख्याककर्मों को क्षीरदध्यादि ह-
विः प्रदान करि समाप्त करती॥ यद्वास्या ऋचोऽर्थान्तरम्। गा-

+ दक्षिणाग्न्यपेक्षं प्राथम्यम्।

म्न्रक्त्याग्निहोत्रब्राह्मणे श्रूयते २॰२॰४॰२५॰ तामु ह्याग्निरभिदध्या-
वित्यादि। तदभिप्रायमेषा ऋग्वदति। अह्रयः (अलज्जा उज्ज्वला
प्रशस्या) गौएं इस अग्नि की अपने में चिरंतनी अनुषक्ता शुक्र
रूपापन्ना दीप्ति (पय) को क्षरती हैं। अग्नि करि शुक्ररूप से सींची
अपनी कान्ति को ही गौएं दुग्धरूप से झरती हैं इत्यर्थः। कैसे प-
य कि सहस्रसा (चातुर्मास्य पशुसोम के सम्भक्तार। तथा ऋषि
द्रष्टार ‡) को॥ यद्वा सहस्रमृषिमिति विभक्तिलिङ्गवचनव्यत्य-
येन अह्रय इत्यस्य विशेषणद्वयम्। कैसे अह्रयः कि सहस्रसाः
ऋषयः। पूर्ववदर्थो वा॥ १६॥

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे
देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा
ऊनं तन्म आपृण॥ १७॥ †

चत्वार्यग्निदेवत्यानि यजूंषि १॰ तनूपा आसुरीपंक्तिः २॰ आ-
युर्दा आसुरीत्रिष्टुप् ३॰ वर्चोदा आसुरीपङ्क्तिः ४॰ अग्ने आसुर्य-
नुष्टुप्। हे अग्ने तू स्वभाव से ही तनूओं (अग्निहोत्रिओं के शरीरों)
का पालक है। उदराग्नि के होते अन्न के जीर्ण होने में शरीर का
पालन है अतः मेरे शरीर को पालि॥ १॥ हे अग्ने तू आयु का दा-
ता है अतः मुझे आयु दे। अपमृत्यु परिहार करिके। जितने काल
शरीर में उष्णता दीखै है तितनें नही मरता यह प्रसिद्ध है
२॥ हे अग्ने तू वर्चः (वैदिकानुष्ठान प्रयुक्त तेज ‡) का दाता
है अतः मुझे वर्चः दे॥ ३॥ किंच हे अग्ने मेरे शरीर के जो अङ्ग

‡ जिस के दर्शन से मनुष्यों की यह बुद्धि होती है कि यह ब्राह्मण बड़ा अग्नि जैसे प्रकाशित है।

† त-हि। अ॰। प्रा-हि। इ॰। व-हि। उ॰। अ-ए। ऋ॰॥ १७॥

‡ गवि वर्तमानं द्रष्टृत्वं पयस्युपचर्यते। सा हैनानुदीक्ष्य हिङ्ङकारेत्युपक्रम्य में देवा
विदां चक्रुरेष साम्नो हिंकार इत्यादिना ग्रन्थेन गोभिर्हिंकारो दृष्ट इति प्रत्यपादि।

(चक्षुश्रोत्रादिरूप) ऊन (दृष्टिपाटवादिरहित) तिन मेरे अङ्गों को सर्वतः पूरि॥४॥१७॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय॥१८॥+ इ-म्। अ॰। चि-य। इ॰॥१८॥

इन्धानास्त्वेति महापङ्क्तिस्त्र्यवसानाग्निदेवत्या। हे अग्ने शतवर्ष पर्यन्त हम अपनी आयु में वर्तमान तुझे निरन्तर दीपन करते हैं। हम कैसे कि तेरे अनुग्रह करि के दीप्यमान तथा अन्नवन्त तथा वलवन्त किसी करि भी न मारे जावें। तुझ कैसे को कि दीप्तिमन्त। अन्न के करनेवाले। वल करनेवाले। शत्रुओं के मारनेहारे। किसी करिके भी मारने के लिये अयोग्य को॥ चित्रावसो। इति रात्रिदेवत्यं ऋषिदृष्टं यजुर्जगतीछन्दः। हे चित्रावसो (चित्र विविध चन्द्रनक्षत्रान्धकाररूप वास करते जिस में+ रात्रे) जैसे कल्याण हो तैसे तेरे पार (समाप्ति) को पहुँचूं। जैसे लोक में मनुष्यों के सोने पर घर में चोर प्रवेश करते हैं तैसे यहां देवयजन में राक्षस प्रवेश करते हैं इस शंका के निवारणार्थ रात्रि से प्रार्थना है॥१८॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन। सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सꣳ रायस्पोषेण ग्मिषीय॥१९॥

+ रात्रिर्वै चित्रावसुः सा हीयꣳ संगृह्येव चित्राणि वसतीति २॰३॰४॰२२॰ श्रुतेश्चित्रावसुशब्देन रात्रिः॥

का॰४॰१२॰४॰ उपप्रयन्त इत्यादि चित्रावसो इत्यन्त मन्त्रों करि खडे होके उपस्थान है इस सें बैठि कर यह विशेष है ॥ अग्नि देवत्या ब्राह्म्यनुष्टुप्। हे अग्ने तू सूर्य के तेज करि रात्रि में संगत है †। ऋषीओं (मन्त्रों) के स्तोत्रों करि संगत है (बहुत से मन्त्र अग्नि की स्तुति करते हैं ‡। प्रिय धामों (आहुतिओं) करि सं॰ ५। जैसे तू इन तीनों करि सं॰। तैसे मैं भी तेरे प्रसाद से आयु (अपमृत्यु दोष राहित्य) करि संगत होंउँ। तथा वर्च (विद्यैश्वर्यादि तेज) करि सं॰। तथा प्रजा (पुत्रादि) करि सं॰। तथा रायस्पोष (धन की पुष्टि) करि सं॰। आयुरादि मेरे हों इत्यर्थः॥ १९॥

अन्ध॒ स्थान्धो॑ वो भक्षीय॒ मह॑स्थ॒ महो॑ वो भक्षी योर्ज॒ स्थोर्जं॑ वो भक्षीय रा॒यस्पोष॑ स्थ रा॒यस्पोषं॑ वो भक्षीय ॥२०॥

का॰४॰१२॰५॰ अन्धस्थ॰ रेवती रमध्वम् इन दो मन्त्रों से गौ प्रति जावे ॥ त्रीणि गोदेवत्यानि १॰ यजुः २॰ प्राजापत्या त्रिष्टुप्। हे गौओ तुम अन्ध (अन्न रूप) हो। क्षीराज्यादि रूप अन्न के जनक होने सें। अतः तुम्हारे प्रसाद सें तुमसम्बन्धि क्षीराज्यादि रूप अन्न को मैं भक्षण करूं। तथा तुम महः (पूज्य) हो अतः तुम पूज्यों के प्रसाद में भी पूज्य होंउँ†। यद्वा महः शब्द करि दश वीर्य कहियें हैं। यथा गोर्वै प्रतिधुक् तस्यै शृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्या आतञ्च-

† तद्यदस्तयन्नादित्य आहवनीयं प्रविशति ते नैतदाहीति श्रुतेः २॰३॰४॰२४॰
‡ तद्यदुपतिष्ठते ते नैतदाहेति श्रुतेः २॰३॰४॰२४॰
५ आहुतयो वा अस्य प्रियधामेति श्रुतेः २॰३॰४॰२४॰।

† गौर्वै यद्या सहस्थेत्यादि श्रुतेर्गवां पूज्यत्वं प्रसिद्धम्।

नं तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्या आमिक्षा तस्यै वाजिनमि-
ति श्रुत्युक्तानि। प्रतिधुक् सद्यदुग्ध १ शृत उष्णादुग्ध
२ शार दुग्ध का मण्ड ३ दधि दही ४ मस्तु दही का रस
५ आतञ्चन दही का पिण्डा ६ नवनीत लोंनी ७ घृत
घी ८ आमिक्षा फटादुग्ध ९ वाजिन फटे दुग्ध का जल
१० इति श्रुत्यर्थः। ये दशवीर्यरूपा तुम हो अतः तुम दशा-
ओं के प्रसाद से मैं दशवीर्य सेवन करूं। तथा तुम ऊर्ज
(बलरूपा) हो गौ के क्षीरादि बल का हेतु होंने से बलरूपत्व
है। तुम्हारे प्रसाद से मैं बल का सेवन करूं। तथा धनपुष्टिरू
पा हो। क्यों कि वैश्यलोग क्षीराज्यादिविक्रय करि धन को
पुष्ट करते हैं। अतः धनपुष्टित्वोपचारः। तुम्हारे प्रसाद से ध-
न की पुष्टि को सेवन करूं॥२०॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन्गोष्ठेऽस्मिंल्लोकेऽ-
स्मिन्क्षये॥इहैव स्त मापगात॥२१॥

हे रेवत्यः (धनवती गौओ †) इस योनि (अग्निहोत्र हविर्दोहन
स्थान) में तुम रमों (क्रीडाकरो) दोहन के ऊपर इस यजमानसम्बन्धि
गोष्ठ ‡ (गौत) में रमों। सर्वदा इस लोक (यजमान की दृष्टि)
में रमों। रात्रि समय इस यजमान के घर में रमों। इस यजमा-
न के घर में ही रहो। अन्यत्र मत जाओ॥२१॥

संहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन। उ-
प त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो

† धनहेतुत्वेन धनवत्त्वं गवाम्। रयिर्विद्यते यासां ता रेवत्यः। पशवो वै रेवन्त इति श्रुतेः २.३.४.२६.
‡ गोष्ठशब्देन गृहाद्बहिर्विश्रम्भेण संचारप्रदेशः।

+ श्रुत० २.३.४.२ का० ७.८.८.

भरन्त एमसि॥२२॥ + स-न।अ०।उ-सि।द०॥२२॥

का० ४॰१२॰६॰ गोत में जाकर सहितेति गौ को हाथ से गृहण करै॥ ३॰साम्न्यनुष्टुप्॰ हे गौः तू संहिता (क्षीराज्यरूप हविर्दान के अर्थ यज्ञकर्मों करि संयुक्त) है। कैसी कि विश्वरूपी (शुक्ल कृष्णादि बहु रूप युक्ता। सो तू क्षीरादि रस और गोपतित्व करि मुझ में सर्वतः प्रवेश करि (तेरे प्रसाद से मेरे बहुविध रस और बहु विध गोस्वामित्व होवै॥का० ४॰१२॰७॰ गार्हपत्य प्रति चलिकर उप त्वेति तृच से सर्वतः उपस्थान करै॥ तिस्रो गायत्र्य आग्नेय्यो विश्वामित्रसुतमधुच्छन्दोदृष्टाः॥ हे अग्ने दोषावस्तः (रात्रि में वास करने हारे॰ अजस्रं धार्यमाणत्वान्नोपशाम्यति यद्वा अग्नौ ह देवा इत्युपक्रम्य तैः संगृह्य रात्रिं प्रविवेश इस इतिहास करि अग्नि में रात्रि के समय प्रवेश कहा तिसे यह मन्त्र कहिता है। हे दोषावस्तः (रात्रि में वसनशील गार्हपत्य) प्रति दिन हम यजमान तुझ प्रति गमन करते हैं। कैसे हम कि धी (श्रद्धा युक्त बुद्धि) करि नमः (नमस्कार) करते वा नमः (हवि+) देते॥२२॥ + नम इत्यन्ननाम निघं०२.७॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानꣳ स्वे दमे॥२३॥

क्रियापदमनुवर्तते। हम ऐसे अग्नि को गमन करते हैं। कैसे को कि दीप्यमान यज्ञों का रक्षक। सत्य वदनलक्षणव्रत का प्रकाश करने हारा आशय यह है कि अग्नि समीप में व्रत लेके

सत्य बोलै। हमारे घर में वर्धमान (चातुर्मास्य सोम पश्वादि करि वृद्धि को प्राप्त ॥२३॥

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व। सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥२४॥

हे अग्ने गार्हपत्य सो पूर्वोक्त गुणयुक्त तू हमारा सूपायनः (सुख करिके समीप में प्राप्त होने के लिये समर्थ) हो। तत्र दृष्टान्तः। जैसे पुत्र के अर्थ पिता विना भय के सुख क॰-मर्थ है। किंच हमारी क्षेम के अर्थ सचस्व। (इस कर्म करि समवेता हो वा सेवन करि ॥२४॥

अग्ने॒ त्वं नो॒ऽअन्त॑म उ॒त त्रा॒ता शि॒वो भ॑वा वरू॒थ्यः॑। वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ऽअच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मꣳ र॒यिं दाः॑ ॥२५॥

चतस्रो द्विपदा विराज आग्नेय्यः बन्धुः सुबन्धुश्रुतबन्धु विप्रबन्धु दृष्टाः क्रमेण। हे अग्ने गार्हपत्य तू हमारे सर्वदा समीप वर्ती वा साधु हो। और पालन करने हारा। शान्त। वरूथ्य (पुत्रादि समूह वा घर के अर्थ हित) हो। कैसा है तू जनों का वास करानेवाला। तथा अग्निः (आहवनीयादि रूप करि गमनशील। तथा वसुश्रवा (धन करि के कीर्ति जिस की॰ धन देनेवाला यह कीर्ति जिस की। किंच हे अग्ने तू हमलोगों को अच्छा नक्षि (अभिव्याप्त हो वा हे निर्मलस्वभाव अग्ने हमारे होम स्थान को प्राप्त हो॰ जब-जब हम होम करें तब-तब भले प्रकार आगमन करि। किंच अतिदीप्तियुक्त धन दे ॥२५॥

+ म-र्ग्यः॥ अ॰व-दाः॥ द्व॰॥२५॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः। सनो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽ अघायतः समस्मात् ॥२६॥ + तं-भ्यः। अ॰। स-त्। दू॰॥२६॥

हे शोचिष्ठ (दीप्तिमत्तम) हे दीदिवः (सब के प्रकाश करनेहारे) तिस (पूर्वोक्त गुणयुक्त) तुझे सखिओं के अर्थ सुख को निश्चयेन याचना करते हैं। वा सुख के अर्थ और सखीओं के उपकारार्थ तुझे याचना करते हैं। सो तू हम (अपने सेवकों) को बोधन करि हमारे आह्वानों को सुनि सब शत्रुओं से हमें रक्षा करि॥२६॥

इडऽएह्यदितऽएहि काम्या एत। मयि वः कामधरणं भूयात्॥२७॥ + इ-हि। अ॰। का-त्। दू॰॥२७॥

का॰ ४॰ १२॰ ८॰ इडऽएहीति फिरि तिसी गौ प्रति जावै॥ गोदेवत्या प्राजापत्या गायत्री। हे इडे (मनुपुत्री) आगमन करि। हे अदिते (देवमाता) आगमन करि होमस्थान को। इडा मनु की ऐसे हम लोगों प्रति आ। अदिति आदित्यों की ऐसे हम लोगों प्रति आ॥ का॰ ४॰ १२॰ ९॰ काम्या एतेति तिस गौ का ग्रहण करै॥ साम्नी उष्णिग्गोदेवत्या। हे काम्याः (सबों करि कामयितव्याः +) तुम आओ तुम्हारा अपेक्षितफल धारकत्व मुझ अनुष्ठातार विषें होवै (तुम्हारे प्रसाद से मैं अभीष्टफल का धारयिता होऊँ *)॥२७॥

सोमानᳬं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः॥२८॥

* अहं वः प्रियो भूयासमिति श्रुतिर्व्याचष्टे २॰३॰४॰३४॰

\+ मनुष्याणां होतारः कामाः प्रविष्टा इति काम्याः॥

का॰४॰१२॰१०॰ व्रतोपायनवत् (का॰२॰१॰११॰) विना जलका उपस्पर्श किये आहवनीय को पूर्व में खडे हो देखता हुआ सोमानमिति नौ २८–३६॰ ऋचाओं को जपे॥ सोमानथंस्वरणं तृचो गायत्रो ब्रह्मणस्पतिदेवत्यस्तेनैव दृष्टो मेधातिथिदृष्टो वा। अग्निमीक्षमाणस्य यजमानस्य जपे विनियुक्तः॥ हे ब्रह्मणस्पते (वेद के पालक) सोमान (सोमयाग कर्तार) और स्तुतिरूप शब्दयुक्त धनप्रदान करिके मुझे करि। तत्रोपमानमुच्यते। जैसा कि कक्षीवन्त (दीर्घतमा के पुत्र कक्षीवन्नामक ऋषि को सोमयागयुक्त और स्तुतियुक्त किया तैसा मुझे करि †। कौन कक्षीवान् कि जो उशिजा (अङ्गराजा की दासी) में हुआ॥२८॥

यो रेवान्यो॰ अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः॥२९॥

जो ब्रह्मणस्पति धनवान् और जो रोगहन्ता धन का दाता पुष्टि का बढानेवाला और जो अविलम्बकारी सो हमें सेवन करें॥ यद्वानयर्चा पुत्रः प्रार्थ्यते। जो पुत्र धनवान् और जो जपादि करि व्याधि का हन्ता जो धन का लाने वाला और पुष्टि का बढाने वाला जो शीघ्रकारी तैसा पुत्र हे अग्ने तेरे प्रसाद से हमें सेवन करें॥२९॥

मा नः शंसो॰ अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य। रक्षाणो ब्रह्मणस्पते॥३०॥

† कक्षीवतो॰नुष्ठातृषु मुनिषु प्रसिद्धिस्तैत्तिरीये समाम्नायते। एवं वै पर आह्लारः कक्षीवानौशिजो वीतहव्यः श्रायसस्त्रसदस्युः प्रजाकामा अचिन्वतेति। ऋगन्तरे॰प्यृषित्वकथनेनानुष्ठातृत्वप्रसिद्धिः सूच्यते। अहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्र इति। तस्मादस्यानुष्ठातारं प्रति दृष्टान्तत्वं युक्तम्।

अररुषः (हविर्दान को न करने वाला वा उपद्रवी मनुष्य) का शंसन (अनिष्टचिन्तन) और धूर्ति (हिंसा) हमें प्रकर्षेण व्याप्त न हो अर्थात् शत्रुकृतमनिष्टचिन्तन और शत्रुकृताहिंसा हमें व्याप्त न हो। तिस के लिये हे ब्रह्मणस्पते (वेद के पालक अग्ने) हमें रक्षा करि॥ ३०॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य॥ ३१॥

वरुणसुतसत्यधृतिदृष्ट आदित्यदेवत्यस्तृचो गायत्री जपे विनियुक्तः पथिजप्त उपद्रवनाशकश्च। मित्र अर्यमा वरुण इन तीनों देव सम्बन्धि पालन हो। कैसा पालन कि बडा तथा जिस पालन में सुवर्णादि द्रव्यें वास करती हैं तैसा। तिरस्कार करने को अशक्य॥ ३१॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशंसः॥ ३२॥

अमाओं (घरों +) में भी वर्तमानों तथा वारणों (चोरव्याघ्रादिक जहां स्थित हुए निवारण करते हैं पथिकों को तिन्हों) में अथवा चोरव्याघ्रभयाढ्यमार्गों में वर्तमान तिन मित्र अर्यमा वरुण तीनों देवताओं करि पालन किये यजमानों को उपद्रव के अर्थ इति शेषः। अघशंस (सर्वदा पाप का अशंसक) शत्रु समर्थ नही होता। अर्थात् मित्रादि करि पालित हम लोगों को घर और वन में शत्रुबाधा नहीं है॥ २२॥

ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्य-

+ अमा इति गृहनामसु पठितम् नि॰ ३।४।

छन्त्यजस्रम्॥३३॥

कैसे तिन्हों करि रक्षा किये यजमानों को शत्रुभय नहीं होती तहां कहिता है। क्योंकि ते अदिति (अखण्डितशक्ति देवमाता) के पुत्र (पूर्वोक्त मित्रार्यमवरुण) मनुष्य (यजमान) के अर्थ निरन्तर अनुपक्षीण तेज देते हैं। किस लिये कि जीवन को। जैसे चिरजीवन हो तैसे तिस के उपाय का ज्ञान देते हैं इत्यर्थः॥३३॥

कुदा चुन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥३४॥

ऐन्द्री पथ्याबृहती मधुछन्दोदृष्टा जपे विनियुक्ता। हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त कदापि तू स्तरीः (हिंसक) नहीं है किं तर्हि हविदेनेवाले यजमान को सेवन करता है। किं च हे मघवन् (धनवन्) तेरा प्रकाशमान बहुतर दान यजमान के साथ सम्पर्क को प्राप्त होता है। भाव यह है कि कभी यजमान प्रति क्रुद्ध नहीं होता और सेवन कर्ता है तिस तेरा बहुतर धन यजमान को सम्पर्क होता है॥३४॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥३५॥

विश्वामित्रदृष्टा गायत्री सावित्री जपे विनियुक्ता। 'यः' जो सविता देव, 'नः' हमारे, 'धियः' धर्मादिविषया कर्मों वा बुद्धि को, 'प्रचोदयात्' प्रेरणा करता है, 'तत्' तिस, 'देवस्य' प्रकाशमान, 'सवितुः' सर्वों के अन्तर्यामि प्रेरक जगत्स-

जनेवाले परमेश्वर विज्ञानानन्दस्वभाव वा हिरण्यगर्भोपाध्यव-
छिन्न वा आदित्यान्तरपुरुष वा ब्रह्म के, 'वरेण्यं' सर्वों से उपासना
और ज्ञान करि के संभजनीय (श्रद्धापूर्वक सेवनीय), 'भर्गो' अ-
विद्या के कार्यो सब पापों और सब संसार के भर्जनसमर्थ. सत्य-
ज्ञानादि वेदान्तप्रतिपाद्य स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मक तेज को,
'धीमहि' हम ध्याय करते हैं॥ यद्वा तदिति भर्गोविशेषणम्। मण्ड-
लं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्गः शब्दवाच्यम्। भर्गो वीर्यं वा॥ वरु-
णाद्ध वा अभिषिषिचानाद्भर्गोऽपचक्राम। वीर्यं वै भर्ग इति ५॰
४॰५॰१॰ श्रुतेः। सवितुर्देवस्य सविता देवता के; तत् तैसे, भर्ग
को ध्यान करते हैं। तिस कैसे को कि जो भर्ग धियः प्रचोदया
त् तिसे ध्यान करते हैं इति समन्वयः॥ यद्वा जो सविता (सूर्य) धि-
यः कर्मों को सत्कर्मानुष्ठान के अर्थ, प्रचोदयात् प्रेरणा करता
है, तिस 'सवितुः' सब के प्रसविता; 'देवस्य' द्योतमान सूर्य के,
'तत्' सर्वों से दृश्यमान करि के प्रसिद्ध; 'वरेण्यं' सर्वोंकरि संभ-
जनीय; 'भर्गः' पापों के तपानेवाले तेजोमण्ड को; 'धीमहि' मनसे
ध्यान करिके धारण करते हैं॥ यद्वा भर्गः शब्देनान्नमभिधीयते।
जो सविता देव धियः प्रचोदयात् तिस के प्रसाद से अन्नादिलक्ष-
ण फल को 'धीमहि' धारण करते हैं (अर्थात् तिस के आधार भूता
होवें॥ भर्गः शब्दस्यान्नपरत्वे धी शब्दस्य कर्मपरत्वे चाथर्वणम्।
वेदांश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः क-
र्माणि धियस्तदु ते प्रब्रवीमि प्रचोदयंत्सविता याभिरेतीति।

गोपथब्रा·१·३२·॥अयमर्थः सायनानुसारेण(ऋक्संहिताभाष्यवेदार्थप्रकाश अष्टक ३·अध्याय ४·वर्ग १०·मण्डल ३·अनुवाक ५·सूक्त ६२·ऋचा १०) महीधरानुसारेण च॥३५॥

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ २॥ अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः॥३६॥

आग्नेयी गायत्र्यनिरुक्ता वामदेवदृष्टा जपेविनियुक्ता। हे अग्नि तेरा रथ हम यजमानों को सब दिशाओं में परितः व्याप्त हो हमारी रक्षा के अर्थ सर्वतः तिष्ठै। कैसा रथ कि किसी करि भी सहसा हिंसा करने के लिये अशक्य। जिस रथ करि तू यजमानों को रक्षा करता है॥३६॥ इति बृहदुपस्थानं समाप्तम्॥

अथ क्षुल्लकोपस्थानमासुरिदृष्टम्

अ·५· भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः॥

प्रवत्स्यदुपस्थानमागतोपस्थानंचादित्यदृष्टम्

नर्य प्रजां मे पाहि शᳬंस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि॥३७॥+

का·४·१२·१२· अथवा पूर्वोक्त उपप्रयन्त इत्यादि करि कहे हुए उपस्थान के स्थान में भूर्भुवः स्वरित्यादि सुपोषः पोषैरित्यन्त मन्त्र करि आहवनीय का उपस्थान करिके इसी से गार्हपत्य का उपस्थान करै॥ आहवनीयगार्हपत्यदेवत्यं यजुः। हे अग्ने भूर्भुवः स्वः तू व्याहृति त्रयात्मक वा तिस के अर्थ भूत लो-

+ भू·३·।।प्र·।न-हि।इ·शा-हि।उ·।अ-हि।क·।३७।

…त्मक है। अतः तेरे प्रसाद से मैं प्रजा (वन्धुभृत्यादिरूपा)
…कि सुप्रजाः (अनुकूलत्वेन शोभनप्रजावाला) होंउं। तथावी-
…री) करि सुवीर (शास्त्रीयमार्गवर्ति शोभनपुत्रयुक्त) होंउं॥
…लकोपस्थानं + समाप्तम्॥
…४॰१२॰१३॰ जब यजमान प्रवास * करै (अपने ग्राम से दूसरे
… को जावै) तब सब अग्नियों को नर्येत्यादिमन्त्रों करि उप-
…॥नर्य प्रजामिति गार्हपत्यो देवता यजुरुष्णिक्छन्दः गार्हप-
…पस्थाने विनि॰। हे नर्य (मनुष्यों-यजमानों के अर्थ हितकारी
…र्हपत्य) मेरी प्रजा को रक्षा करि॥ शंस्येति आहवनीयो देवता
…जुरुष्णिक् आहवनीयोपस्थाने वि॰। हे शंस्य (अनुष्ठाताओं
करि शंसा करने के लिये योग्य आहवनीय) मेरी प्रजा पुत्रादिका
को पालि॥ अथर्य्येति दक्षिणाग्निर्देवता प्राजापत्या गायत्री द-
क्षिणाग्न्युपस्था॰। हे अथर्य (गार्हपत्य से अपने स्थान को चलते
दक्षिणाग्ने) मेरे पितु (अन्न) को रक्षा करि॥३७॥ प्रवत्स्यदुप-
स्थानं समाप्तम्॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्। अग्ने
सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व॥३८॥

का॰४॰१२॰१८॰ अन्यग्राम से लौटि अपने ग्राम को प्राप्तहुआ
समिधा हाथ में लिये उपस्थान से पहिलै पिता गुरु वा राजा के
निकट न जावै तथा अपने समीप में आये हुओं को भी नमस्का-
रादि न करै तत्काल स्नान करि अग्न्यागार में प्राप्त हो आगन्मेत्या-

+ पूर्वोक्तदीर्घोपस्थानाशक्तेन यद्य लघुरुप स्थानं कर्त्तव्यम्-पस्थानम्

* प्रवासशब्दार्थमाह कारिकाकारः। ग्रामान्तरे नगर्यां वा पल्ल्यां वान्यत्र वा क्वचित्। सीमा-
मतीत्य चेद्रात्रौ वासः प्रवसनं स्मृतमिति॥

दि तीनों मन्त्रों से आहवनीयादिकों को उपतिष्ठै॥आद्यावाहवनीयमुपतिष्ठते। अनुष्टुबाहवनीयदेवत्या। हे अग्ने सम्राट् (सम्यक् राजमान् आहवनीय) हम तुम को उद्देश करि ग्रामान्तर से लौटि के आये। तुम कैसे को कि विश्ववेदा (सर्वज्ञ वा सर्वधन) तथा हमारे अर्थ धन के लब्धार को॥ किं च हे अग्ने हमारे विषें द्युम्न (पशव्य अन्न†) तथा सह (बल‡) को आयच्छस्व (आगमन वा स्थापन करि)॥३८॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः। अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व॥३९॥

गार्हपत्यमुपतिष्ठते। न्यङ्कुसारिणी बृहती गार्हपत्याग्निदेवत्या॥ यह सामने उपस्थित गार्हपत्यनामा अग्नि घर का पालक है। प्रजा (पुत्र पौत्रादिका) के अनुग्रहार्थ अतिशयेन धन का लब्धा। हे अग्ने गृहपते सो तू द्युम्न और सह दे॥३९॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिवर्धनः। अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व॥४०॥

दक्षिणाग्निमुपतिष्ठते। दक्षिणाग्निदेवत्यानुष्टुप्। जो यह अग्नि पुरीष्य (पशव्य) धनवान् पुष्टि का बढानेवाला है तिसे याचना करता हूं। हे अग्ने पशुहित द्युम्न और सह सर्वतः दे॥४०॥

अ०६ गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि। ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥४१॥

का०४।१२।२२ गृहामेत्यादि घर को प्राप्त होवै॥ तिस्रोऽपि वास्तुदेवत्याः बृहस्पतिसुतशंम्युदृष्टाः। आद्या त्रिष्टुब्विराड्रूपा। हे घर

† द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा निरु०५।५॥

‡ सह इति बलनाम निघ०२।९।

भय मत करो यह कि पालक यजमान गया। और कोई
आके विनाश करेगा यह बुद्धि करिके मत कांपो। क्यों कि
र्ज (अक्षीणअन्न) को धारण किये तुम में आये। जैसे तु
ने धारण किये हो तैसे हम भी ऊर्ज को धारण किये शोभ-
नक शोभनधारणप्रज्ञोपेत मन से दुःख रहित करि प्रस-
न्न घरों को आये हैं ॥४१॥

येषामुध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः। गृहानुपह्वया-
महे ते नो जानन्तु जानतः॥४२॥

बुप्। देशान्तर को गया यजमान जिन गृहों का स्मरण कर-
ता (गृहविशेषक्षेम को सदाचिन्तवन करता) है। तथा जिन गृहों
में यजमान की बहुत करिके प्रीति है। हम तिन गृहों को बुलाते
हैं (गृहाभिमानीदेव हमारे समीप आवें। ते गृहदेवा आकरके
हमें उपकाराभिज्ञ जानें (येकृतज्ञ नहीं हुए यहजानें ॥४२॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथो अन्नस्य
कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रप-
द्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः+॥४३॥

पवसानामहापङ्क्तिः। इन घरों में गौएं और बलीवर्द सुख क-
रिके तिष्ठें यह हमने आज्ञा दी। तथा छेरियें और भेडियें सु-
खपूर्वक रहें यह हमने आज्ञा दी। और अन्न सम्बन्धि रसवि-
शेष हमारे घरों मे समृद्ध हो ऐसी हमने आज्ञा दी॥ का०४·
१२·२३· क्षेमाय व इति गृह में प्रवेश करे॥ हे गृहस्थो तुम को

+ शंयोः शंयोः इति वा पाठः।

प्राप्त होता हूं। किमर्थम् कि क्षेम (विद्यमान धन की रक्षा) के अर्थ। शान्ति (अपने सर्वानिष्टशमन) के अर्थ। सुरुशम्य (सुख चाहने हारे+) का शिव (ऐहिक सुख) शग्म (आमुष्मिक सुख)* उभयविध सुख होवे इति शेष:॥ शम्योरित्यभ्यासोऽत्यादरार्थः॥४३॥ इत्युपस्थानमन्त्राः समाप्ताः॥

अथ चातुर्मास्यमन्त्राः प्रजापतिदृष्टाः

अ०७। प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः॥४४॥

चातुर्मास्य के मन्त्र प्रजापति ने देखे। सो चातुर्मास्यनामा यज्ञ पर्वचतुष्टयात्मक है। वैश्वदेव १ वरुणप्रघास २ साकमेध ३ शुनासीरीय ४ नामा चारि पर्व हैं। तहां वरुणप्रघासाख्य दूसरे पर्व में दक्षिणोत्तर दोनों वेदियों पर हविओं के रखने में प्रतिप्रस्थाता यजमानपत्नी से पूछे केन चरसि अपने पति से व्यतिरिक्त किस पुरुष के साथ मैथुनसुख का अनुभव करती है। यदि लज्जा करि जार का नाम न कहे तदा प्रति जार का एक-एक तृण हाथ से गृहण करें। और जो जार न हो तौ भर्तृव्यतिरेकेण न केनापि चरामि भर्तार से व्यतिरिक्त किसी से भी मैथुन नहीं करती- यह कहे॥ का०५।५।१०। पत्नी करि प्रतिवचन देते प्रतिप्रस्थाता तिस पत्नी को उठाकर आहवनीय प्रति लाके प्रघासिनः यह मन्त्र बुलवावे॥ मारुती गायत्री। हम मरुतों और^ष तदीयपरि

+ शम्योः शमिति सुखनाम निघ०३।६। तत्कामयते इति शम्युः। हृदस्युरिदं कामयमान इति निरु०६।३। शपाकोऽकत्वात्।

* शिवं शग्ममिति द्वे सुखनामनी निघ०३।६।

^ष चकारेण तदीयपरिचारका समुच्चीयन्ते

चारकों को बुलाते हैं। कैसे मरुतों कि प्रघासिनः (प्रकर्षेण भक्षण करिये हैं, हविर्विशेष तिस युक्तों प्रघासीनामाख्यों, तदुपलक्षितों†) को। पुनः कैसों कि रिशादसों (वैरिकृता हिंसा के नाश करनेवालों वा हिंसकों के मारनेवालों) को। तथा करम्भ (यवमय हविर्विशेष) से समान प्रीति है जिन्हों की तिन्हों को॥४४॥

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा॥४५॥

का॰५॰५॰११॰ यवपिष्ट करि बनाये एकाधिक संतानपरिमित वर्तुलादिरूप करम्भ पात्रों को जुहूस्थानापन्न शूर्प करिके दक्षिणाग्नि में पत्नी होमें इत्येकः पक्षः। अथवा जायापती दोनों होमें इत्यपरपक्षः। और सो जायापती दक्षिणमार्ग करि तिन पात्रों को लेके वेदि के पूर्व दिशा वा पश्चिमदिशा में स्थित हो होमें॥ मरुद्देवत्यानुष्टुबनिरुक्ता। ग्राम में वास करि जो हमनें ग्रामोपद्रवरूप पाप किया। तथा अरण्य में वास करि जो पाप मृगोपद्रवरूप किया। तथा सभा में स्थित हो जो पाप महाजनतिरस्कारादिक किया। तथा इन्द्रियों जिह्वोपस्थरूपाओं करि हमनें प्रीति करिके जो पाप कलञ्ज भक्षण परस्त्रीगमनादि किया। तथा अन्यत्र भी भृत्यस्वाम्यादि में जो पाप ताडनावज्ञादिक किया तिस इस सब पाप को नाश करते हैं। स्वाहा (यह हवि पापविनाशिनी देवता के अर्थ दिया॥४५॥

† शुक्रज्योतिरित्यादयः सप्त सप्तका मारुता गणाः। तत्र स्वतवाँश्च प्रघासी चेति पठ्यते अध्या॰१७॰८५॰।

मो षू ण॑ इन्द्रा॒त्र पृ॒त्सु दे॒वैरस्ति॒ हि ष्मा॑ ते शुष्मि॒न्नवयाः। म॒हश्चि॒द्यस्य॑ मी॒ढुषो॑ य॒व्या ह॒विष्म॑तो म॒रुतो॒ वन्द॑ते॒ गीः॥४६॥

का० ५.५.१२. त्याग के अनन्तर यजमान जपे॥ आगस्त्यदृष्टा ऐन्द्रमरुद्देवत्या चतुष्पदा विराट्। हे इन्द्र इन संग्रामों में वर्तमान सख्य को प्राप्त मरुद्देवताओं सहित हमलोगों को विनाश न करि इति शेषः। मोशब्दो निषेधार्थः सुशब्दो विनाशाभावस्य सौष्ठवं ब्रूते। तथा सति विनाशलेश न हो इत्यर्थः संपद्यते। क उपकार इति चेत्। हे शुष्मिन् (बलवन्निन्द्र) तेरा अवयाः (अवयुतो यागः पृथग्भागः) विद्यमान है। हे मीढुषः (वृष्टिप्रदत्वेन सेक्तुः) तुम्ह हविर्योग्य की यव्या (यवमय करम्भपात्रों करि निष्पन्ना) होमक्रिया महश्चित्पूजा है भाव यह है कि तिस तुम्ह यथोक्त पूजोपेत का हमलोगों में कृपालुत्वयुक्त है। किं च मेरी स्तुतिरूपा वाणी तेरे मरुत् सखाओं को नमस्कार करती है। अर्थात् मरुद्विषय नमस्कार करि तुम्ह तुष्ट की कृपा युक्त है*॥४६॥

अक्र॒न्कर्म॑ कर्म॒कृतः॑ स॒ह वा॒चा म॑यो॒भुवा॑। दे॒वेभ्यः॒ कर्म॑ कृ॒त्वास्तं॒ प्रेत॑ सचाभुवः॥४७॥

का० ५.५.१३. यजमान जपे॥ आग्नेय्यनुष्टुबनिरुक्ता। वरुणप्रघासाख्यकर्मकारिणः ऋत्विजलोग स्तुतिरूपा वाणी सहित वरुणप्रघासानुष्ठान रूप करते हुए। कैसी वाणी कि मयो भुवा सुख

* नमो मरुद्भ्य इत्येवमाकारया: स्तुतेर्नमस्काररूपत्वात्।

[illegible] तिस मन्त्र स्य स्तुति है। हे सचाभुवः (सहभव [illegible] सा [illegible] जमान वा पत्नी करि इस कर्म में साथ बैठे ऋ- [illegible] देवताओं के अर्थ वरुणप्रघासाख्य कर्म करि के घरों [illegible]॥४७॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव दे-वैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि॥४८॥

[illegible]॰ ५॰ ५॰ ३०॰ ३१॰ वरुणप्रघास कर्म के अन्त में तदङ्गभूत अवभृथनामा कर्म जलसमीप में होता है तहां। दम्पती [illegible] मान यजमान्या) इस मन्त्र करि जल में स्नान करते हैं॥ [illegible] देवत्यम् ब्राह्मनुष्टप्। हे अवभृथ (अवाचीनपात्र जलमें [illegible] हैं तिस यज्ञविशेष में सो) हे निचुम्पुण (निरन्तर मन्द [illegible] नेहारे यद्वा नीचशब्द करि कर्म करते हैं) तथाविधावभृ-[illegible] यद्यपि तू निचेरुः (निरन्तर गमनशील) है तथापि यहां नि-चुम्पुण हो। किस प्रजयोन को सो कहिता है। देवों (द्योतनात्म-कों अपनी इन्द्रियों) करि देवकृत (हविःस्वामिओं-देवताओं में किया) जो पाप है सो इस जल में डालता हूं। तथा मनुष्यों (अपने सहायभूत ऋत्विजों) करि किया मनुष्यों (यज्ञदर्शना-[illegible] आये हुओं) में अवज्ञारूप जो पाप है तिसे भी जल में डाल-ता हूं। यह मेरा त्यागा हुआ पाप जैसे तुझे व्याप्त न हो तैसे मन्द [illegible] इति भावः। किं च हे देव (अवभृथाख्य यज्ञ) रिषः (बध)

से रक्षा करि। कैसा रिषः कि पुरुराव्णः (बहुत विरुद्ध फल को देता) अर्थात् विरुद्ध फलदायी बध तेरे प्रसाद हमलोगों को न हो ॥४८॥

अ॰८॰ पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥४९॥

साकमेधगतं कर्म किंचिदुच्यते॥ का॰५॰६॰३६॰ पूर्णा दर्वीति दर्वी करि स्थाली से ओदन ग्रहण करे॥ हे ऐन्द्र्यावनुष्टुभी औ र्णवाभदृष्टे। हे दर्वि (अन्नप्रदान साधनभूते काष्ठादिनिर्मिते) तू पूर्णा (स्थाली) के सकाश से अन्न ग्रहण करि के पूर्णा (पूर्णत्व से ही उत्कृष्टा) हुई परा पत (इन्द्र प्रति गमन करि। सुपूर्णा (कर्मफल करि भलीभाँति से पूर्णा) हुई फिरि हमारे प्रति आगमन करि। एवं दर्वीमुक्त्वा इन्द्रमाह। हे शतक्रतो (बहुकर्मन् इन्द्र) तू और हम दोनों वस्नेव (मूल्य करिके ही) इष (अभीष्ट हवि रूप अन्न) और ऊर्जं (हविर्दान फल रूप रस विशेष) को विक्रीणावहै (परस्पर द्रव्यविनियमरूप विक्रय करें। मैं तेरे अर्थ हवि देता हूं तू मेरे अर्थ फल दे इत्यर्थः ॥४९॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे। निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥५०॥

का॰५॰६॰४०॰ देहि मे इस से होम करे॥ इन्द्र कहिता है। हे यजमान तू मुझ इन्द्र के अर्थ प्रथम हवि दे। पश्चात् तुझ यजमान के अर्थ में अपेक्षित देता हूं। एवं प्रथमपादोक्त एवार्थो द्वितीयपादेनादरार्थं पुनरुच्यते। पहिले मुझ इन्द्र के अर्थ निरन्तर हवि

...र यजमान के अर्थ अपेक्षित फल निरन्तर देता हूं। ऐसा इ-
...वाक्य सुनि उत्तरार्ध करि यजमान कहिता है। निहार (मूल्यक-
...व्य वस्तुरूपफल) मुम यजमान के अर्थ दे। निहार (मू-
...त हवि) तुम इन्द्र के अर्थ निरन्तर समर्पण करता हूं। स्वा-
...को हविर्दानार्थः। पूर्वार्ध में दो पादों से आदर करि इन्द्र
...बार कहे अर्थ को उत्तरार्ध करि यजमान भली भांति से अ-
...कार करता है इत्यर्थः॥ ५०॥

...॰४॰ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत
स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मतीयोजा न्विन्द्र ते हरी॥ ५१॥

...कमेधगतपितृयज्ञाख्य कर्मणि आहवनीयोपस्थानम्॥
...॰ ५॰६॰ २१॰ सव्य यज्ञोपवीत करि सब ऋत्विग्यजमान निकलि-
के उत्तराभिमुख हो आहवनीय के समीप में अक्षन्नमीमदन्त
सुसंदृशं त्वेति दो कण्डिकाओं करि आहवनीय को उपतिष्ठें॥
द्वे इन्द्रदेवत्ये गोतमदृष्टे पञ्चपदा पङ्क्ती॥ पितृयज्ञाख्य कर्म में
जे पितर हैं ते हमलोगों करि दिये हविःस्वरूप अन्न को भक्षण
करते हुए। यह कैसे जाना। यों कि हमारी भक्ति को जानि प्रीति-
युक्त हो अपने शिरों को कम्पाते हुए वा अपनी प्यारी देही को क-
म्पाते हुए। किंच स्वभानवः (स्वयंदीप्तियुक्ताः) विप्राः (मेधाविनः)
नवीन बुद्धि करिके युक्त स्तुति करते हुए (अहो बहुत स्वादिष्ट अन्न
हमको दिया भली भक्ति है) अतः हे इन्द्र क्षिप्र अपने हरीनामा (हरि-
तवर्ण) घोडे रथ में जोडि। अपनी अभीष्टा पितृतृप्ति करि संपन्न होने से

तिन पितरों के साथ तुझे जाना चाहिये इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णव-
न्धुर स्तुतो यासि वशाँ २॥ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५२॥

हे मघवन् हम तुझे (तेरे) स्तुति करने वाले हों यह प्रार्थना करते हैं। कैसे तुझे कि शोभनदर्शन (अनुग्रहदृष्टि करि सब के द्रष्टार को। ऐसे हमलोगों करि स्तुति किया तू कामयमानयजमानों को लक्षिके अवश्य जाता है कैसा कि पूर्णवन्धुरः (स्तोतृओं के अर्थ दातव्य धन करिके सम्पूर्णरथनीडोपेत होके जाता है। हे इन्द्र सो तू क्षिप्र॰ ॥५२॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन। पितृणां च म-
न्मभिः ॥ ५३ ॥

का॰ ५.९.२२. मनो न्वाह्वामहे इन तीनि ऋचाओं करि गार्हपत्य को उपतिष्ठे ॥ तिस्र ऋचो मनोदेवत्या गायत्र्यो बन्धुदृष्टाः॥ हम शीघ्र मन को बुलाते हैं (पितृयज्ञानुष्ठान करि चित्त पितृलोक को गया था अतः बुलाइये है। यद्वा मनोऽभिमानि देवता को बुलाते हैं। किस साधन कि स्तोम (स्तोत्र) करिके कैसे स्तोत्र कि नाराशंस (मनुष्यों के योग्य शंस॰ नराशंस तिस सम्बन्धि) करिके। स्तोत्र द्विविध है एक दैव दूसरा मानुष जहां देवता स्तुति करियें हैं सो दैव और जहां मनुष्य प्रशंसा करियें हैं सो मानुष तैसे मानुष स्तोत्र करिके यह युक्त है। किं च पितर जिस स्तोत्र को मानते हैं तैसे स्तोत्र करि के बुलाते हैं ॥ ५३ ॥

आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्यो-

क् सूर्यं दृशे ॥ ५४ ॥

[illegible] मन (पूर्वोक्त चित्त) फिरिके आगमन करै किमर्थं कि क्र-
[illegible] संकल्प) के लिये दक्ष (कर्म में उत्साह) के लिये +। ज्योग्जी-
[illegible] (चिरजीवन) के लिये और सूर्यावलोकन के लिये। इन सं-
[illegible] दिकों की सिद्धि के अर्थ मनः पुनः आगमन करै ॥ ५४ ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीव व्रात-
ꣳ सचेमहि ॥ ५५ ॥

[illegible] पितरो आपकी अनुज्ञा करि देवसम्बन्धि पुरुष हमारे अर्थ पू-
[illegible] क चित्त को पुनः देवै प्रेरणा करै। तथा सति अनुष्ठान करिके आप
[illegible] प्रसाद से जीवनवन्त व्रात (पुत्रपश्वादिगण) को हम सेवन करें ॥ ५५ ॥

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः
सचेमहि ॥ ५६ ॥

सोमदेवत्या गायत्री बन्धुदृष्टा जपे विनियुक्ता। अत्र पितृयज्ञे सोम-
नामको देवोऽस्ति। सोमाय पितृमते २·२९·इ॰ इत्येवं हविषो
विहितत्वात्। हे सोम हम यजमानाः तेरे व्रत (कर्म) में वर्तमानाः
तेरे शरीरों में अपने चित्त को धारण करते हुए तेरी करुणा से प्र-
जावन्तः (पुत्रपौत्रादिसंपन्नाः) होकर सेवन करते हैं सेवित-
व्य वस्तुओं को इति शेषः। यद्वा सर्वदा तेरे सम्बद्धा हों ॥ ५६ ॥

अ॰ १० एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वा-
हैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥ +

साकमेधगतत्र्यम्बकहविर्विषया मन्त्रा उच्यन्ते ॥ ॥ का॰

+ तथा च श्रुतिः यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव
क्रतुरथ यदस्मै तत्समृध्यते स दक्ष इति। + ए-हा॰ अ॰ ०। ए-मु॰ इ॰ ॥ १०॥

५॰१०॰१२॰एव ते इस से होमें॥ एष ते द्वे रौद्रे यजुषी १॰प्राजापत्या बृहती अवदान होमे विनि॰। हे रुद्र (विरोधियों के भाँतिभाँति से रुलानेवाले) तेरी स्वसा (भगिनी-बहनि) अम्बिकानाम्नी करि सहित यह हमलोगों करि दीयमान पुरोडाश भाग (भजनीय) स्वीकरने के लिये योग्य है। तिस तैसे पुरोडाश को तू सेवन करि स्वाहा (यह दिया हवि सुहुत हो॥ अम्बिका का रुद्र की भगिनी होना श्रुति में कहा है। शत॰२॰६॰२॰७॰ अम्बिका ह वैनामास्य स्वसा तयास्यैष सह भाग इति। जो यह रुद्रनामा क्रूरदेव है तिस की विरोधि को मारने के लिये इच्छा होती है तब इस भगिनी क्रूरदेवता साधन भूता करि तिसे मारता है। और सो अम्बिका शरद्रूप को प्राप्त हो जरादिक को उत्पन्न करि तिस विरोधि को मारती है। तिन रुद्र और अम्बिका का उग्रत्व इस हवि करिके शान्त होता है। तथा च तित्तिरिः। एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकयेत्याह शरद्वा अस्याम्बिका साभिया एषा हिनस्ति यꣳहिनस्ति तयैवैनꣳ सह शमयतीति॥ का॰ ५॰१०॰१॰२॰१३॰ यजमान के जितने पुत्र भृत्यादिक पुरुष हैं तिन्हें गिनिकर प्रति पुरुष एक-एक पुरोडाश बना कर फिरि एक अधिक बनावे सो अतिरिक्त कहिलाता है। तहां जो यह अतिरिक्त तिसे न होमें किंतु उत्तर दिशा में जाकर मूसेओं की खोदी हुई मृदा में प्रवेश कराय के ढकि देवे॥२॰एष ते यजुर्जगती। हे रुद्र यह हमलोगों करि उपकीर्यमाण अति-

रिक्त पुरोडाश तेरा भाग (तुरूकरि भजनीय) है तथा तेरा आखु (मूषक-मूसा-चूहा) पशुत्व करिके समर्पित है। अर्थात् आखुदान करि तुष्ट हुआ रुद्र अम्बिका करि यजमान के पशुओं को नहीं मारता॥५७॥

अव॑ रु॒द्रम॑दीम॒ह्यव॑ दे॒वं त्र्य॑म्बकम्। यथा॑ नो॒ वस्य॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नः॒ श्रेय॑सस्कर॒द्यथा॑ नो व्यवसा॒यया॑त्॥५८॥

का०५·१०·१४· तहां से लौटि करि अव रुद्रमदीमहीति जपै॥ द्वे रुद्रदेवत्ये प्रथमा पञ्चपदापङ्क्तिर्द्वितीया ककुप् द्वयोर्जपेविनि०॥ रुद्रमव असौ रुद्र इति, यह रुद्र है यह मन करि तिसै जानना· तेरे अनुग्रह से हम अन्न को भक्षण करेंगे। तथा त्र्यम्बक इस देव के तीनि नेत्र हैं यह मन०। यद्वा अन्यदेवताओं से पृथक् करिके रुद्र को भोजन कराते हैं। अन्य दे०-के त्र्यम्बक को भोजन कराते हैं॥ जैसे यह हमलोगों को वसनशील करै। और जैसे हम को ज्ञाति में प्रशस्यतर करै। और जैसे हम को सबकार्यों में निश्चययुक्त करै। तैसें इसै जपते हैं इत्यर्थः। आशीरियम्॥५८॥

भे॒ष॒जम॑सि भेष॒जं गवेऽश्वा॑य॒ पुरु॑षाय भेष॒जम्॥ सु॒खं मे॒षाय॑ मे॒ष्यै॥५९॥

हे रुद्र तू भेषज (औषधवत्सर्वोपद्रवनिवारक) है इस कारण हमारे गौ अश्व और पुरुषों के अर्थ सर्वव्याधिनिवारक औषध दे। मेष और मेषी के अर्थ सुख (सुहित है प्राणों के अर्थ) दे। अनेन मन्त्रेण गृहपशूनां क्षेमप्राप्तिर्भवति॥५९॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥६०॥ + त्र्य-त्। अ॰। त्र्य-त। द्॰।

का॰ ५॰१०॰१५॰१६॰ जैसे पितृमेध में पुत्रादयः पुरुषाः अपनी वामोरू को ताडना करते तीनि वार अप्रदक्षिणा फिरते हैं। और जैसे देवता सेवा में दक्षिणोरू को ताडन करते तीनि प्रदक्षिणा फिरते हैं। एवं यहां पुरुषाः पहिले त्र्यम्बकमन्त्र करिके अग्नि को तीनि अप्रदक्षिणा और तीनि प्रदक्षिणा फिरें। तहां एक-एक मन्त्र पूर्वक और दो-दो चुपके से परंतु अप्रदक्षिणा फिरते अपसव्य न होवें॥ द्वे अनुष्टुभौ पूर्वस्यां वसिष्ठदृष्टा। सुगन्धि (दिव्य गन्धोपेत) मर्त्यधर्म हीन पुष्टिवर्धन (धनधान्यादि पुष्टि के बढानेहारे) त्र्यम्बक (तीनि नेत्रयुक्त) रुद्र को पूजन करते हैं। ततः रुद्र के प्रसाद से मृत्यु (अपमृत्यु और संसारमृत्यु) से मुक्त होवेंगे और अमृत (स्वर्ग रूप और मुक्तिरूप) से मुक्त न होवेंगे (मेरा अभ्युदय निःश्रेयस रूप दोनों फलों से भ्रष्ट न हो इत्यर्थः। मृत्योर्मोचने दृष्टान्तः। उर्वारुकमिव बन्धनादिति जैसे बदरी आदि फल अत्यन्त पक्व होने पर अपने डंठरे से छूटता है तद्वत्॥ का॰ ५॰१०॰१७॰ और यजमानसम्बन्धिन्यः कुमार्यः (विन विवाही पुत्रीएं) पूर्वोक्त पुरुषवत् अग्नि को तीनि-तीनि फेरे देवें एक-एक वार उत्तर त्र्यम्बक मन्त्र पढिकर दो-दो वार चुपके से इति॥ हम त्र्यम्बक को पूजती हैं। कैसे को कि पतिवेदन (भर्तार के देनेवाले)

+ इत आरभ्याध्यायसमाप्तिपर्यन्तं सर्वमाशिषदेवत्यं। आशीः आयमित्युक्तत्वात् कात्या॰ अनु॰ १॰ १५॰।

को। अन्यत्पूर्ववत्। इतो मुक्षीय, मातृपितृभ्रातृवर्ग से छूटें अमुतो मा, विवाह से ऊपर पति से न छूटें (पिता के गोत्र और घर को छोडि के पति के गोत्र और घर में त्र्यम्बक प्रसाद से सर्वदा वास करें। सा यदित इत्याह ज्ञातिभ्यस्तदाह मामुत इति पतिभ्यस्तदाहेति श॰ २॰ ६॰ २॰ १४॰ श्रुतेरितोऽमुतःशब्दाभ्यां पितृपतिवर्गौ ग्राह्यौ॥६०॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि॥६१॥

का॰ ५॰ १०॰ २१॰ व्रीहियवादिकों को वहने के अर्थ तृणवंशादिनिर्मित पात्रविशेष मूत कहिलाता है। तैसे दो मूतों में त्र्यम्बक के हविःशेषों को डालिकर अपने कन्धों से वहने योग्य वंश वा यज्ञिय काष्ठ की लाठी में तिन दोनो मूतों को बाँधि उन्नत स्थाणु (ठूँठ) वा वृक्ष वा वंश वा वल्मीक पर दोनों मूतयुक्त लाठी को छोडि दे। तैसे गौएँ न सूँघसकें इस से गौओं को रोग नहीं होता। रौद्रास्तारपङ्क्तिः॥ हे रुद्र यह तेरा अवस + (हविःशेषाख्य भोज्य) है तिस सहित तू मूजवान्पर्वत ‡ से परभागवर्ती हो अतिक्रम्य जा। कैसा है तू कि अवततधन्वा (अवरोपितधनुष्कः) हमारे विरोधियों के तुरू करि निवारतत्व से इस पीछे धनुष में ज्या चढाने का प्रयोजन न रहिने से यहां अवरोपण युक्त है। तथा पिनाकावसः (पिनाकनामा अपनी धनुष को सर्वतः ढाँपता। जैसे धनुष को देखि प्राणी न डरें तैसे वस्त्रादि से ढाँपि के गमन करि इत्यर्थः॥ का॰ ५॰ १०॰ २२॰ २३॰ कृत्तिवासेति

+ अवसशब्देन देशान्तरं गच्छतो मार्गमध्ये तडागादिसमीपे भोक्तव्यमोदनविशेष उच्यते।

‡ मूजवान्नाम कश्चित्पर्वतो रुद्रस्य वासस्थानम्।

दोनों मूतों को निश्चल करै केचित् तहां से लौटते हुए दोनों मूतों को न देखते वेदी के समीप में आकर जल का स्पर्श करें + ॥ मन्त्रार्थस्तु। हे रुद्र तू कृत्तिवासाः (चर्माम्बरः) हमलोगों को न मारते शिव (हमारी पूजा करि संतुष्ट हुआ कोपरहित) होके पर्वत को अतिक्रम्य गमन करि ॥ ६१॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो ऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२॥

का० ५। २। १६। वपनसमय संहितास्वर से यजमान जपे ॥ नारायणदृष्टा ग्रीदेवतोष्णिक्। जमदग्नि मुनि का जो त्र्यायुष (बाल्ययौवनस्थाविर तीनों अवस्थाओं का समाहार) तथा कश्यपनामा प्रजापति का जो त्र्यायुष तथा देवताओं (इन्द्रादिकों) में जो त्र्यायुष है सो सब त्र्यायुष हम यजमानों का हो। जमदग्न्यादिकों का बाल्यादि में जैसा चलन तैसा हमारा होवे इत्यर्थः ॥ ६२॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिंसीः। निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ६३॥ +

इति श्री संहितायां दशमोनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शाखीयायां वाजसनेय संहितायां दीर्घ पाठे तृतीयोध्यायः ३

का० ५। २। १७। शिवो नामेति लोहे का क्षुरा लेकर निवर्तयामीति जपे ॥ शिवो नामेति प्राजापत्या बृहती क्षुरदे० १। निवर्तयामीति यजुर्लिङ्गोक्त (यजमान) दे० २। आशीः शायम्। मन्त्रार्थस्तु।

+ शि-सी: अ० नि-य। द्द० ॥ ६३

+ रौद्रं राक्षसमासुरमाभिचरणिकं मन्त्रमुक्त्वा पित्र्यमात्मानं चालभ्याप उपस्पृशेदपः। का० १। १०। १४॥ अस्यार्थः। रुद्रदैवतं रक्षोदैवतं मसुरदैवतमाभिचरणिकं पितृदैवतं च मन्त्रमुक्त्वा एतद्देवत्यमन्त्रोक्तं कर्म च कृत्वात्मानमालभ्यापां स्पर्शनं हस्तेन कुर्यात्।

सुर तू नाम करिके शिव (शान्त) है स्वधितिः (वज्र) तेरा पिता
तो अर्थ मेरी नमस्कार मुझको मत मारि॥१॥ हे यजमान ते
मुण्डन कर्ता हूं किसलिये कि जीवन के अर्थ अन्न भक्षण
न॰ धन की पुष्टि॰ शोभनप्रजा॰ शोभनसामर्थ्य के अर्थ॥
॥६३॥

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतरोदेयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः ३
इति श्री गिरिधर भाष्ये दशमोनुवाकः १०

मच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतृवैयाघ्रपद्य
य विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जय किशोरदेव वर्म्मात्मज
किमणीय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिध
रभाष्ये गिरिप्रसाद सर्वस्वे अग्न्याधानादिपित्र्यान्तस्तृतीयो
ध्यायः॥३॥

हरिः ओम्
ॐ नमो यज्ञपुरुषाय
पञ्चात्मकं द्विरूपंच साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंद दायकं कृष्णं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः ४

अथाग्निष्टोममन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः

अ॰१॰एदम्॥ एदमगन्म देवयजनम्पृथिव्या यत्र देवासो॰

अजुंषन्तविश्वे॥ऋक्सामाभ्यांꣳसन्तरन्तोयजुर्भी
रायस्पोषेण समिषामदेम॥इमा ऽआपः शमुमेसन्तुदे
वीरोषधेत्रायस्वस्वधितेमैनꣳहिꣳसीः॥१॥

ओंनमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीप के

शालागमाद्याचनान्तश्चतुर्थोऽध्यायईर्यते ४·

आधान कण्डिका १-८ अग्निहोत्र ९-१० उपस्थान ११-४३ चातुर्मास्य ४४-६३ के मंत्र तीसरे अध्याय में कहे चौथे अध्याय की आदि से ले आठवें अध्याय की बत्तीस ३२ कण्डिका पर्यन्त अग्निष्टोम के मंत्र कहियें हें। तिन्हों का प्रजापति ऋषि है॥ तहां चौथे में यजमान के संस्कार पूर्व्वक सोमक्रय के मंत्र प्रधान करि कहियें हें तहां पहिले यजमान सोलेह १६· ऋत्विजों का वरण करि के अरणी में अग्नि का आरोपण करि शाला में जावे॥का० ७·१·१६· अग्निका आरोपण करिके शाला के स्तंभ का पूर्वभाग गृहण करि अरणी हाथ में ले एदमगन्म पढे॥ एदमगन्म १· आपोऽअस्मान् २· दोनों कण्डिकाओं का व्यवसाना अत्यष्टीछन्द और तिनो में मंत्र सात ७ हें। एदमगन्म· ऋक्सामाभ्याम् हे यजुषी हे वयजन देवत्ये॥ ॥मंत्रार्थः॥ इदम् यह हाथ से संकेत करि दिखलाता है। हम यजमान इस पृथिवी संबंधी देव यजन (देवताओं की पूजा के स्थान) में आये हें। यह कैसा हे कि जिस देवयजन में सब देवता प्रीति पूर्व्वक बैठे हें और हम धन की

पुष्टि और इष्यमाण अन्न से प्रसन्न होवें अर्थात् धन और अन्नसें तृप्तिहों। क्योंकर कें कि ऋक्॰ साम॰ और यजु॰ तीन्यों वेदों के मन्त्रों से समुद्र वत् गम्भीर सोमयाग को पूर्ण करिकें॥ का॰ ७॰ २॰ ९॰ कंघा से शिर के वालों की दक्षिण जूटिका को काढकर जल से भिगोवे। इमाऽ आपऽ इति याजुषी त्रिष्टुप् आपो देवता २॥ अर्थः॥ शिर के भिगोंने मे यह जल मुरूयजमान को सुख करने वाली हूजियो। कैसी है जल कि द्योतमान निर्मल॥ का॰ ७॰ २॰ १०॰ ११॰ जैसे पशु के अर्थ यूप छेदने का मंत्र है ऐस यहां भी तृण का अंतर्धान और क्षुर स्थापन दोनों मंत्रों से करना॥ ओषधऽ इति याजुषी गायत्री॰ कुशतरुणो देवता ३ स्वधितऽ इति दैवी जगती॰ क्षुरो देवता ४। हे ओषधे (कुशतरुण) तू यजमान को क्षुरा से रक्षाकर ३। हे स्वधिते- (क्षुर) इस यजमान को मत मार॥ ४॥

आपोऽ अस्मान्॥ आपोऽ अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु॥ विश्वꣳ हि रिप्रम्प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूतऽएमि॥ दीक्षातपसोस्तनूरसि तान्त्वा शिवाꣳ शग्मां परि दधे भद्रम्वर्णम्पुष्यन्॥२॥ आ-वी॥ अ॰॥ उ-मि॥ इ॥ दी-न्॥ उ॰॥

आपो अस्मान्॰ प्राजपत्या जगती॰ आपो देवता का॰ ७॰ २॰ १५॰ इससे स्नान करें॥ मातरः (जगत की निर्माण करने वाली वा मातृवत् पालने वाली) जल हम क्षौर कराए हुए यजमानों को-

शुद्ध कीजियो अर्थात् क्षौर कर्म की अपवित्रता निवारियो किंच घृतप्वः (क्षरित जल से पवित्र करने वाली) जल देवता सो क्षरित जलसे हमको पवित्र कीजियो और देवी (दीप्यमान) आपः इस सब पापको दूर कीजियो ॥५॥ उ दिदाभ्य इति या जुषी त्रिष्टुप् का० ७ । २ । १५ । स्नान करि जल से बाहिर निकलै ॥ अर्थः ॥ मैं जल से बाहिर निकलता हूं । कैसाहूं मैं कि स्नान करके शुद्धहूं । तैसेही शुद्ध आचमन करि पवित्रहूं । शुचिरापूतइन दोनों शब्दों से स्नान आचमन करि बाहिर भीतर की शुद्धि कही ।६। दीक्षा तपसो यजुषि वासो देवता । का० ७ । २ । १६–१९ अतसी कावनाकुशानवीन वस्त्र धारण करे कदाचित विना धुला हो तो अध्वर्यु यजमान के मनुष्य से कहे कि हाथों से अच्छा मीडि डाल फिरि जल के छींटे लगावे अथवा नित्य के पहनने की धोती जो कि रजक ने नहीं धोई घर की धोई हुई और जिस से मूत्रोत्सर्ग नहीं किया पहिने पूर्वोक्त दोनों प्रकार की खोलकर पहिनें ॥ इतिसूत्रार्थः ॥ हे क्षौम (अतसी से बने) वस्त्र तू दीक्षा (दीक्षणी येष्टि) तप (उपसदिष्टि) का शरीर है (अर्थात् दीक्षाभि मानी देवता और तपाभिमानी देवता का शरीरवत् प्रिय है) तिन दोनों देवताओं के शरीरभूत तुझ को मैं धारण करताहूं । तू कैसा है कि कोमलतायुक्त अतिशय सुखकारी है । मैं कैसा हूं कि तेरे धारण करने से कल्याणी कान्ति युक्तहूं ॥२॥

अ०२ महीनाम्पयोऽसि वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि ॥ वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्म्मे देहि ॥३॥†

महीना मिति· प्राजापत्यानुष्टुप्· नवनीतो देवता· का० ७·२·३३ दक्षिणाग्नि के होमकिये पीछे शाला के पूर्व भागमें कुशाओं पर बैठि नवनीत को लेकर शिरसे पैर तलक शरीर का उबटना करे ॥इति॥ हे नवनीत तू गौओं का पय है। और अति प्राय-स्निग्ध होने से कान्ति का देने वाला है इस हेतु मुझ यजमान को कान्ति दे ॥१॥ वृत्रस्यामित्यार्षी गायत्री अञ्जनो देवता। का० ७·२·३४· त्रिककुत् नामा पर्वत से उत्पन्न हुए अञ्जन वा उस के अभाव में प्रसिद्ध कज्जल से अध्वर्य्यु यजमान के दोनों नेत्रों को आंजे ॥अर्थ॥ हे अंजन तू वृत्र (असुर) के नेत्र की पुतली है। शत० ३·१·३·१२· यत्र वा इन्द्र इत्यादि। तथाच तित्तिरिः इन्द्रो वृत्रमहन् तस्य कनीनिका परापतत्तदेवांजनमभवदिति इन्द्र ने वृत्र को मारा तिस की पुतली गिरी सो यहां अंजन हुई। क्योंकि पुतली होने से तू दृष्टि का दाता है इस हेतु मुझको चक्षु दे (अर्थात् अच्छे प्रकार दृष्टि सामर्थ्य दे ॥३॥

चित्पतिर्म्मा पुनातु वाक्पतिर्म्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः ॥ तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥४॥ चि-तु॥अ०॥वा-तु॥इ०॥दे-म्॥उ०॥

चित्पति· वाक्पति· द्वे याजुषी उष्णिक् प्रजापति देवता· देवोमा

† म-हि॥अ०॥वृ-हि॥इ०॥

यजुषि सविनादे०। का०७.३.१ अध्वर्यु कुशाओं के पवित्रों से चि
त्पनि वाक्पति देवोमा तीनों मंत्रों से प्रत्येक मंत्र करि सात-सात
विरियां शोधन करै अच्छिद्रेण - तच्छकेयम् प्रति मंत्र के साथप
दे॥ मंत्रार्थः॥ चित्पति(ज्ञानों का पति मनका अभिमानी देवता
वा प्रजापति) छिद्रहीन पवित्र सूर्य्य की किरणों से मुझ यजमा
न को पवित्र कीजियो। हे पवित्रपते (शुद्धों के पालक) तेरे पूर्वोक्त
शुद्ध किये यजमान का अभीष्ट हूजियो। यत्कामः पुनेतच्छके
यम् (जो काम है जिसका वा जिस काम में है जो) सोमयाग के
अनुष्ठान की जो मैं चाह करने वाला सो आत्मा का शोधनक
रता हूं (अर्थात् तिस सोमयाग के अनुष्ठान में सार्थ हों)। य
ज्ञानुष्ठान सामर्थ्य मुझ को होवे॥ वाक्पति वाचा का पति वृह
स्पति वा प्रजापति मुझको पवित्र कीजियो॥ सविता देवता (उ
त्पन्न करने वाला अन्तर्यामी) मां पुनातु॥ इन दोनों मंत्रों में
भी पूर्ववत् अच्छिद्रेण - तच्छकेयम् को मिलाना॥४॥

आवः॥ आवो देवास ईमहे वामम्प्रयत्यध्वरे॥ आ
वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे॥५॥

अनुष्टुप् देवो दे० आशीः। का०७.३.६ मार्जन के अनन्तर
अध्वर्यु यजमान प्रति कहै॥ अर्थः॥ हे देवताओ हम तुम से
वननीय यज्ञ फल सब ओडी से याचना करते है। कहां से। कि
हमारे यज्ञ में वर्तमान होने से। किंच हे देवताओ हम तुमको
बुलाते है। किसलिये कि यज्ञसंबंधिनी आशिषा (अर्थात्

+ मनो वै चित्पतिरिति तिति तिति: प्रजापतिर्वै चित्पतिरिति शत०३।१।३।२२ चित्पतिर्हि प्रजापत्यै को सर्वो ... ३इ॥

यज्ञफलकी प्राप्तिके अर्थ बुलातेहैं ॥ ५ ॥

स्वाहायज्ञम् ॥ मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात्स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳯ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥ ६ ॥ †

स्वाहा यज्ञमिति चतुर्णा यज्ञो दे॰ याजुषी उष्णिक् १.२.या॰ अनुष्टुप्॰ ३ यजुषि ४ ।का॰ ७.३.७–१० पहिले मंत्रसे दोनों हाथोंकी कनिष्ठिकाओं कू सकोरै दूसरेसे अनामिकाओं कू तीसरेसे मध्यमा चौथेसे तर्जनीको सकोरे (अर्थात् दोनो हाथोंकी मुठी प्रथक् प्रथक् वांधे ॥ मंत्रार्थः ॥ चित्तकरि यज्ञमें प्रवेश करताहूं १ अन्तरिक्षमें यज्ञ स्थितहै २ द्यावापृथिवीमें यज्ञ स्थितहै (अर्थात् लोकत्रयव्यापी यज्ञहै ३ वायुके प्रसादकरि यज्ञका आरंभ करताहूं क्योंकि वायु को सर्व कर्मप्रवर्त्तकत्वहै ४ स्वाहायज्ञ यह सिद्ध हुआ ॥ ६ ॥ दू॰आ॰अ॰२

अ॰३ आकूत्यै प्रयुजे ॥ आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा ॥ आपो देवी बृहती विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष ॥ बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥ आ–हा॥अ॰॥मे–हा॥दू॰॥दी–हा॥उ॰॥स–हा॥ऋ॰॥आ–हा॥ल॰॥

अतः परं षडौद्ग्रभणमन्त्राः ॥ आकूत्यै १ मेधायै २ दीक्षायै ३ सरस्वत्यै ४ आसुरी त्रिष्टुप्॰ अग्निर्दे॰ आपो देवीः विराट् तीनि दशक वा एका दशकसो विराट् इसके पहिले चरणमें एक अक्षर बढती लिङ्गोक्त देवताःका॰ ७.३.१६–१७॰ अध्वर्यु स्रुवा-

† स्वा–म॰॥अ॰॥स्वा–तृ॥दू॰॥स्वा॥–म॥उ॰॥स्वा–हा॥ऋ॰॥

करि आहुतियों का होम करै प्रति मन्त्र से. तीसरे को जपै॥ मन्त्रार्थस्तु॥ अग्नये(वह्निदेवता के अर्थ)यह सुहुत हूजियो। कैसे अग्नि के अर्थ कि आकूत्यै प्रयुजे(यज्ञ करूं ऐसे मानस सङ्कल्प को आकूति कहिते हैं तिस आकूतिकी सिद्धिके अर्थ निर्विघ्न को प्रेरणा करे॥ १॥ मेधायै(श्रुतिके मंत्र- तंत्र की धारण शक्ति मेधा तिसकी सिद्धि के अर्थ)मन से(मेरे मन के अभिमानी अग्नि के अर्थ)सुहुत हूजियो २ तीसरे को जपै॥ दीक्षायै तपसे(व्रतका नियम दीक्षा तिसकी सिद्धिके अर्थ मेरे शरीर के तपोभिमानी अग्निके अर्थसुहुत हूजियो। नियम की रक्षा तपसे होती है तिस तपके देनेवाले के अर्थ॥३॥ सरस्वत्यै(मन्त्रोच्चारण शक्ति सरस्वती तिसकी सिद्धि के अर्थ) पूष्णे(पोषण करनेवाले तिस वागेन्द्री पोषक अग्निके अर्थ)सुहुत हूजियो॥ ४॥ आपोदेवीः- हे आपः- हे द्याव पृथिवी औ. हे अन्तरिक्ष- तुम्हारे और वृहस्पति के अर्थ हवि देवता हूं सुहुत हूजियो। कैसा है आप कि देवीः(द्योतमान) वडा-जगत के सुख का उत्पन्न करनेवाला इति ५ मन्त्रः॥७॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्म्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्॥ विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नम्वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑॥ ८॥

अथाष्टः॥ स्वस्त्यात्रेयदृष्टा. सावित्री. अनुष्टुप्.॥ अर्थ॥ सब मनुष्यों के फल प्रापक दानादि गुणयुक्त सविता से स

रिभाव की प्रार्थना करते हैं। किंच सब जनों के धन के अर्थ-याचना करते हैं। किंच यश और अन्न तिस से प्रार्थना करते हैं। किस लिये कि अपने प्रजापालन को। जो ऐसा सविता तिसके अर्थ सुहुत हूजियो ८ इत्योद्भ्रभणमंत्राः समाप्ताः॥

अ०४ ऋक्सामयोः शिल्पे॥ स्थस्ते वा मारभेते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः॥ शर्म्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः॥९॥ ऋ-च०। अ०। श-सी।ह्रु०।

का०७·३·२३· कृष्णाजिन की सुक्ल-कृष्ण रोमों की संधिका स्पर्श करै। ऋक्सामयोः·यजुषि·कृष्णाजिनदे०॥ अर्थः॥ हे कृष्णाजिनगत सुक्ल कृष्ण रेखाओ तुम ऋगभिमानी सामाभिमानी देवता संबंधिनी चातुर्यता रूप हो तिन तुम दोनो को मै स्पर्श करता हूं तैसै ही तुम दोनों मेरा पालन करो। कितने काल तक सो कहते हैं कि इस यज्ञ की समाप्ति-पर्यन्त॥ ऋक्सामाभिनी देवते देवताओं के यज्ञार्थ में बैठे हुए किसी कारण से कृष्ण मृग का रूप करि देवताओं से दूर चलकर कहीं ठैरे थे सो मृगचर्म में जो शुक्ल सो ऋक् जो कृष्ण सो साम का रूप है तदुक्तं तित्तिरिणा ६·१·३· ऋक्सामयो देवेभ्य इत्यादि॥ ॥का०७·३·२४· दक्षिण जानु करि बैठे। शर्म्मासि·यजुषि·कृष्णाजिनदे०॥ अर्थः॥ हे कृष्णाजिन तू शर्म (शरण ठैरने की जगह) है इस हेतु मुझ को शरण दे (अर्थात् स्वीकार कर। तुझ कृष्णाजिन को मेरी नम

स्कार है कि मुरू यजमान को मत जीति॥९॥

ऊर्ग्गसि॥ ऊर्ग्गस्याङ्गिर॒स्यू᳖र्णम्म्रदाऽ ऊर्ज्जम्मयि॑धेहि सोम॑स्य नी॒विर॑सि॒ विष्णो॑ः शर्म्मा॑सि॒ शर्म्म॒ यज॑मान॒-स्येन्द्र॑स्य॒ योनि॑रसि सु॒स॒स्याः कृषीस्कृधि॥ उ॒च्छ्र॑यस्व वनस्पत ऊ॒र्ध्वो मा॑पा॒ह्यꣳ॑हस॒ऽआस्य यज्ञस्योदृचः॥१०॥ †

ऊर्गसीति आङ्गिरोभिर्दृष्टं आसुरी गायत्रीछं०मेखलम्। का० ७·३·२६ तब यजमान वेणी के आकार तिहरी शाण मूज मिश्रत मेखला धोती के भीतर बांधे॥अर्थः॥ हे मेखले तू अङ्गिरा नामके ऋषीयों की संबंधिनी अन्न रस रूपा है। कैसी कि कंवल समान कोमल है। तैसी तू मेरें अन्न रस स्थापन करि॥ ॥अंगिरा स्वर्ग लोक में जाकर अन्न रस को भोगते हुए तिन के भोजन का शेष अन्न रस भूमि में पडकर शाण मूज नामक तृण रूप हो उत्पन्न हुआ तिस कारण शाण मूंज मयी मेखला॥ इसीसे मेखला को अङ्गिरसत्व तित्तिरि ने कहा॥१॥ सोमस्येति· याजुषी उष्णिक्· नीवि दे० का० ७·३·२७· इससे यजमान नीवी करे॥ अर्थः॥ हे मखले तू सोम देवता की प्यारी गांठि है मूल और अग्र के एकी करणको नीवी (गांठि) कहते हैं। अदीक्षित की पितृ देवत्या नीवी कही और दीक्षत की सोम याग में नीवी सोम करि कहते हैं॥२॥ विष्णोः याजुषी जगती· वासोदे० का० ७·३·२८· यजमान वस्त्रसे शिर का आछादन करै॥ हे वस्त्र तू विष्णु (व्यापक·यज्ञ) का सुख हेतु है इस यजमान को सुख कर॥३॥ इन्द्रस्ययोनिः ·सुसस्याः· द्वे दैवी जगती·

† ऊ–हि।अ०सो–सि।इ०वि–स्य।उ०।इ–सि।ऋ० सु–धि।ल०उ–चः।आ०॥

[illegible] विषाणादे॰। का॰३. २९-३१॰। कृष्ण मृगकी विषाणको
पांच ग्रन्थि युक्त ऊंची वांधे. जोशरीर में कण्डु उत्पन्नहो
तो तिसे दक्षिण भौंह के ऊपर ललाट में इन्द्रस्य योनि कर
खुजावै॥ अर्थ॥ हे कृष्ण विषाणे जैसे पहिले तू इन्द्रकी यो
नी तैसे इस यजमान का स्थान हो॥ ॥किसी समय यज्ञपुरुष
ने दक्षिणा देवी से संभोग किया तिस संभोग से इन्द्र उत्पन्न हुआ।
इस से और किसी की उत्पत्ति न हो ऐसा इन्द्र ने विचार करि
अपनी योनि (दक्षिणा) को ढक हिरणी मे स्थापन किया सो योनि
कृष्ण विषाण हुई इति तित्तिरि श्रुतौ यज्ञो दक्षिणामध्यधादित्या
दि॥४॥ का॰७. ३. ३२. सुसस्या से वेदी के वाहर पूर्व में रेखा क
रै। हे कृष्ण विषाणे तू यजमान की जितनी खेती हैं तिन सवों को
शोभन सस्य (व्रीहियवादि) युक्त करि॥५॥ उच्छ्रयस्व. साम्नी त्रि
ष्टुप्. दंडो देवता का॰७.४.१.२. यजमान के मुखकी वरावर गू
लरि का दण्ड अध्वर्यु दे. उच्छ्रयस्व. सो यजमान ऊंचा करै॥ अ
र्थः॥ हे वनस्पते वृक्षके अवयव (दण्ड) ऊंचा हो॥ ऊंचा होकर मुझ
यजमान को पाप से रक्षा कर। तहां अवधि कहते हैं। इस अनुष्ठा
न किये यज्ञ के समाप्ति गत उत्तम जो अवधि है तिस पर्यन्त रक्षा
कर।६। ॥१०॥ इति गिरिप्रसाद सर्वस्वे चतुर्थोनुवाकः॥४॥

अ॰५ व्रतङ्कृणुत॥ व्रतंकृणुत व्रतङ्कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्
पतिर्यज्ञियः॥ दैवीन्धियम्मनामहे सुमृडीकामभिष्टये व
र्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे॥ ये देवा मनोजाताम

नोयु जो दक्षं क्रतव स्तेनो वन्तु तेनः पान्तु नेभ्यः स्वाहा ॥१॥ ++

व्रतं कृणुते यजुषि यज्ञोदे० । का० ७·४·१५ व्रतं कृणुते से मौनमें उपस्थित जो यजमान है वोह तीन वार वाग्विसर्जन करै (अर्थात् बोले और अग्निर्ब्रह्म इस को एकवार पढे ॥ अर्थः ॥ हे परिचार को व्रतं कृणुत (दोहन से आदि ले क्षीर संपादन करो) दीक्षित के भोजन के अर्थ जो पय है उसे व्रत कहते हैं । वार वार कहना आदर के अर्थ है ॥ अग्निर्ब्रह्मेति ब्रह्म शब्द करि तीन वेद लेना तिस तीन वेद को अग्नित्व है । क्योंकि आधान करि निष्पन्न वैदिक अग्नि वेद से व्यतिरिक्त नहीं इस हेतु यह श्रौत का अग्नि वेद रूप है ॥ यह अग्नि यज्ञ है तिस अग्नि को यज्ञ साधनत्व होने से यज्ञत्व है वनस्पतिर्यज्ञियः यज्ञ के योग्य जो खादिरादिक वनस्पति सोभी यज्ञ है । क्योंकि वनस्पति को भी यज्ञ का साधन होने से यज्ञत्व है ॥१॥ दैवीं धियम् प्राजापत्या जगती +धीर्दे० का० ७·४·३२ आसन पै बैठा यजमान भोजन के अर्थ हाथ धोवै * ॥ अर्थः ॥ हम यज्ञानुष्ठान विषया बुद्धि की याचना करते हैं । किसलिये कि अभिष्टये सन्मुख प्राप्त हुए यज्ञ के अर्थ । कैसी है धी कि देव संबंधिनी देवता के उद्देश में प्रवृत है । तैसेही सुखहेतु है । तथा तेज की धारण करने वाली यज्ञ निर्वाह करने वाली । तैसीही सुतीर्था (अर्थात् सुख से प्राप्त होने में शक्य वा अच्छा अवतरण मार्ग जिसका सो) ऐसी धी हमारे वश हूजियो ॥२॥ येदेवा प्राजापत्या त्रिष्टुप् वाक् प्राण उदान चक्षु श्रोत्र अध्यात्म दे० अग्नि मित्रावरुण

+ महीधरने दैवींधियं १ येदेवा २ को मिलाकर प्राकृती वा भुरिक् प्राकृती छन्द लिखा परन्तु कात्यायन सर्वानुक्रमणी में नहीं और इन पृथक् दैवींधीः ३ का प्राजापत्या जगती और ये दे० ३ का प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्द लिखा है

* महीधरने उपस्पर्श शब्द का अर्थ आचमन करना लिखा परंतु हरिस्वामी याज्ञिक देव ने श्रौत के भाष्य में शतपथ आपस्तम्ब के प्रमाण पूर्वक हाथ धोना लिखा है ।

++ व्र-प॥ अ० दै-शे॥इ०॥ ये-हा॥ उ०॥

आदित्य॰ विश्वेदेवा॰ आधिदैवतदे॰ का॰७॰४॰३३॰ विनामिट्टी के पात्र के भोजनकरै॥ जे देवा यहां प्रकाश करते हैं तेही चक्षुसे आदिले इन्द्री रूप प्राणहैं अर्थात् वाक्॰ अग्निहै प्राणोदान॰ मित्रावरुणहै चक्षु॰ आदित्यहै श्रोत्र॰ विश्वेदेवा शत॰३॰२॰२॰१३॰। कैसे हैं कि मनोजाता दर्शन श्रवणसे आदिले इच्छारूपी॰ मनसे उत्पन्न हैं। तैसेही मनोयुजः(रूपादिक देखनेमें मनसा करि वर्तेहैं क्योंकि विना मनसा किये रूपादिकों का प्रतिभास नहीं। अथवा स्वप्नावस्थामें मनसा करि वर्त्तेहैं) तथा दक्षक्रतवः(सङ्कल्पितार्थकारी हैं) तेदेवता हमारा किये हुए यज्ञ का विघ्नपरिहार करिके पालनकीजियो। तिन प्राणरूपी देवताओंकू यह क्षीर हुत हूजियो॥ ३१॥

श्वात्राः पीताः॥ श्वात्राः पीताभवतयूयमापो॰ अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः॥ ताः॰ अस्मभ्यमयक्ष्मा॰ अनमीवा॰ अनागसः स्वदन्तुदेवी रमृताः॰ ऋतावृधः॥ ३२॥

अब्देवत्या॰ जगती॰ का॰७॰४॰३५॰ पय भक्षण पीछे आचमनकरि नाभिका स्पर्श करै॥ अर्थः॥ हे जल क्षीर रूपिणी तू मेरे पीनेसे शीघ्र जीर्ण हो। और हम पीने वाले के उदर में शोभन सुख दायिनीहो किंच तैसीही जल हमारे उपकार के अर्थ स्वादुयुक्त हूजियो। कैसीहैसो कि प्रवल रोग रहित सामान्य रोग रहित। अपराध हारिणी। यज्ञ की वृद्धिकाहेतु प्रकाशमान मृत्युनिवारणकरने वाली॥ अथवायह अर्थ है॥ ते मरण धर्म रहित पूर्वोक्त प्राण देवता वाक् अग्निसे आदिले॰ जल को पीजियो। कैसाहै जल कि हमारे अर्थ वा हमारे में

राज रोग का नाशकरनेवाली और सब अर्थ पूर्ववत् ॥१२॥

इयन्ते ॥ यच्चियांतनूरपोमुञ्चामिनप्रजाम् ॥ अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशतपृथिव्यासम्भव ॥ १३ ॥ +

इयन्ते॰ प्रा॰ गा॰ लोष्टोदे॰ का॰ ७.४.३६ मूत्र करते समय काले हिरण की शींगडी से कुछ एक मिट्टीकाढेला वा तृणादिक गृहण करे॥ अर्थः॥ हे यज्ञ पुरुष यह पृथिवी तेरा शरीर (यज्ञयोग्यदेश) है। इस हेतु इससे मूत्रकी अपवित्रता दूरि करने कू लोष्ट (ढेला) वा तृण लेताहूं। अथवा पृथिवी प्रति कहते हैं। हे पृथिवी यह लोष्टरूपा तेरी यज्ञयोग्य देहीसो सुन्दे॥१॥ अपोमुञ्चामि॰ यजुषि॰ मूत्रोदे॰ का॰ ७.४.३७॰ मूत्र वा पुरीष करे॥ अर्थ॥ मूत्र रूपा जल को छोडताहूं प्रजारूपी वीर्य को नहीं छोडता। हे मूत्र रूपा जल तू पृथि में प्रवेश कर॥ कैसी है तू कि पापसे पुरुष को पृथक् करती है। तैसेही पहिले क्षीरपान के समय स्वाहा इस मंत्र से गृहण की है। अथवा स्वाहा करनेसे पृथिवी में प्रवेश करती है॥२॥ पृथिव्या॰ प्रा॰ गा॰ लोष्टोदे॰ का॰ ७.४.३८॰ गृहण किये लोष्ट वा तृण को मूत्र वा पुरीष के स्थानपरडाले॥ अर्थः॥ हे लोष्टादि को पृथिवी केसाथ तुम मिलो॥१३॥

अग्नेत्वम् ॥ अग्नेत्वᳬसुजागृहिवयᳬसुमन्दिषीमहि॥ रक्षाणो॰ अप्रयुच्छन्प्रबुधेनः पुनस्कृधि॥१४॥

अनुष्टुप् अग्निर्दे॰ का॰ ७.४.३९॰ यजमान अग्नि से दक्षिण पृथिवी में शयन करे॥ अर्थः॥ हे अग्ने तू अच्छे प्रकार निद्रा

+ बृ॰ नू॰॥ अ॰॥ प॰ त॥ इ॰ पृ॰ बा॰ उ॰॥

रहितहो (अर्थात् जागि) हम यजमान अच्छे प्रकार सौं मैं। और हमारी रक्षा कर। क्याकर के कि प्रमाद छोडिके। किंच हे अग्नेहमको फिरि बोधनकरि (अर्थात् जगाय॥ सोते समय राक्षसों के नाश के अर्थ अग्नि से प्रार्थना है॥ १४॥

पुनर्म्मनः॥ पुनर्म्मनः पुनरायुर्म्मऽआगन्पुनःप्राणः पुनरात्मा मऽआगन्पुनश्चक्षुःपुनः श्रोत्रम्मऽआगन्॥ वैश्वानरोऽअदब्धस्तनूपाऽअग्निर्न्नःपातुदुरितादवद्यात्॥ १५॥

ब्रा० ब्र० अग्निर्द० का० ७·४·४० · प्रबुद्ध होकर पढै॥ अर्थः मुरु यजमान का मन सोते समय विलीन हुआ फिरि इस शरीर में आया। किंच सोते समय मेरी आयु नष्ट प्राय हुई फिरि आई (फिरि उत्पन्न हुआ) तैसे मेरा प्राण (वायु) फिरि आया तैसे ही मेरा आत्मा (जीव) पुनरागमन् तथा मेरे चक्षु फिरि आये तथा मेरे श्रोत्रेन्द्री फिरि आये। शत० ३·२·२·२३ सर्वे ह वाऽ इति॥ सोते समय मनसे आदिले सबों का अपक्रम होता है। तिनों को फिरि यथा स्थान आने की प्रार्थना करते हैं। एसे ही सब इन्द्रियों के आने पर यह अग्नि निन्दित पापों से हमारी रक्षा करो। अथवा अयश और पाप से रक्षा करो। कैसा अग्नि है कि वैश्वानर (सब मनुष्योंका हितकारी) किसी से न मारा जावे हमारे शरीर का पालक॥ १५॥

त्वमग्ने॥ व्रतपाऽअसिदेवऽआमर्त्येष्वा॥ त्वंयज्ञेष्वीड्यः॥ रास्वेयत्सोमाभूयोभरदेवोनः सविताव्वसोर्द्दाताव्वस्वदात्॥ १६॥+

+ त्व-ड्यः॥ अ०॥ ए-नू॥ इ॥

त्वमग्न इति वत्सऋषिः प्रतिष्ठा गायत्री० अग्निर्दे० का० ७.५.
१.२. दीक्षित जो क्रोधित हो वा व्रत विरुद्ध कहै तौ इसै जपै॥ अ
र्थ॥ हे अग्ने द्योतनात्मक तू सव मनुष्यों के व्रत का पालक है
तैसेही सव यज्ञो में याचना किया वा पूजन किया है। इस हेतु र
क्षा कर॥ अथवा दूसरा अर्थ। हे अग्ने देवता ओं और मनुष्यों में
व्रत पा है। और अर्थ पूर्ववत्॥ रास्वेयदिति सा– त्रि० सोमो दे० का०
७.५.३. यज्ञ में प्राप्त हुए धन का स्पर्श करै॥ अर्थ॥ हे सोम इतने ध
न को दे फिरि भी धन को दे। जैसे धन के दाता सविता देवताने हमको
पहिले धन दिया॥ १६॥ इति श्री गिरिधरभाष्ये पंचमोनुवाकः॥ ५॥
अ०६ एषाते॥ शुक्र तनूरेतद्वर्च्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ॥ जूरे
सि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे॥ १७॥ ए– छ। अ०। त्रि– हा। दे०।
एषाते० शा– त्व० हिरण्याज्य दैवतं का० ७.६.७.८. ध्रुवा के आज्य
में से जुहू को चारि बार भरि कर तिस घी में दर्भ तृणों में बंधे हुए
सुवर्ण को छोडै॥ अर्थः॥ हे शुक्र (दीप्यमान) अग्ने तेरा यह दृश्यमा
न घी शरीर है। इस घी में पडा हुआ सुवर्ण तेरा तेज है। तिस आज्य
रूपी शरीर के साथ एक हो॥ फिरि हिरण्यगत दीप्ति को प्राप्त हो॥ इ
स मंत्र पाठ सें अग्नि को सतेजस्त्व और सतनुत्व होता है। तदुक्तं
तित्तिरिणा सतेजसमेवैनं सतनुं करोतीति॥ अथवा यह अर्थः॥ हे
शुक्र (आज्य) यह हिरण्य लक्षण तेरा शरीर। और यह ही तेरा तेज
है। शत० ३.२.४.८. समान जन्म इत्यादि। तिस हिरण्य लक्षण के
साथ सोम में प्रवेश करि॥ शत० ३.२.४.९. सोमो वै भ्राडिति॥ जू

रसि० आर्षीत्रि० वाग्देवतम् का०७.६.९. हे वाक् तू वेग युक्त है वा जीव (प्राण) की धारण करने वाली है। कैसी है तू कि मनसा की धृता (नियमिता) तैसे ही विष्णवे (यज्ञ के अर्थ) प्रीति युक्त। वायज्ञ को रुचै ॥ १७॥

तस्यास्ते॥ सत्यसंवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा॥ शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि॥ १८॥ शु–सि। उ

सत्य है सव जिस का ऐसी जो तू सत्यसवा तिस की आज्ञा में वर्त्तमान जो मैं हूं सो शरीर की दृढता को प्राप्त होंउ। स्वाहा, यह आज्य हुत हूजियो॥ शुक्रमसि० सा–द्व० हिरण्यदे० का०७.६.१०. जुह्वा में से तृण वद्ध हिरण्य को निकाल तृणों को वेदी में डाले॥ अर्थः॥ हे हिरण्य तू प्रकाशमान है। तैसे आनंदकारी है। विनाश रहित है अग्नि संयोग हुए पर सुवर्ण का विनाश नहीं होता यह प्रसिद्ध है। सव देवताओं का संबंधी है (सव देवताओं को हिरण्य के दान से तुष्ट करै॥ १८

चिदसि॥ मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी॥ सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय॥ १९

द्वे कण्डिका यजुषी, वाग्रूपध्यारोपकल्पना करि सोमक्रयणी गौ की स्तुति करते हैं। का०७.६.१५. चिदसि १९. २० इन करि के अभिमंत्रण करै॥ अर्थः॥ हे वाग्देवता रूप सोम क्रयणी तू चित् है, मन है, धी है। अन्तःकरण की चित्त, मन, बुद्धि, तीनि वृत्ति हैं। तिन्हों के ये लक्षण। अचेतन देहादिकों के संघातका चेतनत्व सम्पादन कर

नेवाली बाह्य वस्तुओंमें अथवा निर्विकल्परूप सामान्य ज्ञान उत्पन्न करनेवाली वृत्ति-चित्त है तिस को यहां चित् कहते हैं। लोकमें किसी पदार्थ को देखकर यह होगा वा नहीं ऐसे संकल्प विकल्प करनेवाली वृत्ति-मन तिसे मन कहते हैं। यह योंही होगा ऐसी निश्चय रूपा वृत्ति-बुद्धि सो यहां धी शब्द करि कहते हैं। वागात्मिका सोम क्रयणी चित् मन धी रूप करि प्रशस्य है। चिदादि रूपों को आरोपण करि स्तुति की। दक्षिणादि रूपत्व को यहां विद्यमान में स्तुति करते हैं। हे गौ-तू दक्षिणा है। गाय देय-द्रव्यत्व करि कर्मों में दक्षिणात्व प्रसिद्ध है। अथवा वाग्दान को प्रशस्तत्व होनेंसे-दक्षिणा है +। तैसेही क्षत्रिया है सोम क्रय के साधन होनेसे। तैसे ही देवताओं में क्षत्र जात्यभिमानी सोम है॥ तदुक्तं बृहदारण्यके माध्य॰ १.२.१३. काण्व १.४.११ यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्र इति॥ तिस सोम क्षत्रि कर अभिमन्तव्य (अर्थात् सोम लता द्रव्य के क्रयका हेतु होंने से तू क्षत्रिया है। और तिसका रूप इसके क्रय द्वारा तिस के संबंधि होनेसे होता है। ऐसे ही यज्ञ संबंधित्व से यज्ञिया (यज्ञ योग्य) है। अदिति देवमातृ रूप। तथा उभयतः शीर्ष्णी (दोशिर वाली, ज्योति ष्टोम के आदि-प्रायणीय-अन्त-उदयनीय-दोनों को शिरत्व है) वा वाग्रूप होंने से सर्व तो मुखी है ‡। सो पूर्वोक्त चिदादि रूपा तू हमारे अर्थ प्रथम सोम के क्रेतार प्रति अच्छे प्रकार पूर्वमुखी होकर पीछे सोम सहित हमारे पास आकर अच्छे प्रकार पश्चिम मुखी हो। किंच मित्रः (सूर्य) तेरा नाशन हो इस हेतु दक्षिण में तेरा बंधन कीजियो। तथा पूषा (पोषक देवस्

‡ शत॰ ३.२.४.१६ सयद्वेनया समानं सद्विपर्यासंवदतीति

+ भूमिदानात्परं नास्ति विद्यादानं ततोधिकमिति स्मृतेः॥ भूमिदान से बढ कर कोई दान नहीं परन्तु विद्यादान तिससे भी बढ कर है यह स्मृति में लिखा है॥

र्य मार्गसें तेरी रक्षाकीजियो। अथवा पूषा (पृथिवी) तुझे मार्गसे रक्षाकीजियो। किसलिये कि इन्द्रकी प्रीति के अर्थ कैसे इन्द्र केलिये कि अध्यक्षाय (ऊपर हैं नेत्र जिसके सो अध्यक्ष जैसे के अर्थ अर्थात् द्रष्टा॰ यज्ञस्वामीइन्द्र के अर्थ॥ १९॥

अनुत्वा॥ माता मन्यतामनु पिता नु भ्राता सगर्भ्योनु सखा सयूथ्यः॥ सादेवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमᳪं रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि॥ २०॥

किंच सोमा हरणमें प्रवृत्त होनेकी तेरी माता जननी आज्ञादीजियो। पिता आज्ञादीजियो। सहोदरभ्राता आज्ञादीजियो। समानयूथी सखा (वछडा) आज्ञादीजियो। हेदेवी सोमक्रयणी सो तू इन्द्र के अर्थ सोमदेवको प्राप्त हो (जा) और सोम को ग्रहण किये स्थित जो तू तिसे रुद्रदेवता हमारे पास भेजियो। अथवा रुद्र तुझको प्रवर्त्तकीजियो। क्योंकि रुद्र की आज्ञा विना पशु नहीचलते। सोम हे सखा जिसका ऐसी सोमसहित होकर कल्याण पूर्वक फिरियहां आ॥ २०॥ इतिगिरिभाष्येषष्ठोनुवाकः॥ ६॥

अ० ७ वस्व्यसि॥ वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि॥ बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके॥ २१॥

अनुष्टुब्बृहतीवा॰ सोमक्रयण्याःस्तुतिः॰ का॰ ७. ६. १६. सोमक्रयणी गौकीवसु॰ अदिति॰ आदित्य॰ रुद्र॰ चन्द्र॰ रूप करि स्तुति करतेहैं॥ अर्थः॥ हे गौ तू वसुरूपाहै। अदिति देवमाता है। द्वादशादित्यरूपा है। एकादशा रुद्ररूपाहै। चन्द्ररूपाहै। किंच बृहस्पतिसु

खपूर्वक तुम को रमण करावै (इ कही रखै) रुद्र वसु औं (आठ देवों) सहित तुम्हारी रक्षा करें ॥२१॥

अदित्यास्त्वा ॥ मूर्द्धन्ना जिघर्म्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पदमसि घृतवत्स्वाहा ॥ अस्मे रम स्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः ॥२२॥ †

अदित्यास्त्वे त्यार्षी पङ्क्ति० आज्यो दे० का० ७·६·१७·१८· सोमक्रयणी के पूर्व दक्षिण पद सम्बंधि षट् ६ पदों को छोडकर सातवें पद का लक्षण करि गृहण करें। इस सातवे पद में हिरण्य रखकर होम करें ॥ अर्थः ॥ अखण्डित पृथिवी के शिर रूप देव यजन (देवताओं के यागयोग्य स्थान) में हे आज्य (घी) तुझे चलता (प्रकाशता) हूं देव यजन को पृथिवी का शिर रूप तित्तिरि में लिखा है। किंच हे स्थान तू इडा (गौ) के पाद करि अंकित होने से तद्रूप है और तिस पद को घृत युक्त करने को स्वाहा जुहोमि (होम करता हूं) ॥१॥ अस्मे रम स्वेति ईमंत्रो का लिंगोक्त देवता प्रा० पं० का० ७·६·१९· अध्वर्यु स्फ्य से गो के पदांकित भूमि मे तीन रेखा करै ॥ हे गो के पद तू यहां क्रीडा करि ॥१॥ अस्मे ते० प्रा० पं० का० ७·६·२· हिरण्य को छोडि गो पद की मृदा हाथ में ले स्थाली में डाले ॥ अर्थः ॥ हे सोम क्रयणी के पद हम तेरे बन्धु हैं ॥१॥ त्वे राय इति प्रा० अ० का० ७·६·२१· अध्वर्यु गो के उठाये हुए पद के स्थान पर जल डाल कर उस उठे पद को दे ॥ अर्थः ॥ हे यजमान तेरे धन इस पद रूप करि तिष्ठियों। अथवा राय० पशु को कहते हैं

† अ० हा॥ अ०॥ अ० स॥ द्र० अ० घु॥ उ०॥ ले० यः॥ क्र०॥ मे० यः॥ त्र०॥ मा० ष्म ॥ आ०॥ तो

पृ०॥ ई॥

शत० ३·३·१·८· तेरे यहां पशु होवें ॥३॥ मेराय इति दे- अ० का० ७·६·२२· स्थाली में स्थितपद को यजमान ग्रहण करे॥ अर्थ:॥ मुरु यजमान विषें धन वा पशु इस पद करि तिष्ठियों॥४॥ मा वयमिति या- त्रि० का० ७·६·२३· अध्वर्यु हृदय का स्पर्श करे॥ अर्थ:॥ हम अध्वर्यु से आदि ले धन की पुष्टिकरि वियुक्त न होवें॥५॥ तोतो राय इति दे- ब्रु० का० ७·६·२४·२५· अध्वर्यु यजमान से ले पत्नी को देवे· अनेक पत्नी होने से नेष्टा सव पत्नीयों से कहवावे॥ अर्थ:॥ पत्नी के यहां धन वा पशु पदरूपेण तिष्ठियों अथवा तोत:+ तेरें धन वा पशु हूजियों। ६॥२२॥

समख्ये॥ देव्याधिया सन्दक्षिणयो रुचक्षसा॥ माम आयु: प्रमोषीर्म्मो अहन्तव वीरम्विदेय तव देवि सन्दृशि॥२३॥

आस्तारपङ्क्ति: पत्न्याशी: सोमक्रयणी से पत्नी आशिष मागती है का० ७·६·२६· सोम क्रयणी को देखती हुई पत्नी को अध्वर्यु पढवावे॥ अर्थ:॥ हे सोम क्रयणी अपनी प्रकाशमान बुद्धि पूर्वक मुझे देखि। कैसी अपनी कि दक्षिणायोग्य तथा वहुत देखने वाली। ऐसी तू मुरु पत्नी की आयु को खण्डित न करि क्यों कि में तेरी आयु को खण्डित नही कर्ती। किंच हे देवि गो तेरे दर्शन से वीर (पुत्र) मिले ॥२३॥

अ० ८· एषते॥ गायत्रो भाग ऽ इति मे सोमाय ब्रूता देषते त्रैष्टुभो भाग ऽ इति मे सोमाय ब्रूता देषते जागतो भाग ऽ इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दो ना माना थं साम्म्राज्य ङ्गच्छेति-

+ तोत: शब्द: कलत्रवाची अव्ययम्। यद्वाव्ययानामनेकार्थत्वात्तोत: शब्दो युष्मत्पर्यायार्थ:॥

मे सोमाय ब्रूता दास्माकोसि शुक्रस्ते ग्रहो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥२४॥ ए-तु॥ अ॰॥ आ-तु॥ इ॰॥

एषते द्वे यजुषी लिङ्गोक्तदेवता का॰७.७.८. चारिमन्त्रों को यजमान पढ़े ॥अर्थः॥ हे अध्वर्यो सोमाभिमानी देवता के अर्थ यह मेरा वचन तू कहि। यह क्या कि हे सोम तेरा यह दृश्यमान भाग गायत्री संवन्धी है।गायत्री छन्द के अर्थ तेरा क्रय है कुछ बधके अर्थ नही यह यजमान का अभिप्राय हैं। तिस मेरे अभिप्राय को सोम के अर्थ कहि १ तेरा यह त्रिष्टुप् छन्द सम्बन्धी भाग इस मेरे अभिप्राय को सोम के अर्थ कहि २ ऐसे ही आगें भी जगती छन्द सम्बन्धी इत्यादि अर्थ पहिले समान ३ छन्द हैं नाम जिनों का ऐसे उष्णिक् से आदि ले तिन्हों के आधिपत्यत्व को प्राप्त हो। यह मेरा वचन सोम के अर्थ कहि।४। जो सोम के अर्थ छन्दों का आधिपत्य देके लाता है सो अपनों का अधिपत्य पाता है। तदुक्तं तित्तिरिणा। योवै सोमꣳराजानꣳ साम्राज्यं लोकं गमयित्वा क्रीणाति गच्छति स्वानाꣳ साम्राज्यमिति। इस हेतु इन मन्त्रों से सोम की राज्यप्राप्ति सूचित है। गायत्री से आदि ले छन्दो देवता जहां रहते हैं सो छन्दों का लोक तिस के आधिपत्य को प्राप्ति कर सोम को लायके अपनों के आधिपत्य का भागी होता है यह अभिप्राय है॥का॰७.७.९. बैठि करि आस्माकोसि इस मंत्र से सोम को स्पर्श करे॥अर्थः॥ हे सोम तू क्रय मार्ग होकर आने से आस्माक है शुक्र+ऐन्द्रवायव से आदिले सवतेरे ग्रह हैं। विवेक पूर्वक चयन के करने वाले तुझे सार असार का विवेक करिके सारभूत को इकट्ठा करें॥२४॥

+ शुक्रपदमैन्द्रवायवादिग्रहाणामुपलक्षणम्।

झ को मत देखियो। तथा वृका (लिरिये वा दुर्ज्जन) तुझकोमति देखियो कैसे हैं वृकाः कि पराये पाप करने की इच्छा करते। किञ्च श्येन (शीघ्रगामीपक्षी) का रूप धारण करि वा श्येनवत झपट करि। यजमान के घर को चलि तिस यजमान के घरमें तेरे और मेरे लिये सर्वोपकरण संयुक्त स्थान है॥ ३४॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॑॥ नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तꣳ स॑पर्यत। दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्य्या॑य शꣳसत॥ ३५॥

अभितपन सूर्य्य दृष्टा जगतीछन्दस्का सूर्य्यदेवत्या का॰ ७॰ ७॰ २१॰ २२॰ शाला के पूर्व में प्रतिप्रस्थाता पशु को लेके ठैरे कृष्ण सारंग स्थूल वा लोहित सारंग को यजमान से पशुका आलम्भ कराय नमो मित्रस्य पढवावै॥ अर्थः॥ इस मन्त्र में सूर्य्य रूप करि सोमकी स्तुति करते हैं॥ ऐसे सूर्य्य के अर्थ हमारी नमस्कार। कैसे सूर्य्य के अर्थ कि मित्र और वरुण देवता रूपकरि वर्तमान। मित्र जगत के हित करने वाले वरुण अपनी किरिणों से जगत को प्रकाश करने वाले। देखने वाले के अर्थ॥ यद्वायमर्थः॥ मित्रस्य वरुणस्य चक्षुसे (सबजगत के देखने वाले के अर्थ +) तथा तेजरूपी के अर्थ। प्रकाशवान के अर्थ। तैसे ही दूर मे वर्त्तमान प्राणियों कर दीखै तिसके। अथवा दूर में देखता है तिस के परमात्मा से उत्पन्न हुआ तिस के अथवा देवताओं के अनुग्रहार्थ उत्पन्न हुआ वा देवता जिस से उत्पन्न हुए तिस के। विज्ञानघन के अर्थ। द्युलोक के पुत्रवत् प्यारे के ‡। वा द्युलोक के पालक के

+ मित्रा वरुण शब्देन सर्वं जगल्लक्ष्यते।

‡ द्युलोकादि सूर्य्यो जायते

अर्थ। ऐसे सूर्य्य के अर्थ तिस अवश्य फल के देने वाले ज्योतिश्शम रूप कर्म्म को हे रित्विज लोगो तुम अनुष्ठान से पूजा करो। वा तिस सूर्य्य रूप ब्रह्म को पूजो। किंच सूर्य्य की प्रीति के अर्थ स्तुति करो। अर्थात शास्त्रों को पढो क्यों कि यागानुष्ठान में तिस का आवश्यकत्व है॥ ३५॥

वरुणस्योत्तम्भनम्। वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥३६॥†

वरुणस्येति पञ्च वारुणानि प्रथमा आसुरी जगती का॰ ७॰ ९॰ २५॰ शाला के समीप शकट को पूर्व मुख वा उत्तर मुख खडा कर उत्तम्भन काष्ठ (तिपाये) से बांधै। अर्थ। हे काष्ठ तू वरुण+ (वस्त्र मे वंधे सोम) का उत्तम्भन है। कुछ शकट का नहीं॥ १॥ वरुणस्येति द्वे याजुषी पंक्त्यौ का॰ ७॰ ९॰ २६॰ उत्तम्भन काष्ठ पर शकट को स्थापन करि दोनो शम्याएँ (सैलें) ऊपर को निकालि ले॥ अर्थ॥ हे शम्यं तुम सोम की स्कम्भ सर्जनी (बैलों को इधर उधर से रोकने वाली हो॥ २॥ का॰ ७॰ ९॰ २७॰ २८॰ गूलर की नाभि समान मञ्चिका मूज से बिनी हुई को ऊँची करके शकट के निकट रखि वरुणस्य ऋतसदन्मसि करि अध्वर्यु हाथ से स्पर्श करै॥ अर्थ॥ हे आसन्दी तू सोम की यज्ञार्थ विठलाने वाली है॥ ३॥ याजुषी त्रिष्टुप का॰ ७॰ ९॰ २९॰ तिस आसन्दी पर कृष्णाजिन को पूर्व मुख करि विछावै॥ अर्थ॥ हे कृष्णाजिन वंधे हुए सोम के यज्ञार्थ बैठने का स्थान है॥ ४ साम्नी गायत्री॥ का॰ ७॰ ९॰ ३०॰ तिस पर सोम को स्थापन करै॥ अर्थ॥ हे सोम तू यज्ञार्थ बैठने के स्थान भूत आसन्दी संस्थित कृष्णा-

+व-सि। अ॰। व-स्य:। दू॰। व-सि। उ॰। व-सि। ऋ॰। व-द। ल्ट॰॥ ३६

†व्रियते वेष्ट्यते वस्त्रादिनेति वरुण शब्देनात्र वस्त्रवद्धः सोम उच्यते।

जिनपर सुखपूर्वक बैठि॥ ३७॥

याते॥ याते धामानि हविषा यजन्ति ताते विश्वा परिभूर-
स्तु यज्ञम्॥ गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा-
सोम दुर्य्यान्॥ ३७॥

इति संहितायां दशमोनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिन शाखीयायां वाजसने-
यसंहितायां दीर्घपाठे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

गोतम दृष्टा त्रिष्टुप् छन्दस्का सोम देवत्या का० ७॰ ९॰ ३२॰ सोम के प्रवेश्य हुए पीछे अध्वर्यु यजमान को पढवावे॥ अर्थः॥ हे सोम तेरे जिन प्रातः सवन से आदि ले स्थानों को प्राप्त हो ऋत्विज तेरे रस रूप हवि से याग करते हैं। यज्ञ को देखिकरि इति शेषः॥ तिन सब स्थानों को तू प्राप्त हो॥ अर्थात् ऋत्विज जिन स्थानों में यजन करें तिन को तू प्राप्त हो। अथवा ऋत्विज जिन स्थानों को प्राप्त हो यजन करें ते सब तेरे यज्ञ के हों। किंच हे सोम तू घरों को प्राप्त हो। कैसा है तू कि घरों को बढाने वाला। आपदा से तिरानेवाला॥ अथवा यज्ञ के पार का प्राप्त करानेवाला। तेरे प्रसाद से पाये हैं हमनें सपूत बेटा नाती। अवीरहा (नहीं है वीरों का मारनेवाला) अर्थात् बेटा नातियों का परिपालक॥ ३७॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये दशमोनुवाकः॥ १०॥

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः ४

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय
विश्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेय
नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये गिरिप्रसा-
द सर्वस्वे शालागमाक्रोचनान्तश्चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंद दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १

अ१०१ अग्नेस्तनूः॥ अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि
विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सो-
मभृते विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा॥१॥

ॐनमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके॥
आतिथ्यात्स्थाणुहोमान्तःपञ्चमोऽध्यायईर्यते १

चौथे अध्याय में ऋत्विजसहित यजमानके शालाप्रवेश से ले क्रीत
सोम के शाला प्रवेशतलक मन्त्र कहे॥ अब पाँचवाँ अध्याय तिस
की आदि में आतिथ्य के आठ हविर्ग्रहणसे लेमन्त्र कहियें हैं॥ का०
८०१०४० अग्नेस्तनूः इसपहली कंडिकाके पांच मन्त्रों से हविग्रह
ण करे। वैष्णवानि पञ्च यजूंषि १या-पं० २या-त्रि०३०४०या-ज
५आसु० अ०॥ अर्थः॥ हे हविः तू अग्निका शरीर है। अग्नि संज्ञक
जो देवता सोम राजाका भृत्य तिसका गायत्री छन्द अधिष्ठातानि

1 अ-त्वा। अ०। सो-त्वा॥ दू०। आ-त्वा। उ०। श्ये-त्वा॥ त्र०। अ-त्वा॥ लृ०॥१॥

अभित्यम्॥ अभित्यन्देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्च्चामिसत्यसवꣳ रत्नधामभिप्रियम्मतिङ्कविम्॥ ऊर्द्धायस्यामतिर्भा० अदिद्युतत्सवीमनिहिरण्यपाणिरमिमीतसुक्रतुः कृपास्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥२५॥ †

अभित्यमित्यष्टि सविता दे० का० ७.७.१२. १३. सोम वाधने कपड़ा को दुहरा तिहरा करिके दश चुकट सोम डाले॥ अर्थः॥ तिस सविता देवता को सब ओडी से यजन करताहूं। कैसे देवता को कि द्यावा पृथिवी के वीच वर्त्तमान। तैसे वुद्धि युक्त करनेवाला। अपितिथ प्रेरणेवाला। तथा रत्नोंका धारण करने वाला वा दाता सब ओडी से प्रीति का विषय। मनन योग्य क्रान्ति दर्शन। किंच जिस सविता की दीप्ति किसी के न सहेजाने से ऊंची गगनाभि सुखी- प्रवृत्ति है नक्षत्रादि कों की जिस मे तिस गगन प्रदेश में सब वस्तुओं को प्रकाशकरती है॥ अथवा यह अर्थ। जिस की मति (अर्थात् आत्ममयी दीप्ति) सब को प्रकाश करती है। किसलिये कि सम्पूर्ण कर्म्मों की आज्ञा देने को। सो सूर्य्य इतना सोम यह तिसका परिमाण निश्चय कीजियो। कैसा है सूर्य्य कि हिरण्यपाणिः (सोनेके गहिने युक्त हाथ है) अच्छा है संकल्प जिसका॥१॥ प्रजाभ्यस्त्वेति दे० द्व० सोमो दे० का० ७.७.२०. इकट्ठा कर उष्णीष में वांधे अर्थः॥ हे सोम प्रजाओं के उपकार के अर्थ तुझको वांधताहूं २॥ प्रजास्त्वेति आसुरी गायत्री सोमो दे० का० ७.७.२१ उष्णीष

† अ-स्व:॥अ०॥प्र-स्त्वा॥द्व०॥प्र-हि॥उ०

में बंधे सोमका स्वास नरुकै इसलिये छेद करै ॥ अर्थः ॥ हे सोम स्वास लेते हुए तुझे देखकर सब प्रजा स्वास लेती (जीती) है। तैसे हे सोम प्रजा को स्वास लेती देखि स्वास ले। प्रजा का और तेरा स्वास रोधकभी मत हूजियो परस्पर देखकर जीवन हूजियो। इस अभिप्राय से छेद करना है ॥ २५ ॥ इति श्रीगिरिधरभाष्यप्रदीपेऽष्टमोनुवाकः ॥ ८ ॥

अ०९ शुक्रन्त्वा ॥ शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतम मृतेन ॥
सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपस स्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः
परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषम्पुषेयम् ॥ २६ ॥ †

शुक्रंत्वेति प्रा–ह० सोमो दे० का०७·८·१५·यजमान को हिरण्य का स्पर्श कराय कर बोले ॥ अर्थः ॥ हे सोम दीप्यमान तुझे दीप्यमान सुवर्ण से लेता हूं। तू कैसा है कि फलका हेतु होने से आल्हादकारी। तथा स्वादु करि के अमृत समान। कैसे सुवर्ण से कि आनन्दकारी तथा अमृत (अग्निसंयोगादि करि विनाश रहित) से ॥ १ ॥ सग्मेतेऽ इति दे–ह० लिंगोक्त दे० का०७·८·१६· जो हिरण्य लेकर सोम वेचता है उसे हिरण्य करिके पावे (अर्थात् तिसके हाथ में हिरण्य देदे कर लेले निराश करै ॥ अर्थः ॥ हे सोम वेचनेवाले गौ सोम के मोलमे तुझको दीसो तुझे दी हुई गौ फिरि लौट कर यजमान के घरमें ठैरियो। हिरण्य तेरा है कुछ गौ तेरी नंही। अथवा तेरी गौ यजमान के वर्ते है ॥ २ ॥ अस्मेतेऽ इति या–गा० लिंगोक्त दे० का०७·८·१८· यजमान प्रति अर्पित जो गौ हव्य है तिसे फिरि यजमान सहित सोम वेचनेवाले के सान्ने रखै ॥ अर्थः ॥ हे सोम वेचनेवाले तुझे दिया जो

† शु–न ॥ प्र०॥ स–गोः ॥ द्वि० ॥ अ–णि ॥ उ०॥ त–मू ॥ त्र० ॥

हिरण्यहै सो हमारे यहां लौटके देरियो तेरे यह गौ सोमका मूल्य हूजियो कुछ सौंना मतहूजियो॥३॥ तपसस्तनूरितियजुः अर्द्धे अजा दे० अर्धे सोमो दे० का०७.८.२०. प्रत्यङ्मुखी अजा को स्पर्शकरिकेकहै॥ अर्थः॥ हे बकरी तू पुण्यका शरीर है॥ दिविमे स्थित सोम लेने को अजा को साथ ले गायत्री गई यह तित्तिरिकेसोमाहरणोपाख्यान में कहाहै अजाका पुण्य शरीर होंना॥ ॥किंच हे अजा तू प्रजापतिका वर्ण(देह)है॥ जैसे प्रजापति सव देवताओंकाप्यारा है तैसे अजाभी है। ऐसेअजाप्रति कहिके सोम प्रति कहताहै॥हे सोम(उत्तम)अजा लक्षण इस पशुसे तुझे लेताहूं। तपका तनू होनेसे अजा को उत्तमत्वहै। इस हेतु तेरे प्रसाद से सहस्रपोषम्(सहस्रों पुत्र पशु आदिकोंका पोष)जैसे होतैसे पुष्टहोंउ॥ अथवा यह अर्थः हे अजे तू प्रजापतिका तपरूपहै। अर्थात् तिससे उत्पन्नहुई † किंच प्रजापतिका रूपतूहै। त्रिगुणत्व होनेसे प्रजापतिका त्रिरूपहै। अजाकाभी प्रति सम्वत्सर तीनिवार प्रसव होनेसे प्रजापति रूपहै ‡ ऐसे अजाको स्तुतिकरि सोम प्रति कहताहै। परम उत्कृष्टपशु(अजा)से तुझे लेताहूं तिस हेतु मुझे सहस्रों प्राणियोंके पोषण योग्य धन सेवदा॥२६॥

मित्रोनः॥ मित्रोन॒ऽएहि॒ सुमि॑त्रध॒ऽइन्द्र॑स्योरुमाविशद॒क्षिणमु॒शन्नु॒शन्त॑ᳪ स्यो॒नः स्यो॒नम्॥ स्वान॒भ्राजाङ्घा॑रे॒ वम्भा॑रे॒हस्त॒सुह॑स्त॒कृशा॑नवे॒ते॒वः॑सोम॒क्रय॑णा॒स्तान्र॑क्षध्व॒म्मा वो॑दभन्॥२७॥ मि-ध॥ अ०॥ इ-म्॥ इ०॥ स्वा-न्॥ उ०॥

† शत० ३.३.३.८. तपसोह्वाइति ‡ शत०३.३.३.८.सायत्रिरित्यादि

मित्रोन॰इतिया-न्वृ॰सोमोदे॰का॰७॰८॰२१॰सव्यसे अजाकोदेकर मित्रोन इति दक्षिण से सोम कोले॥ अर्थः॥ हेसोम तू हमारे प्रति आ। कैसाहे तू कि मित्र(सखा,प्रीतिरूप) अथवा मित्र(रवि रूप)हे। तथा शोभन मित्रों का वढाने वाला। लियेहुए कपडे में बंधे हुएसो म को वरुण देवता कत्व करि क्रूरत्व की शान्ति के अर्थ मित्रत्वक रि प्रार्थनाकी॥ ॥तदाहतित्तिरिः॥ वारुणो वै क्रीतः सोम उपनद्धे मित्रोन॰एहि सुमित्रध॰इत्याह शान्त्यै इति॥१॥ इन्द्रस्य॰ यजुः सोमो द्वे॰ का॰७॰८॰२३॰ वस्त्र के ऊपर स्थापन करि अध्वर्यु सोम को य जमान के दक्षिणऊरूपर आसादन करे॥ अर्थः॥ यहां यजमान कोपर मे श्वर्ययुक्त होंनेसे इन्द्र कहा शत॰३॰३॰३॰१०॰॥हे सोम तू इन्द्रस्य (यजमान के) दक्षिण ऊरूपर वैठि। कैसा हे तू कि ऊरूका चाहनेवा ला। तथा सुखका हेतुभूत। कैसाहे ऊरूपै वैठाहुआ सोम कामना वान् वैठने में सुख करनेवाला॥ पहिले देवता सोम कोले इन्द्रकी दक्षिण ऊरूपर विठाते हुए सो यहां इन्द्र शब्द करि यजमान लेना तदाह तित्तिरिः॥ देवा वै सोममक्रीणंस्तमिन्द्रस्योरौ दक्षिण॰आ सादयन् सखलु वा॰एतर्हीन्द्रो यो यजते तस्मादेवमाहेति॥२॥ स्वा नभ्राजेति आषीत्रि॰ स्वानादीनिधिष्ण्यानामानि(सातरक्षकोंके नाम) का॰७॰८॰२४ सोम विक्रयी के अधिदेवता भूत गन्धर्वों को देता यजमानजपै ॥ अर्थः ॥ स्वनति-स्वानः। यहां शोभाय मान-भ्राजः। पापकावैरी-अंघारि। विश्वका वढानेवाला-वम्भारिः सर्वदाहृष्टरूप-हस्तः। शोभनहै हस्त जिसका, सुहस्तः। दुर्वल का

जिलाने वाला• कृशानुः स्वानसे आदिले सात सोम के रक्षक देवता विशेष हैं। हे स्वानादिक सात देवताओ तुम्हारे सामने सोम लेने के हिरण्यादि पदार्थ स्थापन कियेहैं। तिन पदार्थों की तुम रक्षाकरो। तुम वैरियों को मत हिंसा करने दो॥ २७॥

परिमा॥ ग्ने दुश्चरिताद्बाध स्वामा सुचरितेभज॥ उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ २॥ऽअनु॥ २८॥

पुरस्ताद्बृहती• अग्नि देवत्या• का० ७.४.१• सोम को हाथमें ले यजमान पढे॥ अर्थः॥ हे अग्ने मुझे पाप से दूरि करि(मेरी पाप में वृत्तिन हो) शोभन चरित्र(सदाचार रूप पुण्य) में मुझ यजमान को स्थापन करि॥ का० ७.४.३ ऊरूपर से हाथमें ले यजमान उठे॥ अर्थः॥ उदायुषा: चिर जीवन है लक्षण जिसका ऐसी आयु निमत्त करि। तथा याग दानादिक शोभन आयुके निमित्त भूत सोमादि देवों को ले में उठाता हूं॥ २८॥

प्रति पन्थाम्॥ प्रति पन्थाम पद्म हि स्वस्ति गा मनेह सम्॥ येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥ २९॥

अनुष्टुप् पथि देवत्या का० ७.४.४• शिर पर सोम का पोटला रखि उसपर दोनों हाथ रखकर सोम लेने के स्थान से शकट के पास यजमान चले॥ अर्थः॥ मार्ग की स्तुति करता है॥ मैं पन्था में प्राप्त हुआ। कैसा है पन्था कि क्षेम पूर्वक जाने के योग्य तथा पाप रूप चौरादि रहित है। अथवा जहां चलने वालों को अपराध नहीं। जिससे चलने वाला पुरुष सब चोरों को दूरि करता। औ

र धन को प्राप्त होता तिस मार्ग को प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥

अ०१० अदित्यास्त्वक् ॥ अदित्यास्त्वगस्यदित्यैसदऽआसीद ॥ अस्तभ्नाद्द्यामृषभोऽअन्तरिक्षममिमीतवरिमाणम्पृथिव्याः ॥ आसीदद्विश्वाभुवनानिसम्म्राड्विश्वेत्तानिवरुणस्यव्रतानि ॥ ३० ॥ +

अदित्यास्त्वगितिया—गा०कृष्णाजिनोदे०का०७·९·६·शकटके नीड (जारे) पर कृष्णाजिन को पूर्वाभिमुख उत्तर लोम करि विछावे ॥ अर्थः ॥ हे कृष्णाजिन तू अखण्डित पृथिवी की त्वचा रूप है ॥ १ ॥ अदित्यै०या—अ०सोमोदे०।का०७·९·७·तिसपर बंधे हुए सोम को अध्वर्यु स्थापन करे ॥ अर्थः ॥ हे सोम तू भूमि संबंधि स्थान को प्राप्त हो (अर्थात् वेदि ॥ २ ॥ अस्तभ्नाद्द्यामितिद्व रुण देवते त्रिष्टुभौ।का०७·९·८·यजमान से सोम का स्पर्श कराय पढे ॥ अर्थः ॥ क्रीत सोम को वरुण देवतत्व होने से वरुण की ब्रह्म रूप करि स्तुति करते हैं ॥ अर्थः ॥ वृषभः (श्रेष्ठ) वरुण ने द्युलोक जैसे न गिरे तैसे अपने किये याग करि थांभा। तैसे ही अन्तरिक्ष को थांभा। तैसे पृथिवी के परिमाण को (अर्थात् इतनी पृथिवी) जानता है। तथा सम्यग् राजमान वरुण सब लोकों में व्याप्त है ऐसे सम्पूर्ण कर्म्म वरुण के हैं। अथवा ये द्युलोक थांभने से आदि ले कर्म वरुण के हैं। सर्वदा तिन्हों को करता है ॥ ३० ॥

वनेषुवि ॥ वनेषुव्यन्तरिक्षन्ततानवाजमर्वत्सुपयऽउस्त्रियासु ॥ हृत्सुक्रतुम्वरुणोविक्ष्वग्निन्दिविसूर्य्यम

+अ—सि॥अ०॥अ—द॥इ०॥अ—नि॥३०॥

दधात्सोममद्रौ ॥३१॥

का०७.९.९. सोम बांधने कपडे करि सब ओडी से वेष्टन करिके ×
॥अर्थः॥ वरुण ने वन गत वृक्षों के अग्र में अन्तरिक्ष (आकाश)
को विस्तार किया। यद्यपि अन्तरिक्ष सर्वगत है तथापि तहांमूर्त
द्रव्य के न होने से अत्यन्त विस्तार किया। तथा घोडों में वलका
विस्तार किया। अथवा अर्वत् + पुरुषों में वीर्य का विस्तार किया + शत३.३.४.७ वीर्यवैवाजःपुमा हैं सो ऽर्वन्त इति
तैसेही गौओं में क्षीरका विस्तार किया।हृदय में क्रतु के संकल्पऔ
रतिसके शक्तियुक्त मनको विस्तार किया।प्रजा में जठराग्निका।द्यु
लोक में सूर्यका। पहाड में सोमको वल्ली रूप स्थापन किया।पर्व
तकेपाषाणोंकी संधिमें सोम के उत्पन्न होने के कारण पहाड में सो
मका स्थापन कहा॥ ॥तदाह तित्तिरिः। सोम मद्रावित्याहग्रावा
णोवाऽअद्रयस्तेषु वाऽएष सोमं निदधातीति॥ ॥जो इन दो
नों मन्त्रों में कहे द्युलोकस्तम्भनसे आदिले सामर्थ्यवान् पर
ब्रह्मलक्षण वरुण तिसको हम स्तुति करते हैं॥३१॥

सूर्यस्य चक्षुः॥ सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीन
कम्॥ यत्रैतशेभिरीयसेभ्राजमानोविपश्चिता॥३२॥

अनुष्टुप्. कृष्णाजिन दे० का०७.९.९. आसनार्थदोकृष्णा ×
जिनों के बीच अन्यतर अनियत एक कृष्णाजिन को शकट
के पूर्व भाग में ऊंचे दण्ड में ध्वजा के स्थान लगावे॥अर्थः॥ हे
कृष्णाजिन तू सूर्य के नेत्रों का आरोहण करि। और तैसेही अ
ग्नि के नेत्रों की तारका का आरोहण करि। तैसे वहुत ऊंचाहो

जैसे इन्हों करिदीखै। जिनदोनो के देखते सर्वज्ञ सूर्य और अ-
ग्निसे प्रकाश मान हो अश्वपर चढि। सूर्य और अग्नि के देखने
से मार्ग राक्षसों की वाधारहित होता है। तदुक्तं तित्तिरिणा। एष वास्य
खलु रक्षो हणः पन्था योऽग्नेश्च सूर्यस्य चेति ॥ ३२ ॥

उस्त्रावेतम् ॥ उस्त्रावेतन्धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ
ब्रह्मचोदनौ ॥ स्वस्ति यजमानस्य गृहान्गच्छतम् ॥ ३३ ॥

ऊर्द्ध्व वृहती० एक अक्षर ऊन आनडुही० का० ७.८.११. बैलजोडे।
अर्थः॥ हे वैलो तुम इस को आते और चलते आप से आप रथमें
जुडो। कैसे हो तुम कि शकट की धुरी चलाने को समर्थ हो तेसेही-
नेत्रों करि अश्रुरहित (उत्साह सहित हो। शृङ्गों से वीरों (वालकों)
को नहीं मारते। ब्राह्मणों को यज्ञ प्रति चलाते। ऐसा सम्बोधन करि
प्रयोजन कहता है। ऐसे तुम क्षेम सहित यजमान के घरविषे चलो ३३

भद्रो मे ॥ सिप्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामा
नि ॥ मात्वा परि परिणो विदन्मात्वा परि पन्थिनो विदन्मा
त्वा वृकाऽअघायवो विदन् ॥ श्येनो भूत्वा परापत यज
मानस्य गृहान्गच्छतन्नौ संस्कृतम् ॥ ३४ ॥

यजुः सौम्यं० का० ७.८.१९. यजमान प्रति अध्वर्यु पढे ॥ अर्थः
हे सोम मुझ यजमान के अर्थ तू कल्याण रूपी है। हे भुवः पते (अ-
र्थात् यजमान अध्वर्य्यु से आदिले मनुष्यो के पति) तेसेही सव
स्थानो पत्नीशाला हविर्द्धान आदिकों को देखकर चल। चलते हुए
तुझको परिपरिण (चोर) मति देखि यों। तथा यागके विरोधी शत्रु तु

न्होंका शरीर(तृप्तिकरनेवाला)है तैसे हे हवि विष्णु(बृहु यज्ञव्यापक सोम)की प्रीतिके अर्थ तुझको ग्रहण करताहूं १ सोम नामा सोमराजाका भृत्य त्रिष्टुप छन्द अधिष्ठाता तिसका शरीर(तृप्तिकाहेतु है) और अर्थ पहिलेके समान २ अतिथि संज्ञक सोमराजा का अनुचर जगती छन्द अधिष्ठाता। हे हवि तू अतिथि संज्ञक सोमके भृत्य का आतिथ्य नामक संस्कार रूप (अर्थात् विना तिथिके क्षुधाकरि पीडित विप्रके आने पर तिसके पैर धोने भोजन कराने से आदिले संस्कारोंको आतिथ्य कहितेहैं सो) है। और अर्थ पूर्ववत् ३ श्येन नामदेवता सोम राजाका अनुचर स्वर्गसे सोमको लाने वाला श्येन रूप धरने वाली गायत्री अधिष्ठाता तिस श्येन और विष्णु सोमके अर्थ तुझको ग्रहण करताहूं। कैसे श्येनके अर्थ कि सोमका लानेवाला तिसके ४ धनकी पुष्टिका देनेवाला तिसके राजाके धनको लैनदैनसे बहुत बढाय कर राजा को देवै सो रायस्पोषदा अग्नि संज्ञक और सोमका अनुचर है अनुक्त छन्द अधिष्ठाता देवता तिस धनकी पुष्टि देने वाले अग्निके अर्थ हे हवि तुझको ग्रहण करताहूं विष्णवेत्वेति पूर्ववत् ५ विष्णु शब्दाभिधेयि सोमराजा के हविसे तिसके अनुचर अग्न्यादिक देवताओं और तिनद्वारा तिनके सम्बन्धी गायत्र्यादि छन्दोंकी तृप्ति होती है ॥१॥

अथाग्निनयनमंत्राः

अग्नेर्जनित्रंमू॥ अग्नेर्ज्जनित्रंमसि वृषणौस्थ उर्वश्यस्यायुरसिपुरूरवा असि॥ गायत्रेणत्वा छन्दसा

मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा-
छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥ †

अग्नेर्जनित्रमिती या-उ॰ शाकल देवता का॰ ५॰ १॰ २८॰ इससे शाकल ले वेदीपर उत्तराग्र रखै ॥ अर्थः ॥ हे शाकल तू अग्नि के उत्पन्न होनेका आधार भूत है ॥ १ ॥ वृषणौस्थः इति कुशतरुणं २ उर्वश्यसीति ३ आयुरसीति त्रयाणां देवीबृहती॰ ४ पुरूरवा असीति या-गा॰ त्रयाणां लिङ्गोक्तादेवता ५ का॰ ५॰ १॰ २९॰ पूर्व को अग्र डीकर कुशतरुण तिस पर रखै ॥ अर्थः ॥ हे दर्भौ तुम वृषणौ (सींचनेवाली) हो। जैसे पुत्रजनने के अर्थ स्त्री पुरुष वीर्य के सींचने वाले तैसे तुम दोनों अरणियों को अग्नि जनन सामर्थ्य सम्पादक हो २ ॥ का॰ ॥ ५॰ १॰ ३०॰ कुशतरुणों के ऊपर उत्तराग्र अधरारणि नीचे की अरणि) रखै ॥ अर्थः ॥ हे अधरारणे तू उर्वशी है। जैसे उर्वशी पुरूरवा राजा के भोग के अर्थ नीचे प्राप्त है तैसेही तू नीचे स्थित है ॥ ३ ॥ का॰ ५॰ १॰ ३१॰ उत्तरारणि से आज्य स्थाली गत आज्य का स्पर्श करै ॥ अर्थः ॥ हे स्थाली गत आज्य तू आयु (अर्थात् दो अरणि से उत्पन्न हुए अग्नि को आयु का देनेवाला) है ४ का॰ ५॰ १॰ ३१॰ उत्तरारणि को अधरारणि के ऊपर रखै ॥ अर्थः ॥ हे उत्तरारणि तू पुरूरवा है। जैसे पुरूरवा राजा उर्वशी के ऊपर वर्त्तै है तैसे तू भी है ५ उर्वशी से आदि ले तीन मंत्र श्रुति में कहे हैं शत॰ ३॰ ४॰ १॰ २२॰ ॥ गायत्रेणेति॰ त्रयाणां या-त्रि॰ अग्निर्दे॰ का॰ ५॰ २॰ २॰ तीन्यों मंत्रों से अध्वर्यु अरणियों का मंथन करै ॥ हे अग्ने गायत्री छन्द के अभिमा

† अ-सि॥ अ॰॥ व-स्थः॥ द्वि॰॥ उ-सि॥ उ॰॥ आ-सि॥ कर॰॥ पु-सि॥ लृ॰॥ गा-मि॥ आ॰॥ त्रै-मि॥ ई॰॥ जा-मि॥ लृ॰॥

नीदेवता सें मैं तुझ को मन्थन करता (अरणि के मन्थन से उत्पन्न क
रता) हूं ॥६॥ त्रैष्टुभेन ७ जागतेन ८ दोनो मंत्रों का अर्थ पहिले के समान २
भवंतन्नः ॥ भवंतन्नः सम नसौ सचेतसा वरेपसौ ॥ मायज्ञ
ꣳ हिꣳ सिष्टम्मा यज्ञपतिञ्जा तवेद सौ शिवौ भवं तमद्यनः ३
पङ्क्तिः ३ अग्नावग्निः पङ्क्तिर्विराज एतयोर्निमथ्या हवनीयावग्नि
देवते का॰ ५.२. ५. मंथन करके उठे अग्नि को आहवनीय में प्रक्षे
प करै ॥ हे जातवेद सो (दोनों अग्नि) हमारे अर्थ ऐसे हो। कैसे हो दोनों
कि मन सा सहित। तथा परस्पर समान चित्त युक्त अन्य विषय से
मन को निकाल हमारे अनुग्रह को मन सहित परस्पर विप्रतिपत्ति
रहित सचेत। तथा पाप रहित (अर्थात् भूल से हमारे किये पाप
के विषें कोप नहीं करते। तिसको स्पष्ट करते हैं। हमारे यज्ञ कर्म्म
को नहीं विनाश करते और यज्ञपति यजमान को नहीं विनाश
करते। तथा इस अनुष्ठान के दिन में हमारे अर्थ कल्याणकारी हो ३
अग्नावग्निः ॥ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणा
म्पुत्रो अभिशस्तिपावा ॥ सनः स्योनः सुयजा यजेह
देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्प्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥
का॰ ५.२.६. स्थाली से घृत ले स्रुवा करि होमे। अर्थः ॥ मथ्यमान
अग्नि आहवनीय में प्रविष्ट हो जैसे हवि का भक्षण करता है। कै
सा है अग्नि कि ऋत्विजों (वेद के जानने वालों) का पुत्रवत् पुत्र है।
तथा विकलता के निमित्त अभिशाप से रक्षा करता है। सो हे अ
ग्ने तैसा तू हमारे लिये सुख रूप होने से शोभन याग कर इस स्था

मेंइन्द्रादिकदेवताओंकोसोमादिरूपहविदे (अर्थात्हमारेदियेहविको देवोंप्रतिपहुंचा। क्याकरि केसदाप्रमादछोडिके। स्वाहा (यहआज्यतुरूको हुतहूजियो) अथवासोअग्निहमाराहविदेवताओंको देवे ॥४॥

अ॰ २ आपंतयेत्वा ॥ आपंतयेत्वा परिंपतये गृह्णामितनूनप्त्रे
शाक्वराय शक्वनऽओजिष्ठाय ॥ अनांधृष्टमस्यनाधृष्य
न्देवानामोजोनंभिशस्त्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्ते-
न्यमञ्जसांसत्यमुपंगेषंस्वितेमांधाः ॥५॥ †

† शस्त्येन्यमञ्जसाद्वैतिवापाठः

आपतयेत्वेति प्रा–त्रि॰वायुर्दे॰का॰ ८॰१॰१९॰२०॰ जिसपात्रकर केदेतेहें तिसपात्रमें ध्रुवास्थ आज्यको ग्रहणकरे॰ ऐसैही स्थालीमें सैस्रुवाकरि व्रतप्रदान पात्रमें तनूनप्त्रेशाक्वराय॰शाक्वनऽओजिष्ठा य सै आज्य ग्रहणकरे॥ अर्थः॥ सततगति वायुतिसके अर्थ हे आज्य तुरूको ग्रहण करताहूं॥ कैसेके अर्थ कि सर्वव्यापी॥तथावि श्वके विस्तार करनेवाले (आत्मा)केनाती॥ आकाशकेवेटा तिसके। सव करनेको समर्थ तिसके। वडे वलवान॥ अथवा इसका दूसराअ र्थ तित्तिरेमें कहा॥ हे आज्य तुरूको प्राण देवताकी प्रीतिके अर्थइ सपात्र मे लेताहूं। मनकी प्रीतिके अर्थ ग्रहण करताहूं। जठराग्निदे वताकी प्रीतिके अर्थ तुरूकोगृहण करताहूं। शक्तिमान पुरुषतिस के शक्ति स्वरूपाभिमानी देवताकी प्रीतिके अर्थ तुम्को गृहण करता हूं। शक्तिमान पुरुषमें जोसारहै तिस साराभिमानी देवताकीप्रीति के अर्थ तुम्को ग्रहण करताहूं ॥१॥ अनाधृष्टमित्याज्यदेवतं य जुः का॰ ८॰१॰२४–२६ यहतानूनप्त्र आज्यहै॰ तिसतानूनप्त्रआज्य

† आ–या॥ अ॰॥ अ–धा॥ इ॰॥

की वेदी के दक्षिण श्रोणीपर रखि के ऋत्विज यजमान अनाधृष्ट॰
मंत्र पढि स्पर्श करें। जिनोंनें साथ तानूनप्त्र आज्य का स्पर्श किया
सो तानूनप्त्र तिनोंके साथ द्रोहन करे॥ अर्थः॥ हे आज्य तू ऐसा है। कैसा-
कि- किसीने भी तिरस्कार नहीं किया न तिरस्कार कियाजावे किसी
से। अग्न्यादिक देवताओं का ओज, सारभूत। नहीं है निन्दा जिसकी
सो। ऋत्विजों को निन्दन (आपस के विरोध) से रक्षा करता है। अ
निन्दित स्वर्गादिकोंको पहुंचाताहै। जोकि तू ऐसा है इसलिये हे ता
नूनप्त्र आज्य हम ऋत्विज मनसा की कुटिलता छोडिकर सत्य
आज्य स्पर्शरूपी शपथ करतेहैं। किंच हे आज्य शोभन मार्गे य
ज्ञकर्म्म में हम को तू स्थापन कर॥ ५॥

अग्ने व्रतपाः॥ अग्ने॑ व्रतपा॒ स्त्वे व्र॑तपा॒ या त॒व॑ त॒नूरि॒
यꣳ सा मयि॒ यो मम॑ त॒नूरे॒षा सा त्वयि॑॥ स॒ह नौ॑ व्रतपते
व्र॒ता॑न्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒र्म्म॑न्य॑तामनु॒ तप॒स्तप॑
स्पतिः॥ ६॥

आग्नेयं यजुः का॰ ८. २. ४. इससे आहवनीय में समिध डाले॥
यजमान इस यजुः से अग्नि के शरीर और अपने शरीर को एक
करे॥ अर्थः॥ हे व्रतपा (सम्पूर्ण व्रतोंके पालन करने वाले अग्ने)
तू हमारे वर्त्तमान व्रतका पालक हो। तुम्हारे जैसे व्रत पालक का जो श
रीर है सो यह शरीर मेरा हो। और जो यह मेरा शरीर सो यह तेरा होवै॥
तैसेही हे व्रतपते व्रतके पालक अग्ने अनुष्ठान किये हुए कर्म्म॰
नौ (हमारे तेरे) एक हैं। जितना व्रतोंमें गुरुको आदर इतनाही तुम्

को भी हो। किंच दीक्षा का पति सोम मुझे दीक्षा को आज्ञा देवै। तथा उपसद्रूप तप का पति सोम तप की मुझको आज्ञा दे ॥६॥

अꣳशुरꣳशुष्टे॥ देव सोमाप्प्यायतामिन्द्रायैकधनविदे॥ आतुब्भ्यमिन्द्रःप्प्यायतामात्वमिन्द्राय प्प्यायस्व॥ आप्प्यायया स्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय॥ एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिब्भ्यो नमो द्यावापृथिवीब्भ्याम्॥७॥

चतुरवसाना प्रकृति सौम्यम् अंत्योर्द्धर्चो लिङ्गोक्त देव०का०८.२.६. ब्रह्मा. उद्गाता. होता. अध्वर्यु. आग्नीध्र. यजमान. सोम को आलंभन करें॥ अर्थः॥ हे सोमदेव तेरे अंशु अंशु (सम्पूर्ण अवयव) इन्द्र की प्रीति के अर्थ बढें। पुराने सोम के जो अवयव म्लान और शुष्क होंगे वो इससे बढते हैं इति तित्तिरिः॥ कैसे इन्द्र के अर्थ कि एक मुख्य धन सोम रूप को प्राप्त होता है। अथवा दूसरा अर्थ सोम कंडन के अर्थ जिनसे जल लाते हैं ते घडे एकधनाः (एक धन सोम रूप जिनमे यह जानता है। अर्थात् सोम कंडन के अर्थ जल के घडे आये। किंच हे सोम तेरे पान के अर्थ इन्द्र बढो। हे सोम तूभी इन्द्र के पान के अर्थ अच्छे प्रकार वृद्धि को प्राप्त हो। किंच हे सोम प्यारे हम ऋत्विजों को सन्या (धन के दान) और मेधया (अर्थ की धारणा शक्ति) से बढा। किंच हे सोमदेव तेरा कल्याण हूजियो। तेरे प्रसाद से हम सोमाभिषव क्रिया समाप्त दिन को पहुंचें॥ का०८.२.७. सब ऋत्विज प्रस्तर के ऊपर दोनो हाथों को ऊंचा करके अथवा दहिने हाथ को ऊपर रख

कर सोम न गिरै ऐसीपरिचर्याकरें॥ अर्थः॥ सोम तेरे प्रसादसेह मारे धनहूजियो अथवा दक्षिणा सव औ डीसेहूजियो किसलिये कि प्रेषे भगाय(तिस प्रेष्यमान ऐश्वर्यके अर्थ। अथवा अन्न और ऐश्वर्यके अर्थ। किंच आग्नि होत्रियोंको अवश्य होंनहार फला पेत कर्म्म संपादन कर। अथवा हम ऋतवादियोंको कर्म्मका फलहो। द्यावा पृथिवी तिनके अभिमानी देवतों को नमस्कार है। तिनके अनुग्रहसे यजमानके अर्थ निर्विघ्नताकी स्थित होती है इस हेतु नमस्कार करते हैं॥७॥

याते ऽअग्नेयः शयातनूर्वर्षिष्ठा गव्हरेष्ठा॥ उग्रम्वचो ऽअपावधीत्वेषम्वचोऽअपावधीत्स्वाहा॥ याते ऽअग्ने रजः शयातनूर्वर्षिष्ठागह्वरेष्ठा॥ उग्रंवचो ऽअपावधीत्वेषम्वचोऽअपावधीत्स्वाहा॥ याते ऽअग्नेहरि शयातनूर्वर्षिष्ठा गव्हरेष्ठा॥ उग्रम्वचोऽअपावधीत्वेषचोऽअपाबधीत्स्वाहा॥८॥ या-हा॥अ०॥या-हा॥इ०॥या-हा॥उ०॥

अग्नेयानित्रीणि यजुः ऋषि का०८॰२॰३५॰स्रुवाकरिउपसदसंज्ञकहोमकरै॥ अर्थः॥ यहांकथाहे † देवताओंसे हारिकर असुरोंने तप- † श॰३॰४॰४॰३॰।
तपकैं तीन्यों लोकों में तीनि पुर बनाये लोहेका पृथिवी में चांदीका अन्तरिक्षमैं सोनेका दिविमैं। तव देवताओंने तिनके जलाने को उपसद नामा अग्निकी आराधनाकी फिर उपसद्देवतारूपी अग्निनें जव तिन पुरों में प्रवेश करिकैं तिनको जलाया तव तीन्यों पुर अग्निके शरीर हुए। सो अभिप्राय इसमन्त्र मैं है॥ मन्त्रार्थस्तु॥

हे अग्ने जो तेरी लोहमयी देही देवताओं को अति प्रायकरिकै अभिमत फल की वरसने वाली। तथा असुरों के विषम देशमें ठैरी है तिस तेरी देही ने काट फांस इत्यादिक असुरों का कहा तीव्र वचन विनाश किया। तैसे ही असुरों का कहा त्वेषं वचः (देवाधिक्षेपरूपी प्रदीप्त वचन) विनाश किया। स्वाहा (तैसे ही उपकार के लिये तुम्ह अग्नि के अर्थ हवि दिया॥१॥ उग्रवचन और त्वेष वचन का दूसरा अर्थ करते हैं। जैसे असुरों से हारे देवताओं ने न पाने अन्न और जल के भूष प्यास से हम दुषी यह कहा सो उग्रवचः तैसे ही किंवा वीरहत्यादिक महा पातक हमने किया यह क्लेश पाय जो कहा सो तीव्रं वचः॥ तदाह तित्तिरिः। अशनाया पिपासे ह वा ऽ उग्रं वच एनश्च वैवीरहत्यं च त्वेषं वच इति।का॰०८॰२॰३८॰ याते ऽ अग्ने रजः शया से दूसरे और याते ऽ अग्ने हरिः शया से तीसरे दिन आहुति दे॥ अर्थः॥ रजः शया चांदी की देही।२। हरिः शया सोंनेमयी ३ और अर्थ पहिले के समान॥८॥ इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः॥२॥

अ॰३ तप्तायनी मेसि वित्तायनी मेस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्॥ विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि यो ऽस्याम्पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्याम्पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्याम्पृथिव्या

मसि यत्ते नाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे ॥ अनु त्वा देववीतये ॥ २९ ॥ †

इस कंडिकामें चोदह १४ यजुषि हैं तप्तायनी· वितायनी· दोंनों दै-त्रि॰ अवतान्· अवतान्· दोंनों दै-ज॰ चारों का पृथिवी देवता का॰ ५·३· २०-२५· उत्तर वेदी करनेको जो पृथिवीका प्रदेश खोदते हैं उसे चात्वाल कहते हैं तिसके निर्माण करनेको उत्तराग्र शम्या रखिकर तिसकी वरावर उसके पूर्व में स्फ्यले रेखा करै फिरि तिसके पूर्व में तैसे ही रखि रेखा करै ऐसे ही दक्षिण उत्तर में। तप्तायनी· इत्यादि प्रति मंत्र करि प्रति-दिशामें रेखा करै ॥ मंत्रार्थस्तु ॥ हे पृथिवी तू मेरे अनुग्रह के अर्थ तप्तायनी है। अर्थात् जो दारिद्रीकि क्षेत्र रहित में ऐसे दुख करत पै है तिस ताप की शांति के अर्थ प्राप्त होती है। अथवा तप्त होने पर मनुष्य जिसको प्राप्त होता है सो तप्तायनी मेरे लिये है ॥ १ ॥ वित्त के अर्थ मनुष्य जिसको प्राप्त होता है। अथवा वित्त के अर्थ निर्धन पुरुष प्रति प्राप्त होती है। कारण यह कि पृथिवी में प्राप्त हुए पर खेती द्वारा वहुत धन मिलता है ॥ २ ॥ हे पृथिवी मागने से मुझको तू रक्षा कर ॥ जैसे किसी सैन मागों तैसा मुझको कर ॥ ३ ॥ भय और स्थानभ्रंश से मुझे रक्षा कर ॥ ४ ॥ का॰ ५·३·२६· विदेदग्नि· इस मंत्र से चात्वाल की मट्टी खोदै प्रा-गा॰ अग्निर्देवता ॥ अर्थः ॥ हे चात्वालगतमृत्तिके नभनामा ते राधिष्ठाता अग्नि मेरी खोदी हुई तुझको जाने। शत॰ ३·५·१·३१· अग्नि के नामोच्चारण पूर्वक खोदै ॥ का॰ ५·३·२७· अग्ने अङ्गिरः इससे पुरीष (खोदी हुई मृदा) को हाथ वा स्फ्य करि लेवे आसु-पं॰ इस मंत्र से लेके सा

† त-सि ॥ अ॰। वि-सि। इ॰। अ-नु। उ॰। ऋ॰। वि-मा। ल्ट॰। अ-हि। आ। पो-धे। ई॰। वि-मा। ऊ॰। । अ-हि। ऋ॰। यो-धे। ल्ट॰। वि-मा। क॰। अ-हि। च॰। यो-धे। ट॰। अ-य। त॰।

तौं७ कालिङ्गोक्त देवता॥ अर्थः॥ हे अग्ने- हे अङ्गिरः (गतिवान
तू आयुनामसे इस यज्ञमें प्राप्तहो॥ कारणयह कि अधिष्ठाताके आ
नेपर अधिष्ठेयआताहै इसलिये अग्निको आनेकी प्रार्थनाकी॥ ६
का० ५·३·२८· योस्याम्- इससे उत्तर वेदीके पूर्वमें मृदाकी राशिकरै
सा- त्रि· ॥ अर्थः॥ हे अग्ने जो तू इस दृश्य मान पृथिवीमेंहै। किंच ते
राय ज्ञकेयोग्यजो अग्नि नाम प्रसिद्ध किसी याज्ञकसे नहीं तिरस्कार
कियागया तिस नामयुक्ततुरुको स्थापन करताहूं॥७॥ का० ५·३·३०-
३१ जैसे पहिले तीनि मन्त्रोंसे मृदा खोदके· लेके· प टकी· फिरिभी दो
नों मन्त्रोंसे पूर्वोक्त कर्म्म करै तहां अस्यां पदके स्थानमें द्वितीयस्यां
तृतीयस्यां· यह पाठहै॥ वि-म। खोदै॥८॥ प- हि। लेवे।९। योद्विती
यस्याम् यजुः। पटके।१०। वि-म। खोदे।११। प-हि। लेवे १२ यो तृतीय
स्याम् यजुः। पटके।१३। ॥ अर्थः॥ यद्यपि पृथिवी शब्दसे भूमिही है-
तथापि द्वितीयस्यां· तृतीयस्यां· इस विशेषणसे दूसरी पृथिवीका अ
न्तरिक्ष तीसरी पृथिवीका द्यौः अर्थकरना। और अर्थ पहिलेकेसमा
न॥८।९।१०।११।१२।१३॥ का० ५·३·३२· अनुत्वा प्रा-गा· सेजैसेकिपहि
लेतीनिपर्य्यायोंमें मृदा लेके पटकी ऐसे चौथेंभी प्रक्षेपणपर्यन्त मृदाहर
णकरै॥ इतिसूत्रार्थः॥ देवताओंकी प्रीतिको हे मृतिके तुरुको पूर्वोक्त
तीन्यो आहरण करिकैं लेताहूं।१४॥९॥

सि॒ꣳह्यसि॥ सि॒ꣳह्यसिसपत्नसा॒ही दे॒वेभ्य्यः कल्पस्वसि॒ꣳ
ह्यसि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्य्यः शुन्धस्वसि॒ꣳह्यसिसपत्न सा॒ही
दे॒वेभ्य्यः शुम्भस्व॥१०॥ †

त्रयाणां सा० -उ० वेदिर्देवता का० ५.३.३२. इससे शम्या मात्र वेदीको मृदासे सम करै॥ प्रात० ३.५.१.३२. ढूंकती हुई पृथिवी सिंहिनी हो असुरों प्रति चली. सो अभिप्राय इस मंत्र में कहिते हैं॥ मन्त्रार्थः॥ हे उत्तरवेदे जो तू सिंह समान हो शत्रुओं प्रति चलती है॥ इस हेतु देवताओंके उपकार के अर्थ उत्तरवेदि रूप करि संपन्न हो॥१॥ का० ५.३.३७. प्रोक्षण करै २ शर्करा डालै ३ सिर्ठ ही प्रति मंत्र से॥ अर्थः॥ हे उत्तर वेदे तू शुद्ध हो। और अर्थ पहिले के समान॥२॥ हे उत्तर वेदे तू सिकता के प्रक्षेप से शोभित हो। और अर्थ पूर्ववत्।३।१०। इति भाष्ये त० वाक०॥३॥

अ०४ इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्म्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहन्तप्तम्वार्वहिर्द्धा यज्ञान्निः सृजामि॥११॥ †

का० ५.४.११. अध्वर्यु वेदीके भीतर जल रखकर इन्द्रघोषस्त्वा प्रति मन्त्र करि प्रति दिशामें उत्तरवेदीका प्रोक्षण करै॥ इन्द्रघोषस्त्वा० आसु० -अ०।१। प्रचेतास्त्वा आसु० -त्रि०।२॥ मनोजवास्त्वा० सा० -उ०।३॥ विश्वकर्म्मा त्वा० आसु० -अ०।४। चारोंका उत्तर वेदी देवता॥ अर्थः॥ इंद्रघोष (विस्पष्ट कहने वाला देवता) वसुभिः, आठ संख्याक गण देवताओं से युक्त हे उत्तर वेदे तुझको पूर्व दिशा में रक्षा करै॥१॥ प्रचेता (प्रकृष्ट प्रज्ञ) वरुण, रुद्रैः (एकादश संख्याक गण देवों सहित पश्चिम दिशामें तुझको रक्षा करै॥२॥ मनका सा वेग युक्त यम देवता पितरों † सहित दक्षिण दिशा में तुझको रक्षा करै॥३॥ जगतकी

† स्वर्लोकनिवासी देवताविशेष

उत्पत्यादिक करनेवाला विश्वकर्म्मा आदित्यैः (बारह संख्या के देवग
ण सहित उत्तर दिशामें तुम्हको रक्षा कीजियो ॥ ४ ॥ एक समय असुर दे
वताओंके मारने को आये तब देवताओंकी सैनाके अधिपति इन्द्रघो
षादिकोंने चारों दिशासे तिन असुरोंको दूर किया इस हेतु इन मन्त्रोंसे
चारों दिशाकी रक्षाको प्रार्थना है- असुरा वज्रमुद्यम्य, इत्यादि तित्ति
रिमें है ॥ का० ५.४.१२. प्रोक्षणीके शेष जलको इदमहम् इस मंत्र
सेवेदी के वाहर डाले प्रा- अ० आपो दे० ॥ अर्थः ॥ असुरोंके दूर करने
को जिस जल से प्रोक्षण किया तिस जलको उग्ररूप होनेसे तप्त कह
ते हैं। इस तप्त जल (प्रोक्षणके शेष) को यज्ञ प्रदेश से वाह्य प्रदेशमें प
टकता हूं ॥ ५ ॥ ११ ॥

सिᳬह्यसि ॥ सिᳬह्यसि स्वाहा सिᳬह्यस्यादित्यवनिः स्वा
हा सिᳬह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिᳬह्यसि सुप्र
जावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिᳬह्यस्यावह देवान्यजमा
नाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥ सि- हा॥ अ० इ० ॥ उ० ॥ ऋ० ॥ ल० ॥ भू- स्वा॥ आ० ॥

१ सिᳬह्यसि दे- पं० २ या- त्रि० ॥ ३ आसु- अ० ॥ ४ सा- अ० ॥ ५ सा- उ० पां
चोंका वाग्देवता का० ५.४.१४. जो यह उत्तर वेदी का नाभि नामा
तिसके अंस (आग्नेय- ईशानकोण) श्रोणी (वायव्य नैर्ऋत्यकोण)
और तिन चारों के वीचमें जुहूसे करि पांचवार लिये आज्यसे हो
म करै ॥ इति सूत्रार्थः ॥ पहिले कभी उत्तर वेदी देवता किसी निमित्त
कर देवताओंसे भिन्न असुरोंसे अप्राप्त दोनों देवासुर सेनाओंके वी
च सिंहरूप धारण करि ठहरी ॥ तेभ्योऽपक्रम्येत्यादि तित्तिरिमें कहा।

इस अभिप्राय से सिंही कहिते हैं॥ मन्त्रार्थस्तु॥ हे उत्तरवेदी तू सिंह रूपा है तैसी तुम्हको हवि दिया॥१॥ कैसी सिंही है कि आदित्यों को प्रसन्न करनेवाली। और अर्थ पहिले के समान॥२॥ ब्राह्मणजाति और क्षत्रीजाति की प्रसन्न करनेवाली॥३॥ पुत्र पौत्रादि शोभन प्रजा का सम्पादन करने वाली सुवर्ण रजतादि धन की पुष्टि करनेवाली॥४॥ ऐसी ही यजमान के उपकार के अर्थ देवताओं को ला॥५॥ भूतेभ्यस्त्वेति दे० ह०स्रुग्दे० का० ५.४.२५. होमके अर्थ स्रुचिको ऊंची करै॥ अर्थः भूतेभ्यः अण्डज. उद्भिज. जरायज. स्वेदज. चारों प्रकार के प्राणियों की प्रीति के अर्थ हे होम विशेष आज्य युक्त जुहू तुम्हको ऊंची करताहूं ई॥भूतेभ्यस्त्वेति स्रुचमुद्गृह्णातीत्यादितित्तरिः॥१२॥

ध्रुवोसि॥ ध्रुवोसि पृथिवीन्दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षन्दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवन्दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि॥१३॥ †

१ध्रुवोसि.प्रा–गा।२–३या–पं०त्रयाणां परिधयो दे०।का० ५.४.२६.पीतदारु(देवदारु) के परिधिओं को उत्तर बेदी के मध्य देश (नाभि) पर स्थापन करै॥अर्थः॥ हे मध्यम परिधे तू स्थिर है इस हेतु पृथिवी को दृढ करि॥ हे दक्षिण परिधे तू स्थिर यज्ञ में रहता है तिस कारण अन्तरिक्ष को दृढ करि॥ विनाशरहित यज्ञ में वास करनेवाले हे उत्तरपरिधे तू तैसा ही है तिसलिये द्युलोक को दृढ करि॥ अग्नेः पुरीषमसि.दे–ज०गुग्गुलादिक संभारो दे० का० ५.४.२७.से गुग्गुल (धूपका द्रव्य) सुगन्धि तेजन (तृणविशेष) मेंढा के रोम इन्हों को नाभि में डालै॥ अर्थः॥ हे गुग्गुल प्रभृति सम्भार समूह तुम अग्नि के पूरक हो॥१३॥

† ध्रु–ह॥अ०॥ध्रु–हृ॥द्रू०॥ध्रु–ह॥उ०॥अ–सि॥त्र०

अ०५ युञ्जतेमनः॥ युञ्जतेमनऽउतयुञ्जतेधियोविप्राविप्रस्यबृहतोविपश्चितः॥विहोत्रादधेवयुनाविदेकऽइन्मही देवस्यसवितुःपरिष्टुतिःस्वाहा॥१४॥

है तिनने प्राचीनवंश शाला। और तिस में आहवनीयादि तीन्यों अग्निके इष्टकीवेदी हैं। तिस शालाके साम्ने छत्तीस ३६ पद दीर्घा सोमिकी वेदी बनावै। तिस वेदी के अग्रभागमें पूर्वोक्त उत्तर वेदी तिसके पीछे को बीचमें हविर्धान नामा मण्डप बनाके और तिसके पीछे सदोभिधान उदग्वंश शालानिर्माण करै। तिसके स्थानमें प्राचीन शालाके साम्ने दक्षिण उत्तर भाग करि हविर्धान संज्ञिक दो शकट स्थापन करै। तिन दोनों शकटों को आगें चलाय कै तिन के आवरण करने को हविर्धान नामा मण्डप बनावै। तिन दोनों शकटों को सावित्र होमके पीछे चलाना। तदाह तित्तिरिः। सावित्र्यर्चा हुत्वा हविर्धाने प्रवर्त्तयतीति॥

युञ्जतेति श्यावाश्व ऋषिर्जगतीछन्दः सविता देवता का०८·३·२८·३१ प्राचीन शालाके द्वार के समीप पूर्वसिद्ध आहवनीय वर्तै है तिसमें चारवार लिये आज्य को होमै और सो पहिले आहवनीय होनेसे उत्तर वेदी के दूसरे आहवनीय के निष्पन्न होनेतक तिसमें गार्हपत्य के कार्य करै॥ अर्थः॥ यजमान के संबंधी ऋत्विज लौकिक चिंताओं में सें मन को निकाल यज्ञचिंता मैं डालते हैं॥ और इन्द्रियों को भी यज्ञकार्य्य में प्रवेश करते हैं। कैसे यजमान के किमहतः (वेदका पढनेवाला) तथा विपश्चितः (सर्वज्ञ० अर्थका जाननेवाला। कैसे हैं ऋत्विज कि होमके करनेवाले। सो इन ऋत्विजों ने मन को एक किया। कैसा एक कि सब प्राणियों की मनकी वृत्तिका जाननेवाला॥ यों कहो कि एक को सर्व सृष्टि के

जानने की कहां सामर्थ्य है । तहां कहते हैं । जहां कि प्रेरणा करने वाले अन्तर्यामी देवता की सब वेदों में कही स्तुति वडी है । तथाचाथर्वणिका ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप इति ॥ बृहदारण्यके पिमा॰४॰२॰२४॰ का॰४॰४॰२१॰ स एव सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंचेति ॥ श्वेताश्वतरश्च । परस्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रियाचेति ॥ अथवा इस मन्त्र का दूसरा अर्थ । ऋत्विज सर्वज्ञ यज्ञ में मन बुद्धि और वाणी को लगाते हैं । कैसा है यज्ञ कि विशेष करिके फलका पूर्ण करने वाला । तथा सर्व साधन संपन्न । सातौ वषट्कर्त्ता अपने अपने कर्म्म कर्ते हैं । तिन के वीच तीन वेद का जानने वाला ब्रह्मा संज्ञक एकही है । सविता देवता की वडी स्तुति है । ब्रह्मा से आदिले ऋत्विज जो कर्म कर्ते सो सविता की प्रेरणा से हैं यह सविता की वडी स्तुति है ॥ १४ ॥

इदम्विष्णुः ॥ इदं विष्णु चक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

विष्णु देवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा का॰८॰३॰३१॰ दक्षिण शाकटसंबंधी दक्षिण चक्र (पइया) के मार्ग में हिरण्य रखकर होम करै ॥ अर्थः ॥ विष्णु त्रिविक्रम (वावन) अवतार करके इस विश्व का विभाग करि चला सो कहते हैं तीन प्रकार से चरण रखा पृथिवी में एक पद अन्तरिक्ष में दूसरे दिवि में तीसरे को इस क्रम से अग्नि॰ वायु॰ सूर्य्य॰ रूप करिके । पांसवः॰ भूम्यादि तीन्यों लोक विद्यमान हैं जिस में सो पांसुरं तिस पांसु अर्थात् इस विष्णु के पद में सम्पूर्ण विश्व अन्तर्भूत है ॥ अथ

वा दूसरा अर्थ इस विष्णु का पद अद्वैतस्वरूप अज्ञातात्मा अंशोंकरि गुप्तहै कैसे कि जैसे। पांसुरे-इव लुप्तोपमानम् रजस्वल-रजमय प्रदेश विषें निहित जैसे नहीजाना जाता तद्वत्॥ तदुक्तं अध्या०६।५ तद्विष्णो रित्यादि०॥ स्वाहा तस्मै विष्णवे हविर्दत्तम्॥१५॥

इरावती धेनुमती॥ इरावती धेनुमती हि भूतᳪ सूयवसिनी मनवे दशस्या॥ व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्त्थ पृथिवी मभितो मयूखैः स्वाहा॥१६॥

वैष्णवी त्रिष्टुब्वसिष्ठदृष्टा का०८।३।३५ जैसे दक्षिण चक्र मार्ग में अध्वर्यु ने होम किया तैसे उत्तर शकट के उत्तर चक्र मार्ग में प्रतिप्रस्थाता होम करे॥ अर्थः॥ हे द्यावा पृथिवी औ तुम ऐसी हो। कैसी हो कि अन्नवती वा सत्यवती। बहुत धेनयुक्त। अभ्यवहार वस्तुयुक्त। तथा यजमानके अर्थ यज्ञ के साधनोंको देने वाली। ऐसे द्यावा पृथिवी से प्रार्थनाकरि विष्णु प्रति कहता है। हे विष्णो इन द्यावा पृथिवियोंको तुमने विभागकरि थांभा है। किंच पृथिवी को अपने तेज रूप अनेक जीवों वा वराहादि अवतारों करि धारण कियाहै स्वाहा तस्मै विष्णवे हविर्दत्तम्॥ १६॥

देवश्रुतौ देवेषु॥ देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीः ऊर्ध्वं यज्ञन्नयतम्मा जिह्वरतम्॥ स्वङ्गोष्ठमावदतन्देवी दुर्य्ये आयुर्म्मा निर्वादिष्टम्प्रजाम्मा निर्वादिष्टमत्र रमेथाम्वर्ष्मन्पृथिव्याः॥ १७॥+

देवश्रुतौ १ या जुषी पङ्क्ति अक्षधुरौ देवते का०८।३।३२ प्रतिप्रस्थाता से लाई पत्नी होम के शेष घृत से अक्षके दोनों अग्र भागों को

+ दे-मू।अ।श्रा-म्।इ०।स्व-मू।ऊ।अ-व्याः।त्र०॥१७॥

आंजे(आंगे)॥ अर्थः॥ हे अक्षधुरो (अर्थात् देवताओं की सभामेंसु ने प्रसिद्ध अक्षके दोनों अग्रभाग) तुम यजमान यह पूजा करताहै देवताओंमें ऊंची ध्वनि करिकै कहो॥१॥ प्राची प्रेत॰ २ सं गोष्ठ॰ द्वे यजुषि ३ अत्र रमेथाम्॰ याजुषीयं॰ ४ तीनों का हविर्धान दे॰ का॰ ८॰४॰३॰ दोनो हविर्धान शकट जव चलें तव यजमान २ पढे॥ अर्थः॥ हे दोंनो शकट तुम सामने कोशीघ्र चलो। कैसेहो तुम किइस कर्मके कराने को समर्थ किंच इस यज्ञको देवताओं प्रति प्राप्ति कराने वाले। नहीं कुटिल होनेवाले॥२॥ का॰ ८॰४॰४॰ चलते हुए शकटों के अक्षकी धुनि करते यजमान ३ पढे॥ अर्थः॥ हे देवी दुर्येघर सदृशदोंनो शाकट देवते अपने गोस्थान को कहो। जो यह अक्ष का शब्द है तिससे यजमान के घर में वहुत सीगोओंको जैसे स्थान हो तैसे कहो क्योंकि तुमारे उच्चारणसे तैसाही होगा। किंच आयुर्मोनिर्वादिष्टं॰ यजमान की जितनी आयु है तितनी सव मतदूरि करो। अथवा पशुधन रहित मत उच्चारणकरो। यजमानकी पुत्र पौत्रादिरूप प्रजाका दूरीकरण मत करो। अर्थात् इस अक्षके शब्दसे आयु और प्रजा का निराकरण मत हो॥३॥ उभय वद्धजो अक्ष है सो दुष्ट वोलनेसे वरुण देव रूप है॰ शत॰ ३॰५॰३॰१८॰॥ तिस हेतु शाप रूप दुर्वाक्य के परिहार केलिये आशीर्वाद रूप सुवाक्य की इस मंत्र से प्रार्थना करते हैं॥ ॥का॰ ८॰४॰५॰ उत्तर वेदीकीतीन्योंपरिक्रमा हुए पीछे वेदी के निकट दोंनों शाकटों को स्थापनकरि ४ से अभिमंत्रित करै॥ अर्थः॥ हे दोंनो शकट पृथिवी के शरीर

भूत इस देव यजन में तुम रमण करो ॥४॥ ॥देव यजन को पृथिवी का शरीरत्व तित्तिरि में कहा है॰ वर्ष्मह्येतत्पृथिव्याय द्देवयजनमिति ॥१७॥

विष्णोर्नुकं ॥ कम्वीर्य्याणिप्रवोचंयः पार्थिवानिविममेरजांꣳसि ॥ योऽअस्कभायदुत्तरꣳसधस्थंम्विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो॥विष्णवेत्वा ॥१८॥ वि-यः। अ॰वि-त्वा।द्र॰॥

तिस्रो ३ वैष्णव्यस्त्रिष्टुभः। प्रथमा॰ द्वितीया॰ विष्णवेत्वा यजुः १८॰१९ विष्णोर्नु १८ प्रतत् २० द्वे उतथ्यपुत्रो दीर्घतमा दृष्टा का॰८॰४॰६॰ अध्वर्यु दक्षिण शकट के अग्र को काष्ट के खंभ पर खड़ा करै ॥ अर्थः॥ नुकं यह अव्यय है अवधारण के अर्थ। विष्णु के ऐसे कर्म्मों को हम कहैं कैसे कर्म्मों को सो कहते हैं। कि जिस विष्णु ने पृथिवी अन्तरिक्ष द्यूलोक स्थानो को गिना। अथवा जिसने पृथिवी के परमाणों को गिना। और जिस विष्णु ने देवताओं के रहने के स्थान द्यूलोक रूप को जैसे नीचे न गिरे तैसे थांभा। कैसा विष्णु है कि तीन प्रकार करि तीन्यो लोक मै अग्नि॰ वायु॰ सूर्य्य रूप करि तीन्यो पद धारण किये। तैसे ऊंचा गमन है जिसका वा महात्माओं करि गाया गया का॰ ८॰४॰७॰ विष्णवेत्वा इससे शकट के बांधने के अर्थ खंभ को अग्नि कोण में गाडै ॥ अर्थः॥ हे स्थूण काष्ट (काठ के थून) हविर्द्धान शकटाभिमानी विष्णु की प्रीति के अर्थ तुझको गाडता हूं ॥१८॥

दिवोवा ॥ विष्णऽउतवापृथिव्या महोवाविष्णऽउरोरन्तरिक्षात् ॥ उभाहिहस्ताव्वसुनापृणस्वाप्प्रयच्छदक्षिणा

दोतसव्याद्विष्णो वेत्वा ॥१९॥ दि–त। अ०वि–त्वा। इ०।
का० ८.४.८.९ जैसे अध्वर्य्यु ने दक्षिण शकट को मन्त्र से खडा करि विष्ण वेत्वा इससे खंभ गाडा ऐसे ही प्रतिप्रस्थाता उत्तर शकट प्रति करै॥ अर्थः॥ हे विष्णो द्यूलोक और पृथिवी और बडे विस्तीर्ण अन्तरिक्ष लोक से लाये द्रव्य से अपने दोनो हाथों को पूर्ण करि। फिर धन से पूर्ण दाहिने और वांये हाथसे मणि मुक्ता दि धन हम को दे॥ विष्णावेत्वा इस का अर्थ पहिले के समान ॥१९॥

प्रतत् ॥ प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगोनभीमः कुचरो गिरिष्ठाः॥ यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२०॥

का० ८.४.१३. मध्यम छदी का स्पर्श करण पढे॥ अर्थः॥ सो प्रसिद्ध विष्णु असाधारण वीर कर्म्म करि स्तुति करिये है। कैसा विष्णु है मृगः शोधन करने वाला न पाद पूरण के अर्थ भीमः विभेदन करने वाला। कुचरः पृथिवी में मत्स्यादि रूप करि चलने वाला। गिरिष्ठा वेद वाणी वा देही में ठहरने वाला। अथवा न इव के अर्थ मे। पर्वत पै स्थित कुचलनी प्राणियों के वध से जीवे भयंकर ऐसा सिंह सो जैसे वीर्य्य करि स्तुति करिये है तैसा। सो कोन कि विष्णु यह कहते हैं। कि जिस विष्णु के उत्पन्न हुए तीन्यो पाद प्रक्षेपण स्थानों (लोकों) में सब प्राणी मात्र वास कर्ते हैं। सो स्तुति करिये है ॥२०॥

विष्णो रराटमृ॥ विष्णो ररराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णो र्ध्रुवोसि ॥ वैष्णवमसि विष्णो वेत्वा॥ २१॥ †

† वि–सि। अ०। वि–स्य:। इ०। वि–सि। उ०। त्र०। वै–त्वा। त्र०।

विष्णो रराटम्० या–उ० पांचो मन्त्रों का विष्णु देवता० का० ८.४.१४ रराट(ललाट) का स्पर्श करि पढै। हविर्द्धान नामा दोनों शकटोंको दक्षिण उत्तर में स्थापन करिकै तिन के आवरण करि ऊपर को हविर्द्धान नामा मंडप वनावै और तिस मंडपको विष्णु देवता कहोने से विष्णु कहते हैं। और मूर्तिधारी विष्णु के सव अवयवों के सद्भाव से ललाट संज्ञक अवयव है तैसे हविर्द्धान मंडप के भी पूर्व द्वार प्रति दोनों खंभोंके वीच कोई दर्भोंकी माला गुंधती है। तिस माला वा तिसके वंधन के आधार तिरछे वांस को संवोधन दे पुरुष के ललाटत्व करि उपचरण करते हैं॥ अर्थः॥ हे दर्भ मय माला के आधार वंश तू मूर्तित्व करि उपचरण किये विष्णु(हविर्द्धान मंडप) का ललाटस्थानीय है॥१॥ विष्णोः श्नप्त्रेस्थः० तीन्यों का दैवी पंक्ति का० ८.४.१६ विष्णोः श्नप्त्रेस्थ इससे उच्छ्राईयों(रराटियों के प्रांत) को स्पर्श करि पढै अर्थः॥ हे रराटी के प्रांतौ तुम विष्णु नामा हविर्द्धान मंडप के ओष्ठ (होंठ) संधि रूपी हो॥२॥ का० ८.४.१८ विष्णोः स्यूरसि से लस्यूजनी (काठकी सुई) में रस्सी डालि द्वार शाखा को सींवै॥ अर्थः॥ हे लस्यूजनी तू विष्णु(हविर्द्धान) की सुई है॥३॥ का० ८.४.१९ विष्णोर्ध्रुवोसि इससे गांठि लगावै॥ अर्थः॥ हे रस्सी की गांठि तू विष्णु हविर्द्धान की ग्रंथि है॥४॥ वैष्णवमसि याजुषी वृहती– का० ८.४.२१ पूर्व को अगाडी करि वांसों का मंडप वनाइ इस मन्त्र से स्पर्श करै॥ अर्थः॥ हे हविर्द्धान तू विष्णु देवता क होने से तिसका संवंधी है। तिसहेतु से विष्णु की प्रीति के अर्थ तुझे स्पर्श कर्त्ता हूं॥५॥ २१॥

अथउपरवमन्त्राः

अ॰६ देवस्यत्वा॥ सवितुः प्रसवेश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्॥ आददेनार्यसीदमहंरक्षसाङ्ग्रीवा अपिकृन्तामि॥ बृहन्नसिबृहद्रवाबृहतीमिन्द्रायवाचंम्वद॥ २२॥ †

यहांसेले देवस्यत्वा क॰ २६ पहिले उपरव के मन्त्र हैं॥ का॰ ८.४.२५ ५.१. जैसे यूपके लिये अवट करते हैं तैसे यहां भी उपरव संज्ञिक चारि गर्तों को अभ्रिलेंने से आदिले परिलेखन पूर्वक करैं। अवट के अर्थ अभ्रिका स्वीकार कहते हैं का॰ ६.२.८. देवस्यत्वा से अभ्रि (काष्ठका वना हुआ खोदने का हथियार) लेकर। देवस्यत्वा॰ प्राजु॰ आददे॰ या– गा॰ अभ्रि देवता॥ अर्थः॥ हे अभ्रे सविता देवतामें वर्तमान होकर अश्विनीकुमार के बाहुओं पूषा के हाथोंकर तुझको ग्रहण कर्ताहूं। तू खोदनेके साधनकरि कर्मके उपयोगी होने से अनुष्ठान करने वालोंकी संबंधिनी है॥ १॥ इदमहमित्यासुरी उष्णिहम्॥ रक्षोघ्नम् का॰ ६.२.८. से यूपके अवट करने को लिखे॥ अर्थः॥ जो कि मैं चारों अवटों को लिखता हूं। और इस परिलेषन से राक्षसों यज्ञघ्नोंकी ग्रीवा काटताहूं॥ २॥ बृहन्नसीत्यारभ्यवैष्णवीमित्यंतमार्षीपङ्क्ति उपरवदे॰ का॰ ८.५.७. अग्नि कोणसे ले चारोंविदिशामें चारों उपरव खोदने को भूमि लिषी तिस परिलेखन क्रमसे अवट खोदै॥ अर्थः॥ हे उपरवनामा गर्त्त तू वडाहै (अर्थात् वर्तुल गर्त्तको प्रादेश मात्र व्यासहोने और वाहु परिमाण खात होने सै वडंपन है। तैसा तू वडी ध्वनियुक्त। कारण यह कि खोदनेके समय प्रहा

† दे–मू॰ अ॰ आ–सि॰ इ॰ इ–मि॰ उ॰ बृ–मू॰ ऋ॰ इ–ना॰ ल॰ मा॰ इ॰ ऊ॰ उ–मि॰ ऋ॰

र करि पृथिवी मैं वडी ध्वनि होती है तिस हेतु सें तू इन्द्र की प्रीति के अर्थ वडी ध्वनि युक्त वाणी कहि ॥२२॥

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥२३॥

कैसी वाणी कि रक्षोहणम् (राक्षसों के वध विषयक) तथा वलगहनम् (वलगों की मारने वाली) पराजय को प्राप्त हो भागे हुए राक्षसों ने इन्द्र के वध के अर्थ अभिचार रूप करि पृथ्वी खोदि के अस्थि केश नख आदि पदार्थ कृत्या विशेष वलग बाहुमात्र में गाडे। इस हेतु उन्हों के निकालने को बाहुमात्र खोदे + तदाह तित्तिरिः॥ असुरा वै निर्यन्तो देवाना मित्यादि ०॥ तथा वैष्णवी (यज्ञ के रक्षक विष्णु की संबंधिनी) ऐसी वोली इन्द्र के अर्थ वोलि॥३॥ इदमहमिति १ आर्षी अनु० २।३।४।५ जुषि० उत्कृत्यामिति याजुषी गा० ५ पञ्च वलिङ्गानि। का० ८।५।८। जिस क्रम सें चारों गर्त्त खोदे तिस ही क्रम सें चारों गर्त्तों के खुदे मृदतृण आदिकों को निकाले॥ अर्थः॥ किसी निमित्त करि कोप में आ पुत्र वा अमात्य नें मेरे वध के लिये जो वलग डाले तिन वलगों को मैं निकालकर अन्यत्र फेंकता हूं। यह जैसे प्रतिक्ष हो तैसे निकालता हूं ॥१॥ दूसरे के मृदतृण निकाले॥ समान (यन कुल आदिकों से वरावर

+ शत० ३।५। ४।४।

असमान (छोटा वा वडा) और अर्थ पहिले के समान॥२॥ तीसरे के निकाले। सवंधुः(कुल शील आदिसे समान अर्थात् मामा फूफी के वेटे आदि) असवन्धुः तिन्हों के विपरीत अन्यत्पूर्ववत् ॥३॥ चौथेके निकाले। सजातः(समानजन्मा अर्थात् भाई) असजातः तिसके विपरीत अन्यत्पूर्ववत् ॥४॥ का०८.५.२७ चारों असाधारणमन्त्रों करि पूर्वोक्त क्रम से उत्किरणकरे पीछे। उत्कृत्यांकिरामि १ साधारण मन्त्र से चारों गर्तों की मृदादि निकाले॥ अर्थः॥ जो यह कृत्या वलग रूपा अभिचार करने वाले शत्रुओं ने संपादन की तिसको निकालकर दूर मे फेंताहूं॥५॥ २३॥

स्वराडसि॥ सपत्नहासंत्रराडस्यभिमातिहाजंनराडसिरक्षोहासर्वराडस्यमित्रहा॥२४ †

स्वराडसि १.३.४. प्राजापत्या गायत्री २ याजुषी वृहती चारों का उपरवदेवता का०८.५.२३. खनन क्रम से चारों गर्तों में यजमान के हाथका चारों मन्त्रों से स्पर्श करावे॥ अर्थः॥ पहिले के॥ हे पहिले गर्त तू आपही प्रकाशमान है इस हेतु से शत्रुओं का मारने वाला हो॥१॥ दूसरे यजमानोंमें राजमाना२ तीसरे यज्ञके विनाश करने वाले राक्षसों का घोती-३। चौथे। सर्वराट् वेरियों का मारने वाला॥२४॥

रक्षोहणोवः॥ रक्षोहणोवोवलगहनः प्रोक्षामिवैष्णवान्रक्षोहणोवोवलगहनोवनयामिवैष्णवान्रक्षोहणोवोवलगहनोवस्तृणामिवैष्णवान्रक्षोहणौवांवलगहनाऽउपदधामिवैष्णवीरक्षोहणौवांवलगहनौपर्यूहामिवैष्ण

† स-हा।अ०।स-हा।दू०ज-हा।उ०स-हा।त्र०॥

वी॒र्वै॑ष्ण॒वम॑सि वै॑ष्ण॒वा स्थ॑ ॥२५॥ †

रक्षोहणोव: १ मा–अ०२।३।५।यजु:४ आर्षी गा०६ दै–प०७ दै–बृ
सातों का विष्णु देवता का०८।५।२२।२३। अध्वर्यु जल करि एक हा
थसे उपरवों का मार्जन करै॥ अर्थ:॥ प्रोक्षण का मंत्र। विष्णु देवता
क गर्त्तो तुमको प्रोक्षण कर्ताहूं कैसे हो कि राक्षसों के मारनेवाले वलग
हन–अभिचार के साधन के मारनेवाले॥१॥ का०८।५।२४। गर्तो में
प्रोक्षण के शेष जल का सींचना (अवनयन) दर्भों से आच्छादन क
रना (संस्तरण) सो दोनों मंत्रों से करै॥ अर्थ:॥ अवनयामि–सींच
ताहूं। और अर्थ पहिले के समान॥२॥ अवस्तृणामि, दर्भों से आच्छा
दन कर्ताहूं। अन्यत् पूर्व वत्॥३॥ का०८।५।२५। जिन फलकों के
ऊपर सोम निचोडते हैं सो दोनों अधिषवण फलका तिन दोनों के
वीच दो अंगुल का वीच दे अरत्नी प्रमाण संतृण्ण कुछ वंधन सहि
त चारों गर्त्तो के ऊपर स्थापन करै तिन्हों के ऊपर मृदा लगावे॥ अ
र्थ:॥ उपधान का मंत्र। जो दोनो अधिषवण फलक विशेष राक्षसों
के नाश करनेवाले कृत्या के विनाश करनेवाले वैष्णव तिन दोनों
को चारों गर्तो पर (अर्थात् दो गर्तो पर एक–दो गर्तो पर एक स्थाप
न करताहूं॥४॥ अथ पर्य्यूहण मन्त्र:॥ मृदा करि ऊपरसे आच्छा
दन करताहूं। अन्यत्पूर्ववत्॥५॥ का०८।५।२६। जिस चर्म में सोम
टपकाते हैं सो अधिषवण। अग्रभाग छिन्न लोहित वर्ण तिन
फलकों के ऊपर स्थापन करै॥ अर्थ:॥ हे चर्म तू वैष्णव (यज्ञके
रक्षक विष्णु का संवंधी है॥६॥ का०८।५।२७। तिस चर्म में सोम

† र–नृ।अ०इ०उ०र–वी।ऋ०लृ०वे–सि।आ०वे–स्था।ई०

के अभिषवण के हेतु पांच ५ पाषाणों को स्थापन करै॥ अर्थः॥ हे ग्रावाणो तुम यज्ञरक्षक विष्णु संबंधी हो॥७॥२५॥ इत्यौपरवाणिसमाप्ता

अथौदुम्बरीमंत्राः

अ०७ देवस्यत्वा॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णोहस्ताभ्याम्॥ आददेनार्यसीदमहꣳरक्षसाङ्ग्रीवा ऽअपिकृन्तामि॥ यवोसियवयास्मद्द्वेषोयवयारातीर्दिवेत्वान्तरिक्षायत्वापृथिव्यैत्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि॥२६॥†

यहां से औदुंबरी के मंत्र का०८·५·३१-३३· उदंबर (गूलर) के वृक्ष से उत्पन्न हुई किसी शाखा को यजमान की देहीकी बराबर सदना मा मंडफ के वीच गाडै और तिस शाखा गाडने से पहिले· यूपवत् भूमिमे पडे रहने पर यूपके अवट खोदने के अभ्रि स्वीकार सै लेद र्भौ के उपस्तरण पर्यंत पदार्थों को मंत्रों सें करै॥ यूपके अवट प्रदेश में का०६·२·८· देवस्यत्वा से अभ्रिलेकर। मंत्रकी व्याख्याकी। का०६·२·८· इदमह से यूपके अवट करने को लिखे इसकी भी व्याख्या की॥१॥२॥ यवोसि· आसुरी उष्णिग् यव दे० का०६·२·१५· से पात्रमें भरे जलमें यव (जौ) डाल कर॥ अर्थः॥ हे धान्य विशेष तू यव है जिस कारण द्वेश करने वाले शत्रुओं वा दुर्भाग्य को हम से प्रथक करि और तैसे ही निर्धनता को दूर कर॥ इससे सौभाग्य और धन की प्रार्थना करते है॥२॥ दिवेत्वेति या·-ज· औदुंबरी दे० का०६·२·१५-१६· यवों के जलसे अग्र मध्य मूल को दिवे

†दे-मृ।अ०।आ-ब्रि।इ०।द्-मि।उ०।य-ती।।त्र०।दि-त्वा।त्व०।शु-नाः।आ०पि-सि।२६॥

त्वादि प्रति मंत्र करि प्रोक्षण करै॥ दिवेत्वा प्रोक्षामि १॰ हे औदुंब
री के अग्रभाग द्यूलोक की प्रीति के अर्थ तुम्हे प्रोक्षण करता हूं॥
अन्तरिक्षाय त्वा प्रोक्षामि २॰ हे मध्यभाग अन्तरिक्ष की प्रीति–हूं।
पृथिव्यैत्वा प्रोक्षामि २॰ हे मूलभाग पृथिवी की–हूं॥३॥ शुन्धन्ता
म्॰ या–पं॰॥४॥ पितृषदनम् देवीज॰ द्वे पित्र्ये। का॰ ६॰ २॰ १७॰ शुंधं
ताम् से प्रोक्षण के शेष जल को अवट में सींचै॥ अर्थः॥ जिन लोकों
में पितर निवास करते हैं ते लोक इस जल के सींचने से शुद्ध हों॥५॥
का॰ ६॰ २॰ १८॰ तिस अवट मे पितृषदनम् से प्रागग्र उत्तराग्र दर्भा रें
डालै॥ अर्थः॥ हे बर्हि॰ तू पितरों के बैठने की जगह है॥६॥ २६॥

उद्दिवम्॥ उद्दिवᳬं स्तभानान्तरिक्षम्पृणदृᳬंहस्व पृथि-
व्यान्द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्म्म
णा॥ ब्रह्मवनित्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि॥ ब्र
ह्मदृᳬंह क्षत्रं दृᳬंहायुर्दृᳬंह प्रजां दृᳬंह॥२७॥ +

पांच मंत्रो का औदुंबरी दे॰ उद्दिवं यजुः का॰ ८॰ ५॰ ३४॰ औदुंबरी को ख
डा करै॥ अर्थः॥ हे औदुंबरी तू द्यूलोक को थांभि अन्तरिक्ष को पूर्ण
करि। पृथिवी में दृढ हो अथवा पृथिवी को दृढ करि॥१॥ द्युतानस्त्वेति
आर्षी॰–उ॰ का॰ ८॰ ५॰ ३५॰ शाखा को गर्त्त में डालै॥ अर्थः॥ हे औ
दुंबरि दीप्यमान वायु स्थिर धारण करि तुम्हे गर्त में डालियो। तथा
मित्र वरुण–देवते स्थिर धारण करि तुम्हे गर्त में डालियो॥२॥ ब्रह्मव
नित्वा यजुः का॰ ८॰ ५॰ ३६॰ पर्यूहण से ले उपसेचन पर्यन्त जैसे यूप
के करते हैं तैसे यहां भी करिकै। तहां यूपस्थान में का॰ ६॰ ३॰ १०॰

+ उ–मा॰ अ॰। द्यु–णा। दृ॰। ब्र–मि। उ॰। ब्र–ह। त्र॰

ब्रह्मवनित्वा सैं मृदा करि पर्यूहण करै। ॥ अर्थः॥ हे औदुंबरी तेरे फे रमें मृदा पटकता हूं कैसी है तू कि ब्राह्मण जाति को भजती क्षत्री जा तिको भजती धन की पुष्टि को भजती॥३॥ ब्रह्मदृंहं आसुरी गा॰ का॰ ६॰३॰११॰ अध्वर्यु तिस मृदा से पूरित गर्त्त को मैत्रा वरुण दंड क रि तीनि वार कूट कै मृदा को अवट के भीतर प्रवेश करै॥ अर्थः॥ हे औदुंबरी ब्राह्मण जाति क्षत्री जाति की आयु और प्रजा को दृढ करि॥२७॥ १ माध्यं॰सं॰ अ॰ ६ कां॰ ३ इ॰५

ध्रुवासि॥ ध्रुवोयं यजमानोस्मिन्नाय तने प्रजया पशुभिर्भू यात्॥ घृतेनद्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसिविश्व जनस्य छाया॥२८॥ ध्रु-त्। अ॰। घृ-म्। ई॰। इ-या। उ॰।

ध्रुवासीति यजुः का॰ ८॰५॰२६॰ औदुम्बरी का आलम्भन करि पढै॥ अर्थः॥ हे औदुम्बरी तू स्थिर है ऐसे ही यह यजमान इस अपने घरमें पुत्रादि प्रजा और गवादि पशुओं करि स्थिर हूजियो॥१॥ घृतेनेतिया नि॰ द्यावापृथिवी दे॰ का॰ ८॰५॰३० औदुम्बरी शाखा के विशाखा- नाम प्रदेश में अध्वर्यु स्रुवा करि होम करै॥ अर्थः॥ इस होम किये- घृत से द्यावा पृथिवी पूरित हूजियो॥२॥ इन्द्रस्येति सा-उ॰ इन्द्रो दे॰ का॰ ८॰६॰१॰ औदुम्बरी गाडने के पीछे सद नामा मंडप निर्माण करि तिस के ऊपर आवरण के अर्थ मध्य में छदि (तृणनिर्मित कट) आ रोपण करै॥ अर्थः॥ हे तृणमय कट तू इन्द्र का छदि है इस कारण सद के मध्यवर्त्ति सर्वजन-यजमान ऋत्विज प्रभृति का छाया हो॥ स द को इन्द्र देवता क होंने से तिस की छदि को इन्द्र संबंधित्व है॥२८॥

परित्वा॥ गिर्वणोगिर॰ इमाभवन्तु विश्वतः॥ वृद्धायुम

नुवृद्धयोजुष्टाभवन्तुजुष्टयः ॥२९॥

ऐन्द्री॰ अनुष्टुबनिरुक्ता॰ मधुछन्दोदृष्टा॰ का॰८॰६॰१२॰ ऊपर सेआ छादन करिके ॥ अर्थः॥ गीर्भीः॰ अर्थात् स्तुतियों करिभजनीय सदोभि मानी देवता इन्द्र॥ हेगिर्वण इन्द्र स्तोत्र शस्त्ररूपा गिरा तुम्हें सवओडी से कररूप करि गृहण कीजियो। कैसे तुम्हकोकि वृद्धायुम्॰ वहुत हैं यजमानादिक मनुष्य वा मरुत जिसके तिसको। अथवा महामनुष्य को। कैसीहे गिरा कि अनुवृद्धयः सवन के क्रमसे वृद्धि हैं जिसकी सो अर्थात् धीरेसे प्रातः सवन॰ तिससे ऊंची माध्यन्दिन सवन॰ तिससे ऊंची तृतीय सवन॰ में। किंच हमारी सेवा तेरी प्यारी हूजियो ॥२९॥

इन्द्रस्यस्यूः॥ इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोसि॥ ऐन्द्रमसिवैश्व देवमसि॥३०॥

इन्द्रस्येतिद्वे या—गा॰१॰२॰ ऐन्द्रमसीति दे—वृ॰३॰ ऐन्द्राणि त्रीणि का॰८॰६॰१२॰ तीनों इन्द्र देवता क मन्त्रोंसेपरिषीवण१ ग्रन्थि२ अभिमर्शन३ क्रम पूर्वककरे॥ अर्थः॥ हे रज्जो तू इन्द्र सदोभि मानी देवता कीसंबंधिनी सींवने की वस्तुहे ॥१॥ हे ग्रन्थि तू इन्द्र संबंधिनी होके स्थिर हे ॥२॥ हेसद तू इन्द्र संबंधी हे ॥३॥ वैश्वदेवम सि॰या—गा॰विश्वेदेवादे॰का॰ ८॰६॰१३॰१४॰ हविर्धान मंडपके वायव्य कोणके उत्तर भागमें किंचित् आग्नीध्रनामा अग्निस्था पन करिके तिसका स्पर्श करे॥ अर्थः॥ हे आग्नीध्र तू सर्व देवसं बंधीहे ॥४॥३०॥ इतिभाष्ये सप्तमोनुवाकः ॥७॥

अथषोडशधिष्ण्यमंत्राः

अ०८ बिभूरसि॥ प्रवाहणो वन्हिरसि हव्यवाहनः॥श्वात्रोसिप्र चेतास्तुथोसिविश्ववेदा उशिगसि॥३१॥+

यहांसे ऊपर षोडश धिष्ण्यो केमंत्र॥तदाह कात्यायनः ८·६·२५·धिष्ण्या ओं अर्थात् अग्नीध्रादिकोंके बैठने की मृदासे बनाई हुई छोटी वेदियों को उदङ्मुख बैठ अध्वर्यु विभूरसिप्रति मंत्रसे पुरीषकरि संभाले॥ विभूरसीति अष्ट यजुषां धिष्ण्या अग्नयो देवताः॥ विभूरसीतिप्रा–गा० का० ८·६·२६· प्रथम आग्नीध्रकी वेदी को संभाले॥ अर्थः॥विभू· शब्द· प्रवाहण·शब्द· दोनों आग्नीध्रीय धिष्ण्या के नामहैं।शत· ३·६·२·४· हे–आग्नीध्रीय धिष्ण्य तू विभू और प्रवाहणहै॥अनेक प्रकार होने औरइसी धिष्ण्यसे और औरधिष्ण्याओं में अग्नि विहरणके कारण इसकोविभुत्वहै।तिस के दक्षिण उत्तर में ऋत्विजोंके चलने अथवा हविके प्रवाहणसे प्रवाहणत्व है॥धिष्ण्य गत अग्नीन् प्रति और देवताओं नेकहाकि प्रत्येक अपने नाम को सम्पादन करो॥तदाह तित्तिरिः॥ तान्देवा अब्रुवन्द्वे–द्वेनामनी कुरुतेति॥१॥मैत्रावरुण·होतृ· ब्राह्मणाछंसि· पोतृ·नेष्टृ· अच्छावाक·के धिष्ण्याओं को सदस में करे वन्हिरसीतिया–दृ० तदाह का० ८·६·२८·–३१ आग्नीध्रीयके निवापके अनन्तर में छे धिष्ण्याओं को संभाले॰ पूर्व मे सद का द्वार जिसके उत्तर मेंहोता की धिष्ण्यतिसको प्रत्यङ्मुख हो अध्वर्यु संभाले॰ औदुम्बरी के अग्निकोण दिशामें मैत्रावरुण के धिष्ण्य को उदङ्मुख हो संभाले॰ होतृ धिष्ण्य के उत्तरमें ब्राह्मणाछंसि· पोतृ·नेष्टृ· अच्छावाक चारोंके धिष्ण्याओंकोतुल्य अन्तर से संभाले॥ अर्थः॥ हे होतृधिष्ण्यतू वन्हि और हव्य वाहनहै॥यज्ञकर्म

+वि–ण॥अ०व–नः॥दृ०श्वा–ता॥उ०तु–दा॥ऋ०

कानिर्वाह करै इस हेतु वन्हि· और देवताओं प्रति हवि के पहुंचाने से हव्य वाहन। जैसे आग्नीध्रीय धिष्ण्य के दो नाम कहे तैसे ही होत्रादि धिष्ण्याओं कों जानना॥२॥ श्वात्रोसीतिया-गा० हे मैत्रावरुण धिष्ण्य तू श्वात्र और प्रचेता है॥ श्वात्र क्षिप्र गतिवान् मित्रः प्रचेता प्रकृष्ट ज्ञानवान् वरुण॥३॥ तुथोसीतिदे-ज० हे ब्राह्मणाच्छंसि धिष्ण्य तू तुथ और विश्ववेदा है॥ तुथ ब्रह्म रूप है॰ शत०४·३·४·१५· ब्रह्मवै तुथ इति श्रुतेः। विश्ववेदाः सर्वज्ञ है। यद्वा तुथ शब्द करि देवताओं प्रति दक्षिणा का विभाग करनेवाला पुरुष सूचित होता है। तदाह तित्तिरिः॥ तुथो ह स्म वै विश्ववेदा देवानां दक्षिणा विभजतीति॥३१॥

उ॒शिग॑सि क॒विरङ्घा॑रिरसि॒ बम्भा॑रिरव॒स्यूर॑सि॒ दुव॑स्वाञ्छु॒न्ध्यूर॑सि मार्ज्जा॒लीयः॑ स॒म्राड॑सि कृ॒शानुः॑ परि॒षद्यो॑ऽसि॒ पव॑मानो॒ नभो॑ऽसि प्र॒तक्वा॑ मृ॒ष्टो॑ऽसि हव्य॒सूद॑न ऋ॒तधा॑मासि॒ स्व॑र्ज्योतिः॥३२+

उशिगसीतिया-गा० हे पोतृ धिष्ण्य तू उशिक् और कवि है॥ उशिक् कामनीय कविः विद्वान॥५॥ अंघारिरसीतिया·-अ०। हे नेष्टृ धिष्ण्य तू अंघारी और बंभारी है॥ पाप का वैरी अंघारी, पोषण करने वाला बंभारी॥ दिवि मे दो सोम के रक्षक अंघारी और बंभारी सो सोम रक्षक मंत्र स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे मे कहे गये अध्या०४·काण्डी २७॥६॥ अवस्यूरसीतिया-अ०। हे अच्छावाक धिष्ण्य तू अवस्यू और दुवस्वान है। अन्न का इच्छा करनेवाला अवस्यू और हविष्मान है कारण यह कि अच्छावाक ही पुरोडाश के भाग को पाता है॥७॥ ऐसे होत्रादिकों के धिष्ण्याओं को सद में निर्माण करि॥ का०८·६·२२· वेदी के दक्षिण भाग में मार्जा

+ उ-वि॥ अ०। अ-रि॥ इ०। अ-न्। उ० शु-यः। ऋ०। स-नुः। त्व०। प-नः। अ०। न-का। ई० मृ-नः। ऊ०। ऋ-तिः। ऋ०

लीयका निर्माण करै॥ अर्थः॥ शुंध्यूरसि॰या॰—अ॰ शुद्ध करनेवाला शुंध्यूः माजनेवाला मार्जाली तहां पात्रोंकोधोतेहैं॥८॥ का॰८॰६॰२३॰ आगे धिष्ण्याओं के निवापके अनंतर अध्वर्यु सदके द्वार के पूर्वभागमेंस्थित हो सम्राडसिसे आदिले आठों ८ मंत्रोंकरि क्रमपूर्वक आहवनीयादिकोंकोदेखै॥सम्राडसीत्यादि आठ मंत्रो के आहवनीय १ वहिष्यवमानदेश २ चात्वाल ३ शामित्र ४ औदुम्बरी ५ ब्रह्मासन ६ शाला द्वार्य ७ प्राजहित ८ देवता॥१६॥—गा॰॥अर्थः॥हेउत्तरवेदिगतआहवनीय तू बहुविधि आहुतिके आधार होंनेसे सम्राट् और पयोव्रतादिकरि कृश(क्षीन)हुए यजमान प्रति प्राप्ति होंनेसे कृशानु है॥१॥ परिषद्योसि॰ या—त्रि॰॥अर्थः॥हे वहिष्यवमानदेश तू स्तुति समेत ऋत्विजः(परिषत्)तिसके योग्य परिषद्यः और सुद्ध होने से पवमान है॥२॥ नभोसि॰या—गा॰॥अर्थः॥हे चात्वाल तू खनन करि छिद्ररूप होंने वा नदी खनने सै नभः तथा ऋत्विजोंके प्रदक्षिण चलने से प्रतक्वा है॥३॥ मृष्टोसि॰प्रा—गा॥अर्थः हे शामित्र पशु विशसन प्रदेश तू मृष्ट अर्थात् पशुविशसनके विहित होंनेसे अपहहेतुत्वके अभाव करि निश्चय विशसन के अर्थ शुद्ध है। यद्वा मृष्ट मीशपक हवि और तैसेही हृदय जिह्वादि रूपकरि हविके पाकका हेतु है॥४॥ ऋतधामासि॰प्रा—गा॰॥अर्थः॥हे औदुम्बरि तू साम गान उपवेशनस्थान है। कारण यह कि औदुम्बरीका स्पर्शकरि गाते है। उन्नतत्वकरि स्वर्गमें प्रकाशमान वा सूर्यज्योति है॥५॥३२॥

समुद्रोसि॥ विश्वव्यचा॰अजोस्येकपादहिरसिबुध्न्योवाग

स्यैन्द्रमसि सदोस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वप
ते प्रमा तिरस्वस्ति मेस्मिन्पथि देवयाने भूयान्मित्रस्य

मा॥३३॥ स–चाः। अ०अ–तृ। इ०अ–ध्याः। उ०वा–सि। प्रा०। ऋ–मृ। लू०अ–तृ। आ०।

समुद्रोसि प्रा–गा० ॥ अर्थः ॥ हे ब्रह्मासन तू समुद्र सब देवता अच्छे
प्रकार द्रवें हैं जहां वोह अथवा समुद्रवत् ज्ञान करि गाढ ब्रह्मा ज
हां बैठता है सो। और विश्वव्यचा० सब यज्ञ के कृताकृत देखने प्रतिजा
ता है सो है ॥६॥ अजोसि दे–पं० ॥ हे प्राचीन वंश शाला द्वारवर्तिन् अ
ग्ने तू अज आहवनीय रूप करि यज्ञप्रदेश में जाता अथवा परब्रह्म
त्व करि उपचरण करियै है। और एकपात् एकही पालन करने वाला
वा एक पाद है ॥ अध्या० ३१· काण्डी·३ पादोस्य विश्वा भूतानीति॥७॥
अहिरसि· दे–त्रि० हे आज हित पत्नी शाला के पश्चिम भाग वर्ती गार्हपत्य अ
ग्नि तू अहे शाला द्वारीय नूतन गार्हपत्य के उत्पन्न होने पर भी अपने स्वरूप
करि नहीं हीन होता और बुध्न्य० आधान काल में प्रथम आहित हों
ने से मूल अर्थात् प्रथम मंथन करते हैं सो है ॥ ८॥ नामों करि यहां
भी धिष्ण्यों की स्तुति है ॥ इति षोडश धिष्ण्य मंत्राः समाप्ताः ॥ वाग
सीति या–ह्व० सदो दे० का० ८·८·२८· सद का अभिमर्शन करै ॥ अ
र्थः ॥ हे सद तू वाक् है। क्योंकि वाक् जिसमें कर्म करती है वाक् शब्द
करि अभेदोपचारण से सद कहते हैं। और इन्द्र देवता है। सीदंति
बैठते हैं जिसमें वोह सद ॥ २॥ ऋतस्य·तिया–यं० द्वार्ये दे० का० ८·
८·२०· सदकी द्वार शाखाओं का अभिमर्शन करै ॥ अर्थः ॥ हे ऋ
त (यज्ञ) के द्वार देश में स्थापन की हुई शाखाओ तुम मुझे मत संतापक

रौ॥२॥ अध्वनामिति यजुः सूर्यो दे० का० ९० ८०२१० यहां सेतीनमं
त्रों करि अभि मंत्रण करै० अध्वनाम् सै सूर्य का अभि मंत्रण करै॥ अ
र्थः॥ हे मार्गों के पालक रवे (मार्गों केवीचवर्तमान) मुरु को तुम वदाओ
किंच इस देवयान प्रापक पथि (यज्ञमार्ग) में मेरा कल्याणहो॥१॥३३

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्व मग्नय: सगरा: सगरास्थ सगरेण
नाम्ना रौद्रेणानीकेनपात माग्नय: पिपृतमाग्नयो गोपा
यतमा नमोवोस्तु मामाहिंसिष्ट॥३४॥ मि-म्। अ०। अष्टौ दे०।

मित्रस्यमा०या-द्व० ऋत्विजो दे० का० ९० ८०२३० यजमानसव ऋत्विजो
का अभि मंत्रणकरै॥ अर्थ:॥ हे ऋत्विजमित्र (आदित्य) के नेत्रों से
मुझै देखो। अथवा जैसे सखा सखा को देखताहै तैसे मुझे देखो॥ २॥
अग्नयः यजुः धिष्णया: दे० का० ९० ८०२४० आग्नीध्रीयादिक आठौ
धिष्णयाओं को यजमान अभि मंत्रणकरै॥ अर्थः॥ हे अग्नयः सग
रास्तुतिसहित आग्नीध्रीयादिकौ तुम स्तुति सहित धिष्णयानाम
करि समान स्तुति हो। हे अग्नयः तुम शत्रु विनाशक अपनी उग्रसै
न्यकरि मेरी रक्षा करौ अथवा रुद्र देवता के मुख करिके मुझै रक्षाक
रौ +। हे अग्नयः मुझै धनादिकों से पूरण करौ। मुझै निरन्तर में रक्षा
करौ। तुम को नमस्कार है मुझै मत मारौ निर्विघ्न पूर्वक यज्ञ कराओ
३॥३४॥ इतिभाष्ये अष्टमोनुवाकः॥८॥

+ आग्नीध्र. सुदा. मैत्रा. के. राजक. ॥

अ०९० ज्योतिरसि॥ विश्वरूपं विश्वेषान्देवानां समित्॥ त्वᳯंसो
मतनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योन्यकृतेभ्य उरुयन्तासि वरूथ
ᳯंस्वाहांजुषाणो अप्तुराज्यस्यवेतुस्वाहा॥३५॥१

१ ज्यो-तु। अ०। त्व-हा। द्व०। जु-हा। ७०।

साम्न्यनुष्टुप्। विश्वेदेवादे०का०५।४।२६। ध्रुवा में से पृषदाज्य आज्य को पांच वार ज्योतिरसीत्यादि समिदन्त मन्त्र से ग्रहण करे॥ अर्थः॥ हे आज्य तू ज्योति है कैसा कि सर्वरूप, बहुत आहुतियों में युक्त होनें से सर्वरूप कहा। आज्यत्व वा दीप्यमानत्व से ज्योतिष्ट है। सब देवताओं का दीपक अर्थात् देवता आज्य का भोजन करि दिपते हैं॥ त्वꣳसोमेत्यनवसाना गायत्री। भृगुसुत क्रतुदृष्टा सोमदेवत्या का०८।७।१। प्रदीप्तइध्म के ऊपर प्रचरणी अर्थात् जुहू से होम करे॥ शरीर के छेदने वाले अर्थात् राक्षसों। द्वेष करने वाले दौर्भाग्य। और भी हमारे वैरियों के प्रेरे हुए छेदन। हे सोम तू तिनों को जानता है। जैसे वे हम को न बाधा करें तैसे हम को सुरक्षित प्रदेश में स्थापन करि पालन करता है। तिस हेतु तू ही हमारा उरु प्रभूत बल है तैसे तुरू को यह हुत हो। सोमदेवता को उद्देश्य करि यह आज्याहुति होमें इति भावः॥ जुषाणो अप्तुर्देवत्यैकपदा विराड्य जुरन्त्या॥ का०८।७।२। फिरि प्रचरणी से एक वार आज्य ले होम करे॥ अर्थः॥ प्रीयमाण अप्तुः (सोम) आज्य को पान करो। स्वाहा तिस के अर्थ सुहुत हो॥३५॥

अग्ने नय॑। सुपथा॑ राये॒ऽ अस्मान्विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्॥ यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठान्ते॒ नम॑ऽउ॑क्तिं विधेम॥३६॥

आग्नेयी त्रिष्टुव गस्त्यदृष्टा का०८।७।६। आग्नीध्र प्रति गमन के अर्थ प्रवृत्त यजमान को अध्वर्यु पढ़े॥ अर्थः॥ हे अग्ने हे देव सब मार्गों वा ज्ञानों के जानने वाले तू हम अनुष्ठान करने वालों को

अवसान हीना अवसान रहिता

धन अर्थात् यज्ञफल के अर्थ शोभन मार्गमें प्राप्तकरि॥किंच हम अनुष्ठान करने वालों से पापको पृथककरि।कैसाहै पाप कि हमको टेढेकरने की इच्छाकर्ता अर्थात् अविलषित क्रिया का प्रतिबंधक है॥किंच तेरेलिये बहुत बडी हविका याज्या पुरोनुवाक्या रूपी वचन कहूं अथवा नमस्कार विषया उक्तिका संपादन करूं॥३६॥

अयन्नः॥ अयन्नो॑ऽ अ॒ग्निर्वरि॑वस्कृणोत्व॒यम्मृधः॑ पु॒रऽए॑तु प्रभि॒न्दन्॥ अ॒यम्वाजा॑ञ्जयतु॒वाज॑साताव॒यꣳ शत्रू॒ञ्जयतु॒जर्हृ॑षाणः॒ स्वाहा॑॥३७॥

आग्नेयं त्रिष्टुप् यजुरंता का॰८.७.७-९॰ शालामुखीय अग्नि और ग्रावादिकोंको सदके उत्तर भागमें लेजाके आग्नीध्र मंडपमें रख तहां धिष्ण्यगत अग्निमें घृत से होम करै॥इति॥यह अग्नि हमारे लिये धन को करो यही अग्नि संग्रामों को विदीर्णकरि आगे आओ यही अग्नि अन्नोके संभजन के निमित्त शत्रु संबंधी अन्नो को हमारे देने को जीतो तब यही अग्नि अतिशय हंसकर शत्रुओं को जीतो॥स्वाहा तुम को सुहुत हो॥३७॥

उ॒रु वि॑ष्णो॥ उ॒रु वि॑ष्णो॒ वि क्र॑मस्वो॒रु क्षया॑य नस्कृधि॥ घृ॒तं घृ॑तयोने पिब॒ प्रप्र॑ य॒ज्ञप॑तिन्ति॒र स्वाहा॑॥३८॥

वैष्णव्यनुष्टुब्यजुरन्ता॰ का॰८॰७॰१५॰ पूर्वमंत्रकरि आग्नीध्रीय में होम है इस मंत्रसे आहवनीय में होम करै॥मंत्रार्थस्तु॥हे विष्णो (व्यापी आहवनीय) शत्रुओं प्रति बडा पराक्रम करि किंच ब्रह्म गृह निवास के अर्थ हम को बहुत जैसे तैसे करि हे घृतयोने + (अग्ने) हु

+ अग्नियेंस्यै योनेरसृज्यततस्यै घृतमुल्वमासीदिति श्रुतेर्घृतयोनित्वम्

यमान इस आज्य को पान करि। किंच यज्ञपति (यजमान)को अ तिशय बढा। स्वाहा जैसे तुमको सुहुत हो॥ ३८॥

देवंसवितः॥देवं सवितरे॒षते॒ सोम॒स्तꣳरक्षस्व॒मात्वांदभन्॥ए॒तत्त्वन्देव सोमदे॒वोदे॒वाꣳ॥ऽउपांगाऽइ॒दम॒हम्मनु॒ष्याु॒न्त्स॒हरा॒यस्पोषेण॒स्वाहा॒निर्वरुणस्य॒पाशा॑न्मुच्ये॥३९॥ दे-नू।अ॰।ए-ण।इ॰।स्वा-च्ये।उ॰।

देव सवितः आर्षी गा॰सावित्रम् का॰ ८.७.१७. दक्षिण हविर्धान शकट में कृष्णाजिन बिछाय तिसपर सोम रखै॥ अर्थः॥ हे सबके प्रेरक देव यह सोम तेरे अर्पण किया तिस सोमको तू पालन करि सोमके रक्षा करनेवाले तुमको असुर मत हिंसा करै॥ एतत्त्वम् प्रा त्रि॰सौम्यम्। का॰८.७.१८. कृष्णाजिन पर स्थापन किये वह सोम को छोडि उपस्थान करै॥अर्थः॥ हे सोम देव तू देव ही अपने देवताओं प्रति ऐसे प्राप्त है मैं यजमान अपने मनुष्यों प्रति ऐसेही धनकी पुष्टि (पश्वादिधन) सहित लौटूं॥ स्वाहानिरिति या-त्रि॰लिंगोक्त देवतम् का॰८.७.१९.हविर्धान मण्डप से निकल॥ अर्थः॥ अ सोमसे आत्मा को निकाल आत्मीही मेरा है। अथवा स्वाहा सोमरूप अन्न देवताओं को दिया इस सोम प्रदान करि मैं वरुणपाशसे छूटा॥ ३९॥

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा॒या तव॑ त॒नूर्म॒य्यभू॑दे॒षा सा त्वयि॒ यो मम॑ त॒नूस्त्वय्यभू॑दि॒यꣳ सा मयि॑॥य॒था॒य॒थन्नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्य॒नु मे॑ दी॒क्षान्दी॒क्षाप॑ति॒रम॒ꣳस्ता॒नु तपु॒स्तप॑स्पतिः ४०

का॰ ८.७.२९. अग्ने व्रतपाः इससे आहवनीय में समिध

‡ दानं हानमहो अहो खखस्याहा स्वात्वा।

डालि। आग्नेयं यजुः यजमान अग्निके के शरीर से अपने शरीरको एक करि अधस्तन कर्म कलाप करिके॥ अब जैसे अपने शरीर प्रतिकियासो कहते हैं। हे अग्ने स्वभाव करि सब व्रतों का पालक है तिस कारण यहां भी तू मेरे व्रत का पालक हो। हे अग्ने व्रतकी प्रार्थना के समय तेरी संवन्धिनी जो देही मेरी थी सो यह तेरी हो। और जो मेरी देही तेरी हुई तौ यह मेरी हो। हे व्रतके पालक अग्ने हमारे तुम्हारे व्रत(कर्म्म) जौं के त्यों हों अर्थात् अनुष्ठान रूप व्रत मेरा और तिस के पालन रूप व्रत तेरा हो किंच दीक्षा का पालक अग्नि मेरी दीक्षा के अर्थ नियम को अंगीकार करे। तप का पति अग्नि मेरे उपसद को स्वीकार करे॥४०॥ इति नवमोनुवाकः॥

अ॰ १० उरुविष्णो॥ उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि॥ घृतं घृतयोने पिव प्रप्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा॥४१॥

इदानीं यूप सम्पादन मन्त्राः॥ का॰ ६·१·३-४· घरमें चारिवारलिये आज्य करि उरु विष्णुः इस मंत्र से आहवनीय में यूपाहुति अर्थात् यूप छेदने के अर्थ होमें॥ काण्डी ३८ में व्याख्या की गई॥४१॥

अत्यन्या न॥ अत्यन्याँ२ ऽअगां नान्याँ२ उपागाम र्वाक्त्वा परेभ्यो विदम्परोवरेभ्यः॥ तन्त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्ताम्विष्णवे त्वा॥ ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः॥४२॥ †

अत्यन्याँ २॥ वनस्पति दैवतम् यजुः का॰ ६·१·५-७ यूपाहुति के शेष आज्य सहित यूप तक्षण के अर्थ वन में जाकर यूप का स्पर्श वा अभिमंत्रण करे॥ इति सूत्रार्थः॥ वृक्ष दो प्रकार के यूप्या॰ अयूप्या॰ पलाश॰

† अ-त्वा। अ॰ ओ-स्व॥ इ-स्व-सी॥ उन

खदिर. बिल्वादिक यूप्या. निम्ब. जम्बीरादि अयूप्याहैं॥हे पुरोवर्ति यूप वृक्ष तुझसे अन्य यूपों को सम प्रदेश जन्मादि लक्षण रहितदेख ताहूं और भी अन्य अयूपों को नहीं जाता किंच दूरवर्ती वृक्षों सेनिक ट तुझको पाया और हे वनस्पते (वनकेपालक) हे दीप्यमान वृक्ष देवता ओं के यागके अर्थ तेसे तुझको में सेवन करूं और देवता देवयज्या में तेरा सेवन करें॥ का०६.१.११. घृताक्त स्रुवा करि छेदने के स्थान विष्णवेत्वा से उपस्पर्शन करै॥ हे यूप वृक्ष तुझे विष्णु(यज्ञ) के अर्थ उपस्पर्शन करताहूं †॥ ओषध० इति या-गा०कुशतरुणो दे० का० ६.१.१२. यूप वृक्ष के कुशको अन्तर्धान करिकै॥ हे ओषधे तू स्वधि तिभय सैं मुझे रक्षाकर॥स्वधित० इति दे-ज०परशुर्दे० का०६.१.१२. परशु सें प्रहार करै॥हे परशो इस यूपको मत हिंसा करि॥४२॥†

द्याम्मा॥ लेखी रन्तरीक्षम्माहिꣳसीः पृथिव्या सम्भव॥ अय ꣳहित्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय॥ अ तस्त्वन्देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳरुहेम॥४३॥† इति संहितायां दशमोनुवाकः॥१०॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शाखीयायां वाजस नेयसꣳहितायां दीर्घपाठे पंचमोऽध्यायः ५

द्यांमा लेखी वनस्पति दैवतं यजुः का०६.१.१६. गिरते हुए यूपको अभि मन्त्रण करै॥ अर्थः॥ हे यूप वृक्ष द्युलोक तेरी मत हिंसा करौ अन्तरिक्ष मत हिंसा करौ पृथिवी के साथ संगतहो॥ यूपको वज्ररूप होंने सेलोकों की शांति चाहते हैं इतिभावः॥का०६.१.१०-१८. अयꣳहित्वा से छिन्न

† यज्ञोवै विष्णुरिति श्रुतेः

† द्यां-घा०अ०अ-मा०वृ०

जो यूप वृक्ष है उसका कुठार करि शोधन (शाखा पर्णा दिकोंका पतन) करै १८ अथवा यह अभि मंत्रण का शेष है शोधन चुप केसै करै ॥ अर्थ जिस कारण हे छिन्न वृक्ष अति तीक्ष्ण यह कुठार बडे सौभाग्य, दर्शनीय अथवा यज्ञ के अर्थ तुम्हे यूप होंनेको प्राप्त करेगा। इस हेतु तुम्है छेदने को नहीं भेद ताहूं इतिभावः ॥ वनस्त्वमिति आर्षी वृ॰ वनस्पतिर्दे॰ का॰ ६.१.२.२१ स्थाली में सें जुहू करि लिये आज्य से होम करि छेदन प्रदेश को संस्कृत करै अथवा यूप में इस आहुति को होमें ॥ मंत्रार्थस्तु हे देव वनस्पते इस स्थाणु से तू बहु अंकुर सहित होके विशेष करि उत्पन्न हो औ और हम भी पुत्र पौत्रा दिकों करि बहु प्रकार सुखोपेत हो वें ॥ ४३ ॥

इतिश्री गिरिधरभाष्ये दशमोनुवाकः ॥ १० ॥

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन् ॥
पुमार्थां श्चतुरो देया द्यज्ञ पुरुषः सनातनः १

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाख्येतृ व्याघ्र पादान्वय विश्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जय किशोर देव वर्म्मा जरौक्त्मिणेय नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये आतिथ्यात्स्थाणु होमान्त वर्णनो नाम पञ्चमोध्यायः ॥ ५ ॥

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकंह्रिरूपंचसाधनैर्वक्रुरूपकम्

स्वानंददायकंकृष्णंब्रह्मरूपपरंस्तुमः १

अ॰१ देवस्यत्वा ॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यांम्पूष्णो
हस्ताभ्याम् ॥ आददे नार्य्यसीद महᳫं रक्षसां ग्रीवाऽअ
पिकृन्तामि ॥ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवेत्वान्त
रिक्षायत्वा पृथिव्यैत्वा शुन्धन्तांल्लोकाः पितृषदनाः पितृ
षदनमसि ॥ १ ॥ †

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थे प्रदीपके ॥ ॥

अभ्यादाना द्धावनान्तः षष्ठोध्यायः समीर्यते

सोमिक वेदीके प्रधान करि पांचवे अध्याय में आतिथ्य से ले यूप निर्म्माण पर्य्यन्त मंत्र कहे ॥ अग्नीषोमीय पशुके प्रधान करि छठे अध्याय में यूप संस्कार से ले सोमाभिषवके उद्योग पर्य्यन्त मन्त्र कहते हैं का॰ ६ ॰ २ ॰ ८ ॰ देवस्यत्वा से अभ्रि लेकर। इदमहं से यूपके अवट करने को लिखे। दोनो मन्त्रोंकी अध्या॰ ५ ॰ कण्डी २२ में व्याख्या की ॥ का॰ ६ ॰ १५ - १८ ॰ यवोऽसि से पात्र में भरे जल में जौ डालकर। यवों के जल से अग्र मध्य मूल को दिवेत्वादि तीन मन्त्रों करि प्रोक्षण करै। शुन्धन्ताम् से प्रोक्षण के शेष जल को अवट में सींचे। पितृषदनसे प्रागग्र उत्तराग्र दर्भों ऐं डाले ॥ इन चारों मन्त्रों की भी औदुम्बरी विषय में ५ ॰ २६ ॰ व्याख्या की ॥ २ ॥

† दे-मू। अ॰। भा-सि। द॰। इ-मि। उ॰। य-ती:। अ॰। दि-त्वा। ल-शु-ना:। आ॰। पि-सि। ऋ॰ ॥ १॥

अग्रेणीरसि॥ स्वावेशः उन्नेतृणामेतस्य विनादधिंत्वास्यास्यतिदेवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः॥ द्यामग्रेणास्पृक्षः आन्तरिक्षम्मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणाद्दंहीः॥२॥+

अग्रेणीः शकलदेवत्यं यजुः का॰६॰२॰१९॰ यूपके अवटमें प्रथमशकलकू डाले॥ अर्थ॥ हे यूपशकल तू छिद्यमान यूपका प्रथम अवयव है अथवा प्रथम यूपको अवट प्रति पहुंचानेवाली हैं। कैसी है तू कि उन्नयन करनेवाले अध्वर्यु औंकी सुखपूर्वक विठानेवाली॰ ते इस यूपके अवटमें छोटे होनेके कारण सुखपूर्वक विठलाते हैं। सोतू इसकर्मको जानि वोह कौंन कर्म कि जो यूप तेरे ऊपर अवस्थान करेगा सो तुम्हें समझना उचित है॥ देवस्त्वा॰या॰पं॰ यूपदैवत्यं का॰६॰३॰२॰ यूपके ऊपर देशको छोडि अंजन करे॥ हे यूप सविता देवता मधुर आज्य करि तुम्हें आंजे॥ सुपिप्पलाभ्यः॰ चषालदे॰या॰बृ॰का॰६॰३॰३॰४॰ नीचे ऊपर आज्य करि लिप्त चषालको यूपके आगे स्थापन करे॥ अर्थ॥ हे चषाल तुम्हें यूपके आगे छोडताहूं किसलिये कि व्रीह्यादि ओषधीकी निष्पत्तिके अर्थ कैसी ओषधी कि शोभन फलयुक्त॥ द्यामग्रेणेति यूपदे॰ यजुः का॰६॰३॰७॰ सें ऊंचा करे॥ अर्थः॥ यूपकी महिमा कहिते हैं। हे यूप तूने अग्रभागकरि दिवीको स्पर्श कियाहै। मध्यभागकरि अन्तरिक्षको पूरित कियाहै। अधोभागकरि पृथिवीको दृढकियाहै॥२॥

यातें॥ याते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाः अयासः॥ अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्पदमवभारि भूरि॥ ब्रह्मवनिंत्वा क्षत्रवनिं रायस्पोषवनि पर्यूहामि॥

†प॰ति॰प॰दे॰ क्तु॥ इ॰ सु॰भ्यः॥ उ॰ द्या॰ हीः॥ स्र॰॥२॥

ब्रह्म दृर्ठंह क्षत्रं दृर्ठंहायुर्दृर्ठंह प्रजान्दृर्ठंह ॥ ३ ॥ +

याते दीर्घ तमा ऋ॰ त्रिष्टु॰ यूपदे॰ का॰ ६ ३ ८ अवट में यूपको डाले॥ अर्थः॥ हे यूप जिन तेरे धामों (स्थानों) के जानें को हम कामना करते हैं। किंच जिन तेरे स्थानों में किरिणें वर्ते हैं कैसी हैं किरिणें कि बहुत है दीप्ति जिनकी। इस विष्णोः॰ व्यापक ब्रह्मका सो परम उत्कृष्ट पद वडा आदित्य मंडल रूपी यहां दीखता है। अथवा भूरि बहुत प्रकार इन स्थानों में शोभित है कैसे बिष्णुका कि वडी है गति जिसकी अथवा महात्माओं करि स्तुति किया गया तिसका। तैसे स्थानकी प्राप्ति के हेतु भूत कर्म्म के अर्थ हे यूप तू इस अवट में ठहिर॥ का॰ ६ ३ १० ११ ब्रह्म वनि त्वा से मृदा करि पूर्ण करै। ब्रह्म ठंह से मैत्रा वरुण दंड करि तीनि फेर सै कूटै॥ दोनों यजुषिः औदुंबरी में ब्याख्या की अध्या॰ ५ कांडी २७॥ ३॥

विष्णोः कर्म्माणि॥ पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे॥ इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ४॥

हे वैष्णव्यौ गायत्र्यौ मेधा तिथि दृष्टे का॰ ६ ३ १२ विष्णोः कर्म्माणि यूपको स्पर्श करते हुए यजमान प्रति पढै॥ अर्थः॥ हे ऋत्विजओ यज्ञ के अधिष्ठाता विष्णु के कर्मों (सृष्टि संहारादि चरितों) को तुम देखो जिन कर्मों करि तुम्हारे लौकिक वैदिक कर्म्म निर्माण हुए। सो विष्णु इन्द्र का वृत्र बधादि कर्म्मों में अनुरूप सखा हुआ॥ अथवा विष्णोः अर्थात् यज्ञ के कर्म्माणि॰ वीर्यों को देखो कि जिन वीर्यों से व्रतानि॰ आधान पशु सोमादिक कर्म पस्पशे॰ आत्म में निर्माण किये यहां जिन

+ या-रि। अ॰ ब्र-स्नि। दृ॰ ब्र-ह। उ॰॥ ३॥

वीर्यों करि व्रतानि, कर्म अग्नि वायु सूर्यादिकों मे अपने अपने अध
...संग्रह निवद्ध किया। सिष्टं समानं ॥४॥

तद्विष्णोः परमम्पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः॥ दिवीव चक्षुरा ततम्॥५॥

का॰६॰३॰१३॰ चषाल को देखतेहुए यजमान प्रति पढै॥सूरयः वेदा...ः विद्वान विष्णु के तिस परमपद(स्वरूप)को सदा देखते हैं कै...को कि आकाश में चक्षु ऐसे व्याप्त है। यद्वा जिसने आकाशमें आदि...को विस्तार किया॥ चक्षु शब्द से यहां मंडल लेना चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य ७॰४२॰तच्चक्षुर्देवहितम् ३६॰२४॰॥५॥

परिवीरसि॥ परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्ताम्परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम्॥ दिवः सूनुरस्येषते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः॥६॥+

परिवीरिति प्राजा- त्रि॰ यूप दे॰ का॰६॰३॰१५॰ तीनि अवयवोंकरि संम्पादित कुशाओंकी जोरसना(लेज)तिससे यजमान की नाभिवरावरि यूप प्रदेश में तीनि आवृति जैसे हों तैसे यूपका आवेष्टन करै॥ अर्थः॥ हे यूप तू ऊपर से रसना करि वेष्टितहै।अथवाहमलोगोंकरिपरिवेष्टितहै किंच देव संबंधिनी मरुद्गणादिक प्रजा तुम्हे वेष्टन करैं। अथवापशु तुम्हे वेष्टन करैं। किंच मनुष्यों के संबंधीधन इस यजमानको सब ओड़ से वेष्टन कीजियों अथवा मनुष्यों के वीच धन इस यजमान को सब ओड़ोंसे वेष्टन कीजियों॥ दिवः सूनुरति दैवी॰ त्रि॰ स्वरुदेवत्या का॰६॰३॰१७॰ अष्टास्त्रि यूप कीजो अस्त्रि अग्नि के समीमेंस्थित सो अग्निष्ठा

तिसके उत्तरभाग रसना में स्वरु नामा शकल को प्रवेश करै॥ अर्थः
हे स्वरो तू द्युलोकका पुत्र है द्युलोक से वर्षे तव यूप उत्पन्न हो यूपसे स्वरु
इस प्रणालिका करि दिवि का पुत्र स्वरु॥ एषते सा०-उ०यूपदे०का०८०
८०२३० यूपे का दक्षिनी पक्षे यूपके दक्षिणभागमें विनछिला वारमां यूप
स्थापन करै उसे न गाडें॥ अर्थः॥ हे यूप पृथिवी में यह तेरा स्थान है। ननु
पशवो वै यूप मुच्छ्रयंतितिश्रुतेः शत० ३०७०३०४० वन में वर्त्तमान पशु तेरे
ही हैं॥ ६॥

अ०२ उपावीरसि॥ उपावीरस्युपदेवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नि
तमान्॥ देवत्वष्टर्वसु रमहव्या ते स्वदन्ताम्॥ ७॥

उपावीरसि दे० पं० तृणदे० का०६०३०१५० तृण लेके॥ अर्थः॥ हे तृण
विशेषतू समीप में आता है। अथवा समीप में अवस्थित रक्षा कर्ता है पशु का
दूसरा सखा तू है॥ उपदेवानिति यजुः लिंगोक्तम् का०६०३०१६० सामने
तिस से स्थित पशु का स्पर्श करै॥ अर्थः॥ पशु अग्नी षोमादिक देवता
ओं प्रति प्राप्त हूजियों कैसे देवता ओं प्रति कि मेधावि। अथवा हवि के
चाहने वाले वह्नितमान् वहुत चलानेवाले अर्थात् यजमान् को स्वर्गप्र
ति प्राप्त करने वाले देवता ओं के वीच वहुत श्रेष्ठ। ऐसे पशु ओं को प्रार्थ
ना करि त्वष्टा प्रति कहिता है। हे देव हे त्वष्टः तू पशु लक्षण धनको रमण क
रि। ऐसे त्वष्टा से कहिके फिरि पशु से कहता है। हे पशो तेरी हवि स्वादित हू
जियों अथवा हवियों को देवता स्वीकार कीजियों॥ ७॥

रेवतीरमध्वम्॥ रेवतीरमध्वम्बृहस्पते धारया वसूनि॥ ऋतस्य
त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः॥ ८॥

+उ०सि। अ०। उ०-नि। दृ०। ऋ०-षः। उ०। ७। ८।

हे क्षीराधिधनवंत पशुओं तुम यजमान के घर में अच्छी प्रकार क्रीडाकरो। ऐसे पशुओं से कहि करि बृहस्पति से कहिताहै। हे बृहस्पते हे ब्रह्मन् पशुओं को निश्चल करो। ऋतस्यत्वा आर्षी०-उ० पशु दे० का० ६.३.२७. इहरी कुशाओं की रस्सी का नागपाश बनाय शृंगों के बीच पशु के बांधे दक्षिण शृंग के सामने पाशको बाँधै॥ अर्थ:॥ हे देवताओं के हविरूप पशु अवश्य भाविफलोपेत यज्ञ पाश करि तुम्हें बांधताहूं। ऐसे पशु को संबोधन करि शामित्रके अर्थ समर्पण करै। मानुष:(शमिता) धर्षो धृष्णोतु शमयतुं शक्तोतु समर्थ हूजियो इतिभाव:॥८॥

देवस्यत्वा॥ सवितु: प्प्रसवे्श्विनोर्बाहुभ्यां म्पूष्णोहस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टन्नियुनज्मि॥ अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योनुत्वा माता मन्यतामनु पितानुभ्राता सगर्भ्योनुसखा सयूथ्य: अग्नीषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि॥९॥†

देवस्यत्वा आ०-दृ० का० ६.३.३०. यूपसे पशुको बांधे व्याख्याता ५.२६ अग्नीषोमाभ्यां या०-त्रि० लिंगोक्तं अग्नीषोम देवताओं को अभिरुचित पशुको बांधताहूं॥ अद्भ्य स्त्वेति यजु: का० ६.३.३१. पशुको प्रोक्षणी से प्रोक्षण करै॥ अर्थ:॥ हे पशो जल और ओषधी करि कै तुम्हें प्रोक्षण(मेध्य) कर्ताहूं कैसे तुमको कि अग्नीषोमकी प्रीति को। दर्भ और जल के पवित्र होने से ओषधीओं कोभी प्रोक्षण साधनत्व है। अपनी माता के भक्षित तृण और उदक करके उत्पन्न होने से तिन दोनों कर प्रोक्षण युक्त है। तदाह तित्तिरि: अद्भ्य स्त्वौषधीभ्य: प्रोक्षामीत्याहाद्भ्योह्येष ओषधीभ्य: संभवति यत्पशुरिति। किंच हे पशो ऐसे प्रोक्षित तुमको माता पृथिवी

† दे-मू। अ-अ-ज्मि। ई०-आ-मि। उ०॥९॥

आज्ञा दीजियो तथा पिता आकाश आज्ञादीजियो सोदर भ्राता आज्ञा दीजियो समान यूथीसखा आज्ञा दीजियो॥९॥

अपाम्पेरुः॥ अपाम्पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सदेवहविः॥ सन्ते प्प्राणो वातेन गच्छता छंसमङ्गानि यजत्रैः संयज्ञपतिराशिषा॥१०॥ †

अपाम्पेरुया०—गा० पशु दे० का० ६।३।३२ पशु के मुख के नीचे पीने के अर्थ प्रोक्षणी को थांभे॥ अर्थः॥ हे पशो तू पानियों का पीने वाला है ति सहेतु इसको पी॥ आपो देवी रित्या सुरी गा० आपो दे० का० ६।३।३३ पशु के उदर हृदय का प्रोक्षण करै॥ हे पशो जलरूप देवी तुम्हे भक्षण करो। अथवा आपो देवी पशु का भक्षण करो। क्या गुण सो कहते हैं कि जे से देवताओं का पशु लक्षण हवि आस्वादित होने से शोभन देवयोग्य होवे इति शेषः। अद्भ्यस्त्वेत्यादि तीन मंत्रों करि ऊपर मुख नीचे में पशु के प्रोक्षण करने से सब को मेध्य करै यह तित्तिरि ने प्रति पादन किया तदाह उपरिष्टात्प्रोक्षत्युपरिष्ठा देवैनं मेध्यंकरोति पायय त्यन्तरत एवैनं मेध्यं करोत्यधस्तादुपोक्षति सर्वमेवैनं मेध्यं करोतीति॥ संतेयजुः पशु दे० का० ६।४।२ उत्तराघारहोम के अनन्तर ध्रुवा समञ्जनसे पहिले पशु के ललाट स्कन्धों और दक्षिणोत्तरकटियों को जुहूस्थ आज्य करि तीन्यों प्रति मंत्र से अंजन करै॥ ललाटाञ्जन मंत्रः॥ हे पशो तेरे प्राणवायु वात में पहुंचौ॥ अथांसयोर्मंत्रावृत्तिः। अंसादिक अंग यागमें पहुंचौ। अथ श्रोण्योः। यज्ञपति (यजमान) आशिषा (यज्ञफल में पहुंचौ॥१०

घृतेनाक्तौ पशुंस्त्रायेथाछं रेवति यजमाने प्रियन्धाः आवि

† अ-सि।अ०आ-वि।इ०।स-षा।उ०॥१०॥

घा ॥ उरो रन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेना स्य हविषस्त्मनायज
समस्य तन्वा भव ॥ वर्षो वर्षी यसि यज्ञे यज्ञपतिन्धाः स्वाहा दे
वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ † इतिद्वितीयोनुवाकः २

घृतेनाक्तौ॰ या- अ॰ स्वरुशाशा देवतम् का॰ ६·४·१२· विशासित्रादिये कु
एशास (कटारी) को गृहण करि आपही यूपसे स्वरु ले तिन कटारी और स्व
रुको जुहूके अग्रमें घृतसे चुपरि तिन कटारी और स्वरु करि पशुके ललाट
का स्पर्श करे इति ॥ हे स्वरु शास तुम घीकरि सींचे हुए इस पशुका पालन
करो ॥ रेवतीति ब्राह्मी उष्णिक् वाग्देवतम् का॰ ६·५·११· यजमान प्रति पढे
हे रेवति (धनवति) वाग्देवते † यजमान विषें इस अभिप्रेत को स्थापन करि
ज्ञान प्रदान करि यजमान में प्रवेश करि । किंच हे रेवति वात देवता करि समा
न प्रीति हो कर विस्तीर्ण अन्तरिक्ष से यजमानको रक्षा करि इति शेषः । किं
च इस पशु लक्षण हविसे अपने को पूजि । किंच इस पशुके शरीर करि एक हो
हे रेवति यजमान रूप और पशु रूप करि एक हो और अपने को पूजि इति
तात्पर्यार्थः ॥ वर्षो वर्षीयसि॰ आसु॰ अ॰ तृण दे॰ का॰ ६·५·१५· शामित्र के
पीछे हस्तस्थ दो तृणों के बीच एकको पटके विशसनीय (हिंसनीय) पशुके
भूमि स्पर्श के परिहार के अर्थ इति सूत्रार्थः ॥ हे वर्षा से उत्पन्न हुए हे तृण
अथवा विस्तीर्ण- बहुत विस्तीर्ण यज्ञ में यज्ञपति (यजमान) को स्थापन
करि ॥ स्वाहा देवेभ्यः॰ देवेभ्यः स्वाहा॰ द्वे दे॰ पं॰ का॰ ६·५·२२·२४· होम
करे ॥ अर्थः ॥ दोनो मंत्रों का अर्थ एक है परन्तु पाठ भेद का तात्पर्य ति
त्तिरीने कहा है ॥ पुरस्तात्स्वाहाकृतयो ऽन्ये देवा उपरिष्टात्स्वाहाकृतयो
ऽन्ये स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति ॥ ११ ॥ इतिभा॰ द्वितीयोनुवाकः २

† वाग्वै रेवतीति श्रुत ३·८·१·१२

। घृ-मू। अ॰ रे-द। ३॰ व-धा।। उ। स्वा-भ्यः। त्र॰ दे-हा। ल्द॰ ॥ ११

अ० ३ महिः ॥ माहिर्भूर्मा पृदोकुर्न्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि ॥ घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥ १२ ॥ †

माहिर्दे-ज०रज्जुदे० का०६.५.२६ वपाश्र पणीभ्या० वपाश्रपणके दोनों काष्ठों में करिकें नियोजनी (पशुबंधन रज्जु) को दुहरी चात्वालमें रखै ॥ अर्थः ॥ हे रज्जो तू सर्पाकार मत हो और अजगराकार मत हो ॥ नमस्ते प्रा०-पं० यज्ञ दे० का०६.६.२ पान्नेजन हस्तां अर्थात् पैर धोनेके अर्थ-पाद ग्रहण से और भी मुखाद्यवयव जानना तिन्हों के शोधन के अर्थ जल कलश हाथमें जिसके वोह पान्नेजन हस्ता तिस पत्नी को गार्हपत्य के समीप से लाकर इस मंत्र को प्रति प्रस्थाता तिस पत्नी प्रति पढ़े ॥ अर्थः ॥ सब ओडी से विस्तार करते हैं वोह यज्ञ शत० ३.८.२-२ ॥ हे आताना यज्ञ तुझको नमस्कार तू शत्रु रहित होके समाप्त पर्यंत प्रकर्ष करि आ। किंच यज्ञके मार्गमें घीकी नदी को देखिकर आ। सान्नायि (प्रष दाज्य कुल्योपलक्षण) के अर्थ में घृत कुल्या लेना। कारण यह कि इस यज्ञ में बहुत घी का होम है ॥ १२ ॥

देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयम्परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

ऐसे यज्ञ की स्तुति करि जल की स्तुति करते हैं। यजुः अर्धमन्दे वत्य मर्धमाशीर्देवतम् ॥ आपो देवी तुम इस पशु को देवता ओं प्रति प्राप्त करो के सी हो तुम कि स्वभाव करि शुद्ध तथा पान्नेजनी पात्र में सब ओडी से निविष्ट। किंच हम भी देवताओं के बीच अवस्थित तिन्ह देवताओं से तर्पित हों तिनही देवताओं के परिवेषण करिनेवाले होंवें ॥ १३ ॥

† मा-कु ॥ अ०न-नु ३० ॥ १२

वाचन्ते॥शुन्धामिप्प्राणन्ते शुन्धामिचक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि॥१४॥ †

वाचन्ते॰ अष्टौ पशुदेवतानि॰ सप्तानांदै-त्रि॰ अष्टमीदे-ज॰का॰६॰६॰२॰३॰ पत्नी पशुके समीप बैठ मरे हुए पशुके मुखादिक आठौ प्राणायतनोको प्रति मंत्रसे शोधन (जलकरिस्पर्श) करै॥अर्थः॥ हे पशो में तेरी वाक् इन्द्री को शोधन करतीहूं। ऐसे आगेभी प्राणेन्द्री को चक्षुरेन्द्रीको श्रोत्रेन्द्रीको नाभिछिद्रको लिंगको गुदाको पैरोंको। ऐसे तेरीसब इन्द्रियों को शोधन करतीहूं॥१४॥

मनस्ते॥ मनस्त ऽआप्यायतां वाक्त ऽआप्यायताम्प्राणस्त ऽआप्यायताञ्चक्षुस्त ऽआप्यायताᳬश्रोत्रन्त ऽआप्यायताम्॥ यत्ते क्रूरं यदास्थितन्तत्त ऽआप्यायतान्निष्ट्यायतान्तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः॥ ओषधे त्रायस्वस्वधिते मैनᳬहिᳬसीः॥१५॥ ‡

मनस्तेषट् ६पशुदेवतानि॰१॰३॰४॰५॰दे॰—ज॰२॰दे॰—त्रि॰६॰यजु॰का॰६॰६॰४॰५॰ पात्नेजन केबचेजलसे यजमान और अध्वर्यु पशुके शिर आदि अंगों का अनुषिंचन करें॰ तहां शिरके सींचने का मंत्र कहतेहैं। अर्थ॥ हेपशो तेरा मन पूरितहो † वाक्ते इससे मुखको॰ प्राणस्ते इससे नासिका को॰ चक्षुस्ते इससे आंखोंको॰ श्रोत्रंते इससे कानोंको। ये मुखादिक तेरे पूरितहों॥का॰६॰६॰६॰य त्ते ६॰से सव अवशिष्ट अंगोंका अनुषिंचन करें॥ हे पशो जो तेरे क्रूर, बंधन निरोधादिक हमने किये

† मनःशब्दके विलिंगहोने (शिरकहने) से इसका विनियोग कहा वाक्ते इत्यादिक मंत्रोंका लिंग से विनियोग सिद्धहै इसकारण सूत्रकारने न कहा॥

† वा-मि॰अ॰प्रा-मि॰इ॰च-मि॰उ॰श्रो-मि॰ऋ॰ना-मि॰लृ॰मे-मि॰आ॰पा-मि॰ई॰च-मि॰ऊ॰१४॥
‡ म-मू॰अ॰वा-मू॰इ॰प्रा-मू॰उ॰च-मू॰ऋ॰श्रो-मू॰लृ॰य-तु॰आ॰श-भ्यः॰ई॰ओ-स्व॰ऊ॰स्व-सी॰॥१५

और जो छेदादिक करने को शामित्रा उपस्थित है सो सब तेरे पूरित हों। किं
च सो सब संहत अर्थात् संघात में अनुन्न हों सो सब तेरा शुद्ध हो॥ शम
होभ्यः दे॰-द्व॰ लिंगोक्त का॰ ६.६.७. पशुके जंघा ओपर पान्नेजन के शे
ष जल को सींचै॥ अर्थः॥ दिवसादिकाल विशेषों में सुख हम को वा प
शु को हो॥ ओषधेया॰-गा॰ तृण दे॰ का॰ ६.६.८. अध्वर्यु पशुको ऊंचा
करि नाभि के आगे चारि अंगुल त्यागि के प्रागग्र तृण रखे इति सूत्रा
र्थः॥ मंत्रो व्याख्याता अध्या॰ ४.१०॥ स्वधिते दे॰ ज॰ असि दे॰ का॰ ६.६.
७. किये हुए चिन्ह घी से चुपरी हुई असि की धारा, तृण के ऊपर असि
की धारा को रखकर चुपकैसे तृण सहित उदर की त्वचा को छेदै॥ अ
र्थः॥ इस पशु को हे असि मति हिंसे॥ १५॥

रक्षसाम्भागः॥ रक्षसाम्भागोसि निरस्तꣳ रक्षꣳ इदमहꣳ रक्षोभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोवबाधꣳ इदमहꣳ रक्षोधमन्तमोनयामि॥ घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायोवेस्तोकानामग्निराज्यस्यवेतु स्वाहा स्वाहाकृतेꣳ ऊर्द्ध नभसम्मारुतङ्गच्छतम्॥ १६॥ +

रक्षसां॰ या॰-गा॰ लिंगोक्तम् का॰ ६.६.७. जो तृण नाभि के अग्र में स्थाप
न किया तिस छिन्न तृण के अग्र को वाम हस्त में रखकर दक्षिण हस्त में मू
ल को रख तिसे दुहरा कर अग्र और मूल को पशु छेदन से निकाले रक्त
सें लेपे॥ अर्थः॥ हे लोहिताक्त तृण तू राक्षसों का भाग है॥ निरस्तम् दे॰ पं॰
बृ॰ रक्षोघ्नम् का॰ ६.६.१०. लोहिताक्त तृण को उत्कर में फैंके॥ जो यज्ञवि
घातक राक्षस है तिसे त्याग किया॥ इदमहम् यजुः का॰ ६.६.११. उत्क

+ र-सि।अ॰।नि-क्षः।इ॰।इ-मि।ज॰।घृ-मृ।क्र॰।वा-म्।ल॰।म-हा।आ॰।स्वा-मृ।ई॰।१६

रमें फेंके रुधिरक्त तृण को यजमान पैरसे दाब करि खड़ा हो ॥ जो तृण रूप राक्षस का अध्वर्यु ने त्याग किया तिस इस राक्षस को मैं यजमान पैरसे दाव खड़ा होता हूं । कुछ खड़ा ही नहीं होता किंतु मैं इस राक्षस का अवाचीन जैसे होते से नाश करता हूं किंच मैं इस राक्षस को नरक में पहुंचाता हूं ॥ घृतेन॰ या॰ ज॰ द्यावा पृथिवी दे॰ का॰ ६॰ ६॰ १२॰ पशु के उदर से वपा को निकाल तिस वपा से वपाश्रयणीयों को आच्छादन करै ॥ वपाश्रयणीयों को द्यावा पृथिवी की उपमा दे कहते हैं । हे द्यावा पृथिवी तुम घृत (उदक) करि आत्मा को आच्छादन करो ॥ यह आहुति परिणाम का अभिप्राय है ॥ तथाचोक्तम् तेवाऽएते ऽआहुती हुते ऽउत्क्रामतइत्युपक्रम्याहुति परिणाममिदं जगदिति ॥ वायो॰ या॰ गा॰ वायुर्दे॰ का॰ ६॰ ६॰ १५॰ वाम हस्त में रखे तृणाग्र को आहवनीय में डाले ॥ हे वायो तू स्तोकों (वपा संबंधियों) को जान कर पीदूत्यर्थः ॥ ते यहांठे रेहें अग्निराज्यस्य या॰ वृ॰ आग्नेयसूक्ता॰ ६॰ ६॰ १७॰ स्रुवा करि वपा का होम करै ॥ आहवनीयाग्नि आज्य का पान करो स्वाहा सुहतमस्तु ॥ स्वाहाकृते॰ आसु॰ गा॰ वपाश्रपण्यो दे॰ का॰ ६॰ ६॰ २८॰ वपा को होम कर उत्तर में बैठि वपाश्रपणीयों को आहवनीय में डाले तिसका प्रकार यह है कि विशाखा (द्विशृंगा) को प्रागग्र डाले औ एक शृंगा को प्रत्यग्र इति ॥ स्वाहाकार से आहुति भाव के उपगत होकर तुम वायु को प्राप्त हो औ । कैसी हो कि नभ (आकाश) के विषें वर्त्तमान हो ॥ १६ ॥

इदमाप ॥ इदमा॑पः॒ प्रव॑हताव॒द्यञ्च॒ मल॑ञ्च॒ यत् ॥ यच्चा॑भिदुद्रोहानृ॑तं॒ यच्च॑ शेपे॒ऽअभी॒रुण॑म् ॥ आपो॑ मा॒तस्मा॑दे

नेसः पवमानश्च सुञ्चतु ॥ १७ ॥

अब्देवत्या त्र्यवसाना महापङ्क्तिः पावमानश्चान्त्यः पादः का॰ ६ ६॰२९॰ सब ऋत्विज यजमान चात्वाल के समीप में जल से आत्मा (अपने) को मार्जन करें॥ हे आपः, जल इस पशु संज्ञपन निमित्त पाप को वहाओ किंच जो कुछ अन कहने योग्य, अभि प्रापादि और जो मल, शरीर का मैल तिसे दूर करो॥ किंच जो हमने अनृत कहा द्रोह किया और अनपराधी प्रति जो हमने शाप दिया आपः, जल तिस पाप से हम को पृथक कीजियें और पवमान अर्थात् सोम वा वायु तिस पाप से मुझे छुडाओ ॥ १७ ॥

अ॰ ४ संते॥ सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् ॥ रेड स्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्या ऽ ऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतन्द्वेषः ॥ १८ ॥ +

संते॰ प्राजापत्या नुष्टुप् हृदय देवम् का॰ ६॰ ८॰ ६॰ जुहूस्थ पृषदाज्य करि पहिले हृदय को अभिघारन करि चुप के से सब पशु को अभिघारन करै॥ हे हृदय पृषदाज्य करि अभिघारन से तेरे पशु का मन देवताओं की मनसा के संगत है। और तेरे प्राण अभिघारण किये से देवताओं के प्राण करि संगत हैं। रेड सीति आर्षी–पं॰ वसा दे॰ का॰ ६॰ ८॰ १२॰ मांस पाक करने के भांड में स्थित स्नेहात्मक द्रव्य विशेष (वस) को ग्रहण करै॥ हे वसे तू अल्प है। अग्नि तुझे पाक करि भूयसि करै अथवा आहवनीअग्नि तुझे स्वीकार करै किंच जल तुझे पोषे अथवा जल तुझको अच्छे

+ सं–मू। अ॰ रे–तृ। इ॰ प्र–ष॥ ज॰॥ १८॥

प्रकार प्राप्त हो अर्थात् तेरा शोष मतहो। जलही पच्यमान पशु के अंगों से जो रस उत्पादन कर्ताहै उसे वसा कहते हे तिस तुम्हें गृहण कर्त्ताहूं इतिशेषः। किसलिये कि वातकी अन्तरिक्षमें गति हो यह- तथा आदित्य की द्युलोक में गतिहो यह अर्थात् वायु आदित्य के अप्रतिहत गमन की सिद्धि के अर्थ तुम्हें गृहण कर्त्ता हूं। किंच ऊष्मणो, अन्तरिक्ष को वसा व्यथा करे अथवा ऊष्मा व्यथा को प्राप्त हो अर्थात् वसा को पीके त्रिषा के वढाने से जैसा रहै तैसा वसारूप हवि हो। अंतरिक्षस्य हविरसि २९. होमके मंत्र में। अर्थात् यह वसा अन्तरिक्ष की तृप्ति करिके अतिरिक्त हो और अन्तरिक्षकी तृप्ति होने से वायु और सूर्य्य की अपने कर्म्म में कुशलता होतीहै तिस हेतु वातस्यत्वा ध्राज्या इत्यादि कहते हैं॥ प्रयुतंद्वेषः दै०-पं. लिंगोक्त दे० का०६.८.१२. असि वा कटारी करिके वसा और घी को दोवार मिलावे। वसा से घी मिलाने के कारण द्वेष दौर्भाग्य प्रथक हुआ॥१८॥

घृतङ्घृतपावानः॥ पिवत वसां वसा पावनः पिवता न्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा॥ दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥१९॥ †

घृतमित्यार्षी-पं. वैश्वदेवम् का०६.८.१७. वसाहोम हवनी करि वसा का एक देश होमे॥ अर्थः॥ वसा को दो विरियां अभिघारण करने से घृत कहते हैं॥ हे घृत के पान करनेवाले तुम घृत को पीओ। हे वसा के पीने वाले तुम वसा को पीओ। ऐसे देवता ओंसे क

† घृ-हा। अ०दि-शः। इ०प्र-शः। उ०आ-शः। ऋ०वि-शः। लृ०उ-शः। आ०दि-

हिके वसा प्रति कहताहै हे वसे तू अंतरिक्षका हविहै स्वाहा सुहुतमस्तु का० ६ ८ २१ जैसे शेष वाजिन फटे दूधके पानी से दिशाओंकाव्या धारण कहा तैसैही यहांकरे तद्यथा का० ४ ४ १६ १७ दिशाओं कों व्याघारण करै दिशः इति प्रति मंत्र करिच्यारों को पहिले प्रदक्षि णाकरि उद्दिशः दिग्भ्यः सेक्रमपूर्वक अग्नि के वीच और पूर्वभाग में व्याघारण करै षट् दिग् देवतानि १ ६ दे० उ० २ ३ ४ ५ दे० अ० का० ४ ४ १८ स्वाहाकारकासर्वत्रयोजन करै॥ अर्थः॥ दिग्भ्यः स्वाहा १ प्रदिग्भ्यः स्वाहा २ आदिग्भ्यः स्वाहा ३ विदिग्भ्यः स्वाहा ४ उद्दिग्भ्यः स्वाहा ५ सर्वाभ्यः दिग्भ्यः सुहुतमस्तु अर्थात् उक्त दिशाओं को सुहुतहो॥ १९॥

ऐन्द्रः प्राणः॥ ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रः उदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः॥ देव त्वष्टर्भूरि ते सःसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति॥ देवत्रा यन्तमवसे सखायोनु त्वा माता पितरो मदन्तु॥ २०॥ +

ऐन्द्रः प्राणः पश्वङ्गं प्राणदानम् लिंगोक्तम् यजुः का० ६ ८ १ पशु रूप हवि का स्पर्श करै॥ अर्थः॥ इन्द्र आत्मा के संवंधी प्राण प्राणवायु इस पशु के सव अंगों में निधीद्यत् धारणकरै। तथा इन्द्र संवंधी उदान वायु पशु के समस्त अंगो में निधीत डाला ऐसे इस यजु करि पशु के अंगो में प्राण देके त्वष्टा से कहताहै॥ देवत्वष्ट रिति त्वाष्ट्री त्रि०॥ हे त्वष्ट नामा देव जो पशु के अंगोंका समानल क्षण छेदने से नाना रूप हुवा वोह सव तेरे अनुग्रह से अत्यन्तकरि अच्छे प्रकार एक हो॥ फिरि पशु को कहता है। हे पशो ऐसे प्राणों

+ ऐ० त०। अ० दे० तु० इ०। २०॥

और अंगो के इस मंत्र करि हढकिये देवताओं प्रति जाते हुए तुरूको मित्रभूत इतर पशु और माता पिता अनुमदन्तु॰ अभ्यनु जानन्तु जाने। अथवा अवसे॰ तुम्र करिकै अपने सब कुल को स्वर्ग पहुंचा जानें॥ २०॥

अ॰ ५ समुद्रङ्गच्छ॥ समुद्रङ्गच्छ स्वाहान्तरिक्षङ्गच्छ स्वाहा देवᳬं सवितारङ्गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा हो रात्रे गच्छ स्वाहा छन्दांᳬसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञङ्गच्छ स्वाहा सोमङ्गच्छ स्वाहा दिव्यन्नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरङ्गच्छ स्वाहा मनो मे हार्द्दि यच्छ दिवन्ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीम्भस्मनापृण स्वाहा॥ २१॥ †

का॰ ६॰ ८॰ १० होम किये हुए अनुयाजों से पूर्व स्थापित गुदा के तीसरे भाग को प्रति प्रस्थाता इग्यारह खंड का टि प्रति मंत्र करि होमें समुद्रं लिंगोक्तानि द्वादश २॰ ६॰ ११॰ या॰ — उ॰ २॰ प्रा॰ — गा॰ ३॰ ११॰ या॰ पं॰ ४॰ ७ या॰ — त्र॰ ५॰ १० या॰ — अनु॰ ८॰ ८॰ या॰ — गा॰॥ अर्थः॥ हे हविगुदा के अवयव रूप तू समुद्रादि नामा देवताओं प्रति प्राप्त हो॰ तृप्ति के अर्थ इति शेषः। स्वाहा सुहुतमस्तु॥ का॰ ६॰ ८॰ ११॰ प्रति वषट्‌कार करि एक एक गुदा के कांड को होम कै सब के अंत में २ वें से मुख को स्पर्श करै॥ अर्थः॥ हे समुद्रादि देवता समूह हृदय संबंध। मेरे मन को यच्छ अर्थात् निवद्ध करो निवद्ध मन अपने स्थान से न टरै। दिवन्ते॰ आर्षी॰ — उ॰ स्वरुदैवतं का॰ ६॰ ८॰ १२॰ अनुयाज के अन्त में स्वरु को होमें॥ अर्थः॥ हे स्वरो तेरा धूंआं वृष्टि के अर्थ

† स—हा। अं॰। अ—हा। दे॰। दे—हा। उ॰। मि—हा। ऋ॰। अ—हा। ल॰। छ—हा। आ। द्या—हा। ई॰। य—हा। ऊ॰। सो—हा। ऋ॰। दि—हा। ल्ट॰। अ—हा। क॰। म—छ। च॰। दि—हा। ह॰। २१॥

द्युलोक को जावे। तेरी ज्वाला आदित्य वा अन्तरिक्षको जावे। भस्म करि पृथिवी को सब ओडी से पूरि। स्वाहा सुहुतमस्तु॥२१

मापः॥ मापो मौषधीर्हिंᳬसीर्धाम्म्नोधाम्म्नो राजँस्ततो
व्वरुणनोमुञ्च॥ यदाहुरघ्न्या ऽइतिव्वरुणेति शपामहे त
तोव्वरुणनोमुञ्च॥ सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु
दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च व्वयन्द्विष्मः॥२२†

मापोदे॰-ज॰हृदयशूल दैवतं का॰६।१०।३। जल में प्रवेश करि आलब्ध किये हुए पशु का हृदयस्थ मांस जिसमें पाक किया वोह हृदय शूल तिस हृदय शूल को, शुगसि॰ मापः-दोनों मंत्रों करि शुष्क आर्द्र भू प्रदेश की सन्धि में अधोमुख डाले॥ अर्थः॥ हे हृदय शूल तू जल और ओषधी को मत हिंस॥ धाम्नो-धाम्न साम्नी उष्णि॰ वरुण दे॰, यदाहुर्वारुणी गायत्र्य नवसाना, सुमित्रियानः यजुः आपोदे॰, का॰६।१०।५। समस्त ऋत्विग्यजमान धाम्न-सुमित्रियान-दोनो मंत्रों से जल का स्पर्श करें॥ अर्थः॥ हे राजन् वरुण जिन-जिन तेरी पाश सहित स्थानो से हम डरे तिन-तिन स्थानों से हम को छुडाय। अघ्न्या गोसे कहिते हैं निघं २।११। परन्तु यहां अनू वन्ध्या लेना बहुवचन बहुतों के अर्थ में और एक अनूवंध्या के पक्ष में पूजा के अर्थ है॥ अघ्न्या इति यदाहुः-वेद स्मृति लोकोंके वाक्य अघ्न्या अहंतव्या अर्थात् अवध्या पूजनीया पूजाके योग्य यह कहिते हैं। इस करने से वाक्य का अर्थ अभिनय करि दीखता है॥ हे वरुण हमने इति शपामहे, इस विधिकरि अघ्न्या को हिंसा किया

† मा-सी॥अ॰धा-च।इ॰य-च।उ॰सु-ष्म॥नर॰।२२॥

अर्थ इस हेतु तुम्हें याच्चा करते हैं कि हे वरुण जिस अघ्या वधजात पापसे हम को छुड़ाय॥ सुमित्रिया:॥ जल और ओषधी हमारे अर्थ सुमित्रिया: साधु मित्रत्व करि अवस्थित हूजियों। जो शत्रु हमसे द्वेष करै और जिस शत्रु से हम द्वेष करें तिन दोनों प्रकार के शत्रुओं के अर्थ आप और ओषधी दुर्मित्रिया अमित्रत्व करि अवस्थित हूजियों॥ का॰ ६॰ १०॰ ६॰ ७॰ अथवा धाम्नो धाम्न यह मंत्र प्रलोप गूहन मंत्र का शेष और सुमित्रिया यह मंत्र जल के अभिमन्त्रण के अर्थ॥ पूर्वोक्त सूत्र के साथ इस का विकल्प है और का॰ ६॰ १०॰ ५॰ का कर्म काण्व शाखा वालों का और यह माध्यन्दिनी शाखा वालों का॥ ॥२२॥ इति भाष्ये तृतियो नुवाकः॥ एवमग्नीषोमीयःपशुः समाप्तः॥

अथ सोमाभिषव युक्तानां वसतीवरीसंज्ञानामपां गृहणमभिधीयते

अ॰ ६ हविष्मतीरिमाः॥ हविष्मतीरिमा आपो हविष्मा २ँ॥ आविवासति॥ हविष्मान्देवो अध्वरो हविष्मा २ँ॥ अस्तु सूर्यः॥२३

का॰ ८॰ ९॰ ७–१०॰ अग्नीषोमीय पशु के वपा मार्जन पर्यन्त कर्म किये पीछे विना अस्त हुए सूर्य के वहते हुए जल के एक देश से वसती वरी संज्ञक सोम के अर्थ हविष्मतीः इस मंत्र करि जल ग्रहण करै। जो रवि अस्त को प्राप्त हुआ और यजमान पुराना सोम याजी तो घर मे ही खोदे हुए मणि का (तडाग) से वसती वरी को ग्रहण करै। और जो यजमान पहिला सोम याजी नहीं तो समीप में स्थित अन्य सोम याजी के मणि का से ग्रहण करै। अपने और अन्य के यज्ञ कर्त्तृत्व के अभाव में उल्का वा कनक को वहती हुई जल के समीप रख वहती हुई से वसती वरी का ग्र

+ अथातिमरक्ष्यन्ति सुमित्रिया न इति। शत॰ ३।८।५।८

हण करै॥अनुष्टुब्लिङ्गोक्तदेव० ॥ अर्थः॥हवि करि संयुक्तयजमानहवि संयुक्ता इस जल की वसती वरी की परिचर्या करता है – जब कि यज्ञका शिर छेद हुआ तिसका रस चलकर जल में प्रवेश करता हुआ † इसहेतु जल को हविष्मत्व है – तिस कारण द्योतमान अध्वर (याग) भी अपने शरीर की निष्पत्ति के अर्थ जल करि के हविष्मान् हो॥ किंच सूर्य देव भी यजमान के फलदान और तृप्तिके अर्थ हविष्मान् होवै। एतस्मैवै गृह्णाति यऽएषतपतीति शत० ३.९.२.१२. इस श्रुति से वसती वरी करि सूर्य का हविष्मत्व है ॥२३॥

अग्नेर्वः॥ अग्नेर्वोपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषान्देवानाम्भागधेयीस्थ॥ अमूर्य्याऽउपसूर्येयाभिर्वासूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥२४॥ †

चत्वारि यजूᳪंष्यब्देवत्यानि अग्नेर्वः आसु–गा०का०८.९.११. नूतनगार्हपत्य से पश्चिम भाग में तिस वसती वरी का आसादन करै॥ अर्थः॥ हे वसती वरी तुम को शाला द्वारीय अग्नि के निकट स्थान में स्थापन करता हूं॥१॥ इन्द्राग्न्योः प्रा–गा०का०८.९.१८. शालाद्वार्य समीपस्था वसती वरी को ले शाला के दक्षिण द्वार में होकर उत्तर वेदी के दक्षिण श्रोणीपर रखै॥ हे वसती वरी तुम इंद्राग्नी देवताओं का भाग रूपा हो ॥२॥ मित्रा०द्वे ३.४.या–त्रि०का०८.९.२१. २२. पूर्ववत् इन्द्राग्न्यो इस मन्त्र अथवा मित्रावरुणयो इस मंत्र से उत्तर वेदी के उत्तर श्रोणीपर वसतीवरी को रखै॥ हे वसती वरी संज्ञक जल तुम मित्रा वरुण देवताओं

† शत०३.९.२.१. यज्ञस्य शिरोऽछिद्यतेति॥

† अ–मि।अ०।इ–स्था।द्वामि–स्था।उ०।वि–स्था।त्र०।अ–मू।ल०॥२४॥

काभाग रूपाहो ॥३॥ का॰८॰८॰२३॰ विश्वेषां देवेनां ४ करि उत्तर वेदीकी श्रोणीमेंसे वसती वरी को लेकर आग्नीध्रीय के पीछे रखै ॥हे वसती वरीतु म सब देवताओंकी भागरूपाहो ॥ ४॥ यह अभिनय से दिखला कर कहता है। अमूर्य्याः ऋक् मेधा तिथि दृष्टा अब्देवत्या पादनृच्च द्गायत्री। जोप्र सिद्ध दृश्यमान वसती वरी नामा जल सूर्य्य के समीप में स्थित है। विभक्ति व्यत्तयः वा शब्दः समुच्चये। और जिस जल सहित सूर्य्य चलता है सो जल हमारे यज्ञको तृप्तकरो ॥२४॥ इति भाष्ये षष्टो नुवाकः ॥६॥

अ॰७ हृदेत्वा॥ हृदेत्वामनसेत्वा दिवेत्वा सूर्य्यायत्वा॥ ऊर्ध्वमिममध्व रन्दिविदेवेषुहोत्रायच्छ॥२५॥

सोम देवत्यानुष्टुप् का॰९॰१॰५॰ आज्य सादन पर्यन्त कर्म करिके सोम ले हविर्धान मे जाकर सोम को खोलि तिसके आधे को दक्षिण शक टके नीचे के चर्म के ऊपर अभिषवण के अर्थ पाषाणों के स्थूलभागमें रखै॥ हे सोम हृदे बुद्धेः निश्चयात्मिका अर्थात् यह मेरा हो ऐसीका मरूपा के अर्थ तुझे उपा वह रामि अभिषवण करता हूं। सङ्कल्पविक ल्यात्मक मनके अर्थ तुझे उपावहरण करता हूं। द्युलोककी प्राप्तिके अर्थ तुझे ० हू। सूर्य को आगे दे देवता ओंकी तृप्ति के अर्थ तुझे ० हूं॥ अथवा यह अर्थ॥ हे सोम हृदय वद्धः मनुष्यों के अर्थ। मनस्विभ्यः पितरों के अर्थ। द्युलोक वासी देवताओं और विशेष करि सूर्य के अर्थ त्वा सुपावहरामीति शेषः यह तित्तिरिमें कहा॥ सवा अध्वर्युः सोम सुपावहरन्त्सर्वाभ्यो देवताभ्य उपावहरे दितिहृदेत्वेत्याह मनुष्येभ्य एवैतेन करोति मनसेत्वेत्याह पितृभ्य एवैतेन करोति दिवेत्वा सूर्याय

त्वेत्याह देवेभ्य एवैनेन करोत्येतावतीर्वै देवता स्ताभ्य एवैनꣳ सर्वाभ्य उपा वहरतीति॥ किंच ऐसे उपा वहरण और अभिषवण किया तू मेरे यज्ञ को उत्कृष्ट द्युलोक मे वर्त्तमान देवता ओं प्रति होत्राः॰ वषट्कारवादी सातो होताओं प्रतिनिवद्ध करि॥ २५॥

सोम राजन्॥ सोमं राजन्विश्वा स्त्वम्प्रजा ऽउपावरोह विश्वास्त्वा म्प्रजा ऽउपावरोहन्तु॥ शृणोत्वग्निः समिधा हवम्मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः॥ श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवम्मे स्वाहा॥ २६॥ †

सोम राजन् सा–उ॰ सोम दे॰ किंच। हे सोम राजन् समस्त प्रजा के आधिपत्य को करि॥ विश्वास्त्वाय:– त्रि॰का॰४॰ १·६· ग्रावाणों के ऊपर स्थापित सोम को छोडि उपस्थान करै॥ हे सोम समस्त प्रजा तुझे प्रत्युत्थान (अभिवादन) आदि करि प्राप्त हो॥ शृणोत्वग्निः त्रिष्टुभ् लिंगो दे॰ का॰९॰२·२४॰–३·१· अभूत् इस मंत्र से होत्रा करि प्रास्थान अध्वर्य्यु प्रचरणी संज्ञक स्रुवा से चारिवार आज्य कोले अति प्रणीता में होम करै॥ अग्निः समित् पूर्वक आहुति कर मेरे आह्वान को सुनो जल मेरे आह्वान को सुनियों। और वाक् देवी मेरे आह्वान को सुनियों। तृतीय पाद को प्रत्यक्ष करि कहते हैं। हे ग्रावाणो अभिषव के अर्थ यहां उपस्थित तुम मेरे आह्वान को सुनो। जैसे विद्वान प्रत्यक्ष करि यज्ञ को सुनते हैं तैसें तुम सुनों तथा सविता देव मेरे आह्वान को सुनों स्वाहा सुहुत मस्तु अथवा स्वा (वाक्) आह, वचन कहते हैं॥ २६॥

† सो–हा॰अ॰। वि–त्रु। इ॰। शृ–हा। उ॰ २६

देवी राप॥ देवी रापो ऽ अपान्न पाद्यो वं ऽ ऊर्म्मिर्हे विष्य ऽ इन्द्रिया वान्म दिन्तम॥ तन्देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्योयेषा म्भागस्थ स्वाहा॥ २७॥

अब देवत्या पंचपदा पंक्तिः का० ६० ३० ७० जिस चारि वार लिये आज्यको साथ लिया तिसै जल प्रति जाइ के होमें॥ अर्थ॥ हे आपो देवी तुम्हारा अपांनपात् आपत्य रूपजो यह ऊर्मि अर्थात् अपसङ्घात ऽ कल्लोल है तिस देवता औं प्रति जाने योग्य ऊर्मिको देवता औंके अर्थ देओ कि जिनदेवता ओं का भाग रूप हो। कैसाहै ऊर्मि कि हविष्य तथा इन्द्रियवान अर्थात् पीनेही इन्द्रियों के वीर्यकी वृद्धि करने वाला तथा मदिन्तमः पीने वाले को अत्यन्त हर्ष करने वाला ऽ अतिशय तृप्त करने वाला। कैसे देवता ओं के अर्थ कि शुक्रपेभ्यः अर्थात् शुक्रादिक सोमग्रहों केपीने वाले अथवा शुक्र (दीप्ति ऽ सोम) के पीने वाले। स्वाहा यह आज्य तुमको हुतहो॥ गृहीष्यमाण जलके मूल्यत्व करि यह आहुति तित्तिरिने कही। देवीरापो ऽ अपां नपा दित्याहा हुत्या वै निष्क्रीय गृह्णातीति॥ २७॥

कार्षिरसि॥ समुद्रस्य त्वाक्षित्या ऽ उन्नयामि॥ समापो ऽ अद्भिरग्मत समोषधी भिरोषधीः॥ २८॥ †

कार्षिरषित्यादि तीनि मंत्रोंको मिलाकरि अनुष्टुभ छन्द पहिलेका आज्य दे० का० ६० ३० ८० जल में होमे आज्य को कार्षिरसि इस मंत्रकरि मैत्रा वरुण चमस से दूरिकरे॥ हे आज्य पदार्थ तू कार्षि ऽ आकृष्ट अर्थात् देवता करि भक्षित है अथवा अन्तर्गत शमलापकर्षक नेताहै। तदाह तित्तिरिः। कार्षिरसीत्याह शमलमे वासामपप्लावय

का० सि। अ०। स-मि। द्वृ०। स-धीः। उ०॥ २८॥

तीति॥ का० ९·३·९· समुद्रस्य त्वा इस करि मैत्रा वरुण चमससे तडागादिस्थ जल को ग्रहण करै। इे यजुषि आपे। आपो वै समुद्र श्रा० ३·९·३·२७·॥ वसती वरी लक्षण जल को अक्षीणत्व के अर्थ हे जल तुम को गृहण करता हूं॥ वसती वरी की वृद्धि के अर्थ इस जल को गृहण करते हैं॥ का० ९·३·१२· समाप इस करि जलाशय से लोटि चात्वाल के ऊपर मैत्रा वरुण चमसस्थ जल को वसती वरी में संयोजन करै॥ मैत्रा वरुण चमसस्थ जल अद्भिः॰वसती वरी में मिलो तथा मुञ्जम सूरादिक ओषधी व्रीहि यवादिक ओषधियों में संगच्छ ताम्॰ मिलो। जल को कारण होने से ओषधियों को भी योग हो॥ अ॥

यमग्ने॥ पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः॥ सयन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा॥ २९॥

आग्नेयी गायत्री मधुछन्दो दृष्टा का० ९·३·१६· अग्नि ष्टोम संस्थक्रतू में प्रचरणी पात्र लिप्त आज्य शेष को होम करै शेष आज्य की होम पर्याप्त के अभाव में चारिवार लिये आज्य को लेकर होमें इति सूत्रार्थः हे अग्ने संग्राम में जिस मनुष्य को तू रक्षा करै किंच हवि लक्षण अन्न में॰अन्न के निमित्त जिस पुरुष को तू प्राप्त हो अर्थात् ग्रहण करि कें जिसके पास पहुंचै। सो मनुष्य तेरे अनुग्रह सें नित्यनित्य अन्न धन को प्राप्त होगा स्वाहा सुहुतमस्तु॥ उक्थ्य मे स्थित यमग्ने इस मंत्र से पहले परिधिका स्पर्श करै॰ षोडशी में रराटी का अति रात्रि में छदी का स्पर्श करै अन्य कर्म विषे हविर्द्धान में प्रवेश करै॥ २९॥ इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोनुवाकः॥ ७॥

अ॰ ८ दे॒वस्य॑ त्वा ॥ स॒वि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
आद॑दे॒ रा॒वा॑सि॒ ग॒भी॑रमि॒मम॑ध्व॒रं कृ॒धीन्द्रा॑य सु॒षूत॑मम् ॥
उ॒त्त॒मेन॑ प॒विनो॒र्ज॑स्वन्तं॒ मधु॑मन्तं॒ पय॑स्वन्तं निग्रा॒भ्या॑
स्थ देव॒श्रुत॑स्त॒र्पय॑त मा॒ मनो॑ मे ॥ ३०॥ +

देवस्यत्वा॰ अ॰ — इ॰ आददे॰ यजुः ग्रावा दे॰ का॰ ८॰ ४॰ ५॰ ६ सोमके अभिषव के हेतु पाषाण को ग्रहण करिकें हिंकार से पहिले मौन होनेसे तिस पाषाण की उपांशु सवन संज्ञा है उपांशु ग्रह के अर्थ जिनहोंसे सोमका सवन कर्ते हैं ॥ अर्थः ॥ देवस्यत्वा व्याख्याता अ॰ १ का॰ ८ ॥ हे अभिषवसाधन पाषाण तू आहुति और दक्षिणा का दाता है तिस हेतु इस मेरे याग को महान्न करि: तु रु उत्कृष्ट वज्र सदृश से मैं सोम से ऐसा करूं कैसा कि इन्द्र के लिये अतिशय करि अच्छा अभिषुत तथा रसवन्त मधुमन्त पयः स्वादु करि युक्त अर्थात् ऐसे सोम को तुम्हसे मैं करूं। निग्राभ्योयजुः आपो दे॰ का॰ ८॰ ४॰ ७॰ अभिषवन कर्ते सोम के सेवनीय जल को निग्राभ्या कहते हैं तिस के गृहण कर्ते अध्वर्यु पढे अथवा यजमान निग्राभ्या को अपने उर से आलम्भन करि मंत्र को पढे अर्थः ॥ हे जल तुम हम लोगों करि निरन्तर ग्रहण करने योग्य हो जिस हेतु इन्द्र के उरु करि तुम गृहण किये तिस हेतु निग्राभ्य हो। देवश्रुतः देवताओं में प्रख्यात तिस हेतु वहुत मान और नाम युक्त तुम मुझसे प्रीति करो ॥ ३०॥

मनो॑ मे ॥ त॒र्पय॑त॒ वाचं॑ मे त॒र्पय॑त प्रा॒णं मे॑ त॒र्पय॑त॒ चक्षु॑र्मे
त॒र्पय॑त॒ श्रोत्रं॑ मे त॒र्पय॑ता॒त्मानं॑ मे त॒र्पय॑त प्र॒जां मे॑ त॒र्प॑

+ दे॰ – मू॰ अ॰ — आ – मृ॰ इ॰ नि – मा॰ उ॰ ॥ ३०॥

यत पुश्रून्मे तर्प्पयत गणन्मे तर्प्पयत गणा मे मा वितृषन्॥ ३१॥

यजुः ऐसे समास से कहकर व्यास से कहते हैं मेरे मनः॰ वाचं॰ प्राणं॰ चक्षुः॰ श्रोत्रं॰ तर्प्पयत अर्थात् मेरी मन से आदि ले इन्द्रियों से प्रीति करो। ऐसे विस्तार पूर्वक कहिकर फिर संक्षेप से कहते हैं आत्मा (शरीर) प्रजा (पुत्रादि संपत्ति) पशु (गवादिक) और गण (मनुष्यों) से प्रीति करो मेरे मनुष्य समूह मावितृषन् मुझकरि हव्य दान से पूरित हुए भी विगत तृष्णा मत हूजियें अर्थात् में अनुरक्त गण होंऊं यह यजमान आशीष चाहता है॥ ३१॥

इन्द्रायत्वा॥ इन्द्रायत्वा वसुमते रुद्रवतऽ इन्द्रायत्वादित्यवतऽ इन्द्रायत्वाभि मातिघ्ने॥ श्येनायत्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे। ३२ इ–ते। अ॰। इ–ते। इ॰। इ–घ्ने। उ॰। श्ये–ते। क्र॰। अ–दे। ल॰

पंच यजूंषि सौम्यानि १॰ सा॰–गा॰ २॰ ३॰ ४॰ प्रा॰–गा॰ ५॰ या॰–त्रि॰ का॰ ७॰ ८॰ ८॰ उपांशु सवन॰ पूर्वोक्त पाषाण को अधिषवण चर्म्म पै रखि कर तिसके ऊपर पांच मंत्रों से पांच वार अभिषोतव्य सोम की पांच मुष्टि डाले॥ अर्थः॥ तत्राद्यां हे सोम इन्द्र के अर्थ तुझे मान कर्त्ता हूं इति शेषः॥ कैसे इन्द्र के अर्थ कि वसुमते॰ वसुसंज्ञक प्रातस्सवन देवता युक्त के अर्थ। रुद्रवते रुद्र नामक माध्यंदिन सवन देवतायुक्त के अर्थ। अथ द्वितीयां आदित्य नामक तृतीय सवन देवता युक्त इन्द्र के अर्थ हे सोम तुझे मान कर्त्ता हूं। अथ तृतीयां शत्रुओं के मारने वाले इन्द्र के अर्थ हे सोम तुझे मान कर्त्ता हूं। अथ चतुर्थी सोम के लाने वाली श्येन पक्षी रूपा गायत्री के अर्थ हे सोम तुझे मान कर्त्ता हूं।

अथ पंचमं। धनकेदेनेवालेअग्निकेअर्थे हे सोम तुम्हें मान कर्त्ताहूं ॥ ३२॥

यत्ते॥ सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे॥ तेनास्मै यजमानायोरुराये कृध्यधि दात्रे वोचः॥ ३३॥

सोम देवत्या विपरीता बृहती का० ९·४·९· पांचवार प्रक्षेपन किये सोमका स्पर्श करै॥ इस मंत्र का निदान श्रुति में कहा शत· ३·९·४·१२· जब कि सोम देवता ओंका हवि हुआ तब अपने तीनि शरीर इन लोकों में धारण करता हुआ। तिन शरीरों को इस मंत्र से प्राप्त करते हैं॥ अर्थः॥ हे सोम द्युलोक में तेरा जो तेज और जो पृथिवी में तेज अंतरिक्ष में जो तेज शरीर लक्षण तिस तेज से इस यजमान के यज्ञ में बडा अपने शरीर को करि और ऋत्विजों के दक्षिणा की प्राप्ति के अर्थ बडा शरीर को करि किंच यजमान के अर्थ बडे शरीर से मे आया यह कह अथवा इस मंत्र का अर्थ दूसरा है। हे सोम तीन्यो लोकों में जो तेरी ज्योति है तिस ज्योति से इस यजमान के अर्थ धन की समृद्धि से स्थान को करि किंच फल के देने वाले इन्द्र के अर्थ यह कहि कि जो अधिक यह यजमान हो॥ ३३॥

श्वात्रास्थ॥ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः॥ ता देवी र्देवत्रेमं यज्ञन्नयतोपहूताः सोमस्य पिबत॥ ३४॥

पत्थ्या बृहती दो अक्षर बढती का० ९·४·१२· सोम के ऊपर होत्रचमस करि के निग्राभ्या का आसिंचन करै॥ हे जल तुम कैसी हो कैसी कि क्षिप्र कार्य्य करने वाली धन की देने वाली। अमृत सोम की पत्नी पालने वाली। हे देवी दीप्यमान तैसी तुम इस यज्ञ को देवताओं प्रति प्राप्तक

री आज्ञा पाके तुम सोम को पीओ॥३४॥

माभेः॥ माभेर्म्मा सं विंक्था ऽऊर्ज्जन्धत्स्व धिषणे वीड्वीसती वीडयेथा मूर्ज्जन्दधाथाम्॥ पाप्माहतोन सोमः॥३५॥

यजुः अ० इंद्र सौम्य मंद्व द्यावा पृथिव्य का० ७.४.१५ उपांशु सवन के पाषाण से सोम को पीसे॥ हे सोम तुम मति डरोमति कांपो जो कि देवता ओं की तृप्ति के अर्थ में तुम्हे अभिषवण कर्त्ता हूं इस हेतु रस को स्थापन करो॥ ऐसे सोम को संबोधन देकर द्यावा पृथिवी से कहे। हे धिषणे हे द्यावा पृथिवी ओ हमारे पाषाण करि उद्यत होने से तुम दृढ होते अपने को दृढ करो। किंच इस सोम मे रस को स्थापन करो। इस वज्र संस्तुत पाषाण से यजमान का पाप मारा कुछ सोम नहीं मारा॥३५॥

प्रागपाक्॥ प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वादिशऽआधावन्तु॥ अम्बनिष्पर समरीर्विदाम्॥३६॥

सोम देवत्यो ष्णिक् का० ७.४.२० प्रति प्रहार वर्ग में होत्र चमस के बीच सोम के अंशुओं को रखि के प्रागपाक इन निग्राभ संज्ञक दो ऋचाओं को यजमान प्रतिपदै॥ अर्थः॥ सोम दिशाओं से मिथुन की इच्छा करता हुआ और तिसको देवताओं ने संपादन किया तब ये ऋचा कहीं॥ हे सोम प्राक् प्रागञ्चना अपाक् अपागञ्चना अर्थात् दक्षिण और पश्चिम की उदक् उदगञ्चना उत्तर की अधराक् अधराञ्चना ऐसे प्रागादिक सब दिशा ऐं अपने अपने प्रदेश से तुम्हे प्राप्त हों क्या कहि के तुम्हे प्राप्त हों सो कहिते हैं हे अंब हे मात निष्पर अपने भाग से सोम को पूर्ण करि किस प्रयोजन को कि हमारें सोम समागम को अनेक दिशाओं के वासी

जानै ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ॥ नत्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ३७ ॥ इति सं॰ सप्त॰ वाकः ७

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीशाखीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घ पाठे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इन्द्रदेवत्या पथ्या बृहती गोतम दृष्टा ॥ हे अतिशय करि बलवान इन्द्र दीप्यमान तू मनुष्य, यजमान की प्रशंसा करि अर्थात् यह यजमान समीचीन, होता, श्रद्धावान इत्यादिक स्तुति करि । किंच हे धनवान इन्द्र यजमान का सुख करने वाला तुमसे अन्य नहीं है इस हेतु हे इन्द्र तूही सुख करि ऐसे तेरे वचन को हम कहते हैं ॥ ३७ ॥ गिरिप्रसाद सर्वस्वे सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाख्येतृ व्याघ्रपादान्वयविश्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जय किशोर देव वर्म्माज रोहिणेय नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये अग्न्याधानादाचमान्तः षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं हि रूपं च साधनैर्बहु रूपकम्

स्वानंद दायकं कृष्णं ब्रह्म रूप परं स्तुमः १

अ॰ १ वाचस्पतये॥ वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अꣳशुभ्यां ग

भस्ति पूतः॥ देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोसि॥ १॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थ प्रदीपके

उपांश्वादि प्रदानान्तः सप्तमोध्याय वर्ण्यते १

छठवें अध्यायमें यूप संस्कार से आदि ले सोमाभिषव तक मंत्रकहे सातवें में ग्रह ग्रहण के मंत्र कहते हैं। का॰ ९॰ ४॰ २३॰ वाचस्पतये॰ देवोदेवे भ्यः॰ मधुमती॰ तीन्यों मंत्रो से प्रतीक पूर्वक एक एक मंत्र से उपांशु ग्रह को एक एक बार ग्रहण करै उपयामगृहीतोसि यह तीन्यों मंत्रों की आदि में योजे। प्राण देवत्या नष्ट रूपा नुष्टुब्विराट् छन्दः पूर्वोक्त रार्धं योद शैर्न ष्टरूपेति लक्षणा न्नष्टरूपा विराट् प्रथम द्वितीय ग्रहणे क्रमेण विनि योगः। हे सोम तू प्राण के अर्थ जा प्राणो वै वाचस्पति शत॰ ४॰ १॰ १॰ ७॰ अथवा पतये॰ पालक देवता के अर्थ वाचा वा वाचस्संबंधी मंत्र से पव स्व॰ शुद्ध हो। कैसा है तू कि वृष्णः॰ वरसने वाली अपने संबंधी अंशुओं के अर्थ॰ कारण यह तिसकू तहां डालते हैं। तथा गभस्ति पूतः॰ प्राणी वै गभस्ती शत॰ ४॰ १॰ १॰ ७॰ और अध्वर्यु के हाथों करि पूत है॥ द्वि तीयं गृह्णाति॥ हे सोम देव है इस हेतु देवताओं के अर्थ प्रवृत्ति करि

क्योंकि नहीं बिना देवता के देवताओं की तृप्ति करने को समर्थ होता किन देवताओं के अर्थ कि जिन देवताओं का तू भाग है तिन्होंके प्रति जा॥१॥

मधुमतीर्न्नः॥ मधुमतीर्न्न इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मैं ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि स्वाङ्कृतोसि॥२॥ म-धि। अ०य-हा। इ०स्वाहा। उ०। उ-मि। ऋ०।२॥

तृतीयं गृह्णाति मधुमती॰या॰-इ॰लिंगोक्तदे॰॥ हे सोम तू हमारे लिये अन्न को मधुर रसोपेत करि का॰४॰४॰२८॰ यत्ते॰ सोम्यं यजुः स्वीकार किये अंसुओं को सोम मे स्थापन करे॥ हे सोम तेरा अदाभ्यं हिंसारहित जागृवि जागरणशील जो नाम है सो हे सोम तिस नाम सहित तुझ सोम के अर्थ स्वाहा दत्त मस्तु का॰४॰४॰३४॰ स्वाहा॰ उरु इ यजुषि लिङ्गोक्तो स्वाहा ये दो अक्षर कहिकर निकले। उरु॰ विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को अनुसरण करि जाता हूं॥२॥

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा॥३॥ †

का॰४॰४॰३७॰ उपांशु ग्रह का होम किये पीछे पात्र का मार्जन करे उपांशुग्रह दैवतं यजुः प्राणो वा अस्यैष ग्रहः सस्वयमेव कृतः स्वयंजात श॰४॰१॰१॰२२॰ प्राण को उपांशुग्रह कहते हैं॥ हे प्राणरूप उपांशु ग्रह तू स्वाङ्कृत अपने आप किया॰ अपने आप उत्पन्न है कि न्होंसे कि सब इंद्रि

† स्वा-या। अ०। दे-भ्यः। इ०। दे-ट। उ०। प्रा-त्वा। ऋ०। व्या-त्वा। लृ०॥३॥

योंसे और देवताओंसे और पृथिवीके द्विपद चतुष्पदोंसे अपने आप उत्पन्न है जो तू ऐसा स्वतन्त्र तिस तुझको मनः प्रजापति अंशु व्याप्त हूजियो। प्रजापतिर्वै मनः प्रजापतिष्ठा शुनामिति शत० ४।१।१।२२।शोभनहै उत्पत्ति जिसकी ऐसे हे सुभव अर्थात् हे उत्तम जन्मग्रह सूर्यके अर्थ तुझे स्वाहाकार करि होम कर्त्ताहूं॥ अथवा इस होम मंत्रका यह अर्थ है॥ हे प्राणरूप ग्रह तू स्वाकृतोसि अर्थात् मुझकरिके स्वीकार कियागया है किसलिये कि दिव्येभ्यः देवताओंके जन्ममें स्थित हैं तिन्होंके अर्थ पार्थिवेभ्यः मनुष्य जन्ममें स्थित हैं तिन्होंके अर्थ सर्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यः अर्थात् इन्द्रियोंके हितके अर्थ। और तिन इन्द्रियोंका अधीश मन तुझे प्राप्त हो हे सुभव प्राणरूप उपांशु ग्रह तैसे तुझको कहि: प्राणरूप सूर्यके अर्थ स्वाहाकार करिके होम कर्ताहूं। सूर्यका बहि: प्राणत्व अथर्वणकी श्रुतिमें लिखा है आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनु गृह्णीत ऽ इति॥ स्वाकृत शब्दसे प्राणरूप ग्रहका स्वाधीनत्व और दिव्य पार्थिव शब्दसे जन्मद्वय विवक्षित तित्तिरिने कहा। स्वाकृतोऽसीत्याह प्राणमेव समकृत विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यः दिवेभ्यः पार्थिवेभ्य इत्याहोभयेष्वेव देवमनुष्येषु प्राणन्दधातीति॥ का० ९।४।३८। पश्चिमस्थपरिधिमें सोमलिप्त ऊर्ध्वाभिमुख हाथको करिके प्रागभिमुख जैसे तैसे मार्जन करै देवेभ्यस्त्वाया -- न्व० देवं॥ हे लेप मरीचियेभ्यः मरीचिपालक देवताओंके अर्थ तुझ परिधिका मार्जन कर्ताहूं इतिशेषः॥ का० ९।४।३९। वस्त्रादिकमें श्लिष्ट जो सो मांशु तिसे अभिचारके अर्थ होमे॥ देवांशुर्गो लिङ्गोक्त (सोमांशु) दैवतं अभिचारिकं यजुः॥ हे दे

वदीप्यमान हे अंशो सोमांशो जिसके वधके अर्थ तुम्हें प्रार्थना कर्त्ता हूं सो वधकर्म सत्य हूजियो इति शेषः तिस उपरि प्रत् ऊपर आनेवाले भंगेन अमर्दसे असो+ उग्रायुधनामा वैरी हतः मारा हुआ फट् विशीर्णहो। फलतीति फट् डलयो रैक्यं स्वाहाकार के स्थापन पै अभिचार कर्म में फट् का योजन कर्ते हैं॥का॰ ९॰४॰४१॰ जिस प्रदेश में पहिले उपांशु पात्र को स्थापन किया तहांही स्थापन करै प्राणाय त्वेति दे॰ ब्रू॰ गृह दे॰॥ हे उपांशु पात्र प्राण देवता के सन्तोषार्थ तुम्हें आसादन कर्त्ता हूं इति शेषः॥का॰ ९॰४॰४२॰ जिस पाषाण से सोम पीसा सो उपांशु सवन तिस को हाथ से धोकरि उपांशु पात्र के संलग्न स्थापकरै व्यानाय त्वेति॰ दे॰ ब्रू॰ उपांशु सवन दे॰॥ हे उपांशु सवन व्यान देवता की प्रीति के अर्थ तुम्हें आसादन कर्त्ता हूं॥ इति प्रथमोनुवाकः॥१॥

अ॰२ उपयाम गृहीतोसि॥ उपयाम गृहीतोस्यन्तर्यच्छ मघवन्पाहि सोमम्॥ उरुष्य रायऽएषो यजस्व॥४॥

उपयाम गृहीतोस्यन्तर्यैन्द्रम् प्रा॰—त्रि॰ का॰ ९॰६॰१॰ सूर्योदय के अनन्तर में अन्तर्याम ग्रहको ग्रहण करै॥अर्थः॥ उपयाम गृहीतः उपयाम करनेवाला ग्रह तिस करिकें ग्रहण कर्ते हैं सो उपयाम गृहीतः। हे सोमरस तू तैसा है। हे मघवन् धनवान् इन्द्र तू तैसे रसको अन्तर्ग्रह पात्र के बीच में ग्रहण करि। अथवा शत्रु से अन्तर्धान व्यवधान जैसे हो तैसे नियमय परिवेष्टन करि अर्थात् तैसे सोम को पालन करि तथा रायः धन वा पशुओं की रक्षा करि। इषः अन्न वा प्रजा को सब ओडी से दे॥४॥

+ यह वैरी यहां पर यजमान अपने शत्रु का नाम ले जैसे कुरुराज भीष्मपितामह का वैरी पाञ्चाल का उग्रायुध राजा

अन्त स्ते॥ अन्तस्तेद्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्ष

म्॥ सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामेमघवन्मादयस्व॥५॥

मघव देवत्या- त्रिष्टप् अन्तर्य्यामः ग्रहण एव विनियोगः॥ हेमघव

न् तेरे अनुग्रह से द्यावा पृथिवी व्यवधायक कर्त्ताहूं अथवा हे अन्तर्या

म प्राण रूप अविनश्वर तेरेभीतर शरीरकेवीच मे द्यावापृथिवीको स्था

पन कर्त्ताहूं किंच विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को द्यावा पृथिवी के बीचमेंस्था

न कर्त्ताहूं। हेमघवन् धनवान् इन्द्र पृथिवी स्थान के देवताओं और द्यु

स्थान के देवताओं सें समान प्रीतियुक्त होकर अन्तर्याम ग्रह से आत्मा

(अपने) को मादयस्व- हर्षित वातृप्तिकरि॥५॥

स्वाङ्कृतोसि॥ विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो

मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः

उदानायत्वा॥६॥ स्वा-या॰ अ॰ दे-भ्य॥ इ॰ उ-त्वा॥ उ॰।

का॰ ९॰ ६॰ २॰ वर वरण और दान हुत प्रोष का आज्य स्थाली में आसेच

न इन सब पदार्थों को छोडि सब उपांशु ग्रहवत् होताहै॥ स्वांकृतः इस

निःशेष का होम करिके॥ व्याख्या तो यजुः काण्डी ३॥ का॰ ९॰ ६॰ ३॰ ४॰

देवेभ्यस्त्वा- इस मंत्र से प्रथम परिधिको अधोमुख हाथ करि पश्चिमा

भिमुख मार्जन करै॥ यान्त्र॰ व्याख्या ता काण्डी ३॥ का॰ ९॰ ६॰ ५॰ उदानाय

त्वा इससे पात्रका आसादन करै॥ दे॰— पं॰ ग्रह दे॰ हे ग्रह उदानके सं

तोषार्थ तुझे सादन कर्त्ताहूं॥६॥

अ॰ ३ आवायो॥ भूषशुचिपाः उपनः सहस्रं तेनियुतोविश्ववार॥ उ

पौते अन्धोमद्यं मयामियस्यदेवदधिषेपूर्व पेयम्वायवेत्वा॥७ †

† आ-मा॥ अ॰॥ वा-त्वा॥ इ॰॥ ७॥

का॰९॰६॰५॰ सूर्य्योदय में ऐन्द्रवायव ग्रहको ग्रहण करै॥ वायुदेवत्या त्रिष्टुप् वसिष्ठ दृष्टा वायवेत्वेति यजुरन्ता॥ हे वायो हे शुचिपा-शुचि पवित्र प्रथम वषट् किया और देवताओं करि अप्राप्त ऐसे सोम का पीने वाला शुचिपा अर्थात् पवित्र सोम पानः। तू हमारे समीपमे आजा किस प्रकार करिकें हमारें आ सो कहते हें कि सव में व्याप्त वा सवजिस की प्रार्थना कर्ते हें सो विश्ववार अर्थात् सर्व व्यापक तेरे सहस्र असंख्यात वाहनभूत नियुत मृग हें तिन्होसै आ † किंच मद्य मदनीय-तृप्तिजनक अंध सोम लक्षण अन्न तेरे समीप मे लाताहूं अर्थात् सोम तुके समर्पण कर्ताहूं। हे देव दीप्यमान वायो जिस सोम का पूर्वपेय प्रथम वषट्कार लक्षण-पूर्व पान को तू धारण कर्त्ता है॥ ऐसे वायु को प्रार्थना करि सोम प्रतिकहता है। हेसोम रस वायु देवता के अर्थ तुझे ग्रहण कर्त्ताहूं इति शेषः॥७॥

इन्द्रवायू ऽइमे॥ सुताऽउप प्रयोभिरागंतम्॥ इन्द्रवो वामुशन्ति हि॥ उपयामगृहीतोसिवायवऽइन्द्रवायुभ्यान्त्वैषते योनिः सजोषोभ्यांत्वा॥८॥ इ-हि। अ॰। उ-त्वा। इ॰। ए-नि॥ उ॰। स-त्वा। न्ह॰। ८॥

का॰९॰६॰६॰ एकवार आये को ले पृथक् करि फिरि इन्द्रवायू ग्रहको ग्रहण करै॥ ऐन्द्र वायवी गायत्री मधुछन्दो दृष्टा उपयामेति यजुः सहितो मंत्रः॥ हे इन्द्र वायू तुम्हारे अर्थ यह सोम अभिषवण किया इस प्रयः-सोम रस रूप अन्न केनिमित समीप मे तुम आओ अथवा प्रयद्भिः शीघ्र अश्वकरि आओ जोकि सोमकी तुम चाह कर्त्ते हो। तिस हेतु आओ इत्यर्थः॥ सोम से कहते हें। हे सोम रस तू पात्र करिकें ग्रह

† सहस्र शब्द का अर्थ असंख्यात-नियुतका अर्थ वायुकी वाहन मृग। निघं॰ २॰१५॥

णकिया है वायु देवता के अर्थ और इन्द्र वायु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ताहूं इतिशेषः का॰०९॰५॰२२॰ दशा पवित्र करि गृहण किये ग्रहको मार्जन करि पात्र से वाहिर निकले सोमको मार्जन करिकें एषते यो निः इस मंत्र से गृह का सादन करें वीप्सा सर्व ग्रहार्थे इतिसूत्रार्थः॥ एषते योनिः सयोषोभ्यांत्वा॰ मिलकरिया- पं॰॥ हे पात्र यह स्वरका एक देश तेरा स्थान है इस हेतु यहां समान प्रीति युक्त इन्द्र वायु के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ताहूं इति शेषः॥८॥

अ॰ ४ अयम्वाम्॥ अयम्वां म्मित्रा वरुणासुतः सोमः ऋता वृधा॥ ममेदिह श्रुत हुँ हवम्॥ उपयाम गृहीतोसि मित्रा व रुणाभ्यां त्वा॥९॥ अ-मा॰अ॰उ- त्वा।इ॰॥९॥

का॰०९॰६॰७॰ मैत्रा वरुण ग्रहको गृहण करै मित्रा वरुण देवत्यागायत्री गृत्समद दृष्टा उपयामेति आसुरी॰ गायत्री॥ हे मित्रा वरुण हे ऋत यज्ञ वा सत्य के वढानेवाले तुम्हारे लिये यह सोम अभिषवण किया तिस हेतु इस यज्ञ में मेरे इस आव्हान को सुनो। हे सोम रस तू उपयाम, मैत्रावरुण ग्रहपात्र करि गृहीत है। मित्रावरुण के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ताहूं इति शेषः॥९॥

राया वयम्॥ राया वयँ ससवा थ्ंसो मदेम हव्येन देवा यव सेन गावः॥ तान्धेनुम्मित्रा वरुणा युवन्नो विश्वाहा धत्त मनपस्फुरन्ती मेषते योनिर्ऋतायुभ्यान्त्वा॥१०॥+

का॰०९॰६॰८॰ मैत्रावरुण पात्र में दो कुशा रखिकें सोम रसको लौकिक दुग्ध सैं श्रृतकरै॥ मित्रावरुण देवत्या त्रिष्टुप् त्रसदस्यु दृष्टा। मंत्रद

+ रा-मू।अ॰।९-त्वा।इ॰।१०

कामदुघां प्रार्थयते। जिसधेनुके घरमे होंनेसे हमधन करिके सम्पन्न होकर हर्षितहों। कैसे कि हव्येन देवा जैसे हवि करि कें देवता हर्षितहोते हें और यवसेन गावः घास करि कें गो हर्षित होतीहें हे मित्रा वरुणौ तुमतिसधेनुको हमारे लिये सर्वदा देओ केसी धेनु कोकि अनपस्फुरन्ती दूसरे पुरुष प्रतिनजाने वाली अर्थात् अनन्य गामिनी देओ॥ एषत॰ इतिया॰—पं॰पात्रका सादन करे। हे ग्रहा यहतेरा स्थान यहां ऋतायुभ्यां अर्थात् मित्रा वरुण के अर्थ तुमे सादन कर्त्ताहूं। ब्राह्मा॰ ऋतं ब्रह्म हि मित्रो ब्रह्मोह्यृतं वरुणएवायुरिति शत॰४.१.४.१०॰ ऋतशब्दसे मित्र आयु शब्द से वरुण यह श्रुति के अनुसारकहा॥ औरपदकारने ऋतयुभ्यां पदकिया तिसकरिके ऋत सत्यवा यज्ञ की इच्छा करने वाले मित्रा वरुण के अर्थ। यह अर्थ पद के अनुसारहे॥२०॥

अ॰५ यावांम्॥यावां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती॥ तयां यज्ञम्मिमिक्षतम्॥ उपयामगृहीतो स्यश्विभ्यान्त्वैषते योनिर्म्माध्वीभ्यान्त्वा॥२१॥ या-म।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उ०। ११

अथवा यजमान के अन्वारंभकरि आश्विन ग्रहको गृहण करे॥ आश्विनी गायत्री मेधातिथिदृष्टा उपयामेति या॰—त्रि॰सहितो मंत्रः। हे अश्विना जो तुम्हारी कशा॰ वाणी कैसी कि मधुमती मधुब्राह्मतिस युक्त अर्थात् मधुब्राह्मणोपनिषत्प्रशंसा युक्ता तथासूनृतावती सत्य प्रिय वचनोपेता। हे अश्विनौ इस वाणीको हमारे यज्ञमेंनिष्पादनकरो॥ हे ग्रह तू पात्र करिके ग्रहीतहै अश्विनीकुमारों

के अर्थ तुम्हे ग्रहण कर्त्ताहूं ॥इतिशेषः॥एषते या०-हे पात्रकासादन करै॥हेग्रह यह तेरा स्थान माध्वीभ्यां० मधुब्राह्मण के अध्येन करने वाले अश्विनीकुमारोंकेअर्थ तुम्हे सादन करत्ताहूं॥इतिशेषः॥दध्यङ्‌ह वा० आभ्यामाथर्वणो मधुनाम ब्राह्मणमुवाचेति शत० ४.१.५.१८॥

अ०६ तम्प्रत्नथा॥ पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिम्बर्हिषदं स्वर्विदम्॥ प्रतीचीनं वृजनन्दोहसे धुनिमाशुञ्जयन्तमनु यासुवर्द्धसे॥ उपयामगृहीतोसि शण्डायत्वैषते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि॥१२॥ †

का० ४.६.१०० विल्व पाव वा वैकङ्कत पात्र करि शुक्र ग्रह को ग्रहण करै॥ अवत्सारः काश्यपो वैश्वदेवी जगती। द्वादशार्णचतुःपादाजगती उपयामेति या-ज० युक्तो मन्त्रः॥हे इन्द्र जिन यज्ञक्रियाओंमे अनु वर्धसे०वार-वार सोम पान करि वृद्धिको प्राप्तहोताहै। तिन यज्ञक्रियाओंमें वल वध्यत्व फलको यजमान के अर्थ देताहै। कैसे देताहै तहां दृष्टान्त कहतेहें। प्रत्नथा० प्रत्न शब्दः पुराणवाची निघं० ३.२७ पुराने भृग्वादिकों को जैसे फल देता है। पूर्वथा० पहिले ऋषी अर्थात् साध्यों को जैसे। विश्वथा०समस्त ऋषि पुत्रों को जैसे। इमथा० इस समयके यजमानों को इस फल को देताहै तैसे तुम्हको स्तुति करतेहैं। कैसे तुम्हको कि ज्येष्ठतातिं० वडेविस्तार वाले वा वडोंमें प्रशस्त तथा वर्हिषदं० यज्ञमें वर्हिओंपे वैठने वाले तिस को। स्वर्विदं० द्यूलोकके जानने वाले तिसको० तहांहीतिसका निवासहै प्रतीचीनं० आत्मासे अभिमुख० शत्रु

† नै-से॥ अ०। उ-त्वा। इ०।ए-हि। उ०। अ-एड॥ ऋ०। दे-नु। त्व०। अ-सि। आ०१२

ओं के कपाने वाले शीघ्रही वस्तुओंकेजीतनेवाले ॥ यद्वास्या ऋचो र्थांतरम्। हेइन्द्र जो तू प्रतीचीनं० हमारे प्रतिकूल वर्जनीय आलस्य अश्रद्धा दिकों को विनाश कर्त्ता हैं ॥ किंच जिन क्रियाओं में तेरे अनुग्रह से शत्रुओं के कपाने। क्षिप्रकराने जयन्तं० संम्यक् अनुष्ठान से और औरं यजमानो से अति शय करिकें इस यजमानकेसोमपान और स्तुति सेजो तू वृद्धि को प्राप्त होताहै तिनक्रियाओं में तुझे स्तुति कर्त्तेहैं इतिशेषः॥ कैसे कि प्रत्नथा० प्रत्यय उपमाके अर्थमें० जैसे पुराने भृग्वादिक तुझे स्तुति कर्तेहुए पूर्वथा० पित्रादिक जैसे विश्वथा० गयेहुए सब यजमान जैसे इमथा० ये वर्तमान के यजमान जैसे तुझे स्तुति कर्तेहैं इत्यर्थः। कैसे तुझे कि अपने अर्थ बढाताहै ज्येष्ठता को बर्हिषदं० यागमेंसंनिहितत्व करिबैठेको स्वर्विदं० यजमान कें देनेयोग्यस्वर्गकेजाननेवालेको ॥ ऐसे इन्द्रकोकहिकरि सोम प्रति कहताहै। हेशुक्र ग्रह तू उपयाम करिकें गृहीतहै शुक्रके पुत्रशंड वा शण्डनामा असुर के अर्थ तुझे ग्रहण कर्त्ताहूं इतिशेषः॥ एषते या० यं से सादन करे। हे ग्रह यह खर प्रदेश तेरा स्थान तू यजमानकेवीरत्व (शूरत्व) कोपालन करि॥ का० ९.१०.१—५. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता शुक्रामन्थिग्रहों का यथा क्रमअनुतिष्ठन करें। तत्प्रकारः। प्रोक्षणकीनी दोनो यूपशकलों से अप्रोक्षित दो यूप शकल लेकर प्रोक्षितों से तिन ग्रहों का क्रम पूर्वकआच्छादन करिके अप्रोक्षितों से ग्रहों का अपमार्जन (नीचेकोमार्जन) करे तहां अध्वर्यु प्रोक्षित शकल से ग्रह को ढकिकर शुक्र ग्रह का मार्जन करे॥ अपमृष्टः० या०— गा० आभिचारिकं। शंडनामा असुरोंका पुरोहित शुक्रका पुत्र अपमार्जनी किया॥

का॰ ८॰ १०॰ ६॰ अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता क्रम पूर्वक शुक्रमन्थी इन दोनों
रवाचिक मंत्रको समझि करि हविर्द्धानसें निकलें॰ तहां शुक्रलिङ्ग
अध्वर्यु निकले देवास्वा॰ या॰ -पं शुक्र देवतं॥ शुक्र नामक ग्रहमें स्थित
सोमको पीनेवाले शुक्रपा देवता हे शुक्र ग्रह तुम पूजा के स्थानको प्राप्त हो
का॰ ८॰ १०॰ ७॰ अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता वेदीके पीछे के भागमें अरत्नी
का संयोजन करि ग्रहों का छोडे विसर्ग करें उत्तर वेदि श्रोणिमें ग्रहोंका
सादन करिके दक्षण श्रोणीमें अध्वर्यु शुक्रको उत्तर वेदि श्रोणिमे प्र
ति प्रस्थाता मंथिको सादन करै॥ अनाधृष्टा सि दे॰ -पं वेदि श्रोणि दै
वतं॥ हे उत्तर वेदिश्रोणे तू अनाधृष्टा (अनुपहिंसता) हे॥१२॥

सुवीरो वीरान्॥ सुवीरो वीरान्प्रजनयन्परीह्यभि रायस्पोषे
ण यजमानम्॥ सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्र शो
चिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि॥१३॥ +

का॰ ८॰ १०॰ ८॰ सुवीर इस मन्त्र से दक्षिणयूपदेश प्रति अध्वर्यु जावे।
सा॰ -त्रि॰ शुक्रदेवतम्॥ हे शुक्रग्रह तू सुवीरः शोभन वीर्योपेत होनेसे य
जमान के शौर्योपेत भृत्यादिकोंको उत्पादन करता धन की पुष्टिसे यज
मान को देखता हुआ जा॥ का॰ ८॰ १०॰ १०॰ अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता यूपके प
श्चिम भाग में तिन ग्रह वाचक पदों के चिन्हों को विचारि अरत्नि संधान
करें॰ शुक्रलिंगसे अध्वर्युः॥ संजग्मानः॰ सा॰ अ॰॥ शुक्र ग्रह शुद्ध
दीप्ति करि के यूपको भरे इति शेषः कैसा है शुक्र कि द्युलोक और भूलो
क करिके संजग्मानः॰ अर्थात् संगच्छमान॥ का॰ ८॰ १०॰ १२॰ अध्व
र्यु अप्रोक्षत यूप शकल को निकाल के फेंके॥ निरस्तः शण्डः -दे॰ -पं॰

+ सु-मू॰ अ॰ सं-ष॰ इ॰ नि-शण्डः॥ उ॰ शु-सि॰ त्र॰॥१३॥

चारकं ॥ शण्ड नामक शुक्रपुत्र असुरोंका पुरोहित यज्ञसे बाहिर
ा का० ९.१०.१३. अध्वर्यु आहवनीय में प्रोक्षत यूप शकलको
शुक्रस्येति प्रा०—गा० शकल देवतं हे यूप शकल तू शुक्रग्रहका
करणहै ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्यते ॥ देवसोम सुवीर्यस्यरायस्पोषस्यददितारः
स्याम ॥ साप्रथमासंस्कृतिर्विश्ववारासप्रथमोवरुणोमित्रो
ऽअग्निः ॥ १४ ॥ अ०मा० अ०स०—हा० इ०त्न०—हा० उ०अ०अ०त०ऋ० ॥ १४ ॥ १५

का० ९.१०.१४. अच्छिन्नस्य इसे यजमानजपे प्रा०—पं० सोम्यं ॥ हे देवदी-
मान सोम तुरु अनव खंडित (सन्तत) कल्याण प्रभावके हम दाताहों
और धनकी पुष्टिके दाताहों वारवार यज्ञ करनेकी अशीष चाहतेहें।
अथवा तेरे प्रसादसे धन की पुष्टिके दाताहों। अच्छिन्नस्य इसके दो विशे
षण ऐसेही रायस्पोषके ॥ का० ९.११.१. अध्वर्यु और प्रति प्रस्थाता यू
पके दोनों ओडी पश्चिमाभिमुख खडे होके होमकरें पहिलें अध्वर्यु शुक्र
को फिरि प्रति प्रस्थाता मन्थिको होमे ॥ साप्रथमा- इन्द्रदेवत्यात्रिष्टुप्
साप्रथमा- वोह मुख्य संस्कृतिः- सोम संस्कार इन्द्रके लिये सोम संस्कार
करियेहे- सोम क्रयके अध्या० ४. कण्डी ३० में सादेवि देवमछेहीन्द्राय, सो
मको इन्द्रके अर्थ कहागया कैसी है संस्कृति- किविश्ववारा- समस्तऋ
त्विजों और अन्यत्विजों से वरण करियेहे जहां सोम वोह अथवा सबका
वरण करने वाला सोम जहांहे वोह विश्ववारा- जगतके उत्पन्न होनेका
बीज होने से सोमके वरुण मित्र और अग्नि स प्रसिद्ध मुख्य जिसकेभ
क्त इतिशेषः अर्थात् वरुण मित्र अग्नि करि उप लक्षण और-औरभी

देवगणों का जो प्रभु है ॥२४॥

स प्रथम॥ स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वांस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा॥ तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत्। २५॥

स॰ प्रसिद्ध चेतनावान उत्कृष्टधी बृहस्पति जिस इन्द्र का मुख्य मंत्री इति शेष॥ अथवा संस्कृति॰ समीचीना कृति समस्त देवताओंकरि वरणीय वोह प्रथमा॰ अर्थात् देवताओं के मध्यमें मुख्य और जिसइन्द्र के वरुण मित्र अग्नि सो ऐसा इंद्र मुख्य और चेतनावानबृहस्पति सोभी इन्द्र ऐसा॰ हे ऋत्विजो तैसे इन्द्र के अर्थ अभिषुत सोम को स्वाहाकार करि के होमो॥ का॰ ९॰ ११॰ ७॰ तृम्पन्तु॰ इसका अध्वर्यु जपकरे प्रा॰—दृ॰ होत्रा देवतम्॥ वोह होत्राः छन्दों के अभिमानी देवता तृप्त हों। होत्र शब्द से याज्या छन्दांसि स्मरण होते हैं। वोह कौनकिजो मधुस्वादु॰ सोम के स्विष्टा॰ साधु इष्टा अर्थात् तिसके होम मे नियुक्त हैं। और जो होत्राः सुष्टु प्रीताः कैसे जाने गये ऐसे कि स्वाहा कार करि के सुहुताः॰ होमके अर्थ नियुक्त हैं॥ का॰ ७॰ ११॰ १०॰ अध्वर्यु होता के समीप में प्रत्यङ्मुख खडा हो॥ अयाडग्नीत् दे—दृ॰ होतृदेवतम्॥ अग्निरयाट्॰ अयाक्षीत्॰ अग्नीधाने याग किया यह होता से कहै॥२५॥

अ॰ ७ अयंवेन॥ अयंवेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायूरजसो विमाने॥ इममपाꣳसङ्गमे सूर्यस्य शिशुन्न विप्रा मतिभी रिहन्ति॥ उपयामगृहीतोसि मर्काय त्वा॥२६॥ †

का॰ ९॰ ६॰ १२॰ मंथिग्रह को ग्रहण करे त्रिष्टुप्॰ इस मंत्र से आधिदैव

† अ॰ति॰अ॰ उ॰ त्वा॰ इ॰ ॥ १६॥

और अधि यज्ञमें अवस्थित सोम स्तुतिकरियेहैं॥ अधिदैवं चन्द्रात्मना स्तूयते॥ अयंवेनः॰ यह कान्त॰ चन्द्रउदककेनिर्माणसमय अर्थात् ग्रीष्मान्तमें प्राप्त पृश्निगर्भ॰ जल कोप्रेरण कर्त्ता अर्थात् वर्षताहै। पृश्नि॰ आदित्य वा द्युलोक गर्भ॰ जिसका अवस्थान॰ द्युलोकस्था अथवारविस्थाजल वर्षताहै कैसाहै वेनः॰ किज्योतिर्जरायुः॰ विद्युल्लक्षण ज्योति को जरायुवत वेष्टन है जिस्कावोह॥ इदानीमधियज्ञं लतात्मना सोमःस्तूयते॰ विप्राः मेधावी ब्राह्मण इस सोमको शिशुन जैसे कोई वालकको लालन कर्त्ताहै तैसेही इस सोमको स्तोत्र शस्त्ररूप वाणी करि स्तुति कर्तेहैं। कैसाहै यह कि सूर्य और जलके संगमे॰ ग्रहण किये जलसे अभिषुत अर्थात् सोमके अभिषवार्थ वसतीवरी जल और सूर्यके संगमे ग्रहणकर्तेहैं। तावै वहन्ती नार्ठस्यन्दमानानां गृह्णीयाहिवा ग्रह्णीयादितिश्रुतेः॥ अथवा यह अर्थ जल औरसूर्यके समागम निमित्त अर्थात् वृष्टिगर्भ निष्पत्त्यर्थ ब्राह्मण इससोमको स्तुति कर्तेहैं जैसे वालक किसी वस्तुके लाभके अर्थ किसीकी स्तुति कर्ताहै॥ उपयामेति सा॰—गा॰ ऐसा हेसोम तू उपयाम ग्रहपात्र करिके गृहीतहैतिस मर्कनामा शुक्रपुत्र असुरोंकेपुरोहितके अर्थ तुझे ग्रहण कर्त्ताहूं॥१६॥

मनो न॥ येषुहवंनेषुतिग्मंविपः शच्यावनुयोद्रवंन्ता। आयः शर्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशंगभंस्तावेषतेयोनिः प्रजाःपाह्यपमृष्टोमर्कोदेवास्त्वामन्थिपाः प्रणंयन्त्वनाधृष्टासि॥१७॥ †

† म॰ सो॰। अ॰ ए॰ हि। द्र॰। अ॰ कः। उ॰। दे॰ नु। त्र॰। अ॰ सि। ल॰॥ १७॥

का०४·६·१३· मन्थिग्रह को यवपिष्ट करि मिश्रित करे॥ मनोनत्रिष्टु सोम स्तुतिः अधि यज्ञानु वादिनी॥ मेधावी, अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता जिन सोम होमोंमें शाच्या (कर्म ‡) करि के मनवत् उत्साह युक्त जैसे तैसे शुक्र मन्थी ग्रहों को प्राप्त हैं। कैसे हैं मेधावी कि कर्त्तव्य होमोंमें प्रच रते। जो अध्वर्यु अंगुली करि हाथमें स्थित इस मन्थिग्रहका सब ओड से सक्तु यवपिष्ट करि मिश्रित करताहै। कैसा है जो अध्वर्यु कितुवि (बहुत) नृम्ण ५(धन) युक्त॥ यद्यपि यहां अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता समानक र्माहैं तथापि जो यव पिष्ट करि अपण करताहै सोमुख्य है॥ एषतेया- ब्र०से सादनकरे। हे मन्थिग्रह तेरी यह जगह तू यजमान संबंधिनीप्रजा का पालन करि॥ का०४·१०·६· प्रति प्रस्थाता प्रोक्षित यूप सकलसे मन्थि ग्रह का आच्छादन करि अप्रोक्षित से अपमार्जन करे॥ अपमृ ष्टोमर्कः या-गा० आभिचारिकम्। मर्क नामा असुरों का पुरोहित अ पमार्जनकिया॥ का०४·१०·६· प्रति प्रस्थाता हविर्धान से निकलेदेवा स्त्वेति या-पं० मन्थिदैवतम्। हे मन्थिग्रह मन्थिग्रहके पीने वाले देव ता तुम पूजा के स्थान को प्राप्त हों॥ अनाधृष्टासि यह मन्त्र पहिले का एडी १२ में विनियोग सहित व्याख्या किया॥१७॥

सुप्रजाः॥ प्रजाः प्रजनयन्न्परीह्यभिरायस्पोषेण यजमानम्॥ सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोधिष्ठानमसि॥१८॥ †

का०४·१०·४·प्रति प्रस्थाता उत्तर यूप देश को जावे सुप्रजाः-सा-त्रि· मन्थि दैवतं॥ हे शोभन प्रजा युक्त मन्थि ग्रह तू यजमान संबंधिनीप्र

† सु-मृ। अ०म-षा॥ नि-कः। उ०म-सि॥ २०॥

‡ निघं०२·१· ‡ निघं०३·१· ५ निघं०२·१०·

जा का उत्पादन करि कै धनकी पुष्टि सहित यजमानके संमुखआ॥ का॰ ९॰१०॰१०॰ प्रतिप्रस्थाता अरत्निका सन्धान करै सजग्मानः॰सा॰अ॰॥ मन्थिनाम ग्रह द्युलोक भूलोक मेजाताहुआअपनीदीप्ति से यूप को विभरण कर्त्ता है इतिशेषः॥ का॰७॰१०॰११॰ प्रतिप्रस्थाता अप्रोक्षत यूप शकल को निकाले निरस्तः॰दै॰पं॰आभिचारिकं॥ मर्कनामा असुरों के पुरोहित का निराकरणकिया॥ का॰८॰१०॰१३॰ प्रतिप्रस्थाता प्रोक्षत यूप शकल को आहवनीय मे डाले मन्थिनः॰प्रा॰गा॰ शकल दैवतं॥ हे यूप संकल तू मन्थि ग्रहका अधिष्ठानहै॥१८॥

अ॰८ ये देवासः॥ ये देवा सो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ॥ अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवा सो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥१९॥

दोनोंधाराओं के भरते आग्रयण ग्रह को ग्रहण करै वैश्वदेवी त्रिष्टुप् परुच्छेव दृष्टा॥ हे देवताओ तुम द्युलोकमें एकादश संख्या कहो कि स महिमासे कि अपने अपनेमाहात्म्य से सर्वत्र महाभाग्य के अविशेष होने से महिना यह पद तीनो स्थानो में जुडता है तथा पृथिवी के ऊपर एकादशहो तथा तुम अन्तरिक्षनिवासी एकादशहो हे देवताओ त्रिविध तुम इस यज्ञ॰यजनीय आग्रयण ग्रह को सेवन करो॥१९॥

उपयामगृहीतोस्याग्रयणोसि स्वाग्रयणः॥ पाहि यज्ञम्पाहि यज्ञपतिम्विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुन्त्वम्पाह्यभि सवनानि पाहि॥२०॥

आग्रयण दैवतं यजु रग्रयण ग्रहणएव विनियुक्तम्॥ हे आग्रयण

ग्रह तू उपयाम पात्र करि के स्वीकार किया है आग्रयण नाम है कैसा है तू कि स्वाग्रयण अच्छे प्रकार प्राप्त होता। तैसा तू यज्ञ को रक्षा करि। विष्णुः यज्ञका अधिष्ठाता देवता इन्द्रियेण अपनी सामर्थ्य से तुझे रक्षा करै और तूभी तैसे विष्णु को रक्षा करि। सवनानि प्रातःसवनादिकों को सव ओडीसे रक्षा करि॥२०॥

सोमः पवते॥ सोमः पवते सोमः पवतेस्मै ब्रह्मणे स्मै क्षत्राया स्मै सुन्वते यजमानाय पवत इष ऊर्ज्जे पवतेद्भ्य ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एषते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥२१॥ +

का० ९। ६। १५। सोमः पवते को तीन वार करिके जपै वैश्वदेवं यजु॥ सोम ग्रह पात्र मे जाता अर्थात् अपने कर्म मे प्रवृत्त होता है॥ किं रुक्ति रादरार्थः किसलिये कि इस ब्राह्मण जाति की प्रीति के अर्थ इस क्षत्रिय जाति की प्रीति के अर्थ इस सोमाभिषव करनेवाले यजमान के कामकी प्राप्ति के अर्थ। अन्न के अर्थ वृष्टि के ब्रीहियवादिक ओषधियों की सिद्धि के अर्थ जाता है। द्युलोक पृथिवी लोक की प्रीति के अर्थ जाता है। किंवाबहुनोक्तेन सव अच्छे मनुष्यों के अर्थ जाता है। हे आग्रयण ग्रह तैसे तुझको समस्त देवताओं की प्रीति के अर्थ ग्रहण कर्त्ता हूं इति शेषः॥ एषतेया ज० इससे सादन करै॥ हे ग्रह यह तेरा स्थान समस्त देवताओं के अर्थ तुझे सादन कर्त्ता हूं इति शेषः॥२२॥

अ० ९ उपयामगृहीतोसी। न्द्रायत्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थ्यं गृह्णामि॥ यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवेत्वैष

+ सो–भ्यः॥ अ०–ए–भ्यः॥ इ०॥२१॥

ते योनि रुक्थेभ्यं स्त्वा देवेभ्यं स्त्वा देवाव्यं यज्ञस्या युषे गृ
ह्णामिमित्रा वरुणाभ्यान्त्वा ॥२२॥ +

का० ९० ६० २० उक्थ्य ग्रहको ग्रहण करै ॥ उपयाम ग्रह देवतानि यजूं
ष्यंबि उपयामेति यजु ॥ हे सोम तू उपयाम पात्र करि गृहीतहै। हे उक्थ्य
ग्रह तुझे इन्द्रके अर्थ स्वीकार करताहूं। कैसे इन्द्रके अर्थ कि बृहत्सामभृ
यके तथा वयस्वते सोमरूप अन्नवासदा योवन लक्षण वीर्यसहित।
कैसे तुझे कि उक्थाव्यम् उक्थानि मित्रा वरुण ब्राह्मणाछंस्य छावा
कसंबंधी शास्त्रोंकी अवति रक्षा करनेवाले तिसै। तहां ही इसका बि
नियोगहै ॥ किंच ऐसे सोमको कहिकर इन्द्र प्रति कहिताहै हे इन्द्र जो
तेरा वडा सोमरूप अन्न है तिसके पानार्थ तुझे प्रार्थना करतेहैं इतिशे
ष। हे सोम विष्णु देवता के अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं ॥ अथवा हे इन्द्र जो
तेरा वडा ऊर्जित योवन लक्षण तिसके अर्थ सोम तुझे ग्रहण करताहूं॥
हे सोम जो इस इन्द्रका बृहद्वयहै तैसे के अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं और
विष्णु (यज्ञ) के अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं ॥ एषते या० - इ० सै सादन करै।
हे ग्रह यह तेरा स्थान उक्थ्य के अर्थ तुझे सादन करताहूं ॥ का० ९० १४०
९० उक्थ्य स्थालीस्थ सोम को तीनिवार ग्रहण करै॥ समस्त प्रशास्तृ
ब्राह्मणाछंस्य छावाक तिन्हों के किये यागके अर्थ देवेभ्य स्त्वा आ
सुरी गा०॥ हे सोम देवताओंके अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं कैसे तुझे कि
देवाव्यम् देवताओंकी तृप्ति करनेवाले। यज्ञस्यायुषे अनवच्छि
न्नकर्मोंके दोष रहित परिसमाप्ति यज्ञ की आयु तिसके अर्थात् य
ज्ञसमाप्तिके अर्थ और फल पर्यन्त अवस्थान के अर्थ ग्रहणकर

+ उ-त्रा। अ०। ए-स्त्वा। इ०। दे-मि। उ०॥२२॥

ताहूं। अथवा यज्ञ यजमान का शरीर है इस हेतु यजमान की आयु के अर्थ ग्रहण करताहूं ॥ २२॥

मित्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ †

का० ८.१४.८. अथवा मित्रावरुणाभ्यां त्वा इस मंत्र से प्रशास्त्र उक्थ्य को ग्रहण करै। मैत्रावरुण के उक्थ्य विग्रह में इस मंत्र का विकल्प है ॥ मित्रावरुणाभ्यामित्यार्षी गा० ॥ मित्रावरुण के अर्थ देव तर्पक तुम्है यज्ञ की आयु के अर्थ ग्रहण करताहूं ॥ का० ८. १४.१५. ऐसे ही इन्द्राय त्वा आसुरी गा० से ब्राह्मण छंसि, इन्द्राग्निभ्यां त्वा. प्रा.अ. से अच्छावाक के अर्थ दोनों मंत्रों का विकल्प है ॥ इन्द्र के अर्थ तुम्है ग्रहण कर्त्ताहूं, इन्द्र और अग्नि के अर्थ तुम्है ग्रहण कर्त्ताहूं शेषं पूर्ववत् ॥ का० १०.७.११. उक्थ्यादि सोम संस्थ में इन्द्रावरुणाभ्यांत्वा, आर्षी गा. इन्द्राबृहस्पतिभ्यांत्वा, और इन्द्राविष्णुभ्यांत्वा, द्वे यजुषि, मैत्रावरुण, ब्राह्मणा छंसि, अच्छावाक के अर्थ तृतीय सवन में उक्थ्य विग्रह के मंत्र हैं ॥ इन्द्र और वरुण के अर्थ ॥ इन्द्र और बृहस्पति के अर्थ। इन्द्र और विष्णु के अर्थ तुम्है ग्रहण कर्त्ताहूं शेषं पूर्ववत् २३ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

अ० १० मूर्द्धानन्दिवः ॥ मूर्द्धानन्दिवो अरतिम्पृथिव्या वैश्वान

† मि-मि। अ०। इ०। उ०। ऋ०। लृ०। आ०। २३

ऽमृतऽआजातमग्निम्॥ कविᳬसम्म्राजमतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्जनयन्तदेवाः२४

वैश्वानरदेवत्या त्रिष्टुब् भरद्वाजदृष्टा वैश्वानरश्चात्र सर्वात्मनास्तूयते का०९।६।२।२। ध्रुवसंज्ञक ग्रहको ग्रहण करै॥ देवता ऐसे अग्निको उत्पादन कर्त्ते हुए। कैसे अग्निको कि द्युलोक के शिरवत उन्नत प्रदेशमें सूर्यरूपकरि अवस्थित हो भासक। तथा पृथिवीकेऊपररतिरहित नहीपृथिवी के ऊपर कदाचित अग्नि उपरमण करता किंतु दाह पाक प्रकाशसे सर्वो की अनुग्रह कर्त्ता सर्वदा वर्त्ते हैं। अथवा पृथिवीशब्दसे अन्तरिक्षलेना + अन्तरिक्षका अरति अर्थात् पूरक क्योंकियह तहां स्थितही यथाकाल वृष्टिकरिकें भूतोंका पोषण कर्त्ता है तथावैश्वानरं समस्तनरोंका जठराग्निरूप करि अन्नका पाचक होंनेसे हित तिसको। तथा कविं क्रान्ति दरशी अपने भक्तों के अनुग्रह कर्नेवाले अभिज्ञको। तथा सम्यक् राजमान को। तथा यजमानों के अतिथि हवियों करिकै सत्कार योग्य को + आसन्- आसनि मुख में आपात्रम् आभि मुख करिकै पीतेहें इससे इस आपात्र को + ऐसे आग्नि को देवाः अर्थात् इन्द्रादिक देवता उत्पादन करते हुए। २४

उपयामगृहीतोसि॥ ध्रुवोसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणान्ध्रुवतमोच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएषते योनिर्वैश्वानरायत्वा॥ ध्रुवन्ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि॥ अथान ऽइन्द्रऽइद्विशोसपत्नाः समनसस्करत्॥२५॥+

ध्रुवोसि ध्रुवदैवतं यजुः ध्रुवग्रहण एवविनियुक्तम्॥ हेसोम

+ उ-मः। अ०। ए-त्वा। इ०। ध्रु-न्। ज०॥२५॥

+ निघं० १।३।

+ [illegible]

+ [illegible]

तू उपयाम पात्र करिकै गृहीतहै ध्रुवनामक है कैसाहै तू कि ध्रुवक्षिति:
स्थिर है निवास जिस का वोह० क्षिति र्निवास गत्यो: आवेश्व देवी संस्थान
से स्थिर निवासहै । तथा ध्रुवाणां आदित्य स्थाल्यादिकों के मध्य ध्रु
वतम: अतिशाय करिकै स्थिर तथा च्युत रहितों क्षरण शून्यों में अ
च्युतक्षित्तम: अर्थात् च्युतरहितपात्रमें अतिशाय करिकै निवास
करता॥ एषते या—नि० इति सादनम् । हे ग्रह यह तेरी जगह वैश्वानर
(अग्नि) के अर्थ तुझे सादनकरताहूं ॥ का० १० ७ ७ ध्रुवं ध्रुवेणेति
ध्रुव पात्रस्थ समस्त सोम को होतृ चमस में सींचै ॥ बृहती पूर्वार्धचों
ध्रुव दैवत: उत्तर ऐन्द्र: ॥ ध्रुवेण एकाग्र मनसा वाचा करि ध्रुव ग्र
हमें अवस्थित सोम को होतृ चमस में सींचताहूं अथवा ध्रुव ग्र
ह होतृ चमस्थ सोम को प्रत्यवनयामि फिरिसींचताहूं ॥ निरन्तर
में यह इन्द्र हमारी प्रजा को ऐसी करै। कैसी कि शत्रु रहित स्थिर
मनस्का अर्थात् धृतियुक्ता ॥ २५ ॥

अ० ११ यस्ते॥ द्रप्सस्कन्दंतियस्तेऽ अ॒र्ठ॒ शुग्रावच्युतोधि॒षणायो
रु॒पस्थात्॥ अ॒ध्व॒ र्योर्वापरि वा॒जः प॒वि॒त्रा॒तन्तेंजु होमि॒
मनसा॒बषट्कृत॒श्ं स्वाहा दे॒वानामु॒त्क्रमणमसि॥ २६॥

का० ९ ६ २० अभिषव और ग्रहण में पतित सोम विन्दुओं के
ग्रहण करने में अशक्त होंनेसे तिस प्रत्यवाय के परिहारार्थ घृ
त होम की विप्रुट् होम यह संज्ञा है तिसे अध्वर्य्वादिक होमें॥ सौ
मी त्रिष्टुप् स्वाहेति यजुरन्ता देवश्रवा देववात दृष्टा॥ हे सोम
तेरा द्रप्स: जो रसका एक देश भूमि में अन्यत्र गिरा और जो तेरा

खण्ड ग्रावों के प्रकाश से गिरा और जो अधिषवण फलकाओं केउ
त्संग से गिरा अथवा जो अंशु अध्वर्यु के प्रकाश से गिरा अथवाजो
अंशु पवित्रा से जहां कहीं गिरा है सोम तेरे तिस द्रप्स और अंशु को
स्वाहाकार करिके होम करताहूं। कैसा है कि मनसा करि वषट्कार किया (संकल्पित)
अर्थात् वषट्कार और स्वाहा कार करिकै होम करताहूं। का० ९.६.३२
अध्वर्यु ने वेदी में जो तृण ग्रहण किये तिन्हो में से एक को चात्वाल
में डाले। देवा नामिति या-ह० चात्वाल दे०॥ हे चात्वाल तू देवता
ओं का उत्क्रमण है उत्क्रामन्ति० जाते हैं स्वर्ग को जिस से वोह उ
त्क्रमण अर्थात् तुझ करिके देवता स्वर्ग को जाते हैं॥ अ तोहि
देवाः स्वर्ग मुपोद क्रामन्निति श्रुत० ४.२.५.५.॥२६॥
अ०१२ प्राणाय मे॥ वर्चो दा वर्च्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदाव
र्च्चसे पवस्वो दानाय मे वर्चो दा वर्च्चसे पवस्व वाचे मे वर्चो
दा वर्च्चसे पवस्व क्रतू दक्षाभ्याम्मे वर्चो दा वर्च्चसे पव-
स्व श्रोत्राय मे वर्चो दा वर्च्चसे पवस्व चक्षुर्भ्याम्मे वर्चो
दसौ वर्च्चसे पवेथा मात्मने मे॥२७॥ +
का० ९.७.९. प्राणायेत्यादिक मंत्रों की अवकाश संज्ञा तिन्हों
को पढ़ै० ग्रहण क्रम से ग्रहों को अध्वर्यु यजमान को दिखला
वे। लिंगोक्त देवतान्ये का दश यज्ञकेये प्राण तिन्हो को प्राण क
रि दिखलावै हैं॥ १.२.६. आसुरी अ० ३.७ आसुरी उ० ४.५.
आसुरी गायत्री॥ उपांशु म्। हे उपांशो जो तू स्वभाव से ही तेज-
का दाता सो तू मेरे हृदय स्थित वायु के तेज के अर्थ प्रवर्त्त हो॥ उपां

+ प्रा-स्व। अ०। व्या-स्व। उ०। उ-स्व। उ०। वा-स्व। क्र०। क्र-स्व। त्र०। श्रो-स्व। श्रो०। च-

प्र सवनम्। हे उपांशु सवन मेरे सर्व शरीर गतवायु के अर्थ प्रवर्त्तो हो अन्यत्पूर्ववत्॥ अंतर्यामम्। कंठदेशस्य उदानवायुः॥ ऐन्द्रवायव म्। वाक् इन्द्रि के अर्थ॥ मैत्रावरुणम्। क्रतु-काम् दक्ष-तिसकी समृद्धि तिन दोनो के अर्थ॥ आश्विनम्। श्रोत्र इन्द्रि के अर्थ॥ शुक्रामन्थिनौ युगपत्। हे शुक्रा मन्थिनौ मेरी चक्षु ओं की पटुता तिस रूप तेज के अर्थ तुम प्रवर्त्ते हो ओ॥२७॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्च्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्च्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्च्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्च्चसे पवेथाम्॥२८॥ +

८॰ ऋ॰ १०॰ आसुरी अ॰ ११॰ यजुः॥ आग्रयणम्। मेरे जीव की स्वस्थता के तेज के अर्थ॥ उक्थ्यम्। समस्त इन्द्रियों का पाटव शरीर बावल तिस रूप तेज के अर्थ॥ ध्रुवम्। आयु का निर्दुष्ट जीवन तिस रूप तेज के अर्थ॥ पूतभृदाधनीयौ युगपद् वेक्ष्यते। हे पूतभृत आधवनीय समस्त मेरी प्रजा के अर्थ जो तेज है तिस के अर्थ तुम प्रवर्त्ते हो ओ कैसे हो तुम कि तेज के देने वाले। अथवा प्राणव्यानादिकों का जो तेज तिस के अर्थ प्रवर्त्त हो ओ। अथ वा जो तू प्राण के अर्थ तेज का देने वाला सो मेरे ब्रह्म तेज के अर्थ प्रवर्त्ते हो॰ एवं सर्वत्र॥२९॥

+ आग्रायणाद्याश्चतुर्थीनां च ध्याविवरिणमः (margin)

कोसि॥ कतमोसि कस्यासि को नामासि॥ यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम॥ भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः

+ आ-स्वा। अ॰। मो-स्वा। इ॰ भा-स्वा। क॰ र॰ बि-मृ। ल॰ ०॥२८॥

पोषैः॥२९॥†

का० ९.७.१४. द्रोण कलश को देखै। कोसीति प्राजापत्या वर्धमानेषिणक्॥ अध्यस्त प्रजापतिं द्रोण कलशमाह हे द्रोण कलश तू प्रजापति है अतिशय करके प्रजापति है तथा प्रजापति का है प्रजापति नामा है अर्थात् प्रजापति का अनन्य भूत है। किंच हम जिस्का तेरा नाम जानते हैं मन और ज्ञान से फिर जिस द्रोण कलश रूप तुझ को हम सोम करिकें तृप्त कर्ते हैं सो तू हमको नाम करिके विदित करि और कामों करि के तृप्त करि इति शेषः॥ का० ९.७.१५. भूर्भुवस्वः यजुः जप करै॥ हे भूर्भुवस्व अग्निवायुसूर्याः प्रजा करिके मैं शोभन प्रजा युक्त होंऊं वीरों करिके सुवीरः होंऊं धन की पुष्टि करि के शोभन पुष्टि युक्त होंऊं॥ २९॥

अ०१३ उपयाम गृहीतोसि॥ मधवे त्वोपयाम गृहीतोसि माधवाय त्वोपयाम गृहीतोसि शुक्राय त्वोपयाम गृहीतोसि शुचये त्वोपयाम गृहीतोसि नभसे त्वोपयाम गृहीतोसि नभस्याय त्वोपयाम गृहीतोसीषे त्वोपयाम गृहीतोस्यूर्ज्जे त्वोपयाम गृहीतोसि सहसे त्वोपयाम गृहीतोसि सहस्याय त्वोपयाम गृहीतोसि तपसे त्वोपयाम गृहीतोसि तपस्याय त्वोपयाम गृहीतोस्यꣳहसस्पतये त्वा॥ ३०॥†

का० ९.१३.१.—४. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता द्वादश ऋतु ग्रह करिके अनुतिष्ठे उपयामेत्यादिक द्वादश मंत्र हैं तहां षट् युग्म मंत्रों में पूर्व-पूर्व मंत्र करिके अध्वर्यु उत्तर-उत्तर करिके प्रति प्रस्थाता इति मंत्र

† को-म॥ अ०। भू-षैः इ०॥२९

† उ-त्वा। म०। इ०५ऊ०। ऊ०। ल०। आ०ई०। ऊ०। ऋ०। ल०। क०। च०। ट०॥३०

विवेकः॥लिंगोक्तानि त्रयोदश १.३.४.५.९.११. आसुरीद्व०२.६.१०.
१२. आसुरी अ०७.८. आसुरी त्रि०॥ हे ऋतु ग्रह तू उपयाम करिके
गृहीत है मधवे- मधु नामा चैत्र मास के अर्थ तुझे ग्रहण कर्ताहूं इ
ति शेषः॥१॥ माधवाय- वैशाख के अर्थ तुझे ग्रहण कर्ताहूं॥२॥ म
धु माधवौ वासन्तौ मधुः सुख अन्न वसंत में होता है॥ शुक्राय
ज्येष्ठ के अर्थ तुझे०॥३॥ शुचये आषाढ मासाभिमानी देवता
के अर्थ तुझे०॥४॥ शुक्र शुची ग्रीष्म मासौ शुच शोषणे॥ नभ
से श्रावण मास के अर्थ सोम तुझे०॥५॥ नभस्याय भाद्रपद मासा
भिमानी के अर्थ तुझे०॥६॥ नभोनभस्यौ वार्षिकौ मासौ मेहकी
वाहुल्यता से सूर्य के नदीखने के कारण नभ और नभस्य कहा
॥ इषे आश्विन मास के अर्थ तुझे०॥७॥ ऊर्जे कार्तिक मास के अ
र्थ तुझे०॥८॥ इष अन्न ऊर्ज तिस का उपसेचन दध्यादि तिसकी
वहुती होती है- मतुपो लोपाद भेदोपचाराद्वा इट शब्देन ऊ
र्क शब्देनच शरदौ मासावुच्येते॥ सहसे मार्गशीर्ष मास के
अर्थ॥९॥ सहस्याय- पुष्य मास के अर्थ०॥१०॥ सहः सहस्यौ
हैमन्तिकौ मासौ॥ तपसे- माघ मास के अर्थ०॥११॥ तपस्याय
फाल्गुण मास के अर्थ०॥१२॥ तपस्तपस्यौ शैशिरौ मासौ तपति
सूर्यो यत्रात्यन्तं सतपास्तपस्यश्च॥ का०९.१३.१८. जो अध्वर्यु
की इच्छा हो तो त्रयोदश में ऋतु ग्रह को ग्रहण करै- रोच्छ को वि
कल्पः आसुरी- उ०१३.॥ हे ग्रह तू उपयाम पात्र करि ग्रहीत है तैसे तु
झको अंहसः पतये- अधिक मासाधिष्ठात के अर्थ ग्रहण कर्ताहूं

इति शेषः अंहः पाप तिसका पति। मल मास होनेसे यह वारहोंम हीना से गिरताहै अथवा अंहते र्गति कर्मानः निघं॰२॰१४॰गतिका पति त्रयोदशवां महीना आदित्य की गति के वशसे होताहै॥३०

अ॰ १४ इन्द्राग्नी ऽआगतꣳ सुतङ्गीर्भिर्न्नभो वरेण्यम्॥ अस्य पातन्धियेषिता॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राग्निभ्यान्त्वैषते योनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा॥३१॥+

का॰१०॰१३॰२०॰ प्रति प्रस्थाता इन्द्राग्नी देवता के ग्रह को ग्रहणक रै ऐन्द्राग्नी देवतं गायत्री विश्वामित्र दृष्टा॥हे इन्द्राग्नी तुम अ भिखुत सोम प्रति आओ। कैसा है सोम कि गीर्भिर्न्नभो वरेण्यं अर्था त् त्रयी लक्षण वाचा करिके जैसे आदित्य प्रार्थनीयहै सो॰नभआ दित्य को कहते हैं निरु॰२॰२२॰ अथवा स्तुति रूपा वाणी करिकें यु क्त इतिशेषः॥ नभो वरेण्यं स्वर्गस्थ देवता ओंकरिके प्रार्थनीय।किं च हेइन्द्राग्नी तुम इस सोम संवन्धी अंशको पान करो। कैसे हो तु म कि यजमान की बुद्धि करिके प्रार्थना किये गये॥ऐसें देवताओं प्रति कहिकर सोम को कहताहै उपयामेतिया॰–ज॰। सोम तू उपया म ग्रह करिके ग्रहीत है हे ग्रह इन्द्राग्नी के अर्थ तुझे ग्रहण कर्त्ता हूं॥ एषत इतिया॰–पं॰ सादनं। यह तेरा स्थान इन्द्राग्नी के अर्थ तु झे सादन कर्त्ताहूं॥३१॥

अ॰१५ आघं॥ आघाये ऽअग्निमिन्धते स्तृणन्ति वर्हिरानुष क्॥ येषामिन्द्रो युवासखा॥ उपयामगृहीतोस्यग्नीन्द्राभ्यान्त्वैषते योनिरग्नीन्द्राभ्यान्त्वा॥३२॥+

+इ–ता॰अ॰उ–।त्वा।इ॰ए–त्वा।उ॰॥३१॥ + आ–त्वा।अ॰उ–त्वा।इ॰ए–त्वा।उ॰।
+

अग्नीन्द्र देवत्या गायत्री त्रिशोक दृष्टा अस्या विनियोगः कात्याय नेन नोक्तः ऐन्द्राग्न ग्रहे एव विकल्पः शाखान्तरे॥ जे यजमान अग्नि को सब ओडी से दीपन कर्ते अर्थात् इष्टि पशु सोम चातुर्मास्य करि के पूजा करते हैं घेत्यनर्थकः। और जे आनुपूर्व से वर्हिओं को आच्छा दन कर्ते हैं। किंच जिन यजमानों का, युवा, जरा मृत्यु रहित इन्द्र सखा, मित्रवत् उपकारक॥ उपयामेति या॰ – ज॰॥ हे सोम तिन्हों के यज्ञ मे उपयाम ग्रह करिके तू स्वीकार किया है अग्नीन्द्र के अर्थ तुम्हे ग्रहण कर्त्ता हूं॥ एषते या॰ – यं॰ सादयति॥ हे सोम यह तेरा स्थान अ ग्नि और इन्द्र के अर्थ तुम्हे सादन कर्त्ता हूं॥ ३२॥

अ॰ १६ ओमासश्चर्षणीधृतः॥ ओमासश्चर्षणीधृतोविश्वेदेवास ऽआगत॥ दाश्वा थ्ठं सोदाशुषः सुतम्॥ उपयामगृहीतो सि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽएषते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा दे वेभ्यः॥ ३३॥

का॰ ९॰ १४॰ १॰ अध्वर्यु यजमान करिके स्पर्श कर्ते वा न कर्ते द्रोण कलश से शुक्र पात्र करिके वैश्वदेव ग्रह को ग्रहण करै वैश्वदेवी गायत्री मधुच्छन्दो दृष्टा॥ हे विश्वे देवा ओ तुम आओ कैसे हो तुम कि ओमासः, रक्षा करने वाले वा अवनीय निरु॰ १२॰ ४०॰ तर्पयि तार वा तर्पणीय। तथा चर्षणीधृतः, मनुष्यों के धरण-पोषण कर नेवाले। अनिष्ट का निरसन-रक्षण॰ इष्ट का प्रापण-पोषण॰ इत्य वन धरणयोर्भेदः। तथा सोम देनेवाले यजमान को फल के देनेवा ले अर्थात् पूरने वाले। यद्वा सोम को पीने वाले॥ उपयामेत्यासु

+ ओ-म्। आ। उ-भ्यः॥ इ॰। ए-भ्यः॥ उ॰॥ ३३॥

रीगा॰ हे सोम तू उपयाम पात्र करिके स्वीकार कियाहै विश्वे देवाओंके अर्थे तुझे ग्रहण कर्ताहूं॥ एषतेया॰ज॰ सादयति। यह तेरा स्थान विश्वे देवाओंके अर्थे तुझे सादन कर्ताहूं॥३४॥

अ॰१७ विश्वे देवास॥ विश्वे देवास ऽआगत शृणुता म ऽइमᳬहवम्। एदम्बर्हिर्न्निषीदत॥ उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽएषते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥३४॥ +

वैश्वदेवी गायत्री गृत्समदहष्टा वैश्वदेव ग्रह ग्रहण ऽएवविकल्पेनाम्नाता॥ हेविश्वे देवाओ तुम मेरे यज्ञप्रति आओ और आके मेरे इस आह्वान को श्रवण करो सुनकर इन मेरी बर्हिओं के ऊपर बैठो॥ उपयामेति पूर्ववत्॥३४॥ इतिप्रातः सवन ग्रहा समाप्ताः

अथमाध्यान्दिनसवनग्रहाउच्यन्ते

अ॰१८ इन्द्रमरुत्वः॥ इन्द्रमरुत्व ऽइह पाहि सोमं यथा शार्याते ऽअपिबः सुतस्य॥ तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः॥ उपयाम गृहीतोसीन्द्रायत्वा मरुत्वत ऽएषते योनिरिन्द्रायत्वा मरुत्वते॥३५॥ +

माध्यन्दिने सवने मरुत्वतीया गृह्यन्त ऽइति तितिरि वचनात्। तत्र त्रयो मरुत्वतीया स्तत्र प्रथममाह का॰१०.१.१४. ऋतु पात्र करिके मरुत्वतीय ग्रह को ग्रहण करे ऐन्द्रामारुतीश्च तस्त्रिष्टुभो विश्वामित्र दृष्टाः॥ मरुतों करिके सहित हे इन्द्र इस हमारे यज्ञ में सोम को पी। कैसे पी सो कहते हैं जैसे शर्याति नाम राजा के यज्ञ में अभिषुत सोम के अंश को पीआ तैसे यहां पान करि। शर्यातो हवा॰ शत॰४.१.५.२

+वि-ता।अ॰भ्य॥ इ॰।ए-भ्यः ३४ + इ-त्रा।अ॰।उ-ते। इ॰।ए-ते।उ॰।३५

किंच हे शूरवीर) तेरी अनुज्ञा करि सुयज्ञाः (कल्याणयज्ञ) कवयः (क्रान्तदर्शी) तेरे सुख के निमित्त यज्ञगृह में तुझे परिचार करते हैं॥ हे सोम तू उपयाम करिके गृहीत है मरुतों सहित इन्द्र के अर्थ तुझे गृहण करताहूं॥ सादयति यह तेरी योनि मरुतों सहित इन्द्र के अर्थ तुझे सादन करताहूं॥३५॥

अ०१९ मरुत्वन्तंवृषभम्॥ मरुत्वन्तंवृषभंवावृधानमकवारिन्दिव्यꣳशासमिन्द्रम्॥ विश्वासाहमवसेनूतनायोग्रꣳसहोदामिहतꣳहुवेम॥ उपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा मरुत्वत एषतेयोनिरिन्द्रायत्वामरुत्वते॥

अ०२० उपयामगृहीतोसिमरुतान्त्वौजसे॥३६॥ +

द्वितीयं मरुत्वतीयमाह। का०१०·३·६· रिक्तपात्र करिकै शस्त्रसहित मरुत्वतीयकोलेवे॥ इस अपनेयज्ञमें तिस इन्द्रको हम आह्वान करते हैं। कैसे इन्द्र को कि मरुत्वन्तं, मरुद्गणोपेत। जल के वरसने वाले। कामों के वढाने वाले। अकवारिम् अकुत्सित शत्रुओं छत्रादि कों वाले अथवा उत्कृष्ट ऐश्वर्यवाले। द्युलोमें रहनेवाले दुष्टोंकी शासना-करने वाले अथवा प्रशासनवन्त। विश्वासाहम्, विश्वंपालयतुं सहते स विश्वसाट् अर्थात् आलसरहित अथवा अभिभवके अर्थमें सहति अपनेधर्मसे छुटेहुए सवों के अभि भवितार। नूतनाय नवीन, पालन, इसयजमानकी रक्षाके अर्थ उग्र उद्गूर्ण, वज्रको। सहोदाम्, वल देनेवाले तिसको॥ उपयाम, एषते इव्याख्याते॥३६॥

+ म-मा।अ०।उ-ते।इ०।ए-ते।उ० अनुवाक २०॥उ-से।अर०॥३६

तृतीयं मरुत्वतीयमाह। का० १०·३·३· प्रतिप्रस्थाता दूसरे ऋतु पात्र करिकें मरुत्वतीय ग्रहको ग्रहण करै उपयाम गृहीतोसि मरुत्वां त्वो जसे· मरुद्देवत्यं यजुः। हे मरुत्वतीय ग्रह मरुद्देवता ओंके वलके अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ताहूं इतिशेषः॥ सो तू उपयाम करिकें ग्रहीत है। अपने वल को धारण करि कारणयह कि इन्द्र प्रति आये मरुत इस ग्रह के ग्रहण करने से सवल होते हैं॥३६॥

अ०२१ सजोषाऽइन्द्र॥ सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमम्पिव वृत्रहाशूर विद्वान्॥ जहि शत्रूँ॥ रपमृधोनुदस्वाथा भयङ्कृणुहि विश्वतोनः॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएषते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥३७॥ +

सजोषाऽइन्द्रेति ३७ मरुत्वां इन्द्रेति ३८ ऋग्द्वयस्य सोपयामस्य मरुत्वतीय ग्रहणएव विनियोगः ॰ वाचःस्तोमे वाचस्तोमाश्चत्वार० इति कात्यायनोक्तेः २२·६·२४· मरुत्वां इन्द्रेति मरुत्वती मित्याश्वलायनोक्तेश्च ७·२१·॥ हे इन्द्र हे शूर वीर तू सोमको पीकै साहै तू कि प्रीति करिकै वर्तमान (संतुष्ट) मरुद्गण सहित। इस सोम पानकरिके वृत्र दैत्य को मारैगा। विद्वान् इस अर्थको जानताहै तिस हेतु सोम को पीकें वृत्रादिक शत्रुओं को मारि किंच मृधः युद्ध को निवर्त्तहो॥ अथवा मृधः संग्राम से अपनुदस्व जे मारने सें वचे शत्रु तिन्होंको संग्राम से पालन के अर्थ प्रेरणाकरि अर्थात् प्राणदान करि। ऐसे वैरियों का नाश करिके निरंतर में हम को अभय करि॥ उपयामेति व्याख्याते॥३७॥

+ स-न॰।अ॰।उ-ते।वृ॰।ए-ते।उ॰॥३७॥

अ०२२ मरुत्वाꣳ२ँ॥ऽ इन्द्र॥ वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधम्मदाय॥ आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽ ऊर्म्मिन्त्वꣳ राजासि प्रतिं पत्सुतानाम्॥ उपयाम गृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥३८॥+

हे इन्द्र तू सोम को पी किसलिये कि तृप्ति और संग्राम के अर्थ, कारण यह कि तृप्ति हुआ इन्द्र योद्धा होता है। कैसा है तू कि मरुद्गण संयुक्त।जलों का वर्षनेवाला। कैसा है सोम कि अनुष्वधम् पुरोडाशधानामन्थदधिपय लक्षण कैसे पी सो कहते हैं कि मध्वः मधुस्वादोपेत की कल्लोल को जठर में सब ओडी से सींच। सोमपान में हेतु कहिते हैं कि हे इन्द्र तू प्रति पत्सुतानाम् प्रतिपत् प्रभृति तिथियों में अभिषुत सोमका राजा ईश्वर है कहां से कि चतुर्दशी के अन्त में अभिषुतों में कारण यह कि तेरे अर्थ सब तिथियों में सोम चुवाते हैं। छन्दोगानां सवने प्रतिपद्विद्येत ऽ इति प्रतिपद्ग्रहणम्॥ उपयामेत्यादि व्याख्याते॥३८॥

अ०२३ महा२ँ॥ऽ इन्द्रः॥ महा२ँ॥ऽ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा ऽ उत द्विबर्हा ऽ अमिनः सहोभिः॥ अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥ उपयाम गृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्म्महेन्द्राय त्वा॥३९॥+

का०१०·३·१०· जैसे वैश्वदेव ग्रह शुक्रपात्र करिके ग्रहण किया तैसेही महेन्द्र ग्रह को तिस से ग्रहण करे॥ माहेन्द्री त्रिष्टुप् भरद्वाजदृष्टा इन्द्र वीर कर्म के अर्थ बढता है। कैसा है इन्द्र कि महाप्रभव तथापि मनुष्यवत् आहूयमान आता है अथवा मनुष्यवत् सब ओडीसे

+ म-मू।अ०उ-ते।दू०ए-ते।उ०॥३८॥ म-तू।अ०उ-त्वा।दू०ए-त्वा।उ०॥३९॥

नुष्यों को अभीष्ट कामों से पूरण करताहै जैसे राजा अमात्यादि मनुष्यों को अभीष्ट कामों करि पूरण करता है तद्वत्। औरद्वि वर्हो द्विहि बर्हणं वर्हः- दोनों प्रकृति विकृति रूपी सोम याग की वृद्धिहै जिसके वोह अथवा दोनों उत्तम और मध्यम स्थानोंकावर्हः, वृद्धः प्रभु। तथा वल करिके अमित उपमा रहित अर्थात् अतोलित वल अथवा शतवल करिके अमित अप्रक्षिप्त अर्थात् अनुपहिंसित। तथा अस्मध्यक्- हमारे अभिमुख। सो वर्धमान इन्द्र ऐसा होवे कैसा कि यश करिकै विपुल वल करिकै विस्तृत यजमानों करिके सत्कार(पूजा)किया॥ उप- त्यासुरी अनु०हे ग्रह- महेन्द्र के अर्थे तुम्हें॥ एष- इत्यासुरीत्रि० सादयति॥ ३९॥

अ०२४ महाँ२॥ऽ इन्द्रः॥ऽ महाँ२॥ऽ इन्द्रोय ऽ ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२॥ऽ इव॥ स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥ उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैषते योनिर्म्महेन्द्राय त्वा॥ ४०॥+

माहेन्द्री गायत्री वत्स दृष्टा माहेन्द्र ग्रहण एव विकल्पेन विनियुक्ता॥ जो इन्द्र वत्स- वसन शील- वा वत्सस्थानीय यजमान के स्तोम करिके वृद्धि को पाताहै। कैसाहै इन्द्र कि तेज करिकै महान् कैसे कि वृष्टि युक्त पर्जन्य,जैसे वर्षते मेघों की धारा वल करिकै बढ़ताहै॥ उपयामेति द्वे व्याख्याते॥४०॥

अ०२५ उदुत्यम्॥ उदुत्यञ्जातवेदसन्देवम्वहन्ति केतवः॥ दृशे विश्वाय सूर्य्यꣳ स्वाहा॥४१॥

का०१०।२।४।५।वस्त्र वद्ध सोम को जुहू में रखकर शालाद्वारीय

+म- धे।अ०।उ०- त्वा। इ०इ- त्वा। उ०॥४०॥

अग्नि में चतुर्गृहीत आज्य करि के दक्षिणसंज्ञक होम करे ॥ सौरीगायत्री प्रस्कण्व दृष्टा ॥ रश्मि तिस प्रसिद्ध सूर्य देव को उद्वहन करती हैं। कैसे सूर्य को कि जातवेदसम् जात ज्ञान वाधन को किस लिये उद्वहन करती हैं कि विश्वाय दृश्योऽसब(जगत) के देखने कअर्थ तस्मै स्वाहासुहुतमस्तु ॥ ४१ ॥

चित्रन्देवानाम् ॥ चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥ आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

का०१०·२·६· चतुर्गृहीत आज्य से शाला-अग्नि में दूसरी आहुति को होमें ॥ सौरी त्रिष्टुप्कुत्सदृष्टा ॥ परापर रूपेण स्थित सूर्योऽत्र स्तूयते, सूर्य चित्र (आश्चर्य) जैसे तैसे उदय हुआ वा होता है उदय होते ही अपने तेज करि के रात्रि जनित अन्धकार को नाश करता है और और ज्योतियों को देते यह आश्चर्य है। कैसा है सूर्य कि किरणों का आश्रय वा किरण पुंज। तथा मित्र वरुण अग्नि का नेत्र वत्प्रकाश·मित्रादि उपलक्षक समस्त देव मनुष्यों के रूप सूर्योदय में प्रकाश करते हैं इस हेतु मित्रादिकों का चक्षु वोह सूर्य उदय होते दिवि भूमि और अन्तरिक्ष को पूरण करता हुआ वा अपने तेज करि पूरण करता है इति शेषः। एवमपररूपेण स्तुत्वा पररूपेण स्तौति। कैसा है सूर्य जगतः (जङ्गम) तस्थुषः (स्थावर) का अन्तर्यामी। यमेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते सऽइन्द्रः स प्रजापतिस्तद्ब्रह्मेति श्रुतेः सूर्योऽद्वैतमनेनोच्यते इति भावः

ख शा०यो०सना०इति०मि०७·२०·

तस्मै स्वाहा सुहुतमस्तु ॥४२॥

अग्नेनय॥सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देववयुनानिवि द्वान्॥ युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्तेनमउक्तिं विधेम स्वाहा॥४३॥

अयन्नः॥अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुरएतु प्रभिन्दन्॥ अयम्वाजाञ्जयतु वाजसाताव यꣳशत्रूञ्जयन्तु जर्हृषाणः स्वाहा॥४४॥

का॰ १०॰२॰७॰ आग्नीध्रीय अग्नि में एकवार लिये आज्य को अग्ने नय से होमें॥ का॰ १०॰२॰८॰ अयंनः से दूसरी आहुति को आग्नीध्री यमें होमें॥ द्वे ऋचौ व्याख्याते अ॰ ५॰ कं॰ ३६॰ ३७॥४३॥४४॥

रूपेणव ः॥रूपेणवो रूपमभ्यागान्तुथो वो विश्ववेदा विभजतु॥ऋतस्यपथा प्रेतचन्द्रदक्षिणा विस्वः पश्यव्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः॥४५॥ +

का॰ १०॰२॰१०॰ हिरण्य सहित यजमान शाला के पूर्व में खडा हो वेदी के वाहिर दक्षिण में अव स्थित दक्षिणा॰ गोका अभिमन्त्रण करे॥रूपेणेत्यादि दक्षिणारित्यन्तं महीधर मते नष्टरूपानुष्टुप्। कात्यायनेपि चतुर्णां दक्षिणा॰ प्रथमा प्रा-वृ॰ द्वितीयाया-ज॰ इत्यादि चतुर्णां मन्त्राणां छन्दो हलायुधेन व्याख्यातः॥ पूर्वं पशवः स्वदानमसहमाना रूपान्तराणि जगृहुः देवाः स्वैस्रूपैस्तानुपागतास्ततस्ते स्वैरूपैराजग्मुरिति॰ शत॰ ४॰३॰४॰१४॰ मन्त्रस्य निदानम्॥ हे दक्षिणारूपा गो रूप (मूर्ति) करिके तुम्हारे रूपका में आयाहूं इस हेतु तुमभी आओ॰

+ रू-तु॰अ॰ऋ-णा॰। दृ॰। वि-मृ॰। उ॰। य-स्यैः॰ त्रि॰॥४५॥

सवही अपने स्वरूप को प्राप्त हो ओ इतिभावः ।। किंच तुथः ब्रह्मरूपः प्रजापति तुमें यथा योग्य ऋत्विजों के अर्थ देवै † कैसा है तुथःकि विश्ववेदाः (सर्वज्ञ । किंच तुम यह जानकर यज्ञ के मार्ग करिकें चलो कैसी हो तुम कि चन्द्र दक्षिणाः चन्द्र सुवर्ण यजमान के हाथ में स्थित दूसरी दक्षिणा जिन्हों की वोह चन्द्र द्वितीय दक्षिणा ।। का० १०·२·१७· सदमें जावें विस्वरितिया- अ० ।। हे दक्षिणा में स्वर्ग (देवयान मार्ग) को देखताहूं तुम सोमपान भूता करिकै इतिभावः ।। का० १०·२·१८· यजमान ऋत्विजों को देखे यतस्व सदस्यैरितिया- गा० ।। हे दक्षिणे तू यत्न करि जैसे ऋत्विजों के पूरण करने सें नष्ट इतिशेषः तैसे तुम्हें यत्न करना योग्य है जैसे ऋत्विज धनसें पूरण करिकै तू अधिक हो इतिभावः ।।४५।।

ब्राह्मणमद्य ।। विदेयम्पितृमन्तम्पैतृमत्यमृषिमार्षेयᳬ सुधातुदक्षिणम् ।। अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ।।४६।। †

का० १०·२·१९· ब्राह्मणमद्य इससे स्वस्थानस्थित आग्नीध्र (ऋत्विज) प्रति यजमान जावे ।। लिंगोक्तदेवतान्यष्टौ ब्राह्मणमद्येत्याषी द्व० ब्राह्मणदैवत्यम् मैंने आजके दिनमें ऐसे ब्राह्मण को पाया कैसे को कि पितृमन्तम् प्रशस्त है पिता जिस्का तिसको नहीं कोई विना पिताके उत्पन्न होता परन्तु यहां प्रशस्त के अर्थ में मतुप् अर्थात् विशिष्ट जनकोत्पन्न को । तथा पैतृमत्यम् पितामहादिक जगन्मान्य है जिस के तिसे । अथवा सर्वथा जिसके पितामहादिक

† ब्राह्मणमद्येति प्राग्नीध्रमासाद्य तस्मा अभिस्त्वा अभ्रयुक्त इति ददाति ...

† वा-मु। अ० ७ अ-त। इन० ४६।।

श्रोत्री हैं सो पैतृमत्य। तथा ऋषिम् मंत्रों की व्याख्या करने वाले को। तथा आर्षेयम् ऋषियों मे विख्यात। जाति करके बड़ा अर्थात् ज्ञान करि सुज्ञान को। तथा सुधातु दक्षिणम् सुवर्ण है दक्षिणा है जिसकी तिस को॥ का० १०·२·२०· वेदिके आग्नीध्रके अर्थे दक्षिणा देवै॥ असद्दाता आर्षी गा० दक्षिणा दे०। हे दक्षिणा तुम हमारी दीहुई देवताओं प्रति जाओ। तिन्होंकी तृप्ति करिके फिरि यज्ञफलका साधन करती यजमान प्रति प्रवेश करो॥४६॥

अग्नये त्वा॥ अग्नये त्वा मह्यम्वरुणो ददातु सोमृतत्व मंशीयायुर्द्दात्र ऽएधि मयो मह्यम्प्रति ग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यम्वरुणो ददातु सोमृतत्व मंशीय प्राणो दात्र ऽएधि वयो मह्यम्प्रति ग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यम्वरुणो ददातु सोमृतत्व मंशीय त्वग्दात्र ऽएधि मयो मह्यम्प्रति ग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यम्वरुणो ददातु सोमृतत्व मंशीय हयो दात्र ऽएधि वयो मह्यम्प्रति ग्रहीत्रे॥४७॥

का०१०·२·२८· अग्नये त्वा से अध्वर्यु प्रति प्रस्थातार हिरण्य प्रति गृहण करैं॥ आर्षी त्रि० हिरण्यदे०। हे हिरण्य वरुणने अग्नि रूपापन्न मेरे अर्थ तुझे दिया। पहिले वरुणने अग्न्यादिकोंके अर्थ सुवर्णादि दिया इस हेतु तिन देवताओं के आदेश करि प्रतिग्रहणकरनेवाला विघ्र नाशको नहीं प्राप्त होता। इस विधिसे गृहणकरनेवाला सो में अमृतत्व (आरोग्यता) को प्राप्त होउं हे हिरण्य तू दाता की आयु का जीवन हो मुरू प्रति गृह करने वाले का सुख हो। दाता आ

युष्मान होवै मैं सुखी होंउं इतिभावः॥का॰१०॰२॰२९॰ रुद्रायत्वेति गौ का प्रतिग्रह करै॥यजुः गोदे॰॥हे गौ रुद्र रूप मेरे लिये वरुणने तुम्हे दिया सो मैं अमृतत्व को प्राप्त होंउं हे गौ तू देनेवाले यजमानके अर्थ प्राण हो मुझ प्रतिग्रहीता के अर्थ वय (अन्न वा पशु) हो॥अर्थात् दुग्ध दध्यादि रूप करि अन्न और सन्तति द्वारा पशु हो॥का॰१०॰२॰३०॰ बृहस्पतयेत्वा से वस्त्र ग्रहण करै॥यजुः वासो दैव॰॥हे वस्त्र बृहस्पति रूप मेरे अर्थ वरुण ने तुम्हे दिया सो मैं अमृतत्व को प्राप्त होंउ और तू दाता के अर्थ त्वक् इन्द्री का सुखकारी हो और मुझ प्रतिग्रहीता के अर्थ सुख हो॥का॰१०॰२॰३१॰ यमायत्वा से अश्व ग्रहण करै॥यजुः अश्वं दैव॰॥हे अश्व यमरूप मेरे लिये तुम्हे वरुणने दिया सो यम रूप मैं प्रतिग्रहीता अमृतत्व को प्राप्त होउं हे अश्व तू दाता के अर्थ अश्व हो मुझ प्रतिग्रहीता के अन्न वा सन्तति द्वारा पशु का दाता हो॥४७॥

कोऽदात्॥कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात्॥
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥४८॥

इतिसंहितायां पञ्चविंशोऽनुवाकः २५

इतिश्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीशाखीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे सप्तमोऽध्यायः ७

का॰१०॰२॰३२॰ हिरण्यादि द्रव्य से अन्य मन्थौदन तिलादि प्रतिग्रह करै॥प्राजापत्या त्रिष्टुप् कामदैवत्यम्। दातुर्दानाभिमानाभावाय स्वस्य च प्रतिग्रहजदोषाभावाय च देहेन्द्रियात्म संघाते संधाने

काम मं विनि नक्ति। किस मनुष्य ने दिया किस मनुष्य के अर्थ दिया। अभद्वयोत्तर माह। कामने दिया काम के ही अर्थ दिया नतू दाता न में प्रति ग्रहीता तेरे कामाभिमानी देवताने मेरे कामाभिमानी देवता के अर्थ दिया एवं चकाम एव दाता काम एव प्रति ग्रहीता नान्य। हे काम तेरे दातृ प्रति गृहीतृ होंने से यह द्रव्य तेरा है ॥४८॥

इति श्री गिरिधर भाष्ये पञ्चविंशोनुवाकः२५

श्रीवेदार्थ प्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्यज्ञ पुरुषः सनातनः१

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाख्येत व्याघ्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिपति श्री मज्जयकिशोर देववर्म्मोजगैकिमणेय नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधर भाष्ये उपांश्वादि दानान्त वर्णनोनाम सप्तमोध्यायः॥७॥

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंद दायकं कृष्णं ब्रह्म रूप परं स्तुमः१

अ०१ उपयाम गृहीतोसि॥ उपयाम गृहीतोस्यादित्येभ्यस्त्वा॥
विष्णऽउरुगायैषते सोमस्तꣳरक्षस्व मात्वादभन्॥१॥

ॐनमो यज्ञवल्काय

गिरि प्रसाद संज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके॥
ग्रहग्रहान्निमितान्तोष्टमोध्यायःप्रकथ्यते ८

†उ-सि।अ०।आ-त्वा। इ०। वि-न्।उ०॥१॥

सातवें अध्याय में उपांशु ग्रह से आदि ले सवन द्वयगत दक्षिणादा नान्त मन्त्र कहे आठवें में तृतीयसवनगत आदित्य ग्रहादि मन्त्र कहते हैं॥तत्र का॰ ८.८.१५. प्रति प्रस्थाता दो देवताओं सहित होम के अर्थ आदित्य पात्र करिके द्रोण कलश से सोम को ग्रहण करै॥ उपयाम गृहीतोसीतिया-अ॰ सोम देवत्यम्। हे सोम तू सुरूकरिके उपयाम पात्र से गृहीत है॥ का॰ ८.८.२०. दो देवताओं के होम किये पीछे हुत शेष को आदित्य स्थाली में डाले॥ आदित्येभ्य स्त्वा-दे॰-पं॰ सोम देव॰। हे सोम आदित्यों के अर्थ तुझे सींचता हूं इति शेषः॥ का॰ ८.८.२१. संस्रव का आसिंचन करिके तिस आदित्य पात्र से स्थाली को ढके॥ विष्णवेत्वा सा-द्व॰ विष्णु दे॰। हे विष्णो (यज्ञ पुरुष) हे उरुगाय (बहुतों करि गाये गये) यह सोम तेरा तेरे अर्पण) हे तिस सोम को रक्षा कर सोम के रक्षा करने में तुझे राक्षस लोग मत हिंसा करो इति शेषः॥१॥

कुदाचुन॥ स्तरीरसि नेन्द्र सश्च सि दाशुषे॥ उपोपेन्नु मंघवुन्भूयुऽ इन्नु ते दानन्देवस्य पृच्यतऽ आदित्ये म्भ्यस्त्वा॥२॥ + क-ते। अ॰। आ-स्त्वा। द्व॰॥२॥

का॰ १०.४.४. होम शेष संस्रव से आदित्य ग्रह को ग्रहण करै। आदित्य देवत्ये बृहत्यौ यजुरन्ते आदित्येभ्येति यजुः। साबृहती बृहदुपस्थान मध्ये ३.३४. इन्द्र देवत्या प्रथमोक्ता व्याख्याता च इह त्वादित्य देवत्या यजुरन्ता चेति विशेषः॥ हे इन्द्र कभी हिंसक नहीं है किन्तु हवि देने वाले यजमान का हवि स्वीकार करता है

क्यों कि यजमान के ऽत्यन्त समीप है हे धनवान् इन्द्र फिरिभी तेरे दैने योग्य हवि तुम करिकै संवन्ध करिये है अर्थात् यजमान करिकै दिया हवि तुम करिकै स्वीकार करिये है॥ आदित्येभ्यस्त्वा २·३·४· यजुः हे ग्रह आदित्यों के अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं इति शेषः यहां इन्द्र नाम करिकै आदित्य ही स्तुति करिये है॥२॥

कदाचन॥ प्रयुंछ स्युभेनिपासि जन्मनी॥ तुरीयादित्य सर्वनन्त ऽइन्द्रियमातस्थावमृतन्दिव्यादित्येभ्यं स्त्वा॥३॥ +

का॰ १०·४·५· धारासे तोडि कर पूतभृत में से अपने समीप में ले तैसे ही फिरि आदित्य ग्रह को ग्रहण करै॥ हे आदित्य तू किसीकाल में भी प्रमादित नहीं है। उदय ताप पाक प्रकाश से प्राणियों का अनुग्रह करता है कभी आलस्य नही करता इतिभावः॥ अथवा कदाचनेति पदत्रय चकारोऽप्यर्थे कदापि अपने कर्म मे नहीं प्रमाद करता है। किंच दोनों मनुष्या जन्मनी देवासंवधिनी का पालन करता है। किंच तेरा तुरीय चौथा मायातीत शुद्ध सवन अपने कार्य से जगत की प्रेरणा करता जगत्प्रवर्तक अमृत अविनश्वर विज्ञान आनन्द स्वभाव जो इन्द्रिय वीर्य सो द्युलोकमण्डलान्तर में आभिमुख्य करि स्थित तदुक्तम् पादोस्य विश्वाभूतानि ३१·३। एवमादित्यः परापर रूपेणास्यामृचि स्तुतः॥ यद्वास्यार्चोर्थोन्तरम् प्रशव्दो निषेधे च नशव्दोऽप्यर्थे हे आदित्य तू कभी नहीं प्रमाद करता है किंतु दोनो वर्तमान भाविनी जन्मों में र

+ क-वि। अ॰। आ-स्त्वा। दृ॰॥३॥

क्षा करताहै। तृतीय मित्यर्थे व्यत्ययेन तुरीयशब्दः प्रयुक्तः हे आ
दित्य तेरा जो तृतीय सवन में इन्द्रियों की वृद्धि करने वाला अमृ
त समान हवि सव ओडी से स्थित॥ हे आदित्य ग्रह आदित्योंके
अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं इति शेषः॥३॥

यज्ञो देवानाम्॥ यज्ञो देवानाम्प्रत्येति सुम्नमादित्या
सोभवता मृडयन्तः॥ आवोर्वाची सुमतिर्ववृत्याद्‌ठ
होश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा॥४॥+

का० १०·४·६· आदित्य ग्रह को दधि से मिश्रित करे॥ आदित्य
देवत्या यजुरन्ता त्रिष्टुप् कुत्सदृष्टा आदित्यभ्ये स्त्वेति यजुः।
यज्ञ देवताओं (आदित्यों) के सुख करने प्रति आताहै। हे आदि
त्यओ तुम हमारे सुख करने वालेहोओ। किंच जो तुम्हारी भ
क्तानुग्रहपरा शोभन बुद्धि सो हमारे अभिमुखी वर्ते। किंच अंहो
श्चित् (हनन शील पाप कारी की भी जो सुमति) वरिवो वित्तरा (अ
त्यन्त धन की लाभ करने वाली) हो सो सुमति हमारे अभिमुखी
वर्ते इति संबंधः। हे सोम आदित्य देवताओं के अर्थ तुझे दधिसे
मिश्रित करताहूं इति शेषः॥४॥

विवस्वन्नादित्य॥ विवस्वन्नादित्यैषते सोमपीथस्तस्मि
न्मत्स्व॥ श्रदस्मै नरोवचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती
वाममश्नुतः॥ पुमान्पुत्रोजायते विन्दते वस्वधा विश्वाहा
रपऽएधते गृहे॥५॥

का० १०·४·७· पाषाण करि दधि और सोम को मिलावे॥ आदि

+ य-त्र। अ०।आ-स्वा। द्र०॥४॥ + वि-त्व। अ०अ-हे। द्र०॥५॥

त्य देवत्यं यजुः। तमों का नाश करने वाला वा विशिष्ट वसुधनवालावि वस्वान् तिसका संबोधनवि वस्वन् हे विवस्वन् हे आदित्य यह पात्र में स्थित तेरे पीने योग्य सोम तिस पीनेयोग्य सोमसे तू तृप्ति करि॥०

१०.५.४ अदस्मे से पत्नी पूतभृत को देखै। आशीर्दैवत्या जगती नर दे वत्या वा † ॥ पत्नी वदति। हेनरः॰ नेतार ऋत्विग्य जमानो आशि षाके देनेवाले तुम मेरे आशीष वचन में श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि) करो मेरा कहा हुआ आशीर्वचन तुम लोगों की श्रद्धा करि धारण करने से तैसाही होगा इतिभावः। कोनवोह आशीर्वचन जैसे कहती हूं जो दम्पती (जायापती॰ पत्नी यजमान) संभजनीय यज्ञ फल को प्राप्त हों। किंच पुमान् पुँस्त्वधर्म संपन्न पुत्र होवै किंच वोह पुत्र वसु धन को पावै निरन्तर में धन पाने पर सर्वदा पापरहित अपने घर में वढै। आशिषा के देनेवाले दम्पती यज्ञ फल को प्राप्त हों तिन्हों के पुत्र हो और सोधन का लाभ करि के पापरहित अपने घरमें वढै इस आशीर्वचन मे श्रद्धा करो इतिसर्वार्थः॥५॥

† इति महीधरः

अ॰ २ वाममद्य॥ सवितर्वाममुश्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः। वामस्यहि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६॥

का॰ १०.५.१३ सवनीय पुरोडाश इडाभक्षण सवनीय संबंधिकर्म समाप्त करि उपांश्वन्तर्यामि से अन्यतर सावित्र को ग्रहण करै। कण्डिका द्वयात्मको मन्त्रः प्रथमा त्रिष्टुप् बृहस्पति पुत्रो भरद्वाज दृष्टा द्वितीया यजुषी द्वेसवितृ देवते॥ हे सवितः सवके प्रेरक देवता आज के दिन हमारे लिये वामं सावीः॰ वननीय यज्ञफल-

को प्रेरि अर्थात् दे। और श्वः भी अच्छे प्रकार निरंतर दिन में वामंसावीः। तिस के ऊपर दिन दिन में हमारे अर्थ वामंसावीः। जिस हेतु इस श्रद्धा युक्त बुद्धि से हम यज्ञ के अनुष्ठातार होवें। किसलिये किवननीय विस्तीर्ण बहु कालीन स्वर्गनिवास की सिद्धि के अर्थ। यद्योतरार्धस्यायमर्थः हे देव वननीय धन पूर्ण निवास का दाता हो इति शेषः इस धिया धीरिति कर्मनाम निघं०२.१. सोमाख्य कर्म से हम वामभाजः स्याम अभिलषित भागी होवें॥६॥

उपयामगृहीतोसि॥ सावित्रोसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि॥ जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिम्भगाय देवाय त्वा सवित्रे॥७॥

हे सोम तू उपयाम करि गृहीत है हे ग्रह तू सवितृ देवताक है चनोधाः अन्न का धारण करने वाला जो कि तू अत्यन्त करि चनोधा है इस हेतु अन्न मेरें स्थापन करि किंच यज्ञ को प्रीति करि और यज्ञपति यजमान को तृप्त करि ऐश्वर्यादि गुण युक्त सवित्रे समस्त प्राणियों के प्रसवादि करने वाले देवता के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं इति शेषः॥ भग का अर्थ ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य इन्हों का समुदाय॥७॥

अ०३ उपयामगृहीतोसि सुशर्मासि॥ सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः॥ विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥८॥ + उभ्यः॥ अ०। ए-भ्यः। इ० ८॥

का०१०.६.२. विन भक्षण किये सावित्र ग्रह पात्र करिके पूतभृत में से

अध्वर्यु महा वैश्वदेव ग्रह का ग्रहण करै॥ वैश्वदेवं यजुः॥ हे वैश्वदेव ग्रह तू उपयाम करिकै ग्रहण किया है जिस कारण सुशर्मा शोभन शर्म वा सुख का आश्रय है। तथा सुप्रतिष्ठानः पात्र में स्थिति है जिसकी तैसा है। अर्थात् दोनो विशेषण करिकै प्राणरूप है †। ग्रह को अन्नरूप और अन्न को प्राण का हेतु होने से ग्रह को प्राणत्व है। जो कि ऐसा है तिस कारण बृहदुक्ष वडे उक्षा॰ सेक्ता अर्थात् जगत के उत्पन्न करने वाले प्रजापति ‡ के अर्थ नमः ¥ अन्न होने योग्य है इति शेषः॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यो ऽर्थायत्वा गृह्णामि॥ सादयति। एषते या–ज॰ व्याख्यातम्॥८॥

अ॰४ उपयामगृहीतोसि॥ बृहस्पतिसुतस्य देव सोमत ऽइन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ २॥ ऽऋध्यासम्॥ अहम्परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षन्तदु मे पिताभूत्॥ अहꣳसूर्य्यमुभयतो ददर्शाहन्देवानाम्परमङ्गुहायत्॥९॥ †

का॰ १०.६.१६. उपांशु अन्तर्याम दोनों में से किसी एक करि प्रतिप्रस्थाता पात्नीवत ग्रह को ग्रहण करै। ब्राह्मीगा॰ सोमदेवतम्॥ हे दीप्यमान हे सोम तू उपयाम पात्र करिकै गृहीत है इस हेतु तेरे संबंधी उपांशु प्रभृति अन्य ग्रहों को मैं ऋध्यासम् भरताहूं। कैसे हैं तेरे कि बृहस्पतिसुतस्य बृहतः॰ वडे यज्ञ कर्म के पति॰ यजमान के अभिषुत अथवा बृहस्पतियों ब्राह्मणों ऋत्विजों के अभिषुत। तथा इन्दोः उन्दी क्लेदे॰ क्लेदन रूप अर्थात् रस रूप। तथा वीर्यवान्। तथा पत्नी संयुक्त॥

का॰ १०.६.१७. प्रचरणी के शिष्ट आज्य करि पात्नीवत ग्रह को मिश्रित करै। प्रजापतिरूपात्म देवत्या त्रिष्टुप् अत्र मंत्र द्रष्टा स्वस्य सर्वगत

† उ–मू॥ अ॰॥ म–म॥ दू॰॥ ४॥

† प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः इति श्रुतेः श॰ ४.४.९.१४
‡ प्रजापतिर्वै बृहदुक्षः इति श्रुतेः श॰ ४.४.९.१४
¥ नमः। निघं॰ २.७

परमात्म रूपमभिप्रेत्य वदति। मैं परमात्म रूपहो द्युलोकादिक औरत
था मैं भूलोकादिक में ठैरा हूं इतिशेषः जो मध्यवर्ती अन्तरिक्ष लोक
रूपहै सो मेरी देहकोधारण करनेवाला पितृवत्पालक है। मैंपरमात्म
रूपहो ऊपर औरनीचे में स्थितहोकर सूर्य को देखता हूं। इन्द्रादिक
देवताओं के जो अत्यन्त गोप्य हृदय में है सोमैं हूं ॥९॥

अग्ना३इ पत्नीवन्॥ सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा
प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृ
ष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥१०॥+

का० १०. ६. १७. पात्नीवत ग्रह को अग्नि के उत्तर भाग में होमें
अग्नि देवत्यं यजुः॥ हे अग्ने हे पत्नीयुक्त त्वष्टा देवता से समा
न प्रीति होके तू सोम को पी स्वाहा सुहुतमस्तु॥ का० १०. ७. ३.
नेष्टा पश्चिम द्वार से पत्नी को सद में प्रवेश कराय उद्गाता के उत्तर
स्थित पत्नीप्रति (उद्गातारं पश्य) उद्गाता को देखि यह कहै तबवो
ह पत्नी प्राजापति र्वृषासीति मंत्र पढि कर उद्गाता को देखै औ
षीति ० प्रजापतिर्दे०॥ हे उद्गातः प्रजा का पालक तू सेक्ता है औ
र वीर्य का धारण कराने वाला है। ऐसा तू वीर्य को मेरे स्थापन
करि ततः वीर्य के सींचने वाले वीर्य के धारण कराने वाले
प्रजापति तेरे अनुग्रह से प्रजोत्पादनसमर्थपुत्रकोप्राप्तहोंउं॥१०

अ०५ उपयामगृहीतोसि॥ हरिरसि हारियोजनो हरि
भ्यान्त्वा॥ हर्य्योर्धानास्थ सहसोमा इन्द्रा
य ॥११॥+

+ प्र- प्रा॥ अ०प्र- या इ०॥१०॥ + उ- त्वा॥ अ०ह- या इ०॥११॥
+ उ त्वा अ०।

का०१०.८.१० आग्रयण स्थालीस्थ सोम से हारियोजन ग्रह का अध्वर्यु ग्रहण करै॥ उप० हरिरसी त्यार्षी उ० ऋक्सामदेव०॥ हे ग्रह तू हरितवर्ण है। और उपयामकरि गृहीत है कैसा है तू कि हारियोजन हरी इन्द्र के घोडे तिन्हो का योजन करनेवाला इन्द्र तिसका संबंधी हारियोजन तिस तुझे हरिभ्यां० ऋक्साम मंत्रो के अर्थ ग्रहण करता हूं॥ का०१०.८.२ हारियोज में भृष्टयवों को वपै॥ हर्योर्धाना० या० जन्धा नादेव०॥ सोमसहित भ्रष्ट यवो तुम इन्द्र के हरित वर्ण अश्वों के हो अर्थात् इन्द्राश्व संबंधी तुम हो॥११॥

† हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा · हर्योर्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय

‡ ऋक्सामे वै हरी ऋक्सामाभ्यां ह्येनं गृह्णातीति श्रुत०४.४.३.६

यस्ते॑ऽअश्व॒सनि॑र्भ॒क्षो यो गो॒सनि॒स्तस्य॑त॒ऽइ॒ष्टय॑जुष स्तु॒त स्तो॑मस्य स॒स्तो॒क्थस्यो॑प॒हू॒त स्योप॑हूतो भक्षयामि॥१२

का०१०.८.४ सब ऋत्विज भृष्टयवों को ले यस्ते मंत्र से घ्राणभक्षण करि उत्तर वेदी में डालें। भक्षद्रव्य देवत्यं यजुः॥ हे धाना सहित सोम भक्षद्रव्य जो तेरा भक्षण अश्वों का दाता और जो तेरा भक्षण गौओं का दाता तिस तैसे तेरे भक्षण को जानिकर भक्षण करता हूं। कैसे तेरे कि इष्टयजुषः० इष्टयजु का। तथा स्तुत सोमस्य० उद्गाताओं करि स्तुति किया तिसका। तथा शस्तोक्थस्य० होताओं करि शस्त उक्थ० शस्त्र जिसके तिसका। तथा उपहूतस्य० जाने हुए का अर्थात् तिस में ये हैं॥१२॥

दे॒वकृ॑त॒स्यैन॑सः॥ दे॒वकृ॑त॒स्यैन॑सो॒ऽव॒य॒जन॑मसि मनु॒ष्य॑कृत॒स्यैन॑सो॒ऽव॒य॒जन॑मसि पि॒तृकृ॑त॒स्यैन॑सो॒ऽव॒य॒जन॑मस्या॒त्मकृ॑त॒स्यैन॑सो॒ऽव॒य॒जन॑मस्ये॒न॑सऽएन॑सो॒ऽव॒य॒जन॑मसि॥ यच्चा

इमे॒नो वि॒द्वाँश्च कार॒ यच्चावि॑ द्वाँस्तस्य सर्वस्यैन॑सो वय॒ज॑नमसि ॥ १३ ॥ १

का० १० ६ ८ छै मन्त्रों से छै यूप शकलों का आहवनीय में आधान करै । आग्नेयानिषद् १ ३ ४ आसुरी अ० २ आसुरी उ० ५ आसुरी ६ आर्षीवृ० ॥ हे शाकल तू देवविषयमें किये यजन के अभावादि क्षण पाप का नाशक है ॥ मनुष्यों में किये द्रोह निन्दादि पापका नाशक है ॥ पितरों में श्राद्धाकरण पापका नाशक है ॥ आत्मविषय किये आत्मनिन्दादि पापका नाशक है ॥ जितने क पाप हैं तितनों का नाशक है ॥ किंच ज्ञानपूर्वक अर्थात् जान बूझ कर जो कुछ पाप हमने किया और विनजाने जो हमने किया तिन सब जाने अनजाने का नाशक है ॥ १३ ॥

सं वर्च॑सा॥ पय॑सा सन्त॒नूभि॒ रग॑न्महि॒मन॑सा सँ शि॒वेन॑ ॥ त्वष्टा॑सु॒दत्रो॒ विद॑धा तु॒ रायो॒नु॑ मार्ष्टु त॒न्वो॒ य॒द्वि॑लि॑ष्टम् ॥ १४

का० १० ८ ७ चात्वाल से निकट में होत्रादि क्रम पूर्वक प्रागग्र दश चमस स्थापन किये थे तिन्हों को जल से पूर्ण करि तिन्हों पर आर्द्र दर्भों को रखय यथा क्रम स्पर्श करैं । त्वाष्ट्री त्रिष्टुप् व्याख्याता पि २ २४ व्याख्यायते ॥ ब्रह्मतेज करि हम संगत होते हैं । क्षीरादि रस करि० अनुष्ठान सामर्थ्य शरीरावयवों करि० समीचीन कर्म श्रद्धा युक्त मन सा करि० । किंच शोभन दानी त्वष्टा देव धन स्थापन करै हमारे शरीर के जो न्यून अङ्ग तिन्हों के न्यूनत्व का परिहार करि अनुकूलत्व करि कै शोधै ॥ १४ ॥

१ दे-सि । अ० । म-सि । द्विपि-सि । उ० । आ-सि । ऋ० । ए-सि । त्व० । य-सि । आ० । १३ ॥

अथसमिष्टयजुर्मन्त्राउच्यन्ते

अ॰६ समिन्द्र॥एणा मनसानेषि गोभिः सꣳसूरिभिर्म्मघवन्त्सꣳस्वस्त्या॥संब्रह्मणा देवकृतं यदस्तिसन्देवानाꣳसुमतौ यज्ञियानाꣳस्वाहा॥१५॥

का॰१०॰८॰११॰समिन्द्रणः इन नव९ मन्त्रोंकी समिष्टयजुःसंज्ञाहै तिन्होंसे नव आहुतिहोमें। तत्राद्यःविश्वदेवत्या त्रिष्टुप् अत्रिदृष्टा॥ हेमघवन् धनवन् हे इन्द्र अनुग्रह युक्त मनसा करि हमें तू संनेषि भलेप्रकार योजन करि। वाणी वा पशु ओं करि संनेषि। सूरिभिः होत्रादि पण्डितों करि संनेषि और क्षेम करि संनेषि। ब्राह्मणार्थज्ञान सहित वेद करि। देवकृतं देवताओंके अर्थ कियेवादेखे यज्ञाख्य कर्म तिसकरि। तथा यज्ञसंबंधी देवताओंकी अनुग्रह बुद्धिमें संयोजयसि। जो तू हमको एवं मन आदि करि संयोजयसि तस्मै स्वाहा एतद्धविः सुहुतमस्तु॥१५॥

सम्वर्चसा॥पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसासꣳशिवेन त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोनुमार्ष्टु तन्वोयद्विलिष्टम्॥१६

अथद्वितीयः त्वाष्ट्री त्रिष्टुप् प्रजापतिदृष्टा व्याख्याता २४॰॥१६॥

धाता रातिः॥ सवितेदञ्जुषन्ताम्प्रजापतिर्न्निधिपा देवो अग्निः॥त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणन्दधात स्वाहा॥१७॥

तृतीयः।धातृसवितृप्रजापतिदेवाग्नित्वष्ट्राविष्णुदेवत्यन्त्रिष्टुप्। धाता सविता प्रजापति अग्नि त्वष्टा विष्णु एते षट् देवता इसह

मारे समिष्ट यजु रूप हवि को सेवन करें। कैसे हैं कि धाता दान शील प्रजापति महा शङ्ख पद्मादि निधियों का पालक। अग्नि दीप्यमान। किंच वे इतने देवता यजमान की संतति के साथ अच्छे प्रकार रमण करते यजमान के अर्थ धन देवें। स्वाहा एतेभ्यः सुहुतमस्तु॥१७॥

सुगावः॥ सुगा वो देवाः सदना ऽ अकर्म्म य ऽ आजग्मेदᳬ सवनं जुषाणाः॥ भरमाणा वहमाना हवीᳬष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा॥१८॥

चतुर्थः। देवदेवत्या त्रिष्टुप्। हे देवताओ तुम इस यज्ञ को सेवन करते आए तिन तुम्हारे स्थानों को हम सुगम करते हुए। किंच हे निवास के हेतु देवताओ हम में तुम धनों को स्थापन करो। कैसे हो तुम कि यज्ञ की समाप्ति में हवियों को भरते जे रथी हैं ते रथों पर रखते रथहीन कंधों पर रखते अथवा पुष्ट हो रथादिकों करि चलते हो तिन तुम्हारे अर्थ स्वाहा सुहुत मस्तु॥१८॥

याऽ२॥ऽआवह॥ याँ२ऽआवह ऽ उशतो देव देवाँस्तान्प्रेरय स्वे ऽ अग्ने सधस्थे॥ जक्षिवाᳬसः पपिवाᳬसश्च विश्वे ऽसुं घर्म्मᳬ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा॥१९॥

पञ्चमः। आग्नेयी त्रिष्टुप् इदानीं देवान् विसृजति। हे अग्ने हे दीप्यमान हवियों की कामना करने वाले जिन देवताओं को तुमने बुलाया है तिन देवताओं को अपने निवास स्थान प्रति चलाओ। क्या कहि कर चलाओ सो कहिते हैं कि हे देवताओ तुम सब सवनीय पुरोडाशों को भोजन करि चुके। तथा सोम पी चुके हो इस हेतु यज्ञ की

समाप्ति में असुं- हिरण्य गर्भ प्राण लक्षण वायुमण्डल वास्वः- द्युलोक को आश्रय करौ अर्थात् जिन जिन के जहां घर हैं तिनतिन को आश्रय करौ स्वाहा सुहुत मस्तुहविः ॥१९॥

वयᳪहित्वा प्रयति यज्ञेऽअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह ॥ ऋधगयाऽऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन्यज्ञमुपयाहि विद्वान्त्स्वाहा ॥ २०॥

षष्ठः॥ आग्नेयी त्रिष्टुप् इदानीमग्निं विसृजति॥ हे अग्नेजिस कारण पाय इस दिन वास्थान में तुम यज्ञमें वर्त्तमान हुए देवताओंके होता वा होम निष्पादक को हम वरण करते हुए तिस कारण वरण किया तू समृद्धि जैसे हो तैसे करता हुआ अथवा यज्ञ करता हुआ। और यज्ञ प्रायश्चित्त वा विघ्न शान्ति करता हुआ सो तू इस यज्ञकी समाप्ति को जानकर अपने घरको जा कैसा है तू कि विद्वान् (पण्डित) अपने अधिकारको जानता है स्वाहा तुभ्यं सुहुतमस्तु॥ २०॥

देवा गातु विदः॥ देवा गातु विदो गातुं वित्त्वा गातुमित॥ मनसस्पतऽइमन्देव यज्ञᳪस्वाहा वाते धाः ॥२१॥

सप्तमः। वात देवत्या विराट् मनसस्पतिदृष्टा॥ व्याख्यातापि २-२१ उच्यते। नानाविधि वेद शब्दो करि प्रतिपाद्य यज्ञ तिसके जानने वाले हे देवताओ हमारे यज्ञ प्रवृत्त हुआ यह जान यज्ञको प्राप्त हुए अथवा यज्ञ समाप्तिको मानि यज्ञ से तुष्ट हुए अपने मार्ग को जाओ। एवं देवा नुक्त्वा प्रजापतिमाह। हे मनसस्पते- हमारे मन को यज्ञक

रनेके अर्थ प्रेरणेवाले पालक परमेश्वर हे देव इस अनुष्ठानकिये यज्ञकोस्वाहा तेरेहाथमें रखताहूं और तू वायु रूप देव में स्थापनकरि ॥२१॥

यज्ञं यज्ञम् ॥ यज्ञ॑ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा॑ ॥ एष ते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्तवाकः सर्ववीरस्तंजुषस्व स्वाहा॑ ॥२२॥ + य-हा । अ० । ए-हा । इ० ॥२२॥

अष्टमः । यज्ञदैवतं यजुः । यज्ञं विसृजति । हे यज्ञ तू स्वप्रतिष्ठार्थे यज्ञ नामक विष्णुको जा फलदान करि यजमान को प्राप्तहो अपनी निष्पत्यके अर्थ अपने कारण भूत वायु की क्रिया शक्तिको जा । द्रव्य और देवता यज्ञकी योनि तू सर्वात्मा हे इतिभावः स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ अथनवमः । यज्ञपति दैवतं यजुः । हे यज्ञपते यजमान यह अनुष्ठान किया यज्ञ तेरा हे । कैसाहे कि सूक्तवाकः स्तोत्र सहित । तथा समस्त वीरों तथा सोम पशु सवनीय चरु पुरोडाश इन्हों कोभी वीर कहिते हें तिन्हों सहित हैतिस ऐसे यज्ञ को फलभोग करिकै सेवन करि स्वाहा सुहुतमस्तु ॥२२॥ इति समिष्टयजुर्मन्त्राः समाप्ताः ॥ इति गिरिधर भाष्ये षष्ठोनुवाकः ॥६॥

अ०७ माहिः ॥ माहिर्भूर्मा पृदाकुः उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा ऽउं ॥ अपदे पादा प्रतिधातवे करुताप वक्ताहृदयाविधश्चित् ॥ नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥२३॥ +

का०१०.८.१३. यजमान हस्तस्थ मृगशृङ्ग और मध्यमें बंधी

+ मा-कु । अ० । उ-तृ । इ० । न-पाः । ह० ॥२३॥

मेखला इन दोनों का विसर्जन करि चात्वाल में डाले ॥ माहिर्भू-ज० रज्जु देवतं व्याख्यातम् ६। २२॥ का० १०। ८। २५। अवभृथ के अर्थ जाता हुआ अध्वर्यु चात्वाल के समीप में स्थित प्राङ्मुख यजमान प्रति बांचे। वरुण देवत्या त्रिष्टुप् शुनःशेपदृष्टा ॥ जैसे वरुण एव राजा सूर्य के अनुक्रमण पूर्वक जाने योग्य जिसमें दिये पद का चिन्ह न हो ऐसा अन्तरिक्ष में विस्तीर्ण मार्ग करता हुआ। तैसे ही हमारे अर्थ अपद अर्थात् अंतरिक्षमें पैर रखने (स्वर्गजाने) के योग्य मार्ग करो। किंच जो वरुण पापियों को मर्मोच्चारण पीडा देने वाला अर्थात् निंदकों का तिरस्कार करने वाला है। ऐसा वरुण अवभथ के अर्थ मार्ग दो। का० १०। ८। २१। अवभथ के स्नानार्थ जल में प्रवेश करते यजमान प्रति बांचे। वारुणं आसुरी गा०॥ वरुण का पाश छुटा तिस हेतु न वधुंगा तैसे वरुण के अर्थ नमस्कार हो ॥२३॥

अग्नेरनीकम्॥ अग्नेरनीकमप आविवेशापान्नपात्प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम्॥ दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रतिते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत्स्वाहा॥२४॥

का० १०। ८। २२। जल में समिध को डाल चतुर्गृहीत आज्य करि तिसपर होमें। अग्नि देवत्या त्रिष्टुप् ॥ हे अग्ने तू जिस अंगन शील के अपान्नपात् संतक मुखको जल में अभिमुख करिके प्रवेश करता हुआ। सो हे अग्ने तू तिस-तिस यज्ञ गृह विषे यज्ञ विघ्न प्रति राक्षसों को निवर्त करने समिन्धन साधन घृतको अ

पने संयुक्त कर। तिसके अनन्तर में तेरी जिह्वा (ज्वाला) घृतप्रति उद्युक्त हो स्वाहा सुहुत मस्तु + ॥२४॥

समुद्रे ते॥ समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सन्त्वा विशन्त्वोषधीरुताप:॥ यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत्स्वाहा॥२५॥

का०१०·९·१· ऋजीष (साररहित सोम) के कुम्भ को जल में डालै। सोम देवत्या चतुष्पदा विराट्। विराड्रूपा त्रिष्टुविति हलायुध:॥ हे सोम जो तेरा हृदय समुद्र समान जल विषें वर्तै है तिस तुझको गमन कराता हूं तत्रस्थ तुझे ओषधीएं भले प्रकार प्रवेश करें और जल भी तुझमें प्रवेश करें। किंच हे यज्ञपते यज्ञ के पालक सोम यज्ञ के शोभन वचनोच्चारण और नमस्कार वचन विषें तुझे स्थापन कराते हैं स्वाहा सुहुत मस्तु॥२५॥

देवी राप:॥ देवी राप एष वो गर्भस्तर्ठ० सुप्रीतर्ठ० सुभृतं बिभृत॥ देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छंच वक्ष्व परि च वक्ष्व॥२६॥

का०१०·९·२· ऋजीष कुंभको छोडकर उपस्थान करै। पंक्तिर्बृहती वा पूर्वार्द्ध मब्देवत मुत्तरार्द्धं सोम देवत्तं॥ हे देवी हे जल तुम्हारा यह सोम गर्भस्थानीय है तिसे तुम धारण करो। कैसा है वोह कि शोभन प्रीतियुक्त वा साधु तर्पित तथा भले प्रकार पुष्ट। इदानीं सोमं वदति हे सोम हे देव तेरा यह जल स्थान है तिसमें अवस्थित होकर तू सुखको प्राप्त हो और हमसे सब आर्तियोंको दूर कर॥२६॥

+ दमे-दमे द्युतिवीष्माश्च मेधविषयात त्रहि नानावभृथान्यहानि भवन्ति

अवंभृथनिचुम्पुण॥निचेरुरसिनिचुम्पुणः॥अवदेवै
र्देवकृतमेनोयासिषमवमर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णोदेव
रिषस्पाहि देवानांसमिदसि॥२७॥ अ-हि।अ०दे-सि।इ० २०
का०१०-९-३- ऋजीष कुंभको जल में प्रवेश करै ब्रा- अ० यज्ञ देवतं
व्याख्यातं ३-४८ देवानामितिया- उ० अग्नदेवतं॥देवताओंकीसं
वन्धिनी इन्धनहै अथवाहमारा प्रकाश करनेवालाहै॥२७॥
॥इतःपरमनूवंध्यायांगर्भिण्यांप्रायश्चित्तंकथ्यते॥
अ०८ एजंतुदशमास्यः॥एजंतुदशमास्योगर्भोजरायुणासह॥
यथायम्वायुरेजंतियथासमुद्रऽएजंति॥एवायन्दशमा-
स्योऽअस्रज्जरायुणासह॥२८॥
का०२५-१०-५- जो अनूवंध्या वशागर्भिणी होतौविशसनविषैंप्रथक्
किये हुए गर्भ को अभिमंत्रितकरै। अवसान त्रययुक्ता गर्भदेवत्या
महापंक्ति॥ गर्भजरायु सहित चलो। कैसाहै गर्भ कि जैसे दशमास
कालावछिन्न चलताहै। कैसे चलै सो कहते हैं कि जैसे यह वायु चल
ताहै- और जैसे समुद्र कंपताहै ये दोनो सदा कंपनशील हैं। ऐसे हीय
ह दशमास्य अर्थात् संपूर्णावयव गर्भ जरायु सहितचलै। यद्यपि य
ह गर्भ दशमास्य नहीं हैं तथापि संपूर्ण होकर चलने की आशा करि
येहै- नमे तदप्य दशमास्यमित्यादि श्रुत०४-५-२-४-॥२८॥
यस्यैते॥यस्यैतेयज्ञियोगर्भोयस्यैयोनिर्हिरण्ययी॥अ
ङ्गान्यह्रुतायस्यतम्मात्रासमजीगमस्वाहा॥२९॥
का०२५-१०-९- वृशाके अवदानों की होम के गर्भरक्त की होमोथ्वा

षी–त्रि० वशादेवतं ॥ हे वशे जो तेरा गर्भ यज्ञ योग्य है और जो तेरी योनि सुवर्णमयि तैसी तुम्है गर्भ करि के संयुक्त करताहूं इति शेषः। जिस गर्भ के अंग अखंडित हैं तिस गर्भ को अनूबंध्या जननी से संयुक्त कर्ताहूं स्वाहेति होमार्थः ॥ २९ ॥

पुरुदस्मो विषुरूपः ॥ पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्म्महिमानमानञ्ज धीरः ॥ एकपदीन्द्विपदीन्त्रिपदीञ्चतुष्पदीमष्टापदीम्भुवनानु प्रथन्ताछं स्वाहा ॥ ३० ॥

का०२५.१०.१३ प्रचरणी में प्रतिप्रस्थाता सब गर्भरस को ले अध्वर्यु करि स्विष्टकृत् होम करते हो में। व्रा–अ० गर्भदेवत्यम् ॥ इन्दुरूपेण गर्भः स्तूयते इन्दुः क्लेदन रूप सोम सदृश गर्भ महत्त्व को एक करै। विशेषण करि महिमान को कहते हैं कैसा है इन्दुः कि बहुदान युक्त बहुरूप उदर विषे स्थित मेधावी ऐसे महिमान को करते हैं। एवं महिमावत गर्भ की माता अनूवन्ध्या को समस्त प्राणी प्रख्याता करियों। विशेषण करि प्रख्याता को कहिते हैं। कैसी कि एकपदीम्, वपा करि एकपद युक्ता द्विपदीम्, वपा और अंग करि द्विपद युक्ता त्रिपदीम्, उपयड्ढोम करि चतुष्पदीम्, पत्नी संयाज वा चारौ पाद युक्त अष्टापदीं, अपने और गर्भ के पाद करि एवंभूतां वशा को गिण कर समस्त भूतजात प्रख्यात करैं। स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ ३० ॥

मरुतो यस्य ॥ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ॥ स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥

का०२५.१०.१६ समिष्ट यजु के होमान्त विषे शामित्र अग्नि में मंत्र

के अन्तमें स्वाहाकारका उच्चारकरि उष्णीष वेष्टित गर्भको होमें। मरुद्देवत्या गायत्री गोतम दृष्टा॥ हे तेज युक्त औ वा द्युलोकके पूजक औ हे मरुत औ जिस यजमान के यज्ञ गृह विषें तुम सोमपान करते हो। निश्चय सो यजमान अतिशय करि शोभन रक्षा किया है अर्थात् तुम्हारे रक्षा किये हुओं को भय नहीं है॥३१॥

मही द्यौः॥ म॒ही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ न॒ऽइ॒मं य॒ज्ञम्मि॑मिक्षताम्॥ पि॒पृ॒तान्नो॒ भरी॑मभिः॥३२॥

का० २५.१०.१६. शामित्र में डाले गर्भको अंगारों से ढके। द्यावापृथिदेवत्या गायत्री मेधातिथि दृष्टा॥ द्युलोक और भूलोक हमारे यज्ञको अपने-अपने भागोसे पूरण करें। हिरण्य पशु धानादि करि अपने-अपने भागोंसे हमारे घरको पूरण करें॥३२॥ इत्यग्निशेषमंत्राः समाप्ताः॥

अथ षोडशी मन्त्रा उच्यन्ते

अ० ८५ आतिष्ठ॥ वृत्रहन्द्रथं यु॒क्ता ते॒ ब्रह्म॑णा॒ हरी॑॥ अ॒र्वा॒ची॒न॒ठं सु॒ते मनो॒ ग्रावा॑ कृणोतु व॒ग्नुना॑॥ उ॒प॒या॒म गृ॑ही॒तो॒सी॒न्द्राय॑ त्वा षोड॒शिन॑ऽ ए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा षो॒ड॒शिने॑॥३३॥+

अग्नि पपस्व से पहिले कण्डि० ३७ पर्यन्त षोडशी के मंत्र का० १२.५.२. प्रातः सवन विषें आग्रयण ग्रहणके अनन्तर में आग्नेय अति ग्राह्य को ले खदिर के चतुः कोण उलूखल करि आतिष्ठ० वायुस्चाहि० इन दोनों मन्त्रों और भी उपयाम सहित षोडशि ग्रहको ग्रहण करें॥ इन्द्रदेवत्यानुष्टु व्गोतम (गोतम) दृष्टा॥ हे वृत्र हन् इन्द्र तेरे हरित वर्ण घोडे त्रयी लक्षण इन्द्रा गच्छेत्यादि मन्त्र करि रथमें यु

+आ-ना। अ० ३-ने। दू० ए-ने। उ०॥३३॥

क्त हैं इस हेतु तू रथमें बैठि। इन्द्र का आह्वान सुन योजन का समय आया यह जान घोडे आपही रथमें जुडें। किंच सोमाभिषव पाषाण तुम्र रथारूढ के मन को हमारे यज्ञ के अभिमुख सोमाभिषवशब्द करि भले प्रकार करो॥ उपयामेत्यासुरी गा०। हे सोम तू उपयाम करि गृहीत है षोडशिने षोडश स्तोत्र वाले इन्द्र के अर्थ तुझे ग्रहण कर्ता हूँ॥ एषते इत्यासुरी अ० सादयति। हे ग्रह यह तेरा स्थान षोडशिने- इन्द्र के अर्थ तुझे सादन कर्ता हूं॥३३॥

अ०१० युक्ष्वाहि॥ युक्ष्वाहि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा॥ अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिने एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥३४॥ + यु-र। अ०।उ-ने। इ०।ए-ने।उ०॥३४॥

द्वितीयो ग्रहणमन्त्रः। इन्द्र देवत्यानुष्टुब्मधुच्छन्दो दृष्टा॥ हे इन्द्र निश्चय अपने हरित वर्ण अश्व रथमें जोडि। कैसे हैं हरी कि बडे केशों वाले तथा सींचने वाले वा तरुण तथा स्थूलावयव। रथारोहण के अनन्तर हे इन्द्र सोम पान करने को हमारी ऋग्यजुःसाम लक्षण वाचा को उपश्रवण करके प्राप्त हो- हमारी वाणी को सुन अर्थात् वाणी सुनकर हमारे घरको आ॥ उपयाम एषते एते व्याख्येते॥३४॥

अ०११ इन्द्रमित्॥ इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्॥ ऋषीणाञ्च स्तुतीरुप यज्ञञ्च मानुषाणाम्॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ ३५॥

+ इ-म्। अ०।उ-ने।इ०।ए-ने।उ०॥३५॥

षोडशिग्रहे तृतीयो मन्त्र विकल्पः आग्रयणा इन्द्रमिद्धरी इति गृहीत्वेति कठसूत्रोक्तेः। इन्द्र देवत्या नुष्टुबो तम दृष्टा॥ हरित वर्ण घोडे वसिष्ठादि मुनियों की स्तुति समीप इन्द्र को जैसे प्राप्त करते हैं। और यजमानों के यज्ञ के समीप प्राप्त करते हैं। कैसे इन्द्र को किनहीं है पराभव किया बल जिस्का॥ उपयाम एषते इति व्याख्याते॥ ३५॥

अ॰ १२ यस्मान्न॥ यस्मान्न जातः परो॰ अन्यो॰ अस्ति य॰ आविवेश भुवनानि विश्वा॥ प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥ ३६॥

का॰ १२.५.२०. षोडशि ग्रह को उपस्थान करै। इन्द्र देवत्या त्रिष्टुप् विवस्वद्दृष्टा। परब्रह्म रूपेण षोडशी स्तूयते॥ जिस पुरुष से व्यतिरिक्त उत्कृष्ट देवादिकों में नहीं है और जो समस्त भूतजातों में अन्तर्यामी रूप करिके प्रवेश करता हुआ सो प्रजापति अपने से उत्पन्न प्रजापालक तीनि ज्योति अग्नि वायु सूर्य रूप तेज विषय की ज्ञापन करनेवालिये स्वीकार करता है अर्थात् अपने तेज करि तिन ज्योतियों का उज्जीवन करता है + कैसा है प्रजापति कि प्रजारूप करि भले प्रकार रममाण। तथा षोडश कलात्मक लिङ्ग शरीरोपहित अर्थात् सर्वव्यवहाराश्रय है ǂ॥ ३६॥

इन्द्रश्च सम्म्राड्वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र॰ एतम्॥ तयोरहमनु भक्षम्भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा॥ ३७॥ इ-तु॰ अ॰ स-हा। इ॰ ॥ ३७॥

का॰ १२.६.२. षोडशि ग्रह को भक्षण करै। इन्द्र वरुण देवत्या षोड

ǂ यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नित्यादिश्रुतेः।

+ येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध इत्यादि श्रुतेः। यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलं। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकं॥ इति स्मृतेश्च भगवद्गीता १५.१२

शिदेवत्या वा त्रिष्टुब्यजुरन्ता अन्त्यपादो द्वादशार्णः सह प्राणेनेनियजुः विवस्वद्दृष्टा ॥ हे षोडशिग्रह वे इन्द्र वरुण तेरे इस सोम को प्रथम भक्षण करते हुए। वे कौन कि इन्द्र और वरुण कैसा है इन्द्र कि परमैश्वर्य युक्त अर्थात् वाजपेय याजी कैसा है वरुण कि राजसूय याजी †। तिन इन्द्रावरुण संबंधी भक्ष को पीछे मैं भक्षण कर्त्ता हूं अर्थात् सोम को पीता हूं। मेरे भक्ष के सेवन से सरस्वती प्राण देवता सहित सोम करि तृप्त हो। स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ ३७ ॥ इति षोडशियागः संपूर्णः ॥

अथ द्वादशाह मन्त्राः

अ॰ १३ अग्ने पवस्व ॥ अग्ने पवस्व स्वपा ऽ अस्मे वर्च्चः सुवीर्य्यम् ॥
दधद्रयिम्मयि पोषम् ॥ उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा व-
र्च्चस ऽ एषते योनिरग्नये त्वा वर्च्चसे ॥ अग्ने वर्च्चस्विन्व
र्च्चस्वाँस्त्वन्देवेष्वसि वर्च्चस्वानहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ †

का॰ १२·३·१·२· है कोई गृष्ठ्य षडह नामा क्रतु और वोह छै दिनों करि निष्पाद्य तहां पहिले तीनि दिनों में अग्ने पवस्वेत्यादि तीनि मंत्रों से अति ग्राह्य ग्रह को ग्रहण करै। अग्ने वर्च्चस्विन् इत्यादि मंत्रों से तिन तिन ग्रहों के शेष को भक्षण करै ॥ तत्र प्रथमो यथा अग्ने पवस्व अग्नि देवत्या गायत्री वैखानसदृष्टा ॥ हे अग्ने तू हमारे विषें शोभन वीर्य जिससे तैसा शोभन सामर्थ्योपेत ब्रह्मतेज प्राप्त करि। कैसा है तू कि स्वपाः शोभनकर्मा *। एवं ऋत्विजों सहित प्रार्थना करि आपयाचना करता है मुरु यजमान विषें धन को स्थापन करते पुत्र पश्वादि वृद्धि को प्रवर्त करि इति संबंधः ॥ उप॰ आसुरी उ॰। हे सोम तू उपयाम ग्रह करि

+ राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड्वाजपेयेनेति शत॰ ५.१.१.१३.

* अप इति कर्मनाम निघं॰ २.१.

+ अ–मृ। अ॰ उ–सो। इ॰ ए–सो। उ॰। अ–मृ। ऋ॰ ॥ ३८ ॥

गृहीत है हे ग्रह तेजस्वी अग्नि के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं ॥एष॰ या-ज॰ सादयति। यह स्वर प्रदेश तेरा स्थान वर्चस्वी अग्नि के अर्थ तुझे सादन करता हूं ॥ भक्षण मन्त्रो यजुः। हे विशिष्ट तेज युक्त हे अग्ने तू इन्द्रादिक देवताओं के मध्य अति दीप्तमान है अतः तेरे प्रसाद से मैं मनुष्यों के मध्य ब्रह्म तेज करि संपन्न होऊं ॥ ३८ ॥

अ॰ १४ उत्तिष्ठन्नोजसा ॥ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे ऽअवेपयः ॥ सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वौजस ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे ॥ इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३९ ॥ +

द्वितीयोऽति ग्राह्य ग्रहण मन्त्रः ॥ इन्द्र देवत्या गायत्री कुरुस्तुति (कुरुसुति॰ कुरुसुनि॰ कुरुस्तुति) दृष्टा ॥ हे इन्द्र तू बल सहित उठते शिप्रे (हनू वा नासिका) करि कम्पितवान् है। क्या करिकै कि सोम पीकै। कैसा है सोम कि अधिषवण चर्म में अभिषुत सोमपान करिकै अतिहर्ष के वश हो नासिका करि कम्पितवान है ॥ उप॰ आसुरी अ॰। हे ग्रह तू उपयाम करि गृहीत है बलवान इन्द्र के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं एष॰ या-नि॰ सादयति। यह तेरा स्थान बलवान इन्द्र के अर्थ तुझे सादन करता हूं ॥ भक्षण मन्त्रो यजुः। हे इन्द्र हे अत्यन्त बल युक्त तू जैसे देवताओं के विषें ओजिष्ठ है ऐसे मैं मनुष्यों में अतिबल होऊं ॥ ३९ ॥ +

अ॰ १५ अदृश्रमस्य ॥ केतवो विरश्मयो जनाँ २ ॥ ऽअनु ॥ भ्राजन्तो ऽअग्नयो यथा ॥ उपयामगृहीतोसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्व

+ उ-मू। अ॰। उ-से। इ॰। ए-से। उ॰। इ-मू। ऋ॰ ॥ ३९ ॥

देवेष्वसिभ्राजिष्ठोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥४०॥ +

तृतीयोऽतिग्राह्यमन्त्रः । सूर्यदेवत्या गायत्री प्रस्कण्वदृष्टा ॥ इस सूर्य की प्रज्ञा का हेतु किरणें विशेष करि दीखती हैं अर्थात् सूर्यकरः सब जनों के अनुगता व्यापका दीखती हैं तहां दृष्टान्त है जैसे ज्वलति अग्नि की जनों के अनुगता तैसें ॥ उप० आसुरी गा० हे ग्रह तू उपयाम करि गृहीत है दीप्तिमान सूर्य के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं ॥ एष० या- ज० सादयति । यह तेरा स्थान दीप्तिमान सूर्य के अर्थ तुझे सादन करता हूं ॥ भक्षण मन्त्रो यजुः । हे अति दीप्ति हे सूर्य तू जैसे देवताओं में अति दीप्ति है तैसे मैं मनुष्यों में अति दीप्तिमान हों ऊं ॥४०॥ इति द्वादशाहः संपूर्णः ॥

अ०प० १६ उदुत्यम् ॥ उदुत्यञ्जातवेदसन्देवम्वहन्ति केतवः ॥ दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ उपयामगृहीतोसि सूर्य्याय त्वाभ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय ॥४१॥ +

का० १३।२।११ गवामयन नामक संवत्सर सत्र के विषुवनसंज्ञक मध्यमदिवस में सौर्यपशु के उपालम्भ से पीछे अतिग्राह्य का ग्रहण करै । सौरी गायत्री देवदृष्टा । पुनर्व्याख्यायते ७।४१ प्रस्कण्वदृष्टा व्याख्याता अत्र तु देवदृष्टा इति विशेषः ॥ तिस प्रसिद्ध उत्पन्न हुई प्रजाओं के ज्ञातार वा जातप्रज्ञ देवनशील सूर्य को प्रज्ञा का हेतु किरणें समस्त जगत के दर्शन के अर्थ उद्गमन कराती हैं । उप० एष० व्याख्याते ॥४१॥ +

अ०प० १७ आजिघ्र ॥ आजिघ्र कलशम्मह्यात्वाविशन्त्विन्दवः ॥

+ अ- या। अ० उ- य । इ० ए- प । उ० सू- मूक्ति ॥४०॥ + उ- मू। अ० उ- य । इ० ए- प । उ० ॥४१॥

पुनरूर्ज्जानिवर्त्तस्वसानः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधाराषयस्वतीपुनर्म्माविंशताद्रयिः ॥४२॥

का॰ १३·४·१९· गर्गत्रिरात्रके आदि अहीन त्रिसुत्य में गोसहस्र दक्षिणाहैं तहां संख्या पूरणी रोहिणी धेनु है तिस हविर्धान आग्नीध्र के मध्यमें स्थित को द्रोणकलशको सुंघावै। गोदेवत्या महापङ्क्तिः कुसुरुविन्दुदृष्टा॥ हे महि हे धेनो तू द्रोणकलशको अभिमुख करि सूंघ। किंच हे धेनो द्रोणकलशस्थ सोम तुझ में प्रवेश करै। किंच पयोभूत विशिष्टरस सहित हमारे प्रति निवर्त्त हो। जो तू एवंमुख करि स्तुति की गई सो तू हमारें सहस्र संख्य धन कोदे अथवा गोसहस्र जो हम करि दी गई सो हमारे अर्थ फिरि दे। किंच तेरे प्रसाद से बहु पयस्वती धेनु मेरें फिरि आवें तथा धन मेरें प्रवेश करे॥ ४२॥

इडेरन्ते॥ इडेरन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेदितिसरस्वति महिविश्रुति॥ एतातेऽअघ्न्येनामानि देवेभ्योमासुकतंब्रूतात् ॥४३॥ +दितेइति वापाठः

का॰ १३·४·२०· पूर्वोक्ता धेनु के दक्षिण कर्णमें यजमान जपै। गोदेवत्या प्रस्तारपङ्क्तिः कुसुरुविन्दुदृष्टा॥ इडा॰ मनु की दुहिता तिसके तुल्य। रन्ता॰ रमण करने वाली। हव्या॰ होमते हैं यज्ञमें जिसका दूध वा सबकी आह्वान करने वाली। काम्या॰ कामना करते हैं जिसकी मनुष्याणाᳪं ह्येतासु कामाः प्रविष्टा इति श्रुतेः। आल्हाद करने वाली। अदीना॰ अनव खण्डिता। सरस्वती सरः क्षीरं तद्वती सरइत्युदकनाम सर्त्तेरिति नि॰ ९·२६· उदक शब्द से यहां क्षीर लेना

अर्थात् दुग्धवती। वडी। नाना प्रकार स्तुति करियेहैं। नहीं हनन योग्या। तिन्हों का संवोधन हेधेनो एवंभूते तुम्हारे ये अति प्रायगुण युक्त नाम हैं इन नामोंकरि अभिहित होती देवताओंसे शोभन कर्म करनेवाला मुझे कहौ अर्थात् यह यजमान पुण्यकर्त्ता यह देवताओं से कहौ ॥४३॥

अ॰१८ विन॑ः ॥ विन॑ऽइन्द्र॒मृधो॑जहि॒नी॒चाय॑च्छपृतन्य॒तः ॥यो ऽअ॒स्माँ२॥ऽअ॒भि॒दा॒स॒त्यध॑रङ्गमया॒तमः॑ ॥उ॒प॒या॒मगृ॑ही॒तो॒सीन्द्रा॑यत्वा॒वि॒मृध॑ऽए॒षते॒यो॒नि॒रिन्द्रा॑यत्वा॒वि॒मृधे॑ ॥४४॥+

का॰१३·२·१७·गवामयनके उपान्त्य महाव्रतके दिवस में प्राजापत्य पशु के उपालम्भ के ऊपर ऐन्द्र ग्रह के ग्रहण में ४४–४६ तीन मन्त्र। तत्राद्यः। इन्द्रदेवत्यानुष्टुप् त्रयाणां शासो,भ्यास–सास॰ भ्यावास॰ भारद्वाज ऋषिः॥ हेइन्द्र हमारे शत्रुओं वा संग्रामोंको विशेषतः नाशकरि। किंच सेनाकी इच्छा करनेवाले शत्रुओं का निग्रह(युद्ध से उपरत)करि। किंच जो कोई और हमको उपक्षयकरै तिस शत्रु कोनरकमें प्राप्तकरि॥उप॰आसुरीउ॰। हेग्रहतू॰– विशिष्ट संग्रामवान् इन्द्रके अर्थ॰॥एष॰या–ज॰सादयति। विशिष्ट संग्रामवान् इन्द्रके॰सिष्टं समानम् ॥४४॥

अ॰१९ वा॒चस्पति॑म् ॥ वा॒चस्पति॑म्वि॒श्वक॑र्म्माणमू॒तये॑मनो॒यु॒व॑म्वाजे॑ऽअ॒द्याहु॑वेम॥सनो॒विश्वा॑नि॒हव॑नानिजोषद्वि॒श्वश॑म्भूरव॑सेसा॒धुक॑र्म्मा॥उ॒प॒या॒मगृ॑ही॒तो॒सीन्द्रा॑य॒त्वावि॒श्वक॑र्म्मणऽए॒षते॒यो॒नि॒रिन्द्रा॑यत्वावि॒श्वक॑र्म्मणे॥४५॥+

+वि–मः।अ॰।उ–धे।द्॰।ए–धे।उ॰॥४४॥ +वा–मी।अ॰।उ–णे।द्॰।ए–णे।उ॰॥४५॥

अथद्वितीयः। विश्वकर्म देवता त्रिष्टुप्॥ ऐसे इन्द्र को महा व्रतीय लक्षणान्न विषय में आजके दिन हम आह्वान करते हैं। किस लिये कि अपनी रक्षाके अर्थ। कैसे को कि समस्त जगदुत्पत्यादिकर्म करने वाले को तथा वाचा के पालन करने वाले तथा मन के से वेग वाले को। सो ऐसा इन्द्र हमारे समस्त आह्वानों को अन्न समृद्धि वा रक्षा के अर्थ साधु-साधु इति सेवन करै। कैसा है वोह कि समस्त सुख करने वाला शोभन कर्म कर्त्ता॥ उप॰ सा-उ॰। सर्व कर्मेन्द्र के अर्थ॰॥ एष॰ सा-गा॰ सादयति। समानम्॥४४॥

अ॰२० विश्वं कर्म्मन्हविषा॥ विश्वं कर्म्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्॥ तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मण ऽएषते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे॥४६॥+

तृतीयो मन्त्र विकल्पः॥ इन्द्र विश्वकर्म देवत्या त्रिष्टुप्॥ हे विश्वकर्मन् वर्धयन्न वा वर्धमान हवि करिकै तू इन्द्र को जगत का रक्षक अप्रतिभट करता हुआ। तैसे इन्द्र के अर्थ पहिले वशिष्ठादिक मनुष्य जिस कारण यह इन्द्र उद्गूर्ण वज्र और विविधि कार्यों विषे आह्वान करियै है ऐसा होता हुआ तैसी प्रजा अर्थात् तिसी कारण से। हे विश्वकर्मन् तेरे हवि की सामर्थ्य से इन्द्र का यह प्रभाव है इतिभावः॥ उप॰ एष॰ व्याख्याते॥४६॥

अ॰२१ उपयामगृहीतोसि॥ उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा गायत्रछन्दसङ्गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसङ्गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसङ्गृह्णाम्यनुष्टुप्तेभिगरः॥४७॥+

+ वि-तृ। अ॰। उ-ऐ। इ॰। ए-णे। उ॰॥४६॥ + उ-मि। अ॰। इ॰। वि-मि। उ॰। अ-रः। ऋ॰॥४७॥

का॰१२.५.१३.-१५. जिस औदुम्बर पात्र में अंशु ग्रहण कियाति
सीमें होतृचमसस्था निग्राभ्या संज्ञा जल लेकर तिसमें तीनि सो
मलता डाल अग्न येत्वे त्यादि तीनि मंत्रो से क्रम पूर्वक अदा
भ्य ग्रह को ग्रहण करै अथवा उपयामगृहीतोसीति तीनों मन्त्रों
की आदिमें योजे॥ अदाभ्य देवत्यानि देव दृष्टानि १ गा-त्रि॰२
३ यजुषी। तत्र प्रथमो मंत्रः। हे सोम तू उपयाम पात्र करि गृहीतहै
हे ग्रह गायत्री छन्द जिसका ग्रह वोह गायत्री छन्द सं अग्निकी
प्रीति के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं॥ द्वितीयो मन्त्रः। पूर्ववत् त्रिष्टुप
छन्द सं इन्द्र देवता की प्रीति॰॥ तृतीयो मन्त्रः। समानम् जगतीछन्द
सं समस्त देवताओं की॰॥ का॰१२.५.१७. अनुष्टुप्तेति देवदृष्टम
दाभ्य देवत्यं दे-ज॰। इस मन्त्र को पढै एवं स्वछन्द सं सोमं गृहीत्वा
यतमाह॥ हे सोम अनुष्टुप् छन्द तेरा अभिगरः अर्थात् अभिष्टवः
गृस्तुतो यद्वा ऽऊर्ध्वं सवनेभ्यस्तदानुष्टुभमिति श्रुत॰११.५.९.७.॥४७॥

श्रेशीनान्त्वा॥ श्रेशीनान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि कुकूननानां
न्त्वा पत्मन्नाधूनोमि भन्दनानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि म
दिन्तमानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि मधुन्तमानान्त्वा पत्मन्ना
धूनोमि शुक्रन्त्वा शुक्रऽ आधूनोम्यन्हो रूपे सूर्यस्यर
श्मिषु॥४८॥

मधूइतिवापाठः

का॰१२.५.१९. आहवनीयके समीप जाते अदाभ्य ग्रहस्थ जलोंको
चलावै। एतदादीनि विश्वेषां देवानामित्यन्तानि ५० सोम देवत्या
नि देवदृष्टानि। यजुः॥ हे सोम मेघोदरस्था जल तिन्हों के पतन नि

मित्त वृष्टि निश्चयत्यर्थ तुझै कँपाताहूं। कुकूननानाम् ॰ कुङ् शब्दे अत्यर्थ कुवन्त्य: शब्द करने वाले नमन्ति मह्वी होने वाले मेघस्था जल तिन्हों के पतन के अर्थ तुझै कंपाताहूं॥ कल्याण कारिणी वा सुखयित्री मेध्या: ॰ अन्यन्पूर्ववत्॥ मदिन्य: अत्यर्थ मदिन्तमा: अत्यन्त तर्पयन्त्य: ॰ समानं॥ अत्यन्त मधु स्वादोपेत॰ पूर्ववत् किंच सुक्रं शुद्ध अक्लिष्ट करने वाले तुझै अक्लिष्ट कर्म विषें निग्राभ्या लक्षण जल में कंपाताहूं॥ किंच दिवस के रूप विषें सूर्य की रश्मि विषें हे सोम त्वामाधूनोमि॥ ४८॥

कुकुभꣳ रूपम्॥ वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्र: शुक्रस्य पुरोगा: सोम: सोमस्य पुरोगा:॥ यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा॥ ४९॥ +

यजु:॥ हे सोम तुरु वृषभ(श्रेष्ठ) का आदित्य लक्षण रूप प्रकाश करताहै शुद्ध आदित्य तुरु शुद्ध सोम का पुरोगामी। सोम एव सोम का पुरोगामी होना चाहिये। हे सोम तेरा अदाभ्य(अनुपहिंसित) जागरण शील जो नाम है तिस नाम से तुझै ग्रहण करताहूं॥ का॰ १२.५. १७' तस्मैत ॰ इति या-पं॰ अदाभ्य की होमें॥ हे सोम तैसे तेरे अर्थ स्वाहा सुहुत मस्तु॥ तत्सोम मेवै तत्सोमाय जुहोतीति शत॰ ११.५.९.११॥ ४९॥

उशिक्त्वम्॥ उशिक्त्वन्देव सोमाग्ने: प्रियम्पाथोपीहि वशीत्वन्देव सोमेन्द्रस्य प्रियम्पाथोपीह्यस्मत्सखात्वन्देव सोम विश्वेषान्देवानाम्प्रियम्पाथोपीहि॥ ५०॥

का॰ १२.५.१८. तीनि मन्त्रों से उलूखलस्थ अंशुओं को सोम में डा

+ क-मि। अ॰ न-हा। इ॰। ४९॥ + उ-हि। अ॰ व-हि। इ॰। अ-हि। उ॰॥ ५०॥

लै॥ तत्राद्यः आसुरीउ॰। हेदीप्यमान हेसोम कामयमान तू अ
ग्नि के प्रिय अन्न को प्राप्त हो॥द्वितीयः आसुरी गा॰। हे देव सोम
कान्त तू इन्द्र के प्रिय अन्न को प्रा॰॥ तृतीयः आर्षीउ॰। हे देव सोम
हमारा मित्रभूत तू समस्त देवताओं के अभिरुचित अन्न को प्राप्त
हो॥ अग्निर्वै प्रातः सवन मिन्द्रो माध्यन्दिनꣳ सवनं विश्वे देवास्तृ
तीयꣳ सवन मिति श्रुतेः सवन देवेभ्यो र्पणम्॥ ५०॥

अथ सत्रोत्थानं देवानामार्षम्

अ॰ १२ इह रतिः॥ इह रतिरिह रमध्व मिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वा
हा॥ उपसृजन्धरुणम्मात्रे धरुणो मातरन्धयन्॥ रायस्पो
षमस्मासु दीधरत्स्वाहा॥ ५१॥ +

का॰ १२·४·१०· समस्त दीक्षितों को अध्वर्यु करि स्पर्श करते इस
मन्त्र से गार्हपत्य में घृत होमें। पशुदेवत्या प्रा–त्रु॰॥ हे गौओ तुम्हा
रा रमण इन यजमानों के हो यहां तुम रमौं तुम से इन यजमानों कें
संतोष हो और स्वकीयों का भी यहां संतोष हो स्वाहा सुहुतमस्तु
का॰ १२·४·११· शालाद्वारीय में ऐसें ही दूसरी आहुति होमें। उष्णिगा
ग्नेयी॥ धारण करने वाला अग्नि हमारें रायस्पोषं धन पशु पुत्र सु
वर्णादिकों की पुष्टि को धारण करै। कैसा है कि पृथिवी का धारयिता
अग्नि समीप को प्राप्त तथा पृथिवीं धयन् तिसमें उत्पन्न हो हवि का
भक्षण करता। स्वाहेति होमार्थः॥ ५१॥

सत्रस्य ऋद्धिः॥ सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृ
ता अभूम॥ दिवम्पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम दे

+ दृ–हा॥ अ॰ उ–हा। दृ॰॥ ५१॥

वाँन्त्स्वर्ज्योतिः॥५२॥

का॰१२.४.१२ सव दीक्षित्त उत्तर हविर्द्धान के अपर कूवरी को आलंबन करि सत्रर्धि संज्ञक साम गान करें। बृहती यजमाना नामात्म स्तुतिः॥ हे सोम सत्र की समृद्धि तू है इस हेतु हम यजमान ज्योतिः आदित्य लक्षण को प्राप्त हुए फिरि अमरणधर्मा हुए पृथिवी के सकाश से द्युलोक को आरूढ हुए फिरि देवता इन्द्रादिकों को देखते हुए ज्योति रूप और स्वर्ग को देखते हुए॥५२॥

युवन्तम्॥ युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा योनः पृतन्यादपतन्तमिद्धतम्वज्रेणतन्तमिद्धतम्॥ दूरेचत्तायच्छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्॥ अस्माकछं शत्रून्परि शूरविश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः॥ भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा विरैः सुपोषाः पोषैः॥५३॥+

का॰१२.४.१४ सव यजमान दक्षिण हविर्धान का अक्ष नीचे मार्ग करिकै प्राङ्मुख निकालें। इन्द्र देवत्या त्यष्टिरखसानत्रयोपेताषट्षष्ट्यक्षरत्वात् द्यूना आद्योर्धर्चे इन्द्र पर्वत देवत्यः॥ हे शत्रुओं के सामने युद्ध के करने वाले हे इन्द्रा पर्वता तुम तिस शत्रु को मारो ऐसे ही तिन-तिन अर्थात् सव शत्रुओं को मारो तत्रापि विशेष्यते वज्रनामा आयुधसे तिन-तिन को विनाश करो। जो-जो शत्रु हम से युद्ध करै॥ इदानीमिन्द्रः प्रत्यक्षो वज्रस्य कर्त्तृत्वंचोच्यते। हे शूर इन्द्र तेरा वज्र जव अत्यन्त गम्भीर वन वा जल में अति दूरि गये शत्रु को प्राप्त होने की चाह करता है तव तिस दूरि गये

+यु-तः॥अ॰। भू-षैः॥ दू॰॥५३॥

को प्राप्त होताहै अर्थात् वन विषें दूरगये कोभी ग्रहण करताहै। तिस हेतु विदारण शील वज्र हमारे सब ओडी में स्थित सब शत्रु ओंको परितो विदारण करै॥ का॰१२·४·२८· नाना कामोंविषेंस ब यजमान वाग्विसर्जन करें। हे भूर्भुवः स्वः अग्नि वायु सूर्य औ हम प्रजा करि सुप्रजा हों पुत्रों करि सुपुत्र हों पुष्टि करि सुपोष हों एक वचनान्तोयं यजुर्व्याख्यानः ३·३७·७·२८· अत्र तु बहुव चनान्तोमन्त्रः॥५३॥इति सत्रोत्थानं समाप्तम्॥

अथ नैमित्तिकान्याध्यायाद्वसिष्टस्यार्षम्

अ॰२३ परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचिव्याहृतायामन्धो अ
छेतः सविता सन्याम्विश्व कर्म्मादीक्षायाम्पूषासोम क्रय
ण्यामिन्द्रश्च॥५४॥+

का॰२५·६·१–६· मृन्मय घर्म पात्र के भेद विषें एक को स्पर्श करि प रमेष्ठिने स्वाहा प्रजा पतये स्वाहेत्यादीन् सलिलाय स्वाहेत्यन्तान् चतुस्त्रिंशत होमों को होमें घर्मदुहा गौ के मरण विषें तिस स्थान में उ दङ्मुख्या वा प्राङ्मुख्या स्थिता पत्नी शाला के पूर्व भाग पुच्छ से द क्षिण स्थान विषें परमेष्ठिने स्वाहेत्यादि चतुस्त्रिंशत आज्यों हुती को होम करके तिसे दुहै अथवा स्थालीस्थ वास्तुक्स्थ प्रषदाज्य के भ्रं श होंने में कोई एक आचार्य परमेष्ठ्यादिकों को होमते हैं इति सूत्रार्थ परमेष्ठ्यादिक देवता यज्ञ के शरीर हैं तिस हेतु तिन–तिन अवस्थाओं के होम विषें चिकित्सित यज्ञ प्रति संहित होता है। तथा च श्रुतिः १२· १·१·२· सोमोवै राजा यज्ञः प्रजा पतिस्तस्यैता स्तन्वो या एता देवता

+प·तः।अ॰।प्र–म।दृ॰। अ–न॰।उ॰।स–म।क्र॰।वि–म।ल॰।पू–म।॰मा।५४॥

याएता आहुती र्जुहोति स यद्यज्ञस्यार्द्धेयां तन्प्रति देवतां मन्येत तामनु समीक्ष्य जुहुयाद्यदि दीक्षोपसत्स्वाहवनीये यदि प्रसुतआग्नीध्रे विवा ऽएतद्यज्ञस्य पर्व स्त्र ८ँसते यद्व लति सायैव तर्हि तत्र देवता भवति तयैवैतद्देवतया यज्ञं भिषज्यति तया देवतया यज्ञं प्रतिसंदधातीति॥ अथ मंत्रार्थः॥ आध्या वसिष्ठ ऋषिः लिङ्गोक्त देवता परमेष्ठीति १·५·६·दै—ज॰२·या—पं॰३·४·दै—पं॰। जब कि सोम यजमान करि अभिधीत(संकल्पित)हो तव मनसा करि अभिधीत परमेष्ठीहोताहै। अयमर्थः मनसा करि ध्यान किया सो मन उपनमेतौ परमेष्ठिने स्वाहा इस मन्त्र से होम करै † ॥ वचन से उच्चार करते सोम प्रजापति नामा होताहै तिस के प्रायश्चित्त विषें प्रजापतये स्वाहा इससे होमें ॥२॥ जो सोम आभिमुख्य करि प्राप्तहुआतो अन्ध नामा होताहै। अन्धसे स्वाहा इति जुहुयात्॥३॥ सोमके संभक्त होते सवितृनामा होताहै तिस के प्रायश्चित्त में सवित्रे स्वाहेति जु॰॥४॥ दीक्षा विषें सोम विश्वकर्मा होताहै तहां विश्वकर्मणे स्वाहेति जु॰॥५॥ सोम क्रयकरतेहैं जिस गौसे उस सोम क्रयणी करि लाया सोम पूषा होताहै तदा निमित्ते पूष्णेस्वाहेतिजु॥६॥५४॥

इन्द्रश्च मुरुतश्च क्रुयायोपोत्थितो सुरः पुण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऽऊरावासन्नो विष्णुर्न्नरन्धिषः॥५५

७॰आसुरी-अ॰८॰दै-ज॰९॰दै-वृ॰१॰या-त्रि॰११॰या-पं॰॥ द्रव्यदानकरि उपस्थापित सोम इन्द्र और मरुत् नामा होताहै तव इंद्राय मरुद्भ्यश्च स्वाहेतिजु॰॥७॥ क्रीयमाणः सोम असुर होताहै॰

† सप्तर्षिभ्यात्मित्यादि श्रुत॰१२·६·१·३-३६॥

† इ—तः॥अ॰।अ—नः॥इ॰।मि—तः॥उ॰।वि—न्न॥ऊ॰।वि—णः॥ल्ट॰॥५५॥

असुराय स्वाहा ॥८॥ यजमानकरि क्रीत सोम मित्र होताहै॰ मि
त्रायस्वाहा ॥९॥ यजमान की गोदी परस्थित सोम शिपिविष्ट वि
ष्णुः अर्थात् प्राणियों वा यज्ञों में प्रविष्ट विष्णु होताहै॰ विष्णवे
शिपिविष्टाय स्वा॰ ॥१०॥ शकट करि ऊह्यमान सोम विष्णु न
न्धिषः अर्थात् नरोधीयन्ते आरोप्यन्ते यस्मिन्स नरन्धि संसारः
तंस्यति नाशयति नरन्धिषः॰ जगत्संहर्ता विशिष्टो विष्णुः अ
थवा रध हिंसायाम् रन्धिषो हन्ता नरन्धिषः जगत्पालको वि॰
जगत का संहार वा पालन करनेवाला विष्णु होताहै॰ विष्णवे
नरन्धिषायस्वा॰ ॥११॥ ५५॥

प्रो॒ह्यमा॑णः॒ सोम॑ः॥ प्रोह्य मा॑णः॒ सोम॒ आग॑तो॒ वरु॑णः
आ॒स॒न्द्यामास॑न्नो॒ऽग्निराग्नीध्र॒ इन्द्रो॑ हवि॒र्धानेऽथ॒र्वो
पाव॒ह्रि॒यमा॑णो॒ विश्वे॑ दे॒वाः ॥ ५६॥ +

१२॰१४ दे॰पं॰१३॰१६॰या॰बृ॰१५॰ दे॰त्रि॰॥ शकट से आया अवरूढ सो
म नाम होताहै॰ सोमाय स्वा॰ ॥१२॥ मञ्चिका पर उपविष्ट वरुण
हो॰ वरुणायस्वा॰ ॥१३॥ आग्नीध्रमें वर्तमान अग्नि हो॰ अग्न
येस्वा॰ ॥१४॥ हविर्धान में वर्तमान इ॰ इन्द्रायस्वा॰ ॥१५॥ हदे
त्वा मनसेत्वेति मन्त्रेण ३७॰१९॰ कण्डन के अर्थ आनीयमान
अथ॰ अथर्वणेस्वा॰ ॥१६॥ ५६॥

विश्वे॑दे॒वाः अ॒ꣳशुषु॒ न्यु॑प्तो॒ विष्णु॑राप्रीत॒पाः आ॒प्या॒य्य
मा॑नो य॒मः सू॒यमा॑नो॒ विष्णु॑ः सम्भ्रि॒यमा॑णो॒ वा॒युः पू॒य
मा॑नः शु॒क्रः पू॒तः शु॒क्रः क्षी॑र॒श्रीर्म॒न्थी स॑क्तु॒श्रीर्वि॑श्वे॒दे॒

+ सो॰त॰॥ अ॰व॰न॰॥ इ॰ अ॰ध्रे॰॥ उं॰ इ॰ नो॰ ऊ॰॥ अ॰ ए॰॥ ल॰ ॥ ५६॥

वा: ॥ ५७ ॥ +

या–हृ० १८० आसुरीपं० १९–२१ दै–त्रि० २० दै–ज० २२–दै–२३ २४ दै–पं० ॥ सोम खण्डों में कण्डन करि आरोपण किया ०० विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा० ॥ १७ ॥ अंहं शुरंहं शुष्ट इत्यादि मंत्रेण ५० ७० वर्ध्यमान सोम आशीतपा विष्णु सब ओडी से प्यारोंका प्यारा भक्तोंका रक्षा करनेवाला विष्णु हो ०० विष्णव आ यायस्वा० ॥ १८ ॥ अभिषूयमानय ०० यमायस्वा० ॥ १९ ॥ पुष्य मनवि० विष्णवेस्वा० ॥ २० ॥ दशापवित्रा करि पवित्र करतेवा यवेस्वा० ॥ २१ ॥ पवित्र किया हुआ शु० शुक्रायस्वा० ॥ २२ ॥ दुग्ध मिश्रित करते भी शु० शुक्रायस्वा० ॥ २३ ॥ सक्तुओं करि मिश्रि तमं० मन्थिनेस्वा० ॥ २४ ॥ ५७ ॥

विश्वेदेवाश्चमसेषून्नीतोसुर्होमायोद्यतोरुद्रोहूयमानो वातोभ्यावृत्तोनृचक्षाः प्रतिख्यातोभक्षोभक्ष्यमाणः पितरोनाराशंसाः ॥ ५८ ॥ +

२५ या–पं० २६ या–उ० २७ या–गा० २८ दै–पं० २९ दै–ज० ३० दै–त्रि० ३१ या–बृ० ॥ चमसों (ग्रहपात्रों) में ग्रहण किया वि० विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वा० ॥ २५ ॥ होमकेलिये उद्यत अ० असवेस्वा० ॥ २६ ॥ होम किया हु आरु० रुद्रायस्वा० ॥ २७ ॥ होमका शेषभूत सद प्रतिभक्षण के अर्थ लाया हुआ वा० वातायस्वा० ॥ २८ ॥ ब्रह्मन्नुपहूयस्व इत्यादि करि भक्षणके अर्थ पूछा नृचक्षा (मनुष्यों के शुभाशुभ करनेको देखनेवाला) हो० नृचक्षसेस्वा० ॥ २९ ॥ पीयाहुआभ

+वि–म: ॥ अ० ॥ वि–न: ॥ इ० ॥ य–न: ॥ उ० ॥ वि–ए: ॥ ऋ० ॥ वा–न: ॥ लृ० ॥ शु–त: ॥ आ० ॥ शु–री: ॥ ई ॥ म–
+वि–त: ॥ अ० ॥ म–त: ॥ इ० ॥ रु–न: ॥ उ० ॥ व–त: ॥ ऋ० ॥ नृ–त: ॥ लृ० ॥ भ–ए: ॥ आ० ॥ पि–न: ॥ ई० ॥ ५८ ॥

क्ष॰ ॰ भक्षायस्वा॰॥३०॥ भक्षण किये पीछे अपने खर परसादनकिया नाराशंसाः पितरः अर्थात् नरजहां बैठे स्तुति करते हैं ऐसा यज्ञ तिसके हित वा योग्य नाराशंस ति स गुण विशिष्ट पितर तिसनिमित्त विषें, पितृभ्यो नाराशंसेभ्यः स्वा॰॥३१॥ ५८॥

सन्नः सिन्धुः॥ सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो जयो रोजसास्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा॥ या पत्येते ऽअप्रतीता सहोभिर्विष्णू ऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ॥ ५९॥ +

३२·३३·या-ह्र॰३४·या-गा॰॥ अवभृथके अर्थ उद्यत सोम सि॰ ॰ सिन्धवे स्वा॰॥३२॥ जलको अभिमुख नीयमान सोम स॰ ॰ समुद्राय स्वा॰॥३३॥ जल में निमग्न सोम सलिल होता है तिसके प्रायश्चित्त विषें सलिलाय स्वाहेति जुहुयात्॥३४॥ इन यज्ञाहुतियों से यज्ञ चिकित्सित और प्रति संहित होता है। तथा च श्रुतिः १२·६·१·३९· तावा ऽएताश्चतुस्त्रिꣳशतमाज्याहुतीर्जुहोति त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवाः प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳश एतदु सर्वैर्देवैर्यज्ञं भिषज्यति सर्वैर्देवैर्यज्ञं प्रति संदधातीति॥ ॥का॰२५·२·७· कालाहुति होम और वाचन को करिके रसरूप सोम को जलसे सींचे॥ अभिमर्शनेन विकल्पः यो रोजसेति विष्णुवरुण देवत्या त्रिष्टुप्॥ दोनो कर्म भूत विष्णुवरुण सोमरूप यज्ञ साधन को आए। कब कि पहिले आह्वान विषें यावत् प्रधान को बुलाते हैं तावत् ही विष्णु और वरुण हवि प्रति आए। अथवा पहिले बुलाये हुए विष्णु वरुण प्रति हविश्राप्त

+सि-तः।अ॰स-णः।इ॰।स-तः।उ॰।प-तौ।त्र॰॥५९

हुआ। वे कौन कि जिन विष्णु वरुण के बल करि लोक थंभे हैं। किंच ते विष्णु वरुण प्रत्येते॰ जगत के ईश्वर हैं अथवा परसैन्यपै श्येनकी प्रकार टूटते हैं कैसे हैं कि अत्यन्त वीर हैं। तथा अत्यन्त वलवान। तथा वल करि अप्रतीता॰ नहीं कोई भी उन्हों के संमुख जाने को समर्थ होता अर्थात् अनन्य योद्धौ। ऐसे विष्णु वरुण रसरूप हवि प्रति प्राप्त हुए॥५९॥

देवान्दिवम्॥ देवान्दिवं मगन्यज्ञस्ततो माद्रविणमष्टु मनुष्याननन्तरिक्ष मगन्यज्ञस्ततो माद्रविणमष्टु पितृन्पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो माद्रविणमष्टु यङ्कंचलोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत्॥६०॥

का॰ २५.२.८॰ रस रूप सोम का देवान्दिवं इस से स्पर्श करै यजुर्लिङ्गोक्त देवत माशीः॰ महीधर मते यज्ञ देवत्या यजमानाशीः अत्यष्टिः॥ यह यज्ञ वाय्वादि देवताओं को प्राप्त हो द्युलोक को पहुंचै फिरि द्युलोकस्थ यज्ञसे विशिष्टि भोग साधन रूप यज्ञ फलभूत धनको मुझै प्राप्त करै। अनेन सुकृति नामा रोह क्रम मभिधायेदानीमवरोह क्रम माह फिरि द्युलोक सै अवरोहण समय विषे यज्ञ मनुष्य लोकको आकर अन्तरिक्ष लोक को जाकर तिस लोक में स्थित यज्ञसे यज्ञ फल रूप धन को मुझै प्रा॰। दक्षिणायने गमनागमन माह। यह यज्ञ धूमादि मार्गसै पितरों को प्राप्त हो भूलोक में जा तहां के स्थित यज्ञसे यज्ञ फल॰। किं बहुना जिन किन्हीं लोकोंको यज्ञ जावै तहां के यज्ञ से मेरो कल्याण हो इति यजमानाप्रशास्यते॥६०॥

चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवः॥ चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञꣳस्वधया ददन्ते॥ तेषाञ्छिन्नꣳसम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्म्मोऽअप्येतु देवान्॥ ६१॥

घर्म देवत्या पंक्तिस्त्रिष्टुब्वा। कात्यायनेनास्या विनियोगोनोक्तः॥ महावीरभेदे घृतहोमः शाखांतरे। प्रायश्चित्त शमन करिकै यज्ञको विस्तार करतेहैं चतुस्त्रिंशत् संख्याक देवताजे परमेष्ठ्यादिक इस यज्ञको विस्तार करते औरजे इस यज्ञको अन्नकरि धारण करतेहैं तिन यज्ञके धारणकरनेवाले देवताओंका जो छिन्न तिसे मैंधारण करताहूं स्वाहा सुहुतमस्तु अर्थात् इस घर्म होमसे महावीरसंहितहो घर्म- महावीर संहित होकर देवताओं प्रतिजावै॥ ६१॥

यज्ञस्य दोहः॥ यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सोऽअष्टधा दिवमन्वाततान॥ स यज्ञधुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳरायस्पोषम्विश्वमायुरशीय स्वाहा॥ ६२॥

का०२५·६·७· सोमयागके यज्ञाङ्ग विनाश विषें परमेष्ठ्यादि चतुस्त्रिंशत आहुतियों के मध्य यथा † काल एक एक आहुतिको होमकें यजमान प्रति पढै। यज्ञदेवत्या त्रिष्टुप् पूर्वार्धः परोक्षोद्वितीयः प्रत्यक्षः॥ हे यज्ञ सो तू मेरी संतत विषें महिमा को दे अथवा पूर्वोक्त दोह को दे और में तेरे प्रसाद से धनकी पुष्टि और पूर्ण आयुको प्राप्तहोंउं। वोह कोन कि जिस यज्ञ(यजनीय)का आहुति परिणाम वोह प्रसिद्ध यज्ञफल रूप बहुत प्रकार प्रसृत हो दिशाभेद करि भिद्यमान द्युलोकको फैला अर्थात् भूमि अन्तरिक्ष औरस्व

† अथ यदि पण्यमान इत्यादि शत०१२·

गे को फैला। ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्त भूतग्रामोंकायज्ञपरिणाम है इतिभावः ६२

आपवस्व॥ आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोमवीरवत्॥ वाजङ्गोमन्नमाभर स्वाहा॥६३॥

इति संहितायां त्रयोविंशोनुवाकः॥२३॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शाखीयायांवाज

सनेय संहितायां दीर्घपाठे अष्टमोध्यायः ८

का॰ २५.६.७. पशु और सोम विषें यूप के काकारोहण में उद्गाता होम करै। सोम देवत्या गायत्री नैध्रुवीकश्यपदृष्टा॥ हे सोम तू आकैसैकि कनकयुक्त अश्वयुक्त वीरयुक्त जैसे तैसे पालन करि अर्थात् स्वर्ण अश्व वीर मुझै दे किंच हे सोम धेनु और अन्न दे स्वाहासुहुतमस्तु॥६३॥

इति नैमित्तिकानि समाप्तानि

इति भाष्ये त्रयोविंशोनुवाकः

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्॥

पुमार्थांश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः१

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिपतिश्रीमज्जय किशोर देव वर्म्मात्मजरोक्मिणेय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येगृहग्रहान्निमित्तान्तो नामाष्टमोध्यायः॥८॥

पञ्चात्मकद्वै रूप पुनि साधन करि वहु रूप

आनंद दायक कृष्ण को वरन्यों ब्रह्मस्वरूप १

कुदी

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकंद्विरूपंच साधनैर्वेद्रुरूपकम्
स्वानंददायकंकृष्णंब्रह्मरूपपरंस्तुमः१

अथ वाजपेयो बृहस्पतेरार्षमिन्द्रस्यच

अ॰१ देवसवितः॥ देवसवितः प्रसुवयज्ञम्प्रसुवयज्ञपतिम्भगाय॥ दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातुवाचस्पतिर्वाजन्नःस्वदतुस्वाहा॥१॥

ॐनमोयज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनश्रीवेदार्थप्रदीपके
वाजपेयोराजसूयारम्भान्तोनवमोच्यते

चतुर्थाध्याय से आरंभकरि अष्टमान्त पांच अध्यायोंमें अग्निष्टोमके मंत्र औरतिसके प्रासंगिक मंत्र कहे नवमें अध्याय में चतुस्त्रिंशत् कण्डिका पर्य्यन्त वाजपेयके मन्त्र हैं तिन्हों के बृहस्पति और इन्द्र ऋषि। तत्र का॰१४·१·११· वाजपेयाङ्गभूत दीक्षणीय प्रायणीयादिकों में एक वारलिये आज्य को होमें। सवितृ देवत्या त्रिष्टुप्॥ हे सवितः सबके प्रेरक अन्तर्यामिन् हे दीप्यमान् वाजपेय लक्षण याग को प्रवर्तकरि। यज्ञपति यजमान को भजनीय अनुष्ठान रूप धर्म ऐश्वर्य के अर्थ प्रेरि एवं मण्डलाधिष्ठातार पुरुषको कहिकर मण्डलस्थ प्रति कहिताहै तेरे प्रसाद से दिवि में हुआ दिव्य गन्धर्व अर्थात् गविरश्मियोंका धारण करने वाला अन्नका

पवित्र करने वाला सूर्य मण्डलरूप देवता हमारे अर्थ अन्न को पवित्र करैं। किंच तेरे प्रसाद से प्रजापति हमारे अन्न को आस्वादन करैं स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ १॥

ध्रुवसदन्त्वा ॥ नृषदम्मनः सदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥
अप्सुषदन्त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयाम गृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥
पृथिविसदन्त्वान्तरिक्षसदन्दिविसदन्देवसदन्नाकसदमुपयाम गृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २॥ †

का॰ १४॰ २॰ २६: २॰ १॰ प्रातःसवन विषें आग्रयण के अनन्तर तीनि अति ग्राह्यों कों और षोडशिन को ले इन्द्र देवता क पांच ग्रहों का ग्रहण करैं। ऐन्द्राणि त्रीणि। अथ प्रथमम्। ध्रु-मृ या-जग॰-मि १॰ २॰ ३॰ सा-अ॰ हे सोम तू उपयाम ग्रह करि गृहीत है। इन्द्र के अर्थे प्रिय तुझै ग्रहण करता हूं कैसे तुझै कि बहुत करिकै स्थिर इस लोक में रहत ता है- मनुष्यों में रहता है मन में रहता है † ॥ ए-मृ १॰ २॰ ३॰ आसुरी अ॰ सादयति। हे ग्र यह खर प्रदेश तेरा स्थान इन्द्र के अर्थ प्रिय तुझै सादन करताहूं इतिशेषः ॥ अथद्वितीयम् ॥ अ-मृ आसुरी अ॰। उदक में रहने वाला घृत विषें अन्तरिक्ष में। शेषोव्याख्यातः ॥ तृतीयम्। पृ-मृ यजुः। पृथिवी में अन्तरिक्ष में स्वर्ग में देवताओं में नाके नहीं है दुःख जिसमें ऐसे सुखान्वित स्वर्ग विशेष में रहताहै शेषंसमानम् ॥ २॥

† सोमाहुति परिणाममूलोर साधु लोके खादीमानः सोमाध्यास उच्यते ॥

† ध्रु-मृ। अ॰। उ-मि। द्वि॰। ए-मृ। उ॰। अ-मृ। त्रि॰। उ-मि। त्रि॰। ए-मृ। आ॰। पृ-मृ। द्वि॰। उ- मि। का॰। ए-मृ। ऋ॰ ॥ ३॥

अपाᳬरसम्॥ अपाᳬरसमुद्वयसᳬसूर्य्येसन्तᳬसमाहितम्॥ अपाᳬरसस्य यो रसस्तम्वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टतमम्॥३॥+

चतुर्थम्। रसदेवत्यानुष्टुप्॥ सूर्य विषें भले प्रकार स्थापन किये हुए जलोंके रस सार, वायु को में ग्रहण करताहूँ +। कैसे रसको कि उत्पन्न होते हैं अन्न जिससें। किंच वायु का जो सार प्रजापति हिरण्यगर्भ सहि यज्ञ लोक कालाग्नि वायु सूर्य यजुः सामादि वपुः हे देवताओ वः (तुम्हारे अर्थ तिस प्रजापति को में ग्रहण करताहूं कैसाहै वोह कि वडा उत्कृष्ट। वः शब्दोऽनर्थकः। अथवा सोम रूप करि वायु और तिस के अभिमानी सोमको ग्रहण करताहूं। उपयामेतिव्यख्यातम्॰ एषतऽ इतिसादनम्॥३॥

+ रसवा अपामिति श्रुते॰ ५.१.२.७.

ग्रहाऽउर्ज्जाहुतयः॥ ग्रहाऽउर्ज्जाहुतयो व्यन्तोविप्रायमतिम्॥ तेषाम्विशिप्रियाणाम्वोहमिषमुर्ज्जᳬसमग्रभमुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टतमम्॥ सम्पृचौस्थः समाभद्रेण पृङ्क्तम्विपृचौस्थो विमापाप्मना पृङ्क्तम्॥४॥+

पंचमम्॥ ग्रह देवत्यानुष्टुप्। हे ग्रहओ तिन तुम्हारे संबंधि अन्न और रस को में भले प्रकार ग्रहण करताहूं कैसोंको कि विशिप्रिया हनू वा नासिका नहीं चलाने पडते हैं जिन ग्रहों में तिनोंको, सम्यगभिषुत और सूपूत हैं जिन्हों में सुपेय होनेसे हनुका व्यापार नहीं।

+ अ–म्।अ॰।उ–मि।प्र॰।ए–म्।उ॰।३॥
+ग्र–म्।म॰।उ–मि।इ॰।ए–मि।उ॰।स–म्।स॰।वि–म्।ल॰।४॥

तिन किन्हों को किजे तुमको अन्न रस लाते हैं। तथा मेधावी इन्द्र के अर्थ विशिष्ट बुद्धि को जानते वा लाते हैं। उप० एष० व्याख्याते॥ का० १४.२.७. अध्वर्यु सोम ग्रह को अक्ष के ऊपर धारण करै नेष्टा सुरा ग्रह को अक्ष के नीचे रखै साथही रखना और मंत्र पढना है॥ ग्रह देवते यजुषी। हे सोम सुरा ग्रह औ जो तुम संयोजन किये हो सो तुम मुझे कल्याण सें संयोजन करो। का० १४.२.८. अध्वर्यु नेष्टा अपने अपने ग्रह को अपने समीप में लावें॥ हे ग्रह औ जैसे तुम वियुक्त हौ तैसे मुझे पाप सें न्यारा करो॥४॥

अ० २ इन्द्रस्य वज्रः॥ इन्द्रस्य वज्रो॑सि वाज॒सास्त्वया॒यम्वाज॑ꣳसेत्।
वाज॑स्य नु प्र॑स॒वे मा॒तर॑म्म॒ही म॑दि॑ति॒न्नाम॒ वच॑सा करा
महे॥ यस्या॑मि॒दम्विश्व॒म्भुव॑नमावि॒वे॒श॒तस्या॑न्नो दे॒वः
स॑वि॒ता धर्म्म॑ साविषत्॥५॥ +

का० १४.३.१. महा मरुत्वतीय के अन्त में माहेन्द्र से पूर्व अध्वर्यु रथवाहन शकट से रथ अवतारण करै। इ-त् आसु-गा० रथदे०॥ हे रथ तू इन्द्र का वज्र है +। कैसा है तू कि अन्न का दाता किंच यह यजमान तुझ वज्र भूत की सहाय से अन्न को भजे वा बहुत अन्नवान् होवै॥ का० १४.३.२. अवतारित रथ की धुरि पकडि कर चात्वाल से दक्षिण हो लाय करि वेदी विषें स्थापन करै। वा-त् पृथिवी देवत्या त्रिजगती अन्त्यः पादः सवितृ देवत्यः॥ अन्न की अनुज्ञा विषें जैसे हम वर्तमान जिस भूमि को प्रसिद्ध जैसे तैसे वेद वाक्य करि अनुकूल करते (हुए) हैं। कैसी भूमि को कि जगत की निर्माण करने वाली बडी

+ इन्द्र ने जब वृत्र के लिये वज्र प्रहार किया सो वज्र चतुर्धा हुआ उस का एक भाग रथ है इन्द्रो ह यत्र इत्यादि शत० ५.२.४.१०॥

+इ-त्। अ०। वा-त्। इ०॥५॥

महनीय अखंडित। किंच यह विश्व सर्व भूतजात जिस भूमि में आ
विष्ट। सविता ऐसेही तिस भूमि विषें हमें धर्म धारण अवस्थान
को प्रेरणा करें॥५॥

अप्स्वन्तः॥ अप्स्वन्तरमृतमप्सुभेषजमपामुत प्रश
स्तिष्वश्वाभवतवाजिनः॥ देवीरापोयोवऽऊर्म्मिः प्रतू
र्त्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायम्वाजꣳसेत्॥६॥

का॰१४॰३॰३॰५॰ स्नान के अर्थ जल के निकट लाये वा स्नान कि
ये हुए अश्वों को अप्स्वन्तः। इस मन्त्र॰ वा देवीरापः। इस॰ वा दो
नों से प्रोक्षण करे। अश्व देवत्या वसान रहिता पुर उष्णिक्॥
जल के भीतर में अमृत अवस्थित और जल में भेषज आरोग्य
पुष्टि करने वाली ओषधी अवस्थित हैं हे घोडे औ तुम तहां अ
मृत भेषज युक्त जल विषें अन्नवान् होओ और प्रशस्त भागों वि
षें होओ॥ द्वितीयः प्रोक्षणमन्त्रः अब्देवत्यं यजुः। हे देवी जल तु
+सेतुस्सनुया द्वधीयाद्य॥ म्हारा जो कल्लोल तिस करिके सींचा यह अश्व अन्न को दे। कै
सा है कल्लोल कि प्रकृष्ट वेगशील। तथा ककुन्मान्॰ ककुत् श
ब्द करि वृषभ के स्कन्ध विषें उन्नतप्रदेश है तिस समान उदकनि
चय संयुक्त अर्थात् बहुलोदक संघातवान्। तथा अन्न का दाता॥ ६॥

वातोवा॥ वातोवा मनोवा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः॥
तेऽअग्रेश्वमयुञ्जँस्तेऽअस्मिञ्जवमादधुः॥७॥

पुर उष्णि कृहत्यायुधः का॰१४॰३॰६॰ दक्षिण अश्व को रथ में जोडे। वातोवा + वात रꣳहा
॰जवोपः॰तिस्रोश्व स्तुतयः क्रमेण उष्णिक्त्रिष्टुब्जगत्यः॥ वायवो

समुच्चयार्थौ। वायु मन इन्द्रिय सप्तविंशति नक्षत्र भूमिके धारण करने वाले ते वातादिक पहिलें अश्व कों रथमें जोडतेहुए और ते वातादिक अश्व में वेग को स्थापन करतेहुए॥७॥

वातंरंहाभव॥वाजिन्युज्यमानऽइन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि॥युञ्जन्तुत्वा मरुतो विश्ववेदसऽआतेत्वष्टापत्सुजवन्दधातु॥८॥

का॰१४·३·७· वाएँ अश्व को जोडै॥हेवेगवान् अश्व जोडतेहीवातवत् वेगयुक्तहो। किंच दक्षिण भाग में स्थित तू इन्द्र का अश्वजैसे शोभायुक्तहो किंच सर्वज्ञ वा सर्वधन मरुत हे अश्व तुझे रथमें जोडै। किंच त्वष्टा देवता हे अश्व पैरों में वेग को स्थापनकरै॥८॥

जवोयः॥ जवोयस्तेवाजिन्निहितो गुहायः श्येने परीतोऽअचरच्चवाते॥ तेननोवाजिन्बलवान्बलेन वाजजिच्चभव समनेच पारयिष्णुः॥ वाजिनो वाजजितो वाजंसरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत॥९॥†

का॰ १४·३·८· दक्षिण धुरि में तीसरे अश्व को जोडै॥ हे अश्वजो तेरा वेग हृदय प्रदेश में स्थापित है। श्येन नामा पक्षी तेरे वेगदेने से वर्त्तताहै और तेरे ही वेग देने से वायु चलता है। हे वाजिन् तिस त्रिविधि (विविधि) वेग लक्षण बल करिकै बलवान् वेगवान् होकर हमारें अन्नका जेताहो। और संग्राम विषें पारयिता और पार का प्राप्त करानेवालाहो॥ का॰ १४·३·१०· बार्हस्पत्यचरुको घोडेंको सुंघावै। वाजिनः साम्नीज॰ अश्वदे॰॥ अन्नके

† अ-सा॰। अ॰वा-त।इ॰।१९॥

जेतार अन्न के प्रति चलते हुए हे घोडे औ तुम बृहस्पति चरुको सूंघो॥९॥

अ॰३ देवस्याहम्॥देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्य सवसो बृहस्पते रुत्तमान्ना कꣳरुहेयम्॥ देवस्याहꣳ सवितुःसवेसत्यसंवसऽइन्द्रस्योत्तमन्नाकꣳरुहेयम्॥ देवस्याहꣳसवितुःसवेसत्यप्रसवसो बृहस्पते रुत्त मन्नाकं मरुहम्॥ देवस्याहꣳ सवितुः सवेसत्य प्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमन्नाकं मरुहम्॥१०॥+

का॰१४·३·१२· उत्कर प्रदेश विषें गाडे हुए नाभि मात्र काष्ठ के अग्र में स्थित रथचक्र को ब्रह्मा आरोहण करे।१०·११·१२· वाजं जेषम् १३ लिङ्गोक्तानियजुः ब्राह्मण कर्त्तृके वाजपेये॥ सत्याभ्यनुज्ञ सविता देवता की अनुज्ञा विषें वर्तमान में बृहस्पति संबंधि उत्कृष्ट नाक (स्वर्ग) को आरोहण करता हूं। क्षत्रिय वाजपेये चक्रारोहण मन्त्रः सा–ज॰। तत्र इन्द्र के नाक को इति विशेषः॥ का॰ १४·४·८· यजमानादिकों के सप्तदश रथ सप्तदश शर प्रक्षेप विषें गडी हुई औदुम्बरी शाखा को प्रदक्षिणी करि देवयजन देश को आने पर ब्रह्मा रथचक्र से उतरे विप्र यज्ञ में पूर्व मन्त्र करि क्षत्रिय यज्ञ में उत्तर से। आर्षी बृ॰ ॰यजुः॥ सत्य और प्रकृष्ट है सव जिसका वोह सत्य प्रसवाः यहां प्र शब्द प्रकर्ष द्योतक है। अरुहमिति भूतकालः मैं नाक को आरूढ वान हूं शेषं पूर्ववत्॥१०॥

बृहस्पते वाजम्॥ बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं

† दे–म॰। ऋ॰। दृ॰। उ॰। न्न॰॥१०॥

म्वदत बृहस्पतिम्वाजं जापयत ॥ इन्द्रम्वाजं जयेन्द्राय वा
चम्वदतेन्द्रम्वाजञ्जापयत ॥ ११ ॥ +

का॰ १४·३·१५· अनुवेद्युच्छ्रितस्था एवं रोपित सप्तदश दुन्दुभियों
के मध्य में एक को मन्त्र करि बजावे षोडशों को चुप के से। प्रा॰ ब्रि॰ विभव
का मन्त्र: ॥ हे दुन्दुभीओ तुम बृहस्पति के अर्थ यह वाचा कहो वोह
कौन कि हे बृहस्पते तू अन्न को जीति। किंच हे दुन्दुभीओ तुम ही
बृहस्पति करि अन्न की जय कराओ ॥ प्रा॰ बृ॰ क्षत्रयज्ञे दुन्दुभिवादन
मन्त्र: ॥ हे दुन्दुभीओ तुम इन्द्र के अर्थे अन्यत्समानम् ॥ ११ ॥

एषावः ॥ एषाव: सा सत्या सम्वागभूद्यया बृहस्पतिम्वाज
मजीजपताजीजपत बृहस्पतिम्वाजम्वनस्पतयो विमु
च्यध्वम् ॥ एषाव: सा सत्या सम्वागभूद्ययेन्द्रम्वाजम-
जीजपताजीजपतेन्द्रम्वाजम्वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥ +

का॰ १४·४·९·१०· सप्तदश दुन्दुभीओं के मध्य मन्त्र से बजाए को म
न्त्र करि स्थाणु से अवतारण करै षोडशों को चुपके से। पूर्वोक्त मन्त्रो वि
भयज्ञे उत्तर: क्षात्रे। ब्रा॰ उ॰ ब्रा॰ गा॰ ॥ हे दुन्दुभीओ तुम्हारी यह वा
क् सत्य हुई कि जिस वाचा करि बृहस्पति को अत्यन्त अन्न की ज
य कराई तुमने जिस वाचा से सो सत्य हुई। हे वनस्पतयो अर्थात् ब
नस्पति के विकार दुन्दुभीओ तुम कृत कृत्य हुए छूटो ॥ उत्तर मन्त्र
में इन्द्र का उच्चारण करना समानम् ॥ १२ ॥

देवस्याहम् ॥ देवस्याहꣳ सवितु: सवे सत्यप्रसवसो बृह
स्पतेर्वाजजितो वाजञ्जेषम् ॥ वाजिनो वाजजितोध्वन

स्कम्भुवन्तोयोजनामिमानाः काष्ठाङ्गच्छत॥१३॥+

का॰१४·३·१८· मन्त्रयुक्तरथको यजमान आरोहण करै। आजीव॰॥ सत्याभ्यनुज्ञ सविता देवता की अनुज्ञाविषें वर्त्तमानमें अन्न केजीतने वाले बृहस्पति के संबंधि अन्नको जीतूं॥का॰१४·३·२२·ब्रह्मचारी वा अन्तेवासी यजमानको पढै। सा–ज॰अश्वदे॰॥ हे घोडेओतुम आज्यन्त (उत्कर्ष) को प्राप्त होओ। कैसे हो तुम कि अन्न केजीतनेवाले। तथा मार्गों को क्षोभ करानेवाले ‡। तथा योजनों को अतिशीघ्रता करि परिच्छेदन करनेवाले॥१३॥

एषस्य॥एषस्यवाजी क्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनि॥ क्रतुन्दधिक्राऽअनुसꣳसनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत्स्वाहा॥१४॥

का॰१४·४·३·४· दोऋचाओंसे आज्यको होमें वा अश्वोंको अभिमंत्रितकरै। द्वे अश्वदेवत्ये जगत्यौ दधिक्रावा वामदेव्य दृष्टे॥वोहयह घोडा कशा घात के आध्वान को व्याप्त होताहै अथवा कशाकी तूर्णता से शीघ्रचलताहै। कैसाहै अश्व कि ग्रीवा विषें उरोबधक रिवंधाहै। कक्षीओंके समीप विषें अपिकक्ष (पर्याणदेश) तहांसंनाहरज्जु करिवंधाहै। मुखपर कविक करिवंधाहै। तथा दधिक्राः अश्ववारको धारण कराय चलता अथवा मार्गके अवरोधकरनेवाले अद्रिपाषाण गर्त्त कण्टकादिकों का अतिक्रम करनेवाला दधिक्राः तथा क्रतुं, सादिन (अभिप्राय) को भले प्रकार धारण करानेवाला सादि संकल्पानुसार करि चलता। तथा मार्गों के ऊंचे नीचो में अतिशीघ्र

† आज्यन्तोऽपि काष्ठोच्यते क्रान्त्वा स्थितो भवतीति निरु॰२·१८· यास्कोक्तेः काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशीत्यभिधानाच्च अमर॰१·३·४६·

‡ सप्तम्यर्थस्वभाव॰

प्राप्त होता (अर्थात् समत्वको अ.पादान करताहै। एवंविधो ऽश्वस्तुरण्यतीति सम्बन्धः। स्वाहा सुहुत मस्तु॥ १४॥

उतस्मं॥ उत स्मास्य द्रवंत स्तुरण्यतः पूर्णन्न वेरनुं वाति प्रगर्धिनः॥ श्येनस्यैव ध्रजतो ऽअङ्कसम्परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा॥ १५॥

और इस घोडे का शृङ्गार चिन्ह वस्त्र चामरादिक समस्त देह पर वर्त्तमान होने से चलते अश्व को उत्क्षिप्तत्वकरि दिखलाई पडते हैं। कैसे कि जैसे शीघ्रतासे चलते पक्षी के पक्ष उत्क्षिप्त चलते दीखते हैं। कैसे अश्वके कि चलते तथा शीघ्र के अवधि प्राप्ति कांक्षा करने वाले के। पक्षि मात्रस्य पर्णमङ्कसदृष्टान्तत्वे नाभिहितम् शीघ्र धावने श्येन दृष्टान्त उच्यते जैसे श्येन वेगसे चलताहै दधिक्रावा धारक पर्वतादिकोंका अतिक्रम करतो बल सहित भृश मार्ग को तरता है स्वाहा सुहुत मस्तु॥ १५॥

शंनः॥ शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः॥ जम्भयन्तो ऽहिम्वृकं रक्षांᳬसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥ १६॥

का॰ १४.४.५. शंनः इन तीन ऋचाओं करि आज्य होम वा अश्वाभिमन्त्रण करैं। अश्व देवत्या चतुष्पदा विराड्वसिष्ठ दृष्टा॥ देवताओं के कर्म यज्ञ विषें आह्वानों में घोडे हमारे सुख करने वाले हूजियो। कैसे हैं कि परिमित चलते। तथा सर्प॰ त्यारी॰ राक्षसों का नाश करते हैं। किंच वे घोडे हमारे सकाश से क्षिप्रही व्याधियों को पृथक्

कीजियों ॥१६॥

तेनोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवम्विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मि
तद्रवः ॥ सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ स
मिथेषु जभ्रिरे ॥१७॥

अश्वदे॰ जगती नाभानेदिष्ठदृष्टा ॥ वे सब घोडे हमारे आह्वान को
सुनियों। कैसे हैं कि कुटिल चलते हैं। आह्वान को सुनते हैं। यज
न के चित्त के अनुकूल करि परिमित गामी। अनेक जनोंकी तृप्ति के
योग्य अन्नराशि के दाता। यज्ञशाला के पूरक। वे कौन कि जे घो
डे सङ्ग्रामों विषें पूजा वाधन को प्राप्त करते हैं ॥१७॥

वाजे-वाजेवत ॥ वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः ॥
अस्य मध्वः पिवत मादयध्वन्तृप्ता जात पथिभिर्देवयानैः ॥१८॥

अश्वदे॰ त्रिष्टुब्वशिष्ठा ॥ हे घोडे औ समस्त अन्नों में उपस्थित होते
और धनों में उपस्थित होते हमें पालन करौ। कैसे हो तुम कि मेधावी
(परिदृष्टकारी) अमरणधर्मा सत्यज्ञ वा यज्ञज्ञ। किंच इस मधु को
धावन सें पहिले और पीछे अवघ्रायमाण नैवार चरुलक्षण मधुर
हवि को पीऔ और पीकैं तृप्त होऔ फिरि तृप्त होके देवाधिष्ठित मा
र्ग करि चलो ॥१८॥

आमा ॥ आमा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथि
वी विश्वरूपे ॥ आमा गन्ताम्पितरा मातरा चा मा सोमोऽअ
मृतत्वेन गम्यात् ॥ वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳ
सो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥ †

† आ-तृ॰ऋ॰वा-नाः। इ॰॥१९॥

का०१४.४.११. यजमानरथसेउतरखात्वालउत्कटकेअन्तरमेंस्थितनैवारचरुकास्पर्शकरै प्रजापति दे० त्रिष्टुब्वसिष्ठ दृष्टा॥ अन्न की उत्पत्ति मेरें आओ। सर्व रूपात्मिकाये द्यावा पृथिवी मुरु प्रति आओ मेरे पिता और माता हमारे प्रति आओ। और सोम अमृतत्व करि मेरें आओ॥ का०१४.४.१२. वाजिनः इस मन्त्र करि युक्त घोडाओं को नैवारचरु सुंघावै। प्रा- त्रि० अश्वदे०॥ हे घोडे औ तुम बृहस्पति के संबंधि चरु को आघ्राण करो। कैसे औ कि अन्न के जीतने वाले। अन्न के जीतनें को प्राप्तहुए हो। शोधन करतेहो चरुवा इस यजमान को पवित्र करतेहो॥१९॥

अ०४ आपये स्वाहा॥ आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा पिजाप स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहा हर्पतये स्वाहा न्हें मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिनऽ आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा॥२०॥†

का०१४.५.१. आपये स्वाहा इति प्रति मन्त्र से द्वादश आहुति होमें वा पढे। प्राजापत्यानि द्वादश १.२.४.५.दे-पं०३.या-गा०६.७.या-उ०८.या-पं०९.आसु-पं०१०.११ या-बृ०१२.दे-ज०॥ संवत्सराभिमानी प्रजापतिः स्तूयते तस्यैवैतानि नामानि। प्राप्ति करता है तिसके अर्थ स्वाहा। शोभन प्राप्ति करता है तिस०। फिरि-फिरि उत्पन्न होता है तिस०। संकल्प भोगादि विषय वा यज्ञ तिस०। निवास का हेतु०। दिवसों का पति। अतश्चत्वारि नामान्युभयविशेषण

† आ-हा। अ०। स्वा-हा। इ०। अ-हा। उ०। क्र-हा। ऋ०। व-हा। ऌ०। अ-हा। आ०। ई०। सु-हा। ऊ०। वि-हा। ऋ०। अ-हा। ॡ०। भु-हा। क०। अ-हा। च०। २०॥

विशिष्टानि मोहकरताहै तिस दिवसके अर्थ०। विनाश शीलभव ति-
समोह करनेवालेके ०। भवका अन्त्यस्थान तिस विनाश शीलके०।
भव अन्त्य तिस उभय विशिष्ट के०। जगतके पालन करनेवालेके०
सब लोकों के स्वामीके अर्थ स्वाहा सुहुत मस्तु॥२०॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्प्राणो यज्ञेन कल्पताञ्चक्षुर्यज्ञे
न कल्पताᳬश्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां
यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्॥ प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवा
ऽअगन्मामृताऽअभूम॥२१॥ †

का० १४·५·२· और आयुर्यज्ञेनेत्यादि षट् मंत्रों से होम करै वाइ
न्है पढै। प्राजापत्यानि षट् १-६ प्रा-गा०॥ मेरी आयु वाजपेया
ख्य यज्ञकरि क्लृप्त हूजियो। मुखनासिका से हुआ प्राण वायुभीवा
ज०। चक्षु इन्द्री०। श्रोत्र इन्द्री०। पृष्ठ-रथन्तरादिक वा शरीरकी पीठि०।
यज्ञ, यज्ञका अधिष्ठाता विष्णु मेरे वाजपेयाख्य यज्ञसे क्लृप्त हूजियो॥॥
का०। १४·५·६-८· प्रजापतेः इस मन्त्र से पत्नी यजमान निश्रेणी सै यू
पको आरोहण करें। यजमान देवत्यानि त्रीणि १· या-बृ०॥ हम
प्रजापति संबंधि प्रजा हुए॥ का० १४·५·९· गोधूम पिष्ट निर्मित्त
चषाल को यजमान स्पर्श करै। २·३· दै-त्रि०॥ हे देवताओ हम
स्वर्गको गए॥ का० १४·५·१०· यूपसे ऊंचे को शिर करै॥ हम मर
णधर्म रहित हुए॥२१॥

अस्मे वः॥ अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्र
तुरस्मे वर्चाᳬसि सन्तु वः॥ नमो मात्रे पृथिव्ये नमो

† आ-मू। अ०। प्रा-मा। इ०। च-मू। उ०। श्रो-मू। क०। पृ-मू। ल०। य-मू। आ०। प्र-मा। इ०। स्व-म।
ऊ०। अ-म। ऋ॥२१॥

माते पृथिव्याः इयन्ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवो सि धरुणः ॥
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२॥ †

का॰१४·५·११· यूपारूढ एव यजमान दिशा देखै। दिग्देव॰ गायत्री ·हला युधमते॥ हे दिशा औ तुम्हारा संबंधि वीर्य हम विषें है। तुम संबंधि धन हमविषें है। और तुम संबंधि कर्म हमारे में है। तुम्हारे तेज हमारे में हैं। हमारी संबंधि तुम्हारी सामर्थ्य है। इतिभावः॥ का॰१४·५·१४· भूमि को देखै। सा-उ॰ पृथिवी दे॰॥ मातृरूपा पृथिवी के अर्थ नमस्कार है †। का॰१४·५·१७· उत्तर वेदी के ऊपर औदुम्बरी आसन्दी पर वस्त चर्म को बिछावै। दे-वृ॰ आसन्दी दे॰॥ हे आसन्दी तेरा यह राज्य· तू अभिषिक्त है इतिभावः॥ का॰१४·५·१८· आसन्दी पर यजमान को उपवेश करावै। यजमान देवत्यं यजुः॥ हे यजमान तू सबका नियन्ता है। आप संयमन कर्त्ता है· तेरा यमन अन्य वछिन्न है इतिभावः। तथा स्थिर है धारक है। कृषि की सिद्धि के अर्थ तुझे उपवेश करता हूं। लब्ध के परिपालनार्थ तुझे उप॰। धन के अर्थ तु॰ पशु पुत्रादिकों की पुष्टि के अर्थ तु॰॥२२॥

अ॰५ वाजस्येमम्॥ वाजस्येमम्प्रसवः सुषुवे ग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु॥ ताऽअस्मभ्यम्मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा॥२३॥

का॰१४·५·२३· औदुम्बर पात्र विषें एकी किये दुग्ध व्रीह्यादि धान्य से स्रुवा करि आहवनीय में सप्त मन्त्रों से होमें। प्रजापति दैवतं तृचं त्रिष्टुभं॥ अन्न का उत्पादक प्रजापति सृष्टिकी आदि में ओष

†अस्याः सिमूर्द्धामत्यस्यमन्त्रस्य गं पूर्वोत्तितम्‌०८ हि॰२४·३०।

†श- व॥ अ॰ न- वे। इ॰ इ- द। उ॰ य- त्वा। त्र॰॥२२॥

धी और जल में वर्त्तमान इसवल्ली रूप सोम दीप्तिमान पदार्थको उत्पादन करता हुआ वे सोम की जननी ओषधीएँ और जल हमारे अर्थ मधुमती(रसवती॰ माधुर्योपेता) अर्थात् भोग योग्याहों और हमतिन्हों करि अभिषिक्त स्वकीयदेशविषें अप्रमत्तहों। पुरोहिताः यागानुष्ठानकी आदिमें प्रधानहों स्वाहा सुहुतमस्तु॥२३॥

वाजस्येमाम्॥वाजस्येमम्प्रसवः सिश्रिये दिवमिमाञ्च विश्वा भुवनानि सम्म्राट्॥ अदित्सन्तन्दापयति प्रजानन्त्स नो रयिᳪ सर्ववीरन्नियच्छतु स्वाहा॥२४॥

अन्नका उत्पादक ईश्वर इसपृथिवी और द्युलोक और इन समस्त भूतजातों को आश्रितवान् और सो सम्राट समस्त भूतजातोंका राजा होकर हविदेनेको अनिच्छन्त मेरी बुद्धि प्रेरणेसे हविदे ततः हमारे अर्थ सवपुत्र भृत्यादि युक्त धन को नियम करिके देवै स्वाहा सुहुतमस्तु॥ २४॥

वाजस्यनु॥ प्रसव ऽ आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः॥ सनेमि राजा परियाति विद्वान्प्रजाम्पुष्टिम्वर्द्धयमानो ऽ अस्मे स्वाहा॥२५॥

नु इति विस्मये अन्न का उत्पादक इन समस्त भूतों सर्वतोऽवस्थित हिरण्यगर्भादि स्तम्भ पर्यन्त उत्पादितवान् चिरन्तन राजाहो सर्वतः स्वेच्छा करि चलताहै। कैसाहै कि अपने अधिकारको जानता तथा हम विषें पुत्रादि सन्तति और धन की पुष्टिको वढाता स्वाहा सुहुतमस्तु॥ २५॥

सोमꣳ राजानम्॥ सोमꣳ राजानमवसेग्निमन्वारभामहे॥ आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्य्यम्ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिꣳ स्वाहा॥२६॥

तिस्रोऽनुष्टुभस्तापसदृष्टाः अनिरुक्तानुष्टुप् प्रथमा सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्य बृहस्पतिदेवत्या। रक्षा वा तृप्ति के अर्थ सोम॰ राजा॰ अग्नि॰ वैश्वानर॰ द्वादशादित्य॰ विष्णु॰ सूर्य॰ ब्रह्मा॰ और बृहस्पति॰ को आह्वान करते हैं स्वाहा सुहुतमस्तु॥२६॥

अर्य्यमणम्बृहस्पतिम्॥ अर्य्यमणम्बृहस्पतिमिन्द्रन्दानाय चोदय॥ वाचम्विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारञ्च वाजिनꣳ स्वाहा॥२७॥

अर्यमबृहस्पतीन्द्रवाग्विष्णुसरस्वतीसवितृदेवत्या। हे ईश्वर तू अर्यमादिक देवताओं को धनप्रदानार्थ को प्रेरि बृहस्पति॰ देवताओं के ईश इन्द्र॰ वाचा॰ वागधिष्ठात्री सरस्वती॰ विष्णु॰ सबके उत्पादक सूर्य। वाजिनं अन्नवन्त यह सबों का विशेषण वा देवाश्व का स्वाहा सुहुतमस्तु॥२७॥

अग्नेऽअच्छ॥ अग्नेऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव॥ प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदाऽअसि स्वाहा॥२८

अग्निदेवत्या। हे अग्ने इस कर्म विषें अभिमुख्य करि कें हित को कहि इति शेषः। किंच हमारे प्रति आर्द्र चित्त हो बहुत वसु वा सहस्रों योधाओं के जीतने वाले जैसे तू स्वभाव से ही धन का दाता है अतः तू हमारे अर्थ धन के दे स्वाहा॥२८॥

प्रने॥ अनोयच्छत्वर्य्यमाअपूषाअबृहस्पतिः॥ अवाग्देवी
ददातुनःस्वाहा॥२९॥

गायत्री अर्यम पूष बृहस्पति वाग्देवत्या। अर्यमा॰सूर्यविशेष हमा
रे अर्थ अभीष्ट को देवे पूषा हमा-देवे बृहस्पति हमा॰ दीप्यमाना
वाक् हमा॰स्वाहा॥२९॥

देवस्यत्वा॥देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पू
ष्णोहस्ताभ्याम्॥ सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रियेदधामिबृ
हस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ॥३०॥ †

का॰ १४॰५॰२४॰ होमके शेष द्रव्यकरि यजमान के शिरकोसींचै।
देवस्यत्वाआ-बृ॰सरस्वत्यैआ-त्रि॰यजमानदेवत्यम्॥ सवितादे
वताके प्रसव विषें वर्त्तमान में अश्विनी कुमारों के बाहुओं पूषा
के हाथों से तुम्हें वाणी नियमन कर्त्री सरस्वती के ऐश्वर्य विषेंस्था
पन कर्त्ता हूं। किंच बृहस्पति के सम्राट् भाव करिकै तुम्हें अभिशेष
कर्त्ता हूं॰असौ॰यजमानका नामलेना॥३०॥

अ॰६ अग्निरेकाक्षरेण॥ प्राणमुदजयत्तमुज्जेषमश्विनौद्व्यक्ष
रेणद्विपदो मनुष्यानुदजयतान्तानुज्जेषम्विष्णुस्त्र्यक्षरे
णत्रीन्ल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषᳬंसोमश्चतुरक्षरेणचतु
ष्पदः पशूननुदजयत्तानुज्जेषम्पूषापञ्चाक्षरेण॥३१॥ †

का॰ १४॰५॰२८॰ अग्निरेकाक्षरेण इसचतुः कण्डिकात्मक अनु
वाकको जैसे का॰ १४॰५॰१॰ आपये स्वाहा इन द्वादशमन्त्रोंकोज
पै वा इन्होंसे होमकरै तैसेही इनसप्तदशमंत्रोंकोजपै वा इन्हों

† दे-मू।अ॰स-सा।दृ॰॥३०॥ † अ-मू।अ॰।इ॰।वि-मू।उ॰।सो-मू॥इ॰॥३१॥

सैं होम करै। एते मन्त्रा उज्जित संज्ञाः॥ सप्तदश लिङ्गोक्त देवतानि १·३·५·६·१०·१४·१७· यजूंषि २·४·७·१६· सा–त्रि॰८·११· सा–पं॰ ९· प्रा–बृ॰१२· आर्षी उ॰१३·१५· आर्षी अ॰। ओ श्रावय इति चतुरक्षरं· अस्तु श्रौषट् इति चतुरक्षरं· यज इति द्व्यक्षरं· ये यजामहे इति पञ्चाक्षरं· वषट् द्व्यक्षरः· एष सप्तदशाक्षरात्मकः प्रजापति रधि यज्ञं समास व्यासाभ्या मुज्जीयते शत॰१·५·१६·२०॥ अथ मंत्रार्थः॥ अग्नि एकाक्षर छन्द करिके पंचवृत्तिक प्राणको उत्कृष्ट जीतताहुआ तैसे मैंभी तिस प्राणको उत्कृष्ट जीतूँ अर्थात् वशी करूं॥१॥ अश्विनीकुमार अक्षरद्वयात्मक छन्द करिके पादद्वयोपेत मनुष्योंको जीततेहुए तैसे मैंभी तिनही दो अक्षरोंके छन्दसैं तैसे मनुष्योंकोजी॰॥२॥ विष्णु अक्षरत्रयात्मक छन्द करिके भू आदि तीनि लोकोंको जीतताहुआ मैंभी॰॥३॥ सोम चारि अक्षरके छन्दकरिके चतुःपद पशुओंकोजी॰॥४॥३१॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश ऽउदजयत्ता ऽउज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षडृतू नुदजयत्तानुज्जेष्म्मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान्पशूनुदजयँस्तानुज्जेषम्बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्री मुदजयत्ता मुज्जेषम्मित्रो नवाक्षरेण। ३२॥+

पूषा देव पञ्चाक्षरछन्द करि पूर्वादि चारि और अवांतर दिशाइनपांचोंकोजी॰॥५॥ सर्वोंका प्रेरक देव षडक्षरात्मक छन्द करिके षट्ऋतुओंकोजी॰॥६॥ मरुत देवते सप्ताक्षरात्मक छन्दकरिके गवादि सप्त ग्राम्यपशुओंकोजी॰॥७॥ बृहस्पति अष्टाक्षरात्मकछ

+पू–मू। अ॰। स–मू। इ॰। म–मू। उ॰। बृ–मू। त्र॰॥३२॥

न्दकरिके गायत्री छन्दोभिमानी देवताकोजी॰॥८॥३२॥

मित्रो नवाक्षरेण॥ त्रिवृत्तꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम्वरुणो दशाक्षरेण बिराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषम्विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम्वसव स्त्रयोदशाक्षरेण॥ ३३॥†

मित्र देवता नवाक्षरात्मक छन्द करिके त्रिवृत्त स्तोमकोजी॰९॥ वरुण देवता दशाक्षरात्मक छन्द करिके विराजाभिमानी देवताकोजी॰॥१०॥ एन्द्र देवता एकादशाक्षरात्मक छन्द करिके त्रिष्टुप छन्दाभिमानिनी देवताकोजी॰॥११॥ विश्वे देवा द्वादशाक्षरात्मक छन्द करिके जगती छन्दाभिमानिनी देवताकोजी॰॥१२॥३३॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम्प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम्॥ ३४॥†

वसु देवते त्रयोदशाक्षरात्मक छन्द करिके त्रयोदश स्तोमकोजी॰१३॥ रुद्र देवते चतुर्दशाक्षरात्मक छन्द करिके चतुर्दश स्तोमकोजी॰॥१४॥ आदित्य देवते पञ्चदशाक्षरात्मक छन्द करिके पञ्चदश स्तोमकोजी॰॥१५॥ अदिति देवमाता षोडशाक्षरात्मक छन्द

† मि-मू।अ॰।व-मू।इ॰।इ-मू।उ॰।वि-मू।ऋ॰॥३३॥ † व-मू।अ॰।रु-मू।इ॰।आ-मू।उ॰।अ-मू।ऋ॰।प्र-मू।लृ॰॥३४॥

करिके षोडश स्तोम कोजी॰॥१६॥ प्रजापति सप्तदशाक्षरात्मक छन्द करिके सप्तदशाख्य स्तोम कोजी॰॥१७॥३४॥ इतिगिरिधरभाष्येषष्ठोनुवाकः॥ ॥ इतिवाजपेयमंत्राः समाप्ताः॥

अथराजसूयोवरुणस्यार्षं

अ॰७ एषते॥ एषतेनिर्ऋते भागस्तञ्जुषस्वस्वाहाग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्योदेवेभ्योदक्षिणसद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा॥३५॥ +

का॰१५॰१॰८॰१०॰ फाल्गुण्याद्य दशमी विषें अनुमती के अर्थ अष्टाकपाल पुरोडाश होताहै तिसके अर्थ ग्रहण किये हविके पेषण समय दृषत् के नीचे निहित शम्या के पीछिले भाग विषें गिरा जो तण्डुल पिष्ट रूप हवि तिसे स्रुवा में रखि दक्षिणाग्नि से उल्मुक ले दक्षिण दिशा में आप जा स्फुटित भूभाग वा ऊषर में उल्मुकाग्नि का स्थापन करि तिस हवि को होमें। एषते॰सा–उ॰ पृथिवीदे॰॥ हेनिर्ऋते पृथिवी यह पिष्ट रूप तेरा भागहै तिस भागको तू सेवन करि स्वाहा सुहुत मस्तु॥ का॰१५॰१॰२०॰ एवं वर्षकी इष्टी करिके पञ्चवातीयाख्य कर्मको कहितेहैं तत्र आहवनीय को प्रागादिदिशों और मध्यमें स्थापन करि स्रुवासे पांचो अग्नि विषें यथालिङ्ग होमें। अध्याय समाप्ति पर्यन्त देवा ऋषयः। दश यजूंषि देव देवत्या

+ए–हा॥ अ॰।अ–हा। इ॰। य–हा। उ॰वि–हा। ऋ॰। मि–हा॥ल॰। सो–हा क॰॥३५॥

नि १॰सा–उ॰२॰६॰ आसु–गा॰३॰७॰ सा–अ॰४॰५॰८॰ यजुः ९॰
सा–ज॰१०॰ सा–पं॰॥ पुरस्तात् जुहोति॥ अग्नि हैं नेता जिन्हों का ति
न्होंके अर्थ। पूर्व में रहते हैं तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा सुहुतम
स्तु॥१॥ दक्षिणेजु॰॥ यमहैं ने॰। दक्षिण में रह॰॥२॥ पश्चात्॥ विश्वे
देवा हैं ने॰। पीछे में रह॰॥३॥ उत्तरार्धे॰॥ मित्रावरुण अथवा मरु
त हैं ने॰। उत्तर में रहते हैं उत्तर भाग के अर्थ॰तिनदे॰॥४॥ मध्येजु॰॥
सोम हैं नेता॰। ऊपर रहते हैं। परिचर्यावान् अथवा दुवः शब्देन ह
व्यं हव्य वान् तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा सुहुत मस्तु॥३५॥

ये देवाः॥ ये देवाऽअग्नि नेत्राः पुरः सदस्तेभ्यः स्वाहा ये
देवाय मनेत्रा दक्षिणा सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेव
नेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रा वरुण नेत्रा
वामरुन्नेत्रा वोत्तरा सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोम नेत्राऽ
उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा॥३६॥

का॰१५॰१॰२१॰ पञ्चधा विभक्त आहवनीय को एक करि ये देवा इन
पांच मन्त्रों से प्रत्येक को होमें॥ जिन देवताओं का अग्नि हैं नेता पूर्व में
स्थान तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा॥६॥७॰८॰ मित्रावरुणनेत्राः॰
मरुन्नेत्राः इति मंत्रयोविकल्पः ९॰१०॰ चतुर्णां पूर्ववद्व्याख्या॥३६॥

अग्ने सहस्व॥ अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य॥
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि॥३७॥

का॰१५॰२॰५॰ अपामार्ग के तण्डुलों के होमार्थ दक्षिणाग्नि में उल्मु
क का आदान करे॥ अग्नि देवत्यानुष्टुप् भारद्वो देवश्रवा देववात

दृष्टा॥ हे अग्ने तू शत्रु सेनाका सहस्व-अभिभव। तथा शत्रुओंको निवर्तकरि। किंच यज्ञनिर्वाहक यजमानकें अन्न स्थापनकरि। कैसा है तू कि कोई भी तरने को समर्थ नहीं होता अर्थात् अशक्य प्रतिक्रियः-दुर्निवारः। शत्रुओं को तरता अर्थात् विनाशकरता॥ ३७॥

देवस्यत्वा॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्॥ उपाꣳशोर्वीर्य्येण जुहोमि हतꣳरक्षः स्वाहा रक्षसान्त्वा वधाय वधिष्म रक्षोवधिष्मामुमसौ हतः॥ ३८॥ †

का॰ १५.२.६. प्राक् वा उदक् चलि ग्रहण किये उल्मुक को स्थापन करि स्रुवा से अपामार्ग तण्डुलों को होमें। देवस्यत्वा प्रा-ह॰ व्याख्याता १.१०.॥ उपाꣳशोः १. आसु-गा॰२. या-उ॰३. सा-उ॰ त्रीणि रक्षोघ्न देवत्यानि॥ उपाꣳशु नाम प्रथम ग्रह तिसकी सामर्थ्य से होमकरता हूं अत एव राक्षसजाति हैं तम् स्वाहा सुहुतं हविरस्तु॥ १॥ का॰ १५.२.७. जिस दिशा में होम करें तिस दिशा प्रति स्रुवा को डाले॥ राक्षसों के वधके अर्थ तुमें डालताहूं इति शेषः॥ २॥ का॰ १५. २.८. अध्वर्य्वादिक पीछे को न देखते देवयजन प्रति आवें॥ राक्षसजाति को हमने मारा असुमिति शत्रु नाम ग्रहणम् आसावितिच दुर्योधन हमने मारा-दुर्योधन हम करिकै मारागया॥ ३॥ ३८॥

अ॰८ सविता त्वा सवानाꣳसुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳसोमो वनस्पतीनाम्॥ बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्म्मपतीनाम्॥ ३९॥

† दे-मू॰। अ॰। उ-हा। इ॰। र-या। उ॰। अ-त॥। त्र॰॥ ३८॥

का॰१५.४.१३–१५॰आठ देवताओंके हवि तहां अन्तके वरुणायध
मेपतये इस वारुण चरुसे चरिके यजमानके पासजा स्रुचिकोसव्य
हाथमेंकरि तिसकी दक्षिण बाहुको ग्रहणकरि सवितात्वेतिकंडि
का इयरूपमंत्र को कहै ~ मंत्रविषें यथास्थान यजमान औरतिसके
मातापिता जिस जानपदकी जातिका तिन सबोंके नाम ग्रहण करें॥
अति जगती यजमान देवत्या॥सविता आज्ञा ओंके आधिपत्यवि
षें हे यजमान तुम्हें प्रेरणकरै अर्थात् सबोंके आज्ञादानविषेंअ
धिकारीहो। अग्निगृहस्थानोंके आधि॰। सोमवृक्षोंके आधि॰।
अर्थात् सबवृक्ष तेरे उपकारक हों। बृहस्पति वाचा पाण्डित्य केआ
धिपत्य॰। इन्द्र देवता ज्येष्ठ भावके अर्थ तुम्हें॰। रुद्र पशुओंके अ
र्थ वा पशुओंके आधिपत्य॰। मित्र देवता सत्यवाक्य के अर्थ सत्य
बोलनेको तुम्हें॰। वरुण धर्मेश्वरों(धर्मशीलों) के आधि॰ सवित्रादि
अष्टदेव हवियोंके दाता तुम्हें अनेक आधिपत्यदें इतिवाक्यार्थः॥३९॥

इमंदेवाः॥ इमन्देवाऽअसपत्नꣳसुवध्वम्महते क्षत्रायम
हते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय॥ इममुम
ष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोमी राजा सोमोस्माकं
ब्राह्मणानाꣳराजा॥४०॥ इतिसंहितायामष्टमोनुवाकः

इतिश्रीशुक्लयजुषिमाध्यन्दिनीशाखीयायां वाज
सनेयसंहितायां दीर्घपाठे नवमोध्यायः॥९॥

अत्यष्टिर्यजमानदेवत्या। हे सवित्रादिदेवताओ इस अमुक युधि
ष्ठिर संज्ञक यजमानको शत्रुरहित करिके प्रेरणकरो किमर्थं कि

वडीक्षत्र पदवीके अर्थ वडेज्येष्ठभावके अर्थ। इन्द्री (वीर्य/आत्मज्ञान सामर्थ्य) के अर्थ इस यजमान को प्रेरौ। कैसाहै यह पाण्डुका पुत्र कुन्ती देवीका पुत्र। इस कौरवी प्रजाका अधिपति इति शेषः क्षत्रिय कुरुजातिका हे कुरुजाङ्गलिऔ तुम्हारा यह युधिष्टिर देव वर्मा राजा है। हम ब्राह्मणों का सोम (चन्द्र वा वल्लीरूप सोम) राजा प्रभु है ॥४०॥ इतिगिरिधर भाष्येष्टमोनुवाकः ८

श्रीवेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्च तुरोदेयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्ये तृव्याघ्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव वर्म्मा ज रौक्मिरण्य नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये वाजपेयो राजसूयान्त वर्णनो नाम नवमोध्यायः॥९॥

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं ह्रि रूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १

अ॰१ अपोदेवाः॥ अपोदेवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्ज्जस्वती राजस्वश्चितानाः॥ याभिर्म्मित्रा वरुणा वभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः॥१॥ ॐ नमो याज्ञवल्क्याय॥

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थ प्रदीपके
चरक सौमण्यन्तो दशमोध्याय इर्य्यते

नवमे अध्यायमें वाजपेय और राजसूय संबंधी कुछएक कर्मक
हा दशमें में अभिषेकार्थजलादानादि राजसूयका शेष और चरकसौ
त्रामणीकहितेहैं॥ तत्रका॰१५.४.२१.–२४. इडाग्रहणकार्यशेषोपलक्ष
णहैदेवताओं के हविका भाग परिहरणान्त किये पीछे वक्ष्यमाणप्र
कारसे वक्ष्यमाण जल औदुम्बर हृक्षपात्र विषें ग्रहण करै तत्रविशे
षः यथा नैमित्तक (अन्तरिक्षसे आतप वर्षा) द्रुष्वा गोरुल्व्या इ
त्यादि ते राजसूयसे पहिलें सम्पादन करि तिन्हों को यूपके उत्तर
करि ग्रहणकरैः तिन आतपवर्षणादिकोंके निमित्तके अभाव
में इत्तर अनैमित्तिकी जल प्रति जाकर तिसे ग्रहणकरैः तत्रमंत्रा
नाह॰ का॰१५.४.४३. अपो देवाः इस से सरस्वती नदी संबंधिनीज
लको ग्रहणकरै। अब्देवत्या त्रिष्टुप्॥ इन्द्रादिक देवता जिस जल
को ग्रहण करते हुए। कैसी है जल कि मधुस्वादोपेत। तथा विशि
ष्टान्नरसवती। नृपोंकी उत्पादन करने वाली। चेतयमाना॰ सदै
वत होने से परिहृष्टकारिणी। पुनः ता एव विशिनष्टि॰ जिसजलसे
देवता मित्रा वरुण का अभिषेक करतेहुए। जिस जल करि देवता
इन्द्रके शत्रुओंको अत्याक्रमण करते हुए। तिस जल को ग्रहणक
रताहूं इति शेषः॥१॥

वृष्णऽऊर्मिः॥ वृष्णऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वा
हा वृष्णऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मै देहि॥ वृषसे
नोसि राष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृषसेनोसि राष्ट्रदारा
ष्ट्रममुष्मै देह्यर्थेतस्थ॥२॥ +

+ वृ–हा॥–अ॥ह–हि॥ वृ॥ह–हा॥ अ॥ह–हि॥ त्रद्र॥२॥

का॰ १५॰ ४॰ ४४॰ ।। १५॰ ४॰ २६॰ सारस्वती जलके लियेपीछे उत्तर षोड
श जलों विषें वृष्णः ऊर्मिः इत्यादि स्वाहान्त पूर्व-पूर्वमन्त्रोंकरिग्र
हण किये चतुर्गृहीत आज्य से होमें उत्तर स्वाहा हीन मन्त्रोंसे क्रम
पूर्वक ग्रहण करे उत्तर मन्त्रों में अमुष्मै इस पद के स्थान चतुर्थ्य
न्त यजमान का नाम लेना वृष्णः ऊर्मि से ले विश्वभृतस्थ पर्यन्त
मन्त्र संहिता में दोवार पढे गये तिन्होंमें पूर्व-पूर्व स्वाहान्त तिन्हों से
आज्य होमहै उत्तर-उत्तर स्वाहा हीन तिन्हों से जलों का आदान
तहां जाकर पशु वा नर से जो पूर्व अपर कल्लोल तिसे होमिके ग्रहण
करे इति सूत्रार्थः ॥ वृष्ण ऊर्मिरसीत्यादीनि आपः स्वराजस्थ इत्य
न्तानि लिङ्गोक्त देवतानि। अ॰ इ॰ प्रा-अ॰। हे कल्लोल तू सींचने
वाले पशु वा नरका संवंधी कल्लोल है। स्वभाव सेही देशप्रद है अत
राष्ट्र मेरे अर्थ दे स्वाहा हविर्दत्तमस्तु। एवं हुत्वाथ गृह्णाति। वृष्णऊ
र्मिरसि राष्ट्रदा अतः यजमान (युधिष्ठिर) के अर्थ जनपद दे। अमु
ष्मै इति चतुर्थ्यन्तं यजमान नामग्राह्यम् ॥१॥ एवमुपरितना आ
पमंत्राख्याख्येयाः॥ अपरोर्मिं गृह्णाति। उ॰ ऋ॰ आसु-गा॰। वृषसेनो
सि वृषा- सेचन समर्था सेना जलराशि रूपा जिसकी वोह वृषसे
न सि इं व्याख्यातम् ॥२॥२॥

अर्थेतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहार्थेतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममु
ष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वतीस्थ राष्ट्र
दा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त
स्वाहापः परिवाहिणीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापाम्पतिर

सिराष्ट्रदाराष्ट्रम्मेदेहिस्वाहापाम्पतिरसिराष्ट्रदाराष्ट्रममु
ष्मैदेह्यपाङ्गर्भोसिराष्ट्रदाराष्ट्रम्मेदेहिस्वाहापाङ्गर्भोसिरा
ष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मैदेहिसूर्य्यत्वचसस्थ॥३॥+

का॰१५।४।२७।नद्यादिप्रवाहस्थाजलग्रहणकरै॥अ॰द्व॰सा–उ॰।
प्रयोजन को उद्देशकरि नद्यादि के सकाशसे यज्ञ देशको जाती–
हैं तुम देशकी देनेवाली हौ मुझै राष्ट्रदो बहुवचनम् व्याख्यात
म् ॥३॥ का॰१५।४।२८ बहती हुई तिस प्रतिचले तिन्हों के होमा
दा ॥ उ॰ऋ॰आसु–गा॰हेजल तुम वल युक्त हौ॥४॥का॰१५।४।
२९। ती हुई जल मध्याद्यामार्गान्तर से चलि करि फिरितहांमिल
तीं के होम आदान विषें॥त्रृ॰आ॰सा–द्व॰हे जल तुमसर्व
तो वहन शीलाहौ॥५॥का॰१५।४।३० समुद्र के जल के होम आदा
॥द्व॰ऊ॰सा–अ॰।जलोंका स्वामीहै॥६॥का॰१५।४।३३ नद्या
दिक में जहां जल का भ्रम तिस के होम॰॥ऋ॰त्रृ॰आसु–गा॰
हे जल के भ्रम तूजलका मध्यवर्तीहै॥७॥३॥

सूर्य्यत्वचसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस–
स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्य्यवर्चसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे
दत्त स्वाहा सूर्य्यवर्चसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तमान्दास्थ
राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा मान्दास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैद
त्त व्रजक्षितस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा व्रजक्षितस्थरा
ष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहाव
शास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे

हा॰अ–ता॥द्व॰अ॰पो॰उ॰।ऋ॰आ२त्रृ॰आ॰।अ२द्व॰ऊ॰।अ२ऋ॰त्रृ॰॥३॥

दत्तस्वाहा शविष्ठास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्करीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शक्करीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्मै दत्त जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्मै दत्त विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराजस्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्मै दत्त ॥ मधुमती र्म्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्महि क्षत्रं क्षत्रियायवन्वाना ऽ अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महिक्षत्रङ्क्षत्रियायदधती॥४॥†

का०१५·४·३४· वहती जलमें जो स्थिरा सदा घर्ममें वर्तमान तिन्होंके हो०॥ अ०इ० उ० ऋ० सा- अ० । हे जल तुम सूर्य की त्वचा हो कारण यह कि सदा ताप में वर्त्तमान हैं ॥ ८॥ का० १५·४·३५· आतप घाम में वरसती पहिले सम्पादन की हुई जलको यूपके उत्तर से तिन्हों केहो०॥ सूर्यकेतेजयुक्त हौ॥९॥ का०१५·४·३६ तडाग के जलके हो०॥ लृ० आ० आसु- अ० । हे जल तुम मोद कराने वाली हो (प्राणी मोदित होते हैं- वहुत जल होंने से ॥ १०॥ का० १५·४·३७· कूपके जल०॥ इ० ऊ० आसु- गा०। हे जल तुम व्रजक्षित हो व्रज इति मेघ नाम सु निघं० १·१०· पठितम् अत्र तु वहुत जलधारण की सामर्थ्य से कूपकहते हैं कूपमें निवास करती हो ॥ ११॥ का० १५·४·३८· तृणके अग्रमें स्थित जल वस्त्र करि गृहण किये (ठार) को यूपके उत्तर करि हो० ऋृ० लृ० आसु अ०। अन्न का हेतु होनें से नर का मना करते हैं (वश कान्तौ) तुमवाशा हो॥१२॥ १५·४·३९· मधुके हो०॥ क० च०। हे मधु रूपा जल तू वल दे-

† सू० अ० इ० सृ० ऊ० ऋ० मा० लृ० आ०। व्र० ई० ऊ० वा० ऋृ० लृ० श्र० क० च० श्र० ट० त०ज० प० ख० वि० छ० ठ० अ० आ- ना० थ० म- ना० फ० अ- ती० ग० ॥ ४॥

नेवाली हौ त्रिदोष बल शमनत्वाद्बलकरं मधु॥१३॥का०१५.४.४०.
प्रसूयमान धेनुके गर्भबेष्टन सैं उठे जल को कि जो पूर्व गृहीत है यूप
के उत्तर करि होम॥पा॥र्ट०त०॥ वाहदोहादि करि जगत के उद्धार
करने को समर्थ गौ तिन्ह संबंधिनी हो॥१४॥का०१५.४.४१.दु
ग्धके हो०॥प०रव०छ०ठ० आसु-गा०।हे जल तुम बालभाव में ज
न जन्तुओं को पोषते हो॥१५॥का०१५.४.४२. घृत के होम आदान
विषें॥ हे घृत रूपा जल तुम समस्त जगत देवादिकों को धारणक
रते हो शिष्टं समानम्॥१६॥का०१५.४.४५. आपः स्वराज. इससे
मरीचि,रविकरतप्ता जल को अञ्जलि से ले पूर्व ग्रहण किये
हुए जलों में डाले प्रति ग्रहण में मन्त्रः संसर्ग चुपके से॥ न यहां
पर होम षोडश आहुति होमें सारस्वती और मरीचि दोनों कोन
होमें. शत०५.३.४.२३. षोडा हुती रित्यादि॥ मन्त्रार्थः॥ प्रा-अ०
हे जल मरीचि रूपा तुम आपही से राजमान अनन्याश्रित हो
राष्ट्रदा अतः युधिष्ठिर राजा के अर्थ राष्ट्र देओ॥का०१५.४.४६.
मधुमती. इससे सरस्वत्याद्या जलों को उदुम्बर काष्ट के पात्र में ए
क करे॥ अब्देवत्यं यजुः। मधुमतीः,रसवती यह जल मधुरस्वादो
पेत जलों के साथ एक हो। कैसी है यह महत्क्षत्र बल को राजा यज
मान के अर्थ देती है॥का०१५.४.४७. अनाधृष्टाः से औदुम्बरपा
त्र में एकी किये ते जल मैत्रावरुणधिष्ण्य के अग्र सद में स्थापनक
रे। सा-त्रि० अब्देवत्यम्॥ हे जल तुम तिष्ठो। कैसे हो तुम कि राक्ष
सों से अपराभूत हो। बल युक्त हो। तथा महत् क्षत्र बल को क्षत्री

राजा के अर्थ स्थापन कर्त्ता हो ॥ ४ ॥

अ॰ २ सोमस्य त्विषिं ॥ सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् ॥ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहांशाय स्वाहा भगाय स्वाहार्य्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥ +

का॰ १५॰ ५॰ १॰ मैत्रावरुण धिष्ण्यके आगे आसादित पालाशादि चारों पात्रों के पूर्व सोमस्य त्विषि से व्याघ्रचर्म बिछावै। आसु-गा॰ चर्म देवत्यम् ॥ हे चर्म्म तू सोम की दीप्ति है इस हेतु तुम्ह जैसी मेरी कान्ति होय तब वै सोम इत्यादि शत॰ ५॰ ३॰ ५॰ ३॰ ॥ का॰ १५॰ ५॰ ३॰ ३४॰ पार्थ संज्ञिक द्वादश मन्त्रों के बीच अग्नये इत्यादि षट् मंत्रों से अभिषेक की आदि में होम करै। इन्द्रायेत्यादि षट् से अभिषेक के अन्त में सकृद्गृहीत आज्य से होमें। लिङ्गोक्तानि द्वादश १॰ २॰ ३॰ ७॰ ८॰ ९॰ १०॰ ११॰ १२॰ दे-पं॰ ४॰ दे-त्रि॰ ५॰ दे-बृ॰ ६॰ दे-ज॰ ॥ गतिवान् अग्निः ॥ १ ॥ सुनोति सोमः ॥ २ ॥ सुवे वा प्रेरे सविता ॥ ३ ॥ प्रवाहवती सरस्वती ॥ ४ ॥ पुष्टि करने वाला ॥ ५ ॥ बृहत् सोमों का पति ॥ ६ ॥ इंदति ईष्टे ॥ ७ ॥ शब्दं करोति ॥ ८ ॥ जनों से कीर्त्तन किया गया ॥ ९ ॥ पुण्य पाप के विषें फलदान से विभाग करने वाला ॥ १० ॥ सेव्यते स भगः ॥ ११ ॥ व्याप्नोति विश्वम् ॥ १२ ॥ एतेभ्यः सुहुतमस्तु ॥ ५ ॥

पवित्रे स्थः ॥ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः ॥ अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥ +

+ सो-नृ॰ अ॰ । अ-हा । दू॰ सो-हा । उ॰ स-हा । त्र॰ लट॰ पू-हा । गा॰ बृ-हा । ऊ॰ घो-हा । त्रि॰ श्लो-हा । ल्ट॰ अ-हा । क॰ भ-हा । च॰ अ-हा । ट॰ ॥ ५ ॥

+ प-व्यौ । अ॰ स-भिः । दू॰ अ-स्वः । उ॰ ॥ ६ ॥

का० १५·५·४· प्रकृतिवत् पवित्रेस्थ इस से पवित्री करितिन्होंमें सवर्ण बांधै ॥ व्याख्याता दे- ज० १·१२· ॥ का० १५·५·५· हिरण्य सहित म पवित्रियों से मैत्रा वरुण धिष्णय के आगें आसादिता औदुम्बर पात्रस्था जलका सवितुरित्यादि राजस्वः इत्यन्त मन्त्र से उत्पवन करै ॥ भा-पं० अनिभृष्टम् यजुः अब्देवत्यम् ॥ सर्वो के प्रेरक परमेश्वर की अनुज्ञा विषें स्थित जोमें सो छिद्र रहित पवित्रीओंसे सूर्यकी किरणोंसेहेजलतुम्हें उत्पवन करताहूं ॥ अनिभृष्टमसि। आपोऽत्राभिधेयाः अतोऽनेक वचनान्ता मन्त्रावयवाः श्रुत्या वहु वचनान्ताः अतः श्रुत्यानुसारेण व्याख्याते। हे जल तुम राक्षसोंकर अपराभूत हो। वाणीके बन्धुभूतहो+। तथा अग्नि से उत्पन्न हुए है तप शब्द से यहां अग्नि लेंना॰ अग्नेर्वै धूमो जायत ऽ इति शत० ५·३·५·१७· वायोरग्निरग्नेराप इति तैत्तिरीयारण्यक ८·१। [illegible] की दान करने वाली हो। यदा वाऽ एनमिति श० ५·३·५·१८· स्वाहाकार से पवित्र हुई राज जनिका हो ॥६॥

सधमादो द्युम्निनी ॥ सधमादो द्युम्निनीराप ऽ एता ऽ अनाधृष्टा ऽ अपस्यो वसानाः॥ पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाꣳ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥७॥

का० १५·५·६· उत्पूता अभिषेक के अर्थ जल अभिषेकार्थ पालाश औदुम्बर वाट आश्वत्थ पूर्वा सादित चारों पात्रों विषें चारिविभाग करि ओजे। वरुण देवत्या त्रिष्टुप्। जे एता॰ जल वर्तेंहें कैसीकि सधमादः एक पात्र विषें हृष्यमान वा शीयमान। वीर्ययुक्ता*। रा

+ वाग्वै आपो [illegible] शत० ६·३·४·१६· आपोमयी वाग् [illegible]

* द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति यास्क नि रु० ५·५·

क्षसोंसे अनभिभूता। कर्मविषें साध्वीएँ। जे एवंविधाजल तिन्हों के भीतर में वरुण देव स्थान करताहुआ। कैसाहै वरुण कि जलोंका वालक-अपां वा शिशुरिति श॰ ५.३.५.१९. वरुणो राजसूयया जित्वादपां शिशुः। कैसा जल में कि पस्त्यासु + गृहरूपा में सवोंके आधारहोंने से गृहरूपा तथा अतिशयेन जगतके निर्माण करनेवलीमें॰

क्षत्रस्योल्वम्॥क्षत्रस्योल्वमसिक्षत्रस्यजराय्वसिक्षत्रस्ययोनिरसिक्षत्रस्यनाभिरसीन्द्रस्यवार्त्रघ्नमसिमित्रस्यासिवरुणस्यासित्वयायम्वृत्रम्वधेत्॥दृवासिरुजासिक्षुमासि॥पातैनम्प्राञ्चम्पातैनम्प्रत्यञ्चम्पातैनन्तिर्यञ्चन्दिग्भ्यःपात॥८॥ +

का॰ १५.५.१५. क्षत्रस्येति प्रति मन्त्रसे तार्प्य.पाण्डु. अधीवास. उष्णीष. को क्रम पूर्वक धारण करै॥ १५.५.७. तार्प्य, क्षौमके वल्कल वा घृताक्त वस्त्र कोधारणकरै॥ १. या-गा. तार्प्य देवतम् हे तार्प्य तू यजमान का गर्भाधारभूत उदकहै। यजमान गर्भस्थानीय हैं॥१॥ का॰ १५.५.१२. रक्तकम्बल कोधा॰॥ २.३.४. या-उ॰ २ पाण्डुदे॰ गर्भस्थानीय यजमान का गर्भवेष्टनचर्म हे पांडु तूहै॥२॥ का॰ १५.५.१३. अधीवास कञ्चुक को गल में वांधे॥ अधीवासदेव॰ हे अधीवास तू यजमान का गर्भ संभव स्थान योनिहै॥३॥ का॰ १५.५.१३.१४. उष्णीष-शिरके वेष्टन को शिरपे वांधि तिसके छोडों को नीवी में खुरसे वा नाभि परवांधे॥ उष्णीषदे॰ हे उष्णीषतू यजमान का नाभि(गर्भबंधन स्थान) है +॥४॥

+ पस्त्यमिति गृहनाम निघं॰ ३.४.पठितम्

+ नाभ्यां संनह्य गार्भं जायमान ऽस्याद् ॥ निरु॰ ४.२१.

+ क्ष-सि। अ॰। इ॰। ज॰। अर॰। इ-सि। ल्व॰। मि-सि। आ॰। त्व-तू। ई॰। द्द-सि। ऊ॰। रु-सि। अ॰। क्षु-सि। ल्व॰। पा-म्। क॰। च॰। पा-तू। ट॰॥८॥

का०१५.५.१७. इन्द्रस्य. इससे अध्वर्यु धनुषको चिल्ला चढावै॥ प्रा-गा० धनुर्दैवतम्। हे धनु तू इन्द्र का संबंधि वृत्र नाशक धनुष है- तिसे चढाता हूं इति शेषः॥ का० १५.५.१८. मित्रस्य. वरुणस्य इन दोनों मंत्रों से धनुष के बाहू प्रान्तों को हाथसे मांजै या-वृ० बाहु देवते। हे दक्षिण कोटे तू मित्र संबंधी है- हे वामकोटे तू वरुण संबंधी है॥ का० १५.५.१९. यजमान के अर्थ धनुष देवै॥ दे-ज० धनुर्दैवतम्॥ हे धनुः यह यजमान तुरू करिकै शत्रु को मारे॥ का० १५.५.२०. हवासीत्यादि तीनि मंत्रो से तीनि बाण ले कर पातैनमित्यादि तीनि मंत्रों से यजमान के अर्थ देवै॥ षड्यजूंषि इषुदेवत्यानि १.२.३. दे-अ०४. दे-पं०५. या-गा० ६. या-पं० हे इषो तू शत्रुओंको विदीर्ण करता है। हे इषोतू श० मङ्कर० हे। इ० कपाता है। हे इषुओ पूर्व दिशा में अवस्थित इस यजमान को पालन करो। पश्चिम दिशा में अव० इधर उधर में अव० और-और दिशाओं के विषें इससे रक्षाकरो॥ ८॥

आविर्मर्याः॥ आविर्मर्य्यो ऽआवित्तो ऽअग्निर्गृहपतिरावित्त ऽइन्द्रो वृद्धश्रवा ऽआवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा ऽआवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा॥ ९॥ +

का०१५.५.२१. इषुसमर्पण के अनन्तर में आविर्मर्या इत्यादि आवित संज्ञक सात मंत्रों को यजमान प्रति पढे॥ दे-वृ० प्रजापति दैव० मर्या इति मनुष्य नाम सु निघं० २.३. पठितम् है म

+ आ-यो॥ अ० आ-ति। इ० आ-वा॥ उ० आ-तौ। त्र० आ-दा। त्व० आ-वी। आ० आ-र्मा। इ॥ ९॥

नुष्य औ (ऋत्विज औ) तुम प्रकट हो औ अर्थात् भले प्रकार कर्म में उदित हो औ अथवा हे ऋत्विज औ यह यजमान प्रकट तुम्हारे समक्ष कहिता है इति शेषः ॥१॥ २·३·५·७·या-दृ०४·याज०६· आसु-अ० लिङ्गोक्त देवतानि। आविन्नो अग्निर्गृहपतिः। श्रुत्युक्ते विभक्ति व्यत्यये व्याख्यायते शत० ५·३·५·३१-३७ गृह पालक अग्नि के अर्थ यह यजमान आवित्तः आवेदितः ज्ञापितः ॥२॥ इद्ध है धन वा कीर्ति जिसकी तिस इन्द्र के अर्थ यह यजमान आवि०॥३॥ धारण करते हैं व्रत (कर्म †) तिन धारित कर्म मित्रा वरुणों के अर्थ०॥४॥ सर्वज्ञ पूषा के अ०॥५॥ सबों का सुख होता है तिन्हों से तिन द्यावा पृथिवी के अ०॥६॥ बडा है शर्म शरण वा सुख जिसका तिस अदिति के अर्थ यह यज०॥७॥ यद्वा यथा श्रुत मेव व्याख्या गृह प्रति रग्नि रावित्त आवेदितोयं यजमानमिति शेषः एवमग्रेपि॥९॥

† निघं० २·१ कर्मनाम

अ०२ अवेष्टादन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ सामत्रिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणन्दक्षिणामारोह ॥१०॥ †

का० १५·५·२२· सद के समीप उपविष्ट दीर्घकेश नर के मुख विषें अवेष्टा से ताम्र डाले॥ मृत्युनाशनं यजुः। अत्यन्त दशनशीला० मृत्यु के हेतु सर्प सदृश यज्ञ के विघ्नकारी राक्षसादिक नाशित हूजियो इति शेषः शत० ५·४·१·१· तद्यो मृत्युर्यो वधस्तमेवैतदतिनयतीति॥ का० १५·५·२३· यजमान के प्रति प्राची मा

† अ-काः। ऋ०। आ-मू। इ०॥१०॥

रो हेत्यादि यथालिङ्ग प्रति मंत्र को प्रति दिशि दिशा का आक्रमण करते पढ़ै ॥ पञ्च यजमान देवत्यानि १·३·४·५· यजूꣳषि आर्षी पं०। हे यजमान तू प्राची दिशा का आक्रमण करि तुम्हैं से को छन्दों के मध्य गायत्री छन्द अवतु· रक्षाकरै। सामों के मध्य· अभित्वा शूरनो नुमः इति इस ऋचा से उत्पन्न रथन्तर साम छं० संहि० १·३·१·५·१–२·१·१·११·१· तुम्हैं रक्षा करै। स्तोमों के मध्य त्रिवृत्स्तोम रक्षा करै। ऋतुओं के मध्य वसन्त ऋतु रक्षा० ब्राह्मण जाति तेरे धन को रक्षा० अथवा धन रूप ब्राह्मण जाति त्वामवतु †। त्रिवृत्स्तोमस्य स्वरूपं सामब्राह्मणे पञ्चविंशब्रा० २·१· आम्नातम् तिसृभ्यो हिंकरोति स प्रथमया तिसृभ्यो हिंकरोति समध्यमया तिसृभ्यो हिंकरोति स उत्तमया द्युती त्रिवृतो विष्टुतिरिति। अस्यायमर्थः। उपास्मै गायतेत्यादीनि तृचात्मकानि त्रीणि सूक्तानि सन्ति ऋ० संहि० अष्ट० ६·७·३६· मं०९·१· प्रतिन्हों में तीनि ऋचाओं से गान करै। किन तीन्यों से कि प्रथमया तीनों सूक्तों में जो पहिली तिसै सो उद्गाता गावै तैसे ही तीनों से गीत होता है इति प्रथम पर्यायः दूसरे पर्याय में सूक्त त्रयगत मध्यमाओं से गावै। तीसरे में उत्तमाओं से गावै। इस प्रकार से त्रिवृत्स्तोम संबन्धिनी विशिष्टा स्तुति उत्पन्न होती है अर्थात् सो यह स्तुति उद्यति इस नाम से कहिये है ॥१०॥

† ब्राह्मण्यादीनां धनसाधनत्वाद्धनत्वमुच्यते

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्साम पञ्चदशस्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम्प्रतीचीमारोह ॥११॥

अथद्वितियोमन्त्रः। हे यजमान तू दक्षिणदिशिमाक्रमः। त्रिष्टुपृछन्दः। त्वामिद्धि हवामहे इत्यस्यामृच्युत्पन्न बृहत्साम छं॰संहि॰ १·३·१·५·२–२·२·१·१२·१· पञ्चदशस्तोमः। ग्रीष्मऋतुः। द्रविणरूपंक्षत्रियजातिः। एते तुझैरक्षा करैं यद्वाक्षत्री तेरेधनको रक्षाकरें। पञ्चदशस्तोमस्त्वेवमाम्नातः पञ्चविं॰२·४· पञ्चभ्योहिङ्करोति सति सप्तभिः स एकया स एकया पञ्चभ्योहिंकरोति स एकयासति सप्तभिः स एकया पञ्चभ्योहिंकरोति स एकया स एकया सति सप्तभिः पञ्चपञ्चिनी पञ्चदशस्य विष्टुतिरिति। पूर्वोक्त त्रिवृत्स्तोम एकही तीनि सूक्तों सेनिष्पाद्य है परन्तु और स्तोम एकही तृचात्मक सूक्तसे निष्पाद्य हैं। तत्रायंक्रमः। प्रथम पर्याय में पांच आवृत्ति से तहां प्रथमा को तीनि वार गान करै दूसरी तीसरी को एक-एक वार। द्वितीयपर्याय में पहिली एकवार दूसरी तीनिवार तीसरी एकवार। तृतीयप॰ पहिली दूसरी एक-एक वार तीसरी तीनिवार यह पञ्चदशस्तोमसंवधिनी विष्टुति अर्थात् पञ्चपञ्चनि है॥११॥

प्रतीचीमारोह जगतीत्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदशस्तोमो वर्षाऽऋतुर्विड्द्रविणमुदीचीमारोह॥१२॥

तृतीयोमंत्रः। हे यजमान त्वं प्रतीचीदिशमारोह। जगती छन्द तुझैरक्षा करै। यद्द्याव इन्द्र ते शतम् इन ऋचाओं से उत्पन्न वैरूपसाम छं॰संहि॰१·३·२·४·६–२·२·२·११·१· सप्तदशस्तोमः। वर्षाऋतुः। वैश्यजाति लक्षण धन एते तुझै रक्षा॰ अथवा वैश्यजाति तेरे धन को रक्षा॰। सप्तदशस्तोमस्त्वेवमाम्नातः पञ्चविं॰२·७·

पञ्चभ्यो हिंकरोति स तिसृभिः स एकया स एकया पञ्चभ्यो हिंकरोति स एकया स तिसृभिः स एकया सप्तभ्यो हिंकरोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिर्दशसप्ता सप्तदशस्य विष्टुतिरिति। प्रथम पर्याये प्रथमा ३ मध्यमा १ उत्तमा १ द्वितीय प० प्रथमा १ मध्यमा ३ उत्तमा १ तृतीय प० प्रथमा १ मध्यमा ३ उत्तमा ३ वार गावे यह सप्तदशस्तोम की विविधा स्तुति अर्थात् दशसप्ता है॥१२॥

उदीची मारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ साम्मैकविꣳशस्तोमः शरदृतुः फलन्द्रविण मूर्द्धामारोह॥१३॥

चतुर्थो मंत्र॥ हे यजमान त्वमुदीची दिशमारोह। अनुष्टुप्छन्दः पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा इन ऋचाओं से उत्पन्न वैराज साम छं० संहि० १।५।१।२।८। एकविंशस्तोमः। शरदृतुः। यज्ञ फल लक्षण धन एते तुम्हें रक्षा करैं। एकविंशस्तोमस्त्वेवमाम्नातः पञ्च वि० २।२४ सप्तभ्यो हिंकरोति स तिसृभिः स तिसृभिः स एकया सप्तभ्यो हिंकरोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिः सप्तभ्यो हिंकरोति स तिसृभिः स एकया स तिसृभिः सप्त सप्तिन्येकविंशस्य विष्टुतिरिति। प्रथम पर्याये प्रथमा ३ मध्यमा ३ उत्तमा १ द्वितीय पं० प्रथ० १ मध्य० ३ उत्त० ३ तृतीय प० प्रथ० ३ मध्य० १ उत्त० ३ यह एकविंशस्तोम की विष्टुति सप्त सप्तिनी कहियेहै॥१३॥

ऊर्द्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते साम्मनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्च्चो द्रविणम्प्रत्यस्तन्नमुचेः शिरः॥१४॥†

† ऊ-म।अ०।प्र-र:।ह०॥१४॥

पञ्चमोमंत्रः। हेयजमानऊर्ध्वांदिशमारोह।पंक्तिःछन्दः। शोष्वस्मैपुरीरथ इन ऋचाओंसेउत्पन्न शाकर साम छं० संहि० २·१०·१·१४·१·रेवतीर्नःसधमाद इन ऋचाओंसेउत्पन्न रैवत साम छं० संहि० १·२·२·१·९–२·४·१·१४·१·। त्रिणव·त्रयस्त्रिंश स्तोमौ। हेमन्त·शिशिरौ ऋतू। वर्चः तेजवाब्रह्मतेज धनरूप एते तुम्है रक्षा करैं अथवा वर्चः तेजोभिमानी देवता तेरेधनकी रक्षाकरै॥ त्रिणव स्तोम एवमाम्नातःपञ्चविं० ३·१·नवभ्योहिंकरोति सतिसृभिः सपञ्चभिः स एकया नवभ्योहिंकरोति स एकया सतिसृभिः सपञ्चभिर्नवभ्योहिंकरोति सपञ्चभिः स एकया स तिसृभिर्वज्रो वै त्रिणव इति। प्रथम प० प्रथ० ३ मध्य० ५ उत्त० १ द्वितीय प० प्रथमा० १ मध्य० ३ उत्तम० ५ तृतीय प० प्र० ५ म० १ उ० ३ सोयह त्रिरावृत्त नव संख्योपेत त्रिणव नामक वज्र समान स्तोम है॥ त्रयस्त्रिंश स्तोम एवमाम्नातःपञ्चविं० ब्रा० ३·३·एकादशभ्योहिंकरोति सतिसृभिः स सप्तभिः स एकयैकादशभ्योहिंकरोति स एकया स तिसृभिः स सप्तभिरैकादशभ्योहिंकरोति स सप्तभिः स एकया स तिसृभिरन्तो वै त्रयस्त्रिंश इति। प्रथम प० प्र० ३ म० ७ उ० १ द्वितीय प० प्र० १ म० ३ उ० ७ तृतीय प० प्र० ७ म० १ उ० ३ गान करै सो यह त्रयस्त्रिंश स्तोम सब स्तोमोंका अन्त है॥ ॥का० ११·५·२४· जो व्याघ्र चर्म के पश्चाद्भाग में सीसा रखाथा तिसका आक्रमण करि पैर से पटकै। प्रत्यस्तमिति ग्रा–गा० असुर दैवतम्॥ नमुचि असुर का सीसा रूप मस्तक पकडकर फेंका॥२४॥

सोमंस्यत्विषिः॥ सोमस्य त्विषिरसि तवेव मेत्विषिर्भूयात्॥

मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥२५॥†

का॰१५.५.२५. अभिषेक के अर्थ राजा को व्याघ्रचर्म पर स्थापन करै ॥ चर्म देवत्यम् आसु-गा॰ व्याख्यातम् कण्डि॰५॥ का॰१५.५.२६. पादतल मे हिरण्य को करै। दै-त्व॰ रुक्म देव॰। हे सुवर्ण मृत्यु के सकाश से मुझे पालन करि॥ का॰१५.५.२७. नवछिद्र वा शत छिद्र सौवर्ण मण्डल को यजमान के शिर पर करै। या-यं॰ रुक्मदै॰॥ हे हिरण्य तू ओज अर्थात् अमुक को जीतूं यह मन की वृत्ति है। सह (शारीरबल) है अमृत (विना श रहित) है ॥२५॥

हिरण्यरूपाऽ उषसः ॥ हिरण्यरूपाऽ उषसो विरोकऽ उभाविन्द्राऽ उदिथः सूर्यश्च ॥ आरोहतम्वरुण मित्र गर्तन्ततश्च क्षाथा मदितिन्दितिञ्च मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥२६॥†

का॰१५.५.२८ यजमान बाहुओं को ऊंची करै। मित्रा वरुण देवत्या त्रिष्टुप् यजुरन्ता मित्रो सीति यजुः॥ हे वरुण शत्रु निवारक दक्षिण बाहो हे मित्र सखिवत्पालक वाम बाहो तुम गर्त (पुरुष) को आरोहण करो। बाहू वै मित्रा वरुणौ पुरुषो गर्त इति ५.४.१.१५. श्रुतिरध्यात्म विषयं व्याचष्टे। पुरुषारोहण के अनन्तर अखण्डिता अपनी सेना खण्डिता परसेना को क्रम पूर्बक अनुग्रह निग्रह दृष्टि से भले प्रकार देखो वे कौन कि दे दोनो रात्रि की समाप्ति में उदय करते सूर्योदय के अनन्तर अपने-अपने व्यापार मे प्रवर्तते हैं अर्थात् सूर्य और उदय ह दोनो का कार्य सम्पादन के अर्थ है। कैसे हो दोनों कि हिरण्य रूपौ सुवर्ण खचित कटकादि अ

†सी-त्रा॰अ॰। मृ-सि। दृ॰॥२५॥ †हि-चा॰अ॰। मि-सि। दृ॰॥२६॥

लंकार करि भासमान। तथा इन्द्रो सामर्थ्योपेन॥ एवमध्यात्ममर्थः अधिदेवं त्वयमर्थः॥ हेवरुण हेमित्र देवविशेष तुम गर्त(रथके उपरिभाग गर्तसदृश)को आरोहण करो पराये बाणों से रक्षा करने को चर्मकीलकादिकों से आछादित रथ का उपरिभाग गर्त सदृश होताहै रथकोभी गर्त कहितेहैं गृणाते स्तुतिकर्मण इतिनिरु०३·५·याकोंके गर्तोरथः। जोकि दोंनो उषःकालान्तर उदयहोतेहो सूर्य होनिकलतेहो। कैसेहो कि हिरण्यरूप अतितेजस्वि। इन्द्र परमेश्वर। ततः रथारोहण के अनन्तर अदिति अदीनविहित अनुष्ठानार औरदितिदीन नास्तिकहत्तको देखो अर्थात् यह पापी यह पुण्यवान् है॥ अमुमर्थं श्रुतिराह ५·४·१·१५· ततः यस्य तर्ह स्वचारणं चेत्येवैतदाहेति॥ का०१५·५·३८· अथवा मित्रोसीति मंत्र से वाहूऊंची करे॥ हे वामवाहो तू मित्र है हे दक्षिणतू वरुण है ॥१६॥

अ०४ सोमस्यत्वा॥ द्युम्ने नाभिषिञ्चाम्यग्नेर्ब्भ्राजसा सूर्य्यस्यवर्च्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण॥ क्षत्राणांक्षत्रपतिरेध्यतिदिद्यून्पाहि॥१७॥

इमन्देवाः॥ इमन्देवाऽअसपत्नꣳसुवद्ध्वम्महतेक्षत्राय- महते ज्यैष्ठ्याय महतेजानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय॥ इमममुष्यपुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएषवोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानाꣳराजा॥१८॥

का०१५·५·३०-३३· रुक्मसहित व्याघ्रचर्मपर प्राङ्मुख अवस्थित· राजाको पुरोहितादिक सान्मेसे खडेहो अभिषेककरें। पालाश· औदुम्बर· न्यग्रोध· आश्वत्थ· चतुर्विध अभिषेक जलपात्रोंस्थापनकि

येह्रु ओंसे। नत्रपालाशपात्र से पुरोहित अध्वर्यु अन्यतरः प्रथम अभिषेक करैं इतर स्वादिक पीछें स्वा राजाका भ्राता दूसरे औदुम्बर पात्र सें मित्र भूत कोई क्षत्रिय तीसरे से वैश्य चौथेसे। चारों अभिषेक करने वालों के क्रमसे सोमस्य १ अग्नेः २ सूर्यस्य ३ इन्द्रस्य ४ चारों मंत्र हें। अभिषिञ्चामि यह पद तीनों अगिले मंत्रों में जोडे। इम ममुष्य यह मंत्र प्रथम पुरोहित वा अध्वर्यु जैसे देवताओं के हवि में नाम ग्रहण युक्त पढे। प्रथम के ग्रहण से औरों को इम ममुष्य मंत्र शेष नहीं होता क्यों कि ब्राह्मणानार्ह राजा इस चिन्हके कारण॥ यजुः चतुर्णां मंत्राणां यजमानों देवता †॥ हे यजमान चन्द्रमाके यशसे तुझै अभिषेक करताहूं तिस से अभिषिक्त हो सब क्षत्रियों के मध्य क्षत्रियेश्वर हो॰ शत्रु प्रयुक्त बाणादिकों का अपसरण करिकै इस यजमान को हे सोम तू पालन करि॥१॥ इमं देवाः व्याख्यातापि ६॰४०॰ व्याख्यायते। हे सोमादिक देवताओ पाण्डु के पुत्र कुन्ती के पुत्र कौरवी प्रजा के अर्थ तिष्ठ होते इस युधिष्ठिर को शत्रुरहित करिकै बडे क्षत्र के अर्थ बडे ज्येष्ठ भावके अर्थ बडे जानपद के राज्यके अर्थ इन्द्र के ऐश्वर्य के अर्थ तुम प्रेरण करो हे कुरु जांगली औ यह युधिष्ठिर तुम्हारा राजा हम ब्राह्मणों का सोमराजा एतावन्तं मंत्रं पठित्वा पुरोहितो ध्वर्युर्वाभिषिञ्चेत्॥१॥ राजभ्रातु मंत्रमाह। हे यजमान अग्नि (वैश्वानर) के तेज से तुझै अभिषेक करताहूं अन्यत्पूर्ववत्॥२॥ राजमित्र मंत्रमाह। सूर्यके तेजसे॰ सर्वं पूर्ववत्॥३॥ वैश्यमंत्रमाह। हे यजमान इन्द्रके वीर्यसे॰ शिष्टं पूर्ववत्॥४॥ भ्रुत्यातुद्युम्नादि शब्दे वीर्याण्येव व्याख्यातानि॥१७॥१८॥

† उदाहरण सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चामि। क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून्पाहि॥१॥ अग्नेर्भ्राजसाभिषिञ्चामि। क्षत्राणां क्ष॰–पाहि॥२॥ सूर्यस्य वर्चसाभि॰। क्षेत्रा–पाहि॥३॥ इन्द्रस्येन्द्रियेणाभि॰। क्ष–हि॥४॥

प्रपर्वतस्य॥ वृषभस्यपृष्ठान्नावश्चरन्तिस्वसिचऽइयाना:॥ ताऽआवर्वृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिंबुध्न्यमनुरीयमाणा:॥ विष्णोर्विक्रमणमसिविष्णोर्विक्रान्तमसिविष्णो:क्रान्तमसि॥२५॥

का० १५.६.८. यजमान कृष्णविषाण से किये अभिषेक के शरीर संलग्नोदककरि अपने अंगको लीपै॥ अब्देवत्यात्रिष्टुप् नूपनी-स्तुति करने हैं स्तोत्र शस्त्र मंत्रों से यद्वा नुदन्ति- प्रेरणा करती हैं फल प्राप्ति के अर्थ वोह नाव अर्थात् आहुति परिणाम भूता जल आदित्य मण्डल प्रति जाती है। क्याकरिके कि वृषभस्य- वर्षने वाले अग्नि के पृष्ठ प्रदेश से उठि के इतिशेष:। कैसे वृषभके कि पर्वतस्य- पर्वाणि पौर्णमास्यमावास्याचातुर्मास्यादीनि विद्यमान हैं जिसमें तिसके। कैसीहै नाव कि अपने से सींचती है सबको। तथा इयाना- गमनशीला वोह ही आदित्य मण्डल को प्राप्तहो मध्यस्थान को आती है मध्यस्थान से पृथिवी को + वोह आदित्य मण्डलको प्राप्त होय अधराक् आवरवृत्रन् नीचेको लौटती हैं। कैसीहै वोह कि ऊंची गई हुई मेघको अनुसरण कराती है। कैसे मेघको कि अन्तरिक्षमें वर्तमान है॥ ॥यद्वायमर्थ:॥ पर्वत आदित्य को कहिते हैं वर्षनेवाले आदित्य के पृष्ठ से निकलती स्तुति रूपा जल सर्वत: जाती है कैसीहै कि स्वसिच- आप सेक्ता ‡ वोह उदक्ता(व्यक्ता) अन्तरिक्षस्थ मेघको प्रवेश करि प्रावृट् काल बिषें भूमि के प्रति आती हैं॥ ॥यद्वाऽयमर्थ ऋचोऽस्या:। वर्षने वाले पर्वत(हिमवान् विंध्यादिकों) के पृष्ठ से व

+ यदुक्तं मनुनाऽ० ३.६.७६. अग्नौ प्रास्ताहुति: सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टि र्वृष्टेरन्नंतत: प्रजा ७६

† प्र-स:॥ अ०वि-सि। इ०। उ० ऋ०॥ २५॥
‡ आदित्योपरिष्टादापोनाव्याउच्यन्ते तथाच शत०१०.५.६.२४. नाव्या आप इत्यादि॥

हती नाव (नौतयो गंगादि महा नदीएं) प्रचरती हैं स्वसिच अपने यजमान क्षेत्र को सींचती हैं वोह ही नाव अधस्तात् आव दृत्र राज सूय याजिके अर्थ आती हैं। कैसी हैं कि अभिषेक पात्र के विषे प्रक्षिप्ताः। तथा बुध्न्य (मूल प्रधान) अहि हन्ता (शत्रुओं के हन्ता य जमान प्रति सिच्यमान हैं॥ का० १५.६.७. अध्वर्यु यजमानसे व्या घ्रचर्म पर तीनि मन्त्रों करि तीनि वार पाद प्रक्षेप करावे। त्रीणि यज मान देवत्यानि १.प्रा-गा०२.या-उ०३.या-गा०॥ हे प्रथ म प्रक्रम तू विष्णु (व्यापन शील यज्ञ पुरुष जगदीश्वर त्रिवि मावतार) का विक्रमण (प्रथम पाद प्रक्षेप से जीता भूलोक) है॥१॥ हे द्विती य प्रक्रम तू विष्णु का विक्रान्त (द्वितीय पाद प्रक्षेप से जीता अन्तरिक्ष) है॥२॥ हे तृतीय प्रक्रम तू विष्णु का क्रान्त (तृतीय पाद प्रक्षेप से जी ता त्रिविष्टप) है॥३॥ इदं मन्त्र त्रयं लोक त्रय जये हेतु भूतं तित्तिरिराह विष्णुक्रमान् क्रमते विष्णुरेव भूत्वेमांल्लोकानभिजयतीति॥ तथा च शत० ५.४.२.६. इमे वै लोका विष्णो रित्यादि॥ १९॥

प्रजापते न॥ त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव॥ यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पिता साव॒स्य पिता वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा॥ रुद्र यत्ते क्रिवि परन्नाम तस्मिन्हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा॥ २०॥ +

का० १५.६.११. ततः सद से शाला में आकर पुत्र का स्पर्श करि शाला द्वारीय अग्नि विषें होमें। प्रजापति देवत्या त्रिष्टुब्यजुर्मध्या तृती य चतुर्थ पाद मध्ये यममुष्य यजुर्युक्ता॥ हे प्रजापते तुम्से अ

+ प्र-त्तु।अ०।अ-ता।इ०।के प्रा।अ०।स-हाउ०॥२०॥

न्य देवता विशेष इन सब नाना जनीय रूप वर्त्तमान भूत भविष्यत काल विषयों का परिभव करने को समर्थ नहीं हुआ अर्थात् तुमसे अन्य देवता इन भूतों के सृजनें और संहारने को अशक्त हैं अतः हम जिस काम से तुम्हें होमते हैं सो काम रूप फल हमारें हैं॥ यजुर्व्याख्यानोऽयममुष्य पितेति पुत्र को पित्री करिके तिन्हों का नाम ग्रहण करे यह अभिमन्यु अर्जुन का पिता। असावस्य पितेति यथा यथमेव नाम ग्रहः यथा॰ यह अर्जुन अभिमन्यु का पिता॥ सर्वथा पुत्रों सहित हम धनों के स्वामी होवें॥ का॰१५॰६॰१२॰ पालाश के अभिषेक पात्र करि अभिषेकोदक शेषों का आग्नीध्रीय अग्नि के उत्तरभाग विषें होम करै सा—त्रि॰रुद्र देवत्यं हेरुद्र जो तेरा क्रिवि(कर्त्तवा हिंसित)उत्कृष्ट नाम है।एवं रुद्रं संबोध्य होमद्रव्य मांह हेहवि तिस रुद्र नाम में तू हुत है और मेरे घर विषें इष्ट दत्त है स्वाहा सुहुत मस्तु॥ २०॥

अ॰५ इन्द्रस्य वज्रः॥ इन्द्रस्य वज्रोसि मित्रा वरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि॥ अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वारिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाममनसा समिन्द्रियेण॥२१॥

का॰१५॰६॰१५॰ वाजपेय में जैसे रथवाहण से रथ को इन्द्रस्य वज्रोसि इस मंत्र करि भूमि विषें अवतारि मित्रावरुणयोरिति मन्त्रेण चारों अश्वों से वाजपेयवत् जोड़े प्रत्यक्ष मन्त्रः इन्द्रस्य वज्रोसि यह मंत्र नहीं है वाजपेय संबंधी पूरा तावन्मात्र ही पाठ से—धूके ग्रहण किये को वेदी के दक्षिण श्रोणि देश विषें लाकर जोड़े पहिले दक्षिण को फिरि उत्तर को ततः दक्षिण प्रष्टि ततः सव्य प्रष्टि को अग्नि देश से तीनों के जोड़ने में

१ इ-सि।अ॰मि-ज्मि।इ॰अ-न॥उ॰म-प्या।इ॰आ-सा।ल॰।स-ण।सा॰॥२१॥

की प्राप्ति में चारों से जोडना यह उक्त है इति सूत्रार्थः॥ दे·–त्रि· रथ देवत्यं॥ हे रथ तू इन्द्र का वज्र है॥ जोडे। प्रजापत्यानुष्टुभ रथ देवत्यं मित्रा वरुण देवता ओं के प्रशासन से हे रथ तुझे जोडता हूं॥ का॰१५·६·१७ अव्यथायैत्वा इस से यजमान चात्वाल देशस्थ रथ को आरोहण करे। सा·–उ· रथ देवत्यं॥ अनुपहिंसित अर्जुन तुल्य इन्द्र† ऐसा मैं हे रथ तुझे अभय वा अन चलने और अन्न रस के अर्थ तुझे अधि तिष्ठूं हूं॥ का॰१५·६·१८·यजमान के साथ आरूढ यन्ता दक्षिणाश्व को कशा करि चलावे। या–द्व ध्धुर्य दैवतम्॥ हे धुर्यु मरुत देवता ओं की आज्ञा से तू शत्रु ओं को जीति इति शेषः॥ का॰१५·६·१९· पूर्व मेव आहवनीय के अन्तर से स्थापित गो ओं के मध्य तिस रथ को स्थापन करे। दे–त्रि· यजमान देवत्यम्॥ हम मनसा सह प्राप्त हुए (जो उपक्रान्त सो किया॥ का॰१५·६·२०·धनुष की कोटी से गो को यजमान स्पर्श करे। दे·पं· यजमान देव॰॥ हम इन्द्रियों (वीर्य) से संगत हैं॥२१॥

माते॥ मा तऽइन्द्र ते व॒यन्तु रा॒षा॒ड युक्ता॑ सो॒ऽअप्र॑ह्स॒ता॒वि॑दसाम॥ ति॒ष्ठा र॒थ॒मधि॒ यम्व॑ज्रह॒स्ता र॒श्मीन्दे॑व यमसे॒स्व॑श्वान्॥२२॥

का॰१५·६·२२· स्थापित गो ओं के पति (अपने भ्रातृ) के अर्थ तावत् शत वा अधिक और देके यूप से पूर्व दिशा में फेरि कर अन्तःपात्य देश विषें रथ को स्थापन करे। इन्द्र देवत्या त्रिष्टुप् संवरणः प्राजापत्य दृष्टा॥ हे वज्र हस्त हे दीप्यमान तू जिस रथ में बैठता है और जिस की रश्मियों का ग्रहण करि चलता है कैसी हैं रश्मी कि शोभन

† अर्जुनो ह वै नामेन्द्र इति श्रुतिः श॰५·४·३·७

हैं अश्व जिन्हों में। हे तुराषाट् (शत्रुओं के अभि भव करनेवाले) हे इन्द्र (ऐश्वर्य युक्त) तेरे हम तेरे तिस रथमें अयुक्ताः (तिससे भिन्न, विविध उपक्षीण) नहोंवें नत्र दृष्टान्तः अब्रह्मता लुप्तोपमानम् अ ब्रह्मनेव ब्रह्म विज्ञाना नन्द स्वभाव अनश्वर का भाव ब्रह्मता न हीं है ब्रह्मता वोह अब्रह्मता यथा ब्रह्मभाव से अन्य वस्तु विविध उप क्षीण एवं हम न होंवें ॥ २२॥

अग्नये गृहपतयो ॥ अग्नयै गृहपतये स्वाहा सोमाय व- नस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवि मातर्म्मा मा हिंसीर्म्मो अहन्त्वाम् ॥ २३॥ +

का॰ १५·६·२३· अग्नये गृहपतये· इन चारि रथ विमोचनीयनामा आहुतियों को होमें। १·२·या-पं॰३·४·या- अ॰ लिङ्गोक्त देवत्यानि॥ गृहाश्रम पालक अग्नि के अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु॥ वनस्पतिरूपी सोम के अर्थ हविर्दत्तमस्तु॥ इन्द्र संबधि वीर्य के अर्थ स्वाहा॥ मरुतोंसं वंधि बल के अर्थ हविर्द॰॥ का॰ १५·६·२४· रथस्थ एव यजमान भू मि को देखे। आसु- अ॰ भूमि देवत्यम्॥ हे जगत की निर्माण करनेवा ली हे पृथिवी (भूमे) तू मुझे हिंसा मत कर मैं भी तुझ पृथिवी को नहीं हिं सा करता॥ २३॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्॥ नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ २४॥

का॰ १५·६·२५· यजमान रथ से अवरोहण करै। सप्रपञ्च परब्रह्मा

+ अ- हा। अ॰सो- हा। इ॰म- हा। उ॰इ- हा। ऋ॰पृ- म्। ल॰॥ २३॥

भिधायिनी सूर्य्ये देवत्यातिजगती वामदेव दृष्टा॥ हंसः-अहंकारको ना
शकरता भगवान् आदित्य तिस प्रति अवतरताहूं इतिवाक्य शेषः
कैसा है हंस कि शुचिषत्-आदित्य रूपकरि दीप्ति में स्थित तथा वसुः
वासयिता-नरोंका प्रवर्त्तक अन्तरिक्षसत्-वायुरूपकरि अन्तरिक्ष
में रहता होता-देवताओंका आह्वान करने वाला। वेदिषत्-अग्नि
रूप करि वेदी में रहता। अतिथिः-सबों का पूज्य दुरोणसत्-आहव
नीयादि रूप करि यज्ञगृह में स्थित नृषत्-मनुष्यों में प्राणभाव करि र
हता। वरसत्-उत्कृष्ट स्थानों में रहता। ऋतसत्-यज्ञ में र०। व्योमसत्-
आकाश में मंडल रूपकरि र०। एवं सर्वत्र स्थितत्वेन स्तुत्वा सर्वत्रोत्पत्ति
द्वारेण स्तौति। यः-जो अब्जाः-जल में मत्स्यादि रूपकरि उत्पन्न होता
है। गोजाः-पृथिवी में चतुर्विध भूत ग्राम रूपकरि उत्पन्न होता। ऋ
तजाः-सत्य में उत्पन्न होता। अद्रिजाः-पाषाण में अग्नि रूपकरि
वा मेघ में जल रूपकरि उत्पन्न होता है। ऋतम्-सर्वत्र गत बृह
त्-महत्परिवृद्ध अपर्यन्त परब्रह्म रूप जो हंस तिस प्रति रथ से उत
रताहूं॥ यद्वा हंस शब्देन रथ उच्यते हंसः-पृथिवी को हन्ता-रथ
बृहत्-महत्प्रौढ ऋतं-यज्ञ को सम्पादन करे इति शेषः। कैसा है हं
स कि शुचिषत्-देव यजन वा रथवाहन में स्थित। वसुः-अपने ऊ
पर यजमान को वास कराता। अन्तरिक्षसत्-वृक्ष गुल्मादि क
रि अनवरुद्ध अन्तरिक्ष में स्थित। होता-होतृ समान कैसे कि वेदि
षत्-वेदी विषे स्थित। अतिथिः-अतिथिवत् पूज्य दुरोणसत्-य
ज्ञ गृह में स्थित। नृषत्-नरों में वाहकत्व करि स्थित। वरसत्-वर-श्रेष्ठ-

राज गृह में स्थित। ऋतसत्- वाजपेयादि यज्ञों में स्थित। व्योमसत्- सूर्य चलाने को आकाश में स्थित। अब्जाः- अप्सु योनि वी अश्व इस श्रुति से जल करि उत्पन्न अश्वोंकरि उपेत। गोजाः- वज्रसे उत्पन्न। इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्स त्रेधा व्यभवत्तस्य स्फ्यस्तृतीयं रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयमिति तैत्तिरीय श्रुतेः। ऋतजाः- यज्ञ को उद्देश करि उत्पन्न हुआ। अद्रिजाः- पाषाण सदृश काष्ठों से उत्पन्न॥२४॥

इयदसि॥ इयदस्यायुरस्यायुर्म्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्ज्जम्मयि धेहि॥ इन्द्रस्य वाम्वीर्य्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि॥२५॥+

का॰ १५। ६। ३२। शाला के दक्षिण भाग विषें स्थापित रथ वाहन के दक्षिण चक्र में बंधे शतमान शतरत्तिका निर्मित सुवर्णमणि को यजमान स्पर्श करै। हे द्वादशाक्षरे यजुषी शतमान देवते मिलित्वा साम्नीज॰॥ हे रुक्म तू इयदसि एतावत्परिमाण- शतरत्तिका परिमित है जीवन है तिस हेतु शत बर्ष परिमित आयु मेरें स्थापन करियो हि यदात्मकः स तद्दातु मुत्सहते यतस्त्वं शतमानमसि ततः शताब्द परिमित मायु र्मयि रोपय। युङ्ङसि- यज्ञ को संभार निचय वा दक्षिणदान करि युङ्- वर्चः- तेजस्वी है अतः मेरें तेज स्थापन करि॥ का॰ १५। ६। ३३। तिस शतमान को ब्रह्मा के अर्थ देकै पूर्वोक्त रथ वाहन में उपगूहिता औदुम्बरी शाखा को स्पर्श करै। प्रा॰ गा॰ शाखा देवत्यम्॥ हे औदुम्बरि शाखे तू अन्न रूपा है ततः अन्न मेरें स्थापन करि॥ का॰ १५। ६। ३४। अध्वर्यु यजमान की बाहुओं को व्याघ्रचर्म में

+इ- हि। अ॰। ऊ- हि। इ॰। इ- मि। ज॰॥२५॥

स्थापित मैत्रा वरुणी पयस्यामें नीची करै। यजुः बाहु देवत्यम्॥ की कारी इन्द्र (परमैश्वर्ययुक्त यजमान) के संबंधि हे बाहु औ में तुझे मैत्रा वरुणी पयस्या प्रति नीची कर्त्ताहूं॥२५॥

श्र०६ स्योनासि॥ सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि॥ स्योना मासीद सुषदा मासीद क्षत्रस्य योनि मासीद॥२६॥ †

का०१५·६·३६: ७·१ पयस्या के स्विष्टकृत होम से पहिले यजु करि बुनी खादिरी आसन्दी (मचिका) को व्याघ्र चर्म देश विषै मैत्रा वरुण धिष्ण्य के साम्ने रखे॥ आसन्दी देवत्यम्। हे आसन्दि तू सुख रूपा है। सुख से बैठने योग्य है॥ का०१५·७·२· आसन्दी पर वस्त्र बिछावै। अधीवासदेवतम्। हे अधीवास तू क्षत्रिय का मातृवत् रक्षक होने से योनि स्थान है॥ का०१५·७·३· आसन्दी पर यजमान को बिठावै॥ यजमान देवत्यं यजुः। हे यजमान सुख कारी आसन्दी को आरोहण करि सुख पूर्वक बैठने योग्य को आरोहण करि क्षत्रिय के स्थान आसन्दी को आरोहण करि॥२६॥

निषसाद॥ धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा॥ साम्राज्याय सुक्रतुः॥२७॥

का०१५·७·४· अध्वर्यु यजमान के हृदय को स्पर्श करे॥ वरुणदेवत्या गायत्री शुनः शेप दृष्टा। यह यजमान प्रजापर आधिपत्य करि निषसाद- उपवेश करता हुआ अर्थात् जो आसन्दी पर स्थापित हुआ वोह प्रजापर ही स्थापित हुआ। कैसा है यजमान कि धृतव्रत धारण किया है व्रत- यज्ञ लक्षण कर्म जिसने। अनिष्ट का हरिक

† स्यो-सि। अ०क्षि-सि। द्र० स्यो-द्र०·····॥

रनेवाला। तथा शोभन संकल्प वा शोभन मन्त्र। किसलिये निषसाद
[illegible] भाव के अर्थ ॥२७॥

अभि भूरसि॥ अभि भूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्ताम्ब्र
ह्मँस्त्वम्ब्रह्मासि सविता सि सत्यप्रसवो वरुणो सि सत्यौजा
इन्द्रो सि विशौजा रुद्रो सि सुशेवः॥ बहुकार श्रेयस्करभूय
स्करेन्द्रस्य वज्रो सि तेन मे रध्य॥२८॥†

[illegible]॰१५.७.५॰ यजमान के हाथ में द्यूतसाधन भूत सौवर्ण कपर्दक
[illegible] अक्ष देवे॥सा–उ॰ अक्षा यजमानो वा देवता। चारि अक्षोंकी क
त संज्ञा पांच में की कलि है जबकि पांचोंही अक्ष ऊँचे वा नीचे एकरू
प हो गिरते हैं तब डालनेवाले की जीत होती है तहां कलि सब अक्षों
का अभिभव कर्त्ता है तिस प्रति वा तिस संबंध करि यजमान प्रति कहि
ते हैं। हे अक्ष अथवा हे यजमान तू अभिभविता है। ये कपर्दिकोप
लक्षित पूर्वादि चार और ऊर्ध्व पांचो दिशा तेरे प्रयोजन समर्थ हों। क
लि के सर्वाक्षाभिभावक होनें और यजमान के जयापेक्षी होनें से पंचा
क्ष व्यापकत्व है इतिभावः॥ का॰१५.७.७–८॰ यजमान राज्यं मेऽस्त्वि
त्यादि द्रव्यों को प्रार्थना करि पांच वार ब्रह्मन् इस मंत्र से ब्रह्मा को आ
मंत्रण करे एवं आमंत्रित ब्रह्मा त्वं ब्रह्मासीत्यादि सवितासि १ वरु
णोसि २ इंद्रोसि ३ रुद्रोसि ४ इन मंत्रों से व्यत्यासं यजमान प्रति कहै
तिस करि चारो मंत्रों की आदि में त्वंब्रह्मासि यह प्रयोग है। व्यत्यासं
यह आदि विषें यजमान ब्रह्मन् इससे आमंत्रण करै॰ त्वं ब्रह्मासि
सवितासि सत्य प्रसव इति प्रत्याह ब्रह्मा। पुनर्यजमानो ब्रह्मन् इ

† अ–भि। अ०। ब्र–व:। इ०। व–जा:। उ०। इ–जा:। त्र०। रु–वः। ल०। ब–र। आ०। इ–ध्य। ई०॥

ति ब्रह्माण मामंत्रयते ब्रह्मात्वं ब्रह्मासि वरुणोसि सत्योजा इति प्रत्या
ह। पुनः० इन्द्रोसि विशोजा। पुनः० रुद्रोसि सुशेवः। और अन्तमें पञ्च
में प्रतिवचन को पहिले त्वंब्रह्मासीति इतनेही मन्त्र सेकरे इतिसूत्रा
र्थः॥ त्वंब्रह्मासि १० आसु-गा० २ या-उ० ३ ४ या-गा० १-५ पञ्च य
जमान देवत्यानि। आमन्त्रित ब्रह्मा यजमान प्रति कहै। हे यजमान
तू ब्रह्मा (महान्) है और प्रेरक है सत्य है अनुज्ञा जिसकी वोह॥१॥
द्वितीयं प्रत्याह। तू ब्रह्मा है वरुण (अनिष्टनिवारक) है अमोघ वी
र्य है॥२॥ तृतीयं। तू ब्रह्मा है ऐश्वर्यवान् है प्रजा विषें तेज है जिस
वोह है॥३॥ चतुर्थं। तू ब्रह्मा है रुद्र है हे राजन् तू शत्रुओंके रुलाने औ
र द्रुवाने से रुद्ररूप है। शोभन सुखकारी है॥४॥ त्वंब्रह्मासि इस इत
नेही मन्त्र से पांचमां प्रति वचन करै॥५॥ का० १५ ७ १०. यजमान औ
बहुकारेत्यादि सुमंगल नामा उपाधि दे बोले॥ या-ज० लिङ्गोक्तदेव
तम्। हे बहुकार बहुत कार्य करनेवाले श्रेयकरनेवाले भूयस्करः बहुतक
रनेवाले तिन्हों के संबोधन हैं हेबहुकारेत्यादि कल्याण नामन्ता
माह्वये तुम्हें आह्वान करते हैं इति शेषः॥ का० १५ ७ ११. पुरोहि
त वा अध्वर्यु यजमान के अर्थ द्यूत भूमि करने को स्फ्य देवै॥ या-त्रि
स्फ्य दैवतम्। हे स्फ्य तू इन्द्र का वज्र है, इन्द्रने जहाँ वृत्र के लिये वज्र
को मारा (इन्द्रोह यत्नेत्यादि शत० १ २ ४ १०) तिस का एक अंश रूप
है। तिस हेतु मेरे यजमान को वश वर्ति करि, कारण यह कि जो र
जा ब्राह्मण से अबल वोह वैरियों से बली होता है † यद्वा जैसे नृप
न्नरूप है तिस कारण मेरी द्यूतभूमि विषें परिलेखन रूप कार्य साधि॥ अन्न

† योवै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्योवै सबलीयान्भवतीति शत० ५ ४ ४ १५

अग्निः पृथुः॥ अग्निः पृथुर्धर्म्मणस्पतिर्जुषाणोऽअग्निः पृथुर्धर्म्मणस्पति राज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहा कृताः सूर्य्यस्य रश्मिभिर्यतद्धꣳ सजातानां मध्य मेष्ठ्याय॥२९॥†

का॰१५॰७॰१५॰ ऐसें की हुई घृत भूमिविषें सुवर्ण रखि तिस परचतुर्गृहीत आज्य को होमें॥ आ-त्रि॰ अग्नि देवत्यम्। अग्नि आज्य को पिओ स्वाहा सुहुत मस्तु। कैसा है अग्नि कि देवताओं में विशाल। तथा जगत के धारण वा धर्म का स्वामी। प्रीतिमान वा हूयमान हवि को सेवमान। अग्निः पृथुः धर्मणस्पतिरिति पुनः पाठः आदरार्थः॥ का॰ १५॰७॰१६॰ पूर्वोक्त पांचो अक्षों को भूमि में डाले॥ सा-त्रि॰ अक्ष देवत्यम्। हे अक्षओ तुम स्वाहा पूर्वक आहुति करि तर्पण किये हुए सूर्य की किरणों से स्पर्धा करो और सजातानां- समान जन्मा भाई क्षत्रियों के मध्यम प्रदेश विषें यजमान के स्थान के अर्थ यत्न करो अर्थात् यजमान को सर्व क्षत्रिय श्रेष्ठ करो॥२९॥

अ॰७ सवित्रा प्रसवित्रा॥ सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्प्पामि॥३०॥

का॰ १५॰८॰१६॰१७॰ ऋत्विज और अन्य विप्र मिलकर शत संख्या कही दशपेय याग के सौत्य दिवस विषें प्रातिसवन सर्पण से पहिले अपने-अपने सोम याजि दश पित्रादिकों के गण गिनि कर अमुक प्रथमः सोमपः असौ दूसरा असौ तीसरा इत्यादि दश पर्य

† अ-हा। अ॰। स्वा-य। दू॰॥२९॥

न्त सोमयाजियों को गिन के विभूरसीत्यादि सर्पण ५॰३१॰धिष्ण्योपस्था
न करते हैं भक्षण काल विषें सर्पण वासदः प्रवेश। पक्षान्तरमाह स
वित्रेति यद्वा सवित्राप्रसवित्रेत्येक कण्डिकात्मक अनुवाक कोपठिक
र शत १०० विप्र सर्पण करते हैं॥ सवित्रादि देवत्या अत्यष्टिः। दशदेव
ताओं करि आज्ञा पाया में सर्पण करता हूं। प्रत्येक पाठ देकबचनं
सर्पामीति। किन दशों करि आज्ञा पाया यह कहिते हैं अभ्यनुज्ञान
कारी सूर्य करि १ वाग्रूपा सरस्वती करि २ रूप लक्षित त्वष्टा देवता॰त्व
ष्ट्रा रूपाणामधिपतिरित्युक्तेः ३ पशुओं से उपलक्षित पूषादेव॰४ इ
स इन्द्र॰५ देवयाग विषें ब्रह्मत्व कर्त्ता वृहस्पति॰६ ओजस्वि वरुण॰
७ तेजस्वि अग्नि॰८ औषधिविशाधिप वा दीप्यमान सोम॰९ दशसंख्या
पूर्ण करने वाले यज्ञाधिष्ठातृ विष्णुरूप देवता करि १० अर्थात् इतनों
से आज्ञा पाया प्रसर्पण करता हूं॥३०॥ इति राजसूयः समाप्तः॥

+ दशानां सोमपाजिनामसंभवादयमेवपक्षः

अथ चरकसौत्रामण्यश्विनोरार्षं

अ॰८ अश्विभ्यां पच्यस्व॥ सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे प
च्यस्व॥ वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिस्रुतः॥
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥३१॥+

राजसूयान्तर्गत सौत्रामणी की चरक सौत्रामणी संज्ञा है तिसके मंत्र
कहिते हैं तिन मन्त्रों के अश्विनी कुमार ऋषि हैं॥ ॥का॰१५॰९॰२९॰
जाताङ्कुर अजाताङ्कुर व्रीही क्षौम में बंधे हुए तिन्हों के मध्य अजा
ताङ्कुर व्रीहियों का ओदन पकाकर जाताङ्कुरओं को पीस करि ओ
दन से मिश्रित करे॥ त्रीणि सुरादेवत्यानि १॰या-गा॰२॰या-उ॰३॰

+ अ-स्वा॰ अ॰। स-स्वा। इ॰। इ-स्वा। उ॰। वा-खा। ऋ॰॥३१॥

या−टृ॰ हे सुरे तू अश्विनी कुमार के अर्थ पच्यस्व पाक कर पाकनाम विपरिणाम श्रेष्ठता। सरस्वती देवी के अर्थ पाक कर। शोभन त्राण कर्त्ता वा सुत्रातव्य इंद्र के अर्थ पाक कर यतः सौत्रामणी इंद्र का भैषज्य कर्तव्य है॥ का॰ १५.१०.११. वपा मार्जन के अन्त में कुशाओं करि परिस्रुत को पवित्र करै वायुः पूतः॰ इस मंत्र से। पशुओं के वपा मार्जनान्त कर्म किये पीछे सुरा को किसी पात्र में दर्भाओं से पवित्र करै॥ सोम देवत्या गायत्री॥ सोम वायु करि शोधित कुशमय पवित्र करि शोधित हो अधोमुख होकर अतिक्रमण करिके गया॥ कैसा है सोम कि इंद्र का योग्य है सखा। सोमः पूर्वं पूति गंधोऽभूत्ततो देवैर्वायुरुक्तस्त्वं सोममिमं सुगन्धं कुर्वेति ततो वायुना सोमो दुर्गन्धमपहृत्य सुगंधः कृत इति शत॰ १२.७.३. श्रुत्योक्तम् तदयं मन्त्रो वदतीत्यर्थः॥ सोम प्रथम पूतिगन्धि था पीछे देवताओं ने वायु से कहा कि तू सोम को सुगन्ध करि ततः वायु ने सोम को दुर्गन्ध छुडाय सुगन्ध किया सो यह मन्त्र कहता है॥ ३१॥

कुविदङ्ग॥ यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमः उक्तिं यजन्ति॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥ ३२॥ कु-त्रि। अ॰। उ-म्यो। इ॰॥ ३२॥

का॰ १५.१०.१३. पवित्र हुई सुरा में बदरी फल चूर्ण डालि कर कुविदङ्गेति एक ग्रह को वैकङ्कत पात्र से ग्रहण करै अथवा कुविदङ्गेति तीनि ऋचाओं से तीनि ग्रहों को प्रति दैवत ग्रहण करै। यथा कुवि

इङ्० उपयाम गृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वेति प्रथमम् कुविदङ्ग० उपया
म गृहीतोसि सरस्वत्यै त्वेति द्वितीयम् कुविदङ्ग० उपयाम गृहीतोसी
न्द्रायत्वा सुत्राम्ण इति तृतीयम् ॥ ३२० ३३० ३४० तृचं काक्षीवतसुकी
र्ति दृष्टम्। आद्या सोम देवत्या त्रिष्टुप् ॥ हे सोम जैसे यवमन्तः ब
हुयव सम्पन्नाः कृषीवलाः सव यव मय सस्य को अनुपूर्व से विचा
रि पृथक् करके लुनते हैं। तैसे इन यजमानों की संबंधी भोज्यवस्तु
एँ इन यजमानों के बिषें करि। इन किन्हीं कें कि जे यजमान वर्हि
ओं के ऊपर स्थित हविर्लक्षण अन्नको लेयाज्यासम्पादन करि याग
करते हैं ॥ उपयामेति सा-त्रि०। हे सोम तू उपयाम करि गृहीत है अ
श्विनी कुमारों के अर्थ तुम्हें गृहण करता हूं सरस्वती के अर्थ तुम्हें
शोभन त्राण करने वाले इन्द्र के अ-हूं ॥ ३२ ॥

पुत्रमिव पितरा वश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दर्ठंसनाभिः। यत्सुरामं
व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३३ ॥

युवर्ठं सुरामम् ॥ युवर्ठं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपानाः शुभस्पती इन्द्रं कर्म्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

का० १९-६-२०० युवर्ठं सुरामम् पुत्रमिव ये दो ऋचाएँ सुराग्रहों की या
ज्या अनुवाक्या प्रथमानुवाक्या पुत्रमिवेतियाज्या॥ अनुष्टुप् अश्विसरस्व
तीन्द्र देवत्या। हे अश्विनौ तुम कर्म निमित्त विषें इन्द्र को पालन
अर्थात् स्वकर्मक्षम करते हुए। कैसे हो तुम कि नमुचि संज्ञिक अ
सुर (दैत्य) विषें स्थित सुराम (शोभन रमणीय) सोम को एकीहोवि
विध पीते हुए तदर्थे श्रुताविति हासः शत० १२·३·४·१· नमुचि-
र्नामासुर इन्द्रस्य सखासीत् सविश्वस्तस्येन्द्रस्य वीर्यं सुरया सो
मेन सह पपौ ततः इन्द्रोऽश्विनौ सरस्वतीं चोपाधावत् नमुचिना

पीत वीर्यो ऽस्मि ततो ऽश्विनौ सरस्वती चापां फेनेन रूपं वज्र मिन्द्राय ददुः तेनेन्द्रो नमुचेः शिरश्चिछेद ततो लोहित मिश्रः ससुरः सोम स्तदुदरा दश्विभ्यां पीत्वा शुद्ध इन्द्रायार्पित इति नमुचि नामा असुर इन्द्रका सखाया उसने विश्वस्त इन्द्रके वीर्य को सुरा सोम सहित पीआ ततः इन्द्रने अश्विनी कुमारों और सरस्वती से कहा कि मैं नमुचि करि पीत वीर्य हूं ततः अश्विनी कुमारों और सरस्वती ने अपां फेनेन १९॰७१ रूप वज्र इन्द्रके अर्थ दिया तिससे इन्द्रने नमुचि का शिर छेदा ततः लोहित मिश्र सुरासहित सोमतिस के उदर से अश्विनी कुमारों ने पीकर शुद्ध इन्द्र के अर्थ अर्पण किया इति अर्थात् तिस अर्पण से इन्द्र को रक्षा करतेहुए। पुनः कैसेहो कि शोभन कर्म के पालक ॥३३॥

पुत्र मिव पितरौ ॥ पुत्र मिव पितरा वश्विनो भेन्द्रा वथुः काव्यैर् दꣳसनाभिः ॥ यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥३४॥

इति सꣳहितायामष्टमोनुवाकः ८

इति श्री शुक्ल यजुर्षि माध्यन्दिन शाखीयायां

वाजसनेय सꣳहितायां दीर्घपाठे दशमोध्यायः

त्रिष्टुप् अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्या। हे इन्द्र दौनों अश्विनी कुमारों ने तू पालन किया किन्हों से कि काव्यैः मन्त्र दृष्टा ऋषों के संबंधि मन्त्रों से। तथा दंसनाभिः † कर्म करि के। दृष्टान्त माह जैसे माता पिता पुत्र को पालते हैं तैसे अश्विनी कुमारों ने तुझे रक्षा किया

† दंस इति कर्मनाम निघं॰ २॰१॰

अश्विनी कुमारोंनें इन्द्रको रक्षाकिया यह कैसे समझागया तहां कहते हैं कि जिस कारण से हे इन्द्र तूने नमुचिवधादि कर्मकिये शोभन रमणीय सोम को विशेष करि पीआ और हे मघवन्-इन्द्र जिस हेतु सरस्वती देवी ने तेरे किये सोमपान से और सरस्वतीकृततेरे सेवन से, अश्विनी कुमारोंने तुझे रक्षा किया यह जान पड़ताहै ॥३४॥

इति गिरिधरभाष्ये १९ मोनुवाकः १९

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरोदेयाद्यज्ञपुरुषःसनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेयनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये राजसूयचरकसौत्रमणीवर्णनो नाम दशमोध्यायः ॥१०॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते
वेदार्थप्रदीपे प्रथमोध्यायः ॥१॥

संहिता सार बहुला पद संज्ञा भिराकुला
क्रम संधिसमाकीर्णा दुस्तरा मन्त्र सागरः १
संहिता नयने सूर्य्ये पदानि शशिनं पदम्।
क्रमोपि नयने सूक्ष्मं यत्तत्पदमनामयम् २

आदितः अनुवाक संख्या ११९

पञ्चात्मकः सभगवान् द्विषडात्मकोभूत्
पञ्चद्वयी शत सहस्रपरामितश्च।

एकः समोप्य खिलदोष समुज्झितोपि
सर्वत्र पूर्ण गुण कोपि बहूप मोभूत् ॥१॥
सर्वत्र पूर्ण गुणविग्रह आत्म तन्त्रो
निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीनः।
आनन्दमात्र करपाद मुखो दुरादि
सर्वत्र चत्रिविधभेद विवर्जितात्मा ॥२॥

इति श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये दशाध्यायी
समाप्ति मगमत् ॥

श्रावणस्यासिते पक्षे सप्तम्यां रविवासरे
वसुनेत्राङ्कभूवर्षे दशाध्यायास्तदागमन्

अतःपरमष्टभिरध्यायैरग्निमंत्रा उच्यन्ते

वेशमेति प्रसिद्धं गतेति प्राचीने विश्वामित्र पुरीय
नवल दुर्गस्थ व्याघ्रपाद
प्रकाशकाश्मयन्त्रालये
मुद्रितम्

ॐशान्तिः ॐशान्तिः ॐशान्तिः
विक्रमब्दाः १९२८ शाकाब्दाः १७९३ भाद्रकृष्ण८ भौमवारशुभंभवतु

अथसंक्षेपतःसूचीपत्रम्

हरिःओम्

सूचीपत्रम्

हरिःओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

अथाग्निचयनमन्त्रास्तेषांप्रजापतिर्ऋषिःसाध्याऋषयोवा

पञ्चात्मकं द्विरूपंच साधनैर्वेद रूपकम्
स्वानन्दे शयकं कृष्णं ब्रह्मरूपंपरं स्तुम १

प्रथमचितिमन्त्राणांप्रजापतिर्ऋषिः

अ० १ युंजानः प्रथमम्॥ युञ्जानः प्रथमम्मनंस्तत्वायंसविताधि
यः॥अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्यपृथिव्या॥अध्याभरत्॥१॥
श्रीवल्लभं विठ्ठलंच नत्वा तत्कृपयाधुना॥
प्रदीपैष्ट भिरध्यायैरग्निः प्रायेणवर्ण्यते १

एकादशमे अध्यायसे आरम्भकरि अष्टादशमे पर्यन्त अग्निचयन केमन्त्र तिन्होंका प्रजापतिवासाध्य ऋषि॥सो अग्निपञ्चचितियुक्त है।प्रथमचिति मंत्रों का प्रजापति ऋषि है १ दूसरी के देवता २तीसरीके इन्द्र अग्नि विश्वकर्मा ३ चौथी के ऋषि ही ऋषि हैं ४ पांचमी का परमेष्टी ऋषि है ५ तथाच श्रुतिः-प्रजापतिः प्रथमां चिति मपश्य दित्यादि शत० ६.२.३.१०.

ॐनमोयाज्ञवल्क्याय
गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
उखादिसमिदाध्यन्तोभूमीन्द्व्यायइर्यते

एकादशमें से ले त्रयोदशमें अध्याय पर्यन्त प्रथमचितिके मन्त्र तिन्हों का प्रजापति ऋषिः॥ चयन करने की है इच्छा वोह यजमान फाल्गुण कृष्ण प्रतिपदा विषें पौर्णमासेष्टी को करिकै पुरुष· अश्व· गो· अवि· अजः का आलम्भन करि अजसे याग करिकै पांचो के घृताक्त शिर प्रथम चिति विषें उपधानार्थ कहीं स्थापन करि तिन्हों के कवन्धों और अज के शेष को मृद्युक्त तडागादि जल में डाले उखा और इष्टका के अर्थ मृदा और जल तहां से लावै ततः फाल्गुण कृष्णाष्टमी में उखा संभरण करते हैं तिसके अर्थ आहवनीय दक्षिणाग्नी का उद्धार करि आहवनीय से पूर्व में किये चतुष्कोण गर्त्त विषें ततः तडाग से मृत्पिण्ड लाकर भूमिके सम स्थापन करै· पिण्ड आहवनीय के वीच सछिद्रा वल्मीक मृदा को रखै· आहवनीय से दक्षिणदेश में अश्व· गर्दभ· अज· प्राङ्मुखाः पूर्वापर रीतिकरि मुञ्जरशना से वंधे स्थापन करिकै· आहवनीय के उत्तर में वैणावी दुधारा वा कल्माषी हिरण्मयीअभ्रि स्थापन करै· ततः कर्मोह का०१६·२·७· गार्हपत्य में घृतको संस्कार करि जुहू और स्रुवा को धोकर स्रुचि करि आठवार लिये आज्य को आहवनीय में परिस्तरण समिदाधानपूर्वक संततअवछिन्न धारा से स्रुचि को ऊंची करि युञ्जान इत्याद्य अष्टकण्डि

काओं से सांतत्य और आठ ऋचाओं के अन्तमें स्वाहा कार पर्यन्त अध्वर्यु होमें॥ अथप्रति कर्म दर्शिन इति युञ्जानः अष्टानां सवितापि ऋषिः देवोपि सविता आद्यानुष्टुप्। अथमंत्रार्थः सविता॰ सबके प्रेरक प्रजापति † ने चीयमान वन्हिका संबंधि तेज पशुओंमें प्रविष्ट निश्चय करि यद्वा सफल कर्मों का साधनभूत निश्चय करिके पशुशरीरन्विता पृथिवी के सकाश से अध्याहरण किया अर्थात् इष्टका करि अग्निको इकट्ठा किया। किम्भूतः कि प्रथम अग्न्यारम्भ में मनस्थापन किया किंकृत्वा कि बुद्धि इष्टकाविषय ज्ञानों का विस्तार करिके अर्थात् मनसा से पर्यालोचन करि बुद्धि विषें अव धारण करिके॥ १॥

† सवितृ शब्देन श्रुतौ प्रजापतिरुक्तः प्रजापतिर्वै युञ्जान इति श० ६।३।१।१२

युक्तेन मनसा॥ वयन्देवस्य सवितुः सवे॥ स्वर्ग्याय शक्त्या॥ २॥

गायत्री गायत्री शङ्कुमती †। प्रजाति की आज्ञा में वर्त्तमान हमयजमान इन्द्रियों से नियमित एकाग्र मनसा से स्वर्ग साधक कर्म के अर्थ अपनी सामर्थ्य पूर्वक प्रयत्न करते हैं इतिशेषः॥ २॥

† महीधरमते

युक्त्वाय सविता॥ देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्॥ बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥ ३॥

अनुष्टुप्। सविता तिन प्रसिद्ध देवताओं को अग्नि कर्म विषें संयोजन करि प्रेरता है। कैसे देवताओं को कि धिया बुद्धिवा अन्यकर्म करि प्रकाश करते हैं। पुनः कैसों को कि बृहत् ज्योतिः करिष्यतः बडे आदित्य लक्षण को आत्मत्व से संस्कार करते हैं। कैसा है सविता कि प्रेरयिता अन्य कर्म से स्वर्ग को गये देवताओं को अग्नि कर्म विषें सविता प्रेरण करनेवाला प्रजापति तिन इन्द्रिय विशेष देवता-

ओं को विषयों से रोकिकर प्रकर्षेण अग्नि कर्म विषें प्रेरण करता है कैसों को कि स्वर्ग प्राप्ति के अर्थ उद्यत हैं तथा बृहत् चीयमान अग्नि के तेज के तत्तत् इष्टकादि विषय प्रज्ञा करि द्योतमान करने को उद्यत ॥३॥

युञ्जतेमनः॥युञ्जतेमनऽउतयुञ्जतेधियोविप्राविप्रस्य बृहतोविपश्चितः॥विहोत्रादधेवयुनाविदेकऽइन्म्हीदेवस्यसवितुःपरिष्टुतिः॥४॥

जगती व्याख्यातापि ५·१४· विशेषतो व्याख्यायते। विप्र(विशेषेण दक्षिणा अन्न दान करि पुण्य करने वाले ब्राह्मण यजमान) के संबंधि विप्राः (ऋत्विजाः) प्रथम स्वकीय मन को विषयों से निवर्त करि समाहित करते हैं। और धियः (इष्टकादि विषय ज्ञानों) का सम्पादन करते हैं। कैसे विप्र के कि अग्नि चयन के उद्योग करि अभिवृद्ध। तथा अभिज्ञ। कैसे हैं विप्र कि होम शील अर्थात् कर्म विषें आलस्य रहित हैं। ननु ये ऋत्विग्यजमान कहां से आए तत्राह कि एक एव सविता इन सबों को निर्माण करता हुआ कैसा है कि विपश्चित् ऋत्विग्यजमानों के अभिप्राय का जानने वाला। कैसे एक ही इन सबों को करता हुआ सो कहते हैं कि यतः सविता देवता की सब वेदों में श्रूयमाण महती स्तुति अर्थात् सविता की अचिन्त्य महिमा है॥४॥

युजेवाम्॥युजेवाम्ब्रह्मपूर्व्यन्नमोभिर्विश्लोकऽएतुपथ्येवसूरेः॥शृण्वन्तुविश्वेऽअमृतस्यपुत्राऽआयेधामानिदिव्यानितस्थुः॥५॥

त्रिष्टुप्। पत्नी यजमानौ वामिति पदेनोच्येते। हे पत्नी यजमानौ तुम्हा

रे अर्थ अन्न करि इस हुत घृत सहित पुरातन महर्षियों करि अनुष्ठित ब्रह्मपरिवृढ (अग्निचयनाख्य कर्म) को मैं सम्पादन करताहूं यद्वा तुम्हारे अर्थ पुरातन ब्राह्मण जाति को अन्न करि तर्पण करताहूं। किमर्थमितिचेत् किपण्डित यजमान की कीर्ति दोनें लोकों में व्याप्त होतत्र दृष्टान्तः पथ्याऽइव यज्ञ मार्ग प्रवृत्ता आहुति जैसे दोनें लोकें को व्याप्त होती है ऐसे यजमान की कीर्ति उभयलोकसंचारीहो इतिभावः। किंच मरण धर्म रहित प्रजापति के पुत्र सब देवता यजमान की कीर्त्ति को सुनें। कौन कि जे दिविके स्थानें में बैठे हैं अर्थात् तेसब इस की कीर्त्ति को सुनें ॥ ५॥

यस्य प्रयाणम् ॥ यस्य प्रयाणमन्वन्न्यऽइद्ययुर्द्देवा देवस्य महिमानमोजसा ॥ यः पार्थिवानि विमुमेसऽएतशो रजा᳖ᳬसि देवः सविता महित्वना ॥ ६॥

जगती। अन्य देवता जिस सविता की प्रवृत्तिको अनुवर्त्ततेहुए और अन्य देवता जिस देवके महत्त्वको वल करिके अनुवर्त्ततेहुए और जिस सविता ने रजांसि + पृथिवी प्रभृति लोकों को जाना सो देव अपने महा भाग्य से एतशः एतत् जगत् त्रय स्थावर जंगम को प्राणभाव करि- व्याप्त होताहै यद्वा एतश इत्यश्वनाम निघं॰ १॰ १४॰ अश्व रूप से सब जगत को वन करि स्थित है उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिर इति श त॰ १०॰६॰ ४॰ १ सूरा दश्वं वसवो निरतष्टेति वक्ष्यमाणत्वाच्च २९॰ १३॰ ॥ ७॥

+ लोका रजांस्युच्यन्ते इति निरु॰ ४॰ १९

देवसवितः ॥ देवसवितः प्रसुव यज्ञम्प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय ॥ दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं

न्नः स्वदतु ॥७॥

त्रिष्टुप् व्याख्यानापि ४९ कथ्यन्ते । हे देव सवितः यज्ञकं प्रकर्ष प्रेरि और यज्ञपति यजमान को सौभाग्य के अर्थ प्रेरि । किंच केतपूः (केत परिचिति विषें वर्त्तमान ज्ञान को शोधन करने वाला) ऐसा गंधर्वः (वाचा को धारण करने वाला) सविता हमारे केत (परिचिति ज्ञान) को ब्रह्म विवर्त्त से शोधै । वाणी का पति सविता हमारी वाणी को स्वदतु स्वादन करै अर्थात् हमारी कही वाणी तिसे रुचै ॥७॥

इमन्नः ॥ इमन्नो देव सवितर्यज्ञम्प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितन्धनजितꣳ स्वर्जितम् ॥ ऋचास्तोमꣳ समर्द्धय गायत्रेण रथन्तरम्बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥ +

अवसानपर्यन्तं यजुः महीधरमते तस्य प्राजापत्या जाती छन्दः । हे सवितर्देव हमारे इस यज्ञ को प्राप्त हो । कैसा है यज्ञ कि देवताओं का तर्पण करते हैं जिस में । तथा सखिविदं सखायं अपने निष्पादक यजमान को जानता वा ऋत्विजों को प्राप्त होता । सत्रजित द्वादशाहादि सत्रों को वशी करता है + यद्वा सत्रा शब्दः सत्यवाची सत्य (ब्रह्म) को संपादन करता है । गवादि फल रूप धन को सम्पादन करता है । स्वर्ग को फलत्व करि सम्पादन करता है ॥ किञ्च ऋचा स्तोमम् गायत्री अवसान रहिता यजुरन्ता स्वाहेति यजु । हे सवितः ऋचा स्तोत्र हेतु सामाधारभूतया ऋचा सहित त्रिवृदादिक स्तोम को समृद्ध करि गायत्र साम सहित रथन्तर साम और बृहत्साम को बढ़ा कैसा है बृहत् कि गायत्र साम ही है मार्ग जिस का अर्थात् बृहत् साम

+ गायत्रीहि वीर्य मानसमिति श्रुतेः

+ इ॰ मा॰ अ॰ ऋ॰ ह्या॰ इ॰ ॥ ८ ॥

का गायत्र साम मार्गभूत है ॥८॥

देवस्यत्वा॥ सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ता-भ्याम्॥ आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्॥९॥+

का० १६।२।८। देवस्यत्वेति कण्डिका द्वयात्मक मन्त्रकरि वैणवी अभ्रि को ले हस्त आधायेति ऋचा क० ११ से अभ्रि को अभिमन्त्रण करे॥ दे-म् प्रा-वृ०सविता दे० आ-तू यजुः । अभ्रिर्देव०। हे अभ्रे सविता देवता का प्रेरा अश्विनी कुमारों के संबंधी मणिबन्धपर्यन्ता बाहुओं पूषण संबंधी अंगुलियों सहित साधन भूत हाथों सहाय भूत गायत्री छन्द से युक्त हो तुम्हें ग्रहण करता हूं तत्र दृष्टान्तः जैसे अङ्गिरा के वंश के ऋषि तुम्हें पहिले ग्रहण करते हुए। हे अभ्रे तू ग्रहण की हुई पृथिवी के उत्सङ्ग से अग्नि को ला। त्रिष्टुप् छन्द से अंगिरस जैसे अग्नि को आहरण करता हुआ पुनः अङ्गिरस्वत् इति दृष्टान्तोऽर्थोति प्रायार्थः। कैसे अग्नि को पुरीष्यम् * पशुओं के अर्थहित० पशव्य यद्वा पुरीष शब्देन पांसुरूपा शुष्का मृदुच्यते तदर्हतीति पुरीष्य अग्नि है क्योंकि मृदा को ले उरवा बनाय तिस में अग्नि को स्थापन करते हैं इस हेतु मृदा और अग्नि के अभेदोपचारण से मृदा हरण एव अग्न्या हरण है इस अभिप्राय से पुरीष्य अग्नि को आहरण करे यह कहा गया और यही उपचार अग्निचयन प्रकरण मे सर्वत्र वर्त्ते है॥९॥

+ महीधरमतेऽभ्रा ददे इत्यारभ्याभ्रिरसि इत्यभिलिख्य तोऽनु ङ्कितिकल्पः

* पशवोवै पुरीषमिति शत० ६।३।१।३०।

+ दे-म् । अ० । आ-तू । दृ० । ९ ॥

अभ्रिरसि॥ अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निं शकेम खनितुं सधस्थ आ॥ जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत्॥१०॥

यजुः। तू अभ्रि उखा को निर्माण करने वाली मृत्खनन हेतुभूत काष्ठविशेष है और नारी। स्त्रीरूपा है यद्वा नहीं अरि वैरी जिसका वोह है अर्थात् खनन काल में अस्मादि कों करि तेरा कुण्ठीभाव नहीं होता किंच तुझसे युक्त हम पृथिवी के उत्सङ्ग में वर्त्तमान अग्नि को जगत छंद से खनने को समर्थ होंवें अङ्गिरस्वत् इति दृष्टान्तः पूर्ववत्॥१०॥

हस्त आधाय॥ सविता बिभ्रदभ्रिं हिरण्ययीम्॥ अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्॥११॥ +

अनुष्टुब्यजुरन्ता आनुष्टुभेनत्यादि यजुः तस्य महीधरमते यजुषस्त्रिष्टुप् छन्दः। अभ्रिदेवत्या। सविता प्रेरक प्रजापति हस्त विषे स्वर्णमयी अभ्रि को लेकर तिस के धारण करते ही अग्नि संबंधी ज्योति का निश्चय करि देखि भूमि के सकाश से अनुष्टुप् छन्द करि आहरण करता हुआ अङ्गिरस्वदिति पूर्ववत्॥११॥

अ०२ प्रतूर्त्तं वाजिन्॥ प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम्॥ दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित्॥१२॥

का० १६·२·४· प्रतूर्त्तं· युञ्जाथां· योगे-योगे· इति तीन ऋचाओं से अश्व· गर्दभ· अजः को अभ्रि हाथ में लिये प्रति मन्त्र करि अभि

+ ह-त्। अ०। अ०। आ-तु। इ०॥११॥

[illegible]करै॥ अश्व देवत्या आस्तार पंक्तिः नाभानेदिष्ठ दृष्टा। हे वाजिन् हे [illegible]गामिन् अश्व वरिष्ठा † उत्कृष्टा सम्वत् भूमि को लक्ष करि शीघ्र आ[illegible]आनेसे तुम अश्व का द्युलोक विषें परम उत्कृष्ट जन्म आदित्य रूप [illegible]करि होगा यद्वा तेरा जन्म दिविमें रोहितादि देवाश्व रूप करि प्रसिद्ध। अन्तरिक्षमें तेरा नाभि (उदर) यद्वा नियुन्नामक वायुके अश्व अन्तरिक्षमें चलते हें तिस रूपसे इसका अन्तरिक्षवर्तित्व नाभि शब्द करि प्रकृष्ट शरीर उपलक्षित है। पृथिवीके ऊपर तेरा स्थान इत एव (पादौ एव) भूमि विषें तेरा निवास स्थान प्रत्यक्ष दीखता है। विराड्रूपेणाश्वः स्तूयते एवं महिमा तू शीघ्र आ इत्यर्थः ॥१२॥

† मृत्खनन योग्याभूमिः सम्वत् सा च पाषाणाद्य-भावेनातिप्रशस्त त्वाद्वरि ष्ठेत्युच्यते

युञ्जाथाꣳ रासभं युवमस्मिन्यामे वृषण्वसू॥ अग्निम्भरन्तमस्मयुम्॥१३॥

गर्दभ देवत्या गायत्री कुश्रि (कुस्रि) दृष्टा। गर्दभं मन्त्रयते। अध्वर्युयजमाना वुच्येते। सींचने वाला गर्दभ वृषण्वसू (वसु धन) वर्षने वाला) यद्वा यागनिष्पादन द्वारा वृष फलों से बर्षने वसु·धन·के तिन्होंका संबोधन। हे वृषण्वसू (अध्वर्यु यजमान औवा यजमान दम्पती) तुम गर्दभ को बांधो। कहां कि अस्मिन्यामे, इस अग्नि कर्ममें अथवा यामो मृद्वहन रूप नियम विशेष तिस निमित्त भूत में कैसा है गर्दभ कि अग्नि भरने (लेचलने) को समर्थ हमारा हित चाहनेवाला॥१३॥

योगेयोगे तवस्तरम्॥ वाजेवाजे हवामहे॥ सखाय इन्द्रमूतये॥१४॥

अज देवत्या गायत्री सुनःशेपदृष्टा। अजं मन्त्रयते। परस्पर सख्यको प्राप्त हम ऋत्विग्यजमान इन्द्रियवन्त (वीर्यवन्त) वा इन्द्रिय प्रद अज को रक्षा के अर्थ बुलाते हैं। कसति कि वाजे-वाजे तिन-तिन अन्नों अर्थात् मनुष्य और देवताओं के देने में वा तिन-तिन अन्न प्राप्तिनिमित्त को। कैसा है अज कि योगे-योगे † तवस्तरं ‡ तिन-तिन कर्मों में उत्साहवन्त ॥१४॥

प्रतूर्वन्नेहि ॥ प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यम्मयोभूरेहि ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन्पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥ †

का० १६ । २ । १० । प्रतूर्वन् । उरु । स्वस्ति । प्रतिमंत्र से स्पर्श करता अश्वादिकों की भय को देख प्राच चलै ॥ विराड् रूपा त्रिष्टुप् यजुर्मध्या उर्वन्तरिक्षं वीहीत्येतावद्यजुः। अस्याः पूर्वार्धस्याश्वो देवता। हे अश्व तू शत्रुओं को मारता आ। शत्रुओं से की हुई अपकीर्ति का निवारण करता। आने मे कौन गुण यह कि हमारे सुख विचारने से रुद्र (क्रूर देवता) के गणपतित्व को सब ओडी से प्राप्त हो अत्रा गमने गणपतित्व को लाभ करैगा इति भावः॥ उर्वन्तरिक्षम् यजुः सहितोत्तरार्धस्य रासभोत्क्रमणे विनियोगः। हे गर्दभ ऋत्विग् यजमानों की व्याघ्रादिकों से भय को परिहार करता समान योगिनी पूष्णा † (पृथिवी) के साथ विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को विशेष करि प्राप्त हो। कैसा है तू कि विनाश रहित मार्ग है जिसका अर्थात् भय वर्जित प्रभूतयवसोदक मार्ग हो कर आ। नहीं एक मार्ग को प्राप्त होना इस न्याय से पृ

† युज्यतेऽनुष्ठीयतइइतियोगः कर्म
‡ तवइतिबलनामनिघं० २.९.

† प्र-हि।अ०।उ-हि।र०।स्व-ह।अ०॥१५॥
† इयंवैपृथिवीपूषेतिश्रुत० ६। ३। २। ८।

षण के साथ यहयुक्त है॥१५॥

पृथिव्याःसधस्थात्॥ पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभरागिंनपुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः॥१६॥ + प्रे·रा·अ·अ·म॥ इ·ज॥१६॥

अजोत्क्रमणेविनियोगः। आर्षीगा॰ आग्नेयी। हे अग्ने पृथिवी के सहस्थान से पुरीष्य(पशव्य) अग्नि को अङ्गिरस इव आहरण करता हुआ॥ का॰ १६·३·१२· तीनों अग्निओं के दीप्यमान होने ब्रह्मा यजमान· अध्वर्यु चतुष्कोण गर्त विषें स्थित। मृत्तिका पिण्ड प्रति गमन करें अश्व·गर्दभ· अज·भी गमन करें॥ या-ज॰+।पशव्य अग्नि को अङ्गिरस जैसे हम अभिमुख चलते हैं॥ का॰ १६·२·३·देवपितृ मनुष्यों का निष्प्रयोजन अनद्धा पुरुष तिसे देखे॥ आग्नेयी आसु अ॰।पशव्य अग्नि को जैसे अङ्गिरस हम सम्पादन करते हैं॥१६॥

अन्वग्निः॥ अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः॥ अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ॥१७॥

का॰१६·२·१४·वल्मीक वपा, वल्मीक के ऊंचा वढ़ा हुआ अवयव जोकि पिण्ड आहवनीय के वीच में स्थापन किया है तिसे ले तिसी स्थान स्थित होतिस छिद्र से पिण्ड को देखे॥ अग्नि देवत्या त्रिष्टुप् पुरोधसदृष्टा। अग्निः उषः कालों के अग्र को अन्वख्यत् अनुक्रमेण प्रकाश करता हुआ।जातजात को जानता वाजनाता यह अग्नि मुख्य हो अन्वख्यत् किंच सूर्य की रश्मिओं को बहुधा अन्वख्यत्। किंच द्यावापृथि

वी दोनो को भी अनुक्रमेण सर्वतो व्याप्त हुआ। सर्व प्रकाशक लोक
स्रष्टा जो अग्नि तिसे देखें इति शेषः॥१७॥

आगत्य वाजी॥ आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो वि धू
नुते॥ अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते॥

का॰१६·२·१६· मृत्पिण्ड के पास में खडे अश्व को अभिमन्त्रण करे
अश्व देवत्यानुष्टुब्मयोभूर्दृष्टा। वेगवान यह अश्व मार्ग को प्राप्त हो
सब संग्रामों (पापीश्रमों) को विविध कपाता (अपनय करता) है तदनं
विगत श्रम हो उत्कृष्ट सहस्थान पृथिवी में वर्तमान अग्नि का हेतु
भूत मृदा को नेत्रों करि देखता है॥१८॥

आक्रम्य वाजिन्॥ आक्रम्य वाजिन्पृथिवी मुग्निमिच्छ रु
चात्वम्॥ भूम्यां वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तम्वय
म्॥१९॥

का॰१६·२·१७· मृत्पिण्ड के ऊपर अश्व के सव्य पद को स्थापन करे॥
अश्व देवत्यानुष्टुप्। हे वाजिन् अश्व भूमि को पाद स्पर्श से परीक्षा
करि दीप्ति करिकै तू अग्नि हेतु मृदा को निश्चय करि। किंच भूमि
प्रदेश को स्पर्श करिकै हमें तू कहि कि यह प्रदेश अग्नि हेतु मृदो
ग्य है कि जिस प्रदेश से हम तिस अग्नि को खनन द्वारा सम्पादन करें
यद्वा जिस प्रदेश से तैसी मृदा प्राप्त हो तिस प्रदेश को खोदें॥१९॥

द्यौस्ते॥ पृष्ठम्पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षꣳसमुद्रो योनिः॥
विख्याय चक्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यतः॥२०॥

का॰१६·२·१८ पिण्डोपरि पदधारण करते अश्व को स्पर्श करता

अध्वर्यु दक्षिणकर को अश्व की पीठपर रख मन्त्र पढे॥ बृहती अश्व दृ॰। हे अश्व द्यौ लोक तेरा पीठ भूलोक तेरे पद अन्तरिक्षलोक तेरा आत्मा (शरीरान्तर्वर्ती जीवात्मा) समुद्र (उदक तेरा उत्पत्तिस्थान, अप्सुयोनिर्वा ऽअश्व इतिश्रुतेः) एवं स्तूयमान तू नेत्रों से खना योग्य मृदा को देखि सङ्क्राम करने की इच्छा करते मृदा में गूढस्थित राक्षसादिकों का पाद से विनाश करि॥ २०॥

उत्क्राम॥ महते सौभगायास्मादास्थानाद्द्रविणोदा वाजिन्॥ वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या ऽअग्निं खनन्त ऽउपस्थे ऽअस्याः॥ २१॥

का॰ १६॰ २॰ १८॰ मृत्पिण्ड से अश्व को उतारे॥ विराडश्व देवत्या पंक्तिर्विराड्नुष्पदा। हे वाजिन् महाभाग्याभिवृद्धि के अर्थ इस खनन प्रदेश से जहां तू खडा है तहां से उतारते हैं। कैसा है तू कि धन का देनेवाला तेरे उत्क्रान्त से हम पृथिवी विषे सानुग्रह चित्त होवें। कैसे हैं हम कि इस पृथिवी के उपरिभाग में अग्नि के अर्थ मृत्पिण्ड खनने का उद्योग करते हैं॥ २१॥

उदक्रमीत्॥ उदक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतम्पृथिव्याम्॥ ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणा ऽअधि नाकमुत्तमम्॥ २२॥

का॰ १६॰ २॰ १९॰ पिण्ड से उतारे अश्व को अभिमंत्रण करे॥ आर्षी त्रिष्टुप्। अर्वाः (अरणशील-चञ्चल) धन का दाता अश्व जिस प्रदेश से उतरा पृथिवी में तिसे शोभन लोक (प्रदेश) पुण्यवान करता हुआ।

वतः प्रदेश से हम अग्नि हेतु मृदा को खनन करते हैं कैसे अग्नि को कि शोभन है मुख जिस का कैसे हैं हम कि स्वर्ग की अभि [illegible] मना रखनेवाले एतत्कर्म कुर्म इतिभावः † कैसा है स्वर्ग कि नहीं है दुःख जहां तथा उत्कृष्ट ॥२२॥

आत्वा॥ आत्वा जिघर्म्मि मनसा घृतेन प्रति [illegible]
नानि विश्वा॥ पृथुन्तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचि [illegible]
भसन्दृशानम्॥२३॥

का० १६.२.२१. आज्य को संस्कार करि पिण्ड के समीप में बैठि [illegible] ण्डोपरि स्थित अश्वपद मुद्रा में आत्वा २३ आविश्वतः २४ इन [illegible] तिषक्त ऋत्वा ओं से स्रुवा करि द्वे आहुति होमें व्यतिषङ्गश्चैवम् आत्वा जिघर्मि इस पहिली के पूर्वार्ध मर्य श्री इस उत्तर के [illegible] र्ध को पढि पहिली आहुति और आ विश्वतः इस उत्तर के पूर्वार्ध पृथुं तिरश्चा पहिली के उत्तरार्ध को पढि कर दूसरी आहुति॥ [illegible] दृहश्चे आग्नेय्यौ द्वे त्रिष्टुभौ। हे अग्ने श्रद्धायुक्त चित्त से घृतकरि तुम्हें सब ओडी से सींचता वा दीपन करता हूं। कैसे तुम्हें कि सब भूतों प्रति एक निवास करने वाले। तिरश्चा पृथुतिरछी ऐंचने ज्योति करि विस्तीर्ण वयसा बृहन्तं धूमकरि महान्त † यद्वा तिर्यक् [illegible] करिके विस्तृत इति बहुदेश व्याप्तिः वय उपलक्षित काल करि [illegible] हन्त इति बहुकाल व्याप्तिः अर्थात् देशकालानवच्छिन्न के। त [illegible] विष्ठं अतिशयेन अवकाशवान को। अन्नैः रभसं घृतादि [illegible] से उत्साह सहित को अनेक अन्नों के हुतने से इसकी शान्ति [illegible]

† हलोवा अपमूर्ध्वं रेतः सिञ्चति धूमः सन्मुत्नाद्वृष्टिर्भवतीति श्रुतेः

नहीं होती इतभावः।तथा दर्शनीय वा दृश्यमान, अन्य देवता नहीं दीखते यह दीखता है इतिभावः॥२३॥

आविश्वतः॥ प्रत्यञ्चं जिघर्म्यं रक्षसा मनं सातज्जुषेत॥
मर्यश्री स्पृह यद्वर्णो अग्निर्न्नाभि मृशेतन्व्वाजर्भुराणः॥२४॥

हम अग्नि को सब ओडी से सीचते और दीपन करते हैं कैसे को कि सर्वतः आत्मतया प्रतीयमान।वोह अग्नि क्रोधरहित अक्रुध्यमान चित्त से तिस घृत को सेवन करै।कैसा है अग्नि मनुष्यों से सेवित मनुष्यों करि आश्रयणीय।यजमानों करि स्पृहणीय रूप जिस्का। दाहक होने से अभिमर्शन नकरने योग्य, ईदृशी तन्वा ज्वालालक्षण शरीर करि जृम्भत।ईदृश अग्नि को सब ओडी से सीचते हैं इतियोज्यम्॥२४॥

परिवाजपतिः॥ कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्॥ दधद्रत्नानि दाशुषे॥२५॥

का०१६।२।२२। अभ्रि से तीनि वार मृत्पिण्ड को परिलेखन करै परया बहिः—बहिः यथा तथा।परिवाजपति इससे प्रथम लिखे परि त्वेनि तिस से बाहर दूसरें त्वमग्न इति तिस से बाहर तीसरें॥आग्नेयी गायत्री सोमक दृष्टा।यह अग्नि अनेक देवताओं के हवियोंका भक्षण करता हुआ।कीदृशोग्निः कि अन्न का पति पालनकरने वाला क्रान्तदर्शी हवि देनेवाले यजमान के अर्थ रमणीयधनों का दान करिकै हवियों का भक्षण करता हुआ॥२५॥

परित्वा॥अग्ने पुरंम्वयम्विप्रर्ठ० सहस्यधीमहि॥धृषद्वर्णम्दि

वे॑-दि॑वेह॒न्तार॒म्भङ्गु॑रावंताम् ॥२६॥

आग्नेय्यनुष्टप् पायुदृष्टा। हे सहस्य(बलेन मथ्यमान) हे अग्ने हमतु म्है सर्वतः ध्यान करते प्रसारते + हैं। कैसे तुम्है कि पुरी रूप सैस्थित ‡ यद्वा पालन करनेवाला। तथा मेधावी वा ब्राह्मणजाति। प्रगल्भवर्ण असह्य रूप। दिवे-दिवे- प्रतिदिन भङ्गुरावताम् हन्तार भङ्गुरं- भञ्जनीयपापवन्तविघातक राक्षसादि कों यद्वा अनवस्थित चित्तवृत्ति जिन्हों की तिन्हों के विनाश करने वाले को॥२६॥

+ ध्यायतेः सम्प्रसारणंच्छान्दसमित्युक्तम्
‡ आग्नेयपाद्विपुराणांरक्षकत्वात

त्वम॑ग्ने। त्वम॑ग्ने॒ द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वम॒श्मन॒स्परि॑॥ त्वं॒ वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जाय॒से शुचि॑ः॥२७॥

आग्नेयी जगती- गृत्समददृष्टा। हे नृपते(नरों- मनुष्यों के पालक) हे अग्ने तू द्युभिर्जायसे निमित्तभूत दिनो सै मथ्यमान उत्पन्न होता अर्थात् प्रतिदिन मंथाजाता है यद्वा स्वर्ग की निमित्तभूत तिन-तिन यागशालाओं में जायसे। तू आर्द्र भूमि को शीघ्रही सुखाने वाला यद्वा क्षिप्र दीप्ति करि कै तम का नाश करता वा सनोति सम्भजते आशुशुक्षणिः। तू वर्षधाराओं से विद्युदात्मनी जायते तू पाषाण के ऊपर दूसरे पाषाण के संघट्टन सै जायसे तू अरणि काष्ठों सै जायसे तू दोवंशों के घर्षण से नृणां(मनुष्यों- अग्नि होत्रियों के घरों में उत्पन्न होता- पुत्रोह्येष सन्त्स पुनः पिता भवतीतिश्रुतेः। कैसा है तू कि शुचिः शुद्धि का हेतु- पुनः पाकेन मृन्मयमिति मनु० अध्या० ५० श्लो० ११२० ॥२७॥

अ०२ देवस्यत्वा॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णोहस्ताभ्याम्॥ पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामि॥ ज्योतिष्मन्तन्त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेणभानुनादीद्यतम्॥ शिवम्प्रजाभ्योहिंसन्तम्पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामः॥२०॥+

का०१६·२·२२· अभ्रि करिकै कण्डका सै पिण्ड को खनै॥ देवस्यत्वा व्याख्याता ११०· पृथिव्याः आग्नेयं यजुः महीधर मते अत्यष्टि। में पृथिवी के उपरि प्रदेश से पुरीष्य पशव्य-अग्नि को अङ्गिरस-इव खनन करता हूं कैसे अग्नि कि ज्वाला युक्त को। हे अग्ने ऐसे तुम्है पृथिवी के सह स्थान सें अङ्गिरस-इव हम खनन करते हैं। कैसे कोकि सुसुख को। अजस्रेण- अनुपक्षीणनिरन्तर वर्तमान रश्मि करि दीप्यमान को। प्रजोपकारार्थ प्राप्त अत एव हिंसा न करने वाले- को- पुनरुक्तिरादरार्था॥२०॥

अपाम्पृष्ठम्॥ अपाम्पृष्ठमसियोनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्॥ वर्द्धमानो महा२ऽ॥ आच पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व॥२१॥

का०१६·२·२४· मृत्पिण्डके उत्तरभाग विषें कृष्णा जिनको प्राग्ग्रीव उत्तर लोम विछाकर तहां अपां पृष्ठमिति पादत्रयात्मक मंत्र सें कमलिनी पात्र को विछावे॥ पुष्करपर्णदेवत्या स्वराट् पङ्क्तिः। हे पुष्कर पर्णतू जलों के ऊपर अवस्थान सें पृष्ठ है अग्न्यर्थ पिण्ड का योनिः- कारण है समुद्रमभितः- उदक का परितः प्रीति करने वाला यद्वा सींचनेवा

+ दे-मू०अ०पृ- मा०३०॥२०॥

ले समुद्र को वर्द्धमान होते महत्त्वभूत हो इति शेषः। और जलमें स
व ओडी से ठहरि यद्वा पुष्कर विषें समन्तात् महत्त्वभूत होते तू वृ
द्धियुक्त है॥ का०१६।२।२४। दिवो मात्रया इस पाद से पुष्कर पर्ण को वि
पुलकरै॥ हे पुष्करपर्ण द्युलोक के परिमाण उरुत्व से तू विस्तृत हो॥२९॥

शर्म च॥ शर्म च स्थो वर्म च स्थो ऽछिद्रे बहुले ऽउभे॥ व्यचस्व
ती संवसाथाम्भृतमग्निम्पुरीष्यम्॥३०॥

का०१६।२।२५। दो ऋचाओं से कृष्णाजिन पुष्करपर्ण का साथ ही स्पर्श
करै॥ कृष्णाजिन पुष्करपर्णे देवत्ये द्वे अनुष्टभौ। हे कृष्णाजिन पुष्क
रपर्णे उभे दोनों तुम अग्नि के सुख कारिणी अपि हो कवच वत् रक्षि
के अपि हो- चौ समुच्चये। कैसे हो तुम कि छिद्र रहिते सकले विस्ती
र्णे अवकाशवती। तथाविधे तुम पुरीष्य (पशव्य- अग्नि) को आच्छा
दन करो और आच्छादन करिके अग्नि को धारण करो॥३०॥

संवसाथाम्॥ संवसाथा स्वर्विदा समीची ऽउरसा त्म
ना॥ अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित्॥३१॥

हे कृष्णाजिन पुष्करपर्णे निरन्तरमेव अग्नि को भीतर में धारण
करनेवाले तुम उरूरूप अपने शरीर से अग्नि को भले प्रकार आ
च्छादन करो कैसे हो तुम कि स्वर्वित्त इति स्वर्विदो यज्ञ सूर्य देवा हवा
ची स्वः शब्दः स्वर्गलाभ साधने ऽइत्यर्थः समीची एकचित्त॥३१॥

पुरीष्योसि॥ विश्वभरा ऽअथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत॥ मूर्ध्नो विश्वस्य वा
घतः॥३२॥ पु- ग्ने। अ०त्वा-तः। द्वू०॥३२॥

१६॰२॰२६॰पिण्ड को स्पर्श करै॥ आर्षीउ॰+ अग्निदेवत्या। हे + महीधरमते प्रतिष्ठागायत्री
ने तू प्रशाव्य है सब जगत को धारण करता वा पुष्ट करता है अ
म लोगों से पूर्वभावी अथर्वाख्य ऋषिः वा प्राण तुम्हें निःशेषे
मथता हुआ॥ का॰१६॰२॰२७॰३१॰ दक्षिण से अग्नि को रखिके
हाथों से सब पिण्ड को त्वामग्न इतिषट् ऋचा ओंकरि एक
बार लेके पुष्कर पर्णविषें स्थापन करै॥ अग्निदेवत्यास्तिस्रोगाय
भरद्वाजदृष्टा। हे अग्ने अथर्वा(प्राण) पुष्करात् उदक के सका
से तुम्हें निःशेषेण मथता हुआ+। वाघतः इति ऋत्विङ्नामसुनि
घ॰३॰१८॰पठितम् सब जगत का संबंधि ऋत्विज तुम्हें अरणी के
शिर से निःशेषकरि मथते हुए।यद्वा विश्वस्येतिषष्ठ्येकवचनं प्रथम + व्यत्ययः
बहुवचनार्थे सब ऋत्विज॥ यद्वा ऋचोऽयमर्थः। हे अग्ने अथर्वा-
ख्य ऋषि पद्मपत्र के ऊपर तुम्हें निःशेषेण मथता हुआ कैसें पुष्कर
सै कि मूर्ध्नः उत्तमाङ्गवत् प्रशस्त से सबजग के वाहक से पुष्करपर्ण
अग्नि निर्मन्थन यज्ञनिष्पादन द्वारेण सबजगत को निर्वाह करता है॥३२॥

तमु॑त्वा॥द॒ध्यङ्ङृषिः॑पु॒त्रऽई॑धे॒ऽअथ॑र्वणः॥वृ॒त्र॒हणं॑म्पुर॒न्द॒रम्॥३३॥

हे अग्ने अथर्वण ऋषि का पुत्र दध्यङ् नामक तैसे तुम्हें प्रज्वलित करता हुआ कैसे तुम्हें कि वृत्र(पापी)को मारने वाले पुरन्दर, रुद्र रूपेण असुरसंबंधि तीनों पुरों को विदारण करने वाले को॥३३॥

तमु॑त्वा॥पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम्॥धन॒ञ्जयꣳर॑णे॑रणे॥३४॥

पाथ्यः-सन्मार्ग वर्ती यद्वा अन्तरिक्ष हृदयाकाशमेंहुआ। सींचनेवाला मन हे अग्ने तुझे संदीपन करताहै† कैसे तुझे कि अतिशयेन-शत्रुओं केहन्ता रणे-रणेतिन-तिनसंग्रामोंमेंधनकेजीतनेवालेको॥३४॥

सीदं होतः॥ सीदं होतुः स्वऽउंलोके चिकित्वान्त्सादयांयज्ञꣳ सुकृतस्ययोनौ॥ देवावीर्देवान्हविषायजास्यग्नेबृहद्यजमानेवयोधाः॥३५॥

आग्नेयीत्रिष्टुप् देवश्रवोदेववाताभ्यांदृष्टा। हे देवताओंके आह्वाता हे अग्ने स्वकीय एवस्थान कृष्णाजिन विषें तू बैठि कैसाहै तू कि अपने अधिकार को जानता किंच सुकृत(कर्म) को यज्ञ केस्थानकृष्णाजिनविषें यज्ञको स्थापन करि ‡। हे अग्ने यतः देवताओंके प्रीति करनेवाले तू हविकरि पूजताहै अतः यजमान विषें बृहत् आयु वा अन्न स्थापनकरि॥३५॥

निहोता॥ होतृषदने विदानस्त्वेषोदीदिवाꣳ॥ऽअसदत्सुदक्षः॥ अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वोऽअग्निः॥३६॥

आग्नेयीत्रिष्टुप् गृत्समदृष्टा। अग्नि होमनिष्पादक योग्यस्थान-उत्तर वेदिरूपविषें भले प्रकार बैठताहुआ। कैसाहै अग्नि कि देवताओंका बुलानेवाला। अपने अधिकारकोजानता। दीप्तिवान्। होतृधिष्ण्यादिक में गमनवान्। साधु कुशल क्षिप्रकारी। अनुपहत व्रत(कर्म)जिस्का प्रकृष्टा बुद्धि जिस्की वोह। वस्तृतमः-अपने स्थान मेंअत्यन्त वास करनेवाला। सवजनों को पुष्ट करता। शुचि जिह्वः-

† मनसाहिसर्वंब्रह्मउपलक्ष्यते ब्रह्मपंथा उपलभ्यते अतः पाथ्यः मनसैवानुद्रष्टव्यमितिश्रुतेः मनसैवाभिलष्यस्त्रियाꣳरेतः सिञ्चतीतिवृषाहमनः। मनोवैपाथ्योवृषेतिश्रुतेः शत॰६॰४॰२॰४॰

‡ यज्ञक्रियमाणोऽवघातपेषणसोमनिधानादीनि कृष्णाजिन एवभवन्तीति कृष्णाजिनं सुकृतस्ययोनिः कृष्णाजिनसुकृतस्ययोनिरितिश्रुतेः शत॰६॰४॰२॰६॰

शुद्ध होम योग्या जिह्वा (ज्वाला) जिस्की वोह नाना देवताओं की हवियों का अभ्यवहार करतेभी उच्छिष्ट नहीं करता इतिभावः ॥ ३६ ॥

सꣳसीदस्व महाँ॥ऽअसि शोचस्व देववीतमः॥ विधूममग्नेऽअरुषम्मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥३७॥

आग्नेयी बृहती प्रस्कण्व दृष्टा। हे मियेध्य (मेध्य यज्ञार्ह) हे प्रशस्त (उत्कृष्ट) हे अग्ने तू पुष्कर पर्ण विषें भले प्रकार बैठि। जोकि तू अनेक क्रतुओं का हेतु होने से महान् है सो तू दीप्त हो। कैसा है तू कि अतिशयेन देवताओं का तर्पण करनेवाला। किंच दर्शनीय अरोचन धूमको छोडि। इतोवा अय मूर्ध्व हं+ रेतः सिञ्चति धूम ꣳ सामुत्र वृष्टिर्भवतीनि श्रुतिः ॥ ३७ ॥

अपोदेवीः॥ अपोदेवी रुप सृज मधुमती रयक्ष्माय प्रजाभ्यः॥ तासामास्थाना दुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः॥ ३८॥

का॰ १६॰ ३॰ २ मृत्पिण्ड गर्त विषें जल को सींचे॥ अब्देवत्यान्यङ्कुसारिणी उरो बृहती स्कन्धो ग्रीवी वा बृहती सिंधुद्वीप दृष्टा॥ पूर्वो र्चोऽग्ने इति संबोधन मध्याह्रियते द्यौ रध्वर्युर्वा सम्बोध्यते हे अग्ने यद्वा हे द्यौः वा हे अध्वर्यो देवनशीला जल इस खनन प्रदेश में सर्व ओडी सें सींचो। कैसी है जल कि मधुमती (रसवती आरोग्यदात्री) किसलिये कि प्रजा की आरोग्यता के अर्थ। तिससींची हुई जल के स्थान सुक्षेत्र रूप हमारे खनन प्रदेश से ओषधीएँ समन्तात उगें कैसी हैं ओषधीएँ कि सुपिप्पलाः शोभन है पिप्पल फल जिन्हों के॥ ३८॥

सन्ते॥ वायुर्म्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्॥

योदेवानांचरसि प्राणथेन कस्मै देवुवषडस्तु तुभ्यम् ॥३९॥

का॰१६॰३॰३॰पिण्डगर्ते में वायु को भरे॥त्रिष्टुप् अर्धं पृथिवी देवत्य मर्धं वायुदेवत्यम्। हे पृथिवी ऊर्ध्वाभिमुख करि अवस्थित तेरा हृदय सदृश खनन स्थान पिण्डाव रूप से विकसित है। तिस स्थानको पूर्वोक्त जल प्रक्षेप और तृणादि पूरण से जैसे पहिले वायु तैसे सम्यक् करै। कैसा है वायु कि मातरिश्वा सब प्राणियों की अवछेदकरने वाली अन्तरिक्ष विषें चलनेवाला। एवं पृथिवी को कहि वायुसें कहता है—हे देव द्योतनादि गुणयुक्त वायो जो तू अग्न्यादिक देवताओं के विषें प्राणभाव करि चलता है कस्मै प्रजापतिरूप तेरे अर्थ यह पृथिवी वषट्कृता हो॥३९॥

सुजातोज्योतिषा॥सह शर्म्मवरूथमासदत्स्वः॥वासोअग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्वविभावसो॥४०॥

का॰१६॰३॰५॰बिछाए हुए कृष्णाजिन पुष्कर पर्ण के प्रान्तों को ऊंचे करै॥अग्नि देवत्या नुष्टुप्। भले प्रकार उत्पन्न यह अग्नि अपने तेज के साथ सुख जैसे हो तैसे स्वर्ग सदृश वरणीय कृष्णाजिननिर्मित घरको प्राप्त हो॥का॰१६॰३॰६॰वासोऽअग्ने इस उत्तरार्धसे ऊंचे किये कृष्णाजिन पुष्कर पर्ण के सिरे ओं को मुञ्ज योक्त्र करि बांधै॥ हे विभावसो दीप्तिधनवाले हे अग्ने बहुप्रकार रूप विचित्र वस्त्र कृष्णाजिन रूप को भले प्रकार धारण करि॥४०॥

उदुतिष्ठ॥स्वध्वरावानो देव्याधिया॥दृशेचभासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः॥४१॥

का॰ १६॰३॰७॰ तिसपिण्ड को लेकर उठै ॥ अग्नि देवत्या पथ्या बृहती
र्षी दृष्टा। हे शोभन यागनिर्वाहक हे अग्ने उठि और उठिक
र देवनस्वभावक्रीडा परायण बुद्धि से हमें पालन करि। किंच हे अग्ने
कीर्ति सहित यद्वा साधु अभ्र करि आ। क्या करने को कि जो
तेज से सब प्राणियों के देखने को कैसा है तू कि रश्मिओं का प्रस
। आ अग्ने याहीति पदच्छेदः ॥४१॥

ऊर्ध्वऽऊषुणः॥ ऊर्ध्वऽऊषुणऽऊतये तिष्ठा देवो न सवि
ता॥ ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वया
महे॥४२॥

का॰ १६॰३॰८॰ ऊंचीबाहुओं प्राञ्चपिण्ड को लेवै॥ अग्नि देवत्योपरि
बृहती कण्वदृष्टा। हे अग्ने हमारी रक्षा के अर्थ ऊर्ध्व एव (सुत
र) अवस्थित हो। कैसे कि जैसे सविता देवता ऊर्ध्व हो हमें रक्षा कर
ता है तद्वत् तू ऊंचा होकर अन्न का दाता हो इति शेषः दानविषै जिस
कारण से अञ्जिभिर्वाघद्भिः हव्यवाहक ऋत्विजों सहित तुम्हें विविधि
आह्वान करते हैं तिस कारण ऊर्ध्व एव तिष्ठ, यद्वा अञ्जिभिः हव्यों
की व्यञ्जक रश्मियों सहित तुम्हें बुलाते हैं कैसी अञ्जियों करि कि
हविवोढार॥४२॥

सजातः॥ सजातो गर्भोऽअसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृतऽ
ओषधीषु॥ चित्रः शिशुः परितमांस्यक्तून्प्रमातृभ्यो
ऽअधि कनिक्रदद्गाः॥४३॥

का॰ १६॰३॰९॰ पिण्ड को नीचें उतारि नाभि के ऊपर हाथों से रखि

अश्व॰ गर्दभ॰ अज॰ को सजातः ४२॰ ४३॰ ४४॰ इन तीनों मंत्रोंसे क्रम पूर्वकएक-एक को देखि एक-एक मंत्र को जपै॥ अश्व देवत्या त्रिष्टुप्त्रित दृष्टा। अश्व मग्नी कृत्य स्तौति,हे अग्ने सो तू द्यावा पृथिवीके गर्भ में हो यहां उत्पन्न हुआहै। कैसाहै तू शोभन पूज्य देनेयोग्या पुरोडाशादि लक्षण ओषधीओंमें विहृत। नाना वर्णी ज्वालाओं सें विचित्र रूप। ऐसै उत्पन्न होनें के कारण शिशुवा शंसनीय। रात्र्युपलक्षित तमों को नाश करता माताओं(ओषधि बनस्पतिओंके सकाश सें अत्यन्त शब्द करता प्रकर्षें सें आ॥४३॥

स्थिरो॑भव॥ वी॒ड्व॑ङ्ग आ॒शुर्भ॑व वा॒ज्य॑र्वन्॥ पृ॒थुर्भ॑व सु॒षद॒स्त्व
म॒ग्नेः पु॑रीष॒ वाह॑णः॥४४॥

रासभ देवत्या त्रुष्टुवुष्णिग्वा। हे अर्वन् गमन कुशल चलन रहित होते तू दृढ काय हो। वेग वान् होकर अन्न का हेतु हो। विस्तीर्ण होते अग्निका सुखासन(स्वास्थेय)हो। कैसा है तू कि पुरीष वाहणमृदा का वहाने वाला वा पशव्य यवस का वहाने वाला॥४४॥

शि॒वो भ॑व॥ प्र॒जाभ्यो॒ मानु॑षीभ्य॒स्त्वम॑ङ्गिरः॥ मा द्यावा॑
पृथि॒वी अ॒भि शो॑ची॒र्मान्तरि॑क्ष॒म्मा वन॒स्पती॑न्॥४५॥ +

अज देवत्या पथ्या बृहती। अङ्गिरा ऋषियों से पूर्व सम्पादित होने वा अङ्गसौष्टवात् अङ्गिरा अग्नि तिस का संबोधन हे अङ्गिरः अग्नि रूप अज + मनु की संवंधी प्रजा के अर्थ तू शान्त हो। किंच द्यावा पृथिवी को मत संताप करि तथा अन्तरिक्ष को मत संताप तथा बनस्पतियों कोमत संता०॥४५॥

+ प्रजाभ्यः सर्वाभ्यो मृड॥ १२॰ ४॰ ४॰

प्रैतु॥ वाजीकनि क्रदन्नानेदद्रासभः पत्वा॥ भरन्नग्निम्पुरीष्यम्मापाद्यायुषः पुरा॥ वृषाग्निम्वृषणम्भरन्नपाङ्गर्भꣳ समुद्रियम्॥ अग्नऽआयाहि वीतये॥ ४६॥ +

का॰ १६॰ ३॰ १०॰ अश्वादिकों के ऊपर मृत्पिण्ड को रखै तिन्हों को अस्पर्श करते प्रैतु वाजी इस से अश्व के ऊपर वृषाग्नि इस से खर के ऊपर इति सूत्रार्थः॥ महापङ्क्तिस्त्र्यवसाना आद्यावर्धर्चावश्व देवत्यौ तृतीयोऽर्धर्चो रासभ देवत्यः। अश्वः प्रकर्षेण चलै क्या करिकै कि अत्यन्त हींसन करि और रासभ भी यवसवाहन के अर्थ प्रकर्ष करि चलै क्या करिकै कि नानदत् सोपहास मुच्यते-गर्दभ रटितेन सब दिशों को नादित करि कैसा है रासभ कि पतनशील। किंच यह अश्व पशव्य अग्नि को धारण करता कर्म के पूर्व मतनाश को प्राप्त हो अर्थात् कर्म समाप्ति पर्यन्त जीऔ ǂ॥ अथ रासभ मन्त्रः। सींचने वाला रासभ अग्नि को धारण करते प्रकर्षेण गच्छतु इति शेषः कैसे अग्नि को कि सींचने वाले फलाभिवर्षणसमर्थ को- आहुति परिणमेनेतिभावः। अपां गर्भम्- जल मध्येऽवस्थित वा मेघस्य जलों के मध्य में विद्युद्रूप को। समुद्रियम् समुद्र विषें वडवाग्नि रूप से उत्पन्न यद्वा समुद्रे अग्नि चयन में उत्पन्न तिसको- त्रयोह वै समुद्रा अग्निर्यजुषां महाव्रतꣳ साम्नां महदुक्थमृचामिति॥ का॰ १६॰ ३॰ ११॰ अग्ने इस मन्त्र करि रासभ से पिण्ड को लेकर ऋतꣳ सत्यं इस मन्त्र करि अज के ऊपर पिण्ड को रखै परिवृते निधान पर्यन्तमिति सूत्रार्थः॥ एकपदा गायत्री अग्नि देवत्या। हे अग्ने हवि भक्षण के अर्थ-

ǂ आयुःशब्देन मृत्याकर्मात्मकम्। यत्रसम्बन्धेनैवाश्वादीनां स्तुतिः क्रियते

+ अश्वमन्त्रे रासभो पादानं रासभो ह्यसावश्वतरस्यान् श्रुतिः पर रासभ उभिरासभमितिराह तद्रासभे प्रयुङ्क्ते दध्वातीति श्रुत॰ ६॰ ४॰ ३

+ पै- मृ॰ अ॰ अ- पी॰ दू॰॥ ४६॥

आगमनकरि॥४६॥

ऋतꣳसत्यम्॥ ऋतꣳ सत्यमृतꣳसत्य मग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः॥ ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳशिवमायन्तमभ्यत्रयुष्माः॥व्यस्यन्विश्वाऽअनिराऽअमीवान्निषीदन्नोऽअपदुर्म्मतिंजहि॥४७॥†

अग्निदेवत्याद्वा-गा॰ऋतसत्य शब्दों से आदित्य अग्नि विवक्षितहैं ऋत॰आदित्य॰सत्य॰अग्नि॰ताद्दश उभय रूप अग्निको आहरण करताहूं इतिशेषः।ऋतꣳसत्यमिति द्विवचनमादरार्थम्॥का॰१६॰३॰१३॰ देव पितृकार्यविमुख अनड्वापुरुषतिसेअध्वर्युदेखेपूर्ववत्जलतीहुई आहवनीय अग्निके पासमें स्थित॥आग्नेयी सा-गा॰अपशव्य अग्निको अङ्गिरस-इव हरण करते हैं।का॰१६॰३॰१४॰उखा सम्भरणार्थे उद्धृत आहवनीयके उत्तर में पूर्वमेव किये परिवृत्त आच्छादित प्रदेश विषें ओषधयः इन मन्त्रों से पिण्ड को स्थापनकरै॰कैसे परिवृत्त में कि उद्धत कृतोल्लेखन अवीक्षित पूर्वद्वार सिकताकरिव्याप्त में इति॥त्रिष्टुबनुष्टुभावोषधिदेवत्ये व्यस्यन्नित्यर्द्धर्चौऽग्निदेवतः। हे ओषधयः तुम इस अग्नि को अभ्युत्थानादिसे प्रति हर्षित करौ। कैसे अग्नि को कि शान्त। इस प्रदेश में स्थित तुम को अभिमुखी करि आतेहुए को। एव मर्धर्चेनोषधीरुक्त्वाग्निमाह। हे अग्ने तू यहां निविशमानहुआ सब हमारी दुर्मति दुर्बुद्धि-नास्तिदत्तं नास्तिहुतं को दूरि करि अतिवृष्ट्यादिकों ओ व्याधियों को निकालकरि॥४७॥

† ऋ-मृ॰अ॰।अ-म॰।इ॰।ओ-हि।उ॰॥४७॥

ओषधयः प्रति॥ गृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः॥ अयम्वो गर्भऽ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत्॥ ४८॥

हे ओषधी औ इस अग्नि को स्वीकार करो। तुम कैसी हो कि पुष्प[illegible] प्रशस्त पुष्पोंसेवा: शोभन फल वाली। किंच प्राप्त काल तुम्हारा [illegible]हो के यह अग्नि पुरातन गर्भ योग्य स्थान को प्राप्त हुआ है॥४८॥

विपाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसोऽअमीवाः॥ सुशर्म्मणो बृहतः शर्म्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ॥४९॥

का॰ १६॰ ३॰ १५॰ विपाजसा इस मन्त्रसे कृष्णाजिन बद्ध पिण्डको खो[illegible] छाग के रोमले अश्वादिक पशुओं को ईशान दिशा प्रतिछोडे॥ अग्नि देवत्या त्रिष्टुबुत्कीलः कात्य दृष्टा। हे अग्ने शत्रुओं राक्षसों और व्याधिओं को तू विशेष करि निवर्त्तन करि कैसा है तू कि विस्तीर्ण बल करि अत्यन्त दीप्यमान। एव प्रत्यक्षमुक्त्वा परोक्षमाह अग्नि की अभ्यनुज्ञा(परिचर्या में वर्तमान हम शरण वा सुख को प्राप्त हों। कैसी अग्नि के कि शाधु सरणवा शोभन सुख वाले। और। सुखेन आह्वान करने समर्थ के॥४९॥

अ॰ ५ आपोहि॥ष्ठामयो भुवस्तानऽऊर्ज्जे दधातन॥महेरणाय चक्षसे॥५०॥

का॰ १६॰ ३॰ ३६॰ पलाशत्वक् कथित जल को पिण्ड पै तीन ऋचाओं से डाले॥ अब्देवतास्तिस्रोगायत्र्यः सिन्धुद्वीप दृष्टाः॥ हि शब्द [illegible]र्थः प्रसिद्ध्यर्थोयस्मादर्थोवा। हे जल तुमही सुखकी भावयित्री प्राप्त करने वाली हो। जिसकारण से सुखकी भाव यित्री हो वास्ता

न पानादि का हेतु होनेसें जलका सुखोत्पादकत्व प्रसिद्ध है। तैसी तुम हमें भव दीय रसानु भावार्थ स्थापन करौ जैसे हम सब भोग्यर सों के भोक्ता होंवे तैसें हमें करौ इतिभावः। किंच बडे रमणीय दर्शन के अर्थ स्थापन करौ मह द्रमणीय दर्शन ब्रह्म साक्षात्कार लक्षण वोह हमारा करौ- हमें ब्रह्म साक्षात्कार योग्य करौ इतिभावः॥यस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातं स्यादिति छान्दोग्य श्रुते॥५०॥

योवः॥शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेहनः॥उशतीरिव मातरः॥५१॥

हे जल तुम्हारा जो शान्त तम सुख का हेतु रस है इस कर्म वा इसलोक में स्थित हमें तिस रस के भागी करौ तिस रस को प्राप्त करौ इतिभावः। तत्र दृष्टान्तः प्रीतियुक्ता माता जैसे अपने स्तन का रस बालक को पिलाती हैं तद्वत्॥५१॥

तस्माऽअरंम्॥गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ॥आपो जनयथाचनः॥५२॥

हे जल तुम संबंधि पर्याप्ति रस विशयक वै तृप्ति वा सदा तृप्ति तिसे हम चलते हैं। निवास, जगत के आधार भूत जिस आहुति परिणाम भूत रस के एक देश करि तुम ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त जगत् को जिन्वथ तर्पण करते हो जिन्वतिः प्रीति कर्मा पश्चाहुति क्रमेणेतिभावः। किंच हे जल हमें तत्र भोक्तृत्व करि सम्पादन करौ तिस रस के भोक्ता हमें करौ इत्याजान देव माशास्यते इतिभावः। यद्वास्यान्वयोऽयमर्थः। जिस के निवास करि तुम प्रसन्न होते हो तिस रस की

के अर्थ तुम्हें अतिशय हम प्राप्त होने हैं किंच हे जल तुम हमें
समर्थ करो॥५२॥

मित्रः सᳬसृज्य॥ पृथिवीम्भूमिञ्च ज्योतिषा सह॥ सुजात
ञ्जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सᳬसृजामि प्रजाभ्यः॥५३॥

का॰१६·३·१८· अजके आदिले पहिलें ग्रहणकिये लोम तिन्हों करि पिण्ड को मिश्रित करे॥ मित्रदेवत्योपरिष्टाद्बृहती। मित्रः आदित्य देवता द्युलोक और इस मृत्पिण्ड रूपा भूमि को अज के लोमों से एकी करि मुझ अध्वर्यु के अर्थ देवे इति शेषः॥ और मैं शोभनोत्पन्न तुम जात वेद जातप्रज्ञान अजलोमाख्य अग्नि को मृत्पिण्ड सें एक कर्त्ता हूं किमर्थं कि प्रजा के रोग के अभाव के अर्थ॥५३॥

रुद्राः सᳬसृज्य॥ पृथिवीम्बृहज्ज्योतिः समीधिरे॥ तेषा
म्भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते॥५४॥

का॰१६·३·१९· सूक्ष्म सिकता लोह किट्ट पाषाण चूर्णसे पिण्डको मिश्रित करे॥ रुद्रदेवत्यानुष्टुप्। जे रुद्र पार्थिव पिण्ड को सूक्ष्म सिकता लोह किट्ट पाषाण चूर्ण से एकी करि कै प्रौढ अग्नि (उषास्य अग्नि) को भले प्रकार दीपन (पालन) करते हुए। तेषां फल माह तिन रुद्रों की शुद्ध दे दीप्यमान अनुपक्षीण एव देवताओं के मध्य में दीप्ति प्रकाश करती है॥५४॥

सᳬसृष्टाम्वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्म्मण्याम्मृदम्॥ हस्ताभ्याम्मृ
द्वीङ्कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम्॥५५॥ ॥५५॥

का॰१६·३·२०· तीनि ऋचाओं से मृत पिण्ड को भले प्रकार दुला

वे॥ द्वे सिनी वाली देवत्ये तृतीया दिति देवत्या तिस्रो नुष्टुभः॥सिनी वाली चन्द्र कला युक्ता मावास्याभि मानिनी देवता मृदाको हाथों से कोमल करि के फिरि तिस मृदा को उखा कर्म योग्याकरै कैसी मृदा को कि बुद्धिमान वसु और रुद्रों से सेवित वा सूक्ष्म सिकतादि करि संयोजित॥५५॥

सिनीवालीसुकपर्द्दा॥सुकुरीरास्वौपशा॥सातुभ्यमदिते मह्योषान्दधातुहस्तयोः॥५६

हे अदिते (अदीना॰ देवमातः) हे महति पूर्व मन्त्रोक्ता सिनी वाली तू हाथों में उखा को स्थापन कीजियो। कैसी है सिनीवाली कि सुकपर्द्दा शोभन स्त्रियों के उचित केशबन्धवाली। सुकुरीरा स्त्रियों से शृङ्गारार्थ शिर में धार्य मान शोभन कनकाभरण युक्ता॰सुमुकुटा। स्वौपशा शोभन शयन विदग्ध विलास चतुर औपश॰ अवयव समूह जिस के वोह॥५६॥

उखाङ्कृणोतु॥उखाङ्कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया॥ माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निम्बिभर्तु गर्भ॰आ॥मखस्य शिरोसि॥५७॥ उ॰आ॥अ॰।म-सि।इ॰॥५७॥

अदिति सामर्थ्य और बुद्धि हाथों से उखा को करो सो कीहुई उखा मध्य भाग में समन्तात् अग्नि को धारण करै तत्र दृष्टान्तः जैसे जननी उत्सङ्ग विषे पुत्र को धारण करती है तद्वत्॥ का॰ १६॰३॰३३॰ यजमान पत्नी के तिस पिण्ड से मृदाको ले द्वादशाङ्गुलि स्थान लिखित आषाढसंज्ञक इष्टका करते यजमानपिण्डसे

मृदाले आपही उखाकरै एक पशुपक्षे प्रादेशायामविस्तारोर्ध्वोच तुरस्रा पञ्च पशुपक्षे त्रिभागोन त्रयोविंशति अङ्गुल आयाम विस्तारा ऊर्ध्वा प्रादेशेनैव इति॥ मृत्पिण्ड देवत्यं या-गा॰ हेमृ त्पिण्ड तू यज्ञका शिर है †॥५७॥

वसवस्त्वा॥ कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषङ्गौपत्यᳬं सुवीर्य्यᳬं सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्द साङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषङ्गौपत्यᳬं सुवीर्य्यᳬं सजातान्यजमानायादित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषङ्गौपत्यᳬं सुवीर्य्यᳬं सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषङ्गौपत्यᳬं सुवीर्य्यᳬं सजातान्यजमानाय॥५८ †

का॰१६॰३॰२६॰ यजमान मृदा को उखा तल के लिये प्रादेशमात्र चौडावै॥ उखा देवत्यानि अ॰इ॰ त्र॰ यजूᳬंषि उ॰ ब्रा-अ॰ हे उखे वसवः देवविशेषाः गायत्री छन्द करिकै तुझे जैसे अङ्गिरस मुनियोंने किया तैसै करें यतः तू की हुई स्थिरा है और पृथिवी है अतः तुझे वाञ्छि बनाताहूं। हे उखे मुझ यजमान विषें पुत्रादि प्रजा को स्थापन करि और धन की पुष्टि को स्थापन करि गोपतित्व धनस्वामित्व को मुझ-करि शोभन वीर्य (वीरकर्म) को मुझ-करि समानोदरोत्पन्न

† शतपथब्राह्मणमसिशिरसकृष्णादिहाधिकशेष पाशिरः प्राणः

† व-प।अ॰।रु-प।इ॰।आ-प।उ॰।वि-य।त्र॰।५८॥

न्त भाइयों को सुखकरि॥ का०१६·३·२७·चौडे करने के अनन्तर चौडे तल के सब प्रान्तों को ऊंचे लेकरि प्रथमपिण्डिका के अन्त से जोडे॥ हे उखा रुद्राः त्रिष्टुप् छन्द करि के तुम्हे करें तू अन्तरिक्ष रूपा है इति विशेषः पूर्ववत्॥ का०१६·३·२८·तिस उखा को पतली मृदा से लीपि कर जल से चिकनाय द्वितीयपिण्डिका को पूर्व पिण्डिका के ऊपर जोडे॥ आदित्याः देवा जगती छन्द करि तुम्हे करें तू द्यो रूपा है विशेषः शेष व्याख्या प्राची॥ का०१६·३·२९·पूर्वोक्त माना पहिले न पाने की उखा करै॥ वैश्वानराः सबनर लाते हैं वा सब नरों को लाने वाले वा सब नरों के संबंधी वा सब नरों से हित ऐसे सब देवता हे उखे तुम्हे अनुष्टुप् छन्द से करें और की हुई तू दिग्रूपा है शेषं तुल्यम्॥५८

अदित्यै रास्नासि । अदितिष्टे बिलं गृभ्णातु॥ कृत्वाय सा मही मुखाम्मृन्मयीं योनिमग्नये॥ पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति॥५९॥ अ-सि।अ०।अ-तु।कृ०।क्र-ति।उ०॥५९॥

का०१६·३·३०· उखा के ऊर्ध्व मान को तीन विभाग करि ऊपर के तीसरे भाग में सर्वत्र मृन्मयी मेखला करै और तल से मेखलान्त प्रति दिशा चतुर्दृत्ती आगे मेस्तन युक्ता करै॥ रास्ना देवत्यम् या-गा०हे रेखे तू अदिति रूपा उखा की काञ्ची गुण स्थानीया (करधनी) है। का०१६·४·३· उखा के मुख को स्पर्श करै॥ उखा देवत्यम् या-द्व०हे उखे अदिति देवमाता तेरे बिल (मध्य) को ग्रहण करै॥ का०१६·४·४· एवं उखा को निष्पादन करि भूमि विषें स्थापन करै॥ अदिति देवत्या उष्णिक्+ सा पूर्वोक्ता अदिति उखा को निष्पादन करि पुत्रों (देवताओं) से यह क

+ उष्णिगनुष्टुब्वा महीधरः

[illegible] देवी हुई यह कया कि हे पुत्र श्री इस उखा को तुम तपा श्री कैसी उ[illegible] कि बड़ी मूलकार्य भूत। अग्नि की (के अर्थ) स्थान भूता॥ ५९॥

वसं वस्त्वा॥ धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वेत्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु॥ ६०॥ +

का॰ १६.४.८. दक्षिणाग्नि विषें प्रदीप्त सप्त अश्व लेण्डों से उखा को प्रति मंत्र करि अध्वर्यु धूपन करै धूमाय मान एक-एक अश्व लेण्ड-को लेकर एक-एक मन्त्र से उखा के भीतर और बाहिर में भ्रमावे॥ सप्त यजूंष्युखा देवत्यानि १.३. आर्षी गा॰ २.४. यजुषी ५.७. या-उ॰६ प्रा-गा॰। हे उखे आठो वसु गायत्री छन्द करि अङ्गिरस-इव तुम्हें धूपयन्तु, अश्व शकृज्जन्य धूप से संस्कार करें। एकादश रुद्र त्रिष्टुप् छन्द करि तुम्हें॰-करें। आदित्या जगती छन्द करि॰। सब नरों के हितसब देवता अनुष्टुप् छ॰। इन्द्र तुम्हें संस्कार करै वरुण और विष्णु शेषं पूर्ववत् सुगमम्॥ ६०॥

का॰ ६ अदितिष्ट्वा॥ देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानान्त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतूखेधिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिर

+ व-त॰। अ॰। रु- त्र॰। इ॰। आ- ग्र॰। उ॰। वि- त्र॰। क॰। इ- तु॰। ल॰। व- तु॰। अ॰। वि- तु॰। इ॰। ६०॥

स्व छ्रूपयन्तूखेग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सध
स्थे ऽअङ्गिरस्वत्पचन्तूखेजनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्व
देव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽअङ्गिरस्वत्पचन्तूखे॥६१॥

का॰ १६.४.७. अषाढ उखा विश्वज्योति ओं के पाकार्थ अभ्रि से चतुरस्र गर्त खोदे॥ आर्षी त्रि॰ अवट देव॰। हे गर्त्त अदिति देवी पृथिवी के ऊपरि भाग में तुम्हे खनें जैसे अङ्गिरों ने तू खोदा तद्वत्। कैसी है अदिति कि सव देवताओं का समूह विद्यमान है जिस में वा श्रेष्ठ समस्त देवता इसमें हैं॥ का॰ १६.४.११. अधो मुख उखा को आषाढ के उत्तरतः गर्त में स्थापन करे॥ पञ्चयजूंष्युखा देवत्यानि १.२. प्रा॰ त्रि॰ ३. आर्षी त्रि॰ ४ आर्षी अ॰ ५ आर्षी पं॰। समस्त देवताओं सहित देवताओं की पत्नी दीप्यमाना ओषधीएँ † पृथिवी के ऊपर अङ्गिरसः इव हे उखे तुम्हे स्थापन करें १॥ का॰ १६.४.१२. उखास्थापन के अनन्तर विश्वज्योति को चुप के गर्त में रख अपण से सवों को ढक दक्षिणाग्नि से लाई वन्हि करि उखा को दीपन करे॥ विश्वदेव युक्ता वागभिमानिनी देवीएँ पृथिवी के ऊपर हे उखे अङ्गिरस इव तुम्हे समंतात् दीपन करें॥२॥ का॰ १६.४.१४. सामर्थ्य से उखा के ऊपर स्थित अपण में छिद्र करिके तिस से उखा को देखता तीनि यजुषीओं को जपे॥ विश्वदेव युक्ता वरूत्री * अहोरात्राभिमानिनी देवएँ पृथिव्या ऊपरि अङ्गिरस इव हे उखे तुम्हे अर्पे, पच्यमानता को सम्पादन करें॥३॥ विश्वदेवयुता ग्ना ‡ देवीएं छन्दोभिमानी देवता पृथिवी के ऊपर पचें॥४॥ जनय ** नक्षत्राभिमानी देवी

देवपत्नीशब्देनौषधयः तथा च श्रुतिः ओषधयो वै देवानांपत्न्य इति शत॰ ६.५.४.४.

* श्रुतेर्वरूत्रिशब्देनाहोरात्राणि शत॰ ६.५.४.६. अहोरात्राणि वै वरूत्र्यो ऽहोरात्रैर्हीदं सर्वं वृतमिति –

† अ-ट। भू॰। दे-खे। इ॰। धि-खे। उ॰। व-खे। अ॰। ग्ना-खे। ल॰। ज-खे। आ॰॥ ६१॥
‡ छन्दांसि ह वै ग्ना छन्दोभिर्हि स्वर्गंलोकं गच्छन्तीति शत॰ ६.५.४.७. श्रुतेर्ग्नाशब्देन छन्दांसि
** नक्षत्राणि वै जनय इति शत॰ ६.५.४.८.

हे उखे तुझे पचें कैसी हैं जनय: कि अछिन्न है पतन जिन्हों का०सि स्पष्टम्॥५॥६१॥

मित्रस्य चर्षणी धृतः॥ मित्रस्य चर्षणी धृतोवो देवस्य सानसि॥
द्युम्नश्चित्र श्रवस्तमम्॥६२॥

का० १६.४.१५. अपण को पाकान्त डाले॥ मित्र देवत्या गायत्री विश्वा दृष्टा। मित्रस्य० आदित्य के अवः रक्षण द्युम्नं यशवा अन्न को स्तुति वा याचना करते हैं इतिशेषः। कैसे मित्र के कि मनुष्यों के धारण करनेवाले दीप्यमान। कैसे अवः को कि सनातन वा फल दान शील। कैसे द्युम्न को कि चित्रश्रवस्तमं अतिशयेम अने कों से सुनते हैं अत्यन्त श्रवणीय प्रार्थना करते हैं इतिभावः॥६२॥

देवस्त्वा सवितो द्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या॥
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण॥६३॥

का० १६.४.१८.१९. भस्मी भूत अपण को उखा से परें सरकावे॥ सवितृ देवत्या वृहती। हे उखे सविता देवता अपनी सामर्थ्य और बुद्धि से तुझे अपण से प्रकाशी करे। कैसा है सविता कि शोभन हैं हाथ जिसके शोभन हैं करस्था अंगुली जिसकी। शोभन हैं भुजजिसके॥ का०१६.४.१९.२०. अव्यथमना इति अपण को सरकाय अषाढा को बाहिर निकाल उखा को ऊर्ध्व मुखी करे॥ हे उखे सविता से निकाली हुई व्यथा को अनाप्नुवन्ती पृथिवी में स्थित हुई तू प्राच्यादि दिशा और आग्नेयादि विदिशाओं को समन्तात् पूर्ण करि आहुति रस करि के इतिशेषः॥६३॥

उत्थाय बृहती ॥ भवो ईतिष्ठ ध्रुवा त्वम् ॥ मित्रैतां त ऽ उखा
म्परिदिदाम्य भित्या ऽ एषा माभेदि ॥ ६४ ॥

का॰१६॰४॰२१॰२२॰ हाथोंसे उखा को ले पाक से ऊपर निकाले ॥ बृ
हती पूर्वोऽर्धर्च उखादेवत्य: उत्तरार्धो मित्र देवत्य: । हे उखे तू उठि ब्र
स अवस्थैवाहि एआ आ करवडी हो तत: उत्तिष्ठ अपने कर्म में प्रवर्त हो
यत: तू स्वभावत: स्थिरा है । उकार: पादपूरण: ॥ का॰१६॰४॰२२॰ हाथमें
ग्रहणकी उखा को उत्तरत: पूर्व स्थापित किसी पात्र में स्थापन करै ॥ त
त: विश्वज्योतिका चुपके से उद्वपन है ॥ हे मित्र सर्व प्राणियोंके हितकारि
न्देव इस उखाको तुम्हें परित्राण के अर्थ देताहूं किमर्थ कि तिस के अभेद
नार्थ । और यह उखा तुम करि ग्रहण की हुई विदीर्ण मत हूजियो ॥ ६४ ॥

वसं वस्त्वा ॥ वसं व स्त्वाछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रा
स्त्वाछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा छृन्दन्तु जा
गतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वेत्वा देवा वैश्वानरा ऽ आछृन्दन्त्वा
नुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥ +

का॰१६॰४॰२३॰ चारि मन्त्रों से चारि वार अजा दुग्ध को उखा में ओजे ॥
उखा देवत्यानि चत्वारि १॰सा-अ॰+२॰३॰४॰ यजूꣳषि । हे उखे इत्यादि चा
रों मन्त्रों का अर्थ काण्डी ६॰ वत् परन्तु वो हां धूपयन्तु यहां आछृन्दन्तु
सब ओंडी से सींचें ॥ ६५ ॥

+ऋचा-मात्रेण

आकूतिमग्निम् ॥ प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुज
ꣳ स्वाहा चित्तम्विज्ञातमग्निम्प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृति
मग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानर

+ व-त् । औ-त् । रु । आ-त् । उ । वि-त् । ऋ॰ ॥ ६५ ॥

य स्वाहा ॥६६॥ आ-हा।प्र०म-हा।दृ०चि-हा।उ०वा-हा।ऋ०क-हा।ल०

का०१६.४.३०. एवं उखा सम्भरण को समाप्त करि और अन्य इष्टका करिकै फाल्गुण अमावास्या में दीक्षा करि उद्ग्रभण होम काल में प्राकृत सोम याग में किये आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहेत्यादि ४.७. पांच उद्ग्रभणों को होमिकै अग्निचयन सम्बन्धी सात उद्ग्रभण मंत्रों को प्रति मन्त्र होमैं ॥ सप्तोद्ग्रभण संज्ञानि लिङ्गोक्त देवत्यानि १.५.६.या-पं०२ या-त्रि०३.४.या-ज०। अस्मदीय: संकल्प अग्निचयनानुष्ठान विषय तिस संकल्प प्रेरक अग्नि को उद्देश करि स्वाहा सुहुतमस्तु॥१॥मन: २ वाच:३ चित्तं ४ स्पष्टानि॥ मन्वन्तरकारी प्रजापति के अर्थ स्वाहा॥५॥ समस्त नरों के अनुग्राहक विश्वानर पुत्र वा अग्नि के अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु॥६॥६६॥

विश्वो॑दे॒वस्य॑॥ने॒तुर्म्मर्तो॑वुरीत स॒ख्यम्॥ विश्वो॑ रा॒यऽ इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒स्वाहा॑॥६७॥

चतुर्थेध्या०८ व्याख्याता॥७॥ इतिसप्तोद्ग्रभणानिसमाप्तानि॥६७॥

मासुभि॑त्था मासुरि॑षो॒म्म्नंधृ॒ष्णु वी॒रयं॑स्व॒सु॥ अग्नि॑श्चे॒दं क॑रि॒ष्यथ:॥६८॥

का०१६.४.३१. औद्ग्रभण होम के अनन्तर दीक्षणीयके शेषको समाप्त करि कृष्णा जिन दीक्षादि दण्डोच्छ्रयणान्त प्राकृत कर्म को करिकै अध्वर्यु वा यजमान ईशानाभिमुख वा पूर्व मुख खडे हो दो ऋचाओंसे समिद्ध मान आहवनीय में मुञ्जतृण निर्मित पक्ष नीड शण निर्मित पक्षनीड तिन्हों से मध्य में छादित उखा को आरोपण करै॥उखा देव-

स्ये द्वे गायत्री त्रिष्टुभौ प्रथमाया स्तृतीय पादोऽग्निर्देवतः। हे मातः हे उ
खे तू सुतरा विदीर्णा मतहो इससे अभिन्नत्व भले प्रकार कहा तथा सु
तरा हिंसिता मतहो॰ इस सै न फूटना भले प्रकार कहा॰ अर्थात् सर्वात्म
ना करि द्वैधी भाव (भेद) लेशका पृथग्भाव फूटना सो दोंनो तेरे मतहें
किंच हे उखे प्रगल्भ जैसें भले प्रकार अग्नि धारण लक्षण वीर्य कर्म
करि। किंच अग्नि और तू इस हमारे कर्म को समाप्ति पर्यन्त करो॥६७॥

दृꣳहस्व देवि॥ पृथिवि स्वस्तयऽआसुरी माया स्वधयाकृतासि॥
जुष्टन्देवेभ्यऽइदमस्तु हव्यमरिष्टात्त्वमुदिहि युज्ञेऽअ
स्मिन्॥६८॥

हे पृथिवि! देवि! हे उखे यजमान की क्षेम के अर्थ दृढा हो। कैसे तू य
ह कहिते हैं अन्न के निमित्त करि तू आसुरी माया प्राणसंबंधिनी प्र
ज्ञा की हुई वा असुर संबंधिनी अचिन्त्य रचना रूप चित्र वस्तु हो कैसे
जैसे प्रकाशी सो हे अर्थात् स्तन रचना युक्ता निष्पन्ना है। किंच हे उखे
यह हवि उख्याग्नि में होष्यमाण देवताओं के अर्थ प्रिय हो अर्थात् ते
रे प्रसाद से देवताओं के अर्थ रुचै। तू भी अनवखण्डिता हुई इस व
र्त्तमान यज्ञ में प्रकट हो॥६९॥

द्रन्नः सर्पिरासुतिः॥ प्रत्नोहोतावरेण्यः॥ सहसस्पुत्रोऽअद्भु
तः॥७०॥

का॰ १६॰४॰३३॰३५॰ उखा विषें अभितापित होते अग्नि में प्रादेश मि
ता त्रयोदश संख्याक समिधों का होम करै तिन्हें क्रमसे कहि तेहें श्रा
दिमें घृताक्त क्रमुक (धमन) समिधा होमें॥ अग्नि देवत्या गायत्री सोमा

ऋति दृष्टा। ऐसा अग्नि कार्मुकी समिधको भक्षण करै इति शेषः। कैसा कि वृक्षहैं मदनीय अन्नजिसके वोह। घृतहै आसवस्थानीय मादक जिसका वाघृत आहारत्व करिडालते हैं जिस्में। पुरातन देवताओं का आह्वान करनेवाला। वरणीय। बलकापुत्र † आश्चर्यरूप अर्थात अनन्य सदृश॥ ७०॥

† मन्थनेनहिअग्निरुत्पद्यमानःहृद्यते

परस्याऽअधि॥ सम्वतोवराँ २॥ऽअभ्यातर॥ यत्राहमस्मिताँ २॥ऽअव॥ ७१॥

का० १६·४·३६· विकङ्कततरुकी समिधको होमैं॥ आग्नेयी गायत्री आङ्गिरसो विरूप दृष्टा। इत अध्यायान्तमाग्नेय्यः। संवतः † भले प्रकार जाते हैं योधा जहां वोह संग्राम शत्रुसंबंधिनी सेनाके संग्रामसे हमारे मनुष्योंको अभिमुखहो अर्थात् दुःखसे तारै। किंच जिसजनपदमें हम हैं तिसमें पाले वात्सल्यकरै॥ ७१॥

† सङ्गमसमसु० निघं० २·१७·

परमस्याः परावतः॥ परमस्याः परावतोरोहिदश्वऽइहागहि॥ पुरीष्यः पुरुप्रियोग्नेत्वन्तरामृधः॥ ७२॥

का० १६·४·३७ तीसरी उदुम्बर तरुकी समिधको होमैं॥ अनुष्टुप् आरुणि दृष्टा। हे अग्ने अत्यन्त दूर देशसे इस कर्ममें तू आ। और आकै संग्रामों को तरि अर्थात् शत्रुओं कोविनाशि। कैसाहै तू कि रोहित अश्वोंवाला †। पशव्य बहुतोंका प्यारा॥ ७२॥

† रोहितोग्नेरितिनिघं० १·१५·

यदग्ने॥ यदग्नेकानिकानि चिदाते दारूणि दध्मसि॥ सर्वन्तदस्तु ते घृतन्तज्जुषस्वयविष्ठ्य॥ ७३॥

का० १६·४·३८· विना कुठारके छिदी वातादिकसे टूटी यज्ञिय तरुकी

चौथी समिध धारण करे॥ द्वे अनुष्टुभौ जमदग्निदृष्टे। हे यविष्ठ्य हे अग्ने जे कोई काष्ठ तुम्हें जो हम आरोपण करते हैं सो सब काष्ठजात तेरे अर्थ घृतवत् प्रियहो तिस दारुजात को तू सेवन करि॥७३॥

यदत्ति॥ यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो ऽअतिसर्प्पति॥ सर्व्वन्तदस्तु ते घृतन्तज्जुषस्व यविष्ठ्य॥७४॥

का॰१६.४.३९. पृथिवी से लगी हुई पांचमी समिध डाले॥ नीचे पडे रहने के कारण जो दारु पिपीलिका सदृश क्षुद्रजीव का भक्षण करती है और जो वल्मीक दारु अति सर्पण करती है। हे यविष्ठ्यादि पूर्ववत्॥७४॥

अहरहः रप्रयावम्॥ अहरहरप्रयावम्भरन्तोश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै॥ रायस्पोषेण समिषा मदन्तोग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम॥७५॥

का॰१६.४.४०. आठ ऋचाओं से प्रति ऋचा करि आठ पलाशी समिधा धारण करे॥ द्वे त्रिष्टुभौ नाभानेदिष्ठदृष्टे। हे अग्ने तेरे आश्रय होके हम विनाश को न प्राप्त होंवें। क्योंकि प्रतिदिन अप्रमत्त जैसे तैसे अग्नि के अर्थ समिद्रूप भक्ष्य सम्पादन करते हैं। तत्र दृष्टान्तः वाजिशाला में अवस्थित अश्व के अर्थ जैसे प्रतिदिन प्रमाद छोडि घास देते हैं तद्वत्। तथा दक्षिणा लक्षण धन की पुष्टि और अन्न से तुम्हें प्रसन्न करते॥७५॥

नाभा पृथिव्याः॥ समिधाने ऽअग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे॥ इरम्मदम्बृहदुक्थं यजत्रञ्जेतारमग्निम्पृतना

सुसासहिम्॥७६॥

नाभा।-पृथिवी रूपा उरवाके मध्य दीप्य मान आहवनीयनामा में अग्नि(तिस अभिमानी देव) को बडे धन के पोषण के अर्थ हम आह्वान करते हैं। कैसे अग्नि को कि अन्न करि तृप्त होता। वडे हैं उक्थ (शस्त्र)जिस के। यजनीय। संग्राम में जय शील। हमारे शत्रुओं का अभिभविता र अग्ना वित्या हवनीय विषयो ग्नि शब्दः जेतारम ग्निमित्यधिष्ठात्रग्निविषयः॥७६॥ एषावृनाभिः पृथिव्यैयद्वै षएतत्समि ध्यतऽइति शत॰६६३५॥

याः सेनाः॥याः सेनाऽअभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाऽउत॥ येस्तेना येच तस्करास्ताँस्तेऽअग्नेपिदधाम्यास्ये॥७७॥

षडनुष्टुभः। जो कोई पराई सेना हमारे आभि मुख्य करि आगमन शीला आवै तिस आनेवाली और जो सेना सर्वतः हमको ताडै तिस उगणाः-उद्यता युध गणो पेतावहुस्तोमा। और जे स्तेनाः-गुप्तचरनेवाले और जे तस्कराः-प्रकटचोर। हे अग्ने तिन पूर्वोक्त सेनादिकोंको तेरे मुख में भक्षणार्थ डालताहूं अर्थात् सवदुष्टोंको भक्षण करि॥७७॥ तस्कराःतस्कृतःविपायनि रु॰नि॰३।१४॥

दꣳष्ट्राभ्या म्मलिम्लून्॥ दꣳष्ट्राभ्याम्मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराँ२॥ऽउत॥ हनुभ्याꣳस्तेनान्भगवस्ताँस्त्वंखाद सुखादितान्॥७८॥

गुप्त और प्रकट दो प्रकार के चोर तिन्हों में प्रकट दो प्रकार के प्रकट आरण्य और मार्ग में छीन-छीन के भागने वाले तिन्हों से भी अति प्रकट निर्भया ग्राम में आके बन्दीकार-डाकादेनेवाले तिन्हें यहाँ मलिम्लुच कहि ते हैं मल-पापाधिक्य इन्हों का मलिन ते से हो-

म्लोचन्ति॰ अदृश्य होते हैं जन वावन में ॥ दन्त पङ्क्ति में जिन्ह तीक्ष्णदां तों से क्रमुकादिक भक्षण करते हैं तिन दंष्ट्राओं की राक्षसी संज्ञा॥ न तः पुरोवर्त्ती वाहिर दृश्यमान दांत जम्भ्या॰ जम्भा वर्ति को और दांतों से लीन हनू। अर्थः। दंष्ट्राओं से मलिम्लुचों और जम्भों से तस्करों हनूओं से स्तेनों को पीडि कै हे महदैश्वर्य युक्त पूजनीय तिन सब पूर्वोक्त भले प्रकार भक्षण योग्यों को पुनर्जीवन रहिताजैसेहो भक्षण करि। वा सुखादित को समीप करिकै भक्षण करि॥७८॥

येजनेषु॥ मलि म्लवस्ते नासुस्तस्करा वनै॥ येकक्षेष्व घायवुस्तांस्तै दधामिजम्भयोः॥७९॥

ग्राम वर्तिओं मेंजे मलिम्लुचः॰ पूर्वोक्त वन्दी कार और जे वन में स्तेनाः॰ गुप्त चोर॰ तस्कर॰ प्रकट चोर और जे नदी पर्वत गहन में पराये पापाभि लाषी हे अग्ने तिन चतुर्विधों को तेरी जम्भाओं दंष्ट्राओं के भक्षण के अर्थ स्थापन करताहूं॥७९॥

योऽअस्मभ्यम्॥ योऽअस्मभ्य मरातीयाद्यश्चनो द्वेषतेजनः॥ निन्दाद्योऽअस्मान्धिप्साच्च सर्वन्तम्मस्मसा कुरु॥८०॥ १ भस्मसा॰ इतिवापाठः

पहिलें चोरोंका भेद दिखलाया अब शत्रुओंका भेद कहितेहैं॰ शत्रुचारि प्रकारके॰ अराती॰ द्वेषी॰ निन्दक॰ जिघांसु॰ तत्र दातव्यत्व करि प्राप्तधन को जो नहीं देता वोह अराती १ जोकार्य काविघातकरै वोह द्वेषी २ वाग्दोर्जन्य मात्र जोकरै वह निन्दक ३ हन्तुमभि

मा॰ जिघांसु ४ तिन्हीं को अग्नि के अर्थ समर्पण करै ॥ अर्थः ॥ जो मनुष्य हमारे अर्थ अरातित्व की इच्छा करै। और जो जन हमारे कार्य नाश से प्रीति उत्पादन करै। जो हम को निन्दे वा वादुःख देवै ॥ और जो हम को दम्भन की इच्छा करै जिघांसे। हे अग्ने तिन सवों (चतुर्विधों) को चूर्णी करि अर्थात् चवा के भक्षण करि ॥ ८० ॥

सꣳशितम्मे ॥ सꣳशितम्मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्य्यम्बलम् ॥ सꣳशितं क्षत्रञ्जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१

का॰ १६.४.४१.४२ द्वादशी सꣳशितम् को क्षत्रिय यजमान की इच्छा से धारण करै॰ अन्नमीउ देषाम् को पुरोहित यजमान की इच्छा से धारण करै॰ एकादश नित्या और सब ऋचाओं के अन्त में स्वाहाकार है ॥ मैंनें अपने ब्राह्मण्य को सम्यक् तीक्ष्णी (शास्त्रमार्गवर्ति) किया। इन्द्रिय शक्ति तिन दोनों को स्वकार्य क्षम किया। तथा जिस क्षत्रि का मैं पुरोहित हूं तिस अपने क्षत्री को जयनशील जैसे होते से तीव्र किया ॥ ८१ ॥

उदेषां ॥ उदेषाम्बाहूऽअतिरमुद्वर्चोऽअथो बलम् ॥ क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ२ ॥ ऽअहम् ॥ ८२ ॥

इन्ह स्वकीय राज ब्राह्मणादिकों के मध्य में एक-एक की भुजाएँ उदतिरम् उत्कर्ष करि मैंनें बढाई है। कान्ति उदतिरम् और शरीर शक्ति उदतिरम्। मन्त्र की सामर्थ्य से शत्रुओं को क्षीण करता हूं। स्वकार्य पुरुष पुत्रादिकों को मैं उत्कर्ष को प्राप्त करता हूं। एवं त्रयोदश समिन्मन्त्रा उक्ताः ॥ ८२ ॥

लोकेहिपोऽत्र्यस्मादुक्तोश्रीमद्विनियोगानुवादिनाएकादशसमिदुपरिकाना (margin)

अन्नं पतेन्नस्य॥ नोदेह्यनमीवस्य शुष्मिणः॥ प्रप्रदातारन्तारिषऽऊर्जन्नोधेहिद्विपदेचतुष्पदे॥८३॥

इतिसꣳहितायांसप्तमोनुवाकः७

इतिश्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनी शाखीयायां वाजसनेय सꣳहितायां दीर्घपाठे एकादशोध्यायः॥११॥

का॰१६·६·८·अध्वर्यु करि व्रत पय में देते तन्न दीक्षित समिधाडावि अग्निमें आधानकरै-प्रति व्रतसमिदाधान है॥ आग्नेयी उपरिष्टाद्बृहती। हे अन्न के पालक अग्ने हमारे अर्थ अन्न को दे यद्वा अन्न के अंशको दे। कैसे अन्न के कि नहीं है व्याधि जिस से बलबढै जिससे अर्थात् रोगनाशक बल का हेतु अन्न दे। किंच अन्न के दातार को प्रकर्षेण वढाय। किंच हमारे पुत्रादिकों और गवादिकोंमें अन्न को स्थापन करि अथवा मनुष्यों पशुओं के अर्थे अन्नकोदे अर्थात् सबनर पशुओं के अर्थे अन्न को दे॥८३॥

इतिगिरिधरभाष्येसप्तमोनुवाकः।७

श्रीवेदार्थ प्रदीपेनतमोहार्दंनिवारयन्
पुमार्थांश्चतु रोदेयादग्निदेवःसनातनः

इतिश्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव बर्म्मोज रौक्मिणेय नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये उखादि समिदाध्यन्त वर्णनो नामैकादशोध्यायः॥११॥

श्री वेदार्थ प्रदीपकारिखोइहृदयकअज्ञान॥चारोअर्थेनुदेतुहै पञ्चपुरुषभगवान

हरिःओम्

ॐनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकंद्विरूपंचसाधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददायकंकृष्णंब्रह्मरूपपरंस्तुमः १

अ॰१ दृशानोरुक्मः॥दृशानोरुक्मऽउर्व्याव्यद्यौद्दुर्म्मर्षमायुः-
श्रियेरुचानः॥ अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्य्यदेनन्द्यौ
रजनत्सुरेताः॥१॥

ॐनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके॥

रुक्मादिवाचनान्तोयंद्वादशोध्यायईर्यते

एकादशमे अध्यायविषें उरवा सम्भरणादि मन्त्र कहे द्वादशमे में-उरवाधारणादि मन्त्र कहिते हें तत्र का॰१६॰५॰१॰ समिदाधानके अंत में ईशानदिशमें खडा होकर यजमान ग्रीवा विषें स्वर्णनिर्मितफलकाकार आभरण विशेष बांधे कीदृशं वर्त्तुल एकविंशति पिण्ड हें जिसमें। शणपत्र तुल्य स्वरूप से बाहिर ऊँचे विन्दु पिण्ड कहलाते हें। कृष्ण जिन खण्ड विषें श्वेत कृष्ण रोमस्थानमें त्रिगुण शणसूत्र में पिरोहि नाभि के ऊपर वर्त्तमान पिण्डहेंत्ते वाहर होवें तैसे धारण करें॥ रुक्मदेवत्या त्रिष्टुप् वत्सप्रीदृष्टा॰ आदित्याध्यासेन रुक्मः स्तूयते। रुक्म आभरण विशेषः उर्व्या वडी दीप्ति करिके व्यद्यौत् प्रकाशित होताहे। कैसा हे रुक्म कि दृशानः प्रत्यक्ष प्राप्तहे। जनोंकोश्री देनेयोग्य। अनव खण्डित किसी से न तिरस्कार कियाजावे वा जीव

न की रूचता है। सो यह अग्नि। पश्रु पुरोडाशादि करि अमरणधर्मा होता हुआ जिस कारण द्यु लोकवासी देवगण इस अग्नि को जन्माते हुए कैसी है द्यौ कि शोभन है वीर्य अग्नि रूप जिस का तिससे अमृतत्व योग्य है ॥१॥

नक्तोषासा सम॑नसा विरू॑पे धा॒पये॑ते॒ शिशु॒मेकꣳ॑ समी॒ची ।
द्यावा॒क्षामा॑ रु॒क्मोऽ अ॒न्तर्वि भा॑ति दे॒वाऽ अ॒ग्निन्धा॑रयन्द्रविणो॒दाः ॥२॥

का० १६।५।३। वर्तुलाकार उखाधारण साधन रूप दोइण्डू करि उखा को ग्रहण करै॥ अग्निदेवत्या त्रिष्टुप् कुत्सदृष्टा अर्धमुखाग्रहणे विनियुक्तम्। नक्त रात्रि उखा अह नक्तोषसौ रात्रिदिविसौ एक अग्नि को धापयेते सायं प्रात अग्निहोत्रादि कर्मो करि तर्पण करते हैं। तत्र लुप्तोपमानं शिशुं- वालक को जैसे मातापिता कैसी हैं नक्तोषसौ कि समान है मन जिनों के परमैक्य मत्युक्त विलक्षण हैं रूप जिनों के कृष्णा रात्रिः शुक्लमहः। भली भांति समन्वित जे ऐसे रात्रिदिन तिन इंडू रूपी ओं सें उखा को गृहण करता हूं इति शेषः॥ का०१६।५।४। आहवनीय के ऊपर स्थित उखा को इंडू ओं से लेके द्यावा क्षामा इस पाद करि आसन्दी प्रति लावै॥ द्यावा क्षामा (पृथिवी) के मध्य और अंतरिक्ष के विषें जो रुक्म (रोचमान) अग्नि प्रकाशै है तिसे लाता हूं इति शेषः॥ का०१६।५।५। आहवनीय से पूर्व दिशा में भूमि पर स्थापन की हुई आसन्दी विषें उखा को देवा इस पाद करि स्थापन करै। उद्गात्रासंदीवत्प्रादेश मात्र पाद युक्त उदुंबर काष्ठ रचित अरत्नि

मान मूज की रज्जू करि बुनी तथा चतुःकोण हैं अंगपाद जिस के और [illegible] सहित वर्तमान तिस में॥ दीव्यन्ती व्यवहरंतीति देवता प्राण य-[illegible]ी अग्नि को धारण करते हुए। कैसे हैं देवता कि द्रविणोदाः [illegible]र करि धन रूप फल को देते हैं। तिसे मैं धारण करता हूं इति शे-षः॥ अग्निं धारयन्द्रविणोदा इत्याह प्राणावै देवा द्रविणोदा इति ते-[illegible] सूक्तेऽस्य मन्त्रेण प्राणा उच्यन्ते॥ २॥

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतु-ष्पदे॥ वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि रा-जति॥ ३॥

का॰ १६.५.६ ऊंचे को नियमन करते हैं जिन्हों से ते उद्याम रज्जुएं छै [illegible]ग्राम रज्जु है ऊर्ध्वाकर्षण हेतु जिसका ऐसे आसन्दी परस्थित शि-क्यपाश को यजमान कण्ठ में बांधै॥ सवितृदेवत्या जगती श्यावाश्व दृष्टा। कवि-विद्वान् क्रान्तदर्शन श्रेष्ठ सविता। रवितमका निवारण करि सब रूपों का प्रकाश करता है। और जो मनुष्य पश्वादिकों के अर्थ कल्याण अपने अपने व्यवहार प्रकाशनरूप श्रेय की प्रेरणा करता है। जो नाक(स्वर्ग) को व्यख्यत् प्रकाश करता है। और जो उषःकाल के व्यतीत होंनेपर विशेष करि प्रकाशता है। उषा सविता की पुरोगामिनी यह सविता की स्तुति है। इहशः सविता शिक्य को प्रति मुञ्चनकरै इति शेषः॥ ३॥

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्त-रे पक्षौ॥ स्तोम आत्मा छन्दांसि अङ्गानि यजूंषि नाम॥

सामते तनूर्वामदेव्यंयज्ञायज्ञियम्पुच्छंधिष्ण्याः शफाः ॥
सुपर्णोसि गरुत्मान्दिवङ्गच्छस्वःपत ॥४॥

का०१६.५.७. शिक्य सहित उख्याग्निको पूर्वमें पिण्डवत् ऊंचीबाहुओं से ऊँची धारणकरै कुछ एक आचार्योंने इस मंत्रकरि उख्याग्निकोअभिमंत्रणभी कहाहै॥ गरुत्मद्देवत्या विषहन्त्री चतुरवसानाकृतिः। हेअग्ने तू सुपर्ण शोभन पर्ण-पतनजिसका वोह पक्षिरूपहै पक्ष्याकारकरि चितत्व सें। तत्र दृष्टांतः गरुत्मान्गारुड जैसे पक्षिराज है तद्वत्। तिसके अवयव कहिते है। त्रिवृत्स्तोम तेरा शिरःस्थानीयहै। गायत्राख्य सामतेरानेत्रस्थानीयहै। वृहद्रथन्तराख्ये सामनी तेरेपक्ष स्थानीयहैं। पंचदश स्तोमतेरा आत्मा- अन्तःकरणस्थानीयहै। गायत्र्यादिक एकविंशति छंदतेरेहृदयाद्यंगस्थानीयहैं। इषेत्वा इत्यादि यजूंषि नामस्थानीयहैं। वामदेव्यसाम तेरा तनूः शरीरस्थानीयहै। यज्ञायज्ञियाख्य साम तेरा पुच्छस्थानीयहै होत्रादिधिष्ण्यस्थिता अग्नितेरे खुरस्थानीयहैं। हे अग्ने। एवंभूत तू यतः गरुड इव पक्षिरूप है अतः आकाशप्रति गमन करि औरतहां से स्वर्ग लोक को प्राप्त हो॥४॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गायत्रञ्छन्दऽआरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यभिमातिहा त्रैष्टुभञ्छन्दऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यरातीयतो हन्ता जागतञ्छन्दऽआरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभञ्छन्दऽआरोह दिशोनु विक्रमस्व ॥५॥ †वि-स्वा।अ०। इ०। उ०। न्र०॥५॥

का० १६.५.११ विष्णुक्रमसंज्ञक पादन्यासों को करै- तिस-तिस क्रमण में उखा की अग्नि के ऊर्ध्व को ग्रहण करना॥ चत्वारि यजूंषि लिङ्गोक्त (उख्याग्नि) देवत्यानि। विष्णु शब्देनाग्निरुच्यते- सयः स विष्णुर्यज्ञः स यस यज्ञोऽयमेव स योऽयमग्निरुखायामिति श्रुतेः शत ६.७.२.११। हे प्रथम पाद विन्यास तू विष्णु (यज्ञ-अग्नि) का क्रम है और सपत्नों का घातक अतः अनुग्राहकत्वेन गायत्री छन्द स्वीकार करि ततः भूदेवता रूप इस प्रदेश को विशेषेण प्राप्त हो एव मुत्तरेष्वपि मन्त्रेषु योज्यम्। हे द्वितीय पादन्यास तू- हे घातकों वा पापियों का घातक त्रिष्टुप् छन्द को स्वीकार करि अन्तरिक्ष प्रदेश को व्याप्त हो। हे तृतीय पाद० दाना भाव की इच्छा करने वालों का घातक जगती छन्द को- द्युलोक को व्या०। हे चतुर्थ पा० हन्तृत्व की इच्छा करने वालों का नाशक अनुष्टुप् छन्द को०। यहां चारो पादन्यासों में यजमान आत्मा को विष्णुत्व करि भावना करै- चारों प्रक्रमाओं के प्रदेशों को पृथिव्यादिलोक रूपत्वेन भावना करै॥ का० १६.५.३. दिशोऽनुविक्रमस्वेति सवदिशों को देखे। हे अग्ने तू प्राच्यादि दिशा व्याप्त हो॥५॥

अक्रन्द॑द॒ग्निः स्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑ह॒द्वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन्॥ स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धो अख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः॥६॥

का० १६.५.१४. ऊंची बाहुओं से प्राक् ऊंचे अग्नि को ग्रहण करै॥ अग्निदेवत्या त्रिष्टुप् वत्सप्रीदृष्टा। जैसे द्यौ (मेघ) गर्जता है तैसे अग्नि घोरता है। मेघसाधर्म्य माह जैसे मेघ जलभाव को प्राप्त होता अ

त्यन्त भूमि को आछादित करता है। स्वकीयज्वाला समूह से ओषधी ओंको व्याप्त होता। अन्यदप्युच्यते उत्पन्न होतेही सद्यदीप्त हो इस सव को विविध प्रकाश करताहै। अन्यच्च जो अग्नि द्यावा पृथिवी के बीच में रश्मियों करि अपने को समन्तात् प्रकाशताहै जैसे पर्जन्य विद्युद्रूप करि द्यावा पृथिवी के बीच प्रकाशताहै एवं अग्निः पर्जन्य वत्स्तूयते ॥६॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मानिवर्त्तस्वायुषावर्च्चसाप्रजया धनेन ॥ सन्यामेधयारय्या पोषेण ॥७॥

का०१६·५·१५· ऋक् चतुष्टय करि चारिवार उख्याग्नि को अपने समीप में लावे ॥ अग्नि देवत्यो ध्वं बृहती है अस्मदभिमुख गमन शीलहे अग्ने आयु प्रभृति से मेरे प्रति शीघ्र आगमन करि· आयु जीवन करि ब्रह्मतेज·पुत्रादिक प्रजा·धन· इष्टलाभ·धारणावती बुद्धि· सुवर्णालङ्कार· आयु प्रभृतियों के पोषकरि ॥७॥

अग्ने अङ्गिरः शतन्ते सन्त्वावृतः सहस्रन्त उपावृतः ॥ अधापोषस्य पोषेण पुनर्न्नो नष्टमाकृधि पुनर्न्नो रयिमाकृधि ॥८॥

हे अङ्गिरः· अङ्गियों के रसभूत अङ्गसौष्ठव युक्त हे अग्ने तेरी शत संख्या का आवृति, शक्तिएँ हों। तथा तेरी सहस्र संख्या का उपावृत्ति शक्तिएँ हों अपने ही आवर्त्तन को आवृत् अर्थात् तुरु समीपवर्त्ती पुरुषों और द्रव्य विशेषों का वर्त्तन उपावृत्ति हमलोकों विषे अतिशय स्नेह करि कै तूभी फिरि-फिरि आवर्त्त करि त्वदीयाः पुरुषाः

और तेरे द्रव्य पुनः-पुनः आवर्त्तन करें। और शत सहस्र संख्याक आवृत्ति शक्तिओं का जो पोष समृद्धि तिस पोष का अन्य पोष अयुत लक्षादि संख्या का भिवृद्धि तिस पोष करि हमारे नष्ट धन को फिरि करिकै प्राप्त करि फिरिभी हमारे पूर्व असम्पादित धन को सर्वतः सम्पादित करि॥ ८॥

पुन॑रू॒र्ज्जा नि व॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्न इ॒षायु॑षा॥ पुन॑र्न्नः पाह्यᳪ᳭हंसः॥९॥

आग्नेय्यौ द्वे गायत्र्यौ। हे अग्ने तू क्षीरादि रस सहित पुनः यहां आ। अन्न और जीवन सहित पुनः आ आकर तू हमें पाप से रक्षा कर॥९॥

स॒ह र॒य्या नि व॑र्त्त॒स्वाग्ने॒ पिन्व॑स्व॒ धार॑या॥ वि॒श्वप्स्न्या॑ वि॒श्वत॒स्परि॑॥१०॥

हे अग्ने धन सहित पुनः प्राप्त हो किंच वृष्टिरूप जलधारा करि सब तृणधान्य लतापादपाओं के ऊपर सींचि। कैसी धारा कि सबोंकरि पान करियै है वा सब जनोपभोग्या धनधारा करि सर्वतो अधिगत अर्थों से पूर्यमाण करिकै सींचि अर्थात् अनवच्छिन्न धन दानेन पुनः-पुनः पूरि॥१०॥

आ त्वा॑हार्षम॒न्तर॑भूर्ध्रु॒वस्ति॒ष्ठावि॑चाचलिः॥ विश॑स्त्वा॒ सर्वा॑ वाञ्छन्तु॒ मा त्वद्रा॒ष्ट्रमधि॑भ्रशत्॥११॥

का०१६·५·१६· नाभि के ऊपर उख्याग्नि को धारण करते तिसै अभिमन्त्रित करै॥ आग्नेय्यनुष्टुब्ध्रुवदृष्टा। हे अग्ने मैं तुझै आहरण करता हूं और तू उखा के मध्य में अवस्थित है। अत्यन्त च

लने सै रहित स्थिर होकै तिष्ठ ॥ किंच संपूर्ण प्रजा तुम्है वाञ्छा करै वा सर्व अन्न तेरें स्थित रहें + तेरे सकाश सै यह राष्ट्र (जनपद) शून्य मत हो अर्थात् इस राज्य में स्थित होकै संपूर्ण प्रजाओं का पालन करि वा श्री शून्य तुम्सै न हो ॥२१॥ श्री र्वै राष्ट्रं मात्वद्वी रधिभ्रशदितिश्रुतेः

उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ॥
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१२॥

का॰१६॰५॰१७॰ रुक्मपाश शिक्यपाश दोनों को गले सै ऊर्ध्व मार्ग करि कै निकालै ॥ वरुण देवत्या त्रिष्टुप् शुनःशेपदृष्टा। हे वरुण उत्तमाङ्ग शिर में स्थित अपनी पाश को मेरे सकाश सै विनाशि अधमाङ्ग पाद प्रदेश में स्थापित अपनी अधम पाश को निकाल करि हमसे विनाश करि मध्यम प्रदेश में स्थित पाश को विच्छेद करि और पाश त्रय विनाश के अनन्तर हे आदित्य अदिति के पुत्र वरुण तेरे व्रत कर्म में निष्पाप वर्त्तमान हुए हम अखण्डितत्व के अर्थ योग्य होवें ॥१२॥

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्ज्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ॥ अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१३॥

का॰१६॰५॰१७॰ पूर्व मन्त्र से पाशों को मोचन करि ऊर्ध्व बाहु आग्नेयी दिशा प्रति उख्याग्नि को धारण करै ॥ अग्नि देवत्या त्रितदृष्टा। आदित्यात्मनाग्नेः स्तुतिः क्रियते। बडे प्रभाव सै यह बृहदग्निः प्रातःकालों के मुख में ऊपर स्थित हुआ वा अग्निहोत्र

+ अन्नं वै प्राणाः इतिश्रुतेः

की आदि में बोध्यमान उठताहै। और जो रात्रि लक्षण तमः से निर्गत हो दिवस लक्षण ज्योति सहित यहां प्राप्त हुआ वोह अग्नि उत्पन्न मात्र ही सब स्थानों (लोकों) को अपने तेज करि सर्वत्र पूर्ण करता हुआ। कैसा है रुशाति तमका नाश करता रश्मिओं से शोभन शरीर ॥२३॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॥ नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत् ॥२४॥ † ह–मू। अ०। बृ–त्। इ०॥२४॥

का॰१६॰५॰१८॰ उख्याग्नि को अवतारो। अग्नि प्रोक्षण में यह जगती यजुरन्ता कहीगई। राजसूय प्रकरण में यह अतिजगती कही गई परन्तु यहां जगती अन्त में बृहत् यह यजुः तिसका विनियोग कहते हैं–

का॰१६॰५॰१९॰ बृहदिति यजु करि उख्याग्निको आसन्दी में स्थापन करे॥ हंस इति मन्त्रस्तु व्याख्यतः।१०॰२४॰॥२४॥

सीद त्वम्मातुरस्याऽउपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ॥ मैनान्तपसा मार्चिषाभि शोचीरन्तरस्याꣳ शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥२५॥

का॰१६॰५॰२०॰ आसन्दी निधानानन्तर उख्याग्निको तीनि ऋचाओं से उपस्थित करे। अग्नि देवत्या त्रिष्टुप्। हे अग्ने तू माता की समान उखा के उत्सङ्ग में बैठि। कैसा है तू कि सर्व पदार्थ तत्व वेदी। किंच इस उखा को सन्ताप से मत सन्ताप करि और ज्वाला से मत दीपन करि। अर्चि कारण है कार्य से बहुत ताप होता है कारण करिके थोडा ताप होता है। तिन दोनों को मत करि इस उखा के मध्य में निर्मल प्रकाश होके

विशेषेण प्रकाशकरि॥१५॥

अन्तरग्ने रुचात्व मुखायाः सदने स्वे॥ तस्यास्त्वं हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव॥१६॥

अग्नि देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ। हे अग्ने तू उखाके मध्य स्वकीय स्थानमें प्रकाश युक्त होके बैठ इति शेषः। किंच हे जात वेद(सर्वज्ञ वा जातविज्ञान) ज्योतिषतपन होके तिस उखा का कल्याण कारी हो॥१६॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने ऽअथो सीद शिवस्त्वम्॥ शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः॥१७॥

हे अग्ने मेरे अर्थ शान्त होके निरन्तर सर्वात्मासे शान्त होवे इस सर्व दिशाओं को शान्त करिके अपने स्थान उखा में आकरि के बैठि॥१७॥

अ०२ दिवस्परि प्रथमं जज्ञे ऽअग्निरस्मद्द्वितीयम्परि जातवेदाः॥ तृतीयमप्सु नृमणा ऽअजस्रमिन्धान ऽएनञ्जरते स्वाधीः॥१८

का० १६·५·२९·२२· दिवस्परीति एकादश ऋचा वात्सप्रसे उख्याग्नि को उपस्थित करे कोईक आचार्य द्वादश ऋचाओं से कहते हैं॥ अग्नि देवत्या द्वादश त्रिष्टुभो भलन्दन पुत्र वत्सप्री दृष्टा। अग्नि प्रथम + दिव्(प्राण)के सकास से उत्पन्न हुआ। और जात वेदाः अग्नि द्वितीय वार मेरे सकाश से ब्रह्माने उत्पन्न किया॥ नृमणा नरोंमें मन जिस्का प्रजापति अनुपक्षीण अग्नि को जलों में व्यवस्थित तृतीय वार उत्पन्न करता हुआ ॥ एवं स्वाधीः(यजमान) इस बहुजन्माग्निको दीपन करि उत्पन्न करता है॥ यद्वा यमर्थः। अग्नि प्रथम सूर्य रूप करिके द्युलोक के ऊपर उत्पन्न हुआ। मेरे मनुष्य लोकके ऊपर

+ प्राणो वै दिवः प्राणाद्वा एष प्रथमम्जायतेति श्रुतिः शत० ६·७·४·३·

* यद्वेनमदो द्वितीयं पुरुषविधो ऽजनयदिति श्रुतेः ६·७·४·३· समुखाच्च योनेर्हस्ताभ्यां चाग्निमसृजतेति च श्रुतेः सपुरुषविध इत्यर्थः

* यदेनमदस्तृतीयमद्भ्यो ऽजनयत। अथ योगगर्भो ऽअन्तर आसीत्सो ऽग्निरसृज्यत। प्रजापतिर्वै नृमणा ऽअजस्रो ऽग्निरित्यादि श्रुतयः

जातवेदः प्रसिद्ध वन्हि रूप करिके द्वितीय जन्म को प्राप्त हुआ। अप्सु समुद्र में वडवानल रूप से तृतीय वार उत्पन्न हुआ। औरती नों जन्मों में यजमानों विषें अनुग्रह बुद्धि युक्त है इस अग्नि को पुरोडाशादि करि प्रकाश करता स्वायत्त चित्त यजमान जरा पर्य्यन्त सेवा करता है ॥१८॥

विद्मा ते॑ऽ अग्ने त्रे॒धा त्र॒याणि॑ वि॒द्मा ते॒ धाम॒ विभृ॑ता पुरु॒त्रा ॥ वि॒द्मा ते॒ नाम॑ पर॒मं गुहा॒ यद्वि॒द्मा तमुत्सं॒ यत॑ऽ आज॒गन्थ॑ ॥१९॥

हे अग्ने जे पूर्व मन्त्र में दिवस्परीत्यादि करि कै आदित्य अग्नि वडवानल तीन प्रकार से स्वरूप कहे गए तिन तीन संख्याक तेरे संबंधी रूपोंको हम जानते हैं। वा तीन प्रकार करि विभक्त अग्नि वायु सूर्य्याख्य तेरे रूपों को हम जानते हैं। किंच तेरे संबंधी पुरुत्रा बहुत प्रदेशों में गार्हपत्य आवहनीय अन्वाहार्य पचनाग्नीध्रीय रूपों विषें विहृत स्थान भी हम जानते हैं। किंच तेरा परम उत्कृष्ट गुहामें जो अवस्थित गोप्य यविष्ठ इत्यादि मन्त्र प्रसिद्ध नाम है तिसै भी जानते हैं। किंच जल रूप स्थान से वैद्युत रूप करि आया है तिस उत्पन्दन जल रूप स्थान को हम जानते हैं ॥१९॥

स॒मु॒द्रे त्वा॑ नृ॒मणा॑ऽ अ॒प्स्व॑न्तर्नृ॒चक्षा॑ऽ ई॒धे दि॒वोऽ अ॑ग्न॒ऽ ऊध॑न् ॥ तृ॒तीये॑ त्वा॒ रज॑सि तस्थि॒वाᳪं स॑म॒पामु॒पस्थे॑ महि॒षाऽ अ॑वर्धन् ॥२०॥

हे अग्ने नृमणा प्रजापति समुद्र में वडवानल रूप करिके वर्तमान तुम्हें प्रकाश करता हुआ। नृचक्षाः मनुष्यों में मन्त्रों को विस्पष्ट

कहिने वाला प्रजापति जलों वृष्टिरूपों के मध्यमें विजली रूप करिके स्थित तुम्हें प्रकाश करताहुआ। तथा द्युलोक के ऊर्ध्व स्थानीय समुद्र रूप वृष्टिकी अपेक्षा करिके तृतीय स्थान तेजमण्डलमें आदित्यात्मा से वर्तमान तुम्हें नृचक्षाही प्रकाश करताहुआ। किंच महिषा महान्त प्राण जल के उत्सङ्ग वा जलों के मध्यमें स्थित तुम्हें बडा करताहुआ॥ २०॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्॥
सद्यो यज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः॥ २१॥

व्याख्याता ६॥ २१॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः॥ वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः॥ २२॥

एवं प्रकार अग्निः विशेषेण प्रकाशै है कैसाहै अग्नि कि गवाश्वादि संपदा को अत्यन्त देनेवाला धनों का धारण करनेवाला। अभिलाषियों का प्रकर्षेण अर्पण करनेवाला। यजमान कर्तृक सोमयागका रक्षक सबका निवास हेतु वा धन रूप जैसे अन्य प्रायनास नरस्थादि धनों को समीपमें करते हैं तैसे यह भी तापपाक प्रकाशसे जनों का उपकर्ता है अतः वसुः। सहस सूनुः बलस्य मन्थनवेगरूपका पुत्र है यतः मथ्यमान उत्पन्न होताहै अतः एवं उच्यते। जल विषे अवस्थित वरुणात्मासे राजमान यद्वा वृष्टिरूपाजलों में विद्युद्रूपकरि दीप्यमान। प्रातःकाल में आदित्यात्मा से प्रकाशमान उषः काल में अग्निहोत्र के होमार्थ अग्नियों को प्रकटकरते हैं तिस

अभिप्राय सें दीप्यमानः॥२२॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ॰ आरोदसी॰ अपृणाज्जायमानः॥
वीडुञ्चिद्द्रिमभिनत्परायञ्जनायदग्निमयजन्त पञ्च॥२३॥

वोह अग्नि उत्पद्यमान सूर्यात्मा सें प्रकट हो के द्यावा पृथिवीओं को सर्वतः तेज करिके पूर्ण करता है कैसा कि विश्वस्य केतुः॰ अग्न्यात्मा सें विशेष करिके ज्ञान भूत है। भुवनस्य गर्भ भूतजात के गर्भवत् मध्य में अवस्थित वाय्वात्मा करि वोह ही प्राण भाव सें भूतों के मध्य में गमन करता है। किंच जो इन्दु रूप सें परापरतः गमन करि के दृढ भी अद्रि न विदीर्ण होंने योग्य॰ मेघ को विदारण करता है। जिस अग्नि को पाँच मनुष्य यजन करते हें विप्र सें आदि ले चारि और पाँचवाँ निषाद वा चारि वडे ऋत्विज और यजमान॥२३॥

उशिक्पावको॰ अरतिः सुमेधामर्तेष्वग्निरमृतोनिधायि॥
इयर्त्तिधूममरुषम्भरिभ्रदुच्छुक्रेणशोचिषाद्यामिनक्षन्॥२४॥

जो अग्नि मनुष्यों में देवताओं करिकें प्राप्त हुआ इति शेषः। वोह अग्निः अरुषं॰ चक्षुरादि उपद्रव रहित नमः[1] वा धूम को निकालता है कैसा है अग्नि कि ऊशिक् प्यारा। पवित्र करने वाला पूर्ण मति वा दुष्टो में प्रीति करिकें रहित सुन्दर बुद्धि वा सुयज्ञ अमृत अमरणम्मो जंगत को- धारण करता निर्मल प्रभाव सें आकाश को व्याप्त करता वा नक्षत्र ग्रह ताराओं के संबंधी तेज करिकें व्याप्त करता इतः प्रदानाद्धि देवा उपजीवन्तीतिश्रुतेः॥२४॥

[1] इतो वा॰ अयमूर्ध्वे रेतः सिञ्चति धूमं सामुष्याद्वृष्टिर्भवतीतिश्रुतेः।

इशानोरुक्मा॰ उर्व्या व्यद्यौदुर्म्मर्षमायुः श्रियेरुचानः॥अ

ग्निर॒मृतो॑ऽअभव॒द्वयो॑भि॒र्य्यदे॑नं॒ द्यौर॒जन॑यत्सु॒रेताः॑ ॥२५॥

व्याख्याता १०॥२५॥

यस्ते॑ऽअ॒द्य कृ॒णव॑द्भद्रशोचेऽपू॒पं दे॑व घृ॒तव॑न्तमग्ने। प्र तं न॑-
य प्रत॒रं वस्यो॒ऽअच्छा॒भि सु॒म्नं दे॒वभ॑क्तं यविष्ठ ॥२६॥

हे भद्रशोचे कल्याणकारिणी दीप्तियुक्त हे देव अग्ने प्रतिपदा में जो पुरुष तेरे घृतयुक्त उपस्तरणाभिघारणोपेत पुरोडाश को करता है स आज्यस्योपस्तीर्य द्विर्हविषोऽवदायाथ शत ०१।७।२१। ऊपर से आज्य का अभिघारण करता इति श्रुत्यभिप्रायम्। हे यविष्ठ युवतम वामि अयित तम तिस यजमान को प्रकृष्ट तर स्थान उत्तम लोक को प्राप्त करि। आभिमुख्य से सर्वतः देवयोग्य सुख को प्राप्त करि स लोकमागच्छत्यशोकमहिमं तस्मिन्वसति शाश्वतीः समा इति बृहदारण्य० मा०४।१५।॥२६॥

आ तं भ॑ज सौश्रव॒सेष्व॑ग्न उ॒क्थऽउ॑क्थ॒ऽआभ॑ज श॒स्यमा॑ने।
प्रि॒यः सूर्य्ये॑ प्रि॒योऽअ॒ग्ना भ॑वा॒त्युज्जा॒तेन॑ भि॒नद॒दुज्जनि॑-
त्वैः ॥२७॥

सौश्रवसेषु कीर्तिहेतुभूत यज्ञकर्म्मों में हे अग्ने तू तिस यजमान को निरन्तर कर्मानुष्ठायि करि। उक्थे-उक्थे निष्केवल्य प्रगाथादि रूप तिस-तिस शास्त्र कर्म्म विषें प्रेरि एवं तुरु करिकै सेवित यह यजमान सूर्य्य का प्यारो हो तथा अग्नि का प्यारा हो तथा उत्पन्न पुत्र करिकै उदय (वृद्धि) को प्राप्त हो तथा पौत्रादिकों से वृद्धि को प्राप्त हो ॥२७॥

त्वाम॑ग्ने॒ यज॑माना॒ऽअनु॒ द्यून्विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्य्या॑णि।
त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः ॥२८॥

हे अग्ने तुम्हें यजमान सेवन करते सर्व कालों में आर्ष्य संपूर्ण यथेष्ट धन को प्राप्त होते हैं। किंच तेरे साथ स्थित हुए तुम्हें सेवन करनेवाले- यजमान यज्ञफल की इच्छा करने वाले ज्ञान कर्म्म के इकट्ठे करनें वाले हो रवि मण्डल विषें मार्ग को करते हैं। तदुक्तं तेयग्णवमे तद्विदुरित्युपक्रम्य देवलोकादादित्यमिति ॥२८॥

अस्तो॒व्य॒ग्निर्न॒रा॑ सु॒शेवो॑ वैश्वान॒रऽऋषि॑भि॒: सोम॑गोपा: ॥
अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म् ॥२९॥

यजमान ऋत्विजों से अग्नि स्तुति किया। कैसा है अग्नि कि नरों के शोभन सुख को करने वाला जठराग्नि रूप से सब नरों के हित सोम का रक्षा करने वाला। अद्वेषे पादौ लिङ्गोक्तदेवौ। यतः अग्नि स्तुतः अतः द्वेषरहित द्यावापृथिवी को हम आह्वान करते हैं तिन्हों के आश्रित कर्म की वृद्धि के अर्थ। हे देवा अग्न्यादयः हमारें सुन्दर पुत्रयुक्त धन को तुम स्थापन करौ ॥२९॥

अ०३ स॒मि॒धा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒तातिथिम् ॥ आस्मि॑न्ह॒व्या जु॑होतन ॥३०॥

अथ वनीवाहनम् ॥ का०१६.६.२५. उखाग्नि के उत्तर दिशा में प्राग्रीष शकट को स्थापन करि यजमान उखाग्नि वनीवाहन में समिदाधान करै ॥ आङ्गिरस विरूपाक्ष दृष्टाग्नेयी गायत्री व्याख्यातापुच्यते ३.१.। हे ऋत्विज यजमानो समिधा करिकै अग्नि को परिचरण करि इस अतिथि अग्नि को चेताओ। इस अग्नि में साकल्य से हवन करो ॥३०॥

उदु॑त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वा॒ऽअग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः॥ सनो॑भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः॥३१॥

का॰ १६·६·१६· समिदाधान के अनन्तर उदुत्वेति मन्त्र करिकै आसन्दी सहित उख्याग्नि को ऊंचे करि दक्षिण में स्थित यजमान शकट में तिस अग्नि को स्थापन करै॥ तापस दृष्टाग्नेय्यनुष्टुप्। हे अग्ने प्राण रूप सव देवता चित्तिभिः बुद्धिवृत्तियों करि तुम्हे ऊंचे को धारण करें हे अग्ने सो उद्धार्यमाण तू मेरें कल्याण कारी हो। कैसा है कि शोभन मुख दीप्तिही है वसु धन जिसका वोह॥३१॥

प्रेद॑ग्ने॒ ज्योति॑ष्मा॒न्याहि शि॒वेभि॑र॒र्चिभि॒ष्ट्वम्॥ बृ॒हद्भि॑र्भा॒नुभि॒र्भास॒न्मा हि॑ꣳसीस्त॒न्वा॑ प्र॒जाः॥३२॥

का॰ १६·६·१८· शाकट में चुपकेसै वृषों को जोडिकै प्रेदिति मन्त्र सै पूर्व को यथार्थ प्रयोजनवन्त देश को गमन करै॥ अग्निदेवत्यानुष्टुप्। हे अग्ने शांत ज्वालाओं करिकै प्रकाशयुक्त तू गमन करि। किंच प्रौढ रश्मियों सै जगत् को प्रकाश करता अपने दाहक शरीर सै पुत्रादिक प्रजा का तमनाश कारि॥३२॥

अक्र॑न्दद॒ग्निः स्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒रेरि॑हद्वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन्॥ स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धो ऽअख्य॒दारोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः॥३३॥

का॰ १६·६·२· अक्ष में खिरि-खिरि शब्द होते जपे व्याख्याता ६॥३३॥

प्र-प्रा॒यम॒ग्निर्भ॑र॒तस्य॑ शृण्वे॒ वि यत्सूर्यो॒ न रोच॑ते बृ॒हद्भाः॥ अ॒भि यः पू॒रुं पृत॑नासु त॒स्थौ दी॒दाय॒ दैव्यो॒ऽअति॑थिः शि॒वो नः॥३४॥

का॰१६॰६॰२१॰ क्रियमाण उत्तर दिशा उद्धृत वा उक्षित॰प्रदेश में अग्निको उतारे ततः अग्नि में प्र-आयमिति मन्त्र सें समिदाधान॥ वसिष्ठदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप्। यह अग्नि हवियों को धारण करता है भरत(यजमान)के आह्वान को श्रवण करता है इतिशेषः वायजमानकरि कियें आह्वान को श्रवण करता है। जो अग्नि सूर्य्य इव प्रकाशमानहोता अत्यन्त प्रकाशता है। जो अग्नि संग्रामों में राक्षसके सन्मुख ठैरता है। देव संवन्धी अतिथि हमारा मङ्गल रूप वोहही अग्नि प्रकाशता है॥३५॥

आपों देवीः प्रतिं गृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्वꣳ सुरभाउँलोके॥ तस्मैं नमन्तां जनयः सुपत्नीर्म्मातेवं पुत्रम्बिभृताप्स्वेनत्॥३५॥

का॰१६॰६॰२६॰ वनीवाहन के अनन्तर तडागादिजलस्थानकोगमन करिके वटादिपत्र पुट करिकें सायं शात उखा के सकाशसें उठाया जोभस्महै तिसे एक ऋचाकरिजल में डाले अब्देवत्या त्रिष्टुप्। हे जल दीप्यमानओ भस्म को तुम स्वागतादि करि ग्रहण करो किंच पुष्पधूपादिकोंसे शोभनगन्धयुत लोक(स्थान)में इस भस्म कोकरो किंच सुपत्न्यः+शोभन है वरुण पति जिन्हों का तेजल वृक्षोत्पत्यादिद्वारेण अग्निको उत्पादन करती हैं तुम तिस भस्म रूप अग्नि केलिये नम्राहोओ। किंच हे आप इस भस्मको आत्मा में तुम धारण करो यथा माता पुत्र को स्वात्मा में धारण करती है तद्वत्यालयत॥३५॥

+ आपोवरुणपत्न्यः सुपत्न्यःसितिश्रुत्यन्तपाठः

अप्स्वग्ने सधिष्टवं सौषधीरनुं रुध्यसे॥ गर्भे सञ्जायसे पुनः॥३६॥

का०१६।६।२७। तिसके अनन्तर पठित दोनों अप्स्वग्ने। गर्भोऽअसि। ऋचाओं से पत्रपुट करि द्वितीयवार उख्याग्नि भस्म कोजल में प्राप्त करै॥ विरूप दृष्टा अग्ने यी गायत्री। पूर्वमन्त्रकरि भस्मातिथित्व से स्तुति करिकै दो ओं से अग्नि के सर्व व्यापकत्व को कहते भस्माभ्य वहरणको अपन्हुत करते हैं। हे अग्ने जलों में तेरे स्थान सो तू यवादिक ओषधि परिणाम को विपरिणाम करता वा जठराग्निरूप करि ओषधियों को स्वीकार करता है। किंच अरणियों के मध्य में स्थित हो वारवार उत्पन्न होता है॥३६॥

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्॥ गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि॥३७॥

तिस्रोऽनुष्टुभोऽग्निदेवत्याः॥ हे अग्ने तू ओषधिओं का गर्भ है भेषज रूप ओषधि विशेष करिकै उत्पाद्यमानत्व से। हे अग्ने तू वनस्पति(तरु)ओं का गर्भ है अरणिओं करि जायमानत्व से। सर्व प्राणिजातका गर्भ है जठराग्नि रूप करि विद्यमानत्व से और जलों का गर्भ है वाडव वैद्युतादि रूपत्व से॥३७॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने॥ सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान्पुनरासदः॥३८॥

का०१६।६।२८। जल में फेंके हुए भस्म के सकाश से अनामिका करि प्रसद्येति चारि ऋचाओं से भस्म को ग्रहण करै॥ हे अग्ने तू भस्म करिकै योनि(कारणभूता पृथिवी को और योनिभूता जलों को प्राप्त होकर मातृ जलों से एक होकर तेजस्वी संपन्न हो फिर स्वस्थान उ

…॥३८॥

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने। शेषे मातुर्यथोपस्थे न्तरस्या ७ शिवतमः॥३९॥

हे अग्ने जलभूमिरूपस्थान को प्राप्त होकै फिरभी इस उखाके मध्य … माता के उत्सङ्ग में जैसे बालक सोताहै कैसाहै तू कि कल्याणतम॥३९॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यंहसः॥४०॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि॥४१॥

…व्याख्याते ९॥४०॥ १०॥४१॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः। पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने॥४२॥

का०१६·६·३· तडाग से आकर अनामिका करि ग्रहण किये हुए भस्म को चुपकेसे उखा में प्राप्तकरि बोधामे इन दो ऋचाओं करि के उख्याग्नि को उपस्थित करै। दीर्घतमो दृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अन्न… हे युवतम अग्ने मेरे वचन के अभिप्रायको जान इति प्रोषः वा मेरे वचन को जान। कैसे वचन के कि मंहिष्ठ अतिशय करिके वहु… तथा प्रभृत श्रोत्रपथको प्रापित अर्थात् आदरोक्त के। किंच हे अग्ने एक पुरुष निंदा करताहै एक तुम्हे स्तुति करता है कश्चित् स्तौति कश्चि-

निंदति इतिलोकस्वभावः एवंसति हे अग्ने मैंतेरे शरीरको स्तुति नमस्कार करताहूँ कैसाहूँ मैं किवन्दनशील॥४२॥

सर्वौषधिसूरिर्म्मघवावसुपतेवसुदावन्॥ युयोध्यस्मद्द्वेषांसिविश्वकर्म्मणेस्वाहा॥४३॥ † स–सि॰अ॰वि–हा॰इ॰॥४३॥

सोमाहुति दृष्टाग्नेयी यजुरन्ता गायत्री। विश्वकर्मणे स्वाहेतियजुः हेबसु धन पत हे धन के दाता सो तू मेरे अभिप्राय कोजान।कैसा है तू कि पण्डित धनवान्। संतुष्टहो द्वेषभोग्यों को हमसे पृथक्करि। का०१६·७·१· स्रुवस्थानीय समिधा से घृतको ग्रहण करिकैउरख्याग्नि में हवन करै·तिस कर्मकी प्रायश्चिति संज्ञा॥ यजुः।जगत्सृष्टिस्थित्यादि कर्म कर्त्ते तेरे अर्थ सुहुतहो॥४३॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणोवसुनीथ यज्ञैः॥ घृतेन त्वन्तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥४४॥

का०१६·७·२·घृतहोम के अनन्तर उठा करि तिसही समिधको उरख्याग्नि में आधान करै॥ आग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अग्ने आदित्याः रुद्राः और वसवः तुम्हे फिर उपशान्त प्रकाश करें हे वसुनीथ ध नके निमित्त स्तुति जिस की वा धनों का लाने वाला तिसका संबोधन हे धननेतः ब्राह्मण ऋत्विग्यजमान यज्ञों करि तुम्हे पुनः प्रकाश करें और तू अपने शरी को हमारे दियेहुए घृत से बढा तेरी वृद्धि में यजमान के काम सत्यहों॥४४॥

अपेतवीतविचंसर्प्पतातोयेत्रस्थपुराणायेचनूतनाः॥

अदो यमो वसानम्पृथिव्या ऽ अक्रन्निमम्पित रोलोक मस्मै ॥४५॥

अथ गार्हपत्यचयनमुच्यते ॥ का॰१७॰१॰३॰ पलाश शाखासे गार्हपत्यचिति के स्थान को व्यूहे अर्थात् तहां पडेहुए तृणादिकों को स्थान-सै बाहर निकालै अपेत वीति ऋचा के पञ्च पादों करिकै प्रति दिशा को आदि में प्राच्याम पेत वीत,ये ऽत्र स्थेति दक्षिण में अदादिनि पश्चात् अक्रन्निति उत्तर में ॥ लिङ्गोक्त वहुदेवत्या त्रिष्टुप् अधर्चेन तत्स्थानसर्पिण उच्यंते पादेन यमः आदेन पितरः। यमस्य सर्वभूम्यधिपतित्वात्तद्भृत्याः सर्वत्र चरन्ति तान्प्रत्युच्यते। हे यमभृत्यऔ जे चिरंतन और जे नूतन तुम इस स्थान में हो ते सव तुम इस स्थान सै अति दूर गमन करो और इस स्थान से संघात को त्याग करि विविध गमन करो। कस्माद्वयमपसर्पयामेत्यत आह पृथिवी के इस स्थान को यम देव इस यजमान के अर्थ देता हुआ। और पितर इस लोक को इस यजमान के लिये करते हुए। यम और पितरों करि इस चयन स्थान के यजमानार्थ देंनेसे तुम अपसर्पण हो औ ॥४५॥

१अत्र भाविन्या वृत्त्या शालाद्वार्यो गार्हपत्य शब्देनोच्यते तद्थाचितिश्चिते। स्थानमपि गार्हपत्य एव।

संज्ञानमसि कामधरणम्मयि ते कामधरणम्भूयात् ॥ अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित्त स्थ परिचित ऽ ऊर्द्ध्वचितः श्रयद्ध्वम् ॥४६॥ सं-सि।अ॰।का-म्।इ॰।म-त्।उ॰अ-सि।ऋ॰।चि-म्।ल॰ ॥४६॥

का॰१७॰१॰४॰ जिस सै व्युदूहन किया तिस शाखा को उत्तर को फेंक करि गार्हपत्यचित्ति स्थान में क्षार मृदा को निर्वपन करे ॥ ऊषदेवत्यानित्रीणि१॰२॰दै-पं॰३॰या-पं॰। हे ऊष स्वरूप तूप शुओं के सम्यक् ज्ञान का-

साधनहै पशुहैं ते ऊष देश को घ्राण करि स्वादन करतेहैं। तथामनो-
रथों को सम्पादन करताहै यज्ञ द्वारा काम सम्पादकत्वसे। अतः तेरी-
काम सम्पादनसामर्थ्य मेरें हो वा श्रुतिके अनुसार कर व्याख्यान तेरेका-
मधरण पशु मेरें होवें यतः तू कामधरण पशुरूप सम्यक् ज्ञापकहैउल्व-
सम्भवात्+॥का०१७.१.६. ऊषवत् सिकता निर्वपन करै॥सिकताःदेवत्या
आसु–पं०।हे सिकता स्वरूप तू अग्निका भस्म(भासक)है सिकतास्य अ-
ग्नि अत्युग्र होताहै। और अग्निकापूरणहै†॥का०१७.१.७. एकविंश-
तिपरिश्रितों करि गार्हपत्यस्थान को वेष्टन करै पूर्ववत् प्रदक्षिणऊंचे
तेरखनियेहैं॥परिश्रिदेवत्यं आसु उ०।हे परिश्रित शर्कराओ तुमस-
र्वत स्थापिता हो ऊर्ध्वस्थापित हुई तुम इस गार्हपत्यायतनको सेवन
करो॥४६॥

अयर्ठंसोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतन्दधे जठरे वाव-
शानः॥ सहस्रियं वाजमत्यन्न सप्तिर्ठंससवान्त्सन्त्स्तूयसे
जातवेदः॥४७॥

का०१७.१.८. ततः अध्वर्यु माण्डलसे दक्षिणमें पूर्वमुख बैठिकर मध्य-
में चारि अर्धबृहती संज्ञक इष्टका प्राग्लक्षण दक्षिणोत्तर पङ्क्ति
करि उत्तरको आरम्भ करिके समीपमें धारण करै। अभ्यात्मंच-
यनमित्युक्तेः। ऋक तुष्क से एक-एक को। हस्त दीर्घ तिससे अर्ध आ-
याम पद्या लोकद्वय व्यापिनी इष्टका अर्धबृहती कहियेंहैं। पञ्च-
ऋचो विश्वामित्र दृष्टा आग्नेय्यस्त्रिष्टुभश्चतुर्थ्यनुष्टुप्। इष्टकाओं-
के उपधान को कर्त्ता अभिनयेन दिखलाताहै यह गार्हपत्यसो अ-

+पशवो वै कामः ऊषाः पशवः कामधरणं भवति पशवो भूयासुरिति श्रुतेः शत०७.१.१.८

†न वा अग्निस्त्वं भस्मातिदहति। अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य रेतो यत्सिकताइत्त्च शत०७.१.१.८.१०।

ग्नि इष्टकाओं करि चयन करियैहै इतिशेषः। जिस अग्निमें चित होनेसे इन्द्र सोम को अपने उदर में धारण करता है। कैसा इन्द्र कि कामयमान। कैसा है सोम कि सहस्त्रा है। वाज (अन्न) बहुतोंका तृप्तिकरनेवाला। भक्षण करतेही मद करने वाला। तृप्तिकरनेवाला। अग्निमें चित्त हुएपर केवल इन्द्रहीनें सोम को जठर में रखा किंतु हेजात वेद हे अग्ने तू भी हवियों के सम्भजन कर ऋत्विग्य जमानों से स्तुत किया गया। उत्तरार्धस्यायंवार्थः। हेजातवेद गमन कुशल अश्व-इव सहस्त्र संख्या कथन करि सम्मित अन्न देनेसे यजमानों करि तू स्तुत है॥४७॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यंजत्र॥ येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः॥४८॥

हे आयजत्र-मर्यादया यजनीय हे अग्ने तेरी जो द्युलोक में दीप्ति सूर्यकेरूप वर्त्ते है और जो पृथिवी में अग्निरूप और जो ओषधीओं में स्थित और जो जलों में स्थित और जिस दीप्ति करि अन्तरिक्षकोविस्तार करता है वोह भानु(दीप्ति)सकल विश्व को प्रकाश करती है अर्णवः अर्थात् उदक हैं जिसमें वा अरणवान् गमनवान्-प्रसरणशील। नरों के शुभा शुभ कर्मका द्रष्टा। ईदृश जोतेरी भानु तिसी इष्टका रूपको उपधान करता हूं। अनेन त्रिस्थानोऽग्निः स्तुतः॥४८॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्याये॥ या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः॥४९॥

हे अग्ने द्युलोक के संबंधि उदक को तू अभिमुख्येन प्राप्त हो। किंच जे देवता धिष्ण्या कहियें हैं तिन्ह प्राणरूप देवताओं को तू सन्मुख प्राप्त होता है किंच दीप्त रूप मण्डल में वर्तमान सूर्य के ऊपर नीचे जो जल उपतिष्ठें हैं तिस जल के तू अभिमुख्येन जाता है त्वमेवै तै रूपैः परिणमसीति भावः॥४९॥

पुरीष्यासो ऽअग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः॥ जुषन्तां यज्ञमद्रुहोनमीवा ऽ इषो महीः॥५०॥

अनुष्टुप्। अग्नियें एते इष्टका रूपा हमारे इस याग को सेवन करैं और नहीं हैं व्याधि(क्षुधा तृष्णानिवर्तिका बहुला और अन्नभक्ष्य) अग्नियें सेवन करैं। कैसे हैं अग्नि कि पुरीष्यः पशुओं से हित। तथा प्रकर्षेण मनसा प्रीतियुक्ता। अहिंसता परस्पर प्रीतियुता॥५०॥

इडामग्ने पुरुदंससंसनिङ्गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध॥ स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे॥५१॥

का०१७.१.११. इडामग्न ऽ इति दो ऋचाओं करि प्रति मन्त्र पश्चिम में दो पादमात्री पाद्या तिरश्ची उदग्लक्षणा उपधान करै उत्तर से अवस्थित दक्षिणामुख इडामिति दक्षिणां अयंत ऽ इति उत्तरां॥ द्वे आग्नेय्यौ त्रिष्टुबनुष्टुभौ। हे अग्ने हवमान(यजमान) के अर्थ अन्न को संपादन करि +। कैसे अन्न को कि बहुत हैं कर्म जिससे अर्थात् बहु कर्म साधनभूत अन्न को दे। तथा अत्यन्त अविच्छेदन वर्तमान अनपायिन धेनुसंबंधि दान पयोदधि घृतादिक को सर्वदा दे। किंच हमारे यजमानों के सूनुः(पुत्र) हो। कैसा सूनुः कि तनयः औरसः सूनुशब्देन

+ आपो वा ऽ अस्य दिवो ऽ लोकात्प्र धूमेनाश्नोति शत०७.१.१.२४ श्रुतिः।

† आहूयति देवाञ्जुहोति वा यजमानः पशवो वा इडेति शत०७.१.१.२७ तद्वलीवर्दै रत्नसोत्पद्यमानत्वात्

उक्तत्वाद्द नपुत्रादि व्यावृत्त्यै॰ अथवा तनयः अग्नि होत्रादि कर्मोंका विस्तार करनेवाला तथा प्रजावान् हे अग्ने तेरी वह अन्न गो पुत्रदान विषया शोभना बुद्धि अनुग्रहेण हम विषैं हो यजमानेभ्यस्त्वया न्नादि देयमितिभावः॥५१॥

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः॥ तंजानन्नग्न आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम्॥५२॥

व्याख्याना ३.१४॥५२॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवासीद॥५३॥ चि-द।अ॰।प-द।द्र॰॥५३॥

का॰१७.१.१२॰ तिस के उत्तर अपर मार्गेण दक्षिण को चलकर चिदसीति प्रति मन्त्र पूर्व में तिरश्ची उदग्लक्षणा दक्षिण में स्थित उदङ्मुखव उपधान करै चिदसीति उत्तरां परिचिदसीति दक्षिणां॥ इष्टका दैवत्येद्वे सामात्नुष्टुब्बृहती। हे इष्टके तू स्थापित है वा भोग संपादिका है। तिसत्र सिद्धि देवता वाग्रूपा करि सावधान किई हुई जैसे प्राण सब अङ्ग में स्थित तैसे स्थिरा हुई निवेशाकरि। द्वितीयामुपदधाति परितः सर्वतः चीयते वा परितो भोगांश्चिनोति॰ तू परिचित है॥ अन्यद्व्याख्यातम्॥५३॥

लोकम्पृण छिद्रम्पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्॥ इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन्॥५४॥

का॰१७.१.१७॰ प्रथम चुपके से उपहिता तीनि लोकम्पृण इष्टकाओं में लोकम्पृण इति अभिमन्त्रण फिरि दशों विषें मन्त्र है वा प्रथम दो लोकम्पृणाओं में मन्त्र फिरि दशों में पुनः एक में ऐसें एक विंश

ति इष्टका गार्हपत्यमें हैं॥ लोकम्पृण देवत्या नुष्टुप्। हे लोकम्पृणेष्टके तू लोक गार्हपत्यचयन देशमें पूर्वेष्टकाओंसे अनाक्रान्त स्थानको पूरि। तथा छिद्रको भरि कोई भी छिद्र जैसे न दीखै तैसे संश्लिष्टा हो। और स्थिर होके तू बैठि। किंच इन्द्राग्नी और बृहस्पति एते देवता इस स्थानमें तुम्हैं सादन करते हुए नही मनुष्य अध्वर्यु तिन्हैं सादन करने को समर्थ हैं इति भावः॥५४॥

ताऽअस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः॥ जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः॥५५॥

का०१६·७·१४· तया देवतयेति सादनं, ताऽअस्येति सूददोहसाधिवदनं एते नित्ये सर्वत्रेति सूत्रार्थः॥ इन्द्रपुत्र प्रियमेधदृष्टाब्देवत्यानुष्टुप्। देवः(द्युलोक संबंधी वा दिवश्च्युता सूददोहसः ⁺जलकरि सहित और अन्नयुक्त दोहजल प्रसिद्ध इस यज्ञ संबंधी सोमको भले प्रकार मिश्रित (पक्क) करते हैं कैसे हैं सूददोहसः किं पृश्नयः नानाविधा वा अन्नरूपाः ⁺ अर्थात् यहां आके व्रीह्यादि धान्यनिष्पादकाः। कब मिश्रित करते हैं कि देवानां जन्मन् संवत्सर ᵖ विषैं सम्वत्सरे सम्वत्सरे सोम यागस्तदभिप्राय मेतत्। तीन्यों सवनोमें ᵐ। यज्ञपरिणामभूताऽअन्नोत्यादिका जल दिविके सकाश से इस लोकमें गिरि के ओषधी वनस्पति अन्न हो सोमका उपकर्त्ते हैं इति भावः॥५५॥

इन्द्रं विश्वाऽअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः॥ रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम्॥५६॥

का०१७·१·१८·चात्वाल स्थान से मृदा लेकरि गार्हपत्य चितिके

⁺ शत०८·७·३·२१·आपो वै सूददोहसः। ८·७·३·२१· पयो वै पृश्नय इति श्रुतेः।

⁺ शत०८·७·३·२१·अन्नं वै पृश्नीति श्रुतेः।
ᵖ शत०८·७·३·२१·संवत्सरो वै देवानां जन्मेति श्रुतेः।
ᵐ शत०८·७·३·२१·सवनानि त्रीणि वै रोचनानीति श्रुतेः।

ऊपर डाले॥ इन्द्र देवत्या मधुछन्द सुतजेत दृष्टानुष्टुप्॥ ऋग्यजुःसामरूप स्तुतियें इन्द्र को वढाती हैं। कैसे इन्द्र को कि समुद्र व व्यापक अर्थात् विविधाञ्चन नानागति वा अक्षोभ्य गति। सवरथीओं के वीच अत्यन्त रथ युक्त महारथी अर्थात् रथ युद्ध में अतिशय लब्ध तथा अन्नों के पति और सद्धर्म वर्ति ओं के प्रति पालक॥५६॥

समितꣳ सङ्कल्पेथाꣳ सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ॥
इषमूर्ज्जमभिसम्वसानौ॥५७॥

का०१७·१·१९· गार्हपत्य चितिको मृत्पूरण से परिश्रित(सम)करिके तिस के वीच में नीचेउ ख्याग्नि को चारि मंत्रों से स्थापन करे॥अग्नि देवत्या १· उष्णिक् २· उपरिष्टाद्बृहती ३· उष्णिक् ४· पङ्क्तियो॥ हे चित्योख्याग्नी तुम संगत हो और संकल्प हो वा संकल्पन(यज्ञनिष्पादन करो। कैसे हो तुम कि परस्पर प्रीति युक्त दीप्यमान। परस्पर शोभन चित्तवन्त अन्न और घृतादि उपसेचन को अभ्यवहारकर्त्ते वा भले प्रकार सम्पादन कर्त्ते॥५७॥

सं वां मनांꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्॥ अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वन्न ऽ इषमूर्ज्जं यजमानाय धेहि॥५८॥

हे पूर्वोक्त अग्नियों तुम्हारे मनों(मन वुद्धि अहंकार को समाकरम्। सर्वतः संगत कर्त्ता हूं। तथा व्रतों(कर्मों) को समाकरम्। तथा चित्तों(मनोगतिसंस्कारों) को समाकरम् उकारः समुच्चयार्थः। एवं मनः कर्म संस्कार से एकी किये एकी भूत अग्नि को प्रार्थना करियें हैं· हे पुरीष्य(पशव्य) हे अग्ने तू हमारा पालक हो अन्न और तिसका

उप सेचन दध्यादि यजमान के अर्थ दे ॥ ५८ ॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिमाँ२ ॥ असि ॥ शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ ५९ ॥

हे अग्ने तू पशव्य है और धनवान पोषयुक्त है अतः सब दिशाऐं शांत करिके इस चयन विषें स्वकीय स्थानको प्राप्त हो ॥ ५९ ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ॥ मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

व्याख्याता ५.३ ॥ ६० ॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा ॥ तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः सम्विदानः प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा विमुञ्चतु ॥ ६१ ॥

का० १७.१.२१. शून्या उखा को सिकता से पूरण करि मातेवेति मंत्रेण शिक्या से प्रथक करिके अग्निवत् स्थापित अग्नि के उत्तर में अरत्निमात्र गार्हपत्य चिति के ऊपर ही उखा को रखिके तिस के वीच दुग्धको चुप के से सींचे ॥ उखास्तुतिस्त्रिष्टुप् । मृन्मयी जो उखा पशव्य अग्नि को स्वकीय गर्भस्थान में रखती हुई । जैसे माता पुत्र को उत्संगमें रखती है । प्रजापति तिसकृतकृत्य उखा को शिक्य पाशसे मुक्त करै कैसा है प्रजापति कि विश्वेदेवा और ऋतुओंसे संवित् अत्यन्त एक होके अहो वडा कर्म उखा का किया यह संवाद कर्ता । विश्वकर्मा सृष्टि रूप कर्म जिसका ॥ ६१ ॥

अ०५ असुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करं

स्य॥ अन्य मस्मदिच्छसातेऽइत्यानमोदेविनिर्ऋतेतुभ्यं मस्तु॥६२॥

का॰१७॰१॰२३॰२॰१॰ ततः अध्वर्यु राजसूय में हविष्य शन होमविषें जैसा देश तैसा आप प्रदीर्ण वा इरण में असुन्वन्तमिति प्रत्यृचं तीन्यो नैर्ऋती संज्ञा इष्टका दक्षणोत्तरा करिकें फिर तिन्होंका अस्पर्श कर्ना उपधान करे। कैसी इष्टका कि पाक करिकृष्णावर्णा तुषहीसे पक्व लक्षण हीन पद्या पराची अना त्मसुखी। अवदक्षिण मुख हो पूर्वमें उत्तरा को रखिके फिर दक्षिण में दो रखे॥ तिस्रो निर्ऋति देवत्या स्त्रिष्टुभः। हे निर्ऋते असुन्वन्त ऽ सोम यागन करनेवाले ऽ और ऽ अयजमान हवियज्ञों से यजन न करनेवाले को तू पकडि। किंच गुप्तचोर प्रकटचोर तिन्हो को पीछे से जाय करि पकडि। सर्वथा सोम याग करनेवाले और हवियज्ञों से पूजने वाले हमलोगों को मति पकडि। सादुष्टशिक्षा तेरी गति श्चर्या हे देवि निर्ऋते एवंभूता तेरे अर्थ नमस्कार हो॥६२॥

नमः सुतेनि ऋते तिग्मतेजोयस्मयं विचृता बन्धमेतम्॥ यमेनत्वं यम्यासंम्विदानो त्तमेनाके ऽ अधिरोहयैनम्॥६३॥

हे तिग्म तेज ऽ दुःसह तेज हे निर्ऋते तेरे अर्थ सुतरा नमस्कार हो। सो तू लोह पाशवत् दृढ इस वंध जीवत्व करि जन्म मृति रूप अज्ञान को विशेषरा काटि। किंच अग्नि और पृथिवी से संवाद करती उत्कृष्ट नाक सर्व सुखोपेत दुःख मात्र हीन स्वर्गविषें इस यज

+भूमिर्वानिर्ऋतिर्दिग्रामिमाकेवला+

मान को स्थापन करि॥६३॥

यस्यांस्ते घोर आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्ज्जनाय॥
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः॥६४॥

हे घोरे विषमसीले क्रूररूपे निर्ऋति देवी जिस तेरे मुख में मैं होमता हूं (आहुतिवत इष्टका को उपधान कर्ता हूं। किसलिये कि इन बंधनो (यजमान के स्वर्गोप्ति प्रतिबंधक पापों के अवसर्जनार्थ। किंच जंतुमात्र तुम्ह जैसी कू भूमि यह स्तुति कर्ता है। तू तो निर्ऋती है। मैंभी शास्त्रज्ञता से तुम्ह तैसी विश्वतः (सर्वथापि निर्ऋतिमेव) भलेप्रकार जानता हूं। निर्ऋति शब्दस्यायमर्थः सर्व देव साधारणाद्देवयजनान्निष्क्रम्य स्वतन्त्र देशे विदीर्णादौ ऋतिः प्राप्तिर्यस्याः सा निर्ऋतिरिति। इदं प्रकार द्वयं वेदेति विश्वत इत्युक्तम्॥६४॥

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्॥ तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः॥ नमो भूत्यै येदं चकार॥६५॥ पं॰ तः। अ॰ न॰ र। इ॰॥६५॥

शिक्य रुक्म पाश दोनों इण्डु और आसन्दी को नैर्ऋती इष्टका से पीछे डाले॥ यजमान देवत्या + यजमानं प्रत्युच्यते। हे यजमान निर्ऋति देवी ने तेरे ग्रीवा कंठावयव विषें जो शिक्यरूप पाश को बांधा कैसे पाश को कि नहीं छेदा जाय हट तिस ग्रीवस्थ तेरे पाश को इस मंत्र से मैं खोलता हूं। किस स्थान से कि आयुषः अग्नि के मध्य गार्हपत्य चिति स्थान से सम्प्रति इस पाश को दूरि कर्ता हूं +। पाशवि

+ सर्वानुक्रमण्यां छन्दोनामिऽहुभ्मा युप मृते
मध्ये ज्योतिस्त्रिष्टुप् मही धरेन्तु त्रिष्टुब्देव

+ शत॰ ७.२.१.१५ अग्निर्वा आयुस्तस्यैतन्मध्यं यच्चितो गार्हपत्यो भवत्यचित आहवनीय इति श्रुतेरायुः शब्देनाऽग्निरुच्यते।

मोक के अनन्तर निर्ऋति से आज्ञा पाकर अग्नि रूप को आश्रय हो हे यजमान इस अन्न को भक्षण करि॥ का॰१७.२.४ शिक्यादि निरसन के अनन्तर अपने और नैर्ऋती इष्टका ओं के बीच में जल पूर्ण चमस को चुपके से ओंधाय ब्रह्मा यजमान अध्वर्यु नमः इस मंत्र करि निर्ऋति समीप से उठें॥ भूतदेवत्ये कपदा विराट्॥ जिस देवी ने यह अग्नि लक्षण कर्म किया तिस भूत्ये॰ श्रीरूपिणी देवी के अर्थ॰ नमस्कारो ऽस्तु॥ ६५॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः॥
देव इव सविता सत्यधर्म्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम्॥ ६६॥

का॰१७.२.६. ब्रह्मा यजमान अध्वर्यु नैर्ऋत्युपधान देश से पीछे न देखते शाला को जावें॰ अध्वर्यु चलिकर शालाद्वारी गार्हपत्यचिति रूप अग्नि को उपस्थान करे॥ विश्वावसुर्देव गन्धर्व दृष्टेन्द्राग्निर्देवत्या त्रिष्टुप्। यह अग्नि सब आहवनीया दतिप्रणीताग्नीध्रधिष्ण्यादिक सब रूप सर्व नेदेखताहै केसे रूप कि अपने॰ अपने कर्मों से युक्त इति शेषः॥ कैसा है अग्नि कि यजमान को अपने घर में स्थापित करता॥ तथा प्रजा पशु रूपधन का प्रापक। सत्यधर्म (सत्य॰ अवश्य भावी फलोपेतः धर्म॰ अग्निहोत्रादि लक्षण जिसके वोह। कैसे कि॰ जैसे सूर्यदेव सब रूप देखता। और जो अग्नि परिपंथियों से संग्राम में इन्द्र जैसे स्थित होता तद्वत् स्थित हुआ तिसे हम स्तुति कर्त्ते हैं इति शेषः॥ ६६॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्॥ धीरा देवे

षु सुम्नया ॥ ६७ ॥

का०१७.२.११. चितिके दक्षिण श्रोणिसे खडा अध्वर्यु प्रतिप्रस्थान के उत्तरांशपूर्वमें षट् वा द्वादश वा चौवीस वैलोंसे जुडेहुए औदुंबर हलको दो मंत्रों से अभिमंत्रित करे॥ सीरदेवत्ये सोमपुत्र बुधदृष्टे द्वे गायत्री दृष्टे भौ। बुद्धिमान अग्निहोत्र के जानने वाले खेन कर्म के जानने वाले हल(बैल) जोडते नाना प्रकार विस्तार करते हैं। क्या करने को कि देवताओं के सुख करने को इति शेषः ॥ ६७ ॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपते ह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

हे हल हारे औ हल जोडो सौल पचारी जोताओंसे विस्तार करो। फिरि जोतने से संस्कार किये इस स्थान में बीज व्रीह्यादिक तुम बोओ किससे कि गिरा० या ओषधीरित्यादिक या ऋ०७५ वेदमंत्र वाचा औरच मस सो किंच वाग्वै गीरं नर्ठं स्नुष्टिरिति श्रुत०७.२.२५ श्रुतेः अन्नजाति व्रीह्यादिका फल पुष्पा सह बर्तमाना पुष्ट हो। जैसे थोडे ही काल करि पका अनाज हमारे घरमें आवे ॥ ६८ ॥

शुनर्ठं सुफाला विकृषन्तु भूमिर्ठं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥

का०१७.२.१२. परिश्रित समीप चिति स्थानमें चारि ऋचाओंसे दक्षिण पश्चिम उत्तर पूर्व चारि सीता जोते॥ कुमार हारित दृष्टाः

सीतादेवत्या श्चतस्त्रः द्वेत्रिष्टुभौ तृतीया पङ्क्तिश्चतुर्थ्यनुष्टुप्। शोभना फाला (सीर के अग्रस्थ लोह विशेष-कुसि) सुख जैसे तैसे भूमि को कृषे (कूंड करें) हलहारे सुख पूर्वक बैलोंके साथ चलें। हे शुनासीरौ + वाय्वादित्यौ तुम हमारी ओषधीयें। (व्रीह्यादिकोंको) शोभनफला करो कैसे हो शुनासीरा कि हवि (जल) से भूमि को सींचते ओषधियें सफल करो इतिभावः॥ ६९॥

घृतेन सीता मधुना समंज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः॥ ऊर्ज्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्यावव-त्स्व॥ ७०॥

सीता (लाङ्गल पद्धति, हलेषा) जल करिकै सिञ्चित हो। कैसी सीता कि विश्वेदेवा और मरुतों से अनुज्ञाता वा अङ्गीकृता एवं परोक्षमुक्त्वाप्रत्यक्ष माह-हे सीते अन्नवती सोतू पय दधि घृतादिकसे दिशापूर्ण कर्त्ती दुग्धादिके साथ हमारे अनुकूलाहो॥ ७०॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवं सोमपित्सरु॥ तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनम्॥ ७१॥

तिस पूर्वोक्त हल को गौ (बैल) अवि (मेंढा) और रथ वाहक अश्वादिक प्राप्त कर्त्ता है। कृषि समृद्धि में ही गवादिक यजमान के सुलभ इति भावः अत एव लाङ्गल गवादि प्रापक है। कैसे हल को कि फाल (कुसि संयुक्त) तथा शोभन सुख कर्नेवाला। तथा सोमपित्सरु-सोमपीनेवाले यजमान के निमित्त भूमि को खनता वा यजमान विषें पापको नाश कर्त्ता है वा सोम पीते हैं जिससे अर्थात् चमस तिस्कानि

+ शुनो वायुरित्यादि निरु॰

त्पादक नहीं लाङ्गल कर्म विना सोम चमस होता। अर्थात् ऐसे ह ल को गवादि चलातीहैं कैसीहैं गो और भेड कि प्रकर्षेन चलती अतिवेगवति। तथा पुष्टाङ्गी। कैसे रथवाहन को कि उत्कृष्ट गोपेत ॥७१॥

कामंकामदुघेधुक्ष्वमित्रायवरुणायच ॥ इन्द्रायाश्वि भ्या पूष्णे प्रजाभ्य ऽ ओषधीभ्यः ॥७२॥

हे कामदुघे (मनोरथों को पूर्ण करनेवाली लाङ्गल पद्धते, हलैया) मित्र वरुण इन्द्र अश्विनी कुमार पूषा के अर्थ और प्रजा के अर्थ औषधि निष्पत्त्यर्थ अपेक्षत भोग को निष्पादन करि ॥७२॥

विमुच्यध्वमघ्न्यादेवयाना ऽ अगन्मतमसस्पारमस्य ॥ ज्योतिरापाम ॥७३॥

का॰ १७.२.२०.२१. वृषों को हलसे निकाल कर पशुवत् ईशानदि शा प्रति अध्वर्यु छोडे और यजमान सुत्या विषें सीर सहित तिन्हों को अध्वर्यु के अर्थ देवे ॥ विमोचने मन्त्रः वृषदेवत्या विराट् प्राङ्कुमती गायत्री। हे देवयानाः (देवतार्थ कर्म करने वाले और देवताओं के अर्थ यानकर्षादि उद्यम तिन्होंका वा देवयान मार्ग भूताओं, कर्मद्वारा तिसको प्राप्त करने वाले औ। हे अघ्न्याः बलीवर्दौ तुम छूटो अर्थात् जगत्स्थि न हेतु कृषि को निष्पादन करि कृत कृत्य हुए जुडने से पृथक् हो औ। इस तम क्षुत्पिपासाद्युद्भूत दुःख के पार समाप्ति को हम पहुंचे †। दुःख के पार को स्पष्ट करता है हम ज्योति परमात्म लक्षण वा यज्ञ रूप तेज को प्राप्त हुए ॥७३॥

सजूरब्दो ऽ अयवोभिः सजूरुषा ऽ अरुणीभिः ॥ सजोष

† बृहदारण्य॰ ब्रा॰ ३.२.९. सोऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति

सावश्विनादर्ठंसोभिः सजूः सूरऽएतंशेन सजूर्वैश्वानरऽइ
डयाघृतेनस्वाहा॥७४॥

का॰१७॰३॰२॰ तहां संस्कृत जुहूकरि पञ्च गृहीत आज्यसे कृष्टात्ममध्य स्थापित कुशस्तम्ब विषे स्रुच को ऊंची करते होमें॥ लिङ्गोक्तदेवतं यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्छन्दस्कम्। अब्दः (जलोंका देनेवाला-संवत्सर) उषा (प्रात की अधिष्ठात्री देवता) अश्विनौ (देवताओं के वैद्य) सूरः (सूर्य) और वैश्वानर (अग्नि) इन अब्दादिकों के अर्थ यह घृत सुहुत हो। तेषां प्रत्येकं विशेषणानि। कैसा है अब्द कि अयवोभिः सजूः पवों अर्धमासों और अयवों मासों से प्रीतियुक्त। कैसी उषा कि अरुणवर्ण किरणों से सजूः कैसे अश्विनौ कि चिकित्सादि कर्मों से सजूः। कैसा सूर्य कि अश्वसे सजूः। कैसा अग्नि कि पृथिवी से सजूः † ॥७४॥

अ॰ई याऽओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा॥ मनैनुबभ्रू
णामहर्ठंशतंधामानि सप्तच॥७५॥

का॰१७॰३॰८॰ याऽओषधी इन पांच तृचों से चमस करि सर्वौषधिवपै उदपात्रवत् चारों-चारों सीताओं में यथाकृष्ट॥ अथर्वपुत्र भिषग्दृष्टा ओषधिदेवत्या योऽस्मानभिदासतीत्यन्ता १०१ सप्तविर्ठंशति रनुष्टुभः मुञ्चन्तुमेत्याद्या ८८ द्वादशबन्धुदृष्टाः कुत्रापि कर्मण्यनियुक्ताः। युगशब्दः कालवाची तीनों युगोंका समाहार त्रियुग त्रिकाल वसंत प्रावृट् और शरद में। पुरा सृष्टिकी आदिमें जो ओषधीएँ भाविनी ओषधीओंसे पहिले उत्पन्न हुई किमर्थम् कि देवता (ऋतुएँ ‡) ओषधि युक्त कीजावें एतदर्थम्। बभ्रूणां जगत्‌जन (जनन) भरण समर्थ वा पाक करि

† तदधिष्ठातृत्वात् अग्नेरपीहि पृथिवी इडाशब्देन गौर्वाग्नन्नं चोच्यते

‡ ऋतवो वै देवा इति श्रुतेः ७.२.४.२६ श्रुति

† पञ्चदशभिषग्दृष्टा द्वादशबन्धुदृष्टाश्चैवं सप्तविंशति।

पिङ्गल वर्ण तिन ओषधीओं के सौ १०० और सात ७ धामों को मैंने जाना। संवत्सरोपलक्षित एक-एक स्थान शतायुर्वै पुरुष इतिश्रुतेः शतं वर्षात्मक धामों और शिरःस्थ मुख १ नेत्र २ नासा छिद्र २ कर्ण २ सप्त ७ स्थानों य॰ एवेमे सप्तशीर्षन् प्राणास्ताने तदा हेति शत॰ ७। २। ४। २६। शत वर्ष पर्यन्त इन्द्रियों की ओषधी करि नर्प्य मानत्व सैं तत्स्थानत्व अथवा असंख्यात् स्थान भेदों जाति भेदों सै और सप्त भेद ग्राम्य आरण्यादि और व्रीह्यादि और नीवारादि को मैंनें जाना ७५

शतं वो॰ अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः॥ अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे॰ अगदं कृत॥७६॥

हे अम्ब॰ मातृस्थाना ओषधीओ तुम्हारे धाम जाति भेद वा क्षेत्र वा जन्म सैकडो हैं और तुम्हारे सहस्रों अङ्कुर हैं +। एवं सति हे शतक्रत्वो सैकडों कर्म जिन्हों से तुम मेरे इस यजमान को अगद क्षुत्पिपासादि षडूर्मि रोगे रहित करो॥७६॥

+ शतसहस्रत्वपदानामपरिमितत्वमुक्तम्

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः॥ अश्वा॰ इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥७७॥

हे ओषधीओ तुम प्रसन्न होओ। कैसी हो तुम कि पुष्पोपेताः। फलों की उत्पन्न करनेवाली। जैसैं अश्व संग्राम में जय शील हैं तद्वत् फलपर्यन्तत्व सैं जयशीलाः वीरुधः॰ व्याधि की विविध निवारण करनेवाली बहुत अङ्कुराः। पारयिष्णवः॰ फल पाकान्तत्व को परित्याग करि बहु काल कर्म परायण शीलाः॥७७॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे॥ सनेयमश्वङ्गा

म्वासऽआत्मानं तवपूरुष॥७८॥

हे ओषधीओ हे जगन्नि मौत्रीऔ (भोजन दान व्याध्यपगमादिकोंसे उपकर्त्रीऔ) हे देवीऔ तुम प्रति इसवक्ष्यमाण विधिकरि प्रसिद्ध अभीष्ट कोप्रार्थना करताहूं। यहक्या कि हे यज्ञपुरुष तेरे प्रसाद से अश्व गौ वस्त्र शरीर कोमें सम्भजन करूं यज्ञपुरुष प्रति जो मुस्करि अश्वादिकप्रार्थना कियेते ओषधीओं से अनुमन्तव्य यह ओषधि प्रार्थना है इतिभावः॥७८॥

अश्वत्थेवोनिषदनं पर्णेवोवसतिष्कृता॥गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥७९॥

हे ओषधीऔ तुम्हारा अश्वत्थ आश्वत्थी उपभृत स्रुक् विषें स्थान है हविषां तत्र स्थापनात्। किंच तुम्हारी पलाशमयी जुह्वा विषें स्थित कीगयी अध्वर्युना होमार्थ जुह्वां स्थापनात्। हे हविर्भूता ओषधियो तुम अग्नि में होमीहुई आदित्य को भजती हो॥ यद्वा अश्वत्थे वो निषदनं अश्वत्थ के फलते सब ओषधिओं के फलवत्व से पर्णेवो वसतिः कृता और पलाश के फलते व्रीह्यादिकों के फल तत्व से अतएव तुम उत्पन्नहुई गोभाज भूमिभाज हो किमर्थमिदमित्यत आह कि जिस्कारण यजमान को तुम अन्नदान से पोषण करती हो तिस हेतु अश्वत्थादि स्थान हैं और देवताओं के अधिष्ठान से लोक विषें अश्वत्थ नति प्रदक्षिणा करि पूज्य है और पलाश इध्मादि रूपकरि एवं अश्वत्थादि रूपेण तुम भूभाज हो शेषं पूर्ववत्॥७९॥

यत्रौषधीः सम्ग्मत राजानः समिताविव॥ विप्रः सऽउच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः॥८०॥

हे ओषधिओ जिस विप्र (भैषज्य करने वाले ब्राह्मण) विषें तुम रोगजीतने को प्राप्त होती ओ कैसे कि जैसे राजा युद्धविषें शत्रु जीतने को आतेहैं। सो तुम्हारा आश्रित विप्र भिषक् (वैद्य) कहलाता है। कैसा है विप्र कि पुरोडाश करिके राक्षसों के किये उपद्रव का नाशक तथा ओषधि दान करिके रोगका नाश करनेवाला॥८०॥

अश्वावतीᳯ सोमावतीमूर्ज्जयन्तीमदोजसम्॥ आवित्सिसर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये॥८१॥

इस यजमान के अरिष्टतातये मंगल करने वा शुभ करने के अर्थसव ओषधियें में भले प्रकार जानताहूं वा यजमान के अर्थ को जानता हूं। तद्विशेषणं शुभ करता वा विस्तारता है तिसके। सव को नसो कहना हैकि अश्ववती (कोइक अश्व संपादिनी ओषधि समृद्धि विषें धन द्वारेण अश्व लाभसे) और सोमवती सोमसंपादिनी ऊर्जयंती बल संपादिनी वा जीवयन्ती उदोजसं तेजः संपादिनी। एवं नानाकार्य कारिणी सब ओषधियें जानताहूं इत्यर्थः यद्वा अश्वावतीमित्यादीनि बहुवचनान्तानि कार्याणि ओषधीरित्यस्य विशेषणत्वात्॥८१

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते॥ धनᳯ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥८२॥

हे यज्ञपुरुष त्वदीय शरीर प्रति हवि रूप धन देने की इच्छा करनेवाली ओषधिओंकी सामर्थ्य प्रकाशी होती हैं जैसे गोत से गोएं अरण्य देश प्रति उछलके जाती हैं॥८२॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयᳯ स्थनिष्कृतीः॥ सीराः पं

नुत्रिणीस्थन यदामयतिनिष्कृथ॥८३॥

हे ओषधिओ तुम्हारी निष्कृति(व्याधिनाशिनी) नामा माता(जननी) और तुमभी निष्कृति हो अर्थात् जैसी मा तैसी वेटी। किंच सीराः, अन्नकरि वर्तमान वाधादिकोंकी अपसारयित्री वाहल्य करिनिष्पादनकीहुई। और पतत्रिणी, प्रसरणशीला हो। यत्, जिस कारण आमयति नरविषें स्थित रोग को नाश करो यद्वा क्षुधादिकरोगवत् बाधादेते हें तिन्हें तुमनाशकरो॥८३॥

अति विश्वाः परिष्ठास्तेन इव व्रजमक्रमुः। ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किंच तन्वोरपः॥८४॥

रोगनाशकरनेवाली सब ओषधीएं जब भक्षण किई हुई देहको व्याप्त होतीहें। तत्र दृष्टान्तः, जैसे रात्रि विषें चोर गोशाला में गो चुराने को सर्वत्र फिरताहे तद्वत् जब ओषधीएं रोगापहरण करने देहको आक्रमण करतीहें तब शरीरका जो कोईपाप शिरव्यथागुल्मअतिसारादिरूप पापका फल जो कुछ हे तिस सबको नाशकरतीहें॥८४॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे। आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥८५॥ [१] गृभोइतिवापाठः

जब यह ओषधी पूजा किईहुईं में अपनें हस्तविषें स्थापन करताहूं तबही व्याधिका स्वरूप भक्षण से प्रथमही नाश को प्राप्त होताहै किं पुनर्भक्षणेन इतिभावः। तत्र दृष्टान्तः जैसे जीतेजीव जोहिंसार्थ पकडिकर आघात स्थान को लातेहें सो जीव गृप् तिसकाजीवगृभः, बधसे पूर्व अति विषाद करि में मरा यह मन्यमान मनु

ष्य का आत्मा जैसे नष्ट प्राय होताहै तैसे औषधी हस्त विषें रखनेमें व्याधि का आत्मा नाश को प्राप्त होताहै इत्यर्थः ॥८५॥

यस्यौषधीः प्रसर्प्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ ततोयक्ष्मंविबाधध्वऽ उग्रोमध्यमशीरिव ॥८६॥

हे औषधीओ जिस रोगी के प्रत्यङ्ग सर्व अंग प्रति परु सब ग्रन्थियों को तुम व्याप्त होती हो ततः अङ्ग पर्व समुदाय से रोग को तुम निवर्त्त करती हो। तत्र दृष्टान्तः- उग्रो मध्यम शीरिव मर्मघातक उत्कृष्ट बद्ध गोधाङ्गुलित्राण उद्गूर्ण शस्त्र क्षत्री जैसे शत्रु को बाधा देता है वा रुद्र त्रिशूलमध्यभागसैं जैसे युगान्त में जगत को बाधा देताहै तद्वत् तुम भी रोगी की देह विषें प्रविष्ट व्याधि को विशेषेण बाधा देती हो॥ ८६ ॥

साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना ॥ साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

हे यक्ष्म रोग तू चाष(पपीहा- पक्षी)वत् प्रकर्ष पूर्वक जा कैसे चाष करि किकिदीविना- †कीकी बोलता हुआ पवन की सी गति सैं भागजा। किंच निहाकया निहन्ति कायमिति निर्ऋतिः- कृच्छ्रापत्तिः तिसके साथ नष्ट हो यद्वा शब्दानु करणं- इदं हा कष्टं कया औषध्या निहितोऽहम्- हाय-हाय बडा कष्ट किस औषधी सैं मैं मारा यह शब्द करता हे यक्ष्म तू नष्ट हो॥ अर्थान्तरं वा किकि शब्द कफावरुद्ध कण्ठोत्थ ध्वनि के अनुकरण में- कण्ठध्वनि करि क्रीडै किकिदीवी श्लेष्म रोग। चष वधे- चषति व्याकुल करि के मारै

† किकीति शब्दानुकरणं(यां) किकीति शब्दं नदन्ति व्याति क्रीडनीति किकिदीविस्तेन चाषसवाचितः (दिवि) सार्थः

चाष-पित्तरोग। वातस्य ध्राजिः-वात रोग। हे यक्ष्म(रोगराज) तू कफपित्त वात रोगोंसे साथ भागजा। जिसपीडासेकि किस रुज करि निहत हूं हा क ष्ट यह शब्द करता वोह निहा का(सर्वाङ्ग बेदना) तिसे साथ ले हे यक्ष्म तू नाश हो॥८७॥

अन्या वो॑ऽ अ॒न्याम॑वत्व॒न्यान्यस्या॒ऽ उपा॑वत। ताः सर्वाः॑ सम्विदा॒नाऽ इ॒दं मे॒ प्राव॑ता॒ वचः॑॥८८॥

हे ओषधीओ तुम्हारे मध्य कोईक ओषधि व्यक्ति कोईक ओषधिव्यक्ति को रक्षा करो तैसे रक्षा किई हुई और भी और के समीप आके पालन करो वा पुरुष वचन व्यत्ययः अन्य-अन्य के प्रभाव को अवतु। तथा विधा ओषधीओ तुम परस्पर एकी हुई मेरे इस प्रार्थना रूपवचन को प्रकर्षेण रक्षा करो॥८८॥

याः फ॒लिनी॒र्या ऽअ॑फ॒लाऽअ॑पु॒ष्पा याश्च॑ पु॒ष्पिणीः॑। बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वꣳह॑सः॥८९॥

जे ओषधीऐं फलयुक्ता और जे फल रहिता और जे पुष्प रहिता और जे पुष्पयुक्ता ते सब ओषधीऐं बृहस्पति की प्रेरी हुई हमें पाप(रोग)से पृथक् करें॥८९॥

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒३॑दथो॑ वरु॒ण्या॒दु॒त। अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शात्सर्व॑स्माद्देवकिल्बि॒षात्॥९०॥

एवमोषधिवापार्थानि पञ्च त्वचानि समाप्तानि। अथानारम्याधीताः॥ शपथनिमित्त किल्विष(पाप)से ओषधीऐं मुझे पृथक् करें और वरुणापराधनिमित्त पापसे मुझे पृथक् करें और यम बन्धननि

मित्त पाप से मुझे पृथक् करें और सब देवापराध निमित्त पाप से मुझे पृथक् करें ॥९०॥

अव॒पतन्तीरवदन्दि॒वऽओषधय॒स्परि॑ ॥ यंजी॒वम॒श्नवाम है न सरि॑ष्याति॒पूरु॑षः ॥९१॥

द्युलोक के सकाश से भूमिविषे प्राप्त होती ओषधीएं आपुस में कहती हुई। क्या कि जिस जीव (अनुक्रान्त प्राण पुरुष) को हम व्याप्त होवें सो पुरुष नहीं नाश होता है ॥९१॥

याऽओषध॒ीः सोमराज्ञीर्ब॒ह्वीः श॒तविचक्षणाः ॥ तासामसि त्वमु॑त्त॒मार॒ङ्कामा॑य॒ शᳪहृ॒दे ॥९२॥

सोमराज्ञीः सोम है राजा तिन्हों का वे बह्वीः (अनन्ता) शतविचक्षणाः असंख्य चतुराः वा बहुवीर्या वा शत स्तुति करने वाले जिन्हों के एवम्भूता जे ओषधियें हैं तिन ओषधियों के मध्य हे ओषधे तू यतः उत्कृष्ट है अतः ईप्सित के अर्थ पर्याप्ता हो हृदय के अर्थ सुखकारिणी हो ९२

याऽओषध॒ीः सोमराज्ञी॒र्विष्ठि॑ताः पृथि॒वीमनु॑ ॥ बृह॒स्पति॑प्रसूताऽअ॒स्यै संद॑त्त॒वी॒र्य॑म् ॥९३॥

सोमराज्ञ्यः जे ओषधियें पृथिवीविषें विविधि स्थिति बृहस्पति करि प्रेरी हैं ते ओषधियें इस मेरी गृहीत ओषधी के अर्थ वीर्य सामर्थ्य देवें यह बहुवीर्या होवे इति भावः ॥९३॥

याश्चे॒दमु॑पशृ॒ण्वन्ति॒ याश्च॑ दू॒रं परा॑गताः ॥ सर्वाः स॒ङ्गत्य॑ वीरुधो॒ऽस्यै संद॑त्त वी॒र्य॑म् ॥९४॥

जे ओषधियें इस मेरे प्रार्थनारूप वचन को समीपस्था सुनती और जे अ

न्यदूरि में व्यवस्थित हुई थोड़ा सुनती हैं हे वीरुधः (विविधरोहणा) ओषधियो ते सब समीप दूरस्था संगत होके इस ओषधी के अर्थ वीर्य देओ॥९४॥

माॆवो रिषत्खनि॒ता यस्मै॑ चा॒हं खना॑मि वः। द्वि॒पाच्च॒तुष्पा॑द॒स्माक॒ꣳ सर्व॑मस्त्वनातु॒रम्॥९५॥

हे ओषधियो चिकित्सा के अर्थ तुम्हारे मूल को ग्रहण करि खननकर्त्ता मत नाश को प्राप्त हो और जिस रोगी की चिकित्सा के अर्थ तुम्हें मैं खनता हूं सो भी नाश को न प्राप्त होवे। किंवहुता हमारे संबंधि स्त्री पुरुष गो आदि प्राणिजात सब रोग रहित हो॥९५॥

ओष॑धयः॒ सम॑वदन्त॒ सोमे॑न स॒ह राज्ञा॑। यस्मै॑ कृ॒णोति॑ ब्राह्म॒णस्त॒ꣳ राजन्पारयामसि॥९६॥

राज्ञा• अपने स्वामी सोम के साथ ओषधियें देवता संवाद करती हुईं। क्या संवाद कि ब्राह्मण जिस रोगी के अर्थ हमारी मूलादि से चिकित्सा करता है• हे राजन् (स्वामिन् सोम) तिस रोगी नर को हम पार करती हैं• सोमसंवादो व्याधिनाशद्वारार्थः॥९६॥ +वलाशस्पइतिपाठः

नाश॒यि॒त्री ब॒लास॒स्यार्श॑स उप॒चिता॑मसि। अथो॑ श॒तस्य॒ यक्ष्मा॑णां पाका॒रोर॑सि॒ नाश॑नी॥९७॥

हे ओषधे तू बलास (श) क्षय रोग की नाश करने वाली है। और अर्शो (गुद व्याधि) की नाशयित्री है। और उपचिताम् शरीर को वढाने वाले श्वयथु गडुम्ली पद्मादि कों की नाशिका है। और बहुत व्याधियों के पाकारोः मुखपाक क्षतादि कों की नाशकर्त्री है वा पाकारुः अन्नपाकतिस की व्यथा मन्दाग्नि तिसकी तू नाशिनी है॥९७॥

त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ॥ त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥

हे ओषधि यो गन्धर्व (देवविशेष) तुम्हें स्वेष्टकार्यसिध्यर्थ खनन करते हुए और इन्द्र तुम्हें खनता हुआ और बृहस्पति तुम्हें खनता हुआ ॥ और हे ओषधे सोम राजा तेरी सामर्थ्य को जानि के तुम्हें उपयोजन करि यक्ष्म (महाव्याधि) से मुक्त हुआ ॥ ९८ ॥

सहस्व मेऽअरातीः सहस्व पृतनायतः ॥ सहस्व सर्वं पाप्मानꣳ सहमानास्योषधे ॥ ९९ ॥

हे ओषधे यतः तू शत्रुओं को अभिभवन्ती है अतः मेरे अदानशीला शत्रुसेना का अभिभव करि। और संग्राम चाहने वालों को अभिभव किंच सब अशुभ को अभिभव ॥ ९९ ॥

दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ॥ अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ॥ १०० ॥

हे ओषधे तेरा खनन करने वाला दीर्घायु होवे इति शेषः और जिस आतुर मनुष्य के अर्थ तुझे मैं खनूं सो भी दीर्घायु हो और तू भी दीर्घायु होके बहुत अङ्कुरों से बढ़ती रहो ॥ १०० ॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षाऽउपस्तयः ॥ उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं योऽअस्माँ२ऽअभिदासति ॥ १०१ ॥

हे ओषधे तू उत्तमा है वृक्षा शाल ताल तमालादिक तेरे उपकार और उपद्रव निराकरण के अर्थ समीप में संहत तिष्ठें हैं अर्थात् वृक्ष तुझे सेवन करें। किंच जो मनुष्य हमें हिंसा करता है सो मनुष्य

हमारा समीपस्थ उपासक हो॥१०१॥ अनारभ्याधीताः समाम्नाः॥

अ०७ मामाहिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट्॥ यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१०२॥

का०१७।३।११। ततो अध्वर्यु स्फ्य करि वेदि के वहिः प्रदेश से लोगेष्ट का चारि मृत्खण्ड पद्याप्रमाण लेके अपने दक्षिणोत्तर पूर्वापर मध्यम सूत्र प्रान्तों में पूर्वादि तिष्ठन् मन्त्र चतुष्टय करि उपधान करै॥ हिरण्यगर्भ दृष्टा क देवत्या त्रिष्टुप्। जो प्रजापति भूमिका उत्पादक। और जो दिवि को सृजता हुआ +। और जो चन्द्राः (आल्हादिका) जगत्कारणभूता जल प्रथम (आदिभूतः सन्) उत्पन्न करता हुआ अर्थात् तिसद्वारा मनुष्यों को उत्पन्न करता हुआ ‡ कैसा है प्रथमः शरीरी कि सत्यधर्मा सत्य का धारण करनेवाला सो प्रजापति मुझे मत मारो यतः कस्मै प्रजापति के अर्थ हमने हवि दिया। हविर्दोनान्माहन्तु॥१०२॥

+ व्यानट् (व्याप्नोति) इति व्याप्तिकर्मा निघं० २।१८। श्रुतौ सृजति रूपे व्याख्यातः। यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा सृजन्निति श्रुतेः ७।३।१।२०॥ श्रुतेः

‡ यतः श्रुतेः आपश्चन्द्रा इति मनुष्या व्याख्याताः तन्न व्याप्यवहि यस्तेनो प्रवन्ति चन्द्र लोक पित्र्यमार्गानुसारिणः मनुष्या वा आपश्चन्द्रा इति श्रुत० ७।३।१।२०। श्रुतेः कारणे कार्योपचारात्।

अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह॥ वपां ते अग्निरिषितो ऽअरोहत्॥१०३॥

अग्नि देवत्या उष्णिक्। हे पृथिवी मुख करि चिकीर्षित यज्ञ और तत्फलभूत दुग्धादि करि सहित आभिमुख्येन प्राप्त हो। कैसे प्राप्त हो कि प्रजापति प्रेषित अग्नि तेरी वपा (त्वचा पृष्ठ) वपा सदृश इस प्रदेश को आरोहण करै॥ अनयर्चा दक्षिणे लोगेष्टकोपधानम्॥१०३॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्॥ तद्देवेभ्यो भरामसि॥१०४॥

अग्नि देवत्या गायत्री पश्चाल्लोगेष्टको पधानेविनियुक्ता। हे अग्नेजोते
रा अङ्ग शुक्र(शुक्ल-शुद्ध-दीप्तिमान्) औरजो अन्य अंग चन्द्र(आल्हाद
करनेवाला) और जो अन्य पवित्र औरजो अन्यदंग यज्ञाईहैतिस सवआध्य
रूप को देवता ओंके अर्थ सम्पादन करताहूं॥१०४॥

इषमूर्ज्जे मुहमितऽआदंमृतस्ययोनिम्महिषस्यधाराम्॥ आ
मागोषु विशत्वातुनूषुजहामिसेदिमनिराममीवाम्॥१॥

आशीर्दैवी त्रिष्टुप् पादत्रयस्योत्तरतो लोगेष्टकोपधानेविनियोगः॥ अ
न्न तिसका उपसेचन दधिपयघृतादि अमृतस्य सत्यस्य योनिम्
तीनोंविद्या कास्थान महिषस्य इच्छावान अग्निकी धारां,धारणावा
आहुति को इस प्रदेश(उदीचीदिशा) के सकाश सें मैं भक्षण(स्वीका
र) करताहूं। किंच वोह सव इडादिक मुझे आके प्रवेश करें और मेरे
पुत्रादि शरीरें धेन्वादि पशुओं में प्रवेश करें॥ का०१७।३।१३। जहा
मिसेदिमनि राममीवामिति चतुर्थपादकरि उत्तर लोकेष्टकानः सिक
ता पातन करे॥ अन्न रहित व्याधियुक्त अवसाद का मैं त्याग करताहूं
अर्थात् अन्नाभाव रोगदुःखमेरेंनहों॥१०५॥

अग्नेतवुश्रवोवयोमहिभ्राजन्तेऽअर्च्चयोविभावसो॥ बृह
द्भानोशवसावाजमुक्थ्यन्दधासिदाशुषेकवे॥१०६॥

का०१७।३।१५। अग्नेतवेति षट्ऋचाओं करि उत्तर वेदी में सिकता
डालिकर तिस सें पुछपक्ष विना आत्मा को छादनकरे॥ पावकाग्नि
दृष्टं षडृचमग्निदेवत्यम्। आद्येद्वे१।२। विष्टारपङ्क्ती त्रिस्त्रः३।४।५।
सतो बृहती षष्ठी ६ उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्। हे अग्ने हेविभावसो

कान्तिधन) तेरावयः (धूम) और दीप्तियें प्रकाश करते हैं। कैसाहै वयः कि श्रवः सुनाताहै द्युलोक विषें कियेकर्म को कारणयह कि धूमदर्शन से देवताओं को कर्मज्ञान होताहै। तथा महत् नभोगामित्वसे। किंच हे बृहद्भानो (बडीरश्मियें जिसकी) हे कवे (क्रान्तदर्शिन् विद्वन्) यजमानाभिप्रयच्छ) हविदेनेवाले यजमान के अर्थ बलेन सह अन्न को तू देताहै। कैसे अन्न को कि उक्थ्यं शस्त्राद्युपेत यज्ञ तिसयोग्य अर्थात् यज्ञपर्याप्त अन्न को देताहै ॥१०६॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ॥
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥१०७॥

हे अग्ने तू दीप्ति से उत्कर्ष को प्राप्त होताहै कैसा है तू कि पावकवर्चाः शोधक है दीप्ति जिस की वोह। शुक्रवर्चाः निर्मल है दीप्ति जिसकी। अनूनवर्चाः नहीं है दीप्ति जिसकी पूर्णशक्तिः। किंच हे अग्ने तू सर्वतः अचरने से प्राप्त हो पालन करताहै देवमनुष्यसहित जगत का रक्षा करताहै। तत्र दृष्टान्तः जैसे पुत्र बुढापे में माता पिता का पालन करता है तद्वत् किंच दोनों द्यावा पृथिवी पूरण करता है अर्थात् दिविको हविसे पृथिवी को वृष्टि से पूरता है १। तिस तुझे स्तुति करताहूं इति वाक्यशेषः ॥१०७॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥१०८॥

हे ऊर्जो नपात् जल के पौत्र जल से ओषधि बनस्पतियें होतीहैं तिन्हों से अग्नि इस हेतु जल का नाती। वा ऊर्ज अन्न का नपात् नवि

।धूमोवाअस्य श्रवोवयःसहैन ममुष्मिंल्लोके श्रावयतीतिश त·७·३·१·२९· श्रुतेः

१ इमे द्यावापृथिवी ऐरयतीन्द्रस्तमेभ्युपृणाति धूमेनाम्। इष्टेनामिति श्रुतम् ७·३·६·३०· श्रुतेः

नाश करने वाला हे अन्नके अविनाशक। हेजातवेद (जातप्रज्ञान) धीतिभिः निमित्तभूत कर्मों से स्थापित हुआ शोभन स्तुतिओं से तू मन्दस्व, हृष्ट हो। क्यों यह हर्ष किया तहां कहता है कि यजमानोंने तुम्में हविर्लक्षण अन्न होमे अर्थात् हवि प्राप्ति से हर्ष किया। कैसे हैं यजमान कि भूरिवर्पसः† नानारूप। चित्रोतयः नाना विधार क्षा॰ अवन॰ अन्न॰ वा तर्पण तूने किये जिन्हों के अर्थात् तुरुकारित र्पित। वामजाताः (सम्भजनीय जन्म जिन्हों का) अर्थात् विशिष्ट देशजाति कुलोत्पन्नाः॥१०८॥

इ॒रज्यन्न॑ग्नेप्रथयस्व ज॒न्तुभि॑र॒स्मे रायो॑ऽअमर्त्य॥सद॑र्श॒त स्य॒ वपु॑षो॒ विरा॑जसि पृ॒णक्षि॑ सा॒न॒सिं क्रतु॑म्॥९॥

हे अमरणधर्मन् हे अग्ने हम विषें धनविस्तारि। कैसा है तू कि प्राणियों (हविः प्रदत्त अध्वर्युओं) से दीप्यमान किंच जो तू ऐसा धन का विस्तारने वाला सो तू दर्शनीय वपु (चित्याग्नि रूप शरीर) के मध्य में विशेषण दीप्त है वा विभक्ति व्यत्ययः दर्शतेन वपुषा (ज्वाला लक्षण शरीरक रि) विराजता है। सानसि (चिरन्तन) क्रतु (सङ्कल्प) को पूरण करता अ र्थात् सब इष्टों को देता है॥१०९॥

इ॒ष्क॒र्तार॑मध्व॒रस्य॒ प्रचे॑तसं॒ क्षय॑न्त॒ꣳ राध॑सो म॒हः॥राति॑ वा॒ म॒स्य॑ सु॒भगां॑ म॒हीमिषं॒ द॒धासि सा॒न॒सिꣳ र॒यिम्॥११०॥

हे अग्ने यज्ञ के निष्कर्तार (निश्चयेन कर्त्तारं॰ यज्ञ निष्पादक) प्रचेतस (प्रकृष्टचित्तयुक्त) विशिष्टस्थान विषें निवसन्त ऐसे यजमान प्रति वननीय महद्धन के दान को तू देता है। किंच सुभगा मही (पृथिवी)

† वपूंषि रूपाणि येषां ते।

और अन्न को देता है। और सानसि (पुराण) रयि (धन असमर्थ विषय निधान लक्षण को देता अर्थात् निधि को दिखलाताहै ॥११०॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नायदधिरेपुरो जनाः॥ श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषायुगा ॥१११॥

मानुषा जनाः- मनुष्य जातियुक्त जन्तुएँ (ऋत्विग्यजमान) युगाः पौर्णमासी अमावास्यादिकाल करि गिरा (वेदवाचा) करि कै यज्ञ के अर्थ तुम अग्नि को पूर्व भागमें आहवनीय रूप से स्थापन करते हुए। कैसे तुम हैं कि ऋतवान् सत्यवन्त। महान्त विश्वदर्शत (सब का दर्शनीय) श्रुत्कर्ण (श्रुतिमें कर्ण जिस के उसै अर्थात् जो विज्ञापन करैं तिसे सत्य मेव कर्णों से सुनिकै सम्पादन करता है। सप्रथस्तमं- अतिकीर्तिमन्त को। दैव्य प्रकाशमान वा देवताओं के अर्थ हितको ॥१११॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ॥ भावा वाजस्य सङ्गथे ॥११२॥

का॰ १७.३.१६ आत्मा में विस्तार की हुई सिकता का विस्तार करै दो ऋचाओं से॥ गोतमदृष्टाः सोम देवत्यास्तिस्रो गायत्री त्रिष्टुबुष्णिक्छन्दस्काः। आप्यायस्व मदिन्तमेति ११४ तृतीयस्याविनियोगः सूत्रेनास्ति। हे सोम सब ओडी सें वृष्ण्यं (सर्वभूतोत्पत्तिकृद्बीज तुम विषें भले प्रकार प्राप्त हो और तिस वीर्य करि तू सर्वतः वृद्ध हो। किंच अन्न का संगमन निमित्त हो अर्थात् अन्न को हमारे विषें प्राप्त करि ॥११२॥

सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमाति

षाहः॥ आप्याय मानो अमृताय सोम दिवि श्रवांसि

स्युत्तमानि धिष्व ॥११३॥

हे सोम पयांसि पातव्या रसाः तेरे संयन्तु भले प्रकार प्राप्त हों और अन्न संयन्तु तेरे वृष्ण्यानि रेतांसि संयन्तु। कैसे तेरे कि अभि मातिषाहः पाप्मा को अभि भव करने वाले। हे सोम पय अन्न वृष्णि से वर्धमान हुआ अमरण धर्मिणी प्रजाति (पुत्रादि वृद्धि के अर्थ) यजमान का हो इति शेषः †। किंच द्युलोक में उत्कृष्ट अन्न आहुति परिणाम-भूत सम्पादन करि अर्थात् लोक द्वय संभोग सम्पादन करि॥११३॥

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिर्ठ्ठंशुभिः॥ भवा नः

सप्रथस्तमः सखा वृधे॥११४॥

हे मदिन्तम मद (तर्पण) करने वाले। मदी वा मद स्तृप्ति रस्या स्तीति मदी। अतिशयेन मदी। ऐसे हे सोम सब अंशुओं सूक्ष्मांशुओं से प्रवृद्ध हो वृद्ध हुआ हमारे बढाने के अर्थ सखा (सहाय) हो कैसा है तू कि अत्यन्त सकीर्तिः॥११४॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्॥ अग्ने त्वां का-

मया गिरा॥११५॥

का॰ १७·३·२०·२१ श्वेत वर्ण अश्व वा अन्य वर्ण तिसके अभाव में बैल पर बैठा हुआ अग्निभ्यः प्रह्रियमाणेभ्यो ऽनुब्रूहि इस से प्रेषित होता आतेवत्स इस तृच को कहे॥ अग्नि देवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः आद्या वत्सारदृष्टा द्वितीया विरूपदृष्टा तृतीया प्रजापति दृष्टैव। हे अग्ने तेरा वत्स (पयो व्रतत्व से वत्स सम तेरा प्यारा यजमान) उत्कृष्टादपि सह

† अमृत शब्देन श्रुत्या प्रजाति र्व्याख्याता तथा च श्रुत॰ ७·३·१·४६· प्रजात्यां तदमृतं दधाति तस्मात्प्रजातिरमृतेति॥

स्थान द्युलोक।सेमन आहृत्येतिशेषः मनकानिग्रह करता है। किसगिरासे कि बेदवाचासे मन आहृत्येत्यर्थ कैसीगिरासे कि तुम्हें कामयते स्तुति करने को इच्छा करती है ॥२५॥

: देवैःसहातिष्ठतियस्मिन्नाग्निः॥ तत्सधस्थं द्युलोकः

तुभ्यं ता॑ऽअङ्गिरस्तम विश्वा॑ः सुक्षि॒तय॒ः पृथ॑क्॥ अग्ने॒ कामा॑य येमिरे ॥२१६॥

हे अङ्गिरस्तम(अन्नको अतिशायेनगिरै)हे अग्ने नानाभूताते सवप्रसिद्ध स्तुतियें अभिलाष पूरण के अर्थ तुम्ह विषें नियम की जाती हैं यजमानों से इतिशेषः। कैसी हैं कि सुक्षतयः(स्वार्गादि शोभनस्थानकी देने वाली। यजमान यहां के काम पूर्ति और द्युलोक प्राप्तिके अर्थ तुम्हें स्तुति करते हैं इतिभावः ॥२१६

अ॒ग्निः प्रि॒येषु॒ धाम॑सु॒ कामो॑ भू॒तस्य॒ भव्य॑स्य॥ स॒म्राडेको॒ विरा॑जति ॥२१७॥

इतिसꣳहितायाꣳ सप्तमोऽनुवाकः॥७॥

इतिश्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेय सꣳहितायां दीर्घ पाठे द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

अग्नि प्रिय(अभिरुचित)स्थानों(धिषण्यो)में असहाय भूत होवि शेषेण दीपै है। कैसा है अग्नि कि भूत(उत्पन्न)का और भव्य(भविष्यत)मनुष्य का काम पूरण करने वाला। सम्राट सम्यक् राजमान शोभमान वा भूत भव्य का सम्राट ईश्वर। काम्यते सर्वैर्यष्टुमिष्यत इति काम इतिवा॥२१७॥

इतिश्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः

श्री वेदार्थप्रदीपेनतमोहार्दंनिवारयन्
पुमार्थांश्चतुरोदेयादग्निर्देवःसनातनः
श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय
विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देवबर्म्मोत्मज रौक्मिणेय-
नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये रुक्मादि
वात्वन पर्यन्त वर्णनो नामद्वादशोऽध्यायः॥१२॥

हरिःओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकंद्विरूपंचसाधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकंकृष्णंब्रह्मरूपंपरंस्तुमः १

अ०१ मयि गृह्णाम्यग्रे॑ऽअग्निꣳ रा॒यस्पोषा॑य सुप्रजा॒स्त्वाय॑ सु॒वीर्या॑य॥ मामु॑ दे॒वताः॑ सचन्ताम्॥१॥

ओंनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
पुष्कराद्यादिचित्यन्तोरामेद्वध्यायईर्य्यते

वारहके अध्यायमें उखाधारण·गार्हपत्यचयन·क्षेत्रकर्षण·औष
धि वपनादि मन्त्र कहे तेरहे में पुष्कपर्णाद्युपधानके मन्त्र कहितेहैं॥
का०१७·३·२७·उत्तर वेदीसे पीछे खडाहोयजमानहोमें॥ अग्निदेवत्या
ककुप्।में यजमानधन की पुष्ट्यार्थ शोभन पुत्रादि निष्पत्त्यर्थ शोभ
नसामर्थ्य के अर्थ प्रथम आत्मा में अग्नि कोधारण करताहूं· ततः
अग्नि कोचिनताहूं इतिशेषः।किंच देवताभी मुझे सचन्ताम्·

संगत होंवा देवतामामेवसन्वन्ताम्॥१॥

अपाम्पृष्ठमसियोनिरग्ने:समुद्रमभित:पिन्वमानम्॥ वर्धमानोमहा२ँ॥ऽ आचपुष्करेदिवोमात्रयावरिम्णाप्रथस्व॥२॥

का॰१७.४.१. तत:अध्वर्युकुशस्तम्बकेऊपरउखासम्भरणवत् कमलिनी पत्र को रखै तेन अपांपृष्टमितिमंत्र करिपुष्करइत्यन्तेन उपधान दिवोमात्रयेति तिसका मार्जन इतिसूत्रार्थ: व्याख्यात: ११.२९.॥२॥

ब्रह्मयज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विशीमत:सुरुचोवेनऽ आव:॥सबुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठा:सतश्चयोनिमसतश्चविव:॥३॥

का॰१७.३.२९. तिसपुष्करपर्णविषें कराहमें पहिले रुक्म अध:पिण्ड को स्थापन करै॥आदित्य देवत्या त्रिष्टुप्।ब्रह्मऽब्रहत् रुक्म रूपयह आदित्य सीमत:ऽभूगोल मध्यभागको आरंभकरि सुरोचनइनलोकोंको प्रकाशसे निवृत्त करताहुआ।कैसाहै ब्रह्मकि आदिमेंपूर्वदिशाविषें मनुष्योंसे दृश्यमानकिंच वेन:ऽकामनीय वा मेधावी वोह आदित्य बुध्न्या ओं दिशाकावर्ण करता है।विद्यमान घटपटादिस्थान और अविद्यमान वाय्वादिस्थान प्रकाशित करता है।कैसीहैंबुध्न्या: कि सावकाशा।अत एव इसजगतके विविध स्थान भूतों अर्थात् लोकों दिशाओं और भूतोंको आदित्य एव प्रकाशित करता है॥३॥

हिरण्यगर्भ:समवर्त्ततागेभूतस्यजात:पतिरेकऽआसीत्

सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।४

का॰१७.४.३॰ तिस रुक्म में उत्तान पुरुषाकार हिरण्य को दो ऋचाओं से स्थापन करै ॥ हिरण्यगर्भ हष्टा प्रजापति देवत्या त्रिष्टुप्। हिरण्यपुरुष रूप ब्रह्माण्ड विषें गर्भरूप करि अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ प्राणिजात की उत्पत्ति से पहिले आपही शरीर धारी होता हुआ। और वोह उत्पन्न मात्र एकही उत्पन्न हुए सब जगत का ईश्वर था वोहही अन्तरिक्ष द्युलोक और इस पृथिवी लोक तीनों को धारण करताहै। प्रजापति देवता के अर्थ हम हवि देते हैं॥४॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमंच योनिमनु यश्च पूर्वः समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥५॥

देव अवो हष्टादित्य देवत्या त्रिष्टुप्। जो मुख्य आदित्य मनुष्यादि धारण के अर्थ पृथिवी अंतरिक्ष को सींचताहै। और आहुति परिणाम भूत रस करि देवादि धारण के अर्थ द्युलोक को सींचताहै। जे इस स्थान भूलोक को आहुति ग्रहण के अर्थ आताहै। एवं सबों के तुल्य स्थान तीनोंलोक को संचरते आदित्य को सातों दिशाओं में स्थापन करताहूं अर्थात् हिरण्य पुरुष रूप करि सब दिशाओं में सूर्य कोही स्थापन करताहूं। असौ वा आदित्यो द्रप्सो दिशः सप्त होत्रा अमुमादित्यं दिक्षु प्रतिष्ठापयतीति श॰त॰७.४.१. २०॰ श्रुतेः पूर्वादि चतस्रो दिशः अध एका उपर्येका मध्ये चैकेति सप्त दिशो ज्ञेयाः॥५॥

नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु॥ ये अन्तरिक्षे ये-

दिवितेभ्यः सर्पेभ्योनमः॥६॥

का०१९·४·६· यजमान हिरण्य पुरुष को देखता तीनि ऋचा औंकोप दै॥ सर्प देवत्या स्तिस्रोनुष्टुभः॥ जे कोई सर्पण शीला(लोकाः) पृथिवीमें हैं तिन सर्पों के अर्थ नमस्कार हो। और जे अन्तरिक्ष लोकमें वर्त्तमान सर्प हैं तिन्हों के अर्थ नमोस्तु। औरजे द्युलोकमें वर्त्तमानाः सर्पास्तेभ्योनमोस्तु इमे वै लोकाः सर्पा इति शत०७·४·१·२५· श्रुतेः सर्प शब्देन लोका उच्यन्ते॥६॥

याऽइषवो यातुधानानां येवावनस्पतीँ२॥ रनु॥ येवांवटेषुशेरतेतेभ्यः सर्पेभ्योनमः॥७॥

यातुधाना+ राक्षस प्रभृतयः तिन्हों के जो सर्प जाति वाणरूप वा जे अन्य वनस्पतिओं को वेष्टन करि स्थित हैं और जे अन्य विले(भिट्टे ओं में सोते हैं तेभ्यो सर्पेभ्यो नमोऽस्तु॥७॥

+ यातुं॰ यातनादुःखंदधतीति यातुधाना

येवामीरोचनेदिवोयेवासूर्य्यस्यरश्मिषु॥ येषामप्सुसदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्योनमः॥८॥

द्युलोकके दीप्तस्थान विषें जे वामी(सर्पाः) हम से अदृश्यमान हैं। तथा सूर्य की किरणों में जे सर्प वास करते हैं। जिन सर्पों का जलमें स्थान किया तेभ्यो सर्पे-स्तु॥८॥

पञ्च प्रतिसरारा क्षोघ्नाः

कृणुष्वपाजः प्रसितिंन्नपृथ्वींयाहिराजेवामवाँ२ऽइभेन॥तृष्वीमनुप्रसितिं द्रूणानोस्तासि विध्यरक्षसस्तपिष्ठैः॥९॥

का०१७।४।७। आज्य को संस्कार करि पञ्च गृहीत को ले आत्मा को-आरोहण करि पुरुष के पास बैठि प्रति दिशा को परिसर्पण करि पुरुष के ऊपर पांच ऋचाओं से होमें॥ देव दृष्टा वा वामदेव दृष्टा रक्षोघ्नाः प्रतिसराः अग्नि देवत्याः पञ्च त्रिष्टुभः॥ हे अग्ने पाजः †बल को करि। तत्र दृष्टान्तः पक्षि ग्रहण के अर्थ पृथ्वी (बडी) प्रसिति (जाल) को ऐसे शत्रु ग्रहण के अर्थ बल को फैलाय। ततः राजा जैसे सेव कों वाला हाथी करि चलता है शत्रुओं प्रति चलि। हे अग्ने शत्रुओं का क्षेप्ता है अतः राक्षसों को तापक तम आयुधों से ताडि कैसा है तू कि क्षिप्र प्रसित (जाल) से शत्रुओं को मारता॥ १०॥

तवंभ्रमासऽआशुयापतन्त्यनुस्पृशधृषताशोशुचानः॥
तपूंष्यग्नेजुह्वापतङ्गानसंदितोविसृजविष्वगुल्काः॥ १०॥

हे अग्ने तेरी जे भ्रमासः (वातोद्भूत ज्वाला समूह) इधर ऊधर चलती हैं कैसी कि शीघ्र गमना। तिन तपाने वाली ज्वालाओं से राक्षस (पतंगो पिशाचों) को स्पर्श करि अर्थात् ज्वालाओं से तिन्हें जलाय। कैसा है तू कि प्रगल्भ (धृष्ट) ज्वालौघ करि देदीप्यमान। तथा जुह्वा (स्रुचा) करि हूयमान इति शेषः। अखण्डित। ऐसा हो सर्वत्र तिरछी ऊपर और नीचें ज्वाला छोडि अर्थात् राक्षसों के घात न के अर्थ छोडि॥ १०॥

प्रतिस्पशोविसृजतूर्णितमोभवापायुर्विशोऽअस्याऽअदब्धः॥ योनोदूरेऽअघशंसोयोऽअन्त्यग्नेमाकिष्टेव्यथिरादधर्षीत्॥ ११॥

हमारे दूरमें जो अघशंस पापको इच्छा करनेवाला॰ हमारा द्रोहीवस
ताहै और जो समीपमें अघशंस है हे अग्ने तिसे बांधिके प्रणिधी को
प्रेरि। इस हमारी प्रजा का पालक होकैसा है तू कि बडा वेगवान् अनु
प्रहिंसित। हे अग्ने एवं अनुग्रह प्रवृत्त तुझै कोई मतव्यथा करौ शत्रु
मतधार्ष्ट्यता को करो। अर्थात् दूरसमीपस्थ हमारे शत्रुओं प्रति शीघ्र-
बन्धकों को प्रेरि किसी सै भी अहिंसित हमारी प्रजाका पालक हो और रा
क्षस तुझै प्रति धृष्टान होां॥११॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ॥ओषतात्तिग्महेते॥
योनोऽअरातिꣳसमिधान चक्रे नीचातं धक्ष्यतसं न-
शुष्कम्॥१२॥

हे अग्ने तू उठ ततः ज्वाला विस्तारि हे तिग्म हेते॰ उत्साहवदायुधः श
त्रुओं को दाहकरि। हे समिधान(दीप्यमान) हमारे दान को जो प्रति षे
धकरै तिसे नीचा करिकै भस्म करि। तत्र दृष्टान्तः शुष्कवृक्ष ऐसे
अदातार को भस्म करि॥१२॥

ऊर्ध्वोभव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने॥
अवस्थिरा तनुहि यातु जूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि
शत्रून्॥ अग्ने ष्ट्वा तेजसा सादयामि॥१३॥ †

हे अग्ने ऊंचा(उद्युक्त)हो हमारे ऊपर वर्त्तमान शत्रुओं को प्रति
ताडि। देव संबंधी कर्म प्रकट करि किंच यातुधानों के स्थिर ध-
नुषो को अवतारि। किंच जाम्यजामिं पुनरुक्तं अपुनरुक्त करि
कै॰ पुनः पुनः ताडित वा अताडित शत्रुओं को मारि॥का १७॰

†ऊ-न।अ॰अ-मि।दू॰॥१३॥

४·२२· कार्ष्मर्यमयी पादमात्र दीर्घा षडङ्गुल विपुला घृत पूर्ण प्रागग्रा स्रुच को अग्निष्टेति यजु और अग्नि मूर्धेति ऋचासे स्थापन करै॥ आग्नेय यजुः॥ हे स्रुक अग्नि के संबंधी तेज से तुम्हे स्थापन करता हूं॥१३॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽअयम्॥ अपाᳬरेताᳬसि जिन्वति॥ इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि॥१४॥†

अग्निमूर्धेति व्याख्याता ३·१२·॥का॰१७·४·३· ऐसे ही औदुम्बरी दधिपूर्ण स्रुक को उत्तर में रखै· इन्द्रस्य त्वेति यजुः और भुवो यज्ञस्येति ऋचासे॥ या॰पं॰ इन्द्र देवत्यम्। हे स्रुक इन्द्र के तेज से तुम्हे स्थापन करता हूं॥१४॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्॥१५॥

त्रिशिरो दृष्टाग्नि देवत्या त्रिष्टुप्। हे अग्ने जबकि तू हवि की वहानेवाली ज्वाला करता है तब यज्ञ (द्रव्य देवता त्यागात्मक) का नेता होता है और जगद्रक्षार्थ रज (यज्ञ परिणाम भूतोदक) का नेता होता है कहां नेता होता है सो कहिते हैं कि जहां जिस स्थान में मङ्गल रूप नियुत अश्वों से तू संबंध को प्राप्त होता है। नियुत नामा वायु के अश्व तिन्हों से वायु लक्षित है और वायु से अन्तरिक्ष लक्षित है। और जहां दिवि में आदित्य को धारण करता है। कैसे आदित्य को कि स्वर्ग का देनेवाला या स्वर्ग में रहने वाला। अर्थात् यज्ञ और रज का नेता है। जो कि तेरा एतत्कर्म तिस तुम्हे स्रुग्रूप करि सादन करता हूं इति शेषः॥१५॥

† अ॰ ति। अ॰। इ॰ मि। इ॰॥१४॥

अ॰२ ध्रुवासि धरुणा स्तृता विश्वकर्म्मणा ॥ मात्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णो व्यथमाना पृथिवीं दृंह ॥१६॥

का॰१७॰४॰१५ पुरुष के ऊपर ध्रुवेत्यादि कण्डिका चतुष्टय करि स्वयमातृण्ण को उपधान करै कैसी कि पाषाणमयी स्वाभाविक छिद्रयुता सच्छिद्रा श्मममयी ष्टका ही स्वयमातृण्णा है ॥ चतुर्णां स्वयमातृण्णा देवता १ ऊर्ध्वे बृहती २ अनुष्टुप् ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ४ यजुः। हे स्वयमातृण्णे तू स्थिरा है। कैसी है तू कि भूमिरूप करि सब की धारण करने वाले प्रजापति से उपहिता। समुद्र रुक्म। तुझे मत हनियो। और सुपर्ण (पुरुष) मत वध करो। और तू भय रहिता पृथिवी को दृढ करि ॥१६॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् ॥ व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥१७॥

हे स्वयमातृण्णे जलों के पृष्ठ के ऊपर प्रजापति तुझे स्थापन करै। जल संघात के अवस्थान में स्थापन करै। कैसी तुझे कि अभिव्यक्तियुता विस्तरयुक्ता। और तू भी प्रजापति की स्थापन की हुई इस चिनिका प्रथन करि यतः तू पृथिवी सी उत्पन्न हुई पृथिवी है ॥१७॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ॥ पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः ॥१८॥

हे स्वयमातृण्णे तू सुखों की भावयित्री है। पृथिवी (पृथिव्यभिमानी देवता) है। अदिति (देवमाता) है। विश्व को पोषने वाली वा विश्व निहित है जिसमें वोह है। सर्वभूतग्राम की धारयित्री तादृशी तू पृथिवी को नियता करि पृथिवी को दृढी करि पृथिवी की हिंसा मत करि ॥१८॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥ अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद॥१९॥

हे स्वयमातृणे सब के अर्थ प्राण अपान व्यान उदान नामाख्य वायुवृत्ति के लाभार्थ कीर्त्तिके अर्थ और शास्त्रीय चरण के अर्थ प्राणियों के इन सबोंकी सिद्धिके अर्थ तुझे सादन करताहूं इति शेष॥ किंच योग क्षेम सम्पत्य और अत्यन्त सुखकारी गृह करिके अग्नि तुझे सर्वतः रक्षाकरै॥तिस देवता से अनुगृहीता तू स्थिरा होके बैठि अङ्गिराओं के चयनानुष्ठान में जैसे तू स्थिर बैठी तद्वत यहां बैठि॥१९॥

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषःपरुषस्परि॥ एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥२०॥

का॰१७.४.१८॰ स्वयमातृण्णमें काण्डादिति दोऋचाओं करि भूमिमें गये अग्र मूलाग्रयुता दूर्वाको उपधान करै॥ अग्निदृष्टे दूर्वेष्टका देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ। मूल से भूमिसम्बद्ध पर्व काण्ड भूमिसे असंबद्ध परुः। हे दूर्वे॰ दूर्वेष्ट के प्रति काण्ड प्रतिपरु भूमि सम्बद्ध असम्बद्ध सब पर्वों के सकाश से जैसे तू समन्तात्प्ररोहन्ती (अङ्कुरवती) है। हे दूर्वे ऐसे स्वाङ्कुर विस्तरवत् सहस्र और शत असंख्य पुत्रपौत्रनप्त्रादिकों से हमें विस्तारि॥२०॥

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि॥ तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम्॥२१॥

हे देवि दीप्यमाने हे इष्टके जो तू शत काण्डों का विस्तार करती है और सहस्र अङ्कुरों की प्ररूढा होती है हम हवि के साथ तेरे स्थान को परिचरें ॥२१॥

यास्ते॑ऽअग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिवं॑ मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ ॥ ताभि॑र्नो॒ऽअ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥२२॥

का॰ १७·४·२०·दूर्वेष्टका के आगे यास्ते इन ऋचाओं से द्वियजुः संज्ञा पद्येष्टका को स्थापन करे ॥ इन्द्राग्निदृष्टे अग्नि देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ। हे अग्ने जो तेरी दीप्तिऐं सूर्यमण्डल में वर्त्तमान हुई स्वरूपभूतकिरणों से द्युलोक को प्रकाशती हैं। तिन सब रश्मिओं से हमें प्रकाश (शोभा)र्थ यहां करि। और जनाय पुत्र पौत्रादिकों के अर्थ करि। द्यौलोकप्रकाशिका सब कांतियें और पुत्र पौत्र हमारे अर्थ दे इत्यर्थः यद्वा हमारे पुत्र पौत्रादिकों को शोभा के अर्थ करि अर्थात् जगत्प्रसिद्ध पुत्र दे ॥२२॥

यावो॑ देवाः॒ सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ जा रुचः॑ ॥ इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभिः॒ सर्वा॑भी रु॒चं नो॑ धत्त बृहस्पते ॥२३॥

हे देवाः हे इन्द्राग्नी हे बृहस्पते तुम्हारी सम्बन्धिनी जो दीप्तिऐं सूर्यमण्डल में हैं और जो तुम्हारी दीप्तिऐं गोओं अश्वों में हैं तिन सबों से रोचमान करि कै हमारे अर्थ रुच देओ अर्थात् तिस समान प्रभ हमें करो ॥२३॥

वि॒राड् ज्योति॑रधारयत्स्व॒राड् ज्योति॑रधारयत् ॥ प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्मतीम् ॥ विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒

नायं व्यानायविश्वंज्योतिर्यच्छ॥अग्निष्टेधिपतिस्तया

तयाङ्गिरस्वद्ध्रुवासीद॥२४॥

का॰ १७·४·२२· द्वियजु के पूर्वमें अव्यवहित रेतःसिचो से
प्राग्लक्षणा अनूक में सर्वतः विराट् स्वराट् प्रतिमन्त्र करि उप
करे विराट् इससे उत्तरा स्वराट् से दक्षिण को॥द्वे प्रा—गा॰ क्र
का लोक देवत्ये। विशेष करि राजमान विराट् इस लोक ज्योति अ
ग्नि को धारण करता है॥१॥ आपही से राजमान स्वराट् उस लोक
ज्योति आदित्य को धारण करता है॥२॥ का॰ १७·४·२३· रेतःसि
के सामने यजमान कृता प्रथमा विश्वज्योतिः संज्ञा इष्टका प्राग्ल
को उदङ्मुख अनूकमें उपधान करे॥ विश्वज्योति देवतं यजुः। पृथि
वीके पृष्ठोपरि ज्योतिषोपेत तुम इष्टका को सब प्राण अपान व्याना
दिकी सम्पत्त्यके अर्थ प्रजापति सादन करै किंच हे इष्टके तू सर्व नियम
कारि वादे और अग्नि तेरा स्वामी तिस अग्नि लक्षण देवता करि स्थिर
होके वैठि जैसे अङ्गिराओंके चयन में वैठी तैसे यहां भी॥२४॥

+विश्वज्योतिकल्यादि प्रत॰ ७·४·२·२१·

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पे
तां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः
पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥ ये अग्नयः समनसोन्तरा
द्यावापृथिवी इमे॥ वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना
इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्व
द्ध्रुवेसीदतम्॥२५॥

का॰ १७·४·२४· विश्वज्योति के सामने प्राग्लक्षणे द्वे पद्ये

के अनूकमें अभितः उदङ्मुख स्थापन करै ॥ ऋतु देवतं यजुः। मधु चैत्रमास माधव) वैशाखमास ते दोनों वसंत संबंधी ऋतु के अवयव यद्वा मधुमाधवौ वसंत एव वासंतिकऋतुः + हे ता दृश वसन्ताख्य ऋतो तू चीयमान अग्नि के मध्य में व्यवस्थित होनेसे श्लेषक है जैसे कुडी के भीतर दृढता के अर्थ काष्ठ पाषादिक श्लिष्ट हैं तद्वत्। मुरू अग्नि को चयन करते यजमान के उत्कर्षार्थ ये द्यावा पृथिवी कल्पताम् स्वोचित उपकार को सम्पादन करें यद्वा ममेति तव स्थाने व्यत्ययः द्यावा पृथिवी तेरे उत्कर्ष के अर्थ कल्पताम् और जल औषधियें तेरे उत्क-कल्पंताम् समान व्रत कर्म जिन्हों का ते चयनाख्य कर्म में अवस्थित नानाभूताः अग्नियें स्वयमातृण्णाद्या इष्टका तेरे उ-ताम् + किंच इन द्यावा पृथिवीओं के मध्यमें एक मनस्का जे और भी चितिहैं ते भी वसंत ऋतु को सम्पादन करते इस कर्म के आश्रय हों। तत्र दृष्टान्तः जैसे देवता इन्द्र को परिचरणार्थ आश्रय हैं एवं अन्येष्टका वसन्त को परिचरणार्थ आश्रय हों ॥ सादयति। तिस देवता करि सादित हे ऋत व्येष्ट के औ तुम अंगिराओं के कर्म में जैसे स्थिर थी वैठो ॥२५॥

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः ॥ सहस्र वीर्यासि सा मा जिन्व ॥२६॥

का॰१७॰४॰२५॰ अषाढा संज्ञक इष्टका को पत्नी कृता पद्या प्रागलक्षणा ऋतव्या से पूर्व संलग्ना अनूक में उपधान करै ॥ सवितृवा देवहृष्टेष्टका देवत्या + । हे इष्टके तू अषाढा (शत्रुओं को न सहती) है ‡ कैसी

‡ तथा च श्रुतिः ते देवा एतामिष्टकाम पश्यन्नषाढामिमामेव तामुपादधत तामुपाधाया सुरान्त्सपत्नान्भ्रातृव्यानस्मात्सर्वस्माद सहन्त तस्मादषाढेति श॰ ७॰४॰२॰२३॰

+ द्विवचन एकवचनार्थम्

+ अग्नयो हैते पृथग्यदेता इष्टका इति श्रुते रग्निशब्देनेष्टका उच्यन्ते

+ हलायुधमतेन त्रिपदा विराज महीधरे पि विराडनुष्टुप्

है तू कि स्वभाव से अभिभव शीला अतः अदान शीला प्रजाका अभि
भव करि। संग्राम की इच्छा करते शत्रुओं को अभिभव करि। किंचजो
तू सहस्र वीर्या (बहु सामर्थ्या) है सोमुमें प्रीतिहो ॥ २६ ॥

अ॰३ मधुवाताऽऋतायतेमधुंक्षरन्तिसिन्धवः ॥ माध्वीर्न्नः स
न्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

का॰१७.४.२७. दधि मधु घृत मिश्रित से कछप को भि गोवे ॥ गोतम
दृष्टा विश्वदेव देवत्या स्तिस्रो गायत्र्यः। ऋतऽयज्ञ की इच्छा करनेवा
ले यजमान के अर्थ मधु (रस) वन्त वायु बहें इति शेषः सिन्धवः
स्यन्दमाना गङ्गादि सप्तनदीएँ † वा चारें दिशा के लोहितादि चारि
समुद्र ‡ रसवत् उदक स्रवें। ओषधीएँ हमारे कोमधुररसोपेता हों
वें ॥ २७ ॥

मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः ॥ मधुद्यौरस्तु
नः पिता ॥ २८ ॥

रात्रि हमारे कोमधुररसोपेता (आनन्द करने वाली) हो। और दिव
स मधु मन्त हों। मातृभूतापृथिवी लोक मधुररसोपेता वैरी कांटों से
रहित हो। वृष्टि प्रदान करि पालन करने वाला पितृभूत द्यौ लोक
माधुर्य फल अन्न और तिसके भक्षण से पुत्र का देने वाला हो ॥ २८ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्म्मधुमाꣳ२॥ऽअस्तुसूर्यः ॥ माध्वीर्गा
वो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

वनस्पति ऽ अश्वत्थादि वा यूपाभिमानी देवता हमारे अर्थ रसवा
न् सन्ता परादित्य माधुर्ये रसोपेत हो। गावः अग्निहोत्र कीगौ

† इमंमेगङ्गेयमुनेत्यादिश्रुतिसुप्रसिद्धाः

‡ श्रीमद्भागवतस्कन्ध ८ अ॰१० अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रंचतुःसिन्धुजलादिभिः श्लो॰४८

एँ दुग्धवती वा यज्ञ साधन भूता रश्मिएँ हमको मधुमती † रसवतीहों । रसोवैमधिति·शत·७·५·१·४·
वातादिक रसवन्ति हमको भोग्य हों इतिसर्वार्थः ॥२९॥

अपांग म्भन्त्सीद मात्वा सूर्यो भिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः॥
अच्छिन्न पत्राः प्रजाऽ अनु वीक्षस्वानुत्वा दिव्या वृष्टिः स-
चताम् ॥३०॥

का॰ १७·४·२८·५·१· अषाढा के दक्षिणविषें हस्त मात्र पद्याद्वय-
अन्तराल कही गई तीसरे पद्यालोक पूर्वमेव स्थापिता शेवाल पु
रुष संमुख तीनि ऋचाओंसे कूर्मको उपधानकरै॥ पङ्क्तिः † कूर्मदे
वत्या † हे कूर्म जलों के गम्भीर स्थान (रविमण्डल ५) विषें तू बैठि। तहां
तुझ बैठे हुए को सूर्य सन्तापन देवै। और वैश्वानर सवनरों से हित
अग्नि न तपावै। और तू वहांस्थित हुआ प्रजा (इष्टका रूपा) निरन्तर दे
खि। कैसी प्रजा कि अच्छिन्नपत्रा, अनवखण्डित हैं अवयव जिसके
अर्थात् अखण्डिता इष्टका करि॥ किंच दिव्या (दिवि में हुई) वृष्टि तु
झै सेवन करै अर्थात् जल से नित्य सिक्त हो ॥३०॥

† महीधरमतेस्वराट्पङ्क्तिः इत्याह तदसत् आद्यादृतीयोद्वादशाक्षरः

† महीधरेपि कूर्मःप्रजापतिरादित्योवा। तृतीयाद्यावा पृथिवीया॥

त्रीन्त्सं मुद्रान्त्समं सृपत्स्वर्गान्पाम्पतिर्वृषभऽइष्टकानाम् ॥
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः॥३१॥

का॰ १७·५·२· तीनों ऋचाओं के बीच की त्रीन्त्समुद्रान् इस ऋचासे ह
स्तस्थ कूर्म को कंपावै॥ कूर्मदेवत्या त्रिष्टुप्। हे कूर्म जो तू तीनि समुद्रों
(लोकों) को भले प्रकार प्राप्त हुआ। कैसे लोकों कि स्वर्गान् भोगसाध
नभूतों। कैसा है तू कि जलों का स्वामी इष्टकाओं का वर्षने वाला। किं
च जिस स्थान विषें पूर्व (पुरातन कूर्म) अन्य अग्नि विषें उपहित प

५ एतद्ध्यपांगम्भिष्ठंयत्रैषएतत्तपतीतिशत·७·५·१·८·श्रुतिः
॥ इमावैसर्वाः प्रजायाइमाइष्टकास्ताअरिष्टाअनार्त्ताअनुवीक्षस्वेतिशत·७·५·१·८·

एगत हैं शोभन कृत अग्नि के तिस लोक (स्थान) विषें तू पशु
करनेकि पुरीषं वसानः कृतपशुओंके आच्छादन को ॥ ३१ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ॥ पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

व्याख्याता ८·३२·॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ॥ इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

का० १७·५·३· चतुष्कोण मध्य संकुचितखात हीन उदम्बर नव
जात ऊंचे उलूखल (ओखली) गोल मूसल तिन दोनों को स्वय
मातृणाके उत्तर देशमें तिन्हों के मध्य में हस्त मात्र तीसरी पद्याले
क विष्णोः इस मन्त्र करि सहित उपधान करे ॥ व्याख्याता ६·४·॥ ३३ ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथम मेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ॥ सगायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३५ ॥

का० १७·५·४· प्रथम उलूखल के ऊपर उखा को चुपके से करि फिरि
उपशाया मृदा को पीसि कै उखा के साम्ने भूमि में डालि के तहां उखा
को दो मन्त्र करिके उपधान करै ॥ उखा देवत्या द्वे त्रिष्टुबृहत्यौ ॥ हे
उखे जगत कीधारण करनेवाली तू स्थिरा है अथाग्निजन कत्वे
नोखा स्तूयते । जो अग्नि इस उखा के सकाश से आदिमें जातवे
दाः जातप्रज्ञान उत्पन्न हुआ ततः इन योनियों अपने कारणों
अरणी आदिकों से उत्पन्न होताहै । सो अग्नि अपने अधिकार

जान कर गायत्री त्रिष्टुप् अनुष्टुप् इन तीनों छन्दों करि देवता
ओं के अर्थ हमारा हवि वहो॥ ३४॥

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जेऽअपत्याय॥ सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम्॥ ३५॥

हे अग्ने तू यहां क्रीडा करि किमर्थं कि इषे, अन्नार्थ सहसे, बला
र्थ द्युम्ने, यश वा अन्न के अर्थ ऊर्जे, पयो दधि घृतादिक उपसे
चन के अर्थ अपत्याय, पुत्र पौत्रादिकों के अर्थ क्रीडा करि यह
सर्वत्र सम्बन्ध है। किंच सम्राट है स्वराट है। एवम्भूता तुम्हे सारस्व
तौ, सरस्वती के सम्बन्धी उत्सौ (उत्सन्दन, कूप वा प्रवाह) तुम्हे
प्रकर्षेण पालन करें। और वे उत्सौ, मन वाचा। शास्त्र ज्ञान के अर्थ
कूप इव उत्सन्दन हुआ मन कूप है वाति से प्रति पादन करती वा
चा भी कूप है +। यद्वा सारस्वतौ उत्सौ, ऋग्वेद सामवेद तुम्हे रक्षा
करें। तथा च तित्तिरि श्रुतिः, ऋक्सामे वै सारस्वता वुत्साविति॥ ३५॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः॥ अरं वहन्ति मन्यवे॥ ३६॥

का० १७.५.५. दो ऋचाओं से उखा के मध्य में दो आहुति होमें॥ अ
ग्नि देवत्ये द्वे गायत्र्यौ प्रथमा भरद्वाज दृष्टा द्वितीया विरूप दृष्टा।
हे देव, दीप्यमान अग्ने ये साधु (दान्त) तेरे घोडे अत्यन्त मन्यवे,
यज्ञ के अर्थ प्राप्त करते हैं देवताओं को इति शेषः तिन अश्वों को
जोडि। हि पाद पूरणः॥ ३६॥

+ शत० ७.५.१.३१. मनो वै सरस्वान् वाक् सरस्वती एतौ ते सारस्वतावुत्साविति।

युक्ष्वाहि देवहूतमाꣳ॥ऽअश्वाँ॥ऽअग्ने रथीरिव॥ होता पूर्व्यः सदः॥३७॥

हे अग्ने तू अश्वों को जोडिहि॰ प्रसिद्धो।कैसों को कि देवताओं को आह्वान करनेवाले।दृष्टान्तमाह रथी जैसे जोडता है तैसे।किं च तू पूर्व्यः होता(पुराना होता)मनुष्य होता से आगें इस यागहोम सदन विषें बैठताहुआ॥३७॥

अ०४ सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना॥ऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः॥घृतस्य धारा॥ऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये॥ऽअग्नेः॥३८॥

का०१७.५.७.सम्यगिति मन्त्रेण पञ्च पशुओं के मुख में एक-एक हिरण्य शकल को डाले॥लिङ्गोक्त देवता त्रिष्टुप्।हिरण्मय पुरुषो हृदेशेनायं मन्त्रः।अग्नि(चिति)के मध्य में हिरण्ययो वेतसः पुरुष जो निहित है तिस प्रति धेना (अन्न†) भले प्रकार क्षरते हैं अर्थात् हूयमान हवि तिस प्रतिजाते हैं।कैसे हैं अन्न कि मनसा अन्तर्हृदा हृदयान्तर वर्त्तमान हृत्प्रतिष्ठित॰ विषय व्यावृत्तेन अव्याकुल अर्थात् श्रद्धायुक्त मन करिदिये†।तत्र दृष्टान्तः सरितो न॰न इवार्थः जैसे नदियें समुद्र प्रति जाती हैं तद्वत्।न केवल धेनाही चलते हैं किन्तु घृत की धाराभी स्रवें हैं।ते धेनाः और घृत की धारा हिरण्मय पुरुष प्रति स्रवें हैं यह मैं देखताहूं॥३८॥

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा॥ऽअभूदिदं वि

† अन्नं वै हृदयेन मनसा सतान्नं पूतं यज्जुरितिशत०७.५.२.२१.श्रुतेः।

† अन्नं धेना इति शत०७.५.२.२१.श्रुतेः

श्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्यच॥ ३९॥

हिरण्य शकल देवत्या बृहती॥का॰१७.५.४. ऋचेत्वा से पशु ओं की नासिका के बाँए छिद्र और रुचेत्वा से दहिने में शकल शासन करै॥ हे हिरण्य शकल ऋचे- ऋग्वेद तदुक्त होत्रादिसिद्धि के अर्थ तुझे वामनासा में शासन करताहूं। रुचे- दीप्ति शोभाप्राप्ति के अर्थ तुझे दक्षिण नासा में शासन करताहूं॥ का॰१७.५.१९ 'भासेत्वा- ज्योतिषेत्वा' इन दो मंत्रों से दोनों नेत्रों में हिरण्य शकल शासन है॥भासे कान्ति के अर्थ तुझे वामनेत्र में शा॰ तेजसे- तेज की प्राप्ति के अर्थ तुझे दक्षिण नेत्र०॥का॰१७.५.११. कर्णों में 'अभूदिदम्- अग्निर्ज्योतिषा' कण्डी ४० इन दोनो मंत्रों से॥ यह श्रोत्र सब भूत जात वैश्वानरस्स वनरों के अर्थ हित) और अग्नि का वाजिनं (वाचा का जानने वाला) होता हुआ -सब प्राणियों के शब्द और अग्निका शब्द श्रोत्र ही से जाना-जाता है इस कारण श्रोत्रविषें हिरण्य को शासन करताहूं इति शेषः †। यद्वायमर्थः इस श्रोत्र विषें शस्यमान हिरण्य सब भूतजात वैश्वानर और अग्नि का वीर्य (तेजजनक) होता है इस हेतु शासन करताहूं॥३९॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान्॥
सहस्रदा ऽअसि सहस्राय त्वा॥४०॥

हिरण्य शकल देवत्यो ष्णिक्॥ यह अग्नि ज्योतिषा- पशु श्रोत्र स्थित हिरण्य तेज करि तेजस्वी हो रुक्मः- रोचमान् अग्नि हिरण्य कान्ति करि कान्तिमान् हो *। यद्वा श्रोत्र ही हिरण्य ज्योति करि अ

* बाह्य प्रभा ज्योतिः शरीर गत कान्ति र्वर्च इति ज्योर्वर्चसोर्भेदः॥

† अयमग्निर्वैश्वानर इत्युपक्रम्य तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोतीति श्रुत्यनुवादकोऽयं मन्त्रः॥

गिन जैसे ज्योतिष्मान् हो और हिरण्य वर्चे करि वर्चस्वान् हो रुक्म-इव-सुवर्णपुरुष-इव उभयत्रे वाध्याहारेण लिङ्गव्यत्ययेनच योजनेत्यर्थः॥का॰ १७.५.१४. सहस्रदा से पुरुष का शिर लेकर उखा के मध्य में उपधान करै॥ हे पुरुष तू सहस्रदा-सहस्र संख्यका दाता है अतः सहस्र धन लाभ के अर्थे तुझे उद्ग्रहण करता हूं इति शेषः॥ आदौ पुरुषशिरसि सकल प्रासनं ततोऽश्वगोऽव्यजानां क्रमेण एक पशु पक्षे मुखादिषु प्रत्येकं सप्त-सप्त पञ्च कत्व एकैक मित्यन्ये का॰१७.५.११. शत॰७.५.२.१०.॥४०॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्॥ परिवृङ्धि हरसा माभिमꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः॥४१॥

का॰१७.५.१७. आदित्यं गर्भमिति ४१-४५. पांच ऋचाओं से पुरुषादिकों के शिर क्रम पूर्वक एक-एक उपधान करै॥ पञ्च ऋचोऽग्नि देवत्यास्त्रिष्टुभः। आदौ पुरुषशिर उप दधाति मध्ये। हे पुरुष शिर तू आदित्य (चित्याग्नि †) को पय विषें स्थापन करि। कैसा है आदित्य कि गर्भ (गृहण करने वाला पशुओं को। बहुत धन का प्रतिमा भूत अर्थात् बहुत धन का देने वाला। सर्वरूप-आदित्यत्व से सर्व रूप प्रकाशक अर्थात् सर्व रूप हैं जिससे। किंच हरसा-सर्व वीर्योप हारक अग्नि की ज्योति हर तिस अग्नि तेज से यजमान को परि वर्जन करि। मा अभि मंस्थाः-यजमान को मत हिंसि किंच चीयमानः-उपधीयमानः सन् यजमान को शताब्द

† आहुतेः पशुना दिग्ध्य वर्द्धते वा स्व पशु नामैस्या दित्य श्चित्योऽग्निः।

जीवीकरि॥४१॥

वातस्यजूतिं वरुणस्यनाभिमश्वंयज्ञानꣳसरिरस्यमध्ये॥ शिशुंनदीनाꣳहरिमद्रिबुध्नमग्नेमाहिꣳसीः परमेव्योमन्॥४२॥

अश्वशिर ईशाने उपदधाति। हेअग्ने(चित्याग्ने)तू इस अश्व को ज्वाला सैं न जलाउ। कैसे को कि वातस्यजूतिं॰ वायुवत् शीघ्रगामी वा वायु के प्रेमपात्र। वरुणस्यनाभिं॰ जलेश के नाभिजैसे अनन्तर यथा नरसैं अपनी नाभि वस्त्रावरणादि करि पालनकरियेहै तद्वत् वरुण करि अतिप्रिय होनेसैं पाल्य। यतः सरिरस्य मध्ये॰ जल(समुद्र)के मध्य में जायमान † अत एव नदीओं के शिशु॰ बालक ‡। हरिं॰ हरितवर्ण वा आरूढं नरं हरतीति हरि तिसै। अद्रिबुध्नं॰ पर्वत मूल(कारण)जिन्हों का ते अद्रिबुध्नाः जल तिन्हों से उत्पन्न वा पर्वतों सै ज्ञात पथि तिस के खुरोंसै क्षुण्ण पाषाणों को देखि कर नरोंसै ज्ञात जो कि यहां अश्व गया इति अर्थात् उत्कृष्ट। परमे व्योमन्॰ इन लोकों विषें निसीदन्तमिति शेषः ५। यद्वा विविधं ओमम्॰ अवरक्षण परम(उत्कृष्ट)यद्व्योम नाना उपद्रवों सैं पालन तहां स्थापित को इति शेषः॥४२॥

† अप्सुयोनिर्वाअश्वइतिश्रुत्यन्तरात

‡ नदीपतिःसमुद्रःपितातद्वन्नदीनांमातृत्वात्तच्छिशुम्।

५ इमेवैलोकाःपरमंव्योमेतिशत॰७॰५॰२॰१८॰श्रुतेः।

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिन्नमोभिः॥ सपर्वभिꣳऋतुशः कल्पमानोगांमाहिꣳसीरदितिंविराजम्॥४३॥

गोशिर आग्नेय्यामुपदधाति। में अग्नि को स्तुति करता हूं कैसे

को कि अनु पक्षीण इन्दु (ऐश्वर्योपेत वा क्लेदन करने वाला ज
मनो का तिसै। रोषरहित वा मर्म स्थानीय रहस्य (आराध्य। पूर्व म
यों सैं चेतव्य। अन्नों सैं सवों के पोष्टार। हे अग्ने एवं सूयमाना गो
न मारि। कैसी को कि अखण्डिता वा अहीना विविध राजमाना है।
कैसा है तू कि पर्वेभिः पशु दृष्टकालोंवा अमा मावास्यादि पर्वों
तुशः ऋतु-ऋतु में कल्पमानः कर्म सम्पादन करता ॥४३॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः पर
स्मात्। महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः
परमे व्योमन् ॥४४॥

वाय व्येविष्टिर उपदधाति। हे अग्ने परमे व्योमन् उत्कृष्ट र
ए स्थान विषें स्थापित अविको मत मारि। कैसी को कि त्वष्टुः रू
पों के निर्माण करने वाले देवता के अनुग्रह से वरूत्रीं कम्बलादि
करि छादन करने वाली लोकों को तिसै। वरुणस्य नाभिं नाभिवद्र
क्षणीय वारुणी और त्वाष्ट्री अवि। परस्माद्रजसः दिग्रूप लोक
सैं जायमानां वा प्रजापति के रजोगुण सैं जायमाना। वडी। साह
स्रीं सहस्र मूल्यार्हां वा सहस्रोपकारक्षमा। असुरस्य मायां प्राणि
यों की प्रज्ञा देने वाली को ॥४४॥

योऽअग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽउत वा दिव
स्परि। येन प्रजा विश्वकर्म्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते
वृणक्तु ॥४५॥

नैर्ऋते जमुपदधाति। जो अग्नि (अग्निरूप अज) अग्नि (प्रजा

प्रति के शोक (सन्ताप) सै उत्पन्न हुआ †। और दिवि के शोक तथा पृथिवी के शोके सै जो अज उत्पन्न ‡। विश्वकर्मा एव प्रजापतिजिस अज (वाग्रूप) करि प्रजा उत्पन्न करता हुआ ४। हे अग्ने (चित्य) तेरा क्रोध तिस अज को परित्याग करै अर्थात् अज विषें तुम करि कोप न करियै है॥ माधवस्तु॰ पृथिवी ऊपर स्थित अथवा द्युलोक के ऊपर स्थित दीप्ति युक्त अग्नि (प्रजापति) के सकाश सै जो अग्नि रूप अज उत्पन्न हुआ विश्वकर्मा ने जिस अज करि प्रजा पशुओं को उत्पन्न किया। अजस्य पशु साधनत्वं तैत्तिरीय श्रुत्योक्तम्॰ ततोऽजस्तूपरः समभवत्तꣳ स्वायै देवताया आलभत ततो वै प्रजाः पशून् सृजतेति। शेषं पूर्ववत्॥४५॥

† अयमग्निः प्रजापतिः ‡ अग्निपृथिवी दिवांशोका दजोत्पत्तिः श्रुत्योक्ता प ह्वै प्रजापतेः शोका दजाप ततद्दिवश्च पृथिव्यैश्च शोका दजायतेति-शत॰ ७.५.२.२१.।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः॥ आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥४६॥

का॰ १७.५.१८॰ चित्रं देवानाम् इन दोनों अर्थों रियों करि पुरुषशिर की दो आहुति होमें॥ व्याख्याता ७.४२.॥४६॥

अ॰५ इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः॥ मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद॥ मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥४७॥+

का॰ १७.५.१९॰ अग्नि सै उत्तरि कै वेदी के बाहिर दक्षिण में उदङ्मुख खडा हो इमंमे इन उत्सर्गे संज्ञक पांच मंत्रो करि पुरुषादिशिरों का अध्वर्यु उपस्थान करै एक पशुपक्षे तिन्ही पांचो सै इत्यर्थः। ७.५.२.१९.।

४ अजस्य वाग्रूपत्वं ततः प्रजोत्पत्तिः श्रुत्योक्ता॰ वाग्वा अजो वाचो वै प्रजा विश्वकर्मा जजानेति शत॰ + इ-दा॰ अ॰ म-नु॰ इ॰॥४७॥

अग्नि देवत्याःपञ्चात्रिष्टुभः आद्ययोरन्ते एकैकं यजुः तिस्रेणमन्ते द्वे-द्वेयजुषी। हे अग्ने हिरण्य शकल रूप सहस्र नेत्र मेध (यज्ञ) के अर्थचयनकरिसंस्क्रियमाणःसन्तू इस द्विपाद पशु पुरुष रूप को मतद हैं + और जो भक्षण कीही इच्छा तौ शुद्ध मयु ‡ तुरङ्ग वदन कि-म्पुरुष पशु वा कृष्ण मृग ‡‡ को भक्षण करि। तिस मयु भक्षणसेज्वालारूप शरीर को पोषन करिकै वैठि॥ इतोयजुः तेरासंतापमयुको प्राप्त हो। किंच जिस पुरुष प्रति हम द्वेष करते हैं तिसै तेरा संताप प्राप्त हो॥४७॥

इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु॥ गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद॥ गौरं ते शुग्गृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥४८॥ । + इ-द।अ०।गौ-तु।इ०॥४८॥

अपयाश्वस्य। हे अग्ने इस एक शफ (खुर) पशु (अश्व ‡) कोमाहिंसीः। कैसे को कि कनिक्रदं अत्यन्त हींसते हुए। वेगवन्तको। तेरे अर्थ वनस्थ गौर वर्ण मृगको देताहूं। तेन चिन्वान इत्यादि पूर्ववत्। स्पष्टं यजुः॥४८॥

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये॥ घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्॥ गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद॥ गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥४९॥ + इ-न्।अ०।ग-द।इ०।ग-तु।उ०॥४९॥

+ हिरण्यशकलैर्वाऽएष सहस्राक्षः द्विपाद्वाऽएष पशुर्यत्पुरुष इतिच शत०७.५.२.३४.श्रुते।

‡ एकशफो वाऽएष पशुर्यदश्व इति शत० ७.५.२.२३.श्रुतेः।

‡ किंपुरुषोवै मयुरिति शत०७.५.२.३२.श्रुतेः। ‡‡ मयुर्मृगेऽश्ववदनः इति कोषोक्तेः।

अथ गोः। अत्र विशेषण द्वयं स्त्रीलिङ्गं शेषाणि पुल्लिङ्गानि व्यत्ययेन उभाभ्यां गौरेव स्तूयते। हे अग्ने उत्कृष्ट स्थान विषेंस्थित इस गौरूप पशु को माहिंसीः। कैसे को साहस्रं(सहस्र मूल्याहै वा सहस्रोपकारक्षम। शतसंख्याक क्षीरधारा युत अत एव उत्स(कूपसदृश अर्थात् बहुस्रोतस। सरिरस्य + मध्ये- इन लोकों के विषें व्यच्यमान- मनुष्यों से उपजीव्यमान। जनाय- सव लोकके अर्थ घृतके कारण क्षीर को क्षरती। अखंडिता को। तेरे अर्थ आरण्य गवय(गो सदृश पशु विशेष)को देता हूं। शिष्टमुक्तम्॥४९॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्॥ त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने माहिंसीः परमे व्योमन्॥ उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद॥ उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥५०॥

अथावेः। हे अग्ने उत्कृष्ट-स्थित इस अविको माहिंसीः। कैसे को किऊर्णायुक्त। वरुण के नाभि स्थानीय-प्यारे। मनुष्यों और गवादि पशुओं के त्वच त्वचजैसे- कम्बल करि छादकत्व से त्वग्रक्षक॥ तथा त्वष्टुः- प्रजापति की प्रजा विषें प्रथमोत्पन्न *** को। तेरे अर्थ उष्ट्र(ऊंट) देता हूं। स्पष्टमन्यत्॥५०॥

अजो ह्यग्ने रजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे॥ तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मे

*** त्वष्टा प्रथमं रूपं विचकारेति शत०७·५·२·३५· श्रुतेः॥

+ इमे वै लोकाः सरिरमिति शत०७·५·२·३४· श्रुतेः॥

॥ मनुष्य लोक शीतनिवृत्त के लिये कम्बल को पहिनते और गौरवादि मार्दव के अर्थ कम्बल करि आच्छादन किये जाते हैं

ध्योस॥ शरभमारण्यमनुतेदिशामितेनचिन्वानस्तन्वोनि

षीद॥शरभंन्तेशुगृच्छतुयंद्विष्मस्तंन्तेशुगृच्छतु॥५१॥+

अथाजस्य। द्विपादपूरणः। जो अज अग्नि(प्रजापति)के संतापसे

उत्पन्न+। सो उत्पन्न हुआ अज प्रथम नर जैसे अपने उत्पादक प्र

जापतिको देखताहुआ। किंच एवं प्रशस्तोऽजः ततःये देवता पूर्व

जन्म विषें तिस अजसे कर्म करिके इतिशेषः देवभाव को प्राप्तहु

ए तस्य भावस्त्वतलो। किंच यज्ञ के योग्य यजमान लोक रोहणीय

स्वर्गको तिस अज करि जाते हैं। शरभः॰अष्टापद मृगविशेष

सिंहका मारनेवाला शेषमुक्तम्॥५१॥

त्वंयविष्ठ दाशुषोनॄँः पाहिशृणुधीगिरः रक्षातोकमु

तत्मना॥५२॥

का०१७·६·१·वेदीसे बाहिर आके अग्निके समीपमें अर्धचिति

को उपस्थान करै॥उशनोकाव्य दृष्टानिरुक्ताग्नेयी गायत्री॥

हे यविष्ठ, युवतम वा मिश्रयितृतम हमारी स्तुति वाचा सुनि॥

वाचा सुनिकर हवि देनेवाले यजमान, मनुष्यों वा यजमानके

मनुष्योंको रक्षाकर। किंच यजमानकी सन्तानको रक्षाकर

वा सन्तान और यजमानको रक्षाकर॥५२॥

अ०६ अपांत्वेमन्त्सादयाम्यपांत्वोद्मन्त्सादयाम्यपांत्वा

भस्मन्त्सादयाम्यपांत्वाज्योतिषि सादयाम्यपांत्वा-

यने सादयाम्यर्णवेत्वा सदने सादयामि समुद्रेत्वासद

नेसादयामि सरिरेत्वा सदने सादयाम्यपांत्वाक्षयेसाद

+ यद्वै प्रजापतेः शोकादजायत तदग्नेः शोकादजायतेति श०७·५·२·३६·श्रुतेः आत्मनो वापामु
रविदत्तामग्नौ प्रगृह्णन्ततोऽजस्तूपरः समभवदितितैत्तिरीयेपि।

+ अ-स॥अ०। श-दा इ०। श-तु उ०॥५१॥

याम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥५३॥ +

का० १७.६.२. तीर्थकरि अग्नि को आरोहणकरिकेस्वयमातृणाके अपर पूर्व अनूकान्त चलिकर चारौ अनूकान्तों विषें अपांत्वेमन्निति शति मन्त्र पञ्च-पञ्च स्यासंज्ञाइष्टका उपधान करै॥ विंशति रिष्टका देवत्यानि यजूंषि पञ्च दशापस्या देवत्यानि पञ्चछन्दस्या देवत्यानि. १.२.या-अ०३.५.९. १३.या-व्र०४.१०.११.१२.१४.१५.या-पं०६.७.८.या-त्रि०१६.१७.१८.या-ज०१९.आसु अ०२०.आसु-पं०। हे इष्ट के अपस्ये अपामेमन् (वायुविषें) त्वां (तुम्है) सादयामि (स्थापन करताहूं) +॥१॥ अपांत्वोद्मन् ओषधियोंविषें त्वांसादयामि॥२॥ भस्मन् अभ्रविषें त्वां साद०॥३॥ ज्योतिषि विजली विषें०॥४॥ भूमिविषें०॥५॥ प्राणरूपस्थान विषें०॥६॥ मनरूपस्थानविषें॥७॥ वाचारूपस्थानविषें०॥८॥ नेत्रोंविषें०॥९॥ श्रोत्रोंविषें०॥१०॥ दिविविषें०॥११॥ अन्तरिक्षविषें॥१२॥ समुद्रविषें०॥१३॥ सिकताविषें०॥१४॥ अन्नविषें०॥१५॥ पञ्चछन्दस्या उपदधाति पञ्चयजुर्भिः। गायत्रेण (गायत्र्येवगायत्रं) गायत्रीछन्दकरितुम्हैसाद०॥१६॥ त्रिष्टुप्छन्दकरि०॥१७॥ जग

+ अपामेमन्निति तु शतपथे पाठः। वायुर्वा अपामेमन्वायौ त्वैतं सादयामीत्यादि शत०७.५.२.५१-६०पञ्चछन्दस्याश्रुतिभ्यः।

+ अ-मि। ऋ०।इ०।उ०।ऋ०।ऌ०।आ।ई०।ऊ०।ॠ०।ॡ०।क०।च०।ट०।त०।प०।गा-मि।ख०।त्रै-मि।छ०।जा-मि।ठ०।आ-मि।थ।पा-मि।फ०॥५३॥

तीछन्द॰॥१८॥अनुष्टुप्॰॥१९॥पंक्ति॰॥२०॥ ५३॥

अ॰७ अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत्त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ ५४॥ †

का॰१७॰६॰३॰ प्राणभृत्संज्ञका इष्टका व्याघारणावत् दक्षिण अंस उत्तर श्रोणि॰ दक्षिण श्रोणि॰ उत्तर अंस विषें॰ कर्ण सहिता अक्ष्ण के संलग्न स्वयमातृण्णा पर्यन्त दश-दश उपधान करै। पश्चात् प्राणभृदिष्टका देवत्यानि १॰दै-त्रि॰२॰या-अ॰३॰८॰या-उ॰४॰५॰६॰या-गा॰५॰९॰दै-पं॰१०॰आर्षी-गा॰ प्रति कण्डकं दश-दश। प्रथमं दशकं दक्षिणे अंसे। किसी समय प्रजापति के आगेसें प्राणों में देवता होके उत्क्रमण किया तव तिन्हों से प्रजापतिनेकहा कि क्यों उत्क्रमण करते हो मुझै प्राप्त हो औ फिरि प्राण तिससे वोलेकि हम अन्न बिना स्थित होने को समर्थ नहीं हो सक्के तिस अन्न को तुमैं सृजना चाहिये कि खडे हों फिरि प्रजापतिने कहा कि हम तुम मिलकर अन्न सृजें वहुत अच्छा यह कहि कर प्राण और प्रजापति ने तिस अन्न को सृजा तिस सें प्राणोंको पोषण किया इति इष्टकानां प्राणभृत्संज्ञेत्युक्तं श्रुत्या प्रजापते विस्रस्तात्प्राणाउदक्रामन्नित्यादिकया ८॰१॰१॰३॰-२॰९॰। अथ मंत्रव्याख्या। जो यह अग्नि पुर और भुव वर्त्तै है हे इष्टके तू तिस रूपा है प्राण एव अग्नि होके पुरः सामने तिष्ठै है अतः तु रु अग्नि रूपा को उपधान

† अ-वः।अु॰।त-नः।इ॰।व-नः।उ॰।गा-त्री।ऋ॰।गा-मू।ल्ट॰।गा-शु:।आ॰।उ-त्।ऋ॰।त्रि-मू।ऊ।व-षिः।ऋ॰।प्र-भ्यः।ल्ह॰।५४॥

करताहूं इति शेषः एवमग्रेपि। पुरस्तादुपधीयते प्राग्रुद्धियेतप्रा- ङुपचर्यतऽ इतिपुरोऽग्निः ऽभवति सर्वरूपेणेति भवत्यस्मात्स र्वमिति वा भुवोऽग्निः तद्रूपेष्टका ध्येयेतिभावः ॥१॥ प्राणति स अग्नि का अपत्य इति शेषः अत एव भौवायनः। हे इष्टकेतुम् प्राणरूपा को सादन करताहूं ॥२॥ प्राण का अपत्य प्राणायन- जो वसन्त ऋतु तिस रूपा को साद०॥३॥ वसन्त का अपत्य वासंती जोगायत्रीछन्दतिसरूपा०॥४॥ गायत्रीकेसकाशसेउत्पन्नगायत्रसामतिस० ५॥ गायत्र साम से जो उपांशु सुग्रह निर्मित तिस०॥६॥ उपांशु ग्रह से जो निर्मित त्रिवृत्स्तोम तिस०॥७॥ त्रिवृत्स्तोम से निर्मित जो रथन्तर पृष्ठ तिस०॥८॥ अधितिष्ठै है सर्व जन्तुओं को अति प्रयेन वस्ता वसिष्ठ सर्वाधार ऋषि ज्ञाता तिस०॥९॥ प्रजाप- ति गृहीतया गृह्णातिः सृष्टिके अर्थ प्रजापति करि सृजीहुई तु म स्थापित इष्टका से सर्व प्रजा के अर्थ प्राण को ग्रहण करताहूं अर्थात प्रजाओं की प्राणसिद्धि के अर्थ तुम्हे उपधान करताहूं॥१० अयं पुर इत्यादि दशमन्त्रों से एकही प्राण को ग्रहण करताहूं॥११॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारꣳ स्वारादन्तर्यामो न्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद्बृहद्भरद्वाजऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः॥५५॥ +

११.१२.या-वृ०१३.१५.दै-पं०१४.दै-बृ०१६.१८.१९.या-गा०१७. या-अ०२०.आर्षी-गा०। एभिर्मन्त्रैस्तृतीयं दशकं दक्षिणओ

+अ-मो।अ०न-मृ।इ०ग्री-सः।उ०त्रि-ष्मी।ऋ०त्रि-मृ।ल०स्वा-मः।आ० अ-मः।ई०य-तू।ऊ०भ-षिः ऋ०प्र-भ्यः।लृ॥५५॥

णे रारभ्यो पधेयम्॥ विश्वं करोति (सब कीसृजे) विश्वकर्मा (वायु) इ
स दक्षिण दिशा विषें आयो वर्त्तसें भूयिष्ठ वहताहे तद्रूपां त्वां-
साद यामि॰ तुम्‍ तिस रूपा को सादन करताहूं॥११॥ तिसका अप
त्य मन अत एव वैश्व कर्मणं मनरूपांसा॰॥१२॥ मनका अपत्य-
ग्रीष्म ऋतुः तद्रू॰॥१३॥ ग्रीष्म से उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्द तद्रू॰॥१४॥
त्रिष्टुप् से उत्पन्न जो स्वारꣳ सामतद्रूप॰॥१५॥ स्वारꣳ साम से उत्प
न्न जो अन्तर्याम ग्रह तद्रू॰॥१६॥ अन्तर्याम से उत्पन्न जो पञ्चद
शस्तोमत॰॥१७॥ पंचदशस्तोम से जो उत्पन्न बृहत्पृष्ठत॰॥१८॥
वाज (अन्न) को भरत (धारण कर्त्ता) मन॰ स्वस्थ मन विषें अन्नभ
क्षणे छा की उत्पत्ति सें ऋषिः॰ सचेतन मन रूप तद्रू॰॥१९॥ धा
तृ करि सृजी तुम्‍ इष्टका करि प्रजा के अर्थ मन गृहण करताहूं
२०॥ इन दश मंत्रों से मनएव गृह्णामीत्यर्थः॥५५॥

अ॒यं प॒श्चाद्वि॒श्वव्य॑चा॒स्तस्य॒ चक्षु॑र्वैश्वव्य॒च॒सं व॒र्षाश्चा॑क्षु
ष्यो॒ जग॑ती वा॒र्षी जग॑त्या॒ ऽऋक्स॑म॒मृक्स॑माच्छु॒क्रः शु॒क्रा
त्स॑प्तद॒शः स॑प्तद॒शाद्वै॑रू॒पं ज॒मद॑ग्नि॒ऽ ऋषि॑: प्र॒जाप॑ति
गृहीतया॒ त्वया॒ चक्षु॑र्गृह्णामि प्र॒जाभ्य॑: ॥५६॥

२१॰या-अ॰२२॰या-ब॰२३॰२४॰२६॰दै-पं॰२५॰२७॰२९॰या-गा॰
२८॰या-उ॰३०॰आर्षी गा॰। अयं पश्चा दित्यादि मन्त्रे द्वितीयं द
शक मुत्तर श्रोणे रारभ्यो पदधाति॥ प्रतीची गमन शील विश्वंवि
चति (उदित हो प्रकाश करता) विश्वव्यचा (आदित्य) यह प्रसि
द्ध तद्रू॰॥२१॥ तिस आदित्यका संबंधि चक्षु अत एव वैश्वव्य

अ-चाः॥ अ॰। त-म्॥ इ॰। व-ब्धः॥ उ॰। ज-षी॥ ऋ॰। ज-म्॥ ल्ट॰। ऋ॰-क्रः॥ आ॰।
सु-शः॥ ई॰। स-म्॥ ऊ॰। ज-षिः॥ ऋ॰। प्र-भ्यः॥ ल्ट॰॥५६॥

चार विषें उत्पन्न तद्रू०॥२२॥ चक्षु सैं उत्पन्न वर्षा ऋतु तद्रू०॥२३॥ वर्षा सैं उ० जगती छन्द त०॥२४॥ जगती सैं उ० ऋक्सम संज्ञक साम त०॥२५॥ ऋक्सम सैं० जो शुक्र ग्रह त०॥२६॥ शुक्र सैं० जो सप्तदश स्तोम त०॥२७॥ सप्तदश स्तोम सैं० जो वैरूप पृष्ठ त०॥२८॥ जमत् (जगत को देखता) अग्नि (सर्वत्र चलता) ऋषि ति (जानता ऋषि) ऐसा जो चक्षु त०॥२९॥ प्रजापति करि सृजी तुम इष्टका करि प्र जा के अर्थ चक्षु ग्रहण करता हूं॥३०॥ दश मन्त्र सैं चक्षुरेव गृह्णामि॥५६॥

इदमुत्तरात्स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शाऱ्द्यनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकविꣳश एकविꣳशाद्वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥५७॥+

३१·३२·३४·३५·३९·या-गा०३३·३६·दै-बृ०३७·३८·या-उ०४०·आर्षी गा०। दशमन्त्रे चतुर्थदशकमुत्तरां सादारभ्योपदधाति॥ सव सैं उत्तर भाग दिशा जो यह स्वः (स्वर्गलोक) तिस तुम स्वर्गरूपादिक को सा० ३१॥ तिस स्वर्ग का संबंधी श्रोत्र सो व श्रोत्ररूपां त्वां सा०॥३२॥ श्रोत्र सैं उ० जो शरत् ऋतुः त०॥३३॥ शरत् सैं० जो अनुष्टुप् छन्द त०॥३४॥ अनुष्टुप् सैं० जो ऐडं साम त०॥३५॥ ऐडं साम सैं० जो मन्थी ग्रह त०॥३६॥ मन्थी ग्रह सैं० जो एकविꣳश स्तोम०॥३७॥ एकविꣳश स्तोम सैं० जो वैराज पृष्ठ त०॥३८॥ विश्वामित्र ऋषिः सर्व मित्र जिस करि तैसा ऋषि (श्रोत्र-श्रद्धयान्य वाक्य श्रवण सैं सर्व मित्र

१२-स्व॥ अ०त-मू०। दू०। पू-वी। उ०। अ-दी। ऋ०। प-मू। ल०। ऐ-न्थी। आ०। म-श।। द्वि०। ए-मू। ऊ० पवि-वि।। ऋ०। प्र-भ्यः। ल०॥५७॥

होताहै विश्वामित्र ऋषि रूप जो श्रोत्र तद्रूपासा०॥३९॥ प्रजापतिक
रि सृजी तुम इष्टका करि प्रजा के अर्थ श्रोत्र गृहण करताहूं॥४०॥
दशमन्त्रैः श्रोत्रमेवसादयति॥५७॥

इयमुपरि मतिस्तस्यैवाङ्मात्या हैमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैम
न्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणा
त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वर
रैवते विश्वकर्म ऋषिः प्रजापति गृहीतयात्वया वाचं
गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ता इन्द्रम्॥५८+
इतिश्री संहितायां सप्तमो ऽनुवाकः ७
इति श्रीशुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहि
तायां दीर्घपाठे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

४१·या-उ०४२·४३·४४·हे-पं०४५·४६·या-गा०४६·या-वृ०४७·
या-त्रि०४८·सा-उ०५०·आर्षी गा०दशमन्त्रैः पञ्चमं दशकं रेतः
सिग्भ्यामुत्तरां प्रथमां कृत्वा प्रादक्षिण्येनोपधेयम्॥ उपरि ऊ
र्ध्वे देशस्थ चन्द्र इस मति (वाक्) मन्यते ज्ञायते यया सा मतिः
वागेव चन्द्रमा होके ऊपर जो तिष्ठैहै तद्रूपंसा०४१॥ तिसचन्द्र
रूपा मति से उत्पन्न अतएव मात्या जो वाक् तद्रू०॥४२॥ वाचासे
उत्पन्न जो हेमन्त ऋतु त०॥४३॥ हेमन्त से० जो पंक्तिश्छन्द त०॥
४४॥ पंक्तिसे० निधनवत्संज्ञक साम त०॥४५॥ निधनवत्साम से०
जो आग्रयण ग्रह त०॥४६॥ आग्रयण से० जो त्रिणवत्रयस्त्रिं
शदो स्तोम त०॥४७॥ त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोमों से० दो शाक्वर रैव

+इ-ति॥अ०त-त्या। इ-हे-च्य॥उ०प-न्ती॥ऋ०प-त्॥ल०नि-ण॥आ०आ-
शौ॥इं०त्रि-शै॥ऊ०वि-षि॥ऋ०प्र-भ्य॥ल०लो-म्॥के०॥व॥च०इ-म्।
ह०॥५८॥ लोकंता इंद्रम्० इति प्रतीकः॥

त्वां तद्०॥४८॥विश्व कर्मा(सब करताहै)ऋषिः(वागेव
ाही सब करतीहै)वाग्रूपांत्वांसा०॥४९॥प्रजापति करि स
तुरु इष्टका करिके प्रजा के अर्थ वाचा को ग्रहण कर-
ताहूं ॥५०॥एभिर्दशमंत्रैर्वाचमेव गृह्णाति॥ ॥अथ पञ्च क
कासु प्राण मन श्चक्षुः श्रोत्र वाचं प्रजाभ्यो गृहणमित्यस्या
यम्।प्रजाभ्य इति चतुर्थी पक्षे प्रजा के अर्थ प्राणादिकोंका
ण-पञ्चाशदिष्टकास्थापने प्रजा,यजमानापत्यपश्वादिकों
के प्राणादिक पुष्टहों इत्यर्थः।प्रजाभ्य इति पञ्चमीपक्षे प्रजा
नानालोकों केसकाश सेप्राणादिकोंकों ग्रहण(अपने वशगा)क
रताहूं अर्थात् प्राणभृतों के उपधान से समस्त प्रजा मद्वशगाहो
वे॥ ॥का०१७·६·५·आत्मा के दक्षिण कोण से ले मध्यात् अ
धि स्वयमातृण्णा पर्यन्त लोकम्पृण उपधान करै तिन्होंकालो
कंपृणेत्यभि मंत्रण,ता अस्येति मंत्रेण अधिवदन-स्पर्शकरि
के पठनहै॥का०१७·६·४-स्वयमातृण्णा के ऊपर इन्द्रंविश्वेति
मंत्रेण मृत्क्षेपः-मृदाडाले॥तिस्रः ऋचः गती कोक्ताः पूर्व
मुक्तत्वात् १२·५४-५६॥५७॥ इतिप्रथमचितिमंत्राःसमाप्ताः

इतिश्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दंनिवारयन्
पुमार्थांश्चतुरोदेयादग्निदेवःसनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतव्याघ्रपदा
न्वयविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जपकिशोरदेववर्म्मात्मजेनकि

ोयनृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये प्रथमचित्युपधानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १

द्वितीयचितिमन्त्राणां देवा ऋषयः

अ०१ ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया॥ उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥ + ध्रु- ए। अ०। अ- त्वा। इ०॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादेन संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

ईर्यते मनुरध्यायो भाष्ये द्वित्रिचतुश्चितिः

त्रयोदशे अध्याय में प्रथमा चिति कही गई सा भूलोक रूपा +। चतुर्दशे विषें द्वितियादि तीनि चिति कहिते हैं भूमि सें ऊंचा अन्तरिक्ष सें उरला भाग दूसरी चिति है +। देवताओं ने अश्विनीकुमारों सें प्रार्थना की॰ जो तुम वैद्य हो तो दूसरी चिति को उपधान करौ यह तिन्हों सें कहा॰ चित्युपधान में हमें क्या फल यह अश्विनीकुमारों ने कहा॰ देवता वोले कि तुम चित्युपधान विषें देवताओं के अध्वर्यू होवोगे फिरि तिन्हों ने दूसरी चिति उपहित की ५। तत्रादौ ए

+ अयं वै लोकः प्रथमा चितिरिति शत० ८।१।१। श्रुतेः

+ एतां द्वितीयामित्यादि शत० ८।२।१।२

+ ते ऽश्विनावब्रुवन्नित्यादि कयोक्तमिति शत० ८।२।१।३। श्रुत्यो

श्वाश्विन्य इष्टका:॥ का॰ १७॰८॰१५॰ पांच काण्डिकाओं से अश्विनी संज्ञा इष्टका रेतःसिग्वेला विषें उपधान करें प्रतीष्टकं निस्येइति सूत्रार्थः॥ पञ्चाश्विनी देवत्याः प्रथमा विराट् चतस्त्र स्त्रिष्टुभोय जुरन्ताः। अश्विनाध्वर्यू इत्यादि यजुः। हे इष्टके यतः तू स्थिरा है अतः स्थिर योनि(रेतः सिग्वेला लक्षणस्थान)में अधिष्ठित हो। कैसी योनि कि साधु श्रेष्ट। कैसी है तू कि स्थिर है निवास-जिसका। अचल है योनि(कारण)जिसका। प्रथम केतु(स्थान)प्रथम चिति रूप को सेवमाना †। इतः परं यजुः किंच देवताओं के अध्वर्यू अश्विनी कुमार इह-रेतः सिग्वेला विषें-हे इष्टके तुझे उपधान करें॥१॥

कुलायिनी घृतवती पुरंधिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः॥ अभित्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥२॥ †कु-या।अ॰अ-त्वा।इ॰॥२॥

हे इष्टके पृथिवी के सदन प्रथम चिति रूप स्थान सुख रूप विषें तू बैठि ‡। कैसीहै तू कुलायिनी-गृह्माकारा। तथा घृतवती(होष्यमाणाज्य युता-वसोर्धारा यत्र होष्यन्ते। पुरंधिः बहु इष्टका जात को स्थापन करती वा बहुधा स्थापन करते हैं। किंच रुद्रों और वसुओं लक्षण सब देवता तुझे स्तुति करें। किंच सौभग(ऐश्वर्य)के अर्थ इन ब्रह्म(मन्त्रों) को प्राप्त हो। अश्विनेत्यादि पूर्ववत्॥२॥

‡ पृथिवी के प्रथमा॰ सूत॰८॰२९॰१॰पू॰श्रुते

स्वे दक्षे दक्षपितेह सीद देवानाᳬ सुम्ने बृहते रणाय॥

† अथवा-योनि रूप इत्यादि...

पि॒ते वै॑धि सू॒नव॒ऽआ सु॒शेवा॑ स्वावे॒शा त॒न्वा॒ सं विशस्वा॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयता॒मिह त्वा॑ ॥३॥ +स्यै-स्वा।अ०।अ-त्वा।द्र०३

हे इष्टके तू इस दूसरी चिति विषें स्वै दक्षैः अपने वीर्य +सहित वैठि। कैसी कि दक्षपिता वीर्य की पालयत्री। किमर्थं स्थातव्यं तत्राह देवताओं के रमणीय बडे सुख के अर्थ देवता सुखी हों इति तिष्ठेत्यर्थः। किंच समन्ताद्भावेन शोभन सुख जिस सें तादृशी सुखयित्री हो। तत्र दृष्टान्तः जैसें पिता पुत्र के अर्थ सुखयिता होता है तद्वत्। किंच सुख प्रवेशवती शरीर करि अवस्थान करि। अश्विनेत्युक्तम्॥३॥

पृ॒थि॒व्याः पुरी॑षम॒स्यप्सो॒ नाम॒ तां त्वा॒ विश्वे॑ऽअ॒भि गृ॑णन्तु दे॒वाः ॥ स्तोम॑पृष्ठा घृ॒तव॑ती॒ह सी॑द प्र॒जाव॑द॒स्मे द्र॑वि॒णाय॑जस्वा॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयता॒मिह त्वा॑ ॥४॥ +

हे इष्टके तू पृथिवी (प्रथमचिति) की पूरक वस्तु + और जलों का कारणीभूत रस तू है। तैसी तुझ प्रथमचिति पूरिका और जलदरसभूता को सब देवता स्तुति करें। किंच स्तोमपृष्ठा त्रिवृदादिक स्तोम रथन्तरादिक पृष्ठ जिस्मे तादृशी स्तोमपृष्ठवती। घृतवती होष्यमाणाज्ययुता सती इस दूसरी चिति विषें वैठि। ततः प्रजावत् पुत्रपौत्रादिप्रजायुक्त धन हमारे अर्थ समन्तात् दे। अन्यद्व्याख्यातम्॥४॥

अ॒दि॒त्यास्त्वा॑ पृ॒ष्ठे सा॑दयाम्य॒न्तरि॑क्षस्य ध॒र्त्रीं वि॒ष्टम्भ॑नीं दि॒शामधि॑पत्नीं॒ भुव॑नानाम् ॥ ऊ॒र्म्मिर्द्र॒प्सोऽअ॒पाम॑

+पृ-स्वा।अ०।अ-त्वा।द्र०॥४॥

सिविश्वकर्मातु ऽ ऋषिं रश्विनाध्वर्यू सादयतामिहत्वा॥ ५॥

हे इष्टके अदित्याः प्रथम चिति रूपा पृथिवी के पृष्ठके ऊपर तुमै स्थापन करताहूं। कैसी तुमै कि अन्तरिक्ष (भुवर्लोक) की धारण करनेवाली। पूर्वादि दिशाओं की स्तम्भन करनेवाली भूतजातों की स्वामिनी। किंच तू जलों के रसकी कल्लोल है। विश्वकर्मा प्रजापति तेरा द्रष्टा। तुम तैसी को अश्विनी कुमार सादन करैं॥ ५॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ऽ अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥ येऽअग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे॥ ग्रैष्मावृतू ऽ अभि कल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम्॥ ६॥

का० १७.८.१६. प्रथम चिति विषें उपहित दोनों ऋतव्यों के ऊपर दो ऋतव्ये पद्ये प्राग्लक्षणे अनूक में अभितः उदङ्मुख उपधान करै। शुक्रश्च शुचिश्चेति प्रत्येकको उपधान करिके। ग्रैष्मावृतु इति मन्त्रशेषः दोनों का आलम्भन करि पढै॥ ऋतुदेवतं यजुः। शुक्रो ज्येष्ठ मासः शुचिः अषाढः ते ग्रीष्मसंबंधि ऋतु के अवयव। अन्यद्व्याख्यातम् १३.२५॥ ६॥

अ० २ सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानराया श्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधै

रग्नयैत्वा वैश्वानरायाश्विनोध्वर्यूसादयतामिहत्वास
जूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैर
ग्नयेत्वा वैश्वानरायाश्विनोध्वर्यू सादयतामिहत्वा सजूर्ऋ
तुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैर
ग्नयेत्वा वैश्वानरायाश्विनोध्वर्यू सादयतामिहत्वासजू
र्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयो
नाधैरग्नयैत्वा वैश्वानरायाश्विनोध्वर्यू सादयतामिह
त्वा ॥७॥ + स-त्ता। अ०। इ०। उ०। ऋ०। ल्ट०॥ ७॥

का०१७.८.१८. पांच मंत्रों से पांच वैश्वदेवी संज्ञा इष्टका पूर्वादि
कों में उपधान करे ॥ विश्वदेवदृष्टानि विश्वदेवदेवत्यानि पञ्च
१.४.५. यजूंषि २.३. ब्रा-ज०। हे इष्टके देवताओं के अध्वर्यू अश्वि
नी कुमार तिस तुझे इस स्थान दूसरी चिति विषें सादन करें। कि
मर्थं कि सब नरों के अर्थ हित अग्निकी तृप्ति के लिये तिस कि
से कि जो तू ऋतुओं से सजूः अर्थात् वसन्तादिकों से प्रीतिमती
तथा विधाभिः जगत के सृजने वाले जलों से सजूः +। तथा इ
न्द्रादिक देवताओं से सजूः। तथा वयोनाधैः बाल्यादि बाधते हैं
प्राणादिक और तिन्ही देवैः दीप्यमानों से सजूः + अथवा वयो
नाधैर्देवैः छन्दों से सजूः + एवमुत्तर मन्त्रेष्वपि यद्वा ऋतु देव
प्राणों को सृजि के तिन्हों से सजूः संयुक्त होके प्रजापति ने जैसे तू
उपधान की थी एवं मैं भी अग्नि के अर्थ तुझे उपधान करता हूं
इति शेषः +॥ उत्तर चतुर्मन्त्रेषु वसुभिः रुद्रैः आदित्यैः विश्वे दे-

+ आपो वै विधा० श्त० ८.२.२.८। अप एव
ससर्जादाविति मनु० अ०१ श्लो०८

वसजूरितिविशेषः शेषंपूर्ववत् ॥ ७ ॥

प्राणं मे पाह्यपानं मेपाहिव्यानं मेपाहिचक्षुर्मऽउ
र्व्याविभाहि श्रोत्रं मेश्लोकय ॥ अपःपिन्वौषधीर्जिन्व
द्विपादव चतुष्पात्पाहिदिवोवृष्टिमेरय ॥ ८ ॥ †

का०१७·८·२०·पांचयजुओंसे प्राणभृत्संज्ञकाइष्टकापूर्वादि
कोंमें उपधानकरै ॥ पञ्चवायुदेवत्यानि‡१·३·दै-पं०२·५·दै-त्रि (०‡ प्राणोवै वायुरिति श०८·२·३·२।)
पू·प्रा-गा०। हे इष्टके तू मेरे प्राण(प्राणरूपवायु)कोपालनकरि॥
१॥ एवं अपानं०॥२॥व्यानं०॥३॥ विस्तीर्ण दृष्टि करिके मेरे नेत्रोंको
विशेषेण प्रकाशय अर्थात् दर्शन समर्थकरि ॥४॥ मेरीकर्णेन्द्रिय
कोसंघातविषें शक्त अर्थात् बहुशब्दश्रवणसमर्थकरि॥५॥का०
१७·८·२१·पांचमंत्रोंसे अपस्यासंज्ञाइष्टका उपधानकरै॥ अब्देव
त्यानि पञ्च १·३·दै-बृ०२·४·दै-पं०५·दै-ज०। हे इष्टके तूजलसीं
चि॥१॥ ओषधीसे प्रीतिहो॥२॥ मनुष्य शरीरकोरक्षाकरि॥३॥पशु
शरीरको पालन करि ॥४॥ द्युलोकसे वृष्टिको समन्तात् प्रव
र्तकरि॥५॥८॥

अ०३ मूर्द्धावयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रंवयोमयन्दं छन्दोवि
ष्टम्भोवयोधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठीछन्दो
वस्तोवयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः
पुरुषोवयस्तन्द्रं छन्दोव्याघ्रोवयोनाधृष्टंछन्दः सिं
होवयश्छदिश्छन्दःपष्ठवाड्वयो बृहतीछन्दऽउक्षावयः
ककुप्छन्दऽऋषभोवयःसतोबृहतीछन्दोनड्वान्वयः॥ अ †

† प्रा-हि।अ०।अ-हि।इ०।व्या-हि।उ०।चि-हि।ऋ०।श्रो-हि।लृ०।अ-त्वो आ०ओ
न्व।ई०।द्वि-वा।उ०।च-हि।ऋ०।दि-य।लृ०।८॥
† मू-न्दः।अ०।क्ष-न्दः।इ०।वि-न्दः।उ०।वस्ता-न्दः।लृ०।वृ-न्दः।आ०।पु-न्दः।ई०।
व्या-न्दः।ऊ०।सि-न्दः।ऋ०।प-न्दः।लृ०।उ-न्दः।क०।ऋ-न्दः।च०।४॥

का० १७·८·२२· दक्षिणोत्तर पश्चिम अनूकान्तों में पांच-पांच पूर्व में चारि वयस्या संज्ञा इष्टका एकोनविंशतिमन्त्रों से उपधान करै एकोनविंशतिर्यजूंषि लिङ्गोक्त देवतानि १·३·१०·१७·या-पं०२ ५·६·७·८·१३·१४·१६·१८·१९·या-त्रि०९·११·१५·या-अ०४·१२·याज० वयःशब्दोपेत मन्त्रै रुपधेया इष्टकाः। अत्र श्रुत्युक्तं निदानम् पहिलें सृजन करते हुए व्याकुल प्रजापति के सकाश से सृजे हुए पशु छन्द रूप में स्थित हो निकल भागे ततः प्रजापति भी गायत्र्यादि छन्द रूप को स्वीकार करि पशु संबंधिनी तिस-तिस अवस्था से तिन पशुओं को प्राप्त हुआ तदभिधायका मन्त्राः +। तत्रादौ चतुर्भिर्मन्त्रैः प्रजापते रष्टा वयवात्मकं गायत्री रूपं परिकल्प्यते। मूर्धा (प्रधान) प्रजापतिश्छन्दः (गायत्री रूप होकर) वयः[५] वयकारि के पशुओं को प्राप्त हुआ इतिशेषः। तिस रूप तुम इष्टका को उपधान करता हूं इति सर्वत्र शेषः। अनेन मंत्रेण प्रजापतिर्द्वाववयवौ कल्पितौ॥१॥ क्षत से त्राण करने वाले शरीर वय का प्रजापति हुआ मयंद सुख का देनेवाला अथवा अनिरुक्त छन्द होता हुआ॥२॥ अधिपतिः अधिक पालन करने वाला जगत का स्तम्भन करने वाला प्रजापति तिस पशु की अवस्थावाला और छन्द हुआ॥

३॥ परम पद में तिष्ठने वाला सर्वस्रष्टा प्रजापति वय और छन्द हुआ॥

४॥ एवं प्रति मंत्रं द्वौ-द्वाववयवावित्यष्टावयवः प्रजापतिर्गायत्री रूपः परिकल्पितः तथा चाष्टसंख्योपेतत्वात्सर्वछन्दः प्रकृतिभूतं गायत्रीछन्दो भूत्वा वयोऽवस्थया वक्ष्यमाणान्पशून् दशपशून्प्रजापतिराप्त

[५] वयसा विभक्तिव्यत्ययः

+ प्रजापतेर्विस्रस्तात्प्रिया पशव उदक्रामन्नित्यादि श० ८·२·३·१–४·१४ श्रुतिषु एकोनविंशतिर्मन्त्रा उपधानीयाः।

त्वात् ॥ इति ॥ विवलं (वर॰ उत्कृष्ट॰ एकपदाख्य) छन्द होकर उत्क्रान्त वस्त (अज) को वय करिकै ग्रहण करता हुआ ॥ तत्तद्वयोऽवस्था जग्राह एव मुत्तर मन्त्रेष्वपि विभक्ति परिणामं कृत्वा तत्तछन्दोरूप मास्थाय प्रजापतिस्तत्तद्वयसा तं-तं पशुं गृहीतवानिति योज्यम् विशेषस्तु व्याख्यायते ॥ ५ ॥ विशालं॰ द्विपदा गायत्री रूप छन्द होके वृष्णि (सेचन समर्थ॰ मेष) को वय करिकै ग्रहण करता हुआ ॥ ६ ॥ तन्द्रं॰ पङ्क्ति छन्द होके भागते हुए पुरुष पशुको वय ॰ ॥ ७ ॥ अनाधृष्टं॰ विराट् छन्द होके भागते व्याघ्र पशुको वय ॰ ॥ ८ ॥ छादयतीतिछदिः अतिछन्द हो॰ सिंह पशु ॰ ॥ ९ ॥ अथातो निरुक्तानि छन्दांश्स्युपदधातीति ८॰ २॰ ४॰ ५॰ श्रुतेः सष्टानि छन्दांसि दशोच्यन्ते ॥ पष्ठे (पृष्ठ भाग विषें वहता॰ पष्ठवाट्) पांच वर्षके पशुको बृहती छन्द हो॰ ॥ १० ॥ ककुप्छन्द हो॰ उक्षा (सेचन समर्थ) पशुको ॰ ॥ ११ ॥ सतोबृहती छन्द॰ ऋषभ (सेचन समर्थ॰ वृष पशु) को ॰ ॥ १२ ॥ ९ ॥

अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप्छन्दो दित्यवाड्वयो विराट्छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽउष्णिक्छन्दस्तुर्यवाड्वयोनुष्टुप्छन्दो लोकं ताऽइन्द्रम् ॥ १० ॥ +

पङ्क्ति छन्द हो॰ अनड्वाह (अनः॰ शकट को वहने वाले पशु॰ ॥ १३ ॥ जगती छन्द हो॰ धेनु (नवप्रसूता सवत्सा गौ को ॰ ॥ १४ ॥ त्रिष्टुप् छन्द हो॰ त्र्यवय (षण्मासात्मक अवि॰ तीनि अवय अर्थात् अठारह १८ महीने के पशुको ॥ १५ ॥ विराट् छन्द हो॰ दित्यवाह दितिं॰ खण्ड

+अ॰ न्द्वा॰ अ॰ ध्वे॰ न्दः। इ॰ त्र्य॰ न्दः। उ॰ दि॰ न्दः। ऋ॰ म॰ न्दः। ल॰ त्रि॰ न्दः। ए॰ तु॰ न्दः। ई॰ ले॰ न्दा। ऊ॰ ता॰ वः। ऋ॰। र॰ म्। लृ॰ ॥ १० ॥ लोकंताऽइन्द्रम् इतिप्रतीकः २

न को चाहते॰दित्यं॰धान्य को वहते यद्वा दो वर्ष के पशु०॥१६
गायत्री छन्द हो॰पंचावय(सार्ध द्विवर्ष के)पशु०॥१७॥ उष्णिक्
छन्द हो॰त्रिवत्स(तीनि वर्ष के)पशु०॥१८॥ अनुष्टुप् छन्द हो॰तुर्य
वाह(चारि वर्ष को वहते)पशु०॥१९॥ एवं श्रुत्यनुसारेण व्याख्या
ताः॥ का॰१७॰८॰२४॰ दक्षिण श्रोणि से ले लोकम्पृणा उपधानकरै
पुरीष निर्वाप और सप्तर्च्चोपस्थान पूर्ववत्॥१२॰५४–५६ व्याख्या
ताः॥१०॥ ॥इति द्वितीय चिति मन्त्राः समाप्ताः॥२॥

तृतीयचितिमन्त्राणामिन्द्राग्नीविश्वकर्मावऋषिः

अ॰४ इन्द्राग्नी॰अव्यथमाना मिष्टकां दृंहतं युवम्॥पृष्ठेन
द्यावापृथिवी॰अन्तरिक्षं च विबाधसे॥११॥

का॰१७॰८॰२५॰ तीसरी चिति विषे आत्मा के मध्य में स्वयमातृण्ण
को उपधान करै॥ अनुष्टुप् पूर्वोर्ध्वर्चे इन्द्राग्नि देवत्यः उत्तरः
स्वयमातृण्णा देवतः। हे इन्द्राग्नी तुम अव्यथमाना(अचलन्ती॰
भङ्गरहिता) इष्टका(स्वयमातृण्णा)को दृढी करौ। एवमिन्द्राग्नी
प्रत्युक्त्वा इष्टकामाह। हे स्वयमातृणे अपने उपरि भाग क
रि के द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष को अभिभव करि(लोकत्र
यमत्येषि॥१२॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथ
स्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृंहान्तरिक्षं माहिंसीः॥विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्र
तिष्ठायै चरित्राय॥वायुष्ट्वाभि पातु मह्या स्वस्त्या छ

हविषा शंतं मेनुतया देवतंयाङ्गिरस्वध्रुवासीद ॥१२॥
वायु देवत्यं यजुः स्वयमातृण्णो पधाने एव विनियुक्तम् । हे स्वयमातृण्णे विश्वकर्मा (प्रजापति) अन्तरिक्ष के पृष्ठ (ऊपर) में तुझे स्थापन करे । कैसी तुझे कि अभिव्यक्त युता (विस्तार युक्ता) हे इष्टके तू अन्तरिक्षं यच्छ, गन्धर्वाप्सरो गणादि धारकता नियम करि । अन्तरिक्षं दृंह, परोपद्रवभावेन दृढीकारे । तिस अन्तरिक्ष को हिंसा न करि । किमर्थं कि इन सवों की प्राणापान व्यानोदानाख्य वायु वृत्ति लाभ के अर्थ प्रतिष्ठा (स्वगृहस्थिति) के अर्थ चरित्र (शास्त्रीयाचरण) के अर्थ । प्राणियों का यह सब लोक की दृढता ही में होता है इस हेतु से नभो नियमनादि प्रार्थना किये इति भावः । किंच बडी योगक्षेम सम्पत्त्य अति शुभकारिणी और छर्दि (विशेषतेज) करिकै तुझे वायु सर्वतः रक्षा करे । तेरी अधिष्ठात्री जो देवता तिस देवता से अनुग्रहीता स्थिरा होके बैठ कि जैसे तू अङ्गिराओं के चयनानुष्ठान विषें स्थिति हुई तद्वत् ॥१२॥

राज्ञसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक्सम्राडसि प्रतीची दिक्स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥१३॥ +रा-क॰।अ॰वि-क॰।इ॰।स-क॰।उ॰।स्व-क॰।ऋ॰।अ-क॰।ल॰।१४॥

क॰१७॰८॰२६॰ वैश्वदेवी वत् इति प्रति दिशा रेतःसिग्वेलामें अनूकों के विषें पांच दिश्या संज्ञका इष्टका उपधान करै पांच मी दक्षिणा को उत्तर करिके इति सूत्रार्थः ॥ दिक् शब्दोपेतत्वान्मंत्राणां दिश्या इष्टकाः । दिग्देवत्यानि पंच १॰ या-गा॰२॰३॰ या-अ॰

४·या—उ०५·या—वृ०। हे इष्टके राज्ञी॰ राजमाना सती-पूर्वादिशा गायत्रीरूपा है॥१॥ विराट्॰ विविधराजमाना दक्षि-णादिक् त्रिष्टुब्रूपा है॥२॥ सम्राट्॰ सम्यग्राजमाना प्रतीचीदिक् जगती है॥३॥ स्वराट्॰ परनिरपेक्षं स्वयमेवराजमाना सती उदीचीदिक् अनुष्टुप् है॥४॥ अधिकं पातीति अधिपत्नी बृहती (प्रौढा) ऊर्ध्वादिक् पङ्क्ति है॥५॥ दिक्छन्दोरूपा तिस तुम्हें सादन करता हूं इति सर्वत्र शेषः † ॥१३॥

विश्वकर्मात्वासादयत्वन्तरिक्षस्यपृष्ठेज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायविश्वंज्योतिर्यच्छ।
वायुष्टेधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवासीद॥१४॥

का० १७·८·३· प्रथमोपहिता विश्वज्योति के ऊपर विश्वज्योतिरिष्टका को उपधान करै॥ वायु देवत्यं यजुः। हे इष्टके तुम्हें ज्योतिष्मती (वायुरूपा) को अन्तरिक्ष के पृष्ठ में विश्वकर्मा सादन करै। किंच सर्वप्राणादिलाभायतू सर्व ज्योति दे। वायु तेरा अधिपति शिष्टं १२ कण्डिकावत्॥१४॥

नभश्चनभस्यश्चवार्षिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोसिक
ल्पेतान्द्यावापृथिवीकल्पन्तामापऽओषधयःकल्प
न्तामग्नयःपृथङ्ममज्यैष्ठ्यायसव्रताः॥येऽअग्न
यःसमनसोन्तराद्यावापृथिवीऽइमे॥वार्षिकावृ
तूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिवदेवाऽअभिसंवि-
शन्तुतयादेवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवेसीदतम्॥१५॥

† अन्तरिक्षस्यपृष्ठेह्ययंज्योतिष्मान्वायुरितिशत०८·३·२·३·श्रुतेः।

† छन्दांसिवैदिशोगायत्रीवैप्राचीइत्या० शत०८·३·१·१४·श्रुतेः।

१७.९.४. पूर्वऋतव्याओंके ऊपर दो ऋतव्याएँ उपधानकरै॥ ...तं यजुः। नभः- श्रावण मास। नभस्य- भाद्रपाद। ...ं ...ातं १३.२५। ॥२५॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू ऽअग्ने रन्तः श्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥ ये ऽअग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी ऽइमे॥ शारदावृतू ऽअभिकल्पमाना ऽइन्द्रमिव देवा ऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम्॥२६॥

का॰ १७.९.२५. अपरे ऋतव्याएँ पूर्वाओं के ऊपर रखै॥ ऋतव्यं- यजुः। इषः- आश्विन। ऊर्जः- कार्तिक। शिष्टमुक्तम् १३.२५।॥२६॥

अ॰ ५ आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ॥२७॥+

का॰ १७.९.६. आत्मा के पूर्वभाग में प्राणभृत्संज्ञा दश इष्टका उपधान करै॥ लिङ्गोक्तदेवतानि दश १.२.४.५.६.७.८.१०. दै-पं॰ ३.९. दै-त्रि॰ हे इष्टके मेरी आयुका तू पालन करि १ एवं प्राण २ अपान ३ व्यान ४ चक्षु ५ श्रोत्रका ० ६ वाचाको कामनाओं से पूरि ७ मन की तृप्तिकरि ८ आत्मा(जीव) को पालि ९ मेरे अर्थ तेजदे १०॥२७॥

माछन्दः प्रमाछन्दः प्रतिमाछन्दो ऽअस्रीवयश्छन्दः

+ आ-हि। अ॰। प्रा-हि। इ॰। म-हि। उ॰। व्या-हि। क॰। च-हि। ल॰। श्रो-हि। आ॰। वा-न्वा। ई॰। म-त्वा। ऊ॰। आ-हि। ऋ॰। ज्यो-छ। ॡ॰॥२७॥

पङ्क्तिश्छन्द ऽउष्णिक्छन्दो बृहतीछन्दोनुष्टुप्छन्दोविराट्छन्दो गायत्री छन्द स्त्रिष्टुप्छन्दोजगतीछन्दः पृथिवी छन्दः ॥१८॥†

का॰१७.८.८॰तीनों पक्ष पुछ आत्म संधि विषें द्वादश-द्वादश छन्दस्या संज्ञा इष्टका उपधान करै॥ षट्त्रिर्ठंशद्यजूर्ठंषि लिङ्गोक्त देवत्यानि १.१५.१८.२२.दै–अ॰२.५.६.८.११.१६.१९.२०.२३.२४.दै–बृ॰३.७.८.१०.१२.१३.२१.२५.२६.२७.३०.३५.दै–पं॰४.१४.१७.२८.२९.३१.३२.३६.दै–त्रि॰३३.३४.दै–ज॰।मीयत-ऽइति मा(मितः) छादनात् छन्दः हे इष्टके तू तिस रूपा है†॥इस लोक सै प्रमीयत ऽइति प्रमा(अन्तरिक्ष लोक रूपा है॥प्रतिमा (द्यौः) वोह ही अन्तरिक्ष विषें प्रतिमिता॥ अस्त्री(पतन शील) वय (अन्न) जिस से वोह लोक त्रय रूप छन्द तद्रूपा है॥ इतः स्पष्टान्येव छन्दांसि पङ्क्त्यादीन्यष्टौ- हे इष्टके तू पङ्क्ति-उष्णिक्-बृहती-इत्यादि छन्द रूपा है॥१८॥

पृथिवी छन्दोन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक्छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोजाछन्दो श्वश्छन्दः॥१९॥+

पृथिव्यादि देवत्यानि यानि छन्दांसि तद्रूपासि। समाः- संवत्सराः। स्पष्टमन्यत् ‡॥१९॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता दित्या देवता मरुतो देवता

† अयं वै लोको मा इत्यादि॰ शत॰ ८.३.३.५ श्रुतेः।

‡ पाल्येतादि त्याग॰ श॰ ८.३.३.६

+मा-न्द्ः।अ॰।प्र-न्द्ः।इ॰।उ॰।प-न्द्ः।लृ॰।उ-न्द्ः।आ॰।बृ-न्द्ः।अ॰।वि-न्द्ः।ॠ॰।गा-न्द्ः।लॄ॰।त्रि-न्द्ः।क॰।ज-न्द्ः।च॰॥१८॥

+अ॰।इ॰।उ॰।ऋ॰।लृ॰।आ॰।ई॰।ऊ॰।ॠ॰।लॄ॰।क॰।च।स्पष्टानि॥१९॥

विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥२०॥+

हे इष्टके तू अग्न्यादि देवता रूपा है तिसे उपधान करता हूं इतिस
म शेषः। अग्न्यादीनां देवतात्वं प्रसिद्धम्॥२०॥+

मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी॥ आयुषे त्वा वर्च
से त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा॥२१॥

का॰१७॰५॰११–१४॰ प्रागुक्त दशप्राणभृतों से पूर्वा वा अपरा सात-
७ वालखिल्यासंज्ञा इष्टका उपधान करै मूर्धासीत्यादि सात ७ मं
त्रों से॥ और अपरा सात ७ वालखिल्या भी बारह १२ छन्दस्याओं
से अपरा यन्त्रीति सात ७ मन्त्रों से उपधान करिये हैं। वाल मात्रेण
पिखिला (अपभिन्ना) इतिवालखिल्या प्राणाः और ते सप्त ७ पुरः
हस्तौ २ बाहू २ शिरः १ ग्रीवा १ नाभि से ऊपर का भाग १ इति और
ऊरू २ जानुनी २ पादौ २ नाभि से नीचे का भाग १ इति सप्त ७
पश्चात् (अधोभागे) इन अङ्गों में प्राणों के विद्यमान होने से ति
न्हे उपधान करते हैं + इतिसूत्रार्थः॥ मूर्धासि अनुष्टुप् यन्त्रीप
रोष्णिक्। ऋग्द्वये चतुर्दश यजूंषि वालखिल्यादेवत्यानि
हे इष्टके तू मूर्धा (मूर्धवत् उत्तमा) और राट् (राजमाना) है १ हे
इष्टके तू स्थिरा और धारण हेतु है २ हे इ॰ धारण करती और
भूमि रूपा है ३ एवं इष्टका त्रयस्य त्रिलोक रूपत्वं श्रुत्या उक्त
म् +। आयुषे त्वा॰ आयु की वृद्धि के अर्थ तुझे उपधान कर
ता हूं ४ कान्ति के अर्थ तुझे उप॰ ५ सस्य निष्पत्ति के अर्थ॰ ६
संपादित धन की रक्षा के अर्थ॰ ७ इष्टका चतुष्टयस्य पशु

+ तथाच श्रुतिः ८.२.४. ग्रामाय वै ... इत्यादि श्रुतिः॥

+ मूर्धासि राडितीमंलोकं ... ८.३.४.३

+ अ॰—च॰ स्वरूढनि॥२०॥

संस्तवः॥२१॥

यन्त्री राड्यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री॥ इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा लोकन्ता इन्द्रम्॥२२॥†

हे इ० तू नियमोपेता और राजमाना है १ तथा यन्त्री होने से स्वयमपि सर्वों की नियम कारिणी है २ स्थिरा सती और भूमि रूपा है ३ तिसृणां त्रिलोक संस्तवः †। हे इ० अन्न के अर्थ० ४ बल के अर्थ ५ धन के अर्थ० ६ धन पुष्टि के अर्थ० ७ चतसृणां पशु संस्तवः॥ का० १७.५.१५. उत्तर श्रोणि से लेकर प्रथम चिति वत् यहां भी लोकम्पृणा उपधान करै। फिरि पुरीष निर्वाप उपस्थान है॥१२॥ ५४-५६. व्याख्याता॥२२॥ इति तृतीयाचितिः॥ ३ ॥

चतुर्थीचिति मन्त्राणांऋषय एवर्षयः

अ० ६ आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविꣳशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्तः सविꣳशो वर्चो द्वाविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशो गर्भाः पञ्चविꣳश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः॥२३॥+

का० १७.१०.६. पूर्वानुकान्त विहत दक्षिणा उत्तराओं के मध्य में उत्तरा जङ्घामात्री को उदङ्मुख उपधान करै॥ अस्यां कण्डिकायां अष्टादश यजूꣳषि चतुर्णां मृत्युमो हिन्युपधाने

+य-त्वा। अ०। लो-न्। इ०। ता-वः। उ०। इ-म्। ऋ०॥२२॥ लोकंताइन्द्रम् प्रतीक ३
† आ-त्। अ०। भा-प्राः। इ०। व्यो-प्राः। उ०। ध-प्राः। ऋ०। प्र-प्राः। ल०। त-प्राः। आ०। अ-प्राः। ई०। व-प्राः। ऊ०। स-प्राः। ऋ०। यो-प्राः। लृ०। ग-प्राः। क०। ओ-दः। च०। क्र-प्राः। ट०। प्र-प्राः। त०। ब्र-प्राः। प०। ना-प्राः। ख०। वि-प्राः। ह०। ध-मः। ठ०॥२३॥

[illegible]योगः॰ प्रत्तूर्वरिंत्यादीनां चतुर्दशार्धपद्योपधानेविनियोगः॥

[illegible]॰२॰३॰६॰१०॰११॰१३॰१८॰ दे॰ त्रि॰४॰५॰७॰१४॰ दे॰ ज॰८॰१२॰१६॰दे॰

[illegible]१७॰या॰ अ॰१५॰या॰ पं॰ हे इष्ट के तू त्रिवृत्स्तोमरूपाहै†। कैसीत्रि

[illegible] कि आस्तुः सब स्तोमों को व्याप्त। तद्रूपांत्वामुपदधामीति सर्वे

[illegible]ष:†। यद्वा आस्तुः॰ वायु॰ त्रिवृत्॰ तीनों लोकों विषें वर्तै है॰

[illegible]भूतव्यापकत्वादास्तुर्वायुस्तद्रूपासि। एवं श्रुत्यनुसारेण स

[illegible] व्याख्यायते‡॥१॥ का॰१७॰१०॰८॰ दक्षिणानूकान्तविहि

ता दक्षिण उत्तरा पद्याओं के मध्यमें भान्त इस मन्त्र करि दक्षि

णपद्याको प्रत्यङ्मुख उपधान करै॥ भान्तः॰ वज्ररूपजोपंच

दशस्तोम वा भान्तः (चन्द्रः पन्द्रह दिनों में पूर्ण और पन्द्रहही दि

नों में क्षीणहोने से भा) कान्ति अन्त) स्वरूप जिस्का) तद्रूपाहै॥२

का॰१७॰१०॰९॰ उत्तरानूकान्त विहिता दक्षिणोत्तर पद्याओं के

मध्यमें दक्षिणपद्याको व्योमेति प्रत्यङ्मुख उपधान करै॥ वि-

विध रक्षा करताहै प्रजापतिः सप्तदशः स्तोमः। अथवा संवत्सर

व्योमा सप्तदशः द्वादश मासाः पञ्च ऋतु रूप सप्त दशावयव

त्वात् तद्रूपासि॥३॥ का॰१७॰१०॰७॰ अपरानूकान्त विहिता द

क्षिणउत्तराओं के मध्यमें दक्षिण जङ्घामात्री को धरुणइति

दक्षिण मुख उपधान करै॥ धरुणः धारकः प्रतिष्ठाभूत एकविं

शः स्तोम अथवा धरुण एकविंश अवयव होने के कारण आ

दित्य द्वादश मास पंच ऋतुएं तीनि लोक आदित्य इत्यवयवात्

द्रू॰॥४॥ का॰१७॰१०॰१०॰ चारोंका उपाधान करिके चतुर्दश

† स्तोमानुपदधातीत्यादिश्रुत॰८॰४॰१॰२॰ श्रुतेः॥

‡ सपुरस्तादुपदधात्याग्नेवहितीत्याविप्रात॰८॰४॰१॰७॰२६॰ श्रुतिषुदर्शनीयः॥

धं पद्या उदङ्मुख उपधानकरैप्रतूर्त्तिरित्यादिचौदह मन्त्रोंसे॥अ
तः परं संवत्सर रूपाण्युपदधाति।प्रकृष्टा तूर्त्तिः(त्वरा)जिसकीवो
ह अष्टादशस्तोम यद्वा संवत्सर प्रतूर्त्तिरष्टादशावयवः द्वादश
मास पञ्च ऋतुएँ और संवत्सर तद्रूपा॥५॥ तपोरूपनवदशस्तो
मः यद्वासंवत्सरस्तपः शीतोष्ण वर्षा करि तपाताहै वोहनवदशः
द्वादशमहीनेछैऋतुएँ संवत्सरतद्रू॥६॥अभिवर्त्यंते आवर्त्यंतऽइत्य
भीवर्त्तः समावृत्तिरूप सो विंशस्तोमः यद्वा अभिवर्त्तयत्यावर्त्त
यति सब भूतों को इति संवत्सरः बारह महीने सात ऋतुएँ संव
त्सर रूप विंशति संख्या सहित स्तद्रू॥७॥ वर्चः विशेषबलकारे
नेवाला द्वाविंशस्तोमः यद्वा संवत्सर वर्चस्वितमः द्वादशमहीने
सप्त ऋतुएँ दो अहोरात्र और संवत्सर स्तद्रू॥८॥ सम्भिभर्त्तिसम्य
क् पोष करनेवाला त्रयोविंशस्तोमः यद्वा संभरति(उत्पन्नकर
ता) वासंहरति(विनाशकरता)सम्भरणः संवत्सरः त्रयोदश
महीनेसप्त ऋतुएँ द्वे अहोरात्रे और संवत्सर स्तद्रू॥९॥योनिःभ
जोत्पादक चतुर्विंशस्तोमहै यद्वा योनिः सर्वस्थानभूत संवत्सरः
चतुर्विंशपक्षात्मक स्तद्रू॥१०॥ गर्भाः सामगर्भः पञ्चविंश
स्तोमोऽसि यद्वा गर्भः संवत्सरः भूतोत्पादकत्वात् चतुर्विंशतिः
पक्षाः एकः संवत्सर इति अथवा अधिक मासहोके ऋतुओं
में गर्भ होताहै तद्रू॥११॥ ओजः ओजस्वी तेजस्वी वा व
ज्रः तद्रूपः त्रिणवः स्तोमहै यद्वा ओजः संवत्सरः चतुर्वि
शतिपक्षाः अहोरात्र संवत्सरात्मकत्वात् त्रिणवः तीनिगु

॰ २७ तद्रू॰॥२२॥ क्रतुः(यज्ञोपयोगी एकत्रिंशस्तोमोऽसि यद्वा संवत्सर एव करोतीति क्रतुः पक्ष२४ ऋतु ६ संवत्सरात्मकत्वात् १ त्रिंशस्तद्रू॰॥२३॥ प्रतिष्ठा(स्थितिहेतुः)त्रयस्त्रिंशः स्तोमोऽसि य संवत्सरः प्रतिष्ठा-संवत्सरविषें सबके प्रतिष्ठतत्वसे पक्ष २४ ऋतु ६ अहोरात्र २ संवत्सर १ तद्रू॰॥२४॥ ब्रध्नः(सूर्य)विष्टपं(नि वासस्थान) ब्रध्नस्य विष्टपं-स्वाराज्य स्वतन्त्रत्व तद्रूप तत्प्रदजो चतुस्त्रिंशस्तोम तद्रूपासि यद्वा संवत्सर ब्रध्नस्य विष्टपं रविकरि के कालनिर्माणत्वसे २४ पक्ष ७ ऋतु २ अहोराज १ संवत्सरतद्रू॰ ॥२५॥ नाकः(स्वर्गका देनेवाला) षट्त्रिंशः स्तोमोऽसि संवत्सरोवानाकः काम्यतइति कं(सुख)न(नहींहै)कं(सुख-अर्थात् दुःख जहां वोह नाकः षट्त्रिंश २४ पक्ष १२ महीने तद्रू॰॥२६॥ विवर्त्यन्ते-आवर्त्यन्ते सामानि जहां इति विवर्तः अष्टाचत्वारिंशस्तोमः तद्रूपासि यद्वा विविधं वर्तन्ते भूतानि जहां इति संवत्सरः अधिकमासत्वेन पक्ष २६ ऋतु ७ मास १३ अहोरात्र २तद्रू॰॥२७ धर्त्रं(धारक) चतुरुत्तरस्तोमः-चतुष्टोम-त्रिवृत् पञ्चदश सप्तदश एकविंश स्तोमों का समूह तद्रूपासि। अथवा जगदाधारत्व चारों दिशाओंकरि स्तूयमानत्वसे वायु चतुष्टोमहै॥२८॥ आदावन्ते च वायुप्रधानेन वायुना सर्वभूतानि वशीकरोतीति भावः॥ एते दृष्टा दृष्टा मन्त्रैः स्तोमवादिभिः स्तोमरूपत्वंनीता अष्टा दशेष्टका उपधेया इत्यर्थः॥२३॥

अ॰७ अग्नेर्भागोसि दीक्षायाः आधिपत्यं ब्रह्मस्पृतंत्रि॰

स्तोम इन्द्रस्य भागोसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्पृतं पञ्च दशस्तोमो नृचक्षसां भागोसि धातुराधिपत्यं जनित्रं स्पृतं सप्तदशस्तोमो मित्रस्य भागोसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृत एकविंशस्तोमो वसूनां भागः ॥२४॥+

का॰ १७.१०.११ पूर्वोक्त कान्त विषें विहिता जंघामात्रीओं के मध्य में दक्षिण को उदङ्मुख उपधान करें उत्तरा पूर्वमुपहिता दश यजूंषि चतुर्भिर्मृत्युमोहिन्युपधानं षड्भिः षट्पद्योपधानं १॰सा-पं॰२॰सा-त्रि॰३॰५॰६॰सा-ज॰४॰आर्षी त्रि॰७ आर्षीउ॰८ आर्षीपं॰९॰१०॰ यजुषि॰ दशेष्टकाः स्पृत्संज्ञाश्च तत्रार्थवादः मृत्युक्तः। उत्पन्न करिकै सृष्टि की आदि में प्रजापति ने सब भूत सृजने को गर्भ में किये तिन गर्भस्थित भूतों का पाप्मा मृत्यु ग्रहण करता हुआ ततः प्रजापति ने देवताओं से कहा कि तुम करिके सहित में इन भूतों का पाप रूपी मृत्यु से मोचन कराता हूं इति देवता बोले कि तहां हम लोकों का क्या लाभ है प्रजापति ने कहा कि मांगो तिन्हों में से किसी ने कहा कि हमारा भाग हो और किसी ने कहा कि हमारा आधिपत्य हो इति ऐसा ही होय इह कहि कर किसी के अर्थ भाग किसी के अर्थ आधिपत्य दे कर तिन्हों के साथ भूत लोक मृत्यु से छुडाए तिस हेतु स्पृत इष्टका है इति + ॥ अथ मंत्रार्थः ॥ हे इष्टके जो तू अग्नि का भाग (विभाग) है और जिस तुझ विषें दीक्षा (वाचा) का आधिपत्य-

+ तथाच श॰ श्रुतिः ८.४.२.१.२ [illegible] यस्य तं उपधानीयाः

+ अ-मः। अ॰। इ-न्द्र-मः। उ॰। मि-मः। ऋ॰ ॥२४॥

(स्वामित्व) और जिस (तुम्) त्रिवृत्स्तोम करिके ब्रह्म (ब्राह्मण) को स्पृतं पापी मृत्यु से छुड़ाया-रक्षा किया वा तुम् विषें त्रिवृत्स्तोम है तिस तुम्हें उपधान करता हूं † ॥१॥ का॰ १७॰१०॰१४॰ उदक्रम नूकान्त विहिता दक्षिणोत्तरा पद्याओं के मध्य में उत्तरा को आधान करै दक्षिणा तू पहिता इति॥ हे इष्टके तू इन्द्र का भाग है-तुम् विषें विष्णु का आधिपत्य पंच दश स्तोम करिके क्षत्रजाति छुड़ाई॥ २॥ का॰ १७॰१०॰१३॰ दक्षिणानूकान्त विहिता दक्षिणा उत्तरा पद्याओं के मध्य में उत्तरा को उपधान करै दक्षिणो पहिता॥ हे इष्टके तू शुभा शुभ करने वाले मनुष्यों को जानते देवता तिन्हों का भाग है तुम् विषें धातु का आधिपत्य तुम् सप्त दश स्तोम करिकै जनित्र (वैश्यजाति) स्पृतम्॥३॥ का॰ १७॰१०॰१२ अपरा नूकान्त विहिता दक्षिणोत्तरा जंघामात्री ओं के मध्यमें उत्तरा जघा मात्री को दक्षिणमुख उपधान करै दक्षिणा नू पहितेति॥ हे इष्टके तू मित्र (प्राण) का भाग है तुम् विषें वरुण (अपान) का आधिपत्य तुम् एक विंश स्तोम करिके दिवः संबंधिनी वृष्टि और वात स्पृतम्॥२४॥

† यावीती त्वेत्यादि
शत॰ ८॰३॰२॰८
द्रष्टव्य

वसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं चतुर्विंश स्तोम॰ आदित्यानां भागोसि मरुतामाधिपत्यं गर्भास्पृताः पञ्चविंश स्तोमो दित्यै भागोसि पूष्ण॰ आधिपत्य मोजस्पृतं त्रिणव स्तोमो देवस्य सवितु र्भागोसि वृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिशस्पृताश्चतु

ष्टो मस्तोमोयवोना भाग:॥२५॥†

का॰१७.१०.१५.चतुर्दशओं से अपरा षट् मन्त्रों से षट् पद्या उप[illegible]
न करै॥ हे इष्टके तू वसूओं का भाग है तुम्में रुद्रों का आधिपत्य [illegible]
रु चतुर्विंशस्तोम करिके प्रजा के चतुष्पात् (गवाश्वादिक) पशु
स्पृतम्॥५॥ हे इ॰ तू आदित्यों का॰ तुम्विषें मरुतों का॰ तुम्रूप[illegible]
विंश स्तोम॰ प्रजा के गर्भ मृत्यु से रक्षा किये॥६॥ हे इ॰ तू अदिति [illegible]
थिवी) का॰ तुम्विषें पूषा का॰ तुम्रू त्रिणव स्तोम॰ प्रजा का ओ[illegible]
(बल वा आरवांधातु) स्पृतम्॥७॥ हे इ॰ तू सविता देवता का॰ [illegible]
म्विषें बृहस्पति का॰ तुम्रू चतुष्टोम॰ समीची भले प्रकार अ[illegible]
करते हैं जन जिन्हों में दिशाएँ स्पृतम्॥८॥२५॥

यवानांभागोस्ययवानामाधिपत्यं प्रजास्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳशस्तोमः ऋभूणां भागोसि विश्वेषां देवनामाधिपत्यंभूतꣳस्पृतं त्रयस्त्रिꣳशस्तोमःसहश्च॥२६॥‡

हे इ॰ तू यवों (पूर्वपक्षों) का॰ अयवों (अपर पक्षों) का॰ तुम्रू॰ तुम्रू
चतुश्चत्वारिंश स्तोम॰ प्रजा स्पृता:॥९॥ ऋतुओं देव विशेषों
का तू भाग है तुम्विषें विश्वे सब देवताओं का आधिपत्य तुम्रू
त्रयस्त्रिंश स्तोम करिके प्राणिमात्र पाप्मा मृत्यु से रक्षा किये
तथा यजमानोऽपि सर्वभूत मृत्यु से छुडाता रक्षा करता है॥१०॥

सहश्चसहस्यश्च हैमन्तिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥ येऽअग्नयः स

† व-म:।अ०।आ-म:।दृ०।अ-म:।उ०।ई-म:।ऋ०॥२५॥
‡ य-म:।अ०।ऋ-म:।दृ०॥२६॥

मंनसोन्तराद्यावांपृथिवीऽइमे॥हैमन्तिकावृतूऽअभिक
ल्पमानाऽइन्द्रमिवदेवाऽअभिसम्विंशन्तुतयांदेवतया
ङ्गिरस्वद्ध्रुवेसीदतम्॥२७॥

का०१७·१०·१६·अनूकमभितः द्वे पद्ये उपधान करै॥ऋतुदेवत्यं
यजुः।सहः(मार्गशीर्ष) सहस्यः(पौष)ये हेमन्त ऋतु के अवयव॥शि
ष्टं पूर्वतुल्यम् १३·२५·॥२७॥

अ०८ एकयास्तुवतप्रजापतिरधिपतिरासीत्तिस्रभिरस्तुवतब्रह्मा
सृज्यतब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्पञ्चभिरस्तुवतभूता
न्यसृज्यन्तभूतानांपतिरधिपतिरासीत्सप्तभिरस्तुवत
सप्तऽऋषयोसृज्यन्तधाताधिपतिरासीन्नवभिरस्तुवत॥ २८॥+

का० १७·१०·१७·सब दिशाओं विषें रेतः सिग्वेला में सृष्टि संज्ञा सप्तद
श इष्टका उपधान करै तिन्हों के मध्य भाग नूक को दक्षिण करिके
अष्ट इति॥सप्तदशाप्यजूंषि सृष्टीष्टका देवत्यानि १·४·सा–त्रि०२·१०·
११·१२·१५·१६·१७·यजूंषि ३·६·७·१३·सा–ज०५·सा–पं०८ आर्षीउ०
९·आर्षीवृ०१४ आर्षीज०।अत्रनिदानम्·एवं प्रजापति भूतों को मृ
त्यु से छुड़ाके प्रजा सृजूँ यह विचार करि प्राणाधिष्टात दिगादिक देव-
ताओं से बोला कि तुम्हारे साथ हो परमात्मा को स्तुति करि प्रजा उत्प
न्न करताहूँ देवता बोले कि किस करिके वोह बोला कि मुझ और तुम-
करि तथा यह कहिकर प्राण और प्रजापति करिकै स्तुत की +॥प्रजा
पति ने एकया वाचा करि आत्मा को स्तुति किया ≠ प्रजा अधीयन्त-
प्रजापत्यर्थमस्याप्यन्तेतिवा।सृजी हुई प्रजा का प्रजापति ही अधिप

+ तथा ब्राह्मणं० ८·४·३·१९· तदिदं प्रजापतिः मिलित्वा० स्तुतिः

≠ वाग्वाएकावाचैवतदस्तुवतेत्यादिश०८·४·३·२–१४ सप्तदशश्रुतिषु स्पष्टमर्थम्

+ ए–त्।अभि–त्।द्रू०।प–त्।उव्स–त्।ऋ०॥२८

तिहुआ॥१॥ एवं षोडशमंत्राव्याख्येयाः॥तिसृभिः-प्राण उदान व्यान सें स्तुति की ब्राह्मणजाति सृजी ब्रह्मणस्पति ब्राह्मणजातिका अधिपति हुआ॥२॥पञ्चभिः-पञ्च प्राणोंसें स्तुति की पंच भूत सृजे भूतोंका पति देवता तिन्हों का स्वामी हुआ॥३॥सप्तभिः-श्रोत्र२चक्षु२नासा२ वाग्रूप १सप्तशीर्षण्य प्राणोंसे स्तुति किया ततः सप्त ऋषि सृजे धाता जगत्स्रष्टाद्यो देवः स्वामी हुआ॥४॥२८॥

नवभिरस्तुवत पितरोसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीदेकादशभिरस्तुवतऽऋतवोसृज्यन्तार्त्तवाऽअधिपतयऽआसंस्त्रयोदशभिरस्तुवत मासाऽअसृज्यन्त संवत्सरोधिपतिरासीत्पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यन्तेन्द्रोधिपतिरासीत्सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीन्नवदशभिरस्तुवत॥२९॥ +

नवभिः सप्त शिरके प्राण दो नीचे के (लिङ्ग गुदा छिद्र) इन ९ प्राणोंसे प्रजापति ने स्तुति की ततः अग्निस्वात्तादि पितर सृजे अदिति (अखंडिता प्रजापतिशक्ति) पितरोंकी पालन करने वाली हुई॥५॥एकादशभिः- दशप्राणों एकादश मे आत्मा सें स्तुति की वसन्तादि षट् ऋतुएं सृजीं आर्तवाः- ऋतुओं के पालक देवविशेष स्वामी हुए॥६॥त्रयोदशभिः-दशप्राण दो पाद एक आत्मा सें स्तुति की ततः चैत्रादिमास सृजे मासाभिमानी अयनद्वयात्मक संवत्सर तिन्हों का अधिपति हुआ॥७॥पञ्चदशभिः- दशहस्ताङ्गुलयः दो कर दो बाहू नाभिसे ऊपर का भाग तिन्हेंसेस्तुतिकी ततः क्षत्रियजाति सृजी इन्द्र ऐ-

श्वर्यशाली तदभिमानी भूतस्वामी हुआ ॥ ८ ॥ सप्तदशभिः-दशपा दाङ्गुलीएँ दोऊरू दोजानू दोपाद नाभिसे नाभिसे नीचेका भागतिन्हों से स्तुति करी तब गवादिक पशु सृजे तिन्होंका बृहस्पति स्वामी हुआ ॥ ९ ॥ २९ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे ऽ अधिपत्नीऽआस्तामेकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्राऽआदित्याऽअनुव्यायँस्तऽएवाधिपतयऽआसन्नवविंशत्यास्तुवत ॥ ३० ॥ †

नवदशभिः-दशहस्ताङ्गुलीएँ ऊर्ध्व अधः छिद्ररूप नव प्राणः तिन्हों से स्तुतिकीनी फिरि शूद्र आर्य (वैश्य) सृजे अहोरात्र तिन्होंके स्वामी हुए ॥ १० ॥ एकविंशत्याः-विंशति करपादाङ्गुलीएँ और आत्मा इक्कीसवें से स्तुति की ततः एकशफा (खुरके) पशु सृजे वरुण तिन्हों का अधिपति हुआ ॥ ११ ॥ त्रयोविंशत्याः-विंशति करपादाङ्गुलयः दो पाद और आत्मा तिन्हों से स्तुति की क्षुद्र अजादिक पशु सृजे तिन्होंका पूषा स्वामी हुआ ॥ १२ ॥ पंचविंशत्याः-वीस करपाद की अंगुलिएँ दोकर दो पाद पच्चीसवां आत्मा तिन्हों से स्तुति की तब आरण्य पशु कृष्ण मृगादिक सृसे वायु तिन्होका स्वामी हुआ ॥ १३ ॥ सप्तविंशत्याः विंश करपादाङ्गुलयः दोपाद दोभुजा दोऊरू और आत्मा तिन्हों से स्तुति की ततः द्युलोक भूलोक व्यैतां अर्थात् विशेषेणआ

† श॰ ८ । ४ । ३ । २० ॥

गच्छताम् अष्टवसु एकादशरुद्र द्वादशादित्य तिन्हों में अनुगतस्वामी हुए ॥२४॥ ३०॥

नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयोसृज्यन्त सोमोधिपतिरासीदेकत्रिंशतास्तुवत प्रजाऽअसृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतयऽआसँस्त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासील्लोकान्ताऽइन्द्रम् ॥३१॥†

इतिश्री संहितायामष्टमोऽनुवाकः ८

इतिश्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

नवविंशत्याः—करपादाङ्गुलयः नवछिद्ररूपाः प्राणाः तिन्हों से स्तुति की ततः वनस्पतीएँ अश्वत्थ वटादिक सृजी तिन्होंका सोमस्वामी हुआ ॥१५॥ एकत्रिंशता—करपादाङ्गुलयः दशेन्द्रियाणि इकवीसवां आत्मा तिन्हों से स्तुति की ततः प्रजासृजी यवाः (पूर्वपक्षाः) अयवाः (अपरपक्षाः) तिन्हों के स्वामी हुए ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशता—अङ्गुलियें बीस इन्द्रियें दश पाद दो आत्मा तेती सवां तिन्हों से प्रजापति ने देवताओंसहितस्तुतिकी ततः सब प्राणी सुखी हुए। परमेष्ठी सत्यलोकमें रहनेवाला प्रजापति प्रजाका पालक सबभूतोंका अधिपति स्वामी हुआ ॥१७॥ यहां जो-जो इष्टका जिस-जिस मंत्र करि उपधान करियेहै सो-सो तिस-तिस मन्त्रोक्त देवतारूप करि ध्यातव्यहै इत्यर्थः ॥का०१७।१०।१८। उत्तरांस सैं ले प्रथम चितिवत् लोकम्पृणा उपधानकरै इतिसूत्रार्थः ॥ततः पुरीष

†न-त।अ०।ए-स।इ०।त्र-त।ज०।ली-नू।अ०।ता-वः।लृ०।इ-मू।आ०॥३१॥लोकंता इन्द्रम्० इतिप्रतीकः ४

निर्वपन और सप्तर्चोप स्थानजाननानिन मंत्रों की प्रतीकें लोकं पृण० ताअ
स्य० इन्द्रंविश्वा० इति ते तीनों व्याख्या की गई अध्याय १२ कण्डी ५४
५६ ॥३१॥ इतिचतुर्थीचितिपूर्णा:

इति श्री गिरिधरभाष्येऽष्टमोऽनुवाक: ८

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वा
मित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मज रौकिमण्येयनृपति गिरि
प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये द्वितीय तृतीय चतुर्थ
चितिमन्त्र निरूपणंचतुर्दशोऽध्याय: ॥१४॥

हरि: ओम्

ॐनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपंच साधनैर्वहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्म रूप परं स्तुम: १

अथपञ्चमीचितिस्तन्मन्त्राणांपरमेष्ठीऋषि:

अ०१ अग्ने जातान्प्रणुदा न: सपत्नान्प्रत्यजातान्नुद जातवेद: ॥ अ
धि नो ब्रूहि सुमना ऽअहेडँस्तव स्याम शर्म्मंस्त्रिवरूथ ऽउद्भौ ॥१॥

ॐनमोयाज्ञवल्क्याय।

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थप्रदीपके।
अस्मिन्पञ्चदशाध्याये वर्ण्यतेपंचमीचिति:

चतुर्दशे अध्याय विषें दूसरी तीसरी चौथी चिति के मन्त्र कहिकर
पञ्चदशे में पञ्चमी चिति में आश्विनीवत् असपत्ना संज्ञा इष्ट
का अन्तों में उपधान करै अग्नेजातान्० सहसाजातान्० षोड

शी स्तोम· चतुश्चत्वारिंशस्तोम· अग्नेः पुरीषम्· इनपांच मन्त्रोंसे प्र त्येक को इति सूत्रार्थः ॥ द्वे अग्नि देवत्ये त्रिष्टुभौ। हे अग्ने पूर्वउत्पन्न हमारे शत्रुओं को तू प्रकर्षेण नाशकरि। किंच हेजात प्रज्ञान अजात- शत्रुओंको निबर्त (उत्पत्तिप्रतिबन्ध) करि। किंच शोभन मनहोके हमें अधिवद (उपदेशकरि) यज्ञ संबंधिनी कर्त्तव्यता को इतिशेषः। किंच- हे अग्ने तुम संबंधि त्रिवरूथ (वरूथ-गृह तीनि बरूथों का समाहार अ र्थात् यज्ञके सद· हविर्धान· आग्नीध्र रूप) विषें हम सदा यज्ञोंको करें। कैसे त्रिवरूथमें कि सुखका आश्रय। तथा उद्भी, द्विपद चतुष्पद धनधा न्यादिकोंसे समृध्यत ॥ अनेन मन्त्रेण पुरस्तादिष्टकामुपदधाति ॥१॥

सहसा जातान्प्रणुदा नः सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व॥ अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयथंस्याम प्रणुदा नः सप त्नान् ॥२॥

अथ पश्चादुपदधाति ॥ बलकरिके उत्पन्न हुए हमारे शत्रुओं को नाश करि। हेजातवेद उत्पत्स्यमानों कोभी नाशकरि। किंच हमारे विषें शुभ चित्त होके हम को शत्रुओं के अर्थ अधिक कहि। हमभी तेरे प्रसादसे अधिक होंवें। हमारे शत्रुओं को नाशकरि- पुनरुक्तिरादरार्था ॥२॥

षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो द्रविणम् ॥ अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः ॥ स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्र विणायजस्व ॥३॥

अथ दक्षिणतः। आसु- पं· इष्टका देवत्यम्। पञ्चदशाकलपक्ष का

भर्त्ता जो आदित्यरूप स्तोम वा षोडशावृत्त्युपेतः जो स्तोम और जो ओज(बल) रूप द्रविण(धन) है इष्टके तू तिस उभय रूप है तिस तुझे उपधान करता हूँ॥ अर्थान्तरतः। आसु-अ० इष्टका देवत्यम्। चतुश्चत्वारिंशात् आवृत्त्या सम्पन्न जो स्तोम वा त्रिष्टुप् रूप और जिसका बलरूप धन तदुभयरूपां त्वामुपदधामि॥ अथमध्येपञ्चमी। त्रिष्टुप्। प्साभक्षणे भप्साति भक्षयति विनाशयतीत्यप्सः रक्षकनामा जो अग्नि तिस चन्द्ररूप पञ्चदश कल की पूरयित्री है हे इष्टके जो तू तिस तुझे विश्वेदेवा स्तुति करें स्तोम और पृष्ठों से युता और होष्यमाण घृत युता सती सो तू इस चतुर्थी चिति विषे उपवेशन करि हमारे विषे पुत्र युक्त धन को दे॥३॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दऽआच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिंधुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरंछन्दः ककुप्छन्दः काव्यं छन्दोऽअङ्कुपं छन्दोक्षरपंक्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरो भ्रजश्छन्दऽआच्छच्छन्दः॥४॥+

का०१७.११.५. प्रति दिशा दश-दश विराट् संज्ञा इष्टका उपधान करै ते चत्वारिंशात् पद्या एवेति सूत्रार्थः॥ चत्वारिंशद्यजूंषि लिङ्गोक्तानि इष्टका देवत्यानि छन्दांसि तु चतुरक्षरं दै-बृ०२०। पञ्चाक्षरं दै-पं०१४. षडक्षरं दै-त्रि०४. सप्ताक्षरं दै-ज०२। एति गच्छति चलता है सर्वजन्तु समूह इस में इति एवः पृथिवीलोकः स एव छन्द रूप करि स्थितत्व वा छादकत्व से छन्द है हे इष्टके तिस तुझे उप

+ एवश्छन्दः। अ० वरिवश्छन्दः। दृ० उ० त्र०-ठ०। सप्तानि॥४॥

धान करताहूँ। एवं उत्तर मन्त्रों में व्याख्या श्रुत्युक्ता जाननी चाहि-
ये +॥१॥ वरिवः- प्रभा मण्डल करि आव्रियते- अन्तरिक्षलोक
तदेवच्छन्दः॥२॥ शम्भुः- शं सुखं भवत्यस्मात्- द्युलोकः॥३॥ परि
तो भवति- व्याप्य वर्त्ते है परिभू दिशा॥४॥ आछत् आच्छादन क
रता है अपने रस करिके सब शरीर को अन्न तद्रूपा०॥५॥ मनः- प्रथ
म सृष्ट प्रजापत्यात्मक जो मन तदेवच्छन्दः तद्रूपासि॥६॥ व्यचः व्याप्त
है सब जगतको आदित्य तद्रू०॥७॥ सिन्धुः नाडियों करि शरीरको व्या
प्त है प्राणवायुः तद्रू०॥८॥ समुद्रः समुद्रवन्त्यस्माद्धि कल्प समूहाः इ
ति समुद्रं मनः त०॥९॥ सरिरः- सरति वदन गह्वर से निकलती वाक्
त०॥१०॥ ककुप्- कं सुखको शरीर विषें धारण करता वा कोप करता प्र
काश करता- प्राण त०॥११॥ त्रिककुप् त्रेधा पान किये उदक को स्तंभ
न करता उदान त०॥१२॥ काव्यं कवि- परमात्मा- का यह काव्य वेद
त्रयी रूप शब्द त०॥१३॥ अङ्कुपम् कुटिल गति करिके प्राप्त होता ज
ल त०॥१४॥ अक्षरपङ्क्तिः- नक्षरतीत्यक्षरा नाश रहिता पङ्क्ति (अव
लि) जिसकी वोह द्यौः त०॥१५॥ पदपङ्क्तिः चरणन्यासों की पङ्क्ति
जिसमें वोह भूलोकः त०॥१६॥ विष्टारपङ्क्तिः विस्तारित- प्रसारित
हैं वस्तुओं की पङ्क्ति जिसमें वोह दिशा त०॥१७॥ क्षुरः विलेखन खनन
योः- क्षुरति- विलिखति- व्याप्त है सबको क्षुरः तीव्र- भ्रजते दीप्त है क्षु
रो भ्रजः- आदित्य त०॥१८॥४॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो
रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो

+अयं वै लोक एवः छन्द इत्यादि शत० ८.५.२.३-६ श्रुतिषु स्पष्टीकृतानि।

भ्रजश्छन्दः सथंस्तुप्छन्दो नुष्टुप्छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्धा श्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो अङ्काङ्कं छन्दः॥५॥

आछत् (आच्छादन करताहै शरीरको) प्रच्छत् (प्रच्छादन करताहै) अन्न०॥१९॥२०॥ संयत् (व्यापार से निवर्त करती है जन्तुओंको) रात्रि०॥२१॥ वियत् (विशेषेण जातेहैं इधर उधर जन जहाँ) दिन०॥२२॥ बृहत् (विस्तीर्ण) स्वर्लोक॥२३॥ रथन्तरम् (रथकरि गमन करतेहैं जहां) भूमण्डल०॥२४॥ निकायः (नितर शब्द करताहै वृक्षोंको उखेडताहै) वायु०॥२५॥ विवधः (नाश करतेहैं पापके फल भोगतेहैं भूतप्रेतादि रूपकरि प्राणी जहां) अन्तरिक्ष०॥२६॥ गिरः (भक्षण करतेहैं) अन्न०॥२६॥ भ्रजः (दीपताहै) अग्नि०॥२८॥ संस्तुप् (भले प्रकार स्तुभ्यते ध्यते अर्थात् वशी करते हैं) अनुष्टुप् (निरन्तरस्तुभ्यतेऽनया वाचा०॥२९॥३०॥ एवः वरिवः (इतिपदद्वयं व्याख्यातम्॥३१॥३२॥ वयः (बाल्यादि वयका हेतुभूत) अन्न०॥३३॥ वयस्कृत् (बाल्यादि वय करताहै) जठराग्नि०॥३४॥ विष्पर्धा (विविध स्पर्धा करतेहैं ऐश्वर्याधिक्य करि जन जहां) स्वर्ग०॥३५॥ विशालम् (विविध शोभतेहैं जन जहां भूतल०॥३६॥ छदिः (छादन करियेहैं अर्करश्मिओंसे) अन्तरिक्ष०॥३७॥ दूरोहणम् (दुःखेन आरोहण करनेको शक्य निष्काम ज्योतिष्टोमादि यज्ञ प्रयासजातज्ञान साध्यत्वसे) रविः०॥३८॥ तन्द्रम् (तन्द्रि आदे मोहे सीदैहै स्थान संकोचसे अ

णी० ॥३९॥ अपङ्काङ्कम्० गर्तपाषादि चिन्हजहां जल० ॥४०॥ अत्रे ष्टकानां भूलोकादिरूपेण स्तुतिरितिभावः ॥५॥

अ०२ रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा धर्म्मं जिन्वा न्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जि न्व तन्तुना रायः ॥६॥ +

का० १७.११.५.१०. अषाढा वेला में सर्व दिशा विषें स्तोमभागा संज्ञा इष्टका उपधान करै रश्मिनेत्यादि एकोनत्रिंशत् मन्त्रों से तिन्हों के मध्य पञ्चदश प्रागनूकं दक्षिणेन अर्थात् चतुर्दश प्रागनूकं उत्तरेण उपधेया इतिसूत्रार्थः ॥ एकोनत्रिंशद्यजूंषि इष्टका देव त्यानि १.२.६.९.१७. या— पं० ३.८.१८.२६.२९. या— बृ० ४.५.१०. या— ज० ७.२०. या— उ० ११. सा— गा० १२.१३.१४.१५.१६. या— त्रि० १९. २१.२२.२३.२४.२५.२७.२८. या— अ०। इमे मन्त्राः श्रुत्या त्रिधा व्याख्या ताः कण्डिकाद्वय पर्यन्तमनुनोपहिता. सत्यदो जिन्वेति प्रथमः १६ अहोऽस्य मुष्मै त्वा मुपदधामीति द्वितीयः १२ अधिपतिनोर्जोर्जं जि न्वेति तृतीयः प्रकारः १ + ॥ अथ वाक्यार्थः। हे इष्टके तू रश्मि (अन्न +) करि सत्य के अर्थ उपहिता सती सत्य वचन जिन्व (तर्पण करि ॥१॥ प्रेति (प्रकर्षेण देह विषें गति जिसकी अन्न) तिस करि धर्म के अर्थ उ पहिता सती धर्म को प्रीति हो ॥२॥ सर्वमन्त्रेषु द्वितीयं पदं चतुर्थ्यन्तं

+ अधुनाहीजञ्जैतच्चा बु। शत० ८.५.३.३ श्रुतेः।

+ न्व। अ०। इ०। उ०। ऋ०। लृ०। आ०। ई०। ऊ०। ॠ०। ॡ० स्वरस्थानि ॥६॥
+ तेजोवृद्धि प्रदत्वादन्नं रश्मिः रश्मिरेवान्नमित्यादि शत० ८.५.३.३ श्रुतेः

कार्यम्। अन्वेति (देह को प्राप्त होता) अन्न तिस करि दिव के अर्थ उप॰ [illegible] को जिन्व ॥३॥ संधि (सम्यग्बलादिकं धीयतेऽस्मिन्) अन्न [illegible] अन्तरिक्ष के॰ अन्तरिक्ष को ॥४॥ प्रतिधि (प्रतिधीयतेऽस्मिन्) [illegible] तिस॰ पृथिवी के॰ पृथिवी को॰ ॥५॥ विष्टम्भ (देहको विष्टम्भ [illegible]रता) अन्न तिस॰ वृष्टि के॰ वृष्टि को॰ ॥६॥ प्रवय (प्रकर्षेण देहको [illegible]होता) अन्न तिस॰ अन्ह के॰ दिन को॰ ॥७॥ अनुय (देहान्तरा [illegible]सप्तति ७२ नाडियों करि प्राप्त होता देहको) अन्न तिस॰ रात्रि के॰ रात्रि को॰ ॥८॥ उशिज (वशाकान्तो॰ सर्वैः काम्यते) अन्न तिस॰ [illegible]तुओं को॰ ॥९॥ प्रकेत (प्रकर्षेण कं (सुखं) ईयतेऽनेन) अन्न तिस॰ आदित्यों को॰ ॥१०॥ ६॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सᳬंसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनोषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥७॥ +

तन्तु (तन्यते॰ विस्तार करते हैं) अन्न तिस॰ धनकी पुष्टि के॰ राय स्पोषको॰ ॥११॥ संसर्प (भले प्रकार प्रसरता है देह विषे) अन्न तिस॰ श्रुत के॰ श्रुत को॰ ॥१२॥ इडा अन्न तिस॰ ओषधीओं को॰ ॥१३॥ उत्तम (अधमहनतम जिस से वा उत्कृष्ट) अन्न करि शरीर के॰ शरीर को ॥१४॥ वयोधस (वयदेता॰ पुष्टकरता) अन्न तिस॰ अध्ययन के॰ अध्ययन को॰ ॥१५॥ अभिजित (सर्वजय का हेतु) अन्न तिस करि तेज के अर्थ उपहिता तेजो जिन्व ॥१६॥ इति प्रथम प्रकारः ॥७॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्प

+ अं॰। इ॰। उ॰। ऋ॰। लृ॰। आ॰। स्पष्टानि ॥७॥

दे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा त्रिवृदसि ॥ ८ ॥ †

अदोऽस्य मुष्मै त्वेति व्याख्यातमन्त्रनाह ॥ प्रति पत् (प्राप्त होता है
वन को इस करि) अन्न हे इष्टके तू अन्न रूपा है अन्न के अर्थ
उपधान करता हूं इति शेषः एवं सर्वत्र ॥ १७ ॥ हे इष्ट के तू अनु
प्रति दिन प्राप्त होता अन्न है तुझे अन्न के अर्थ उपधान ० ॥ १८
हे इष्ट के तू सम्पत् (अन्न) है सम्पत् के अर्थ तुझे उप ० ॥ १९ ॥ ते
तेज को कारण होने से तेजः अन्न है तेजके ० ॥ २० ॥ ८ ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि वि
त्वा सवृदसि सवृते त्वाक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोऽ
संक्रमायत्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमायत्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै
त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥ †

कृषि· वृष्टि· वीजरूपेण त्रिगुणत्व से त्रिवृत् अन्न तद्रूपां त्वां त्रिवृ
ते मुपदधामि ॥ २१ ॥ प्रवृणोति भूतानीति प्रवृत् अन्नं यतः तू
प्रवृत् है अतः प्रवृत् के अर्थ ० ॥ २२ ॥ विशेषेण वर्तै है भूतों में
इति विवृत् अन्न तू ० ॥ २३ ॥ सह वर्तै है सवृत् अन्न त्वां ० ॥ २४
आक्रम (पराभव करता है क्षुधाको) अन्न तू ० ॥ २५ ॥ देह विषै सं
क्रमण करता है संक्रम अन्न तू ० ॥ २६ ॥ संतानोत्पत्त्य के अर्थ
बीज रूपेण परिणम्य उत्क्रमण करता है उत्क्रमण अन्न त्वं
॥ २७ ॥ उत्कृष्टा क्रान्ति गमन जिसका उत्क्रांतिः अन्न हे इष्टके
तू उत्क्रान्ति के अर्थ तुझे उपधान करता हूं ॥ २८ ॥ अथ तृतीयो व्या
ख्यामेदः ॥ अधिकं पातीत्य धिपतिः अधिक पालक ऊर्जे अन्न

† म० त्वा० अ० ॥ ६ ॥ ७० ॥ ऋ० ॥ स्य स्थानि ॥ ८ ॥
† ७ ॥ । ६ ॥ ७० ॥ के० ॥ ल० ॥ सा० ॥ २ ॥ ऊ० ॥ ऋ० ॥ स्य स्थानि ॥ ९ ॥

रस करिके ऊर्जे (अन्नरस) को जिन्व (तर्पय ॥२६॥ एवं मन्त्रेष्व भिधेयानुसारेण व्युत्पत्तिः कार्या ॥८॥

अ॰३ राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेती नां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳯं श्रयत्वाज्य मुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳯं साम प्रतिष्ठित्या ऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१०॥

का॰ १७.१२.१ पूर्वानूके स्थानाभावात् पूर्वानूक वर्जित तीनों दिशाओं की अनूकों में ऋतव्या वेला विषें अनूक के ऊपर राज्ञीत्यादि पञ्च कण्डिकाओं से आश्विनी वत् नाकसत्संज्ञेष्टका उपधान करै ॥ पञ्च यजूंषि लिङ्गोक्त देवतानि। पुरस्तादुपदधाति। हे इष्टके तू राज्ञी (राजमाना) प्राची (पूर्वा) दिशा है। आठों वसु देवता तेरे अधिक पालन करने वाले। अग्नि उपद्रव करने वाले पराये आयुधों का निरा कर्त्ता। किंच त्रिवृत्स्तोम तुम्है पृथिवी विषें उठावै। आज्य नामक उक्थ शस्त्र प्रवो देवायाग्नये इत्यादिक ऐतरेय ब्राह्मण २.४०) अचल भावके अर्थ तुम्है दृढी करै। रथन्तर साम अन्तरिक्ष लोक विषें प्रतिष्ठान के अर्थ तुम्है दृढी करै। प्रथमोत्पन्न ऋषि (प्राण) द्युलोक के विषें आकाश के परिमाण गुरुत्व करिके तुम्है विस्तारें अर्थात् आकाशका यादृश विशाल

१ प्राणोवाऋषिः प्रथमजा इति श॰ ८.३.१.६ श्रुतेः

त्वता हृग्विशाला तुम्हें करें। और विधर्त्ती इष्टकाओं का निष्पादयिता पुनः यह अधिपति इष्टका पालक तुम्हें विशाला करें यद्वा विधर्त्तो विशेषेण धारयिता वागभिमानी देवः और यह अधिपति प्रधानभूतो देवः मनोऽभिमानी ते दोनों तुम्हें विस्तारें +। किंच ते सर्वे यथोक्ता वस्वादयः ऐकमत्येन अवस्थित होकर नाक नहीं है दुख अर्थात् सुख के पृष्ठ स्वरूप सुखरूप स्वर्ग विषें यजमान को और हे इष्टके तुझको स्थापन करें॥ स्तोमः सामानि च राजसूयप्रकरणे दशमेऽध्याये प्राची मारोहेत्यादि कण्डिकासु १०.१०-१४. व्याख्यातानि॥१०॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳश्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥११॥

अथ दक्षिणतः। चारों कण्डिकाओं में देवाः हेतीनां प्रतिधर्त्तारः स्तोमाः उक्थानि और सामानि अन्य हैं परन्तु और सब समान है॥ ॥विविधं राजते विराट्। वायुरग्रेगा इति अध्या० २७.३१. प्रउगं शस्त्रम्॥११॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳश्र

+विधर्त्ता चायमधिपतिश्चेति [illegible] विधारयत इति शत० ८.३.१.५ श्रुतेः॥

यतु मरुत्वतीयं मुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१२॥

अथ पश्चात्। सम्यग्राजते सम्राट्। आत्वारथं यथो नये इति ऋक्सं॰म॰८.७.४.१. मरुत्वतीयं शस्त्रम्॥१२॥

स्वराडसि उदीची दिङ्मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्तैकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१३॥

अथोत्तरतः। स्वेनैव राजते स्वराट्। अभित्वा शूर नोनुम इत्यादिकं ऋक्सं॰म॰७.२.१५.२२. निष्केवल्यं शस्त्रम्॥१३॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते ऽ उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्र

यन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१४॥

अथ मध्ये। हे इष्टके अधिक पालन करने वाली बृहती प्रौढा ऊर्ध्वा दिशा है। त्रिणव॰ त्रयस्त्रिंश॰ दोनो स्तोम॰। वैश्वदेव॰ आग्निमारुत॰ शास्त्र॰। शाक्वर॰ रैवत॰ साम॰ करे॰ द्विवचने विशेषः। तत्सवितुर्वृणीमहे इत्यादि ऋक्सं॰ म॰ ५.६.१०.१ वैश्वदेवं शास्त्रम्। वैश्वानराय पृथुपाजसे इत्यादि ऋक्सं॰ म॰ ३.१.१३.१ आग्निमारुतं शास्त्रम्॥ उक्तमन्यत् ॥१४॥

ऋ॰प॰४ अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ॥ पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१५॥

का॰ १७.१२.२.२ नाकसद विषें चुपके से चात्वाल मृदा को डालि के नाकसद के ऊपर सब दिशाओं में यथालिङ्ग जिस चिन्ह का मन्त्र तिस दिशा में पञ्च चूडा संज्ञकाः पञ्च इष्टका उपधान करे। पंच यजूंषि लिङ्गोक्तदेवत्यानि। पुरस्तादुपदधाति। जो यह पुरः (अग्नि †) इष्टकारूप कैसा है कि हरिकेशः (हरितवर्ण कनिकवर्ण केश सम ज्वाला जिसकी) सूर्य की सी किरिणें। तिस अग्नि के रथगृत्स और रथौजा सेनानी और ग्रामण्य रथविषें कुशल रथगृत्स सेनां नयति सेनानी रथ विषें तेज जिसका रथौजा अर्थात्

† पुरस्तादुपधीयमानत्वात्पुरोऽग्निः अग्निर्वै पुरस्ताद्यत्तमाहेत्यादि॰ शत॰ ८.६.१.१६-१९ श्रुतिषु पञ्चमन्त्राणामर्थः।

रथ युद्ध कुशल॰ सग्रामं नयति॰ ग्रामणीः एतन्नाम कौ सेनानी ग्रामण्यो परिचारको तौ च वासन्तिकावृतू इत्यर्थः। पुञ्जिकस्थला॰ रूपलावण्य सौभाग्यादि गुण समूह की आधार भूता। क्रतुस्थला॰ संकल्पों रूपादि ज्ञानों की स्थानभूता। अथवा पुञ्जिक और क्रतुओं का स्थल जिसमें॰ बहुब्रीही। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला॰ दिशा और उपदिशा अप्सराएँ। दङ्क्ष्णवः (दशनशीलाः) पशवः व्याघ्रादिक हेति आयुध॰ वज्र। पौरुषेयः॰ पुरुष संबंधी वधः हनन प्रहेति प्रकृष्ट आयुध जिस अस्त्र विषें छोडते जैसें रावण सेना परस्पर रिपुहनन करती हैं वोह पौरुषेय वधहै। जिस अग्नि-की ये सामग्री अर्थात् हे इष्टके तू तिस अग्नि स्वरूपाहै। जो यह अग्नि और तिसके जे सेनानी ग्रामण्य और जे अप्सराएँ और जे हेति प्रहेति तिन सबों के अर्थ सर्वदा नमस्कार हो ते सब हमें सुखी करें ते हमें रक्षा करें जिस नर का हम अनिष्ट चिन्तन करें और जो नर हम विषें अप्रीति करता है तिसनर कों इन पूर्वोक्तों के जम्भ (दंष्ट्रा कराल मुख) विषें हम डालते हैं॥१५॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानी ग्रामण्यौ॥ मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाꣳसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥१६॥

अथ दक्षिणातः। दक्षिण में यह विश्व कर्मा (सर्व कर्म जिसका वा

सब करताहै॰ वायु तिसके रथस्वनः रथमें स्थित शूर शब्द करताहै
सेनानी। और रथचित्रः रथविषें स्थित आश्चर्यकारी ग्रामणीः
तौ ग्रीष्माद्वतू। मेनका मानतेहैं इसे और सहजन्या सबजनों
सहित स्थिता अप्सराएँ। यातुधाना राक्षसों की जातिका अवा
न्तरभेद हेती। रक्षांसि क्रूरायातुधाना प्रहेती हैं। हे इष्टके जि
वायु के ये सब तू तद्रूपाहै। अन्यद्व्याख्यातम् ॥१६॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानी ग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो ऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१७॥

अथ पश्चात्। पश्चिम देशमें यह विश्वव्यचा आदित्य॰ सबको उदय
करिके प्रकाश करता वा व्याप्त अथवा पश्चिम में स्पष्ट दीखताहै ति
सके रथप्रोत रथमें स्थित प्रोत जैसे सेनानी। और असमरथ अस
मः॰ अन्यके रथसे अतुल्य रथ जिसका नाम ग्रामणी। और तौ वा
र्षिकाद्वतू। प्रम्लोचन्ती प्रम्लोचन करती॰ नरप्रति आत्मा को दिख
लाती और अनुम्लोचन्ती वार॰वार म्लोचन करती अप्सराएँ व्या
घ्राः (बाघ) जिसके हेतिः सर्पाः (सांप) प्रहेति जिसके तद्रूपा है। उक्त
मन्यत् ॥१७॥

अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानी ग्रामण्यौ। विश्वाचीच घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः

प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१८॥

अथोत्तरतः। यह उत्तरमें संयद्वसुः (यज्ञ॰ भले प्रकार गमन करते धन के अर्थ जिस प्रति मनुष्य॰ यज्ञ प्रति चलते हुओं के अर्थ दान आवश्यक है यज्ञके उत्तरोपचारत्वसे तिसके तार्क्ष्य (ती क्ष्ण अन्तरिक्ष॰ विषें क्षेपन करता है पक्ष) सेनानी और अरिष्टनेमि (अनुपहिंसिता नेमि॰ आयुध जिसके) ग्रामणी तौ शारदऋतू। विश्वाची सर्वसाधरणत्व से सबको अञ्चन करती औरघृताची घृत को अञ्चति॰ भोजन करती + अप्सराएँ। आपः जलोंका समूह हेति वातः वायु प्रहेतिः। तेभ्यः इत्याद्युक्तम् ॥१८॥

अथ मुपर्य्यवाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ ॥ उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन्हेति र्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१९॥

अथ मध्ये। उपरि॰ उर्द्ध देशविषें यह अर्वाग्वसु पर्जन्य॰ अधोमुख जलरूपधन जिससे वोह अर्वाग्वसु अर्थात् नीचेजल को प्रजा के अर्थ देताहै तिस पर्जन्य के सेनजित् सेना कोजीतनेवाले सेनानी और सुषेण शोभन है सेना जिसकी ग्रामणी तौ हैमन्तिकौ। उर्वशी उरुपृथु है काम॰ वश जिसका और पूर्वचित्ति अतिशय रूपसे पूर्वमेव पुरुषों के चित्तको हरले

+ घृतं ह्यप्सरसामन्नमघृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नामीति उर्वशीवचनात्।

ती एते दिगुपदिग्रूपे अप्सरसौ। अवस्फूर्जो वज्रनिर्घोषमें भय
हेतु शब्द को करता हेति और विद्युत् बिजली प्रहेति ।शिष्टं-
व्याख्यातम् ॥१९॥

अ०५ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा
ꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥२०॥

का० १७·१२·५· वक्ष्यमाणा गायत्र्याद्या छन्दस्या इष्टकाएं एक-
एक के स्थान में तीनि उपधान करै तिन्हों में मध्यमा पद्यानूक
विषे तिसे अभितः द्वे अर्धपद्ये अत्र पूर्वदिशा के अनूकान्त में
तीनि गायत्री अग्निर्मूर्धेति प्रत्यृचम् एवं वक्ष्यमाणा अपीति
सूत्रार्थः॥ आग्नेयोऽनुवाकः तन्मध्ये दश संख्याकस्तृचाः।ति
स्र ऋचो गायत्र्यः।आद्या व्याख्याता ३·१२·॥२०॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा
कवी रयीणाम् ॥२१॥

विरूपदृष्टा। यह अग्नि ऐसा तिसे स्तुति करते हैं इतिशेषः।कै
सा कि सहस्र संख्याइसकी है तिस साहस्री की। शतसंख्यावा
न् अन्न का पति स्वामी अर्थात् अनेक अन्नों को देने वाला
तथा धनों का शिखवत् उत्तम (अग्निर्हि सर्वधनानां प्रधानध
नं दृष्टादृष्ट साधनत्वात्) कविः क्रान्तदर्शनः॥२१॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्व
स्य वाघतः॥२२॥

व्याख्याता ११·३२·॥२२॥ इति प्रथमस्तृचः॥१॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्॥२३॥

का०१७.१२.७. पूर्वे दिशा में रेतःसिग्वेला विषें त्रिष्टुप्संज्ञाइष्टका उपधान करे तृचेन तीनि त्रिष्टुप्छन्दस्का ऋचाओं से एवमग्रेपि॥ तिस्त्रस्त्रिष्टुभः। प्रथमा व्याख्याता १३.१५.॥२३॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्। यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्त्रते नाकमच्छ॥२४॥

बुध गविष्ठ रौहूष्टे। जनानां० ज्ञानश्रद्धा द्विज तर्पण सत्यादि सम्पन्न अग्नि होत्रियों के समिन्धन करि अग्नि प्रति बुध्यते अर्थात् कर्म विषें अपने अधिकार को जानताहै। तत्र दृष्टान्तः आती हुई धेनुको जैसे वत्स प्रति बुध्यते और जैसे उषा को आते प्रति मनुष्याः प्रति बुध्यंते॥ तिस दीप्त अग्नि की रश्मियें स्वर्ग को सब ओडीसे प्रसरती हैं। दृष्टान्तमाह यह्वा (वडे+) पक्षों वाले पक्षी वृक्ष शाखा को प्रकृष्टेन उद्गमन करि नाक (आकाश) प्रतिप्रसरते हैं तद्वत्॥ ऋचोऽर्थान्तरं वा। जनानां० ऋत्विजों की संवधिनी समिधा अग्नि प्रति जलती हैं जैसे प्रातःकाल प्रति गौऐं उठती हैं। तिस दीप्त० प्रसरती हैं। दृष्टान्तः पक्षियों के मध्य वडे पक्षी जैसे उडके प्रसरते हैं॥२४॥ +यह्व इति महन्नाम सु निघं० ३.३.

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे

गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥२५॥

उद्गातारो वदन्ति· उद्गाता र कहिते हैं। कि हम क्रान्त दर्शिन् अग्नि के अर्थ स्तुति रूपवाक्य कहिते हैं। कैसे के अर्थे कि यज्ञ के योग्य वृषभ श्रेष्ठ· कामो के वरसने वाले। वृष्णा सींचने वाले यूने परिणाम रहित के अर्थे। कैसा है वाक्य कि वन्दन शील· स्तुतिनत्परा ये गविष्ठिरः गवि· वाचिस्थिरो· अच्याव्यः· होता अन्न करिके युक्त स्तुति को अग्नि आहवनीय विषें अश्रेत् अर्थात् होता अग्नि विषें स्तोम को अर्पण करते याज्या·नुवाक्या ओं से अन्न को अग्नि संवद्ध करताहै। तत्रदृष्टान्तः जैसे द्युलोक विषें रोचमान आदित्य को सन्ध्या वन्दन सूर्योपस्थानादि कों में विप्रयुक्ता वहुत सी व्यञ्चाः स्तुतिएँ वागतिएँ जिसकी वोह उत्प्रेक्षा स्तोम सूर्य करि उपमीयते ॥२५॥ तृचः॥२॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो· अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे-विशे ॥२६॥

का·१७·१२·८· तीनि ऋचा ओं से पश्चात् रेतः सिग्वेला विषें तीनि जगती संज्ञेष्टका दक्षिण मुख उपधान करै॥ तिस्र जगत्यः। आद्या व्याख्याता ३·१५॥२६॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे। घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि

भाति भरतेभ्यः शुचिः॥२७॥

सुतंभरद्दष्टा। जो अग्नि भरतेभ्यः॰ ऋत्विजों † के सकाश सेउत्पन्न हुआ। किस लिये उत्पन्नहुआ कि नव्यसे सुविताय॰ नवतरयज्ञ के अर्थ। सो अग्नि द्युलोक स्पर्शनी ज्वाला समूह करि कान्तिमान् जैसे तैसे विविध दीपै है। कैसा है अग्नि कि जन यजमानका रक्षा करने वाला। जागरण शील॰ कर्म विषें सावधान। सुदक्षः॰ शोभन है उत्साह जिसका वा अति कुशल। घृत प्रतीकः॰ घृत मुख में जिस के। शुचिः॰ शुद्ध॰ बहुत सी हवियों के भक्षण सेभी उच्छिष्ट नहीं होता वा शोधकः॥२७॥

† भरता इति ऋत्विङ्नाम सु निघं॰ ३.१८.

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः॥२८॥

हे अग्ने अङ्गिरा के वंश में हुए ऋषि तुझे प्राप्त होते हुए। कैसे तुझे कि निगूढ प्रदेश जल विषें स्थित। हे अग्ने पुनः नष्ट हुए तुझे नाना वनस्पतियों विषें श्रित को अङ्गिरा॰-होते हुए। जो कि तुझे अङ्गिरा॰-हुए सो तू अब भी अरणियों से उत्पन्न हुआ। कैसा कि बल करि मथ्यमान। हे अङ्गिरः (अग्ने) अत एव तुझे बल का पुत्र मुनीश्वर लोग कहिते हैं॥२८॥ तृचः ३॥

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते॥२९॥

का॰ १७.१२.५॰ जगतीओं से अपरा तीन अनुष्टुप्पंक्ति एका

प्राङ्मुख उपधान करै सखायः सम् इन तीनि ऋचाओंसे ॥ तृचोनु
ष्टुप्॥ प्रथमा इषोदृष्टा॥ ऋत्विजं प्रति यजमानो ब्रूते-हे सखायः
(ऋत्विजः) समीचीन इष (हविर्लक्षणअन्न) और समीचीनस्तो
म को तुम सम्पादन करो अर्थात् अग्नि के अर्थ हवि करो और
त्रिवृत्पञ्चदशादि स्तोमको कहो। कैसे अग्नि के अर्थ कि मनुष्यों
के वर्षिष्ठ श्रेष्ठ वृद्धतम अर्थात् सर्वपूज्य। तथा जल केनप्त्रपौत्र
नाती†॥ तथा वलवान् ॥२९॥

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ। इडस्पदे
समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥३०॥

संवननदृष्टा। हे वृषन् (सींचनेवाले) हे अग्ने अर्यः (स्वामी) तू स
व फल समन्तात् यजमान करि प्राप्त होताहै। गो वा पृथिवी
के स्थान उत्तर वेदी विषें कर्म के अर्थ दीप्त होताहै सो ऐसा तू
हमारे अर्थ धन दे ॥३०॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्के
शं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥३१॥

प्रस्कण्वदृष्टा। नानविध श्रव (धन वा कीर्ति) जिस का (की)
वोह चित्रश्रवाः अतिशयेन चित्रश्रवाः चित्रश्रवस्तमः ति
स का संवोधन। हे पुरुप्रिय वहुतयजमानों के प्यारे वा व
हुत हवि हैं प्यारे जिसके हे अग्ने प्रजा विषें ऋत्विग्यजमा
न तुम्हें आह्वान करते हैं। क्या करनेकि हवि प्राप्तको॥३१॥
तृचः ४॥

† अद्भ्यो वनस्पतयोऽजायन्ते तेभ्योऽग्निरित्यपां पौत्रोऽग्निः।

पञ्चमस्तृचो प्रगाथः

एना वो॑ऽअग्निं नम॑सो॒र्जो नपा॑तमाहुवे। प्रियं चेति॑ष्ठमर॒तिᳪं स्व॑ध्वरं विश्व॑स्य दूतम॒मृत॑म् ॥३२॥

विश्व॑स्य दूतम॒मृतं॒ विश्व॑स्य दूतम॒मृत॑म्। स योजते॒ऽअरु॒षा वि॒श्वभो॑जसा स दु॑द्रव॒त्स्वा॑हुतः ॥३३॥

स दु॑द्रव॒त्स्वा॑हुतः स दु॑द्रव॒त्स्वा॑हुतः। सु॒ब्रह्मा॑ य॒ज्ञः सु॒शमी॒ वसू॑नां दे॒वᳪं राधो॒ जना॑नाम् ॥३४

का॰ १७.१२.१०. अषाढा वेला के पुरस्तात् तीन बृहतीष्ठ का एना वः इन तीनों से उपधान करे॥तिस्रो बृहती प्रगाथः॰ दो ऋचाओं के ग्रन्थन से तीन ऋचाओं का सम्पादन प्रगाथ है तहाँ बृहती सतो बृहती से तीन बृहती की गई॰ जिस का तीसरा चरण द्वादशाक्षर और तीन्यों १.२.४. अष्टाक्षर वोह बृहती॰ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे। प्रियं चेतिष्ठमरतिᳪंस्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्॥इति॥जिसके प्रथम त्रितिय द्वादशाणि द्वितीय चतुर्थ अष्टाणि वोह सतो बृहती॰ स योजते ऽअरुषा विश्व भोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः। सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवᳪं राधोजनानाम्॥इति॥तहां बृहती का चौथा पाद दोबार लौटिकर सतो बृहती के पूर्वार्ध करि सहित दूसरी बृहती कीई॰ सतो बृहती के दूसरे पाद को दोबार फेरिके तिसी के उत्तरार्ध करि सहित तीसरी बृहती कीनी॰ एवं तीनों बृहती सᳪंहिता में पढीगई॰ तहां आवर्तित पादों के अर्थान्तर के अभावसे दो ऋचाओं की व्याख्या-

करतेहैं॥एनावो वशिष्ठ दृष्टा।हे ऋत्विग्यजमानऔ तुम संबंधि इस नमसा,हविर्लक्षण अन्न करि अग्नि को आह्वान करताहूं वा तुम इस अग्नि को आह्वान करो। कैसे अग्नि को कि जल के पौत्र यजमानों के प्रीति हेतु अतिशयेन चेतयितार अरति(पर्याप्त मति वा उपरम रहित अर्थात्सदोद्यम युक्तवाले† मरण रहित को॥ अथ सनो बृहती व्याख्यायते।सयोसते। जिस अग्नि को आह्वान करताहूं वोह दोनो रोष रहित सब के भोक्तार अश्व रथमें जोडताहै‡। वोह हीअग्नि रथारूढः सन् शोभन प्रकारेण हुतः सन् जाताहै। कहांजाताहै सो कहितेहैं कि सुब्रह्मावसूनां वसुशब्दो रुद्रादित्ययोरुपलक्षकः वसुओं रुद्रों आदित्यों सवन त्रय देवताओं का जहां यज्ञ और जहां यजमानों का दीप्यमान धन हविर्लक्षण है अर्थात् तहांअग्नि जाताहै।सुब्रह्मा ब्रह्मपदं सर्वर्त्विगोपलक्षणं शोभन ब्रह्मा ऋत्विक् जहां शुभर्त्विगयुक्तः।सुशमी शोभन कर्म जहां ¶ शोभन कर्मवान्। बुलायाहुआ अग्नि रथमें अश्वोंको जोडिके यज्ञविषें हवि भोजन को आताहै इतिसर्वोर्थः॥३२॥३३॥३४॥तृचः॥५॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो। अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः॥३५॥

का॰१७॰१२॰१३॰ गायत्रीओं से अपरा तीनि उष्णिकसं त्रा इष्टका उपधान करै॥तिस्र उष्णिगोतमदृष्टा। हे अग्ने हे सहसो यहो(बलके पुत्र‡)हेजातवेदः(उत्पन्नज्ञान)हमारे विषें महिश्रवः महत् ध

† सर्वस्यहिगृहे दाहपाकोदि कार्यकरत्वात्

‡ विश्रुयुगास्याविमुग्ध्यमश्वपदं रथपदंचाध्याहर्तव्यं

¶ शमीतिकर्मनाम सुनिघं॰२॰१॰

‡ सह इतिबलनाम॰निघं॰२॰९॰ यह इतिपुत्रनाम॰निघं॰२॰२॰

न दे। कैसा है तू कि गोमतः, धेनुयुक्त अन्नका ईश्वर अत एव धन और गौ दे ॥ ३५ ॥

स ईंधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

हे पुर्वणीक (बहुत मुखवाले, सर्वदाहकत्वात्, यतो ह्येव कुतश्चाग्ना वभ्या दधाति तत एव प्रदहतीति श्रुतेः) हे अग्ने हमारे अर्थ धनवद्यथा तथा सो तू दीप्त हो अर्थात् तुम्हकरि तैसे हवि ग्राह्य हैं जैसे हमें धनाप्ति हो। सो पूर्वोक्त कैसा है तू कि दीप्यमान। धनकानिवास हेतु। क्रान्तदर्शी। अग्निः (अग्रे नयती त्यग्रणीः, प्रथमयज्ञ प्रवर्त्तक। गिरा त्रयीलक्षणा वेदवाचा करि स्तुतियोग्य ॥ ३६ ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३७ ॥

हे राजन् (दीप्यमान) हे तिग्मजम्भ (तीक्ष्णदंष्ट्र वा वज्रदंष्ट्र +) हे अग्ने वस्तोः दिनसंबंधि और उषः कालसंबंधि राक्षसों को सो तू प्रत्येक को भस्मी करि। कैसा है तू कि स्वभाव से ही राक्षसों को क्षपयिता ॥ ३७ ॥ तृचः ॥ ६ ॥

+ वज्रनामनिघं॰ २.२०।

पुनः सप्तम स्तृचः प्रगाथः

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

येना समत्सु सासहो ऽवस्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।
वनेमाते ऽअभिष्टिभिः॥४०॥

का० १७·१२·११·बृहतीओं से पुरस्तात् तीनि ककुप्संज्ञा इष्टका उपधान करै॥प्रगाथः ककुप् सतोबृहती से तीनि ककुप् पादा वृत्त्य से की गई आवृत्त्य का अर्थान्तर नहींहै। भद्रो नो ऽअग्निरा० प्रशस्तयः॥इति ककुप् मध्यमपादः द्वादशकः आद्य तृतीयाव ष्टकौ इतितल्लक्षणं॥भद्रं मनः कृणुष्ववृत्र तूर्येयेना समत्सु सासहो ऽवस्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमाते ऽअभिष्टिभिः॥इतिसतो बृहती तल्लक्षणं व्याख्यातम् ३३·३४·॥तत्र ककुब्व्याख्यायते सौभरि दृष्टा। यजमानश्चित्यमग्निं संबोध्य प्रार्थयते। हे सुभग शोभनभमषड्विधैश्वर्ययुक्त + ऋत्विजोंकरि आह्वान किये अग्नि हमारे अर्थ भद्र भन्दनीय कल्याण हो इतिशेषः। किंच तेरा दीया दानकल्याणकारी हो। अध्वर(यज्ञ) भद्र(श्रेयकारी) हो। औरभी प्रशस्तयः(कीर्तिएँ) भद्रा(सुखदायिनी)होवें॥अथद्वितीया॥हे अग्ने-जिस मनसा करिके सङ्ग्रामों विषें तू शत्रुओं को अभिभवताहै वोह मन वृत्र तूर्ये + पापनाशके अर्थ भद्र कल्याण करि-किंच भूरि(बहुत)शर्धताम्(वल करने वालों के सम्बन्धि स्थिर धनुषों को ज्या रहित करि। किंच तेरे अभिष्ट मार्गों से हम भोग्य वसु सेवन करैं॥३८॥३९॥४०॥तृचः॥७॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्वन्त आशवो ऽस्तं नित्यासो वाजिन इषꣳ स्तोतृभ्य आभर॥४१

+ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥ + तूर्यं निर्वर्त्यकर्मा वृत्रं पाप्मा पाप्मा वै वृत्र इति श्रुतेः।

का॰१७.१२.१४. दक्षिण अनूकान्त विषें तीनि पङ्क्ति संज्ञा इष्टका अग्निं तमिति तीनों से उपधान करै॥तिस्रः पङ्क्तयः॥जो वसु (तो प पाक प्रकाशसे उप करिके धन रूप वा वासयिता) तिस अग्नि को जानता हूं। गौएं जिस अग्नि को उद्धृत जानिकर अस्त (घर) को जाती हैं यह कि दोह काल हमें होमार्थ प्राप्त हुआ। आशवः (शीघ्र गामी) अश्व जिसे देखिके यजमान के घर को प्राप्त होते हैं। नित्यासः सर्व काल भावी वलवन्त अश्व सैन्धवाभिप्रायेण पुनर्वचनम् जिसें उपासे से गवाश्वादिक मिलते हैं ताहश हे अग्ने स्तुति कारी यजमानों के अर्थ अन्न दे॥४१॥

सोऽअग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः। समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय इषꣳस्तोतृभ्य आ भर॥४२॥

जो अग्नि वासयिता तिस अग्नि को स्तुति करता हूं अथवा वोह अग्नि स्तुति किया गया हमलोगों से। गौएं जिस अग्नि को भले प्रकार प्राप्त होती हैं। अश्व जिसे भ॰—हैं कैसे हैं कि रघुद्रुवः शीघ्र जाते हैं। सूरयः योग्य ऋत्विज लोक जिन्हें समायन्ति अर्थात् जिस के उपासक को सब भजते हैं। कैसे हैं कि सूरयः शोभन है जन्म जिन्हों का ताहश हे अग्ने तू स्तोत्रियों के अर्थ अन्न दे॥४२॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीषऽआसनि। उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पतऽइषꣳस्तोतृभ्य आ भर॥४३॥

हे सुचन्द्र (शोभनचन्द्र + हिरण्य जिससे वा शोभन आल्हादक रनेवाले) हेसुचन्द्र मुख विषें घृत पान के अर्थ इति शेषः। दोनोंद र्व्यीकार हाथों को सेवन (आश्रय) करि। और हेवलके अधिपते उक्थेषु-शस्त्रवत् यज्ञोंमें हमें उत्कर्षेण पूरि धन करिके इति शेषः। स्तोत्रियों के अर्थ अन्न दे॥४३॥ ऋचः॥८॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम्।
ऋध्यामा त ओहैः॥४४

का०१७·१२·१५·उत्तर अनूकान्त विषें तीन पदपङ्क्ति इष्टका अग्नेतमिति तीनोंसे उपधान करै॥ तिस्रः पदपङ्क्त्यः॥ हे अग्ने तेरा वो ह क्रतु (तावक-प्रसिद्ध-यज्ञ) इस विषें हम समृद्ध करें किन स्तुतियों कि साम समूहोंसे। कैसे स्तोमों कि ओहैः-फल के प्राप्त करने वाले वा तेरे कर्म रूप नामों से। तत्रै को दृष्टान्तः जैसे अश्व मेध को विप्र समृद्ध करते हैं। द्वितीयो दृष्टान्तः हृदय में स्पर्श करने वाले अतिप्रिय चिर मन विषें स्थित कल्याणक्रतु (संकल्प) जैसे समृद्ध करते हैं॥ क्रतुर्यज्ञः संकल्पश्चेति दृष्टान्त दार्ष्टान्तकयोरस्य सम्बन्धः। चिराभिलषितं यथासन्तः सम्पादयन्तीत्यर्थः॥४४॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ॥४५॥

हे अग्ने अध अथ-समनन्तरमेव हमारे यज्ञ का सारथी जैसे हो अर्थात् सारथी जैसे रथ निर्वाह करताहै तैसे यज्ञ निर्वाह कीहो। कैसे यज्ञ कि कल्याण रूप का। दक्ष समृद्ध वा स्वफलद

+चन्द्रमिति हिरण्यनामसु निघं० १।२

न समर्थ) का। अतिशय साधुका। अमोघफलका। श्रेष्ठका॥४५॥

एभिर्नो॑ अ॒र्कैर्भवा॑ नो अ॒र्वाङ् स्व॒र्ण ज्योतिः॑। अग्ने॒ विश्वे॑भिः सु॒मना॒ अनी॑कैः॥४६॥

हे अग्ने सब सुखों करिके हमारे प्रति अर्वाङ् - अभिमुख हो। अवर - समीप देश को अञ्चन करै इत्यर्वाङ्। अनुगृहाणेत्यर्थः। कैसे हैं ये कि हमारे पढे हुए अर्चनीय मन्त्रों करि शोभनमनस्क अर्थात् प्रसन्न होकर हमारे संमुख हो। तत्र दृष्टान्तः स्वर्णज्योतिः - स्वः न ज्योतिः - जैसे स्वः - आदित्यरूप ज्योति। अर्कैः स्तुत मुख्या दारभ्य सर्व प्राणि संमुखं भवति॥४६॥ तृचः॥८॥

अ॒ग्निꣳ होता॑रं मन्ये॒ दास्व॑न्तं॒ वसु॑ꣳ सू॒नुꣳ सह॑सो जा॒तवे॑दसं॒ विप्रं॒ न जा॒तवे॑दसम्॥ य ऊ॒र्ध्वया॑ स्वध्व॒रो दे॒वो दे॒वाच्या॑ कृ॒पा॥ घृ॒तस्य॒ विभ्रा॑ष्टि॒मनु॑ वष्टि शो॒चिषा॒ जुह्वा॑नस्य स॒र्पिषः॑॥४७॥

का॰१७-१२-१६ अग्ने पुरीष मसीति पुरीषशब्दवता मन्त्रेणोपहिता पञ्चम्य सपत्ना पुरीषवती अध्या॰१५-३ तिसके पूर्व में अतिछन्दस इष्टका को उपधान करै भद्रारातिः इचतूर्यै अवस्थिरेति ककुभा १५-३८-४० चतुरक्षनुरक्षरसहित अग्निꣳ होतार मित्यृचा। पुरीषवत्यतिछन्द इष्टके आग्लक्षणे पुरीषयुते च भवतः अनयोरन्तः पुरीषावापः कार्य इति॥ अतिछन्दाः अवसानत्रिकोपेता। छन्दांसि गायत्र्यादीनि सप्तातिक्रान्तातिछन्दाः। चतुसप्त्यक्षरत्वादष्टिः ककुभामक्षरैः सहातिधृतिः॥

जोदेव दानादि गुणयुक्त अग्नि उत्पन्न तया देवताओं प्रतिजाताहै देवताओं प्रतिचलनेवाली समर्थ ज्वालासे घृतके पातको अन्विच्छताहै। कैसे घृतकि आजुह्वान (समन्ताद्धूयमान) सर्पि (अग्निके अंगोंमें प्रसरणशील) के। जो एतादृशः (ऐसा) स्वध्वरः तिस अग्निको जानताहूं। कैसेको कि देवताओंके होतार (आह्वातार) दातार वासयितार बलकेपुत्र † जातवेद (उत्पन्नप्रज्ञ) नइवार्थे सर्वशास्त्रज्ञानब्राह्मण जैसे स्थितको॥४७॥

अग्ने त्वं नो॑ऽअन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः॥ वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमᳫं रयिं दाः॥ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥४८॥ † अ–थ्यः। अ०। व–दाः। दू०। तं–भ्यः। उ०॥४८॥

का०१७·१२·१७· अग्नेत्वम्· वसुरग्निः· तंत्वा· इन तीनोंसे अपर अनूकान्त विषें द्विपदेष्ट का उपधान करै॥ तिस्रोद्विपदा आग्नेय्यः॥ व्याख्याता ३·२५·२६·॥४८॥ तृचः॥१०॥

अ०६ येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निᳫं स्वराभरन्तः। तस्मिन्नहं नि दधे नाके अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णबर्हिषम्॥४९॥

का०१७·१२·१९· मध्योपहित अष्ट इष्टका गार्हपत्य के ऊपर गार्हपत्यवतही पुनश्चिति को उपधान करै अर्थात् येन इत्यष्टर्चेन॥ आग्नेय्योष्टौ षट् त्रिष्टुभः द्वे अनुष्टुभौ। ऋषि (मुनि) लोग जिस तप (एकाग्र चित†) करिकै यज्ञ करने को उद्यत

† मनसश्चेन्द्रियाणांच ऐकाग्र्यंपरमंतप इत्युक्तेः॥

हुए। कैसे कि अग्नि को प्रकाश करते हुए। तथा स्वर्ग लोक को स्वी करते हुए। तिस तप में हुआ स्वर्ग लोक निमित्त अग्नि को मैं स्थापन करता हूं। मनवः- मननप्रधाना विद्वान् लोग जिस अग्नि को स्तीर्णं वर्हिषम्, आछादन करते हैं बर्हि जहां वो ह कहिते हैं ॥४९॥

तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः। नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽअधि रोचने दिवः ॥५०॥

हे देवाः (दीप्यमान- ऋत्विजो) स्त्रीओं करि सहित और पुत्रों सहित और भाईओं सहित सुवर्णादि द्रव्यों सहित हम अग्नि को अनुसरण (सेवन) करते हैं। कैसे अपनौं कि तृतीये भूमिको आरम्भ करि त्रिसंख्या पूरक दिवि के पृष्ठ रवि मण्डल विषें नाक दुःखहीन- अधिक सुख स्थान को स्वीकरें। कैसे दिवि के पृष्ठ में कि शुभ कर्मों के फलभूत दीप्यमान विषें ॥५०॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥५१॥

यह अग्नि वाचो मध्यं चयनस्थान† को आरोहण करता हुआ‡ सो यह अग्नि पृतन्यवः युद्ध की इच्छा करने वाले पापियों तिन्हों को पैरों के नीचे करै। कैसा है अग्नि कि भुरण्युः (जगद्भर्त्ता भलों का पालक। चेतयमान। भूमि के ऊपर स्थापित। अत्यन्त द्योतमान ॥५१॥

† एतद्ध तृतीयं पृष्ठमित्यादि० शत० ८.६.३.१९ श्रुतेः
‡ एतद्ध वाचो मध्यमित्यादि० शत० ८.६.३.२० श्रुतेः

अय मग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्त्रियो दीप्यतामप्र
युच्छन्। विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्रयाहि दिव्यानि धामं ॥५२॥

यह अग्नि प्रकाश करते दिव्य स्थानों प्रति जावे और स्वर्गलोक
को जावे। कैसाहै अग्नि कि अतिशयेन वीर (शूर) हवि लक्षण
अन्न का देनेवाला। सहस्त्रियः सहस्त्रों ऋत्विकाओं करि संमित
कर्मविषें प्रमाद रहित। सरिरस्य मध्ये तीनों लोकों के विषें दी-
प्यमान ॥५२॥

सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान्कृणुध्वम्। पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताँ सीत्त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३॥

मन्त्र द्रष्टा ऋषी आह। हे ऋषिओ तुम अग्नि प्रति आओ और आकर
भले प्रकार प्राप्त होओ। एव मृषीनुक्त्वाग्नि माह हे अग्ने देवयानान्
देव लोक प्रति हेतु मार्गों को करि। हे अग्ने यतः ऋषिलोग इस य-
ज्ञ को तुझ विषें अनुक्रमेण विस्तार करते हुए कैसे हैं ऋषिलोग कि
फिरि के पितरा वाचा और मन † करि तरुण अयातयामों अन्यो-
न्य संगत करते हैं † अर्थात् जितेन्द्रिय हैं ॥५३॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥५४॥

हे अग्ने तू सावधान हो। प्रतिदिन यजमान को सावधान करि। तत

† संयताभ्यां वाङ्मनसाभ्यामेव यज्ञसाधनात्।

इष्टापूर्ते (श्रौतस्मार्तकर्मोविषें) यजमान सहित संसृष्ट हो०पुरुषव्य त्ययः। किंच हे विश्वेदेवाओ तुमकृत इष्टपूर्त और निष्पाप यजमान देवताओं के साथ स्थितियोग्य इस उत्तर सधस्थ (सर्वोत्कृष्ट विलोक द्योलोक†) विषें चिर बैठें। विश्वेदेवैः सालोक्यं यजमानस्य प्रार्थ्यत इति भावः॥५४॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे॥५५॥

हे अग्ने जिस सामर्थ्य करिके सहस्र दक्षिणाक यज्ञ को तू प्राप्त होता है और जिस०—करिके सर्ववेदधन दक्षिणा जहां तिस सर्व स्वदक्षिणाक यज्ञ को प्राप्त होताहै तिस सामर्थ्य करिके हमारे इस यज्ञ को देवताओं प्रति जाने स्वर्ग को प्राप्त करि। यज्ञ के स्वर्ग को जाने में हमारा भी तहां जाना होगा। सोऽस्यैष यज्ञो देवलोकमें वाभि प्रैति तदनूची दक्षिणायां ददाति प्रैति दक्षिणामन्वारभ्य यजमान इति श्रुतेः। अतो यज्ञस्य स्वर्गमनं प्रार्थ्यते॥५५॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम्॥५६

इयं व्याख्याता ३०१४॥५६॥

अ०७ तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥ ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। शैशिरावृतू अभि कल्प

† द्यौर्वा उत्तरं सधस्थमिति शत० ८।६।३।२३। श्रुतेः।

माना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गि
रस्वद्ध्रुवे सीदतम् ॥५७॥

एवं पुनश्चित्युपधान मुक्त्वापञ्चमचिति शेष भूतेष्टकोपधानेमन्त्रा
उच्यन्ते का॰ १७·१२·२२· ऋतव्ये द्वेपद्येष्टकेउपधानकरै॥ ऋतु
देवत्यं यजुः +। तपो(माघः) तपस्यः(फाल्गुनः) शिशिरऋतु केअ
वयव। शिष्टं व्याख्यातम् १३·२५·॥५७॥

+महीधरमतेब्रह्मात्रिऋषिः

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्॥ विश्वस्मै
प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद॥५८॥

का॰१७·१२·२३· यजमान की पद्या विश्वज्योति को तृतीयोपहिता-
विश्वज्योति के ऊपर उपधान करै॥सूर्यदेवत्य यजुः +। परमेष्ठी तु
झै दिवके पृष्ठ-ऊपरमें सादन करै॥ सूर्य तेरा पालक इतिविशेषःअ
न्यद्व्याख्यातम् १४·१४·॥५८॥

+शक्वरीमहीधरः

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्॥ इन्द्राग्नी त्वाबृ
हस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन्॥५९॥
ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः॥जन्मन्दे
वानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः॥६०॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः॥ रथीतमꣳ
रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम्॥६१॥

का॰ १७·१२·२४· आत्मा के दक्षिण आग्नेयकोणसे अपर दिशा
में रत्निमात्र अधिपद्याद्वय लोक से छोडिकर तृतीयलोकम्पृण

उपधानकरै ॥ तिस्रोऽपि द्वादशे व्याख्याता: ॥ ६१॥

घोषदश्वो न यवसे ऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ॥
आदस्य वातो ऽअनुवाति शोचिरध स्मते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२॥

का० १७·१२·२५ पञ्चमी चिति को पुरीष करि पूर्ववत् प्रच्छादन-करिके शर्करामय्यौ परस्पर संलग्ने सच्छिद्रे विकर्णी स्वयमातृण्णा संज्ञा द्वे इष्टके उपधान करते हैं। तिन्हों के मध्य उत्तर दिशामें अनूक रेखा के मध्य घोषदश्व इति विकर्णीष्टका को उपदधाति। वशिष्ठदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप्। मथ्यमानोऽग्निः कथ्यते। यदा जिसकालविषें वडे संवरणात् संव्रियतेऽस्मिन्नग्निरिति संवरणं अरणिकाष्ठ तिसव्यस्थात् वितिष्ठते प्रकाश होताहै तब घोष (शब्द) करताहै। तत्रदृष्टान्तः अश्वोन अश्व जैसे घास को खाते बोलताहै। इस बन्हिज्वलन के अनन्तर वायु अग्नि को अनुलक्षण करि प्रसरताहै वाय्वग्न्योः सख्यादितिभावः। कैसाहै वायु कि ज्वलते हुए अग्नि का संदीपन यद्वा इसकी ज्वाला को देखिकर पवन वहताहै। अध (अथ) वात करि अग्नि के ज्वलते सति ते + इस अग्नि के चलने का स्थान स्याम होता है ॥ ६२॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायांꣳसमुद्रस्य हृदये।
रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३॥

का० १७·१२·२५· आयोरिति दो कण्डिका करिके विकर्णी दक्षिणा स्वयमातृण्णा को उपधान करै ॥ आयोः परमेष्ठीति द्वे यजुषी स्वयमा

+ श्रूयात इति पदमेतस्येति व्याख्यातं परोऽक्षलान्मन्त्रस्य अर्थोतस्य व्रजनकृष्णं भवतीति शत० ८·७·३·१२· श्रुतेः॥

तृणादेवत्ये। हे स्वयमातृणे आयोः आदित्य‡ के स्थानमें तुम्हें स्था
पन करताहूं। कैसे आदित्य के कि अवतः जगत का पालनेवाला वा
दीप्यमान। तथा समुद्र (आदित्य ध) कैसे स्थान कि छायाश्रित्रयभू
न हृदय प्रधानभूत) में। कैसी तुम्हें कि किरणयुता अतएव शोभमाना।
तिस किसै कि जो तू द्युलोक को प्रकाश करती है पृथिवी को और विस्ती
र्ण अन्तरिक्षको प्रकाश करतीहै ॥६३॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं
दिवं यच्छ दिवं दृꣳह दिवं माहिꣳसीः॥ विश्वस्मै प्राणाया
पानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥ सूर्यस्त्वाभि
पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्व
द्ध्रुवा सीद ॥६४॥

व्याख्यातं १४-१२·॥६४॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि। सहस्रस्योन्मासि
साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥६५॥‡

इतिसꣳहितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इतिश्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशाखीयायां वाजस
नेयसꣳहितायां दीर्घपाठे पञ्चदशोऽध्यायः १५

का० १७·१२·२७· इष्टका चित पक्ष पुच्छ सहित अग्निको पीछे उत्तर
पूर्व दक्षिण पश्चिम विषें एक सहस्र हिरण्य शाकल करिके दो-दो
सो उदक सहित खडेहो प्रकिरै ॥ पञ्चाग्ने यानि यजूꣳषि १·दे·-ज०
२·या-अ०३दे·-त्रि०४दे·-हृ०५·दे·-पं०हे अग्ने सहस्र इष्टकाओं

‡ एतिनिरन्तरं गच्छतीत्यायुरादित्यः

‡ समुन्दतीतिसमुद्रस्तस्य आदित्यो हृदयाजगदार्द्रीकुर्वन्समुद्र उच्यते॥

[illegible] हूहै [illegible] सहस्रकी प्रतिमा। प्रतिनिधी है [illegible] [illegible]
[illegible] हुआ है [illegible] है सहस्राय [illegible] पारकी प्राप्ति को [illegible]
[illegible] हुई सो [illegible] करताहूं ॥६५॥

इतिश्रीगिरिधरभाष्येसप्तमोऽनुवाकः ७

श्रीवेदार्थप्रदीपेनतमोहार्दंनिवारयन्॥
पुमार्थांश्चतुरोदेयाद्गिरिदेवःसनातनः १५

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशारवाध्येतव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिपति श्रीजयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौकिमणेयनृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येपञ्चमीचिति वर्णनो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

गिरिप्रसादसंज्ञेन कथितापञ्चमीचिति
वेदार्थ दीपकेभाष्येबालकृष्णप्रसादतः

ओम् तत्सत् श्रीबालकृष्णार्पणमस्तु॥

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः
ओम्तत्सत्

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं क्वचिद्रूपं च साधनैर्बहुरूपकम् ॥
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ॥ १ ॥

रौद्रोऽध्यायः परमेष्ठिन आर्षं देवानां वा प्राजापत्यं वा

अ॰ १ नमस्ते रुद्र मन्यव॑ऽ उतो त॒ऽइष॑वे॒ नमः॑ । बा॒हुभ्या॑मु॒त ते॒ नमः॑ ॥ १ ॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
शतरुद्रियहोमोऽयं षोडशोऽध्यायईर्यते २६

पञ्चदशेऽध्याये चयनमन्त्रान्समाप्य षोडशे शतरुद्रियाख्यहोममंत्रा उच्यन्ते का॰ १८ । १ । १—५ । हिरण्य शकल सैं अग्नि प्रोक्षण के अनन्तर में शतरुद्रियसंज्ञक होम है । तिसकी आहवनीय में प्राप्ति विषें अपवाद कहते हैं । उत्तर पक्ष पश्चिम कोण विषें जो परिश्रित जंघामात्र्याद्यः पूर्व निखाता हैं तिन्हों में होम है । तत्र विधिः । आरण्य तिलों से मिश्रित गवेधुकों (सत्तुओं) को अर्कपत्र करि होमैं । क्या करि के कि अर्क काष्ठ करि सन्तत को क्षारि के परिश्रित में पातन करि अर्कपत्र को दक्षिण हस्त सैं लेकर अर्क काष्ठ को बाए में ले तिस करि पातन करना चाहिये । कोई ऋषि सक्तु के स्थान में अजा दुग्ध को कहते हैं । उदङ्मुख हो नमस्ते इस अध्याय करि कै । तहां तीनि अनुवाकों के अन्त में अर्भकेभ्यश्च वो नमः इत्यत्र क॰ २६ । जानुमात्र

परिश्रित में स्वाहाकार करना और पञ्च अनुवाकों के अन्त में सुख न्वने त्यत्र क॰ ३६ नाभिमात्र परिश्रित में स्वाहाकार है। नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इति क॰ ६४ प्रत्यवरोह मंत्र हैं तिन्होंसे पहिले मुखमात्रपरिश्रित में स्वाहाकार है। नमोऽस्तु इन तीनि कण्डिका ओंकरि प्रतिलोम होम है येदिवि क॰ ६४ मुखमात्र में॰ येऽन्तरिक्षमिति क॰ ६५ नाभिमात्र में॰ येपृथिव्या क॰ ६६ जानुमात्र में इतिसूत्रार्थः॥ नमस्ते। षोडशर्चोऽनुवाकः एकरुद्र दैवत्यः आद्या गायत्री तिस्रोऽनुष्टुभः तिस्रः पङ्क्तयः सप्तानुष्टुभः द्वे जगत्यौ। अध्यायस्य परमेष्ठि देव प्रजापतय ऋषयः मानइति द्वयोः क॰ १५-१६॰ कुत्सोऽपिऋषिः॥ हे रुद्र॰ रुत् (दुःख) को द्रवाने वाले यद्वा रुत (ज्ञान) को देने वाले अथवा पापी मनुष्यों को दुःखभोग से रुलाता है। हे रुद्र तेरे क्रोध के अर्थ नमस्कार हो और तेरे बाण के अर्थ नमस्कार और तेरी बाहुओं के अर्थ नमस्कार अर्थात् तेरा क्रोध॰ बाण॰ हाथ हमारे वैरियों प्रति प्रसरें न हम विषें॥१॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥२॥

हे रुद्र जो तेरी ऐसी देही है गिरिशन्त तिस देही से हमें देखि। कैसी देही कि मंगलरूपा। यतः अघोरा अविषमा॰ सौम्या अत एव अपापकाशिनी अर्थात् पुन्य फल को देने वाली। गिरि (कैलाश) विषें स्थित प्राणियों के सुख को विस्तार करनेवाली अथवा गिरि वाचा विषें स्थित सुख को विस्तार करनेवाली वा मेघ विषें स्थित ह्व

कारेण सु०—त्वी अथवा सर्वज्ञ कैसी देही कि शन्तमया सुख मया ॥२॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु माहिंसीः पुरुषं जगत् ॥३॥

हे गिरिशन्त तू जिस वाण को हाथमें धारण करता है क्या करनें कि शत्रुओं प्रति डालनें को हे गिरित्र कैलाशविषें स्थित भूतोंके त्राण करनेवाले तिस वाण को कल्याण कारनी करि किंच पुत्र पौत्रादिक और गौ अश्वादिकों को मति मार ॥३॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत् ॥४॥

हेगिरिश (कैलास पै सोनेंवाले) स्तुति रूप वचन करि तुझे प्राप्त होने को हमप्रार्थना करतेहैं । क्या प्रार्थना कि हमारे सव मनुष्य पशु आदि जिस प्रकार करि रोग रहित और शोभन मनस्कहों तैसा करि इतिशेषः ॥४॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥५॥

रुद्र मुझे सवसे अधिक कहै तिसके कहते मेरा सर्वाधिक्य है कैसा है अधिक वदनशील कि सवों का मुख्य,पूज्यत्वात् । देवताओंके अर्थ हित । रोगका नाश करने वाला, स्मरण करतेही रोगनाशसे । एवं परोक्षमुक्त्वा प्रत्यक्षमाह हे रुद्र सव राक्षसी ऐं तू हमसे दूरि करि । क्या करिकै कि सव सर्प व्याघ्रादिकोंको विनाश करिकै ।

कैसीहैं राक्षसियें कि अधोगमन शीला। अर्थात् सर्पनाम्नी राक्षसी-क्षेप साथ हीकरि॥५॥

असौ यस्ताम्रो॑ऽअ॒रु॒ण उ॒त ब॒भ्रुः सु॑म॒ङ्ग॒लः। ये चै॑न॑ꣳ रु॒द्रा अ॒भितो॑ दि॒क्षु श्रि॒ताः स॑हस्र॒शो॑ऽवै॑षा॒ꣳ हेड॑ ई-महे॥६॥

आदित्यरूपेणात्र रुद्रःस्तूयते। जो यह प्रत्यक्ष रुद्र रविरूप और जे रुद्र इसको सब ओडीसे पूर्वादि दिशाओं में किरण रूप करि-सहस्रशः (असंख्यात) श्रित हैं इन्हों के अस्मदपराधज क्रोधको ह मभक्ति करि निवारण करते हैं। कैसाहै यह कि उदय समय अत्यन्त लाल अस्त कालमें लाल। और अन्यदा पिशंग वर्ण। सुमङ्गलः-मङ्गलरूप रव्युदये सर्वमङ्गल प्रवर्तनात्॥६॥

असौ यो॑ऽव॒सर्प॑ति॒ नील॑ग्रीवो॒ विलो॑हितः। उ॒तैनं॑ गो॒पा अ॑दृश्र॒न्नदृ॑श्रन्नु दहा॒र्यः स दृ॒ष्टो मृ॑डयाति नः॥७॥

जो यह आदित्य रूप अवसर्पण उदय अस्त करते निरंतर चलता है। और इसे गोपाला- बेदोक्त संस्कार हीनाभी देखते हैं जलको हरण करनेवाली स्त्रियेंभी इसे देखतीहैं। कैसाहै कि नील ग्रीवः वि षधारण करने से नील है कंठ जिस्का अस्त होते समय नीलकंठ-जैसा दीखता है। विशेष करिकै लाल सो रुद्र हमें सुख देवे अर्थात् यह मंडलवर्ती रुद्रही तपता है यहजानते सुख करै॥७॥

नमो॑ऽस्तु॒ नील॑ग्रीवाय सहस्रा॒क्षाय॑ मी॒ढुषे॑। अथो॒ ये अ॑स्य॒ सत्वा॑नो॒ऽहं तेभ्यो॒ऽकरं॒ नमः॑॥८॥

नीलग्रीव रुद्र के अर्थ नमस्कार हो। कैसेके कि सहस्त्र हैं नेत्र जिस के॰ इन्द्रस्योपि। मीढुषे॰ सीचनेवाले अर्थात् पर्जन्यरूप वा तरु ण। और इस रुद्र के जे प्राणी भृत्य हैं तिन्हों को नमस्कार करता हूं॥८॥

प्रमुञ्च धन्वन॒स्त्वमु॒भयो॒रार्त्न्यो॒र्ज्याम्। याश्च॑ ते॒ हस्त॑ऽइ॒ष॑वः॒ परा॒ ता भ॑गवो वप॥९॥

हे भगवः षड्विधैश्वर्य युक्त। भगवान हे भगवन् धनुष की दोनों कोटियोंमें स्थित ज्या॰ मौर्वी को तू दूरि करि और जो तेरे हाथमें बा ण हैं तिन्हें परें डारि॥९॥

+ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः॥ ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णांभग इतीरणा॥

विज्यं॒ धनुः॑ कप॒र्दिनो॒ विश॑ल्यो॒ बाण॑वाँ२॥ऽउ॒त। अने॑श॒न्नस्य॒ या इष॑व अा॒भुर॑स्य निष॒ङ्गधिः॑॥१०॥

कपर्दि॰ जटाजूट वाले रुद्र का धनुष मौर्वी रहित हो। और बाणवा न् (इषुधिः॰भथरी) विशल्य विफल॰ भालें रहित हो। इस रुद्र के जे बाण ते नाश हों। इस रुद्रका खड्ग रखने का कोश खड्ग रहित हो। अर्थात् रुद्र हमारे प्रति न्यस्त सर्व शस्त्र हो॥१०॥

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑। तया॒स्मान्वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑ भुज॥११॥

हे मीढुष्टम॰ हे अतिशयेन बर्षने वाले तेरे हाथ विषें जो धनुष आयुध है। एक ते-पदं पादपूर्णाय। तिस धनुरूप आयुध करिके हमें सब ओडी से पालन करि। कैसी है धनुष कि रोग रहित नि रुपद्रप वा द्रढ॥११॥

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान्वृ॑णक्तु वि॒श्वतः॑। अथो॒ य इ॒

षुधिस्तवारे॰ अस्मन्निधेहितम् ॥१२॥

हे रुद्र तेरा धनुष संवन्धी आयुध सव ओडीसे हमें त्यागे अर्थात् नमारे और जो तेरा इषुधि (भर्थरी) तिसे हम से दूरिस्थापनकरि ॥१२॥

अवतत्य धनुष्ट्वँ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१३॥

हे सहस्राक्ष॰ सहस्र नेत्रवाले हे शतेषुधे॰ सौ भर्थरियोंवाले तू हमारे प्रति शान्त शोभनचित्तहो अर्थात् अनुग्रह करि क्या करिकेकि धनुषों को ज्या रहित और वाणों को भाल रहित ॥१३॥

नमस्त॰ आयुधायानातताय धृष्णवे ॥ उभाभ्यामुतते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१४॥

हे रुद्र तेरे आयुध वाण के अर्थ नमस्कार हो कैसे केकि अनातताय॰ धनुषविषे अनारोपित। धृष्णवे धर्षणशील॰ रिपुमारनेकोप्रगल्भके। और तेरी वाहुओं के अर्थ नमस्कार। तेरे धनुष के अर्थ नमस्कार हो तस्यापि विशेषणं अनातताय अवतारितमौर्वीकाय ॥१४॥

मा नो महान्तमुत मा नो॰ अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ॥ मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥१५॥

हे रुद्र हमारे महान्त (वृद्ध॰ गुरुपितृ आदिकों को मतिमार और हमारे अर्भक (वालक) को मतिमारि हमारे उक्षन्त (सींचे हुए॰ तरुण) को मतिमारि और हमारे सींचे (गर्भस्थ) को मति मारि हमारे पिता को मतिमारि हमारी माता को मतिमारि † हमारीप्रिया (वल्ल

† महान्तपित्रेन सिद्धि योमाताधिरेलघुन्सहाव्याहनादि ॥

भा॰स्त्री॰) तनू: शरीराणि पुत्र पौत्र रूपाणि मतमारि ॥१५॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ॥ मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥१६॥

हे रुद्र हमारे तोक(पुत्र) तनय(पौत्र) विषें मत हिंसाकरि जीवन विषें मत हिंसाकरि गौओं वि॰ तुरगों वि॰ अथवा विभक्ति व्यत्ययः तोक तनय॰ आयु॰ गो॰ अश्व को मत मारि और क्रोध युक्त हमारे वीरें(भृत्यों) को मत मारि इसमें तेरा क्या उपकार है वोह यह कि हवियुक्त हम सदैव तुझे याग के अर्थ बुलाते हैं त्वदेक शरणावयमिति भावः॥१६॥

अ॰२ नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः॥१७॥

नमो हिरण्यबाहव इत्युत्तरं द्रापे इति क॰४७॰ त्र्यक पर्य्यन्तं सर्वाणि यजूंषि। तत्र नमो हिरण्यबाहव इत्यादीनां चतुष्कद्ध्यश्च वो नम इत्यन्तानां क॰४६ चत्वारिंशादधिकद्वि शत संख्याकानां यजुषां तावन्तो रुद्रा देवताः नमो वः किरिकेभ्य इत्यादि चतुर्णां क॰४६ अग्निवायुसूर्या देवताः रुद्राणां प्रधानभूताः॥ छन्दांसि तु। चतुक्षरं दैवी पङ्क्तिः षडक्षरं यजुर्गायत्री सप्ताक्षरं यजुरुष्णिक् अष्टाक्षरं यजुरनुष्टुप् नवाक्षरं यजुर्बृहती दशाक्षरं यजुःपङ्क्तिः एकादशाक्षरं यजुस्त्रिष्टुप् द्वादशाक्षरं यजुर्जगती चतुर्दशाक्षरं सामोष्णिगेकमेव किरिकेभ्य इति।

एतान्येवात्र छन्दांसि॥तद्रुद्रमध्येके चनोभयतोनमस्कारः। पदद्वयात्पूर्वमेव पदोच्चारणात्पश्चाच्च नमःपदं येषां ते उभयतोनमस्कारः हिरण्य बाहवे इत्यादि श्वपतिभ्यश्च नम इत्यन्ताः क॰२७॰। ततोऽन्यतरतो नमस्कारः अन्यतरत आदावेव यजुर्द्वयस्य नमस्कारो येषां ते नमो भवा येत्यादि क॰२८॰ प्रविदते चेत्यन्ताः क॰४६॰। इषुमद्भ्य इत्यादि क॰२२॰ श्वपतिभ्यश्च इत्यन्ताः क॰२७॰ प्रत्यक्षाः व द्युतियुष्म छब्दयोगात्। इषुकृद्भ्य इति क॰४६॰ उभयतोनमस्काराः। सभाभ्य इति क॰२४॰ जातसंज्ञा रुद्राः। उभयतोनमस्काराः शान्ततमाः अन्यतरतो नमस्कारा घोरतराः॥ तेषां मन्त्राणामर्थ उच्यते एकैकस्यांकण्डिकायामष्टावष्टौ रुद्राः॥ हिरण्य आभरणरूप बाहुऐं जिसकी वोह हिरण्य बाहु और वोह हीसेनाको लानेवाला सैनानी तिस रुद्र के अर्थ नमस्कार॥१॥ दिशाओंके पालक रुद्र के अर्थ नमस्कार॥२॥ हरितवर्ण हैं केश(पत्र)जिन्होंके तिन वृक्ष रूप रुद्रों॰॥३॥ पशुओं(जीवों)के पालक रुद्र॰॥४॥ शष्पिञ्जर(बाल॰तृण॰ तद्वत पिञ्जर॰ पीतरक्तवर्ण ईदृश दीप्तिमान् रुद्र॰॥५॥ मार्गोंके पालक रुद्रके॥६॥ नीलवर्ण केश(जरारहित)के मङ्गलार्थयज्ञोपवीतधारी रुद्र॰॥७॥ गुणपूर्ण मनुष्यों के स्वामी के॥८॥१७॥

नमो॑ बभ्लु॒शाय॑ व्याधि॒नेऽन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै जग॑तां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ रु॒द्राया॑तता॒यिने॒ क्षेत्रा॑णां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सू॒ताया॑हन्त्यै॒ वना॑नां॒ पत॑ये॒ नमः॑॥१८॥

वभ्लुशाः कपिलवर्णा वा बिभर्त्ति रुद्रमिति वभ्लु॰ वृषभ॰ तिसपर वैठा।

शत्रुओंको वीधने वाला तिस रुद्र०॥९॥ अन्नों के पालक के अर्थ॰
१०॥ संसार निवर्तक रुद्र०॥ ११॥ जगत के पालक रुद्र०॥ १२॥ विस्तृत
धनुष सहित चलने वाले आततायी उद्यतायुध रुद्र०॥ १३॥ क्षेत्रों
(देहों) के पालक के०॥ १४॥ नमारने वाले के०। सारथी रूप रुद्र०। सा
रथी को नमारने वाले०॥ १५॥ वनों के पालक॥ १६॥ १८॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो, नमो भु
वन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो, नमो मन्त्रि
णे वाणिजाय, कक्षाणां पतये नमो, नम उच्चैर्घोषाया
क्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः॥१९॥

लोहित वर्ण गृहादिकर्ता विश्वकर्म रूपी के०॥१७॥ वृक्षों के पालक०
॥१८॥ भूमंडल विस्तारक धन का करने वाले स्थान भोग्य करने
वाले॥१९॥ ग्राम्य आरण्य औषधियों के पालक॥२०॥ आलोचन
कुशल (मन्त्री) वणिज व्यापार करने वाले०॥२१॥ कक्षों (वनगत गु
ल्म वीरुधादिकों) के०॥२२॥ युद्ध विषें महाशब्द करते रिपुओंके
रुलाने वाले के०॥२३॥ पत्तिओं (सेनाविशेष † वा पैदलों) के पाल
क०॥२४॥१९॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः स
हमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो
निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे
परिचरायारण्यानां पतये नमः॥२०॥

आकर्ण पूर्ण धनुष करि युद्ध विषें शीघ्र चलते वा सर्व लाभ प्राप

† एकोरथो गजाश्चैको नराः पञ्च पदातयः। त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते॥ इतिव्यासोक्तेः। महाभारत १।२२९।॥

कत्वेन चलनेवाले अर्थात् जहां जाता है सर्वत्र लाभको पाता है रुद्र०॥२५॥शरणागत प्राणियों के पालक०॥२६॥वैरियोंका अभिभव करता है निरन्तर वैरियोंको मारता है तिसके०॥२७॥सव ओ डीसे हनन करने वाली शूरसेना तिन्होंके पालक के०॥२८॥खड्ग धारण करने वाले वडे तिसके०॥२९॥ गुप्त चोर तिन्हों के पालक के०॥३०॥अपहार वुद्धि करि के निरन्तर चरता है आपण वाटिकादिकों में हरणेच्छा करि चरता है तिसके०॥३१॥ वनोंके पतिके०॥३२॥ रुद्रो लीलया चोरादि रूपं धत्ते यद्वा रुद्रस्य जगदात्मकत्वाच्चोरादयो रुद्रा एवध्येयाः यद्वा स्तेनादि शरीरे जीवेश्वर रूपेण रुद्रोद्विधा तिष्ठति तत्र जीव रूपं स्तेनादि शब्दवाच्यं तदीश्वर रुद्र रूपं लक्षयति यथा शाखाग्रे चन्द्रस्य लक्षकम् किंवहुना लक्ष्यार्थ विवक्षया मंत्रेषु लौकिकाः शब्दाः प्रयुक्ताः॥२०॥

नमो॒ वञ्च॑ते परि॒वञ्च॑ते॒ स्ता॒यू॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिण॑ इषुधि॒मते॒ तस्क॑राणां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सृका॒यिभ्यो॒ जिघा॑ᳪंसद्भ्यो मुष्ण॒तां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ऽसि॒मद्भ्यो॒ नक्तं॒ चर॑द्भ्यो विकृ॒न्तानां॒ पत॑ये॒ नमः॑॥२१॥

प्रतारण करता है सर्वतः प्रतारता है तिसके० स्वामीका आप्त होके व्यवहार विषे कहीं तदीय धन को चलाता है वोह वञ्चन सर्व व्यवहार विषें धनका चलाना परिवञ्चन॥३३॥ गुप्त चोरादि विधा रात्रि में घर विषें कूमिल देके द्रव्य के चुराने वाले। स्तेया एव अहर्निश अज्ञात और हनोर हें। पूर्वे स्तेना उत्तरे स्तायवः तिन्हों के पतिके०॥३४॥निषङ्गी,

खड्ग वा वाण धारण करने वाला इषुधि भर्थरी धारण करने वाले तदुभयरूप के॰॥३५॥ प्रकटचोरों के पतिके॰॥३६॥ वज्र करि चलने वाले शत्रुओं को मारने वाले रुद्र के॰॥३७॥ क्षेत्रादिकों विषें धान्य चुरानें वालों के पालक के॰॥३८॥ खड्गधारण करिके रात्र विषें वीथी निर्गत प्राणियों के घातक रुद्रों के॰॥३९॥ काट फाँसि के चुराने वालोंके पति के॰॥४०॥ २१॥

अ०२ नमः उष्णीषिणे गिरिचुराय कुलुञ्चानां पतये नमो नमः इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नमः आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नमः आयच्छद्भ्यो ऽस्यद्भ्यश्च वो नमः॥२२॥

उष्णीष + सेशिर लपेटिकर ग्राम विषें अपहरने को प्रवृत्त गिरिविषें अध्वन्यों के वस्त्रादि छीनलेने को पर्वतादि विषम स्थानचारी तदुभयरूप रुद्र॰॥४१॥ क्षेत्र ग्रहादि रूप भूमि को हरते वा कुत्सितको हरते तिन्हों के पालक के॰॥४२॥ जनोंके भीषण को वाण धारण किये तिन्हों के॰॥४३॥ हे रुद्रो तुम धनुषधारीओं के॰ चकारो मन्त्रभेद ज्ञापनार्थः एवमग्रेऽपि॥४४॥ आरोपण करतेहैं ज्याको धनुष में तद्रूपीओंके॰॥४५॥ भले प्रकार धारण करतेहैं वाणको धनुष में तिन तुम्हारे॰॥४६॥ आकर्षण करतेहैं धनुषोंको तिन्हों के॰॥४७॥ क्षेपण करतेहैं वाणों को तिन्हों॥४८॥ २२॥

+ शिरोवेष्टनवस्त्र।

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो

नमो॒ नम॑स्तिष्ठ॒द्भ्यो॒ धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ ॥२३॥

छोडते हैं बाणों को वैरियों विषैं तिन्हों के ॥४९॥ ताडते हैं शत्रुओं को तिन तुम्हारे ॥५०॥ स्वप्नावस्था का अनुभव करनेवाले तिन्होंके ॥५१॥ तुम जाग्रदवस्थावन्तोंके ॥५२॥ सुषुप्त्यवस्थावाले ओंके ॥५३॥ तुम बैठे हुओंके ॥५४॥ खडे हुओं के ॥५५॥ तुम चलनेवालोंके ॥५६॥२३॥ मुकतस्वापायसलक्ष्ये प्रवेष्टव्य:॥

नम॑: स॒भाभ्य॑: स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॑भ्यो॒ऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ आव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒वि॒ध्यन्ती॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ उग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥२४॥

अथ जातसंज्ञा रुद्रा रुद्रलोके सन्तिते कथ्यन्ते रुद्राद्वैत प्रतिपादनाय अथो एवꣳहैतानि रुद्राणां जातानीति शत॰९॰१॰१॰१५॰ श्रुतेः ॥ सभारूपी रुद्रोंके ॥५७॥ तुम सभा के पतिओंके ॥५८॥ अश्वोंके ॥५९॥ तुम अश्वों के पतिओं के ॥६०॥ आव्याधिनी देवियें वा सेनातिन्होंके ॥६१॥ तुम विशेषेण वीधिनेवाले तिन्हों के ॥६२॥ उत्कृष्टभृत्यसमूह जिन्हों के तिन ब्राह्म्याद्या माताओंके ॥६३॥ मारने समर्थ तुम दुर्गा आदिकों के ॥६४॥२४॥ सभादिषु रुद्रदृष्टि: कार्येतितात्पर्यम्॥

नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑भ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नम॑: ॥२५॥

देवताओं के अनुचर भूतविशेष तिन्हों के गणोंके ॥६५॥ गणों के पा

लक० तुम गणपतिओंके० ॥६६॥ व्रात०नानाजातीयों की संघा ति
न्हों ०॥६७॥ तुम व्रातों के पतिओं के ०॥६८॥ गृत्सों० विषय लम्पटों वा
बुद्धिमानों के०॥६९॥ तुम गृत्सों के पतिओं के ०॥७०॥ विरूपो० नग्न
मुण्डजटिलादिकोंके०॥७१॥ तुमविश्वरूपों० तुरंगवदन हयग्री
वादिकोंके०॥७२॥२५॥

नमः सेनाभ्यः० सेनानीभ्यश्च वो नमो० नमो रथिभ्यो०
ऽअरथेभ्यश्च वो नमो० नमः क्षत्तृभ्यः० संग्रहीतृभ्यश्च वो
नमो० नमो महद्भ्यो० ऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः॥८०॥२६॥

सेनारूपीओं के०॥७३॥ तुम सेनानीओं० सेनापतिओं के०॥७४॥र
थीओंके०॥७५॥ तुम विन रथ वालोंके०॥७६॥ क्षत्तारों, रथ के चला
ने वालों वा रथ के अधिष्ठाताओंके०॥७७॥ तुम सारथीओंके०॥
७८॥ महान्तों जातिविद्यादिकों से उत्कृष्टों के०॥७९॥ तुम अर्भकों
प्रमाणादिकों से अल्पों के०॥८०॥ इति त्र्यमाशीतिः॥२६॥

अ०४ नमस्तक्षभ्यो० रथकारेभ्यश्च वो नमो० नमः कुलाले-
भ्यः० कर्मारेभ्यश्च वो नमो० नमो निषादेभ्यः० पुञ्जि
ष्ठेभ्यश्च वो नमो० नमः श्वनिभ्यो० मृगयुभ्यश्च वो नमः॥२७॥

तक्षाओं० शिल्पजातीओं के०॥८१॥ तुम रथकारों सूत्राधार बिशेषोंके०
॥८२॥ कुम्भकारोंके०॥८३॥ तुम लोहकारों के०॥८४॥ निषादों मांसाशी-
ओं० भीलों) के०॥८५॥ तुम पक्षिपुञ्जघातकों० पुल्कसादिकोंके०॥८६
श्वानों के कण्ठ में रज्जुधारक गणों के०॥८७॥ तुम मृगों के लोभियों
के०॥८८॥२७॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्रा
य च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च
शितिकण्ठाय च ॥२८॥

श्वानः +(कुर्कुराः)तिन्ह रूपीओंकेण ॥८९॥ तुम कुत्तेओंके पालकोंके
॥९०॥ नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्य इत्यारभ्य क०२२ येव:–शब्दास्तेषु
जावाचका वा न युष्मदादेशाः॥ इत्युभयतो नमस्कारमन्त्राः समाप्ता
अथ नमस्कारोपक्रमा नाम मन्त्रा उच्यन्ते॥ उत्पन्न होते हैं जन्तु इस
से तिसके०॥९१॥ रुत्(दुःख)को द्रवाता है ति०॥९२॥ पाप को मारता
है ति०॥९३॥ यज्ञों की रक्षा करता है ति०॥९४॥ विष भक्षण से नीला
है कण्ठ जिसका ति०॥९५॥ श्वेत है कण्ठ नीलातिरिक्त भाग जिसका
ति०॥९६॥२८॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च
शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च न
मो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥२९॥

कपर्दी(जटाजूटवाले)के०॥९७॥ व्युप्त(मुंडे)केशवाले के० + ॥९८॥ सह
स्राक्ष(इन्द्ररूपी)के०॥९९॥ शतधन्वा(बहुत धनुषधारी)के०॥१००॥
गिरि(कैलाश)विषें सोंनेवाले के०॥१०१॥ शिपिविष्ट(विष्णुरूप वि
ष्णुः शिपिविष्ट इति श्रुतेः यद्वा शिपि पशुओं में प्रविष्ट पशवो वै शि
पिरिति श्रुतेः सर्वप्राणिष्वन्तर्यामितया स्थित इत्यर्थः यद्वा यज्ञो वै शिपि
यज्ञोऽधिदेवतात्वेन प्रविष्टः शिपिरादित्यो वा मण्डलाधिष्ठातेत्यर्थः
तिसके०॥१०२॥ अतिशयेन मेघरूपी सींचनेवाले०॥१०३॥ वाणवा

+ श्वभ्योऽपि प्रणतिर्युक्ता शिवाधिष्ठानशङ्कया। श्वानो वेदाः श्वपतयो वेदानां परिपालकाः॥ शिवरहस्ये
मल्लाख्यरिपुसंहारं कर्तुं भैरवरूपधृक्। भयो(यशो)स वाणतूणीरखड्गचर्मधरो हरः॥ तदा किरातवे
षेण देवाः(देवाः)सर्वे समाययुः॥ तदा वेदाः श्वरूपेण ययुर्दैवगणान्विताः॥ दिशं संपूरयन्तस्ते ध्वनिभिर्मल्ल
भीषकाः॥ ततो ममार तं मल्लं हरो भैरवरूपधृक्। तदाप्रभृति रुद्रोऽयं मल्लारिरिति(रीरिति)कीर्तितः॥ इत्यहो

बलभाष्यं (१) श्वनः श्वुनां(श्वुनं) नमस्कारः केत्याक्षेपः पराकृतः। + पाशुपतादिविशेषेण। * पत्यादिरूपेण मुण्डितत्वम्।
इति उग्रटः॥ भास्करीयभाष्यत्येवं (९) शिपिः शेप (१) इव निर्वेष्टितः खलतिरभिधेयः मज्जमंनरद्वेष्टरहितः (७)

लेके॰॥१०४॥२९॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षी
से च नमो वृद्धायच सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथ
माय च॥३०॥

रूपतो नमस्काराः॥ अल्पशरीर ति॰॥१०५॥ संकुचितावयवः ति॰॥१०
प्रौढाङ्गहे त॰॥१०७॥ अतिशयेन वृद्धः तस्मै॰॥१०८॥ वडी अवस्था का
त॰॥१०९॥ सवृद्ध वडेहैं विद्याविनयगुणादिकों से तिन पण्डतों के
ष वर्त्तमान त॰॥११०॥ जगत के आगे हुआ ति॰॥१११॥ प्रथमः सर्वत्र
मुख्यः त॰॥११२॥३०॥

नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्या
य च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च
द्वीप्याय च॥३१॥

जगद्व्याप्तः त॰॥११३॥ गतिशीलः त॰॥११४॥ वेगवान् त॰॥११५॥ शीभ्यः
आत्मश्लाघी तत्र भवः शीभो जलप्रवाहो वा क्षिप्रो वा तत्र भवः त॰
॥११६॥ कल्लोलों में हुआ त॰॥११७॥ अवस्वनः स्थिरजल वानीचे
गर्त्तादिकों में हुआ त॰॥११८॥ नदी में हुआ ति॰॥११९॥ द्वीप जला
न्तरवर्ति निर्जल भूमिमें हुआ ति॰॥१२०॥३१॥

अ॰ ५ नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापर
जाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय
च बुध्न्याय च॥३२॥

वयोऽवस्था विशेषाभिधायकाः षट् नमस्काराः॥ ज्येष्ठ अत्यन्तप्रश

न॰॥१२१॥ अत्यन्त युवा वा अल्प त॰॥१२२॥ पूर्व-जगत की आदि-
हिरण्यगर्भ स्वरूपेणोत्पन्नः त॰॥१२३॥ प्रलय में कालाग्नि रूपकारि उ
त्पन्न ति॰॥१२४॥ मध्ये-सृष्टि संहार के अन्तर देव तिर्यगादि रूपेण हु
आ ति॰॥१२५॥ अपगल्भ-अप्रगल्भ अव्युत्पन्नेन्द्रिय स्तद्रूपी वा एका
न्तरित के॰॥१२६॥ जघन-गवादि कों का पिछला भाग तत्र भवस्त॰
॥१२७॥ वृक्षादि कों की मूल में हुआ त॰॥१२८॥ ३२॥

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च
क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उ-
र्वर्याय च खल्याय च ॥३३॥

सोभ-गन्धर्वनगर वा दोनों पुण्यपापों से युक्त मनुष्य लोक † तहां हु
आ त॰॥१२९॥ प्रतिसर-विवाहोचित हस्त सूत्र वा अभिचार † तहां हु
आ त॰॥१३०॥ याम्यः-पापियों को नरकार्ति दाता त॰॥१३१॥ कुशल में
हुआ त॰॥१३२॥ श्लोकाः-वैदिक मन्त्रों वा यश से हुआ त॰॥१३३॥ अ
वसान-समाप्ति वा वेदान्त तहां हुआ ति॰॥१३४॥ सर्व सस्याढ्या भूमि
तहां धान्य रूपेण भवः त॰॥१३५॥ खल धान्य विवेचन देश तत्र भव
स्त॰॥१३६॥ ३३॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्र
वाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शू
राय चावभेदिने च ॥३४॥

वन † में वृक्षादि रूप करि हुआ त॰॥१३७॥ कक्ष ‡ तृण वा वल्ली त
हां हुआ त॰॥१३८॥ शब्द रूपी॰॥१३९॥ प्रति शब्द रूपी॰॥१४०॥ शीघ्रा

† प्रतिसरं हस्तसूत्रे माल्यवत् सरणे। व्रणशुद्धौ चमू पृष्ठे नियोज्यारक्षके (करणे) कणे मन्त्रभेदे पीति विश्वः॥

† वनं वृक्षौघो जलं वा। वनं प्रस्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानने।
‡ वृक्षो विरुधि दोर्मूले कक्षे शुष्कवने तृणे॥

सेना वाले०॥१४१॥धृष्ट रथ जिसका ति०॥१४२॥ युद्ध धीर के०॥१४३॥
रिपुओं को नीचे से विदारण करता है ति०॥१४४॥३४॥

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च व
थिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दु
य च आहनन्याय च ॥३५॥

बिल्म(शिरस्त्राण जिसका है)ति०॥१४५॥ पटस्यूत कर्पास गर्भ
रक्षक कवच तिस कवची के०॥१४६॥ लोहमय शरीर रक्षक वर्म
स वर्मी के०॥१४७॥ गजोपरिस्थ गजाकार कोष्ठ वरूथ वा र
ति तिस वरूथी के०॥१४८॥ श्रुत प्रसिद्ध के०॥१४९॥ प्रसिद्ध सेना
सकी ति०॥१५०॥ दुन्दुभी(भेरी)से हुआ ति०॥१५१॥ ताडन करते
जिस से बाजेका तिस दण्ड से हुआ ति०॥१५२॥३५॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते
च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सु
धन्वने च ॥३६॥

प्रगल्भ के०॥१५३॥ विचार करने वाले पण्डित के०॥१५४॥ खड्ग युक्त
के०॥१५५॥ तूण(भरतरी)युक्त के०॥१५६॥ तीक्ष्ण है बाण जिसके ति०
॥१५७॥ और और आयुध हैं जिसके ति०॥१५८॥ शोभन आयुध त्रि
शूल जिसका ति०॥१५९॥ शोभन धनुष जि०॥१६०॥ इति द्वितीया
शीतिः ॥३६॥

अ०६ नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्या
य च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च

वैशन्ताय च॰ ॥३७॥

स्रुति॰ क्षुद्रप्रवाह वा क्षुद्रमार्ग तहां हुआ ति॰ ॥१६१॥ कुल्य॰ रथ अश्वादि मार्ग योग्य तहां हुआ ति॰ ॥१६२॥ विषम मार्ग वा कुल्याप्रदेश में हुआ ति॰ ॥१६३॥ नीचे गिरता है जल जहां गिरि का अधोभाग तहां हुआ ति॰ १६४॥ कृत्रिमा सरिता में हुआ वा देह में अन्तर्यामि रूप करि ति॰ ॥१६५ सर में हुआ ति॰ ॥१६६॥ नदी में हुआ ति॰ ॥१६७॥ अल्प सर में हुआ ति॰ १६८॥ ३७॥

नमः कूप्याय चावट्याय च, नमो वीध्र्याय चातप्याय च, नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च, नमो वर्ष्याय चाव र्ष्याय च॰ ॥३८॥

कूप में हु॰ ॥१६९॥ गर्त में हु॰ ॥१७०॥ निर्मल शरत् के अभ्र में वा विगत दीप्ति जिस से तिस घनागम तहां हु॰ ॥१७१॥ आतप में हु॰ ॥१७२॥ मेघ में॰ १७३॥ विजली में॰ ॥१७४॥ वृष्टि में॰ ॥१७५॥ वृष्टि प्रति वन्ध में॰ ॥१७६॥ ३८

नमो वात्याय च, रेष्म्याय च, नमो वास्तव्याय च, वास्तुपाय च, नमः सोमाय च, रुद्राय च, नमस्ताम्राय चारु णाय च॰ ॥ ३९॥

वात में॰ ॥१७७॥ प्रलय में विद्यमान ति॰ ॥१७८॥ गृह भुव में हुआ॰ वास्तव्य ति॰ ॥१७९॥ गृह भुव को रक्षा करता ति॰ ॥१८०॥ उमासहित सोम ति॰ ॥१८१॥ दुःखनाशक के॰ ॥१८२॥ रक्त वर्ण उदय द्रवि रूप करि ति॰ १८३॥ अरुण ईषद्रक्त॰ उदयोत्तर कालीन अर्क रूप करि ति॰ ॥१८४॥ ३९॥

नमः शंगवे च, पशुपतये च, नम उग्राय च भीमाय च

नमः अग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥४०॥

शं (सुख) को प्राप्त करता है वा सुख रूप वेद वाचा जिसकी ति०॥१८५॥ पसु० प्राणियों का पालक ति०॥१८६॥ शत्रुओं के मारने को उग्रायुध ति०॥१८७॥ शत्रुओं को भय का उत्पन्न करने वाला ति०॥१८८॥ सामने में वर्तमान को मारता है ति०॥१८९॥ दूर में वर्त्त०॥१९०॥ मारने वाले लोक में जो मारता है अर्थात् तद्रूपेण रुद्र एव हन्तीति०॥१९१॥ अतिशयेन प्रलयकाल में सबों को मारता है ति०॥१९२॥ हरित हैं केश पत्र जिन्हों के तिन वृक्षों (कल्पतरु रूपी) के०॥१९३॥ तारता है संसार को ति०॥१९४॥४०॥

अ०७ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

शं (सुख) होता है वा शं सुखरूप और भव संसार रूप अर्थात् मुक्ति रूप और भव रूप ति०॥१९५॥ संसार सुख का देनेवाला ति०॥१९६॥ लौकिक सुख करता है ति०॥१९७॥ मोक्ष सुख करता है ति०॥१९८॥ शिव (कल्याण रूप० निष्पाप) ति०॥१९९॥ अत्यन्त शिव (भक्तों को भी निष्पाप करता है) ति०॥२००॥ अस्यां कण्डिकायां यजूंषि पूर्वस्यां दशोक्तेः ॥४१॥

अ०८ नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥४२॥

[1] स्त्रक्चन्दनादि रूपेण लौकिक सुखकारित्वम् शास्त्रादि रूपेण ज्ञानप्रदत्वान्मोक्ष सुखकारित्वमित्यर्थः । एताभ्यां पदाभ्यां साक्षात्सुख कारित्वम् पूर्वपदाभ्यां तद्वारा एकार्थपि तत्त्वमिति विवेकः ॥

पार संसाराब्धि केतीरपरजीवन्मुक्तरूपेणहुआाति०॥२०१॥संसारकेमध्य मेंसंसारित्वेनहुआाति०॥२०२॥प्रकर्षेण॰मन्त्रजपादि करि पापकेतरणे का हेतुति०॥२०३॥उत्कृष्टेन॰तत्त्वज्ञान करि संसारोत्तरणहेतुति०॥२०४ प्रयागादितीर्थोंमेंहुआाति०॥२०५॥तटमेंहुआाति०॥२०६॥शष्प्य वालतृ ण॰गङ्गातीरोत्पन्न कुशाङ्कुरादि मेंहुआाति०॥२०७॥फेन डिण्डिर में हुआाति०॥२०८॥४२॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥४३॥

सिकतामेंहु०॥२०९॥प्रवाह(स्रोता)मेंहु०॥२१०॥क्षुद्रशिला॰शर्करारूप पाषाण जिस प्रदेश में तद्रूपी के०॥२११॥स्थिरजल प्रदेशाति०॥२१२॥क पर्दीके०॥२१३॥पुरः सामने खडाहै वा शरीर में है सत्ताजिस्की वोहस र्वान्तर्यामी ति०॥२१४॥ऊषर तृणरहित देशातहांहुआाति०॥२१५॥वृद्ध सेवित मार्गमेंहु०॥२१६॥४३॥

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥४४॥

गोसमूहमेंहु०॥२१७॥गोष्ठ गौत मेंहु०॥२१८॥शय्यामेंहु०॥२१९॥गेहघर मेंहुआ॥२२०॥हृदय मेंहुआ॰जीवति०॥२२१॥निवेष आवर्त वा नीहार जल मेंहु०॥२२२॥काट दुर्गारण्यदेश वा कूप मेंहु०॥२२३॥गह्वरगिरिगु हादिकों वा गम्भीरजलमेंखडाति०॥२२४॥४४॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥४५॥

शुष्क काष्ठादिक में हु॰ ॥२२५॥ आर्द्र काष्ठादिक में हु॰ ॥२२६॥ पांसु (धूलि) में हु॰ ॥२२७॥ रज (गुण वा पराग १) में हु॰ ॥२२८॥ लोप (अगम्य प्रदेश वा पशुहार) में हु॰ ॥२२९॥ उलपा (वल्वजादि तृणविशेष ५) में हु॰ ॥२३०॥ उर्वी (भूमि वा वडवानल) में हु॰ ॥२३१॥ शोभन ऊर्व (कल्पानल) में हु॰ ॥२३२॥४५॥

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥४६॥

तरुओं के पत्र रूपके॰ ॥२३३॥ शादः शातन वा गिरते हैं पक्व पर्ण स्थित देश तद्रूपी के॰ ॥२३४॥ उद्यम करने वाले के॰ ॥२३५॥ शत्रुओं के मारने वाले के॰ ॥२३६॥ समन्तात् दैन्य करता है अभक्तों को ति॰ ॥२३७॥ प्रकर्षेण दैन्य करता है पापिओं को ति॰ ॥२३८॥ वाणों को करने वाले तिन रुद्रों के॰ ॥२३९॥ तुम धनुषों के करने वाले रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो ॥२४०॥ तिस्रोऽशीतयो रुद्राणां समाप्ताः । एवं चत्वारिंशदधिकशतद्वयमन्त्रैः रुद्राय सर्वात्मत्वमुक्तम् ॥ ॥अथ रुद्रेषु प्रधानभूतानामग्निवायुसूर्याणां संबंधीनि चत्वारि यजूंष्युच्यन्ते । चतुर्णामादौ नमः शब्द

५ उलप स्तु गुल्मिनी तृणभेदयोः ।

चत्वार्येव यजूंषि आद्यं चतुर्दशाक्षरं त्रीणि सप्ताक्षराणि तानि व्याहृति संज्ञानि॥ नमो वइति। देवता ओं रुद्रों के हृदयवत्प्रधानभूत तुम अग्नि वायु सूर्य ओं के अर्थ नमस्कार। देवानां हृदयेभ्य इत्यग्नि वायुरादित्य एतानि ह तानि देवानां हृदयानीति ९॰१॰१॰२३॰ श्रुतेः। जैसे अङ्गों में हृदय प्रधान है ऐसे ये रुद्रों में प्रधान हैं। कैसे हैं ने किकिरिकेभ्यः वृष्ट्यादि द्वारा जगत करते हैं। एते हीदं सर्वं कुर्वन्तीति ९॰१॰१॰२३॰ श्रुतेः॥२॥ पृथक् करते हैं धर्मिष्ठ और पापिष्ठ को तिन अग्न्यादिकों के॰॥२॥ विविध हिंसा करते हैं पाप को तिन अग्न्यादि॰॥३॥ आसमन्तान्निर्गताः सर्गादि में लोकों के अर्थ तिन रुद्रावतारों अग्नि वायु सूर्य ओं के अर्थ नमस्कार। तेभ्य सप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींषि अजायन्ताग्निर्योयं पवते सूर्य इति॥४॥४६॥ [margin: +सोमस्य पत इत्येतदिति ९॰१॰१॰२४॰ श्रुतेः॥]

अ॰५ द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नील लोहित। आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किं चनाममत्॥४७॥

सप्त ऋच एक रुद्र देवत्याः। आद्यो परिष्टाद्बृहती। हे द्रापे पापियों को कुत्सित गति प्राप्त करता है। हे अन्धसः सोम + के पते। हे दरिद्र निष्परिग्रह अद्वितीयत्वादितिभावः। हे नीललोहित कण्ठ में नील अन्यत्र लोहित है हे शिव हमारी इन प्रजाओं पुत्रादिकों को गवादि पशुओं को तू भय मत करि। प्रजा पशुओं का भङ्ग मत करि। पुनः हमारा किमपि द्विपद चतुष्पदादिकों को रोगी मत करि यद्वा रुग्ण मत हो॥४७॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥४८॥

कुत्सदृष्टा जगती। हम अपनी बुद्धि शंकर के अर्थ समर्पण करते हैं। कैसे के कि तवसे-बडे वा बलवान +कपर्दी के। क्षयद्वीर युक्त के वा नाश होते हैं रिपु जिससे। पुत्रादिकों वा पशुओंके अर्थ अथवा द्विपद चतुष्पदों में जिस प्रकार सुख हुआ है इस ग्राम वासस्थान विषें सब प्राणिजात सम्मृद्ध निरुपद्रव और स्वस्थ जैसे हुए तैसे हर में मति का समर्पण करते हैं इत्यर्थः ॥४८॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥४९॥

अनुष्टुप्। जो तेरी ऐसी देही तिस देही से हमारे जीवन को सुख करि। कैसी कि शिवा-अघोरा। और सर्व दिनों विषें कल्याण कारिणी औषधिरूपा-संसारव्याधिनिवर्तिका। रुत (शरीरव्याधि) की शिवा समीचीन निवर्तिकौषधि है ॥४९॥

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः। अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥५०॥

त्रिष्टुप्। रुद्र का आयुध हमें न मारो। और रुद्र की द्रोह बुद्धि हमें त्याग करो। हे मेढ्र कामों के वर्षने वाले तू दृढ धनुषों को ज्या रहित करि। किमर्थं हविर्लक्षण है धन जिन्हों के तिन यजमानों की भयनिवृत्ति के अर्थ। किंच पुत्र और पौत्र को सुख करि ॥५०॥

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ॥५१॥

इयमेकोना यवमध्या त्रिष्टुप्। हे मीढुष्टमः (अतिशयेन कामसेक्तः) हे शिवतमः (अत्यन्त कल्याणकर्त्तः) हमारे प्रति प्रशान्त और हृष्टचित्त हो।

किंच दूरस्थ वा वटादि वृक्षमें आयुध (त्रिशूलादिक) को राखिकर वर्म को भी राखिकर आगमन वा तप करि। ज्या शर हीन धनुष मात्र को शोभार्थ धारण करते आगमन करि ॥५१॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः। यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ॥५२॥

द्वे अनुष्टुभौ। हे विकिरिद्र विविध घातादि उपद्रव का नाश करता है हे विलोहित विगत्त है पाप जिससे-हे शुद्ध स्वरूप भगवन् तेरे अर्थ नमस्कार हो। हे रुद्र तेरे जे असंख्य आयुध हैं ते आयुध हमसे व्यतिरिक्त हनन करें ॥५२॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः॥ तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥५३॥

हे भगवन् तेरे हाथों में जो सहस्रों आयुध हैं तिन आयुधों के मुख शल्य हमसे पराङ्मुख तू करि। कैसा है तू कि ईशान (जगन्नाथ। अर्थात् धनुः खड्ग शूल वाण वर्मादिक सहस्र-सहस्र संख्याक हैं ॥५३॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्॥ तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५४॥

बहुरुद्रदेवत्या दशानुष्टुभोऽवतानसंज्ञाः। भूमिस्था रुद्रा उच्यन्ते। असंख्यात जे रुद्र भूमि के ऊपर स्थित हैं। तिन रुद्रों के धनुष सहस्र योजन व्यवहित मार्ग विषें हम उतारते अर्थात् अपज्या करिके अपने से दूरि फेंकते हैं ॥५४॥

अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि॥ तेषाꣳसहस्रयोजने

ऽव धन्वानि तन्मसि॥५५॥

अन्तरिक्षस्था रुद्रा उच्यन्ते। इस अन्तरिक्षविषेंअधिश्रितजेरुद्रहैं तिन्हों के धनुष॰ पूर्ववत्। कैसे अन्तरिक्ष कि विशाल। जलहैं जिसमें मेघाधारत्वात्॥५५॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवंरुद्रा उपश्रिताः। तेषांश्सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥५६॥

द्युस्था रुद्रा उच्यन्ते। रुद्र द्युलोक में स्थितहैं तिन्हों के॰। कैसेहैं कि श्याम है ग्रीवा जिन्हों की। श्वेतहै कण्ठ तिन्हों का। अर्थात् विषग्रास से कुछ एक कण्ठभाग स्याम कुछ एक श्वेतहै॥५६॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः। तेषांश्सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि॥५७॥

पातालस्था रुद्रा उच्यन्ते। जे रुद्र पृथ्वी के अधोभाग में चलते हैं वे पाताल में वर्तमानहैं। अन्यत्पूर्ववत्॥५७॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषांश्सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥५८॥

जे रुद्र वृक्षों (अश्वत्थादिकों) में स्थितहैं। कैसेहैं कि शष्पिञ्जराः बालतृण तद्वत् हैं पिञ्जर=हरितवर्ण। नीलहैं ग्रीवा जिन्हों की। तथा कोई एक लोहित वर्णहैं अथवा विगतहैलोहित (रुधिर) जिन्हों का लोहितपद मांसादिकों का उपलक्षण है विगत हैं लोहितादि धातुएँ अर्थात् तेजोमय शरीर हैं अन्यदुक्तम्॥५८॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषांश्सह

स्रयोजनेऽवधन्वांनि तन्मसि॥५९॥

जे ऐसे हैं तिन रुद्रों के॰पूर्ववत्।कैसेहैं कि भूतों देवविशेषों के अधिपतय: अर्थात् शरीरके अन्त।हैं तही के मनुष्यों के उपद्रव करने वाले तिन्हों के पालक हैं।तिन्हों में कुछ एक मुण्ड मुण्डे हुए कुछ एक जटा धारी॥५९॥

ये पथां पथिरक्षस ऐलबृदा आयुर्युध:। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽवधन्वांनि तन्मसि॥६०॥

और जे रुद्र ऐसे तिन्हों के॰ उक्तम्।कैसे कि पथां॰ लौकिक वैदिकमार्गों के अधिपति इतिपूर्वऽर्चोऽनुषङ्गः।तथा पथिरक्षस:॰पथो मार्गा:तानेव अन्यों को रक्षा करते हैं।ऐलबृदा: अन्नों के समूह वा पृथ्वीको धारण करते हैं अर्थात् अन्न से जन्तुओंके पोषक हैं।आयुर्युध: यावज्जीव युद्ध करने वाले वा पणी करिके युद्ध करते हैं॥६०॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिण:। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽवधन्वांनि तन्मसि॥६१॥

जे रुद्र तीर्थों प्रयाग काशी आदिकों में चलते हैं। कैसे हैं सृक आयुध हैं हाथ में जिन्हों के।खड्ग हैं विद्यमान जिन्हों के।सृकाहस्तत्वेऽपि निषङ्गित्वोक्ति: खड्ग प्राधान्याय। अन्यदुक्तम्॥६१॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽवधन्वांनि तन्मसि॥६२॥

जे रुद्र भुज्यमान अन्नों में स्थित होके जनों को विशेषेण ताडन करते अर्थात् धातुवैषम्य करि रोगों को उत्पन्न करते हैं।तथा पात्रों में स्थित क्षीरोदकादि विषें होके क्षीरादिक पीने वालों को ताडन करते हैं। अन्नोदक भोक्ताओं को व्याधिओं से पीडा करने का तिन्हें अधिकार है इतिभाव:

अन्यत्समानम्॥६३॥

य एतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे। तेषां सहस्र योजनेऽवधन्वानि तन्मसि॥६३॥

जे रुद्र एतत्प्रमाण जिन्हों का ते अतिशयेन बहुत हैं और कहे हुओं सेभी बहुत हैं जे रुद्र दश दिशाओं में व्याप्त हैं तिन्हों के धनुषों पूर्ववत्॥६३॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राची
र्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो
अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमे
षां जम्भे दध्मः॥६४॥

कण्डिका त्रयात्मिकानि त्रीणि यजूंषि प्रत्यवरोह संज्ञानि बहुरुद्रदेवत्यानि। त्रिलोकस्था रुद्रा उच्यन्ते। द्युलोक विषें जे रुद्र वर्तें हैं और जिन रुद्रों की वृष्टि ही बाण आयुध स्थानीया है अतिवृष्ट्यादि करि प्राणियों को मारते हैं तिन रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो॥ तिन रुद्रों के अर्थ प्रागभिमुखाः दश अङ्गुलीएँ करता हूं इति शेषः प्राङ्मुखाञ्जलि करने में प्राची मुखा दश अङ्गुलीएँ होती हैं। दक्षिणाभिमुखाः दशाङ्गुलीः करता हूं। प्रत्यङ्मुखा दश॰ ॰ताहूं। उत्तराभिमुखा दश॰॥ ऊपर में दश॰। अर्थात् अञ्जलि बांधके नमस्कार करता हूं॥ तिन रुद्रों के अर्थ अञ्जलिपूर्व नमस्कार हो।। ते रुद्र हमें सुख देवें। किं च ते रुद्र जिस पुरुष को द्वेष करते हैं इति शेषः और हम जिसे द्वेष करते हैं और जो हमें द्वेष करता है जिस पुरुष को पूर्वोक्त रुद्रों के जम्भ (दंष्ट्राकराल मुख) में स्थापन करते हैं अर्थात् हमारे द्वेष और द्वेष्य नर को पूर्वोक्त रुद्र भक्षण करें और हमें रक्षा करें॥६४॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः॥ तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः॥ तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६५॥

जे अन्तरिक्ष में रुद्र वर्तें हैं तिन्हों के अर्थ नमस्कार हो। जिनों के वायु आयुध स्थानीय है कुवात से अन्न को विनाश करि वात रोग उत्पादन करि के जनों को मारते हैं। तिन अन्तरिक्षस्थ वात रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो शिष्टं व्याख्यातम्॥६५॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः॥ तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः॥ तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६६॥

इति सꣳहितायां नवमोऽनुवाकः ९

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशाखीयायां वाजसनेयसꣳहितायां दीर्घपाठे षोडशोऽध्यायः १६

जे रुद्र पृथिवी में वर्तें हैं जिन्हों का अन्न (अदनीयवस्तु) आयुध है अयथान्न भक्षण कदन्नभक्षण वा चौर्य में प्रवर्तें हो रोग को उत्पादन करि के जनों को मारते हैं तिन पृथिवीस्थ अन्नायुध रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो। ते हमें रक्षा करें इत्यादि पूर्ववत्॥ एते प्रत्यवरोह मन्त्राः अथ प्रत्यवरोहाञ्जुहोतीति ९·१·१·३२· व्यवहाराय संज्ञाकरणम्॥ ६६

इति गिरिधरभाष्ये नवमोऽनुवाकः ९

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयवि

श्वामित्रपुराधिपतिश्रीजयकिशोरदेववर्म्मात्मजैः क्रिमणेयनृपतिगि
रिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये शतरुद्रीयहोमव
र्णनो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

हरिः ओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकंद्विरूपंच साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपंपरंस्तुमः १

अ०१ अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वन
स्पतिभ्योऽधिसम्भृतं पयः। तान्न इषमूर्जं धत्तमरुतः स
ᳬरराणाऽअश्मंस्ते क्षुन्मयि त ऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुग
च्छतु ॥१॥ अ-णाः। अ०। न-तौ। इ०म- ऽँ। ते०। त- नु। यदर०। २

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायः सप्तदशोऽधुना

सेकादिजयपर्यन्तो वेददीपे समीर्यते २

षोडशेऽध्याये शतरुद्रियहोम उक्तः सप्तदशे चित्यपरिषेकादिमन्त्रा
उच्यन्ते॥ का० १८·२·१· पक्षकी अपर संधि कक्ष तिसका समीप
निकक्ष दक्षिणपक्षकी अपर संधि समीप आत्माभागमें अश्माओं
को रखि उदककुम्भको ले आदिसे आरम्भकरि सपक्ष पुच्छ अग्नि
को प्रदक्षिण जलधारा करि समन्तात् अर्थात् अग्निसे सींचै॥ य
जुर्मरुद्देवत्यम्। हे मरुतः तिस प्रसिद्ध अन्न और रसको हमारे अर्थ तु
म स्थापन करो, देओ। कैसेहो तुम कि सम्यग्दातारः। कैसा अन्न और

रस को कि पाषाणों विन्ध्य हिम वदादिकों में शिश्रियाण। तथा सारभूता बल का हेतु। यद्वा अशन वति पर्ववति-मेघविषें जलको आश्रिता-वृष्टि सम्पाद्या। तथा जल यवादिका ओषधिओं अश्वत्यादिवनस्पतिओं के सकाश से अधिक संपादित गो द्वारा करि पय और दुग्धको आश्रित गौं जल पी ओषधि वनस्पति भक्षण करि पय दुहाती हैं। अर्थात् द्विरूपा-मेघोत्थ जल रूपा गोसमुत्था पय रूपा इष और ऊर्जको देओ+॥ का॰१८॰२॰२॰ सेकके अन्त में अश्म पर कुम्भ को अस्मँस्तेक्षुदिति रखिके मयि त ऽइति फिरि लेकर पुनः दोवार परिषिञ्चन करै॥ दे॰ छं॰ अश्मादेवत्या॥ हे अश्मन् सर्व भक्षक अग्ने तेरें क्षुधा हो (बहुहविषां भोज्यत्वात्॥ कुम्भमादत्ते॥ दे॰ छं॰ आशीर्देवता॥ हे अश्मन् तेरा सारभाग मेरे विषें हो इति शेषः॥ का॰१८॰२॰४॰ तिस पाषाण को कुम्भमें करिकें दक्षिण वेदिश्रोणियों में पूर्वाभिमुख खडा हो दक्षिणदिशाविषें अश्म सहित घट को निरसकरै॥ या॰ छं॰ शुक् देवतमाभिचारकम्। हे अग्ने तेरा शुक् (शोक) तिस नरको प्राप्त हो तिस किसे कि हमजिस नरको द्वेष करते हैं हम द्वेष विषय तेरा शोक जाओ॥१॥

इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके॥२॥

का॰१८॰२॰५॰ कुम्भनिरसनके अनन्तर न देखता लौटिकर दक्षिण

+ मरुतो वायवः श्रुतेः श० ९.२.१.५॥

वेदिश्रोणि समीपमें ईशानाभिमुख खडा हो आत्मा (अग्नि) कोक
र दोनो हाथ पसारिके यावत् स्पर्श करने को समर्थ तावत्स्पर्शक
रि इमाम॰ इति दो कण्डिकाओंको स्वरसे जपे ॥ अग्नि देवत्यंयजुः
हे अग्ने जे इष्टका पञ्चचितिओंमें उपहिताहें ये इष्टका मेरे अर्थअ
भिमतफल की दोग्ध्रीधेनुएँहों तेरे प्रसादसे इस लोकमें इति शेषः
तिन्हों की संख्या कहिता है एकेत्यादि यहां एकसे आदिले परार्धपर्य
न्त शब्दों से उत्तरोत्तर दशगुणिता संख्या कहियेहे। एका एकत्व सं
ख्याविशिष्टा॰ वोह दशगुणिता दशसंख्या को प्राप्त होतीहे॰ वोहद
शगुणिता शतहोती॰ पूर्व संख्यासहित उत्तर संख्याका ग्रहण आ
धिक्य के अर्थ॰ शत दश से गुणित सहस्र॰ सहस्र दश से गुणित अ
युत॰ अयुत दश से गुणित नियुत॰ नियुत लक्ष को कहिते हें नियु
त दशसेगुणित प्रयुत॰ प्रयुत दश लक्ष को कहिते हें प्रयुतग्रहण
कोटिका उपलक्षक है प्र॰ कोटि॰ को॰ अर्बुद॰ अ॰ न्यर्बुद॰
न्यर्बुद शब्दसे अब्ज संख्या समझनी इनोंका ग्रहण
अब्ज समुद्रान्त वर्तिनी खर्व निखर्व महापद्मशङ्कु
संज्ञा संख्याओंका उपलक्षक है तेन अब्ज को द
शसे गुण खर्व॰ ख॰ निखर्व॰ नि॰ महापद्म॰ म॰
शङ्कु॰ श॰ समुद्र॰ स॰ मध्य॰ मध्य॰ अन्त॰ अ॰
परार्धः। चकार इतरेतर समुच्चयार्थः। ए
वं एकादि अष्टादश संख्या संज्ञा संमि
ता इष्टका एता हे अग्ने मेरें गौएँ हों

१	एक
१०	दश
१००	शत
१०००	सहस्र
१००००	अयुत
१०००००	नियुत
१००००००	प्रयुत
१०००००००	कोटि
१००००००००	अर्बुद
१०००००००००	न्यर्बुद
१००००००००००	खर्व
१०००००००००००	निखर्व
१००००००००००००	महापद्म
१०००००००००००००	शङ्कु
१००००००००००००००	समुद्र
१०००००००००००००००	मध्य
१००००००००००००००००	अन्त
१०००००००००००००००००	परार्ध

इति पूर्वोक्तस्य निगमनम् । एतद्धेनु भवनं कुत्रार्थ्यते तदाह अन्य-
जन्म विषें तथा स्वर्गमें हों यद्यपि नियत संख्य इष्टका गिनतेहैं तथा
पि मन्त्र सामर्थ्यात् बर्धमाना एकादि परार्धोन्त संख्या होती हैंइति
भावः ॥ २ ॥

ऋतव॑ स्थ ऋता॒वृधे॑ ऋतु॒ष्ठा स्थ॑ ऋता॒वृधः॑ । घृत॒श्च्युतो॑
मधु॒श्च्युतो॑ वि॒राजो॒ नाम॑ काम॒दुघा॒ अक्षी॑यमाणाः ॥ ३ ॥

बृहती पङ्क्तिर्वा अग्निदेवत्या इष्टका देवत्या वा । हे इष्टका जे तुम एवं
विधाहो ते मेरें धेनुएँ होंवें इति पूर्वेण संबंधः । कैसी कि ऋतवः वस
न्तादि रूपाः । ऋत(सत्य वा यज्ञ) बढाने वाली । वसन्तादि ऋतुओं-
में खडी तिन्हें + । घृत स्रवाने वाली । मधु स्रवाने वाली । नामेति प्रसिद्धौ ।
विराजः विशेषेण प्रकाशती हैं ते द्युलोकस्पृणाभिप्रायमेतत् ।
कामोंकी पूरण करने वाली । क्षय रहिताः ॥ ३ ॥

स॒मु॒द्रस्य॑ त्वाव॒कया॑ग्ने॒ परि॑व्ययामसि । पा॒व॒कोऽ अ॒स्म
भ्यं॑ꣳ शि॒वो भ॑व ॥ ४ ॥

का॰१८॰२॰१०॰ मण्डूक शैवल वेतस तरुपुगरवा वंश में वांधकरति
से हस्तेनादाय अग्निक्षेत्र को प्रति ऋचा करि तिसंसे कर्षे ॥ आद्याया
दक्षिण श्रोणेरारभ्य दक्षिणांसं यावत्कर्षति ॥ द्वे गायत्र्यावग्निदेवत्ये
अन्त्यो दशाकः ॥ हे अग्ने समुद्र(जल)के शेवाल करिके तुमें परितः वे
ष्टन अर्थात् उपरि भाग में सर्वत्र विकर्षण करते हैं । और तू हमारे अ
र्थ शोधक और शान्त हो ॥ ४ ॥

हि॒मस्य॑ त्वा ज॒रायु॑णाग्ने॒ परि॑व्ययामसि । पा॒व॒कोऽ अ॒स्म

+ स्थशब्दस्य पुनरुक्तिः पादपूरणा । अस्ता इत्थ इति पुनर्वचनं मादरार्थम् ।

भ्यꣳ शिवो भव ॥५॥

दक्षिण श्रोण्या ह्युत्तर श्रोण्यन्तं कर्षति ॥ हिम (शीत) के जरायुवद् उत्पत्तिस्थानीय शेवाल करि हे अग्ने तुझे संवरण करते हैं तू हमारे॰॥५॥

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा। अग्ने पित्तमपामसि

मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ६

उत्तर श्रोणे रुत्तरांस पर्यन्तं कर्षति ॥ जगती त्रिष्टुब्वा। हे अग्ने पृथिवी विषें प्राप्त हो। तथा वञ्जुल शाखा में प्राप्त हो नदी के विषें उत्पन्न शेवाल में प्राप्त हो। मण्डूकय वका वेतस शाखाः कर्षणार्थे वेणो वद्धाः सन्ति तदयं मन्त्रो वदति। कस्मात्त्वेवमस्माभिः प्रार्थ्यत इत्यत आह हे अग्ने तू जलों का पित्त (तेज) है (योयस्यावयवः सतं नहि नस्ति तद्धर्मा च भवति। एवमग्निं संबोध्य मण्डूकी माह हे मण्डूकि (मण्डूको भेकस्तस्य स्त्री) तिन पूर्वोक्त जलों के साथ आगमन करि कि जिन्हों का अग्नि पित्त है जहां तू उत्पन्न हुई जो तू अग्नि की शान्ति के अर्थ इतस्ततः चलती है सो हमलोगों के किये चयन लक्षण यज्ञ को अग्नि समान तेजस और फलप्रदत्वेन शान्त करि ॥ ६॥

अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम्। अन्याँस्ते अस्म

त्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ७॥

उत्तरां सा दक्षिणांसं कृषति ॥ आग्नेयी बृहती। इस चित्याग्निस्थान वा मण्डूकय वका वेतस लक्षण उदक प्राप्ति साधन समुद्र (जलों) के गृहस्थानीय (तद्रूप) है अग्ने तेरी ज्वाला हमारे सकाश से हमारे विरोधी पुरुषों को तपावें (क्लेश देवें) हमारे अर्थ शोधक और शान्त हो ॥ ७॥

आग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देवजिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षिच॥८॥

१८.२.११ पक्षपुच्छों को प्रान्त से आरम्भ-आरम्भ आत्मा को आत्म संमुख संधि पर्यन्त प्रति ऋचा करि कर्षे, अग्ने इति दक्षिण-सन इति पुच्छ, पावकया इतिउत्तरपक्ष को॥ आग्नेयी गायत्रीव सुबद्दृष्टा।हे अग्ने हे पावक हे देव रोचन ज्वाला समूहसे आहवनी आत्मा करि स्थितहै इतिशेषः।मदनीया जिह्वा होतृवाग्रूपया करि इ शेषः।देवताओंको बुला और पूजि हावग्रेरधिकारी होत्र माहवनी रूपेण हविर्ग्रहणं चात एव स्तूयते॥८॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२॥ऽइहा वह। उप यज्ञँ हविश्च नः॥९॥

अय आग्नेयी मेधातिथि दृष्टा।हे पावक हे दीप्तिमन् हे अग्ने देवताओं को इस हमारे यज्ञ में बुला और यज्ञ समीप में हमारा हवि देवताओं को प्राप्त करि॥९॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच॰ उषसो न भानुना। तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण॰ आ यो घृणे न ततृषाणो॰ अजरः॥१०॥

जगती भरद्वाज दृष्टा।जो अग्नि पृथिवी विषें शोभमान है।किसक्र पा(सामर्थ्य)कि तिस सामर्थ्य वा दीप्ति से।कैसी कृपा कि पावयित्रीचि तयन्ती चेतयन्ती वा चित करने वाली तिस हृढ चय करने वाली से। रोचने दृष्टान्तःजैसे उषःकालाः भानु करि स्वप्रकाशेन रोचें हैं तद्वत्

किं च जो अग्नि घृणि † दीप्ति करिकै समन्तात् निश्चित शोभताहै इत्यनुषङ्गः नकारश्चार्थः। किं कुर्वन् कि गमन कुशल अश्वकेयामन् नियामक युद्ध में जैसे पराये बलों को हिंसा करता वा यामन् शब्दः कर्म बाचकः नु अनर्थकम् कर्म विषें त्वरमाण जैसे अश्वके रमणीय पद में अध्वर्यु करि आहित है। तथा तत्षाणः पूर्णाहुतिकाप्सा। जरा रहित। अर्थात् जो ऐसा अग्नि तिसै कृषते हैं॥१०॥

अ॰२ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽअस्त्वर्च्चिषे। अन्याँस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव॥११॥

का॰१८॰३॰५॰ हिरण्य शकल सहित स्रुक्स्थ आज्य दधि मधु घृत कुश मुष्टि युता पात्री इन दोंनो को लेके अध्वर्यु चित्याग्नि को आरोहण करे परन्तु ब्रह्मा यजमान अग्नि से दक्षिण बैठें॥ आग्नेयी बृहती लोपामुद्रादृष्टा। हे अग्ने तेरे शोचन हेतु तेजके अर्थ नमोऽस्तु। कैसे तेज कि हरताहै सब रसों को तिस के अर्थ। तेरे पदार्थ प्रकाशक तेज के अर्थ नमोऽस्तु। अन्यदुक्तम्॥११॥

नृषदे वेडप्सुषदे वेड्बर्हिषदे वेड्वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट्॥१२॥ न-ट्। अ॰ अ-ट्। इ॰। ब-ट्। उ॰। व-ट्। ऋ॰। स्व-ट्। लृ॰॥१२॥ १२॥

का॰१८॰३॰६॰ आरोहण किये पीछें स्वयमातृण्णा विषें पञ्च गृहीत को होमें पञ्च मन्त्रों से नाभिवदिति दक्षिणांस श्रोणि द्वयोन्तरां समध्यमें हिरण्य को विनदेरवे॥ पञ्चाग्नेयानि दै-बृ॰१॰५॰ दै-पं॰२॰३॰४॥ मनुष्यों में जठराग्नि रूप करि तिष्ठै है वोह नृषत् प्राण तिस के अर्थ वेट् हविर्दत्तम् वेट् शब्दः स्वाहाकारार्थः †॥१॥ जलों विषें और्वरू

† दीप्तिमानित्यर्थः उ॰

† प्रत्यक्षं वैतद्यत्स्वाहाकार इत्यादि शत॰४॰२॰१॰७॰ श्रुतेः

पेण सीदति॥२॥ बर्हिषि॰ यज्ञोंमें आहवनीयादि रूपेण तिष्ठे हैं॰ वा ओषधियोंमें॥३॥ वन वृक्षसमूह तहां दावाग्नि रूपेण तिष्ठति॥४ स्वः॰ स्वर्गमें आदित्य रूपेण विद्यते अर्थात् सीदति यद्वा स्वः॰ आदित्यं विन्दते तस्मै वषडस्तु॥५॥१२॥

ये दे॒वा दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑न थ्ँ संवत्स॒रीण॒मुप॑ भा॒गमास॑ते। अ॒हु॒ता दो॑ ह॒विषो॑ य॒ज्ञे॒ऽअ॒स्मिन्त्स्व॒यं पि॑बन्तु॒ मधु॑नो घृ॒तस्य॑॥२३॥

का॰१८॰३॰७॰ पात्रमें सिक्त दधि मधु घृत को कुशाओं से परिश्रित्सहित सपक्ष पुच्छ अग्निको भीत्तर और वाहिर प्रोक्षण करै दोऋचाओं करिके॥ जगत्यौ प्राणदेवत्ये। ते प्राण रूपा देवा इस चयन लक्षण यज्ञमें मधु दधि घृत रूप हविके भागको आपही पीवें अर्थात् स्वाहाकार समर्पण विना स्वयमेव स्वीकरें। कैसे हैं तेकि अहुताद॰ अहुतकोभक्षणकरतेहैं अन्य देवता अग्निहुत को भक्षण करते हैं परन्तु प्राणः साक्षात् अन्नको खातेहैं इसहेतु अहुताद हैं। ते कौंन कि संवत्सरीण भागको उपासते हैं॰ संवत्सरं हि भृत्वाग्निश्चीयते इत्याभिप्राय॥ कैसे हैं यज्ञार्ह देवताओं के मध्य यज्ञ योग्य दीप्यमान हैं॥२३॥

ये दे॒वा दे॒वेष्वधि॑ देव॒त्वमाय॒न्ये ब्रह्म॑णः पुर॒ए॒तारो॑ऽअ॒स्य। येभ्यो॒ न॒ऽऋ॒ते पव॑ते॒ धाम॒ किं च॒न न ते दि॒वो न पृ॑थि॒व्या अधि॒ स्नुषु॑॥२४॥

जे प्राणादिक देवता इन्द्रादिक देवताओंके विषें देवत्वको प्राप्त हुए इन्द्रादीनामपि प्राणदेवाः। जे इस इस ब्रह्म (जीव) के आगे में चलते हैं †

† प्राणा हि प्राणिनां पुरःसराः अयमग्निर्ब्रह्म तस्यैते पुरएतार इति ८॰२॰१॰१५॰ श्रुतेः।

प्राणों विना चीयमान अग्नि वहने को नहीं समर्थ होता। किंच जै-
न प्राणों विना शरीर कोई भी चेष्टा नहीं करता। इत्थम्भूता जे प्राण
देवा ते पुनः कहां हैं तत्राह ते प्राणरूपा देवा स्वर्ग में नहीं हैं पृथिवी
में ते नहीं हैं। यद्वा दिवी के प्रदेशों में न पृथिवी के प्रदेशों में ना किंतु
हैं कि स्नुषु अधि स्नु प्रक्षरणे-स्रोता ओं चक्षुरादिकों प्राण यत्नों
में ते अधिश्रत्य वर्ते हैं तेषूपलभ्यन्ते तेषां स विशिष्टः प्रदेशः॥१४॥

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः। अन्याँ
स्ते ऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यं शिवो-
भव॥१५॥

का०१८-३-८-प्रोक्षण के अनन्तर अग्नि से उतरे॥ अग्निदेवत्या
पङ्क्ति है हती वा। हे अग्ने तेरी हेतयः (ज्वाला) हमसे अन्यों को तपें और तू
हमारे अर्थ पावक और शिव हो। कैसा है तू कि प्राणों को यजमानों
के अर्थ देता है अपान को दे० व्यान सर्व शरीर संचारी वायु को दे०
वर्च बल को दे० धन को देता है॥१५॥

अ० ३ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्। अग्नि
र्नो वनते रयिम्॥१६॥

का०१८-३-१२-शाला में आकर पञ्चगृहीत आज्य को शालाद्वारी-
य अग्नि में होमें॥ आग्नेयी गायत्री भरद्वाजदृष्टा। अग्नि सब राक्ष
स को निरन्तर क्षीण करै। किस करिके कि तीक्ष्ण तेज से। किंच अ
ग्नि हमारे अर्थ धन को देवे॥१६॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता

नः। स आ॒सिषा॑ द्रवि॑णमि॒च्छमा॑नः प्रथम॒च्छद॑वं॑राँ॒ आ॥ ऽआवि॑वेश॥१७॥

१७·३·१२·पञ्चगृहीत होम के अनन्तर षोडश गृहीत आज्य जुहूमें करिके जिसके अर्ध्व को अनुवाक शेष यइमाविश्वेत्या विहव्या यथा सदिष्यन्तोऽष्टर्चे करि शालाद्वारीमेंहीहोमें॥ भुवनविश्व कर्मदृष्टा विश्वकर्मदेवत्याः षोडश त्रिष्टुभः॥ प्रजाः हरन्तं सृजन्तं विश्वकर्मणं पश्यन्नृषिः कथयति। जोविश्व कर्मा सब भूत जातों के संहार किये सन् स्वयं स्थित होताहुआ। कैसाहैकि ऋषिः (अतीन्द्रिय दृष्टा-सर्वज्ञ। होता-संहार रूप होम का कर्ता। हम लियों का पिता-जनक अर्थात् जो परमेश्वर प्रलय कालमेंसव लोकों को संहार करिकै स्वयं स्थितवान्†। वोह तादृश परमेश्वर आशिषाभिलाषेण वहुत होंऊँ इत्येवं रूपेण पुनः सिसृक्षा रूपेण जगद्रूप धनको अपेक्षमाणः अवरान् अभिव्यक्त उपाधिओंकोजीव रूपेण प्रविष्टहुआ। कैसाकिप्रथम-एक अद्वितीय स्वरूप को आच्छादन करता प्रविष्ट हुआ ‡॥१७॥

कि॒ꣳस्वि॑दासीदधि॒ष्ठान॑मा॒रम्भ॑णं कत॒मत्स्वि॑त्कथासी॑त्। य॒तो॒ भूमि॑ञ्ज॒नय॑न्वि॒श्वक॑र्मा॒ वि द्यामौर्णो॑न्महि॒ना वि॒श्वच॑क्षाः॥१८॥

अथेश्वरो यथा जगत्सृजति तत्प्रश्नोत्तराभ्यामाह। लोकमेंजैसेघटादिबनानेकी इच्छा करता कुलाल(कुम्हार)गृहादिक स्थानको अधिष्ठितहो मृद्रूप आरम्भकद्रव्य और चक्रादि उपकारी वस्तु करिघ

† तथा चोपनिषदः आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचनमिषत् सईक्षत सोम्येदमग्र ऽआसीदेकमेवाद्वितीयमित्याद्याः।

‡ सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किंच तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदित्यादिश्रुतेः।

टादिक निष्पादन करताहै ईश्वरस्य तदाक्षिप्यते। स्विदिति वितर्के॰ द्यावा भूमी सृजते हुए विश्वकर्मा का अधिष्ठान क्या होताहुआ क्योंकि विना स्थान के कुछ भी नहीं कर सकते। स्विदिति वितर्के आरम्भण आरम्भ करते हैं जिस से वोह उपादान कारण जैसे मृदा घटादिकों का और कथा (क्रिया) किस प्रकार थी अर्थात् निमित्त कारण भी क्या था दण्ड चक्र सलिल सूत्रादिकों से घटादिक निष्पादन होते हैं तत्स्थानीय क्या था। कि जिस काल में विश्वकर्मा भूमि और स्वर्ग को उत्पन्न करते सन् अपनी सामर्थ्य करिके द्यावा पृथिवी आच्छादित करता हुआ। कैसा है कि विश्वचक्षाः॰ सर्वद्रष्टा अतीत आगत वर्त्तमान कालोंका युगपद्द्रष्टा अर्थात् अनन्यशक्तिः ॥१८॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥१९॥

उत्तर माह। एकः (असहायः) देवः (विश्वकर्मा) द्यावाभूमी उत्पन्न करते बाहुस्थानीयों धर्माधर्मों से संयोग को प्राप्त होताहै औरपतत्रों (पतनशीलों) अनित्यों पञ्चभूतों से संयो॰ ताहै अर्थात् धर्माधर्मरूप निमित्तों और पञ्चभूतरूप उपादानों से साधनानन्तरं विनैव सब को सृजताहै यद्वा धर्माधर्माभ्यां भूतैश्च संधमति संगमयति जीवान्। कैसाहै कि सर्वतः हैं चक्षुएँ जिसकी। सर्वतो मुख हैं जिसके। सर्वतो भुजाहैं जि॰ और सर्वतो चरण जि॰। परमेश्वरस्य सर्वप्राणात्मकत्वा द्यस्य यस्य प्राणिनो ये चक्षुरादयस्ते तदुपाधिकस्य

परमेश्वरस्यैवेति सर्वत्र चक्षुराद्यः सम्पद्यन्त इत्यर्थः ॥१९॥

किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥२०॥

पुनरपि प्रश्नः। स्विदिति वितर्के वोह वन कहां था और वोह वृक्ष कहां हुआ था कि जिस वृक्ष और वन से विश्वकर्मा द्यावा पृथिवी गढता छीलता हुआ नहीं तैसा वृक्ष और वन सम्भवै है। अर्थात् लोक में गृहादि निर्माण की इच्छा करता किसी वन में किसी वृक्ष को छेदि कर तक्षणादि से स्तम्भादिकों को करता है यहां वोह नहीं है। किंच हे विद्वांसः मनसा पर्यालोच्य तदपि तुमको पूछता है वोह क्या कि भुवनों को धारण करते जिस स्थान को स्थित हुआ था तदपि पृछत। कुम्भकारादि गृहादिक को अधिष्ठित होके घटादि करता है तदधिष्ठानमपि पृछत ऊर्णनाभि वदयमात्मारम्भण इति भावः॥ अस्योत्तरं तैत्तिरीये कृष्णयजुर्ब्राह्मणे २ काण्डे ८ प्रपाठके ६.७ अनुवाकयो सूचितम माध्यन्दिनीयायां नास्ति॥ ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् ६ यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा विब्रवीमिवः। ब्रह्माध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥७॥२०॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा। शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥२१॥

हे विश्वकर्मन् हे हविलक्षणान्नवान् तेरे जे उत्कृष्ट स्थान और जे-

छोटे स्थान मध्यमस्थान इन्हें सखिओं (यजमानों) के अर्थ दे। कथ
प्रकार इति चेत् यजमान संबंधिनी हवि के उपस्थित हुए सति अपने
शरीर को बढा कर आपही पूजि। हम पूजा करते हैं यह कहिने को
असमर्थ हैं मनुष्य कहां तुझे पूजने को समर्थ है इस हेतु कहिते
हैं कि आपही पूजि॥२१॥

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्। मुह्यन्त्वन्येऽअभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥२२॥

हे विश्वकर्मन् मेरे दिये से हर्षहुए सन् पृथिव्याश्रित भूतों (प्राणियों) औ
र द्युलोकाश्रित भूतों को मेरे अनुग्रह के अर्थ आप पूजि। किंच तेरे प्रसा
द से अन्य स्थान में स्थित शत्रु मोह को प्राप्त होवें किंच इस यज्ञ में
इन्द्र हमारे को सूरिः आत्मज्ञानोपदेष्टा हो॥२२॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम। स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा॥२३॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्॥२४॥

द्वे ऋचौ व्याख्याते ८।४५। ४६।॥२३॥२४॥

अ० ४ चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽअजनन्नम्नमाने। यदेदन्ताऽअददृहन्त पूर्वऽआदिद्द्यावापृथिवी

अप्रथेताम् ॥ २५ ॥

का॰ १८॰ ३॰ १३॰ अष्टर्चेन षोडश गृहीत के अपर अर्धको होमें ॥ यदाद्य यदेव पहिलें वसिष्ठादिक मुनिद्यावा भूमिके अन्नोंको स्तुती करते द्यावा पृथिवीकी दृढताके अनन्तरमेव द्यावा पृथिवी को पृथुकरते । तदा द्यावा पृथिवी के प्रथनानन्तर चक्षुरादिक इन्द्रियों का पा विश्वकर्मा मनसे धीर होनिश्चित इन द्यावा पृथिवी औ प्रति उद क को उत्पन्न करता दृढताके अर्थ दृष्टि करता हुआ । क्या करिके कि मान द्यावा पृथिवी को थांम करि इति शेषः अर्थात् जगतके अ ग्रह के अर्थ द्यावा पृथिवी को थांभके ॥ २५ ॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन्पर एक
माहुः ॥ २६ ॥

जिस लोकमें सप्त ऋषि विश्वकर्मा सहित एकत्व को प्राप्त हैं तिस लोकमें जे पुरुष इष्टों (अभिलषितवस्तुओं) इष (आहुति रसभूत अन्न) सहित भ ले प्रकार पुष्ट होते हैं अर्थात् ते विश्वकर्म लोक में इष्ट भोगों को प्राप्त होते हैं । ते कौन कि जिन्हों का विश्वकर्मा सम्यग्द्रष्टा अर्थात् विश्वक र्म द्रष्टा सुखी होवें । कैसा है विश्वकर्मा कि विमना सर्व कर्मज्ञ । और नभोव्यापकः वा संहर्ता । धाता (पोष्टा-स्थिति कर्ता । उत्पादक । स र्वों से उत्कृष्ट । एवं विधो विश्वकर्मा येषां द्रष्टा ते मुच्यन्ते भक्तानेव पश्यति तस्माद्भक्तिः कार्येत्यर्थः ॥ २६ ॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धर्मानि वेद भुवनानि वि-

श्वा। यो देवानां नामधा एकं एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥२७॥

जो विश्व कर्मा हमारा पालक उत्पादक और जो विशेषेण धारक: सेतु: और जो सब स्थानों और भूतजातों को जानताहै। और जो एक द्वितीय एव सन् देवताओंके नाम करताहै + तस्मात् अन्य भूत त संप्रश्न(भले प्रकार प्रश्न) जिसका क्रियामें जैसे तैसे प्रलयकाल में तिस विश्व कर्मा के एकत्व को प्राप्त होतेहैं यद्वा संप्रश्न भले प्रकार अपने अधिकार को पूछिकर भूतजात चलतेहैं स एव स्वाधिकारों में नियुक्त करताहै इतिभाव:॥२७॥

+नामानां विधातावक्तोदीत

तऽआयजन्त द्रविणंसमस्माऽऋषय:पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि॥२८॥

ते पूर्वे विश्वकर्म करि सृजे वसिष्ठादिक ऋषि इस भूतग्राम के अर्थ द्रविणजल लक्षण वा भोगजात को अभिमुख्येन देतेहैं। कैसे देतेहैं कि न भूना नवाहुल्यकरि किंतु युक्ति अर्थात् कामवर्षित्वसे। कैसे हैं कि जरितार: स्तोतार:। ते कौन कि जे ऋषि इन भूतोंको सृजतेहैं। अर्थात् तिन्हें जलदेकर जिलाते हैं। कैसे हैं कि असूर्त,समस्तावयवलिङ्ग शरीर करि ईरित। तथा अन्तरिक्ष लोकमें स्थित। कैसे अन्तरिक्ष कि सूर्त,विस्तीर्ण॥२८॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति। कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवा: समपश्यन्त

पूर्वे ॥२९॥

प्रश्नोत्तररूपामन्त्राः ब्रह्म विषय प्रश्नः। विभक्ति व्यत्यय बाहुल्यमत्रमं
त्रे। जोहै हृदय में इति शेषः जोईश्वर तत्त्व हृत्पुण्डरीक मेंहै वोह द्यु
लोक से दूर में तिष्ठैहै। इस पृथिवी से भी दूर में। देवताओं और असु
रों से दूर में दूरत्वं विलक्षणत्वम् अर्थात् सब जगत के विलक्षणत्व
से गुरु शास्त्र विमुखोंसे नहीं जानियेहै। किं च स्विदिति वितकैं जलनें
प्रथम किस गर्भको धारण किया। प्रथमोत्पन्ना देवताओं (वशिष्ठादि
कों) ने जिस गर्भ में देखा जगत् इति शेषः। भाव यह है कि स्थूल ही य
ह जगदाधार गर्भ रूप नही जाना जाता तो अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व कों
जानना कहां इस में तो कुछ कहिनाही नहीं ॥२९॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समगच्छन्त वि
श्वे। अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुव
नानि तस्थुः ॥३०॥

प्रत्युत्तरमाह। जलनें तिसी गर्भको धारण किया कि जिस कारण भू
त गर्भमें सब देवता संगत हुए वर्तेहैं। ननु तिस गर्भ का कोंन आधार
है तत्राह। जन्म रहित परमेश्वर के नाभिस्थानीय स्वरूप के मध्य
में एक अविभक्त अनन्यभूत किंचिद्बीज गर्भरूप स्थापित है
कि जिस वीज विषें सब भूत जात स्थित हैं + स एव सर्वाश्रयो न तु
तस्याप्यन्यऽआश्रया इति भावः ॥३०॥

नतं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥३१

+ अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्। तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्॥ मनु० १।८।९॥

दूरानीमुपदिशति। जिस विश्वकर्माने ये भूतजात उत्पन्न किये तिसे हे जीवो तुमनें न जाना। ननु मैं देवदत्त हूं यज्ञदत्त हूं यह हमने अपने को जाना इतिचेत् न नहीं मैं प्रत्यय गम्य जीव रूप परमेश्वर तत्त्व हूं किंतु हम तुम प्रत्यय गम्य जीवों के अभ्यन्तर वास्तव रूप अन्य है मुरु प्रत्यय से अतिरिक्त सर्वोपदान वेद्य ईश्वर तत्व विद्यमान है। जीवरूपवत् वोह कहीं भी न जाना इतिचेत् तुम ईदृश प्रवर्त हुए इस हेतु न जाना। कैसे हो कि नीहार (कुहर) सदृश अज्ञान करि आवृत्तत्व से न जाना जैसे नीहार न अत्यन्त असत् दृष्टि के आवरकत्व से और न अत्यन्त सत् काष्ठ पाषाणादिवत् रोध करने समर्थ अयोग्यत्व से एवं अज्ञान भी नात्यन्त मसत् ईश्वर तत्त्वावरकत्वात् नापि सत् वोधमात्र निवर्त्यत्वात् ईदृश अनिर्वचनीय अज्ञान करि तुम सब जीव प्रवर्त हुए। न केवल नीहार और जल्पन अर्थात् मैं देवता हूं मनुष्य हूं मेरा यह घर क्षेत्र इत्यादि अनृत जल्पन से व्याप्त हुए। किंच असुतृपः कोई क प्रकार करि प्राणों को भरि पोषि के तितने ही से तृप्त न तु परमेश्वर तत्त्व विचारने को प्रवर्त हैं। नहीं हैं केवल ऐहिक भोग से तृप्त किंतु उक्थ शासः परलोक भोग संपादन को यज्ञों में शस्त्र स्तुति करते हैं अर्थात् तुम ऐहिक भोग प्रवृत्तो अज्ञान मिथ्याज्ञान पराधीनों का तत्वज्ञान नहीं हैं ॥ ३१ ॥

वि॒श्वक॑र्मा॒ ह्यज॑निष्ट दे॒व आदिद्ग॑न्ध॒र्वो अ॑भवद्द्वि॒तीयः॑।
तृ॒तीयः॑ पि॒ता ज॑नि॒तौष॑धीना॒मपां गर्भं॒ व्य॑दधात्पुरु॒त्रा ॥ ३२ ॥

ब्रह्माण्ड मध्यगता नामुत्पत्तिरुच्यते। ब्रह्माण्डमध्यमें विश्वकर्मा देवति आदि जगद्भेदकर्ता सत्यलोकवासी चतुर्मुखदेव। आदित्यान्तर पुरुषरूपेण उत्पन्न हुआ। अनन्तर मेव तिस अपेक्षा करि दूसरे गन्धर्व गायत्री वा पृथिवी को धारण करता अग्नि अथवा गानात् गन्धर्व उत्पन्न हुआ। पिता पालयिता ओषधी ओंका उत्पादक पर्जन्य पूर्वोक्त दोनों की अपेक्षासे तीसरे हुआ सो पर्जन्य उत्पन्न होकर आहुति परिणम भूतों के गर्भको व्यदधात् धारण करना वा करता है। कैसे गर्भ को कि बहुतों के रक्षक वा बहुत प्रकार॥३२॥ वैश्वकर्मण होमः समाप्तः॥

अयोऽएवा हुरग्निरेवास्ये षयिष्येपूर्वे सर्वः हत्वा मन्यमानोऽ गम्य हित्वा दिशुतेः।

अ॰२ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥३३॥

का॰११॰१॰५॰१॰ अग्नि चयन में इध्मको दीपन करि चिति प्रति नीयमान आहवनीय विषें ब्रह्मा प्रतिरथ सूक्तकी द्वादश ऋचाएं जपता दक्षिणतः चलै॥ अप्रति रथदृष्टा इन्द्रदेवत्या द्वादश त्रिष्टुभः। इन्द्र शत संख्याकाः शत्रु सेनाः एकप्रयत्न करिके ही जीतता है। कैसा है इन्द्र कि शीघ्र गामी। वज्रको तीक्ष्णकरता है। वृषभ इव भयंकरः। घनाघनः (शत्रुओंका अतिशयेन घातक वा हनहने तिवक्ता वा वृष्टिकर्ता मेघरूप) मनुष्यों का चलानेवाला। संक्रन्दनः परभय हेतु ध्वनि जिसकी वा शत्रुओं का समाह्वाता। अनिमिषः नहीं है निमेष जिस के वोह यद्वा अत्यन्त सावधान। एकवीर अन्य

निरपेक्ष शत्रुओंको एक एव जेतं समर्थः॥३३॥

संक्रन्दनेनानिमिषेणजिष्णुनायुत्कारेणदुश्च्यवनेनधृष्णुना। तदिन्द्रेणजयत तत्सहध्वंयुधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥३४॥

हे योद्धा मनुष्य ओ इन्द्र करि कै तुम तिस पराये वल को जीतो (वशीकरो) और वशी करिके विनाश करो। कैसे इन्द्र कि शब्दकारी। एकचित्त। जयनशील। युद्धकारी। अजयी। भीतिरहित वाणाद्या युधोपेत। कामोंके वर्षक॥३४॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सथंस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन। सथंसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥३५॥

वोह इन्द्र हमें रक्षाकरे इतिशेषः। युद्धके अर्थ संसर्गकर्ता। वशी-रिपुओं को वश करता वाजननशिय वा स्वतन्त्र वा निगृहीतारिषड्गे वा ईश्वर। गणेन॰ रिपुसमूह के साथ युद्ध करताहे। युद्धके अर्थ संगत रिपुओं को जीतताहे। यजमानों के यागमें सोमपान कर्ता। वाहुवलोपेत अर्थात् संयोगितनिरपेक्ष। अपने धनुष करि वाणोंसे क्षेप्ता अर्थात् रिपुनाशयिता॥३५॥

बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ२॥ अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्॥३६॥

हे बृहस्पते + तू रथ करिके सर्वतः चलि और चलकर हमारे रथोंका रक्षकहो। कैसाहे तू कि राक्षसों को मारने वाला शत्रुओंको पीड़ा

+ बृहस्पतिरिन्द्रः वाग्वै बृहती तस्या एष पतिः व्याकरणकर्तृत्वा दिन्द्रस्य वाक्यतित्व मिन्द्रस्य पुरोहितत्वेन वा बृहस्पतिरेव रूपते।

देता। परकीया सेना को भग्न करता। हिंसकों को जीतता ॥ ३६ ॥

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः। अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ३७ ॥

हे इन्द्र तू जयन शील रथ को आरोहण करि। कैसा है तू कि परये बल को विशेषेण जानता है यद्वा बल करि जानिये है। स्थविरः पुरातन सर्वानु शासक। शूर। बलवान्। अन्नवान्। शत्रुओं को अभिभवन्। युद्धों में क्रूर। अभितः शूर हैं जिसके। अभितः परिचारिक प्राणी हैं जिसके। बल से उत्पन्न ?। स्तुति गिरा को जानता ॥ ३७ ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ ३८ ॥

हे सजाताः अर्थात् समान है जन्म जिन्हों का ते समान जन्मानः सखायो (देवताओ) इस इन्द्र को वीरकर्म कुर्वाणं अनुगम्य वीरकर्म करि प्रोत्साहयत। वेग कुर्वाणं करो। कैसे इन्द्र को कि गोत्रभिदं गोत्र (असुरकुल) को भेदता यद्वा गा जल से त्रायते गोत्र (मेघ) तिस के भेत्तार वाचा को जानने वाले। बज्र बाहुओं में जिस के। संग्राम को जीतने वाले। बल करि शत्रुओं को हिंसा करते ॥ ३८ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानो ऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ३९ ॥

+ गोत्रनामकान्यसुरकुलानि इत्युक्तम्

इन्द्र युद्ध विषें हमारी सेना प्रकर्षेण रक्षा करै। कैसा है इन्द्र कि गोत्रों असुर कुलों वा मेघ वृन्दों को अभि गाहमानः। दया रहित। विक्रान्त शतमन्यु असंख्य क्रोध जिसका वा शतयज्ञ। अप्रच्याव्यः। संग्राम को अभिभव करता। अयुध्यः योद्धुं अशक्यः नास्ति युध्यः प्रति योधास्येति वा॥३९॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्॥४०

इन्द्र और बृहस्पति इन देवसेनाओं का नेता प्रणेता हो इति शेषः यज्ञः(यज्ञपुरुष विष्णु)दक्षिणतः चले सोम आगे चले। मरुत देवताओं के गणसेना के अग्रभाग में चलें। कैसी देवसेनाओं के कि शत्रुओं को मर्दन करतीं तथा विजयमाना॥४०॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳ शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥४१॥

काम वर्षने वाले इन्द्र राजा वरुण द्वादश आदित्यों और मरुतों इन देवताओं का शर्ध बल गजतुरगरथपत्यात्मक सैन्य का घोष जितं जितं यह शब्द उठा अर्थात् जीतजीत यह कहता इन्द्रादि सैन्य में उठा कैसे देवताओं कि महन्मन जिन्हों का अर्थात् युद्ध में स्थिर चित्तों। तथा भुवन(लोक) च्यावन समर्थों। विजयमानों का॥४१॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि। उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥४२॥

हे मघवन्(धनवन्)इन्द्र आयुधों को उद्भूत हर्षाणि करि और मेरे प्राणियों के मन हर्षयुक्त करि। हेवृत्रहन्(वैरिघातिन्) अश्वों के शीघ्रगमन उत्कृष्ट करि। किंच विजयमान रथों के शब्द प्रसरें॥४२॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ २॥ उ देवा अवता हवेषु॥४३॥

शत्रुओं की ध्वजाओं के संयुक्त होने में इन्द्र हमारा रक्षक हो इतिशेषः। जे हमारे वाण प्रयुक्त हैं ते परसैन्यों को जीतें। हमारे जे शूर हैं ते परये भटों से उत्कृष्ट हों। हे देवताओ हवों विषे हमें रक्षा करो॥४३॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि। अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्॥४४॥

हे अप्वे अपगमन करनेवाली सुख और प्राणों को इन्द्रसेना संबंधिनी शत्रुओं के चित्तों को मोह करने वाली शत्रुगात्रों को ग्रहण-करि फिरि अन्यरिपुओं के ग्रहण को शत्रुसंघ प्रति जाके तिन्होंके हृदयों को शोक(धन पुत्र नाशादि निमित्त) से जला। किंच शत्रु लोग गाढांधकार करि संयुक्त हो॥४४॥ द्वादशैन्द्र्यः समाप्ताः॥

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। गच्छामित्रान्प्र

पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः॥४५॥

इत ऋक्चतुष्टयस्य विनियोगः कात्यायनेनोक्तः॥ इयमिषुदेवत्यानुष्टुप्। हे शरव्ये(हिंसिका शरमयी हेति)ब्राह्मण(मन्त्र)करिकेतीक्ष्णीकीहुई हमकरि छोडी सहसा पराई सैन्यविषें गिरि। और गिरिकरिशत्रुओंको प्राप्त हो और प्राप्तहोके शत्रुशरीरोंमें प्रवेशकरि शत्रुओंके मध्यमें किसी पुरुषको मतछोडि अर्थात् सबको मारि॥४५॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवो॥नाधृष्या यथासथ॥४६॥

योद्धृदेवत्यानुष्टुप् योद्धृन्स्तौति। हेनर(हमारे योद्धा)ओ तुम पराई सैन्याप्रति प्रकर्षेण जाओ तहां विजय पाओ इन्द्र तुम्हारे अर्थ सुख देवे। किंच जैसे तुम किसीसे तिरस्कार किये नजाओ। तैसे भुजदण्ड उग्रा युधहों॥४६॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्धमाना। तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी॥अन्यो॥अन्यं न जानन्॥४७॥

मरुद्देवत्या त्रिष्टुप्। हे मरुतओ जो(प्रसिद्धा)सेना इन शत्रुओंकी हमारे को समन्तात् आती है। कैसी कि बल करिके स्पर्धमाना तिस सेना को अंधकार करि के तुम संवृत करो। तैसे संवृतकरो जैसे सैनिक लोग परस्पर नजानें। कैसे तमकरिके कि जिस करि व्याप्तोंका कर्म नाश हो अर्थात् तैसे तमसे संवृत करो॥४७॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव। तत्र इ

+ नइतिवाषाठः

न्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वा हाँ शर्म यच्छतु ॥४८॥ । विश्वाहेति वापाठः

इन्द्रबृहस्पत्यदिति देवत्या पङ्क्तिरष्टाक्षरपञ्चपादा। जिस युद्ध में शत्रुयुक्त वाण इधर उधर हो गिरते हैं। तत्र दृष्टान्तः कुमारा विशिखा इव॰ शिखा रहित मुण्डित मुण्ड विकीर्ण कवच वा अति बालक चपल होकर जैसे इधर उधर चलते हैं तद्वत्। तिस युद्ध में इन्द्र हमारे अर्थ विजयोत्थ सुख देवै। कैसा है इन्द्र कि बृहस्पति (बडे मन्त्रों का पालक॰ विजयोचित मन्त्रों का जानने वाला। अदिति नहीं है खण्डन जिसका॰ अखण्डित शक्तिः। सब शत्रुओं का हन्ता वो ह शर्म देवै +। यद्वा तिस युद्ध में इन्द्र बृहस्पति देवगुरु और अदिति इन्द्रमाता सब दिनों में सर्वदा सुख देवै ॥४८॥ + पुनः [illegible]

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजा मृतेनानु वस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥४९॥

का॰१३·३·१०· महाव्रत याग में अध्वर्यु क्षत्री के परिधानार्थ कवच देवै ॥ सोम वरुणदेवदेवत्या त्रिष्टुप्। हे यजमान तेरे मर्मों (जीवस्थानों) को कवच करि छादन करता हूं। राजा (विप्रादिकों का अधिपति सोम) अमृत मरण निवारक इस कवच करि तुझै आच्छादन करै। तथा वरुण तेरा वर्म कवच उरुतर पृथीय करै। किंच देवता तुझै अनुकूल हो के हर्षित वा उत्साह युक्त करें ॥४९॥

अ॰६ उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत। रायस्पोषेण सꣳसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥५०॥

का १८॰३॰१४॰ अशुष्का उदम्बरतरु से उठाई रात्रिमें घृतविषें स्थिताः
ताः प्रादेश मात्री तीनि समिधाएँ तीनि ऋचाओं करि शालाद्वारीमें हो
में ततोऽग्नि प्रणयनमित्यर्थः ॥ तिस्रोऽनुष्टुभः प्रथमाग्नि देवत्या द्वि
तीयेन्द्रदेवत्या तृतीया लिङ्गोक्त देवता। हे घृतेनाहुत आज्य करिके सर्व
तोभ्यमा हे अग्ने इस यजमान को अतिशयेन ऊंचा करि। उत्कृष्टत्व
ऐश्वर्य को प्राप्त करि ऐश्वर्य मेवाह धनसमृद्ध्य करिके जोडि और पुत्रपो
त्रादि संतति से बडा अर्थात् बहु कुटुम्बी करि ॥ ५० ॥

इन्द्रेमं प्रतरं नय सजातानामसद्वशी। समेनं वर्चसा सृज दे
वानां भागदा असत् ॥ ५१ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्य युक्त इस यजमान को प्रकृष्ट ऐश्वर्य प्रति प्राप्त करि।
तदेव दर्शयति कि समान जातियों के नियमन समर्थ हो। किंच इस यज
मान को तेजस्वी करि। यह यजमान देवताओं का यज्ञ विषें भागप्र
दाता हो ॥ ५१ ॥

यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम्। तस्मै देवा अ
धि ब्रवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

हम ऋत्विज जिस यजमान के घर में पुरोडाश प्रधान कर्म करें हे अ
ग्ने तिस यजयजन को तू वढाय। देवता तिस यजमान के अर्थ अधि
क कहें यह सब से अधिक है। और यह यजमान वैदिक कर्म का पा
लक हो। यद्वा देवता ब्रह्मणस्पति और अग्नि इसे अधिक कहें ॥ ५२ ॥

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः। स नो भव शि
वस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥

का॰ १८॰ ३॰ १८॰ होता करि प्रथम ऋचा के तीनि वार पढते प्रतिप्रस्थाता उदुत्वेति मन्त्र करि प्रदीप्त इध्म को शलाह्वारी सै ऊर्ध्व उत्पाटन करै॥ व्याख्याता १२॰ ३१॰॥५३॥

पञ्च दिशो दैवीर्य्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः। रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे ऽअधि यज्ञोऽअस्थात्॥५४॥

का॰ १८॰ ३॰ १८॰ ततः ब्रह्मा होता अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता यजमान पञ्च दिश इत्यादि ऋक्पञ्चक करि चित्य प्रति जावैं। यज्ञाग्निसाधनवादिन्यः पञ्च ऋचः आद्ये द्वे त्रिष्टुभौ प्रथमा दिग्देवत्या। पञ्च दिशाः प्राची दक्षिणा प्रतीची उदीची मध्या रूपा दीप्यमानें हमारे यज्ञ को रक्षा करैं। कैसी हैं दिशा कि देवीएँ इन्द्र यम वरुण सोम ब्रह्मा संबन्धिनी हैं। तथा हमारी अमति (प्रज्ञामान्द्य) पापविषया दुष्टमति को नाश करती। तथा धन पुष्टि में यजमान को भागी करती हैं। किंच हमारा यज्ञ धन की पुष्टि में अधिक समृद्ध हो॥५४॥

समिद्धे ऽअग्नावधि मामहान ऽउक्थपत्र ईड्यो गृभीतः। तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः॥५५॥

आग्नेयी। दीव्यन्ति व्यवहरन्ति ब्रह्मत्व हौत्र आध्वर्यवादिकर्मों करि प्रचरते हैं देवता (ऋत्विज लोग) जब कि तप्त घर्म (प्रज्वलित प्रवर्ग्य) को परिशासों से लेकरि पूजते हैं। और जब ऊर्ज (हविर्लक्षण अन्न) करिके पूजते। तब अग्नि में दीप्यमान होते उक्थपत्र (उक्थ

+सर्वेषां मन्त्रपाठः। दुर्मतिकं अध्वर्युरिति हरिस्वामिनः॥

शस्त्र हैं। यन्त्र-वाहन जिस के वोह(ग्रा स्त्रैरेवयज्ञोवाह्यते) कैसा है उक्थप त्र कि स्तुतियोग्य। अधिमामहान-पूजताहै देवताओं को यद्वा अधिक मामहान यजमान है जिस यज्ञमें ॥५५॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः। परिगृह्य देवा यज्ञमायन्देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥ ५६ ॥

अग्नि देवत्या बृहती पङ्क्तिर्वा। एवंविध अग्निके अर्थ यज्ञ है इति शेषः। कैसे के अर्थ कि देवताओं के हित तिसके। धर्त्रे-यागद्वारा जगत के धारण करने वाले के। जोष्ट्रे-हमारे दिये हविके सेवन करनेवाले। कैसा है यज्ञ कि देवश्रीः-देवताओं को हविर्दान करि सेवता। श्रीमनाः-सेवन करते हैं इन्द्रादिकों को श्री-यजमान तिन विषें अनुग्रह रूप मन जिसका यद्वा श्री है मनमें जिसके श्रीदेनेकोमन जिसका। शतसंख्यक हैं पयः प्रभृति हवि जिसके वोह देवाः (ऋत्विजलोग) ऐसे यज्ञाग्निको गृहण करि यज्ञ प्रति प्राप्त होते हैं। किंच दीप्यमान ऋत्विज देवताओंके अर्थ अध्वर करने को इच्छा करते खडे हैं ॥५६॥

वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति। ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥ ५७ ॥

हवि यज्ञ देवत्या बृहती। यज्ञ जिसकाल में होमनेयोग्यहविको प्राप्त होता है ततः यज्ञसे उठे वाक्य (ऋग्यजुःसामलक्षण) और आशिषा (अभीष्टार्थशंसन) हमें सेवन करें अर्थात् यज्ञफल हमें आलिङ्गन करें। कैसा हवि कि देवताओंका इष्ट। तथा शमिता (संस्कृत। कैसा यज्ञ कि तुरीयः (च तुर्थ- आदिमें यजुका जप फिरि होता का ऋचापठन ब्रह्माका अप्र

तिरय काण्डी ३३-४४· जप और ऐसेही चौथें होमहैं + । यद्वा आदि में अध्वर्यु करि आश्रावण फिरि आग्नीध्र करि प्रत्याश्रावण ततः अध्वर्यु करि प्रैषः पुनः होता करि वषट्कार इति यज्ञश्चतुर्धाकल्प्यते ॥

+ अध्वर्युः परस्ताच्च जूर्थ्धिजपं तीन्सा दि॰ प्रत॰४·२·२·११ स्तुतिः ५७॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२॥ऽ अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥५८॥

अग्नि देवत्या त्रिष्टुप्। ज्योतिरूप अग्नि निरन्तर प्रतिदिन पूर्व दिशा में आहवनीय रूप से होमके अर्थ उदय होताहै। कैसाहै अग्नि कि सूर्यरश्मिः सूर्यकीसीहैं किरिणें जिसकी वा सूर्यरूप और रश्मिरूप। हरिकेश हरताहै दारिद्र्य को-सुवर्ण तद्वत् केशस्थानीयहैं ज्वाला जिसकी। सविता प्राणियोंको तत्तद्व्यापारों में प्रेरक। तिस ऐसे अग्निकी आज्ञामें पूषा पोषक-सूर्य उदय अस्तद्वारा करि भ्रमताहै कैसाहै सूर्य कि विद्वान् अहोरात्रि प्रवर्तनात्मक अपने अधिकारको जानता। सब लोकोंको भले प्रकार देखता। गोपाः-धर्मका रक्षक ॥५८॥

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम्। स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥५९॥

का॰१८·३·१५· अध्वर्यु आग्नीध्रगृह से दक्षिणदिशा में पृष्ठ्या संलग्न पृश्नि तनु छत्त वा चित्रवर्ण पाषाण को विमान इति दो ऋचाओं से उपधान करे ॥ विश्वावसु दृष्टा आदित्य देवत्या त्रिष्टुप् आदित्याध्यासेनाश्मा स्तूयते। यह अश्मा आदित्यरूपेण दिव (अन्तरिक्ष) के मध्य में ति

ष्टुहै १। कैसाहै यह कि विमान। (जगन्निर्माणसमर्थः। तथाद्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष कोतेज करि सर्वतः पूर्णकरने वाला। सतया स्तूयमान आदित्य रूपोऽप्मा विश्वाची (वेदी) घृताची (स्रुच) देखता है अर्थात् यज्ञ कर्ताओं के अनुग्रह को कर्म देखताहै १। तथाच पूर्व (इसलोक) और अपर उसलोक के अन्तरा मध्य में स्थित जनों के केतु (चित्त) को देखता अर्थात् सर्व जनों का अभिप्राय जानताहै। यद्वा विश्वाची- विश्वव्यापिनीदिशाएँ सर्वतः प्रकाश करताहै। तथाच घृताची- घृत प्राप्ति हेतुभूता धेनुएं प्रका॰ है। तथा अन्तरा- ब्रह्माण्ड में पूर्वमपरंच केतुम्- उदया स्तमय मध्यवर्ती बोधको प्रका॰ है॥ ५९॥

उक्षा स॑मु॒द्रोऽअ॑रु॒णः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनि॑म्पि॒तुरावि॑वेश। मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ विच॑क्रमे॒ रज॑सस्पात्यन्तौ॑॥ ६०॥

अप्रतिरथदृष्टादित्य देवत्या त्रिष्टुप्। जो आदित्य पूर्वदिशा में स्थित पिता (द्युलोक) के स्थान को प्रवेश करताहै २। कैसाहै जोकि वृष्टिद्वारा सेक्ता। समुद्रः- उदय काल में अवश्यायपतनेन क्लेदन कर्ता। उदय काल में अरुण वर्ण। शोभन है पतन (गमन) जिसका। और जो दिवि के मध्य में अवस्थित। पृश्नि (विचित्र वर्ण- नानारश्मिसंकुल अश्मा- व्यापक। एवंविधः सन् विक्रमते नभः। और जो विक्रममाण तीनों लोकों के अन्तों को रक्षा करताहै अर्थात् जो अन्तों को रक्षा करता है वोह मध्यको भी रक्षा॰॥ अथाश्मपक्षे व्याख्यानम्। यह पृश्नि (विचित्रवर्णपाषाण) पिता (कर्मपालक पूर्वादिग्वर्ति अ

१ विश्वं हविरञ्चितं स्थापितं यस्यामिति विश्वाची वेदिः घृतमञ्चितं यस्यामिति घृताची स्रुक् तथाच श्रुतिः ४·२·३·१७· सा विश्वाची रभिचष्टे घृताचीरिति स्रुचश्चैतद्वेदीश्चाहेति।

२ पितुः शब्देन द्युलोकः उदयसमये द्युलोकाज्जायमान उपलभ्यते सूर्य इति द्युलोक पूर्वभागः सूर्यस्य पितृभूत उच्यते।

हवनीय) के योनि (कारणभूत आग्नीध्र) को प्रविष्ट होता हुआ + । यह अश्मा दिव (आग्नीध्र स्थानीय अन्तरिक्ष) के मध्य में स्थापित हुआ रज (जगत) के अन्त उत्पत्ति प्रलय रूप दोनों कोटियों को परमेश्वररूपेण विचक्रमे पाति रक्षतिच । कैसा है अश्मा कि उक्षा-यागद्वारेण-फलाभिवर्षक ॥ बहु फलत्वात्समुद्र सदृश ॥ अरुण-पूर्वमन्त्रे सूर्यसाम्यात्सूर्य सदृश ॥ सुवर्ण-स्वर्ग प्रत्युद्गमनहेतुत्वात्पक्षिसदृशः ॥ ६० ॥

+ युदाहवनीयमुद्यते हाग्नेनीधाद् उद्धरेदित्याहवनीययोनित्वमाग्नीध्रसाम्नातमन्यत्र ।

इन्द्रं विश्वा॑ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिर॑ः । र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑ना॒ꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ ६१ ॥

का॰ १८·३·२१ पृष्ठ्य अश्मा को कचिहुत देश में स्थापन करिके इन्द्रं विश्वा इत्यादि चारि ऋचाओं करि सव चयन प्रति जावें ॥ व्याख्याता १२·५६· ॥ ६१ ॥

दे॒व॒हूर्य॒ज्ञ आ च॑ वक्षत्सु॒म्न॒हूर्य॒ज्ञ आ च॑ वक्षत् । यक्ष॑द॒ग्निर्दे॒वो दे॒वाँ २॥ऽआ च॑ वक्षत् ॥ ६२ ॥

विधृति दृष्टा यज्ञ देवत्यानुष्टुप् । देवताओं का आह्वाता यज्ञ देवताओं को बुलावे और पूजे । सुम्न (धनपुत्र कलत्रादि से उठे सुख) का करने वाला यज्ञ देवता०—वै । और अग्नि देवता देवता०—पूजे ॥ ६२ ॥

वाज॑स्य मा प्रस॒व उ॑द्ग्रा॒भेणोद॑ग्रभीत् । अधा॑ स॒पत्ना॒निन्द्रो॑ मे निग्रा॒भेणाध॑राँ २॥ऽअकः ॥ ६३ ॥

इन्द्र देवत्यानुष्टुप् । वाज (अन्न) की उत्पत्ति वा अनुज्ञा उद्ग्राभ (उद्ग्रहण-ऊँचे ग्रहण-दान) करिके मुझै उद्ग्रहण करै । अथ नीचेहाय करि भिक्षादि कीयाचिष्णुता वा अन्नाभाव करि इन्द्र मेरे शत्रु-

ओं को भिक्षुक करे॥६३॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवी वृधन्। अधा सप
त्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम्॥६४॥

इन्द्राग्नि देवत्यानुष्टुप्। देवता हम विषयक उत्कर्ष शत्रु विषयकअ
पकर्ष ब्रह्म (त्रयीलक्षणयज्ञविषयक) को बढावें। अथानन्तरं मेरे शत्रु
ओं को नानागती करिके इन्द्राग्नी दोनों विनाश करें अर्थात् अ
पुनरागमन के अर्थ पटकें॥६४॥

अ॰७ क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः। दिवस्पृष्ठ
ꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्॥६५॥

का॰१८.४.१. ते ऋत्विज क्रमध्वमिति पाँच ऋचाओं से तीर्थ की
चित्याग्नि को आरोहण करें॥ आग्नेय्यनुष्टुप्। हे ऋत्विग्यजमान
ओ तुम अग्नि (चित्य) करि स्वर्ग को आक्रमण करो। कैसे हो तुम
कि उखाविषें संस्कृत उख्याग्नि को हाथों में धारण करते। यद्वा
उख्याग्नि को हाथों में धारण करते अग्नि (अनेक चित्याग्नि) स
हित चिति के ऊपर पैर (आरोहण) करो। फिरि दिवः (अन्तरिक्ष के
पृष्ठ स्वर्ग को जाकर देवताओं से संयुक्त होके बैठो॥६५॥

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरोऽअग्निर्भवे
ह। विश्वा आशा दीद्यानो विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे
चतुष्पदे॥६६॥

आग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अग्ने इस लाये हुए उख्य अग्नि की प्राची प्रकृ
ष्टा दिशा को लक्ष करिके तू प्रकर्षेण जा। कैसा है तू कि विद्वान् अ

अधिकार को जानता। और जाकर हे अग्ने इस प्रदेश (अग्नि निष्पादित चितिरूप) का पुरोऽग्नि (पुरोगन्ता मुख्य) हो। तमारे द्विपद (पुत्रादिकों) चतुष्पद (गवादिकों) के अर्थ अन्न सन करि॥६६॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्॥६७॥

नेयी पिपीलिकमध्या बृहती। यजमान आह मैं पृथिवी से ऊलकर अन्तरिक्ष को आरूढ हूं। तिस अन्तरिक्ष से चलकर लोक को आरूढ हूं। द्युलोक का जो दुःखरहित प्रदेश। तिसके रि भाग से स्वर्ज्योति (स्वर्गलोकस्थ आदित्यमण्डल) को मैं प्राप्त ॥६७॥

स्वर्पन्तो नापेक्षन्त आ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी। यज्ञं ये विश्वतोधारᳬं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे॥६८॥

नेयी अनुष्टुप्। जे सुविद्वांसः (ज्ञानकर्मसमुच्चय करनेवाले यज्ञ को अनुतिष्ठं हैं। कैसे यज्ञ को कि विश्वतोधारं विश्वतोधारा- जिसकी तिसै आहुतिदक्षिणान्नानि यज्ञ की धारा एँवा वैश्वानर मारुत पूर्णाहुति वसोर्धारा वाजप्रसवीयानि यज्ञ की धारा एँ यद्वा जगत के धारण करनेवाले को। ते यज्ञ करनेवाले स्वर्ग को गये पुत्र पश्वादिकों की अपेक्षा नहीं करते कृतकृत्य होंने से। और स्वर्ग को आरोहण करते हैं कैसी स्वर्ग कि रोदसी रुणद्धि जरामृत्यशोकादिकों को। यद्वा जे यजमानाः सुविद्वांसः सुष्ठु कर्मप्रकार को जानके

जगदुद्धरणहेतु यज्ञ को विशेषेण करते हैं ते यजमान द्यां अन्तरिक्ष को आरोहण करते तथा रोदसी द्यावापृथिवी को आरोहण करते हैं ततः स्वर्गस्थ आदित्य मण्डल को प्राप्त हुए अन्यत्किमपि स्थान को नहीं अपेक्षा करते ॥६८॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् । इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥

आग्नेयी त्रिष्टुप् । हे अग्ने देवताओं की इच्छा करने वाले यजमान के पुरतः प्रकर्षेण जा । कथं मयाग्रतो गन्तव्यं तत्राह जो कि तू देवता और मनुष्यों के चक्षुः स्थानीय लोक में गये पुरुष की दृष्टि के पुरतः जाता है । किंच पूजने की इच्छा करने वाले यजमान स्वस्ति जैसे तैसे अविनाशेन स्वर्ग को प्राप्त होवें । कैसे कि भृगु गोत्र विप्रों से है समान प्रीति जिन्हों की ते । भृगुग्रहणमनूचानब्राह्मणोपलक्षणम् । उत्तम विप्रैः प्रीतिमन्तः ॥६९॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥ ७० ॥

का० १८ ४ २ अध्वर्युः स्वयमातृण्णेष्टका के ऊपर समीप में प्रति प्रस्थाता के तिस अग्नि को धारण करते कृष्णवर्णा श्वेतवत्सा गौ के जुहू स्थानीय मृन्मय दुग्धदोहन पात्र करि स्वयमातृण्णा को सींचते इध्मस्थ अग्नि में नक्तोषासेति दो ऋचाओं से होमें व्याख्याता १२ २ ॥ ७० ॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्याना त्वꣳ साहस्रस्य रायऽईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१॥

आग्नेयी विराट् पंक्तिः दशाक्षरचतुःपादा। हे अग्ने सहस्राक्ष (हिरण्यशकल ही हैं सहस्र नेत्र जिसके †) हे शत मूर्धन् शतसंख्याक हैं शिर जिसके †) जिस तेरे शत प्राण सहस्र ५व्यान हैं। और जो तू सहस्र धनका प्रभु है। तुझ तैसे के अर्थ हम हविरूप अन्न देते हैं। स्वाहा एतद्धविः सुहुतमस्तु ॥७१॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान्पृष्ठे पृथिव्याः सीद। भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृꣳह ॥७२॥

का॰१८.४.४. स्वयमातृण्णा में सुपर्णोसीति दो ऋचाओं और वषट्कार करिके अग्नि को स्थापन करै॥ अग्निदेवत्या पङ्क्तिः। हे अग्ने तू सुपर्ण (पक्ष्याकार गरुडसमान) है। गरुत्मान् (अशनयावान्) है। अतः पृथिवी के ऊपर बैठि। अपने प्रकाश से अन्तरिक्ष को सर्वतः पूरि। अपनी सामर्थ्य से द्युलोक को ऊंचा स्तंभित करि। तथा स्वतेज करि दिशा उत्कर्षेण दृढी करि वा प्रकाशि॥७२॥

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥७३॥

आग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अग्ने तू आहूयमानः सन् सुप्रतीकः (शोभनमुखः) सन् पूर्वदिशा विषें समीचीन अपने स्थान को अधितिष्ठ

+ हिरण्यशकलैर्वै सहस्राक्षः सहस्राक्ष इति ८.२.३.१८ श्रुतेः।

+ यद्वा शतशीर्षा रुद्रोऽसृज्यतेति ९.१.१.६ श्रुतेः। ५ शतसहस्र शब्दावपरिमित वचनौ।

हे विश्वे देवाओ तुम और यजमान इस पुरोवर्तिनि अधिक उत्कृष्ट स्थान अग्नि सहित बैठने योग्य यज्ञाख्य स्वर्गमें बैठो। धौर्वाउत्तरᳬं सधस्थमिति ४।२।३।३५। श्रुते॥७३॥

ताᳬंसवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वोऽअदुहत्प्रपीनाᳬं सहस्रधारां पयसा महीं गाम्॥७४॥

का०१८।४।६। अग्निनिधान के अनन्तर तिस अग्नि में तीनि समिधाएँ अध्वर्यु धारण करे ताᳬं सवितुरिति शमीमयीं विधेमेति वैकङ्कतीं प्रेद्धोऽअग्नऽइत्यौदुम्बरीमित्यर्थः॥ कण्वदृष्टा सावित्री पुरस्ताज्ज्योतिषत्रिष्टुप्। वरणीय सवितुः संबंधिनीति तिस शोभनाबुद्धिको मैं आभिमुख्येन स्वीकरताहूं। कैसी सुमति को कि चित्रा(चायनीया॰ स्वापेक्षितबहुविध फलदान समर्था। विश्वजन्या(सर्वजनोंके अर्थहित वा जगदुत्पादन समर्था। तिस किसै कि कण्व मुनि इसस विता की जिस सुमतिमेव धेनु अनुग्रहकारिणी बुद्धि को दुहता हुआ कैसी को कि प्रकर्षेण पयकरि पूरित सहस्रधारा युक्त यद्वा बहुत कुटुम्ब की धारयित्री पयसामहीम् बहुदुग्धा सर्व सिद्धि दात्री को। एवंमेतियो कण्वेन दुग्धा वा महं वृणे इति सर्वार्थः॥७४॥

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे। यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीᳬंषि जुहुरे समिद्धे॥७५॥

गृत्समददृष्टा त्रिस्थानाग्नि देवत्या त्रिष्टुप्। हे अग्ने दिवि में तुरु

आदित्यात्मा करि स्थित के अर्थ हम हवि देते हैं अन्तरिक्ष स्थित तुरु विजली रूप के अर्थ स्तोत्रों से हम परिचर्या करते हैं। हे अग्ने जिस इष्टकाचित रूप स्थान से तू उद्गत है तिस स्थान को मैं पूजता हूं। ततः तुरु सम्यक् प्रज्वलित विषें हवियें होमता हूं ॥७५॥

प्रेद्धो ऽअग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वाᳬं शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥७६॥

वसिष्ठ दृष्टाग्नि देवत्या विराडनुष्टुप्। हे अति युवा हे अग्ने तू हमारे पुरो ऽग्ने दीप्त हो। कैसा है तू कि अनुपक्षीण सूर्म्या समित् का ष्ठ करि प्रकर्षेण दीप्त यद्वा लोहमयी ज्वलन्ती स्थूणा अनुपक्षीण सूर्मि समाना ज्वाला करि दीप्त सूर्मी शब्दो ज्वालोपलक्षकः हे अग्ने यतः निरन्तर भाविनो हवियें तुझे प्राप्त होते हैं अतः दीप्त हो ॥७६॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रᳬं हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा त ऽओहैः ॥७७॥

का॰ १८.४.८. समिध आधान करिकै अग्नेतमिति दो ऋचाओं से स्रुवा करि दो घृताहुती तिस अग्नि में होमें व्याख्याता १५. ४४. ॥७७॥

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमन्वीतिहोत्रा ऋतावृधः। पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यᳬं हविः ॥७८॥

विश्वकर्म देवत्या निजगती। मनसा और घृतेन सह ऋत्विग्यजमा

नों की चिति को होमता (अग्निसम्बद्धकरता) हूं अर्थात्
त्व परिज्ञानार्थ चिन्तन (सन्तान) करता हूं †। तैसे होमता हूं कि
इस यज्ञ में देवता आवें। कैसे देवता कि वीतिहोत्राः कामितयज्ञाः
ऋत (सत्य वा यज्ञ) के बढानेवाले। किंच सब दिनों विषे अनुप
स्वाद हवि विश्वकर्मा (प्रजापति) के अर्थ होमता हूं। कैसे प्रजापति
सब जगत के बडे पति॥७८॥

सप्त ते॑ऽअग्ने स॒मिधः॑ स॒प्त जि॒ह्वाः स॒प्तऽऋष॑यः स॒प्त
मे प्रि॒याणि॑। स॒प्त हो॒त्राः स॑प्त॒धा त्वा॑ यजन्ति स॒प्त यो
रा पृ॑णस्व घृ॒तेन॒ स्वाहा॑॥७९॥

का॰१८॰४॰२९॰ और पूर्णाहुति (घृत से पूर्ण स्रुचा करि आहुति) हो
में॥ सप्तर्षि दृष्टा आग्नेयी। हे अग्ने तेरी सप्त समिधाएँ (शीर्षण्य
प्राणायतनाः७ श्रोत्र २ नेत्र २ नासाछिद्र २ मुख १ हैं ‡। किंच तेरी सप्त
जिह्वाएँ (ज्वालारूपा हिरण्याङ्गण्याद्या आगमोक्ता यद्वा आथर्वणि
कोक्ताः मुण्डक॰१॰२॰ काली १ कराली २ च मनोजवा ३ च विलोहिता ४
चापि सधूमवर्णा * ५ स्फुलिङ्गिनी ६ विश्वरुची ७ च देवी लेलायमाना
इति सप्तजिह्वा॥ इति हैं। तथा सप्त ऋषयः (मरीच्यादयः) तेरे द्रष्टा
हैं। तथा सप्त प्रियाणि धामानि (गायत्र्यादि सप्तछन्दांसि ** यद्वा
आहवनीय १ गार्हपत्य २ दक्षिणाग्नि ३ सभ्य ४ आवसथ्य ५ प्राजा
हित ६ अग्नीध्रीय ७ सोमयाग में वन्हिधारक हैं। किंच हे अग्ने सप्त
होत्रादयः (होता १ प्रशास्ता २ ब्राह्मणाच्छंसी ३ पोता ४ नेष्टा ५ आ
ग्नीध्र ६ अच्छावाक ७ ऋत्विजलोग सप्तप्रकारों अग्निष्टोम १

† संकल्पविकल्पात्मकंमनःनिश्चयात्मकंचित्त।

‡ प्राणा वै समिधः प्राणाह्येतर्ह्समिन्धतइतिश॰९॰२॰३॰४४॰श्रुतेः।

* सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ५।

** छन्दांसिवाऽअस्यसप्तधामप्रियाणीति ९॰२॰३॰४४॰श्रुतेः।

अत्यग्निष्टोम २ उक्थ्य ५ ३ षोडशी ४ अतिरात्र ५ आप्तोर्याम ६ वाजपेय ७ से तुझे पूजते हैं। हे अग्ने सो तू सप्तयोनी: (चिती: ※) घृत करिके समन्तात् पूरि स्वाहा सुहुतमस्तु यद्वा स्वाहा (यज्ञरूप: ※) त्वं सप्तयोनीर्घृतेनापृणस्व॥ ७९॥

५ उक्थ्य

※ सप्तचिति कोऽग्निरिति ८.२.३.४४. श्रुते:।

※ यज्ञो वै स्वाहाकार इति ४.२.३.४४. श्रुते:।

अ॰ ८ शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च। शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यंहा:॥ ८०॥

का॰ १८.४.२३.२४. वैश्वानर पुरोडाश से याग करिके बैठकर आहवनीय विषें हाथ करि सर्वहुत मारुत पुरोडाशों को होमें. शुक्रज्योति: इति एक-एक मन्त्र से एक-एक को। यद्वा प्रथन काल में वैश्वानर पुरोडाश को विस्तीर्ण करिके वैश्वानर पुरोडाश के ऊपर ही मारुतों को होमें। अरण्य विषें अनूच्य सातवें पुरोडाश को विमुख संज्ञक उग्रश्च भीमश्चेति अध्याय ३९ काण्डी ७ वक्ष्यमाण मन्त्र करि होमें॥ षट् मरुद्देवत्या: आद्या उष्णिक् एकैकस्यामृचि सप्त-सप्त मरुत:॥ शुक्रज्योतिरित्याद्या एकोनपञ्चाशन्मरुत: तुम आज (अब) इस हमारे यज्ञ में आओ इति पञ्चमर्चि ८४. अन्वय:। तन्नामानि व्याख्यायन्ते. शुक्र (शुद्ध वा शुक्र की सी ज्योति का सा तेज जिसका वोह॥ १॥ दर्शनीय ज्योति जिस की॥ २॥ ब्रह्मलक्षण ज्योति॥ ३॥ तेजमान्॥ ४॥ प्रकाशता है॥ सत्य वा यज्ञ का पालक॥ ६॥ पाप को छोडिके वर्त्ते हैं॥ ७॥ चकारा: समुच्चयार्था:॥ ८०॥

ईदृङ्चान्यादृङ्च सदृङ्च प्रतिसदृङ्च। मितश्च संमितश्च सभरा:॥ ८१॥

हे गायत्र्यौ। इस पुरोडाश को लेकर देखता है॥८॥ अन्य भी पुरो
डाश को देखता है॥९॥ समान को देखता है॥१०॥ तिस-तिस प्रति
समान को देखता है॥११॥ मान को प्राप्त यद्वा उत्तमाधम मध्यम से
तुल्य॥१२॥ एकीभाव करि मान को प्राप्त॥१३॥ साथ भरण करता
है॥१४॥८१॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च। धर्ता च विधर्ता च
विधारयः॥८२॥

सत्यरूप॥१५॥ वस्तु में हुआ॥१६॥ स्थिर॥१७॥ धारक॥१८॥ धारण
करता है॥१९॥ विशेषेण धारण करता॥२०॥ विविध धारण॰॥
२१॥८२॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च। अन्तिमि
त्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः॥८३॥

उष्णिक्। यज्ञ को जीतता है॥२२॥ यातातथ्य को जीत॰॥२३॥ शत्रुसै
न्य को जीत॰॥२४॥ शोभना सेना जिसकी॥२५॥ समीप में मित्र जि
सके॥२६॥ दूर में शत्रु जिसके॥२७॥ गिनता है सबको॥२८॥८३॥

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षा
स एतन। मितासश्च संमितासो नोऽअद्य सभरसो म
रुतो यज्ञेऽअस्मिन्॥८४॥

जगती। हे मरुतश्च तुम इतने कैसे हो कि इसे देखते हो॥२९॥
इतने को देखते हो॥३०॥ उ-सु-नः- एतत्पदत्रयं पादपूर्तये॥ स
मान दर्शन हो॥३१॥ प्रत्येक को समान दर्शन हो॥३२॥ प्रमाण से

संगत्य प्रमाणसेहो॥३४॥ समान अलङ्कारादिकोधार
वा आदर सहित वर्तमान हो॥३५॥ वहु वचन मादार्थे
॥८४॥

स्वतवाँश्च प्रघासी च सांतपनश्च गृहमेधी च। क्रीडी च शाकी चोज्जेषी॥८४॥

ी उष्णिग्वा। आद्याः पञ्च चातुर्मास्य देवताः। स्वाधीनबल
॥३६॥ पुरोडाश भक्षण शील॥३७॥ सूर्यसम्बन्धी॥३८॥ गृहेध
॥३९॥ सदा क्रीडन शील॥४०॥ शक्त॥४१॥ उत्कृष्टजयनशी
॥४२॥ एते मरुतो यूपमत्र यज्ञे एतनेति पूर्वेणान्वयः॥८५॥
अध्या॰ ३९॰॥ उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च। सासह्वांश्चाभि
युग्वा च विक्षिपः स्वाहा॥७॥ विमुख मन्त्रोऽपि प्रसङ्गाद्व्याख्यायते॥
गायत्री। उत्कृष्ट॥४३॥ बिभेत्यस्मादसौ भीमः॥४४॥ शत्रुओंको अ
न्धा करता है॥४५॥ शत्रुओंको कम्पाता॥४६॥ शत्रुओंको अभिभ
वता॥४७॥ भक्तोंका सुखयोक्ता॥४८॥ शत्रुओंको क्षेप्ता॥४९॥ स्वा
हा। इतने मरुतों के अर्थ पुरोडाश सुहुतहों॥७॥८५॥

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्। एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु॥८६॥

का॰१८॰५॰२५॰ कर्मापवर्गान्त में यजुः जपे॥ मरुद्देवत्यं यजुः+।
देव संबन्धिनी प्रजा मरुद्रूपा इन्द्रानुगामिनी हुई इतिस्वरू
पस्थानम्। देवसंबन्धिनी प्रजा मरुद्रूपा जैसे इन्द्र को अनु सरण

करिके वर्तमाना हुई उपमानमेतत् देवसंबंधिनी और मनुष्य संबंधिनी प्रजा ऐसेही इन्द्रवत् इस यजमान को अनुसरण करि वर्तमाना हों इति प्रार्थना ॥८६॥

अ०८७ इमꣳस्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमाविशस्व ॥८७॥

का०१८·४·२६· इमꣳस्तनमिति मन्त्रगण को अध्याय समाप्तिपर्यन्त यजमान से अध्वर्यु पढावे वा आप जपे॥ त्रयोदशर्च्चे आर्षं त्रिष्टुप्छन्दस्कोऽनुवाको यज्ञस्तुतिर्वसोर्धाराभिवादिनी घृतस्तुतिर्वा। हे अग्ने सरिर (लोक) के मध्य में वर्तमान तू इस स्रुग्लक्षण स्तन वा स्रुच से गिरती घृतधारा को पान करि *। कैसे स्तन विशिष्ट रसवन्त को। तथा अपां प्रपीनम् * घृतसे पूर्ण। हे अर्वन् अग्ने चलते उत्स (उत्स्यन्दन स्रुग्लक्षण कूप) को सेवन करि कैसे उत्स कि मधुमन्त (मधुस्वाद घृत करिके युक्त) को किंच समुद्रिय (समुद्र सम्बन्धि चयनयाग सम्बन्धि गृह) को आविशस्व तृप्त होके यज्ञ गृह को सेवन करि ॥८७॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥८८॥

गृत्समद दृष्टा। मैं घृत को सींचने चाहता हूं *। यतः इस अग्नि का घृत उत्पत्ति स्थान है *। जो अग्नि घृत को आश्रित है। इस अग्नि का

* पतो धारा स्रुचा होष्यते सा स्रुगन्न रूपकैस्तनपास्तन उच्यते।

* अत्र शब्दः तत्र ... पयस्तनमुच्यते।

* ... समुद्र अग्निचयन ... इक्यम ... मित्याश्रयः।

* अग्निमुक्षेमेढुमिच्छति

* अग्निर्यस्यै पीने हव्यपन तस्यै घृतमुल्वमासीदिति श्रुतेः गर्भावरोदकमुल्वम्।

घृतही धाम स्थान वा तेजकरनेवाला है। अतः हे अध्वर्यो अनुष्व
ध(स्वधा-अन्न) कोउपलक्ष करितिस अग्निको आवह प्रथम अ
न्न अन्नको उपकल्प्य पश्चात् बुला और बुलाके तृप्त करि औरतर्पण
करिके यह कहि कि हे वृषभ(कामों के वर्षनेवाले) स्वाहाकार करिहु
त हव्यको तू देवताओं प्रति प्राप्त करि। यद्वा जिसे प्रति दिनसींचा
चाहताहूं जिसका घृतयोनि घृतको आश्रित और जिसका घृत धाम
है सो तू अनुष्वधको उपलक्ष्य देवताओंको बुलाके तृप्तकरि और हवि
प्राप्तकरि इत्यग्निं प्रत्येवोक्तिः यतो वन्हेः कर्मद्वयं देवानामावाह-
नं हविर्वहनंच॥८८॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ २॥ उदार्दुपांशुना सममृतत्व
मानट्। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृ
तस्य नाभिः॥८९॥

वामदेव दृष्टा। अत्रान्नाध्यासेन घृतंस्तूयते प्राणाध्यासेन चाग्निः। समु
द्र(घृत)से मधुमान्(रसवान्) कल्लोल ऊंचाचला अक्षीणत्वाद्धुत
स्य समुद्रेणोपमानम् अन्नदेवताभिप्रायं वासाद्यक्षीणेव। और उठके
अंशु(प्राण-जगत्प्राणभूत अग्नि) से एकी होकर व्याप्तहुआ अर्था
त् अन्न और प्राण एकीहोकर अमृतत्व को प्राप्त हुए। तिस घृतकागु
ह्य(अविद्वानों से अनजाना) नाम श्रुतिमन्त्र पठित जोहै वोहकहि
येहै इति शेषः। किं तदाह कि देवानां जिह्वा(अत्यभिलाषसे देव
ताओं की जिह्वोत्थाननिमित्त†)है। और जो सर्व प्रकाशनामवो
हभीकहियेहै कि अमृतस्यनाभिः अमरण धर्मका बंधन है

† अग्नेर्जिह्वासीत्युक्तेः पित्र्या वा ग्न्यादयो जुहुत्य यागेन जिह्वा ह्वादयोवाग्निरुच्यन्ते इति श्रुतेः॥

योहि घृतमश्नाति सदीर्घायुर्भवति॥ यद्वा ऋगर्धेन मन्त्रः स्तूयते अर्धेन घृतम्। समुद्रात् आग्निक यजुः समुद्र हमारे यज्ञसे जो ऊर्मिः (शब्द संघात नानाख्यातोपसर्ग निपात रूप उपमोत्प्रेक्षा रूपकाद्यलङ्कार रूप) मधुमान् (रसवान् वाक्यार्थ गुणों से युक्त) उदारत् मुखसे उठा स एव उपांशु (क्रियमाण सवन) से अमृतत्व को प्राप्त हुआ ✱ इस हेतु अग्नि चयन वालों से प्रकाशनीय है। इत्यर्धः। घृतका गुह्य जो नाम है वोही देवताओंकी जिह्वोत्थान निमित्त है किं पुनर्होमः ॥ अमृतस्य नाभिः नहन अर्थात् घृत यजन से यजमानों का अमृतत्व प्रापक है। अतो ऽग्निविद्धिर्हूयते स्तूयते च घृतमिति भावः॥८९॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः। उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गो ऽवमीद्गौर एतत्॥९०॥

जो कि घृत नामोच्चारण ही देवताओं का प्रिय है इस हेतु हम इस यज्ञमें घृत का नाम स्तुति करते हैं। नमोभिः नमस्कारों वा हवि रूप अन्नों से धारण करते हैं यज्ञ को इति शेषः। किंच ब्रह्मा (ऋत्विक्) शस्यमान् (स्तूयमान) एतत् घृतनाम सुने। यथा गौरः (गौरवर्ण शुद्ध यज्ञ) एतत् घृत यज्ञफलरूप को अमीवत् उद्गिरति निर्वहता है यज्ञपरिणामाभिप्रायम्। कैसा है गौर कि चतुःशृङ्गः चारि ऋत्विज शृङ्ग भूत हैं जिसके॥९०॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो ऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो

✱ न देनद्य जुरुप्राप्यानि एतेमिति श्रुतेः।

॥ अपायस्य घृत कीनों वै वाग्निर्वैश्वानरो सुरवादुज्ज्वालेति १।४।१।१।३। श्रुतेः।

ऽअस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां-
२॥३ आविवेश ॥ ९१॥

यज्ञपुरुष देवत्य ऋषभोमन्त्रः। चतुःशृङ्गोऽवमीदित्युक्ताचतुःशृङ्गंयज्ञं वृषभरूपेण प्रतिपादयितुमाह। जो वृषभः (कामोंका वर्षने वाला) रोरवीति अत्यर्थ शब्द करताहै सो यह महो देवः + महान्देव ब्रह्मादिस्तंब पर्यन्त प्राणियों का उपजीव्य ज्ञान कर्म समुच्चय कारिविद्वानों का शरीरभूत मनुष्योंको व्याप्तहो तिष्ठैहै। जिसवृषभ (यज्ञ) के चारि शृङ्ग ब्रह्मा उद्गाता होता अध्वर्यु तीनिपाद ऋक् यजुसाम दोशिर हविर्धानप्रवर्ग्य ‡ सातहाथ सात होताहैं और जो त्रिधा तीनि प्रकारों प्रातःसवन माध्यन्दिनसवन तृतीयसवन सेबद्धहै ॥ यद्वा यास्कानुसारेण व्याख्येयः निरु॰परि॰१।७। चत्वारो वेदाः शृङ्गाणि त्रयः पादाः सवनानि द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये सप्त हस्ताः गायत्र्यादि सप्त छन्दांसि त्रिधाबद्धः मन्त्रब्राह्मणकल्पैर्बद्धः ॥ शब्दग्रामोवापतञ्जल्यनुसारेण। चत्वारि शृङ्गाणि नामाख्यातोपसर्गनिपाताः त्रयः पादाः प्रथमपुरुष मध्यमपुरुषोत्तम पुरुषाः त्रयः काला वा द्वे शीर्षे कार्यता व्यङ्ग्यते सप्तहस्ताः विभक्तिरूपाः त्रिधाबद्धः एकवचन द्विवचन बहुवचनैर्बद्धः। वृषभ इवायमन्यशास्त्राणि अधः कृत्वा रोरवीति सोऽयं महान्देवो मर्त्योनाविवेश आविशति प्रतिपादयति मनुष्येष्विति मनुष्याधिकारत्वाच्छास्त्रस्येतिन्यायात्॥ ९१॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्

+ महतीति पूज्यतीति महाने वाजसे ति मह्यः॥

‡ शिर एवास्य हविर्धानं प्रवर्ग्य व्यनस्यो पुरुष शिरस्य गयदतिश्रुतेः॥

न्दन्। इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः॥९२॥

तीनि प्रकारों से इन लोकों में स्थापित यज्ञ परिणामभूत घृत को पणिभिः असुरों से गुप्यमान होते देवासः देवता धेनुविषें आनु पूर्व्यात् पाते हुए। तिस के एक भाग को इन्द्र उत्पन्न करता हुआ तेवा एते आहुति हुते उत्क्रामतस्ते अन्तरिक्षमाविशत इत्यादि श्रुतिषु इन्द्रस्य जनकत्वं दर्शयति। सूर्य एक भाग को उत्पन्न करता हुआ नत उत्क्रामतस्ते दिवमाविशत इत्यादि श्रुतिः सूर्यस्य घृतभाग जनकत्वं दर्शयति। वेनात् यज्ञसाधनभूत अग्नि से एक को स्वधया त्रैताहुति लक्षण अन्न करि के द्विजाति लोग निकालते हुए यस्ततः पुत्रो जायते स लोक अत्पुत्थायीत्येतदुक्तं भवति॥९२॥

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे। घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसात्॥९३॥

एता वाच ऊँची चलती हैं कहां से कि हृदय समुद्र (अक्षोदकस्तुतदेवताया थात्म्य चिन्तन सन्तानरूप निगम निरुक्त निघण्टु व्याकरण शिक्षा छन्द करि पवित्र से) कैसी वाणीएँ कि शतव्रजाः बहुत हैं गतिएँ जिन्हों की अर्थात् बहुरूप्यो। और जे चलती हुई रिपु (कुतार्किक वृन्द शत्रु) करि नहीं खण्डित हो सकतीं ते घृत की धारा ऐसे+ देखता हूं। और इन वाचाओं के मध्य में जो हिरण्यय दीप्यमान वेतस (अग्नि) है तिसे देखता हूं+॥ यद्वा घृतधारा एवोच्यन्ते जेण

+प्रवाहरूपा

+ अग्निर्हं वाचामधिष्ठात्री देवता

ता हृदय समुद्र से घृतधाराचलतीहैं हृदयेन संकल्प्य यजनाद्धृद्य इत्यतिरित्युच्यते। शतव्रजा नानागतयः। और जे यज्ञपरिपन्थिदेखने नहीं सकते ते घृत धारा देखताहूं। और जो यह हिरण्यय आहवनीय अग्नि इन धाराओं के मध्यमें स्थितहै तिसैभी देखताहूं अर्थात् द्रव्य और देवता को याथातथ्येन मैं देखता हूं॥९३॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः। एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः॥९४॥

जे धेनाः वाणियें नदीएं जैसे अनवछिन्न प्रवाहाः भले प्रकार प्रसरतीहैं। कैसीहैं धेनाः कि शरीरान्तर व्यवस्थित हृदय पावन स्थानीय और मन करि पूयमान (शब्ददोषों से विविच्यमान) हैं। वे अग्निकोही स्तुति करती हैं इति शेषः। और जे एते घृत की कल्लोलें स्रुक्परिभ्रष्टाः चलतीहैं वेभी अग्निको तर्पणकरतीहैं इति शेषः। तत्र दृष्टान्तः क्षिपण (व्याध) से पलायमाना मृग जैसे अर्थात् जे घृतकी कल्लोलें चलती हैं वे अग्नि को तर्पण करती हैं। श्रुति द्रव्यं चाग्न्यर्थमेवेति भावः॥९४॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः। घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः॥९५॥

घृत की धाराएं स्रुङ्मुख से गिरती हैं। कैसी धाराएं कि यह्वाः (बड़ी) तत्र दृष्टान्तद्वयम् जैसे नदीओं के वातप्रमियः (तरङ्गें) विष

+ महत्नामसु निघं॰ ३।३

म प्रदेशमें गिरते हैं तद्वत्। कैसीहैं तरङ्गें कि अक्षनासः क्षिप्रहैं गम नजिन्होंका। अन्यो दृष्टान्तः जैसे अरुषः जात्यादि से उत्कृष्ट अ श्वः पतति टपकताहै। तैसे काष्ठाः-आज्यन्तो संग्रामप्रदेशोंको विदीर्ण करते ऊर्मि काष्ठाभेदनोत्थ श्रमस्वेदोदक से भूमि को सींचते वो ह अश्व जैसे गिरकर अन्नों को खाता है एवं पतन्ती घृतधारा अग्नि भक्षण करताहै॥९५॥

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्। घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः॥९६॥

घृत की धारा अग्नि प्रति जातीहैं। तत्र दृष्टान्तः योषा इव-जैसे स्त्री पति को। कैसी स्त्रिएँ कि समान हैं मन जिन्होंके रूप यौवन सम्पन्न-थोडी हँसतीएँ। ते धाराएँ अग्नि को हरती वा व्याप्त होतीहैं। कैसीधा राएँ कि समिधः-दीप्त करतीहैं अग्नि को। किंच जातवेदाः जातप्र ज्ञानो ऽग्निः प्रीतियुक्तः सन् ते घृत की धाराएँ हर्यति प्राप्त होता वा कामना करताहै नास्य ग्रहण शक्ति परिहरणमस्तीतिभावः॥९६

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि। यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते॥९७॥

घृत की धाराएँ तहां जातीहैं। कहां कि जिस स्थान में सोम (लताविशेषः) अभिषवण करियेहै और जहां यज्ञ (सौत्रामण्याख्य) करियेहै तहां घृतकी धाराएँ देखताहूं। तत्र गमने दृष्टान्तः जैसे क

न्या अञ्जि(भग)को अञ्जानाः(व्यक्त, योग्य करिके)प्रति प्रति प्राप्त होतीहैं तैसे यज्ञ प्रति घृतधारा जातीहैं अर्थात् तापवज्ञ सहित घृतधाराएँ देखताहूं॥५७॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त। इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते॥५८॥

हे देवताओ तुम शोभमा स्तुति और आजि(यज्ञ) प्रति सर्वतः आओ। कैसे यज्ञ प्रति कि गव्य(घृत)है विद्यमान जिसमें। और आकार हमारे कल्याणों और धनों को स्थापन करो वा देओ। किंच हमारे इस यज्ञ(सौत्रामणी)को देवता(देवतासु-देवलोक)में प्राप्त करो। किंच जो ये घृत की धारा रसवती जैसे तैसे प्रसरती हैं तिन्हें भी देवलोक विषें प्राप्त करो अर्थात् यज्ञ द्रव्य के स्वर्ग प्रति जाते यजमान जाताहीहै॥५८॥

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि। अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं तऽऊर्मिम्॥५९॥

इतिश्रीसᳫँहितायांनवमोऽनुवाकः९

इतिश्रीशुक्लयजुषि माध्यन्दिनशाखीयायांवाजसनेयसᳫँहितायांदीर्घपाठेसप्तदशोऽध्यायः१७

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं निखिलं जगदाहुतिपरिणामभूतं मन्यमानो मुनिराह। हे अग्ने सब भूतजात तेरी धामन्(विभूतिविषें) अधिश्रि

त(आश्रित-स्थित)है अर्थात् त्वन्महिमोत्थ है। और जो समुद्र विषें
तथा हृदय के मध्य तथा आयु(ब्रह्मा के जीवन पर्यन्त)में जो भूतजात हैं
वोह भी तेरी विभूति में स्थित हैं। इस हेतु मैं प्रार्थना करता हूं कि रक्ष
वन्त त्वदीय घृतकल्लोल को हम अश्याम(भक्षण करें वा प्राप्त होवें)
तिस किसे कि अपामनीक(मुख)विषें जो कल्लोल समिथ(पणिकेस
थ युद्ध)में आहरण किया-निधाहितं पणिभिरिति क ७० उक्तत्वा
त्।हविः परिणामी रस के हम भोक्ता होवें इति भावः देवत्व को प्राप्त
होवें इति वक्रोक्त्या प्रार्थ्यते॥यद्वास्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते।हे अ
ग्ने यह सब भूतजात तेरे धाम विषें अधिश्रित है वोह तेरा धाम कहां-
कहां यह कहिते हैं कि अन्तः समुद्रे-समुद्र विषें वडवाग्नि रूप करि
वा समुद्र(अन्तरिक्ष)में सूर्य रूप करि। हृदि अन्तः-हृदय में ज्ञाना
ग्नि रूप वा जठराग्नि रूप करि। आयुषि-अन्न विषें सब प्राणियों के
आहार रूप करि। अपामनीके-उदकों के संघात में वैद्युताग्नि रू
पेण। समिथे-संग्राम में शौर्याग्नि रूप करि। एवं सब स्थानों में स्था-
पित जो तेरा धाम रूप कल्लोल घृत रूप वा उदक रूप तिस तेरे माधुर्यो
पेत को हम प्राप्त होवें भाव यह है कि सर्व रस भोक्ता रहें॥ ९९॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये नवमोऽनुवाकः ९

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देया दग्निर्देवसनातनः

इतिश्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यंदिनीशाखाध्येतृव्याघ्रपाद्य
न्वय विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मज रौक्मिणेय

नृपतिगिरिप्रसादेनरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये सेकादिजयपर्यन्त वर्णनोनाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

हरिः ओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकंद्विरूपंच साधनैर्वेदरूपकम्
स्वानंददायकंकृष्णं ब्रह्मरूप परंस्तुमः १८

वाजश्चमे देवानामार्षम्

अ॰ १ वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्चमे धीतिश्चमे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्चमे श्रवश्च मे श्रुतिश्चमेज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१॥

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेनभाष्येऽष्टादशईर्यते
वसोर्धारादिकोऽध्यायश्चित्युपस्थावसानकः१८

सप्तदशोऽध्यायेचित्यारोहणादिमन्त्राउक्ताः इदानीमष्टादशाऽध्याये वसोर्धारादिमन्त्राउच्यन्ते॥॥का॰ १८-५-१॰ ततः यजमान आज्य को संस्कारकरि अर्थपरिमाण वडी औदुम्बरी स्रुचा (महतास्रुवा) करिके पञ्चवार गृहीत आज्य को आरण्य विषें अनूच्य पुरोडाश के अधिकरण में तिस ऊपर संतत अविच्छिन्न धारजैसेतैसे वसोर्धारासंज्ञा आहुति को होमें घृतमें अग्नि प्राप्तिहोते वाज श्चेत्यादि होम मन्त्रोंका आरम्भकरै अष्ट अनुवाकोंवाजश्चेत्यादिवेट् स्वाहान्त एकोनत्रिंशत् कण्डिकात्मकोंसे॥वाजश्चमे॥चकारः

समुच्चयार्थाः। यज्ञेन इस मेरे किये यज्ञ करि वाजादयः पदार्थाः क
ल्पन्ताम् क्लृप्ताः(सम्पन्न)होवें अर्थात् वोह यज्ञ वाजादिकोंका दा
ता हमारे अर्थ होवै अथो इदंचमे देहीदंचम इति ५·३·२·५· श्रुते।
यद्वा वाजादिक पदार्थ मेरे यज्ञ विषें अग्नि को तर्पण वा अभिषि
ञ्चनकरें अनेन चत्वा प्रीणाम्यनेन चत्वाभिषिञ्चामीत्यादि ५·३·
२·५· श्रुतिः। द्वौ-द्वौ कामावनुपक्षयाय संयुञ्ज्याच्चकारेणकन्याकु
माराविव तथाच श्रुतिः ५·३·२·६· द्वौ-द्वौकामावभिरूपौ संयुनक्त्य-
व्यवच्छेदाय यथा व्योकसौ संयुञ्ज्यादिति। अथ पदार्था व्याख्याय-
न्ते। वाजश्चेत्यादियजुषां देवा ऋषयः अग्निर्देवता छन्दांसि पिङ्ग
लोक्तान्यक्षरसंख्यया ज्ञेयानि। एतैर्यजुर्भिर्यजमानोऽग्नेः कामा
न्याचते वाजो मेऽस्त्वित्यादि॥ तत्रैकाधिकानि चतुःशतं यजूंषि का
मास्तु पञ्चदशोत्तरं शतम्। तद्यथा। वाजश्चेत्याद्यासु ज्यैष्ठ्यंचमे ४ वसुच
मे १५ इतिकण्डिकाद्वयवर्जितासु एकोनविंशतिकण्डिकासु त्रयोदश-त्र
योदश यजूंषि सन्ति ज्यैष्ठ्यंचमऽइत्यस्यां ४ पञ्चदश वसुचमऽइत्यस्यां-
१५ नव। अग्निश्चमे घर्मश्चमऽइत्यस्यां २२ द्वादशकामास्तु त्रयोदश
अङ्गुलयः शक्वर्यो दिशश्च मऽइत्येकं यजुः कामास्त्वत्र त्रयः। व्रतं
चमऽइत्यस्यां २३ षट्कामास्तु दश अहोरात्रेऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे
च मऽइत्येकं यजुः षट्कामाः। एकाच मऽइत्यस्यां २४ त्रयस्त्रिंशत
चतस्रश्च मे २५ अत्र त्रयोविंशतिः। त्र्यविश्चमे २६ त्रैकादश। पष्ठवा
ट् मे २७ इत्यत्र नव। वाजाय स्वाहेति २८ अत्रचतुर्दश। आयुर्यज्ञेने
ति २९ अत्रैकविंशतिः कल्पन्तां मन्त्रानि द्वादश १२ स्तोमश्चेति षट् १९

स्वर्देवाः १६ प्रजापते: २० वेट् स्वाहा २१ एकैकं एव मे काधिकान्न तु शृ॰ती॥ अथ यजुषामर्थाः। अन्नं। अन्नदानाभ्यनुज्ञा॰ देशो॰ भोजनकरोऽश्रुद्धि। बन्धन अन्न विषयौत्सुक्य ध्यान। संकल्पवायत्त। साधु शब्द। पद्यवन्ध वा स्तुति। वेदमन्त्राः वा श्रवण सामर्थ्य। ब्राह्मण वा श्रवण सामर्थ्य। प्रकाश। स्वर्ग। एते मे मम यज्ञेन कल्पन्ताम्। कल्पन्तामिति कण्डिकान्तस्य समुदायापेक्षया बहुत्वम्। मे-पादानामावृत्तिः प्रत्येकं मात्यर्थी। एवं सर्वत्र॥१॥

प्राणश्च मे ऽपानश्च मे व्यानश्च मे ऽसुश्च मे चित्तं च म ऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२॥

ऊर्ध्व संचारी शरीर वायु। अधोवृत्तिवायु। सर्वशरीरचारी। प्रवृत्तिमान्वायु। मानस संकल्प। बाह्यविषयज्ञान। वागिन्द्रिय। मन। चक्षु इन्द्रिय। श्रवणेन्द्रिय। ज्ञानेन्द्रिय कौशल। कर्मेन्द्रिय कौशल। एतानि यज्ञेन मे कल्पन्ताम्॥२॥

ओजश्च मे सहश्च म ऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मे ऽङ्गानि च मे ऽस्थीनि च मे परूंषि च मे शरीराणि च म ऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥३॥

बलहेतु अष्टमोधातुः। शरीर बल वा सपत्नाभिभवितृत्व। परमात्मा। रम्यं वपुः। सुख। कवच। हस्ताद्यवयवाः। शरीरगत हड्डियें। अङ्गुल्यादि पर्वाणि। पूर्वानुक्ताः शरीरावयवाः। जीवन। वार्धकान्त आयु। एते यज्ञेन सम्पद्यताम्॥३॥

ज्यैष्ठ्यं च मऽ आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽम
श्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्र
थिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

प्रशस्तत्व। स्वामित्व। मानसःकोपः। अधिक्षेपादि लिङ्ग को बाह्य कोपः। अपरिमेयत्व- अन्यैरियत्तया परिछेतुमशक्यत्वम्। शीत मधुर जल। जय सामर्थ्य। सम्पत्त्यादि करि महत्व। प्रजादि विशालता। गृह क्षेत्रादि विस्तारः। दीर्घजीवित्व। अविछिन्न वंशत्व। प्रभूतमन्न धनादि। विद्यादि गुणों से उत्कर्ष। एते मे कल्पंताम् ॥४॥

अ०२ सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे मह
श्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं
च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

यथार्थभाषित्व। परलोकविश्वास। जङ्गम-गवादि। कनकादि स्थावर। दीप्ति। अक्षद्यूतादि। क्रीडादर्शन से कुआ हर्ष। पुत्रोत्पन्नमपत्यम्। भविष्यदपत्यम्। ऋक्समूह। ऋक्पाठजन्य शुभादृष्ट। एते कल्पन्ताम् ॥५॥

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च
मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं
च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥

यज्ञादिकर्म। तत्फलभूतं स्वर्गादि। धातुक्षयादिरोगाभावः। सामान्य-व्याध्यादिराहित्यम्। व्याधिनाशकमोषधम्। बहु कालमायुः। आ

नु राहित्यम्। भीतिराहित्यम्। आनन्दः। संस्कृता शय्या। स्नान संध्या दियुक्तः प्रातःकालः। यज्ञदानादियुक्तं सर्वदिनम्। एते मे यज्ञेनासध्यन्तु॥६॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥७॥

अश्वादि नियन्ता। पोषकः पित्रादिः। विद्यमान धनस्य रक्षणशक्तिः। आपत्स्वपि स्थिरचित्तत्वम्। सर्वानुकूल्यम्। पूजा। वेदशास्त्रादि ज्ञानम्। विज्ञान सामर्थ्यम्। पुत्रादि प्रेरण सामर्थ्यम्। पुत्रोत्पत्त्यादि सामर्थ्यम्। हलादि कृषि कृत धान्यनिष्पत्तिः। कृषि प्रतिबन्ध निवृत्तिः॥७॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥८॥

ऐहिक सुख। आमुष्मिक सुख। प्रीत्युत्पादक वस्तु। अनुकूल यत्न साध्य पदार्थ। विषयभोगजनित सुख। मनःस्वास्थ्यकरो बन्धुवर्ग। सौभाग्य। धन। ऐहिक कल्याण। पारलौकिक श्रेय। निवास योग्य वसुमान्गृहादि। कीर्ति। एते कल्पन्ताम्॥ ८॥

अ०३ ऊर्क् मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥९॥

अन्न।प्रियासत्यावाक्।दुग्ध।तत्रत्यःसारः।आज्य।क्षौद्र।बन्धुओंसहित भोजन।बन्धु०—तपान।कृषिकृतधान्यसिद्धिः।धान्यनिष्पादिकानुकूलावृष्टिः।जयसामर्थ्य।चूतादि वृक्षों की उत्पत्ति।एते यज्ञेन कल्पन्ताम्॥९॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१०॥

सुवर्ण।मुक्तादिमणयः।धनपोषः।शरीरपोषकः।व्याप्तिसामर्थ्य।ऐश्वर्य।धनपुत्रादिबाहुल्यम्।गजतुरगादिबाहुल्यम्।कुत्सितधान्यमपि।क्षयहीनं धान्यादि।अन्नमोदनादि।भुक्तान्नपरिपाकः।एते कल्पन्ताम्॥१०॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च मऽऋद्धं च मऽऋद्धिश्च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥११॥

पूर्वलब्धवित्तम्।लब्धव्यम्।पूर्वसिद्धक्षेत्रादि।सम्पत्स्यमानंक्षेत्रादि।सुखगम्योदेशः।शोभनहित।समृद्धयज्ञफल।यज्ञादिसमृद्धि।कार्यक्षेमं द्रव्यादि।स्वकार्येसामर्थ्य।पदार्थमात्र का निश्चय।दुर्घटकार्यादिविषेनिश्चय।एते यज्ञेन कल्पन्ताम्॥११॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१२॥

व्रीहि॰ तण्डुल विशेषाः। यवाः। माषाः। तिलाः। मुद्गाः। चणकाःलङ्गु। कङ्गवः॰ कांगुनी। चैना। श्यामाकाः तृण धान्यानि ग्राम्याणि कोद्रवत्वेन प्रसिद्धानि। नीवाराः (तृणधान्यान्यारण्यानि। गोधूमाः। मसूराः। एतेधान्यविशेषा मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१२॥

अ०४ अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्चमे श्यामं चमे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१३॥

पाषाणः। मृत्तिका। गोवर्धनार्बुद रैवतिकादयः क्षुद्रपर्वताः। मन्दिर हिमाचलादयः महान्तः पर्वताः। शर्कराः। पुष्प विना फलनेवाले पनस उदुम्बरादयः। सुवर्ण वा रजत। लोहा। ताम्रलोह कांस्य रजत वा कनक। लोह + सर्व तैजस। सीसा। रंग। एते कार्य विशेषेषु मे कल्पन्ताम्॥१३॥

+ लोहं कालायसं सर्व तैजसं लोहं लोहे भिकृत्याभिधानात्।

अग्निश्च मऽआपश्च मे वीरुधश्च मऽओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशवऽआरण्याश्च मे वित्तं चमे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१४॥

पृथिवीस्थो वन्हिः। अन्तरिक्षस्थानि जलानि। गुल्माः। फलपाकान्ताः। भूमिकर्षण वीजवापादि कर्मों से निष्पादन कीजावें व्रीहि यवादयः। स्वयमेवोत्पद्यमानाः नीवारगवेधुकादयः। गो अश्व महिष अजा अवि गर्दभ उष्ट्रादयः ग्राम्य पशवः। हस्तिसिंह शरभ मृग गवय मर्कटादयः आरण्यपशवः। पूर्वलब्ध। भाविलाभ।

जात पुत्रादिक। स्वार्जितमैश्वर्यम्। एतानियज्ञेनममसम्पद्यन्ताम्॥१४॥

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मऽ एमश्च मऽ इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१५॥

धन गवादिक। वासस्थान गृह। अग्निहोत्रादि कर्म। तिन्हों की अनुष्ठान सामर्थ्य। अभिलषितः पदार्थः। प्राप्तव्योऽर्थः। इष्टप्राप्त्युपायः। इष्टप्राप्तिः। एते कल्पन्ताम्॥१५॥

अ०५ अग्निश्च मऽ इन्द्रश्च मे सोमश्च मऽ इन्द्रश्च मे सविता च मऽ इन्द्रश्च मे सरस्वती च मऽ इन्द्रश्च मे पूषा च मऽ इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मऽ इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१६॥

अर्धार्धैन्द्राणि जुहोति ९·३·२·९· अर्धसेन्द्र देवत्यत्वादर्धस्य नाना देवत्यत्वात्। अग्नि सोम सवितृ सरस्वती पूष बृहस्पतयः प्रसिद्धाः। ते समानभागत्वादिन्द्र एकैकया सह पठ्यते। यास्कोक्ता इन्द्र शब्दस्य नानार्थाः कार्याः एवमग्रेऽपि कण्डिकाद्वये। एते कल्पन्ताम्॥१६॥

मित्रश्च मऽ इन्द्रश्च मे वरुणश्च मऽ इन्द्रश्च मे धाता च मऽ इन्द्रश्च मे त्वष्टा च मऽ इन्द्रश्च मे मरुतश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१७॥

मित्र वरुण धातृ त्वष्टृ मरुद्विश्वेदेवाः प्रसिद्धाः। प्रत्येकमिन्द्रः। एते कल्पन्ताम्॥१७॥

पृथिवी च मऽ इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च मऽ इन्द्रश्च मे द्यौश्च मऽ इन्द्रश्च मे समाश्च मऽ इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽ इन्द्रश्च मे दिशश्च मऽ इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्प-

न्ताम् ॥१८॥

पृथिव्यन्तरिक्षं दिवस्त्रैलोक्यम् । समा वर्षाधिष्ठात्र्यो देवताः । नक्षत्राणि अश्विन्यादीनि । दिशः प्रागाद्याः । एते कल्पन्ताम् ॥१८॥

अ०६ अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॒ मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च म उपा॒ꣳशुश्च॑ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ म ऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ म आश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्र॒स्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१९॥

अथ ग्रहाञ्जुहोति ५.३.२.१० कण्डिकात्रये ग्रहहोममन्त्राः । अंश्वादयः सोमग्रहविशेषाः सोमप्रकरणे प्रसिद्धाः । अदाभ्यस्यैव गृह्यमाणत्वदशायां पृथक्कृत्य ग्रहणे रश्मिशब्देन निर्देशः रश्मीनां तद्ग्रहणे साधनत्वात् अन्हो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु इति ८.४८ मन्त्रलिङ्गात् । अधिपतिशब्देन निग्राह्यो विवक्षितः तस्य ज्येष्ठत्वादाधिपत्यम् ज्येष्ठो वा एष ग्रहाणामिति श्रुतेः । प्रतिप्रस्थानशब्देन निग्राह्यो विवक्षितः द्विदेवत्यैः सह पाठात् । अन्ये प्रसिद्धाः ॥१९॥

आ॒ग्र॒य॒णश्च॑ मे वैश्वदे॒वश्च॑ मे ध्रु॒वश्च॑ मे वैश्वान॒रश्च॑ म ऐन्द्रा॒ग्नश्च॑ मे म॒हावै॑श्वदे॒वश्च॑ मे मरुत्वती॒याश्च॑ मे॒ निष्के॑वल्यश्च मे सावि॒त्रश्च॑ मे सारस्व॒तश्च॑ मे पात्नीव॒तश्च॑ मे हारियोज॒नश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥२०॥

आद्यो वैश्वदेवः प्रातःसवनगतः महावैश्वदेवस्तु तृतीयसवनगतः । ध्रुवाख्यस्यैव ग्रहस्य श्रवणदशायां वैश्वानरसूक्तपाठात्तद्

प्रापन्नो ध्रुवो वैश्वानर शब्देनोच्यते। मरुत्वतीया इति बहुवच
नं त्रित्वात् मरुत्वतीयो महामरुत्वतीयः कुण्ठ मरुत्वतीयश्चेति।
अभिषेचनीये सारस्वतीनामपां ग्रहणमेव सारस्वतो ग्रहः सारस्व
तं ग्रहं गृह्णातीति तत्राम्नानात्॥२०॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च
मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च मऽआधव
नीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाका
रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२१॥

स्रुचो जुह्वादयः। चमसानि ग्रहपात्राणि। वायव्यानि पात्रविशे
षाः। अधिषवणे काष्ठफलके। पूतभृदाधवनीयौ सोमपात्रविशे
षौ। स्वगाकारः शंय्वुवाकः तेन यथास्वं देवतानां हविरङ्गीकारात्।
प्रसिद्धमन्यत्। एते मम यज्ञेन निमित्तेन कल्पन्ताम्॥२१॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽ
श्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च
मेऽङ्गुलयः शक्करयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२२॥

कण्डिकाद्वयेन यज्ञक्रतुहोमः अथैतान्यज्ञक्रतूञ्जुहोत्यग्निश्च
मऽइति ९।३।३।१। श्रुतेः। अग्निः चीयमानो वह्निरग्निष्टोमो
वा। घर्मः प्रवर्ग्यः। इन्द्रायार्कवते पुरोडाशमिति विहितो यागो
ऽर्कः। सौर्यं चरुमिति विहितः सूर्यः। प्राणो गवामयनम्। अश्वमेधः
प्रसिद्धः। पृथिव्यदितिदितिद्यौः देवताविशेषाः। अङ्गुलयः विरा
ट्पुरुषावयवाः। शक्करयः शक्तयः। दिशः प्राच्याद्याः। एते य

ज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

व्रतं च मऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरा त्रेऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

व्रतं नियमः। ऋतवो वसन्ताद्यः। तपः कृच्छ्रं चान्द्रायणादि। संवत्सरः प्रभवादिः। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रे दिननिशे। ऊरू चाष्ठीवन्तौ जानुनी च ऊर्वष्ठीवे अवयवविशेषौ। बृहद्रथन्तरे एतन्नामके सामनी। एतानि कल्पन्ताम् ॥२३॥

२४ एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽएकविꣳशतिश्च मऽएकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मऽएकत्रिꣳशच्च मऽएकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

अयुग्मस्तोमहोमार्था मन्त्राः अथायुजस्तोमाञ्जुहोतीति ९।३।३।२। श्रुतेः। एकमादाय द्वितीयां विहाय तृतीयामादाय चतुर्थीं विहाय परित्यक्तसमसंख्याकेनात्तविषमसंख्याकेन मन्त्रेण युग्मान्स्तोमाञ्जुहुयादित्यर्थः। आदरातिशयद्योतनार्था सर्वत्र पुनरुक्तिः।

अयुग्मस्तोम होमैः सर्वकामावाप्तिः तथा श्रुतिः ९·३·३·२· एतद्वै देवाः सर्वान्कामानाप्त्वायुग्भि स्तोमैः स्वर्गं लोकमायंस्तथैवै तद्यजमानाः सर्वान्कामानाप्त्वायुग्भि स्तोमैः स्वर्गं लोकमेतीत्यादि॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२४॥

एक कण्डिकया युग्मस्तोमाञ्जुहोति अथ युग्मतो जुहोति चतस्रश्च मऽइति ९·३·३·४· प्रथमं चतस्र इत्येतां संख्यामादाय चतुरुत्तरत्वेन स्थितान्युग्मान्स्तोमानष्टाचत्वारिंशत्पर्यन्ताञ्जुहुयादित्यर्थः। तत्फलं स्वर्गप्राप्तिः एतद्वै छन्दांस्यब्रुवन्यातयामा वाऽअयुज स्तोमा युग्मभिर्वयं स्तोमैः स्वर्गं लोकमयामेति तथैतद्यजमानो युग्मभि स्तोमैः स्वर्गं लोकमेतीति ९·३·३·५· श्रुतेः। पूर्व-पूर्वमुत्तरेण सम्बध्नाति वृक्षारोहणवत् तथा च श्रुतिः। ९·३·३·६· पूर्व-पूर्वमुत्तरेणोत्तरेण संधुनक्ति यथा वृक्षं रोहन्नुत्तरामुत्तराꣳ शाखाꣳ समालम्भꣳ रोहेत्तादृक्तदिति अत्रोक्ता संख्या संख्येयनिष्ठा। एते यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२५॥

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाड् च मे दित्यौही च मे प

र्य्याविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२६॥

कण्डिका द्वयं वयोहोमे विनियुक्तम्। तथा च श्रुतिः। ९॰३॰३॰७॰ अथ वयाꣳसि जुहोति त्र्यविश्च मऽइति पशवो वै वयाꣳसि पशुभिरेवैनमेतदन्नेन प्रीणात्यथो पशुभिरेवैनमेतदन्नेनाभिषिञ्चतीति॥ डेढवर्षका वृषभ+। तैसी गो। दो वर्ष का वृषभ। तैसी गो। ढाईवर्ष का॰। तैसी॰। तीनि वर्ष॰ तैसी॰। साढे तीनि बर्ष॰। तैसी॰। एते यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६॥

+ ऽविः षाण्मासात्मकः कालः त्र्यो ऽवर्षो यस्य स त्र्यविः॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वांश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७॥

चारि वर्ष॰। तैसी॰। सेचन क्षमो वृषः। वन्ध्या गो। अतियुवा बैल। गर्भघातिनी गो। शकट वहन समर्थ वृष। नव प्रसूता गो। एते मम यज्ञेन निमितेन कल्पन्तां स्वस्व व्यापार समर्था भवन्तु यद्वा यज्ञेन मम कल्पन्तां मह्यमुपभोगक्षमा भवन्त्वित्यर्थः एवं पूर्वत्र॥२७॥

अ॰ ८ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहा हर्पतये स्वाहान्हे मुग्धाय स्वाहा मुग्धायवैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा। इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमनऊर्जे त्वा वृष्टयै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय॥ २८॥

अथ नाम ग्राह होमः तथा च श्रुतिः ९.३.३.८. अथ नाम ग्राहं जुहोति वाजाय स्वाहेत्येतद्वै देवाः सर्वान्कामा नाप्त्वाथैतमेव प्रत्यक्षम प्रीणँस्तथैवैतद्यजमानः सर्वान्कामा नाप्त्वाथैतमेव प्रत्यक्षं प्रीणातीति। वाजोऽन्नं तस्मै स्वाहेति होम मन्त्रः वाजादीनि चैत्रादि महीनों के नाम हैं तिन नामों को लेके होमें इत्यर्थः। वाजः अन्न की प्रचुरता से चैत्र अन्न रूप है। प्रसव॰ अनुज्ञा रूप (जलक्रीडादिक में अनुज्ञादान से॰ वैशाख:। अपिज॰ जल सै उत्पन्न (जलक्रीडारतत्वात्॰ ज्येष्ठ:। क्रतु॰ याग रूप चातुर्मास्यादि याग प्रावृर्यात्॰ आषाढ। वसु॰ वास कराता (चातुर्मास्ये यात्रनिषेधात्॰ श्रावण: अहर्पति॰ दिनों का स्वामी सूर्य (तापकरत्वात्॰ भाद्रपद। मुग्धमह॰ तुषारादि करि मोह रूप दिवस॰ आश्विन। मुग्धवैनंशिनः॰ अल्प घटिकावत्वेन विनाशशील॰ स्नाननियमादि करि पापनाशकत्व से अमुग्ध॰ कार्तिक। अविनंशिन (विनाशरहित) आन्त्यायन (सर्वों के नाश में अविशिष्ट विष्णुरूप मार्गशिर+। आन्त्य भौवन॰ लोकस्वरूप (पुष्टिकरत्वात् जाठराग्नि दीप्तिकरत्वेन॰ पौष:। भुवनस्य पति भूतजात का पति (स्नानादिना पुण्यजनकत्वात् पालकत्वं॰ माघ:। अधिपति॰ अधिक पालक (वर्षान्तत्वात्॰ फाल्गुण:। प्रजापति॰ एवं द्वादशमासाधिष्ठातृ प्रजापति नामक देवता के अर्थ। स्वाहेति होमार्थं सर्वत्र। हे अग्ने यह ते राज्य (जहां-जहां यज्ञ करिये हैं वोह तेरा ही राज्य है। किंच हे अग्ने तू मित्र (यजमान) का नियामक है। कैसा है तू कि नियन्ता। अग्निष्टोमादि कर्मों में सर्वों को नियमकर्त्ता। अतः ऊर्जे वि

+ मासानां मार्गशीर्षोस्मीतिस्मृतेः भगवद्गी॰ १०.३५

शिष्ट अन्नरस के अर्थ तुम्हें समन्तात् सींचता हूं इतिशेषः। तथा वृष्टिके अर्थ तुम्हें सम॰—हूं†। ततः प्रजा के स्वामित्वाख्य के अर्थ तुम्हें वसोर्धाराकरि सम॰—हूं‡॥२८॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता॑ᳪश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता॑ᳪस्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऽऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा॥२९॥

कल्पहोमः कल्पतामिति लिङ्गात् अथ कल्पाञ्जुहोतीति ९·३·३·१२· श्रुतेः। यज्ञनिमित्तकरि आयु (जीवनकाल) कल्पतां (साध्यतां—प्राप्तहोवें। प्राण·चक्षुएं·श्रोत्र·वाचा·मन·मेरे यज्ञकरि क्लृप्तहोवें। आत्मा देह ⁂। ब्रह्म (वेद) यज्ञेन कल्पताम्। ज्योतिः (स्वयंप्रकाशः परमात्मा) यज्ञेन साध्यताम् ⁂⁂। स्वः—स्वर्गः। पृष्ठ (स्तोत्र वा स्वर्गस्थान) कल्पताम्। यज्ञ यज्ञ ही करिके क्लृप्त होवै नहीं हूं मैं यज्ञक्लृप्तिमें समर्थ ⁂⁂। किंच स्तोम (त्रिवृत्पञ्चदशादिः) यजुः (अनियतपादो मन्त्रः) ऋक् (नियतपादा) साम (गीतिप्रधानम्) बृहद्रथन्तराणि (तद्विशेषौ च) यज्ञेन क्लृप्तानि भवन्त्वित्यनुषङ्गः। वसोर्धारयैवमग्निमभिषिच्यात्मानं यजमानाः प्रशंसन्ति—हम यजमान लोग देवता होकर स्वर्गको गये। और ज्ञाकर अमरणधर्मा हुए ततः प्रजापति हिरण्यगर्भ की प्रजा हुए इतिफल ब

⁂ आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः इतिस्मृतेः

⁂⁂ उग्रकर्मानुष्ठानं परमात्मज्ञाने कारणम् ब्राह्मणाविविदिषन्ति यज्ञेन तपसानाशकेनेतिश्रुतेः १४·७·२·२४· कर्मणैवहि संसिद्धिमास्थिताजनकादयः इतिस्मृतेश्चभगवद्गी॰३·२०।

⁂⁂ यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवा इति ३१·१६

† अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यगादित्यमनुतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा मनु॰ ३·७६

‡ प्रजानामाधिपत्यायेत्यन्नं वाऽऊर्गन्नं वृष्टिरन्नेनैवैनमेतत्प्रीणाति यद्वेवाहेयन्तेराडित्यन्त्राय यन्तासि यमन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्यायेतीदं ते राज्यमभिषिक्तोऽसीत्येतन्नियन्ता सत्वं यन्तासीतिशत ९·३·३·१०·११ श्रुतः॥

चनम्। अनेन वसोर्धारायाः सर्वकाम प्राप्तिहेतुत्वमुक्तम्। वेट्स्वाहेति वसोर्धाराहोमार्थो मन्त्रः वेडिति बषट्कारः। बषट्कारो हैष परोक्षं यद्वेट्कारो बषट्कारेण वावै स्वाहाकारेण वा देवेभ्यो ऽन्नं प्रदीयत इति ९·३·३·१४ श्रुतेः॥ इति वसोर्धारा होम मन्त्राः समाप्ताः॥२९॥

अ०९ वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्॥३०॥

का०१८·५·४·५·क्षेत्रवपवत्सर्वौषध को उदुम्बर चमस में भरिके तिस सर्वौषध चमसवत् चतुष्कोण पुष्कर उदुम्बर स्रुवा से वाजस्येमं प्रसव इति ९·२३–२९ वाजपेय सम्बन्धी वाजप्रसवीय सप्त मन्त्रों से होमिके वाजस्य नु प्रसवे इत्यादि आग्निक वाज प्रसवीय सप्तम मन्त्रों से भी मन्त्र तिसही सर्वौषध और स्रुवा करि होमें॥व्याख्याता९·५॥३०॥

विश्वे ऽअद्य मरुतो विश्व ऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः॥विश्वे नो देवा अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो ऽअस्मे॥३१॥

तु श्रोधाना कदृष्टा वैश्वदेवी त्रिष्टुप्। आजके दिन में सब मरुतः सप्तकगणः आवें। और भी सब देवता गण अष्टबसु द्वादशादित्य एकादश रुद्र इस तर्पण निमित्त करि आवें। विश्वेदेवा और गण देवता हमारे अन्न (हविनिमित्तम) करि हवि ग्रहण के अर्थ आवें और तिन के आगमन से सब अग्निएँ (गार्हपत्यादय) भले प्रकार दीप्त होवें अर्थात् तिन्हों के अर्थ होमने से। तिन्ह देवताओं की तुष्टि से सब धन (गोभूहिरण्यादि) और अन्न हमा

रैं हो॥३१॥

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः। वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु॥३२॥

तिस्रोऽन्नदेवत्याः तत्राद्यानुष्टुप् द्वे त्रिष्टुभौ। हमारे को अन्न सप्तप्रदिशः भूरादि तीनों लोक प्राच्यादि चारोंदिशाएं और परावतश्चतस्रः-महर्जनस्तपः सत्याख्याः समन्तात् पूरणकरें इतिशेषः वाशब्दश्चार्थः यद्वा हमारे दिये अन्न करि सप्तप्रदिशः औरःचतस्रो महराद्यात्तप्तहोवें +। किंचधनसातौ-धन के सम्भजन कालकी प्राप्ति में अन्न हमें विश्वेदेवाओं सहित पालन करै इह-इसलोक वा यज्ञ में जब हमें धनेच्छा होवै तब हमारें देवतर्पणक्षम बह्वन्न हो इति वाक्यार्थः॥३२॥

वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२॥ऽऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्॥३३

आजके दिन में अन्न (अन्नाधिष्ठात्री देवता) हमें प्रेरण करे अनुज्ञा देवै दानार्थ को इतिशेषः अर्थात् अन्न दानेच्छा हमें होवै। अन्नदेवताओं सहित यथास्थान कल्पना करे अर्थात् जिस कालमें जो देवता पष्टव्य है तिसे तहां पूजै। और * अन्न मुझे सर्ववीर पुत्रपौत्रादि युत करै। ततः वाजपतिः समृद्धान्न होकर में सब दिशाएं जीतूं अर्थात् सब दिशाएं अन्न दान सें वशीकरूं॥३३॥

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान्हविषा वर्धयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपति

+ प्रकर्षेन प्रादेन प्रकर्षेण लोकत्रयं दिशः प्राच्या द्याः प्रावक ज्योदूराथीः महरादयोहिलोकत्रय मतीत्यवर्तेते।

* लिम्पकारार्थः

र्मवेयम् ॥३४॥

अन्न हमारे साम्ने हो और हमारे घर के मध्यमें हो। अन्न हमारे हविकरिके देवताओं को पोषे। और अन्न मुझे पुत्रपौत्रादियुक्त करै। अन्नपालक होके मैं सब दिशाएँ होऊँ दिग्रूपता व्याप कता प्राध्यर्य ते॰ यद्वा-सब दिशाएँ वशी करूँ ॥३४॥

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः। सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥३५॥

आग्नेय्या द्वे विराजौ। हे अग्ने जो मैं पृथिवी सम्बन्धि पय(रस)करिके आत्मा(अपने)को संयुक्त करताहूं। जल और ओषधिओं से आ०हूं। सो मैं पय जल ओषधिओं से संयुक्त शरीर होके अन्न को सम्भजूं। यद्वा व्यत्ययेन॰ हे अग्ने जो मैं पृथिवी के पय जल और ओषधीओं से तुझे संयुक्त करता हूं सो मैं अन्न को सम्भजूँ ॥३५॥

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६॥

हे अग्ने तू पृथिवी विषें रस को स्थापन करि। और ओषधीओं में र॰-रि। स्वर्ग में ॰। और अन्तरिक्षमें र॰-। किंच मेरे अर्थविषें दिशा और विदिशा रसयुता होमें अर्थात् आहुति परिणामेन पृथिव्या द्यो ममाभीष्टदा होमें ॥३६॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥३७॥ + दे-मु। अ॰स-मि। इ॰ ॥९७॥

का॰ १८.५.६–८. कर्मोपवर्गमें औदुम्बर चतुष्कोणस्रुवको आहवनीयमें डालिकर अग्निपुच्छसे उत्तरदिशामें परिश्रित संलग्नश ग्रीव उत्तरलोम कृष्णाजिनको फैलाकर तहांस्थित ब्रह्म वर्चसकामो यजमान चयनकृत अन्वारम्भ अध्वर्यु करि सर्वौषधसे सीन्चियेहै। क्याकरिके कि सर्वौषध शेषमें जलडालिके अभिषेकस्यैव द्रव्यसाध्यत्वात् अयंपूर्वपक्षः सिद्धान्तमाह अथवा क्षीरोदकसे पूर्वपक्ष निरासे शेषे जलसेकोन क्योंकि तहां क्षीरोदकहै वाजपेयिकानीति श्रुतेः ९.३.४.७.यहांवाजपेयसम्बन्धी वाजप्रसवीय सुनियेंहैं तहां उदकक्षीरहैं तिन्हैंही उदुम्बरे पात्रेऽप आसिच्य पयश्चे त्युक्तेः का॰ १४.५.२०. इसकारणतिस में मिश्रित हीसे अभिषेकहै नहीं है जलसेक इत्यर्थः॥ देवस्य त्वाप्रा॰ व्याख्यातम् १.१०। सरस्वत्यै लिङ्गोक्त दैवतम् प्रा॰ हे॰। सरस्वतीसम्बन्धिनी वाणी और नियन्ता प्रजापति के यन्त्र से अग्निके साम्राज्य (चक्रवर्तित्व) करिके हे यजमान तुम्हैं सीन्चताहूं मेरे किये अभिषेक से वाक्सिद्ध ऐश्वर्य और साम्राज्य तेरें हों इत्यर्थः॥ ३७॥

अ॰ १० ऋ॒ता॒षाडृ॒तधा॑मा॒ग्निर्ग॑न्ध॒र्वस्तस्यौष॑धयो॒ऽप्सर॑सो॒मुदो॒ नाम॑। स न॑ इ॒दं ब्रह्म॑ क्ष॒त्रं पा॑तु॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ वाट् ताभ्य॒: स्वाहा॑॥ ३८॥

का॰ १८.५.१६. आज्य से द्वादश गृहीत लेके विभागसे द्वादशांश करिके ऋतेत्यादि द्वादश मन्त्रों से प्रति स्वाहाकार राष्ट्रभृत्संज्ञा आहुति होमें व्यतिषक्त द्वादश मन्त्रों में पूर्वो मन्त्रः स्वाहा वाडित्यन्तः उत्तरस्ताभ्यः स्वाहेत्यन्तः ततः मन्त्र में जे पुल्लिङ्ग हैं–

सन इदं ब्रह्मेत्यादीनि तिन व्यवहित पठितों को भी निकालि पढिक
र पूर्व मन्त्र सम्पाद्य हैं॰ और जे स्त्रीलिङ्ग॰ तस्यौषधयो प्सरस इत्यादी
नि हैं तिन्हों को उठाय के उत्तर मन्त्र हैं॥ द्वादश यजूꣳषि गन्धर्वाप्सरो
देवत्यानि। तत्रायं विभागः। ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वः सनइदं
ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाडिति वाडन्तः पूर्वः पूर्वो मन्त्रः तस्यौषध
योऽप्सरसो मुद्रो नाम ताभ्यः स्वाहेति स्वाहान्त उत्तर—उत्तरो मन्त्रः पू
र्वो गन्धर्वदेवत्यः उत्तरोऽप्सरदेवत्यः एवं पञ्चकण्डिकास्वप्यग्रे मन्त्र
विभागो ज्ञेयः+। ऋताषाट् १॰ सꣳहितः २॰ सुषुम्णः ३॰ इषिरः ४॰ भुज्युः ५॰
प्रजापतिः ६ इति षण्णां पूर्वमन्त्राणामृताषाडित्यादि नामका गंधर्वा
देवताः॰ तस्यौषधयः ७॰ तस्य मरीचयः ८॰ तस्य नक्षत्राणि ९॰ तस्यापः
१०॰ तस्य दक्षिणाः ११॰ तस्य ऋक्सामानि १२॰ इति षण्णामुत्तर मन्त्राण
मोषध्यादि नामका अप्सरसो देवताः॥ अथ मन्त्रार्थः॥ जो अग्निगन्ध
र्व है सो हमारे इस ब्रह्म (ब्राह्मणजाति) और क्षत्र (क्षत्रजाति) को रक्षा करे। कैसा
है गंधर्व कि ऋताषाट् सत्य को सहता अर्थात् असत्य में कुपित होता। तथा
ऋतधामा सत्य॰ अविनश्वर धाम जिसका। जो ऐसा अग्नि तिस अ
ग्नि गन्धर्व के अर्थ स्वाहा वाट् (वषट्कारेण) सुहुतमस्तु ॥१॥ तिस अग्नि
गन्धर्व की जो ओषधीएँ (व्रीह्याद्या) नाम करि के अप्सराएँ स्त्रीत्वेन
भोग्या हैं। कैसी ओषधीएँ कि मोदित होते हैं मनुष्य जिन्हों से तिन्ह ओ
षधीओं के अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु ॥२॥३८॥

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्स
रस आयुवो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै-

+पुठं से पूर्व से जुहो तीत्यादि शत॰ ९॰४॰१॰६—१२॰ श्रुतिषु मन्त्रार्थो दर्शनीयः॥

स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

जो सूर्य गन्धर्व सो हमारे ब्र॰। कैसा है कि संहितः (भले प्रकार से स्थापन करता है अहोरात्र को। विश्वसामा (सब साम हैं प्रतिपाद्य जिस के वा सर्व साम रूप। तिस सूर्य ॰॥ ३॥ तिस सूर्य की मरीचि नामा ओजस्त्र सरेणव:) अप्सराएँ। कैसी कि समन्तात् मिश्री होतीएँ तिन्ह मरीचि ओं॥ ४॥ ३९॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

जो चन्द्रमा गन्धर्व सो हमारे ॰। कैसा कि सुषुम्णः (शोभन सुखप्रद ऋत्विकानां चन्द्रलोकाप्रेरुकत्वात्। तथाच सूर्यरश्मिः (सूर्य कीसी किरणें जिसकी। तिसके ॰॥ तिस की नक्षत्र + । नामा अप्सराएँ। कैसीएँ कि भेकुरयः क्रान्ति करतीएँ। तिन्होंके ॰॥ ६॥ ४०॥

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो ऽ अप्सरस ऊर्जो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥

जो वायु गन्धर्व सोह॰। कैसा कि इषिरः (शीघ्रगमनः। विश्वव्यचाः (सर्वतो गमनः। तिसके ॰७॥ तिसकी आपः नामा अप्सराएँ। कैसीएँ कि ऊर्जः (धान्य उत्पादन से जिलाती हैं। तिन्हों के ॰॥ ८॥ ४१॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वा

+ अश्विनी १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणी ४ मृगशिरा ५ आर्द्रा ६ पुनर्वसु ७ पुष्य ८ आश्लेषा ९ मघा १० पूर्वाफाल्गुनी ११ उत्तराफाल्गुनी १२ हस्त १३ चित्रा १४ स्वाती १५ विशाखा १६ अनुराधा १७ ज्येष्ठा १८ मूल १९ पूर्वाषाढा २० उत्तराषाढा २१ श्रवण २२ धनिष्ठा २३ शतभिषा २४ पूर्वाभाद्रपद २५ उत्तराभाद्रपद २६ रेवती २७ इति नक्षत्राणि।

ह् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥

जो यज्ञ गन्धर्व सो हमारे॰ कैसा कि भुज्युः(पालन करता है भूतोंको। सुपर्णः(शोभन है स्वर्ग गमन जिसका॰ उस यज्ञ के स्वर्ग में जाते य जमान जाता है। तिसके॰॥ ९ ॥ तिसकी दक्षिणा नाम अप्सराएँ। कैसीएँ कि स्तावाः(स्तुति करियै है यज्ञ और यजमान जिन्हों करि। तिन्हों के॰॥ १० ॥ ४२ ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऽऋक्सामान्य प्सरस एष्टयो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥

जो मन रूप गन्धर्व सो हमारे॰ कैसा कि प्रजापतिः(प्रजाका पालक। विश्व कर्मा(सब करता तिस के॰॥ ११ ॥ तिसकी ऋक्सामा अप्सराएं नाम प्रसिद्ध हैं। कैसी कि एष्टयः(काङ्क्ष्या करियै है अभीष्ट जिन्हों करि। तिन्हों के॰॥ १२ ॥ ४३ ॥ इति राष्ट्रभृद्धोमः समाप्तः॥

सनो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तऽउपरि गृहा यस्य वेह। अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

का॰ १८॰ ५॰ १७॰ राष्ट्रभृद्धोम के अनन्तर पूर्व संस्कृत आज्य से पांचवार लेकर आहवनीय के ऊपर प्रति प्रस्थात्रादि से धार्यमाण रथ के शिरपर तिस आज्य को पञ्चधा बाँटि के पञ्चकृत्वः होमें पञ्च वार मन्त्र इति॥ प्रजापति देवत्या प्रस्तार पङ्क्तिः। हे भुवन के पालक हे प्रजापते जिस तेरे स्वर्ग में गृह हैं अथवा जिस तेरे इह(भूलोक) में गृह हैं सो तू हमारे इस ब्राह्मण और इस क्षत्रिय के अर्थ महत् सुख दे स्वाहा॰ सु

स्तु॥४४॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभिमावाहि स्वाहा मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मावाहि स्वाहा वस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभिमा वाहि स्वाहा॥४५॥ स-हा। अ॰। मा-हा। रू॰। अ-हा। उ॰॥४५॥

१८·६·१· रथहोम के अनन्तर तिस रथ को वेदीसे उत्तर प्राङ्मु खडा करि तिसके तीनि स्थानों में तीनि वायुहोमों को होमैं प्रतिमन्त्र ों मन्त्रों से। रथयुगदक्षिणधुरोऽधः प्रथमम् उत्तरधुरोऽधो द्वितीय गमध्याधस्तृतीयम्। क्याकरिके कि बाहर वेदीके अञ्जलिकरिबाति के॥ वायव्यानित्रीणि १· यजुः २· आर्षीउ·३·सा-पं॰। त्रिलोकस्यो ः स्तूयते। हेवायो जो तू ऐसाहै सोतू मेरे अभिमुख आगमन करि ·सुहुतं तेऽस्तु। कैसाकि समुद्रः (मेलेप्रकार जलों से क्लिन्न होता) न स्वान् (नक्षत्र विद्यमान हैं जहां) आर्द्रदानुः (वृष्टिप्रवश्यायादिक को ाता) शम्भुः (ऐहिक सुख को प्राप्त कराता) मयोभूः (पारलौकिक- को प्राप्तकराता-स्वर्लोकरूपहै॥१॥ मारुतः (मरुतों का है मरुतां ग ः शुक्रज्योतिः प्रभृति १७·८०-८५·३९-७· गणों के निवासत्व से न्तरिक्षलोकहै। शेषपूर्ववत्॥२॥ अवस्यूः (रक्षा करने को चाहता- लोक रूप) है दुवस्वान् (हविर्लक्षण अन्न विद्यमान है जिसका शिष्ट ानम्॥३॥+॥४५॥

यास्तेऽअग्ने सूर्ये रुचो दिवं मातन्वन्ति रश्मिभिः। ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि॥४६॥

यावो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः। इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत बृहस्पते ॥४७॥

का॰१८॰६॰६॰पूर्वसंस्कृत आज्य से एक-एक वार लेकर नवाहुत्ती होमें यास्ते१॰यावः२॰रुचंनः३॰तत्वा४॰स्वर्णेति कण्डिकाके पांच मन्त्रों से पांच ५॰६॰७॰८॰९॰एवं नव॥ द्वे व्याख्याते २३॰२२॰२३॥ ४६॥४७॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचंराजसु नस्कृधि। रुचं विश्यैषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥४८॥

अग्नि देवत्याऽनुष्टुप्। हे अग्ने हमारे ब्राह्मणों में दीप्ति आरोपण करि। हमारे क्षत्रियों में दी॰ वैश्यों में और शूद्रों में दी॰ किंच हमारे विषें दीप्ति सहित दीप्ति(अन विछिन्ना दीप्ति॰॥ यद्वाब्राह्मण राजन्य विट्शूद्रो में जो दीप्ति तिसैं हमारे विषें स्थापन करि॥४८॥

तत्वा यामि ब्राह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंसमान आयुः प्रमोषीः ॥४९॥

वरुण देवत्या त्रिष्टुप् शुनःशेपदृष्टा। हे वरुण यजमान हविषें देने सें जो +धन पुत्रादिक को इच्छा करता है जिस काम को तेरे लिये हवि दिया वोह यजमानेष्ट तुम्सें में यामि(याचना+ करताहूं। वोह तुम करि के देनेयोग्य है। कैसाहूं में कि त्रयी लक्षण वेद सें तुमैं स्तुति करता॥ किंच हे उरुशंस(बहुस्तुते)इसस्थान में अक्रोध होकर

+ निघं॰३।१९॰

+ अत्र हो तल्व्द्वों वर्तेते तत्रैकस्य पद्धस्य परिणामः कार्यः॥

तू मेरी प्रार्थना जानि। किंच हमारा जीवन मत चुराइ अर्थात् पूर्ण आयु दे॥४९॥

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा- स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा॥५०॥

पञ्चाग्नेयानि १.२.४.५ दे–त्रि०२ दे–पं०। सूर्यो हर्देववाचीस्वशब्दः नवार्थे। अर्कोश्वमेधसंततिसंज्ञाः पञ्चाहुतयः। अर्क (अग्नि) अश्वमेध (सूर्य) तिन्होंकी सन्ततिएँ अग्न्यादित्यैक्य कारिका आहुतियें होमें। अथा र्कोश्व मेधयो रित्यादिषष्णां शत०९.४.३. १८–२३ श्रुतीनामनुसारेण मन्त्राणां व्याख्या यथा। नइवार्थे स्वः दिवस+) ऐसे जो घर्म (आदित्य) तिसे स्वाहा (अग्निमें) होमताहूं नम ग्नाविति शेषः पूरणीयः (आदित्य को अग्नि में स्थापन करताहूं। स्व (सूर्य) ऐसे जो अर्क (अग्नि) तिसे आदित्य में स्थापन करताहूं॥ स्वः (देवता) ऐसे जो शुक्र (आदित्य) तिसे आदित्य हीमें स्थापन०॥ स्वः (स्वर्ग‡) ऐसे यह ज्योति (अग्नि) तिसे अग्नि ही में स्थाप०॥ एवं अग्निको सूर्य में सूर्यको अग्नि में और सूर्यको सूर्य में और अग्निको अग्नि में स्थापन करिके किंबहुना तिन्होंका संयोग करि सूर्यको उत्तमकरि। स्वः (सर्वदेवरूप) ऐसे जो सूर्य तिसे स्वाहा (उत्तम करताहूं ¶। एवं पञ्चाहुतिभिरग्न्यर्कयोरैक्यं विधाय सर्वदेवैक्यकेस्योत्तमत्वंकृतमितिभावः॥५०॥

अ०११ अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम्। तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रु

+ दिनकरत्वात्स्वः पर्याद्दिवसनाम्
‡ स्वर्गप्रदत्वात् स्वर्गः स्वः सौम्यानाम्

१ स्व–हा। अ० बृ० उ०। त्रि०। स्त०॥५०॥
¶ अव्ययानामनेकार्थत्वात्स्वाहा शब्द उत्तमार्थः सर्वे देवाभिन्नाभ्रान्त्याभासंते वस्तुनः सूर्य एव नानारूपोऽस्तीतिवशब्दार्थः॥

ह्यारण अधि नाकं मुत्तमम् ॥५१॥

का॰ १८.६.१६. प्रातरनुवाकोपाकरणसे पहिले यथापूर्वमित्तिउपधानक्रमसे तीनि ऋचाओंकरि प्रत्येक परिधीके स्पर्श करिके अग्नियोजन करै॥ अग्निदेवत्या द्वे त्रिष्टुभौ तृतीया पङ्क्तिः॥ बल और घृतकरि अग्निको संयुक्त करता हूं। कैसे को कि दिवि में हुए। शोभन गमनवयसा (धूमकरिके) वृद्धे को +। किंच तिस अग्निकरिके युक्त ब्रध्न (आदित्य) के विष्टप वगत है ताप अर्थात् दुःख जिसका उस लोकको हम जावें। ततः ब्रध्न विष्टपके ऊपर से स्वर्गलोकको आरोहण करते हुए नाक (दुःखरहित) श्रेष्ठ लोकको जावें॥५१॥

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याᳬ रक्षाᳬस्यपहᳬस्यग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥५२॥

हे अग्ने जो तेरे ये उत्तर दक्षिण पक्ष हैं। कैसे कि जरा रहित सदानवीन। उत्पतनशील। कि जिन पक्षोंसें तू राक्षसोंको मारता है। उएबार्थे। ऐसे तिन्ही पक्षोंसे हम सुकृतां- पुण्य करनेवालोंके लोकको जावें। कि जिस सुकृल्लोकमें प्रथमोत्पन्न पुरातन ऋषि लोग गये॥ ५२॥

इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः। महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिᳬसीः॥५३॥

हे अग्ने जो तू एताहृश है तिस तेरे अर्थ नमस्कार हो तू मुझे हिंसा

+ अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिरिति श्रुतेः श॰ ५.३.५.१७ श्रुतेः॥

मतकर। कीदृश है तू कि इन्दुः (ईश्वर वा चन्द्रव दाल्हादक। दक्षउत्साह वान्) श्येनः (श्येन पक्षिवत् आकाशधारित्वात् यद्वा शंसनीयगतिः। ऋतावा (सत्य यज्ञ वा उदक वाला। हिरण्य पक्षः (सुवर्णशकल हिरण्य रूप हैं पक्ष जिसके। शकुनः (पक्ष्याकारः। भुरण्युः पोषकः। महान् (प्रभावेन। ध्रुवः (स्थिरः। ब्रह्माकरि सह स्थान में समन्तात् बैठि॥५३॥

दिवो मूर्धासिं पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्। विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे॥५४॥

का० १८० ६० १७० यज्ञायज्ञियस्तोत्र प्रकरण से पहिले दिवोमूर्धेति दो ऋचाओं करि दक्षिण उत्तर परिधिओं की सन्धिओं को उपस्पर्श करिके अग्नि विमोचन करे॥ आग्नेयी परोष्णिक्। हे अग्ने जो तू ऐसा तिस पथ (स्वर्गमार्ग) के अर्थ नमस्कार हो (अग्नि मुखोहि देवयान पन्थाः श्रुतावुक्तः। कैसा है तू कि दिवोमूर्धा (स्वर्लोक का उत्तमाङ्गस्थानीय। पृथिवी का नाभि (मध्यस्थानीय +। जल और ओषधीओंका सार। विश्वायुः (बहुजीवन वा सब प्राणियोंका जीवन *शर्म (सबोंका शरणभूत) सप्रथाः (विस्तार सहित वर्तमान तिर्यगूर्ध्व मध स्थानवछिन्न प्रभावः। ऐसे अग्नि के अर्थ नमः॥५४॥

विश्वस्य मूर्धन्नधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त। दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव॥५५॥

आग्नेयी महापङ्क्तिर्जगती। हे अग्ने सो तू हमलोगों को वृष्टिक

+ पृथ्वीलोकानां जीवनमग्निर्निर्वहणमितिभावः।

* तदाधि जीवनत्वात्तेषामितिभावः।

रिके रक्षाकरि। क्या करिके कि दिवः (द्युलोक) से पर्जन्य (मेघ)
न्तरिक्ष (आकाश) से पृथिवी के सकाश से अन्यत्र वा जहां जल त
तः प्रदेश से जल लेकर इति शेषः। जो तू श्रितः (इन्द्रियों सु
नाडी को आश्रित) होकर सबों के मूर्धन् (ऊपर में) रविरूप करि
मान है। जिस तेरा समुद्र (अन्तरिक्ष) तहां मध्यभाग पृथ्वी में चरण
अर्थात् त्रिलोकव्यापी है। जिस तेरा जलों में जीवन ¶ है। किं
हे अग्ने उदधि (मेघों ꠰꠰) को भिन्धि कर जल दे॥५५॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः। तस्य न इ
ष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः॥५६॥

का॰१८॰६॰१९॰ समिन्द्रण इत्यादि नवꣳ समिष्ट यजुओं
२३ के होमान्त में इष्टो यज्ञः इष्टो अग्निः इन दोनों अपर आ
दो समिष्ट यजुओं को होमें॥ यज्ञदेवत्या उष्णिग्गालवदृष्टा।
ये द्रव्य प्रत्याह। हे द्रव्य तिस यजमान के इस सदन में तू आ। कैसे
मान कि हमारे इष्ट (प्यारे) के। तिस किस के कि जिसके भृगु गो
ब्राह्मणों और वसुओं आदि देवताओं करि इष्ट सम्पादित है। कै
सा यज्ञ कि आशिषों (अभिलषित पदार्थों का दाता। अर्थात् ब्रा
णों देवताओं करि जिसका यज्ञ किया तिसके घर में तू सर्वदा

इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तु न इष्टꣳ हविः। स्वगेदं
देवेभ्यो नमः॥५७॥

अग्निदेवत्या गायत्री गालवदृष्टा। अग्नि हमारे अभिलषित
पूर्ण का पालन करे। कैसा अग्नि कि आहुतः। हवि करिके

¶ जलाधीनं जीवनं तस्य जलाद्युत्पत्तिं जायन्ते ततोऽग्निरग्नेर्जलाधीनं जीवनम्

꠰꠰ उदकानि दधाति धीयन्ते वात्रस्येत्युदधिर्मेघः॥

[illegible] तर्पित:। किंच यह नम: हवि: समिष्टयजुर्लक्षण देवताओं के अर्थ हो। कैसा कि स्वयं गमन शील॥५७॥

[illegible]२२ यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा। तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मु: प्रथमजा: पुराणा:॥५८॥

[illegible]०१८॰६॰२२॰ साग्निचित्ये मैत्रावरुणानूबन्ध्या वैश्यमेकाभवति-[illegible] तिसकी हृदय शूल संम्बन्धि समिदाधानान्त करते यदाकूतादि [illegible] ऋचा आठ स्त्रुवाहुती होमें॥ अष्टावृच अग्नि देवत्या विश्वकर्म दृष्टा तृतीया देवी वा आद्या जगती तिस्र स्त्रिष्टुभ: चतस्रोऽनुष्टुभ:। हे ऋत्विज औ तुम तिस प्रजापति के किये कर्म को अनुसरो अर्थात् प्रजापति के शरीर से उत्पन्न जो वैदिक कर्म तिसे करो। तिस कर्म के करने से पुण्यवानों के लोक(स्वर्ग)को जाओ कि जहां पूर्वोत्पन्ना पुराण(पहिले) और नये अजर अमर ऋषिलोग गये। वोह कोन कर्म कि जो प्रजापति के आकूत(अभिप्राय) वा हृदय(बुद्धि)मन संकल्पात्मक और चक्षुरादि इन्द्रियों से प्रस्तुत है अर्थात् प्रजापति ने जो सर्वोत्मा करि कर्म स्रजा तिसे करिके स्वर्लोक को जाओ। कैसा कर्म कि सम्भृत(स) म्भारों से पुष्ट- पूर्ण सामग्रीक॥ मन: प्रवर्तक आत्मनो धर्म आकूतम्॥५८॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहा च्छेवधिं जातवेदा:। अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो ऽअत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन्॥५९॥

सह तिष्ठन्ति देवा यत्रेति सधस्थः स्वर्गः तं प्रार्थयते। हे सधस्थ इस य
जमान को तेरे अर्थ देता हूं जात वेदा (अग्नि) जिस शेवधि (सुखनिधि
आहुति परिणाम भूत) को प्राप्त करता है तिस यज्ञ फल भूत और सुख
निधि को तुझे देता हूं अर्थात् दोनों को रक्षणार्थ तेरे अर्थ देता हूं॥
एवं यजमान और यज्ञ को स्वर्ग में समर्पण करि तत्स्थान् देवान्प्रार्थयते
अन्विति हे देवता औ यज्ञपति (यजमान) तुम्हें कर्म समाप्ति में प्रत्याग
मन करता है। इस उत्कृष्ट व्योम (आकाश-स्वर्गभूत) में आयेतिस
यजमान को तुम जानो अर्थात् स्वर्ग में आया वोह तुम लोगों करि
सम्भावनीय है॥५९॥

एतं जानाथ पर॒मे व्यो॑म॒न्देवाः॑ सधस्था वि॒द रू॒पम॑स्य।
यदा॒ग॒च्छात्प॒थिभि॑र्देव॒यानै॑रिष्टापू॒र्ते कृ॑णवाथा॒वि॒
र॑स्मै॥६०॥

सह तिष्ठन्ति सधस्थाः। उत्कृष्ट स्वर्गभूत आकाश में सहस्थित हे दे
वता औ इस यजमान को जानो। किंच इस यजमान के रूप (चिन्ह)
को जानो। विदित रूप यह यजमान जब कि देवयान (स्वर्ग मार्ग)
करि के आवै है सब इष्टापूर्त श्रौत स्मार्त कर्म फल इस यजमान के
अर्थ प्रकटी करो अर्थात् देओ॥६०॥

उद्बु॑ध्यस्वाग्ने॒ प्रति॑जागृहि॒ त्वमि॑ष्टापू॒र्ते सꣳसृ॑जेथाम॒
यं च॑। अ॒स्मिन्त्स॒धस्थे॒ऽअध्युत्त॑रस्मि॒न्विश्वे॑ देवा॒ य
ज॑मानश्च सीदत॥६१॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम्। तेने॒मं य॒ज्ञं

नो नय स्वर्दे॒वेषु गन्त॑वे ॥ ६२ ॥
द्वे व्याख्याते १५ - ५४ - ५५ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

प्र॒स्त॒रेण॑ परि॒धिना॑ स्रु॒चा वेद्या॑ च ब॒र्हिषा॑ । ऋ॒चेमं य॒
ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥ ६३ ॥

हे अग्ने देवताओं प्रति प्राप्ति योग्य इस हमारे यज्ञ को स्वर्ग प्रति प्राप्त करि। कैसे को कि प्रस्तर(स्रुगाधार भूत दर्भमुष्टि)करि परिधिओं(तीनों बाहुमात्र काष्ठों) स्रुचा(जुह्वादिकाओं वेदी वा मिताभूमि वर्हि(दर्भपूलक) और ऋचा(ऋगादि मन्त्रों) करि उपलक्षित को इति शेषः ॥ ६३ ॥

यद्द॒त्तं यत्प॑रा॒दानं॒ यत्पू॒र्तं याश्च॒ दक्षि॑णाः । तद॒ग्निर्वै॑श्वक॒
र्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ ६४ ॥

वैश्वकर्मा(प्रजापति से हुआ विश्वकर्ता अग्निः) हमारे तिस दान को स्वर्लोक में देवताओं के मध्य में स्थापन करै फल भोग के अर्थ। वोह कौन कि जो दत्त(भार्या पुत्र जामातृ भगिनी तत्पत्न्यादिकों के अर्थ दिया) और जो परादान(दयादि करि अन्ध पङ्गु कृपणादिकों के लिये दिया) और जो पूर्त(स्मृति विहित विप्रभोजन वापी कूप तडागारामादि) और जो दक्षिणा(यज्ञ सम्बन्धिनी। यज्ञे गते यज्ञाङ्गत्वाद्यजमानः स्वर्गत एव ॥ ६४ ॥

यत्र॒ धारा॒ अन॑पेता॒ मधो॑र्घृ॒तस्य॑ च॒ याः । तद॒ग्निर्वै॑श्वक॒
र्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ ६५ ॥

विश्वकर्ता अग्नि तिस स्वर्ग में देवताओं विषें हमें स्थापन करै कि

जिस देशमें मधु घृत कीच और-और पय दधि आदिकों की धार
(प्रवाह) अनपेता (उपभुज्य माना अप्यक्षीण) वर्ते हैं॥६५॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम॥६६॥

अग्न्यद्वैत वादिनी त्रिष्टुप् भारतो देवश्रवा देववात दृष्टा यजो
विनुयुक्ता। अग्नि प्रकरणत्वाद्यजमान आत्मा न मग्नित्वेन ध्या
यति। जन्मना-उत्पत्त्यैव में अग्नि (अग्नि रूप) हूं। नाम करि ह
(पुरोडाशादिक) में हूं। कैसा हूं में कि जात वेदाः (जातं जातं वि
त इति-सब उत्पन्न का स्वामी। अर्कः (अर्चनीय-यज्ञ। त्रिधा
(ऋग्यजुः साम लक्षण जिसके। रजसो विमानः (उदक कानि
ना। अजस्रः (अनुपक्षीणः। घर्मः (आदित्य रूप वा मेघ रूप। य
ता दृष्टः अग्नि मैं हूं। यतस्ततः घृत मेरे नेत्र (घृत होमी को देख
ता हूं इति भावः। अमृतं मऽ आसन् (हवि मेरे मुख में) होमे हवि को
अमृत करता हूं इति भावः। एव मात्मन्यग्न्यद्वैतं सम्पाद्यम्॥६६

ऋचो नामास्मि यजूंषि नामास्मि सामानि नामास्मि। येऽग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि। तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव॥६७॥ +

ऋचः। आत्म देवत्यं यजुः। यज्ञेऽस्य विनियोगो नास्ति। यजमानो
ऽनेनात्मनि वेदत्रयात्मकं भावयति। नाम करि के मैं ऋचा (ऋग्वे
द रूप) हूं यजुर्वेद रूप॰ सामवे॰॥का॰ १८-६-२३ चित्य अग्नि क

+ ऋ-सि। अ-ऋ-वा। १॥६७॥

चिन्नो ऽसि यह नाम रख कर तिसे उपस्थान करिये है कर्म शेष कोस माप्त कर इस उपस्थान को करना उपस्थान के अनन्तर समारोपविधान से इति सूत्रार्थः॥अग्निदेवत्यानुष्टप्।इस पृथिवी के ऊपर में जे अग्निएँ वर्त्ते हैं। कैसे कि पाञ्चजन्याः(मनुष्यों के अर्थ अहित वा पञ्च चिति रूप) हैं। हे चित्याग्ने तिन पृथिवीस्थ आग्नेओं में तू श्रेष्ट है। अतः हमें चिरजीवन के अर्थ प्रेरि॥६७॥

अ०१३ वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्त्तयामसि॥६८॥

का० १७.७.१.२. मृत्यूरणानन्तर इस चिति को उपस्थान करै सप्त ऋचाओं से कोई क आचार्य अष्ट वा दश ऋचाओं से उपस्थान करते हैं॥आग्नेय्यः सप्त ऋच इन्द्रदृष्टाः।आद्ये द्वे वृत्र हेन्द्र देवत्ये गायत्री त्रिष्टुभौ विश्वामित्रेणापि दृष्टे। हे इन्द्र हम तुझे उपस्थित करते हैं। किमर्थं कि तेरे बल की वृद्ध्यर्थ। कैसे बल के कि वृत्र दैत्य के घात समर्थ। और शत्रु सेना पराभव समर्थ के अर्थ॥६८॥

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिणक्कुणारुम्। अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ॥६९॥

हे पुरुहूत(बहुतों करि आहूत)हे इन्द्र तू सहदानु शत्रु को हस्तहीन करि के भले प्रकार चूर्ण करि। कैसे को कि निकट में वसता। कुणारु दुर्वचन करता। हे इन्द्र वृत्र दैत्य को पादहीन करिके तू बल करि भले प्रकार मारि। कैसे वृत्र कि वर्धमान(जगद्व्याप्नुवन्त)को।

[illegible] सहदानुः शत्रुः॥

पिपारु(देवताओं के हिंसा करने वाले) को ॥ ६९ ॥

विन इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो ऽअस्माँ
ऽअभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ७० ॥

भारद्वाज सुत शासदृष्टा । व्याख्याता ८ । ४४ । ॥ ७० ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽआजगन्था प
रस्याः । सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ता
ढि वि मृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥

जयदृष्टा त्रिष्टुप् । हे इन्द्र परस्याः परावतः (दूर देश और दूर दिशा
से आगमन करि । और आकर शत्रुओं को विशेषेण ताडि । और
संग्रामों को विशेषेण दूरि करि । क्या करि के कि पवि(वज्र) को तीक्ष्ण
करि के । कैसे पवि कि शत्रु शरीर विषें चलते तिसै । तिग्म (उत्साहव
न्त । कैसे कि मृगो न (जैसे मृग सिंह दूरि से चलकर प्राणियों को
मारता । कैसा कि भीम (भयंकर) । कुचरः (कुत्सित चलने वाला । गि
रिष्ठाः (पर्वताश्रयः ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न ऽऊतय ऽआ प्रयातु परावतः । अग्निर्नः
सुष्टुती रुप ॥ ७२ ॥

द्वे वैश्वानरदेवत्ये गायत्री त्रिष्टुभौ द्वितीया कुत्सदृष्टा । वैश्वान
र(अग्नि) हमारी शोभना स्तुति श्रवण करने को दूर देश से आवै
किस लिये कि हमारे रक्षा करने को ॥ ७२ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो ऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ऽओष
धीरा विवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो ऽअग्निः स

नो दिवा स रिष्यातु नक्तम् ॥७३॥

वैश्वानर(अग्नि) दिवस में हमें रक्षा करै और वोह रात्रि में हमें रक्षा करै अर्थात् सर्वदा हमें रक्षा करै। वोह कौन कि जो अग्नि द्युलोक में पृष्ट है कौन यह आदित्यात्मा करि तपता मुमुक्षुओं से पृष्ट है(अन्तरिक्षेय मेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः स प्रजापति स्तद्ब्रह्मेति श्रुतेः। और जो अग्नि पृथिवी(अन्तरिक्ष लोक में) पृष्ट है कौन यह विद्युदात्मा करि स्थित जल लाथिओं से पृष्ट है। और जो सब ओषधीओं(व्रीही आदिकों) से प्रविष्ट हो पृष्ट है कौन यह प्रजाओं का जीवन हेतु ताप पाक प्रकाश से तप करता है। और वल करि अध्वर्यु करि मथ्यमानः सन् पृष्ट है कौन यह मनुष्यों से मथिये हैं। सो यह अग्नि दिन रात्रि वध से रक्षा करै अर्थात् हमें न मारै ॥७३॥

अश्याम तं काम मग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्। अश्याम वाज मभि वाजयन्तो अश्याम द्युम्न मजराजरं ते ॥७४॥

आग्नेय्यौ कामवत्यौ द्वे त्रिष्टुभौ आद्या भरद्वाज दृष्टा। हे अग्ने तेरे पालन करि हम तिस काम(अभिलाष) को प्राप्त होवें अर्थात् तिसे इच्छा करते हैं। हे रयिवः(धनवन्) सुवीररयि(शोभन पुत्रों सहित धन) को प्राप्त होवें। वाजयन्तः(वन्हि पूजा करते) अन्न को समन्तात् प्राप्त होवें। हे अजर(जरारहित) अक्षीण तेरे द्युम्न यश को प्राप्त होवें अर्थात् सर्वदा यशस्वि होवें ॥७४॥

व॒यं ते॑ऽअ॒द्य र॑रि॒मा हि काम॑मुत्ता॒नह॑स्ता॒ नम॑सोप॒सद्य॑। य॒जि॑ष्ठेन॒ मन॑सा यक्षि दे॒वानस्रे॑धता॒ मन्म॑ना॒ विप्रो॑ऽअग्ने ॥ ७५॥

कतिसुत उत्कीलदृष्टा। हे अग्ने जिस कारण हम तेरे अर्थ काम (हवि) देते हैं। क्या करिके कि नमस्कार करि उपसद्य अर्थात् निकट आकर वि देते हैं। कैसे हैं हम कि ऊंचे हैं हाथ जिन्हों के अर्थात् खोलीहैं मुठी जोडा कार्पण्य। तथा मन करि उपलक्षित सावधान। कैसे मन करि कि यजिष्ठ (अ तिशयेन यष्ठ। तथा अनन्यगत। मन्म (देवतायाथात्म्यज्ञ)। यतः एतादृशेन मनसा हम हवि देते हैं अतः हे अग्ने विप्र (मेधावी) तू देवताओं को पूजि अर्थात् मेरे विषे हवि से देवताओं को तर्पण करि ॥ ७५॥

धाम॒च्छद॒ग्निरिन्द्रो॑ ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑। सचे॑तसो॒ विश्वे॑ दे॒वा य॒ज्ञं प्राव॑न्तु नः शु॒भे ॥ ७६॥

विश्वदेवदैवत्यानुष्टुप्। एते देवा हमारे यज्ञको रक्षा करें अर्थात् अन्यूनातिरिक्त करें (अन्यूनातिरेक एव कर्मणो रक्षणम्)। शुभ (दृष्टस्थान) और स्वर्ग में स्थापन करें इति शेषः यद्वा शुभस्थान में यज्ञ को प्रकृष्टेन रक्षा करें। एते के कि अग्निः। देव इति सर्वत्र सम्बन्धनीयम्। इन्द्रः। ब्रह्मा चतुर्मुखः। बृहस्पतिः (जीव) और विश्वेदेवा धामों (स्थानों) को आच्छादन न्यूनों को पूरण अति रिक्तों को सभी करण इदं सर्वेषां विशेषणम्। तथा सचेतसः (ऐकमत्यया सहिताः) वा- समानचित जिन्हों का। समाना अन्याद्यो मयर्क्तं रक्षन्त्वित्यर्थः ॥ ७६॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः। रक्षा तोकमुत त्मना ॥७०॥

इति सँहितायां त्रयोदशोऽनुवाकः १३

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशाखीयायां वाजसनेयसँहितायां दीर्घपाठेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

व्याख्याता १३·५२·॥७७॥

इति भाष्ये त्रयोदशोऽनुवाकः १३

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयादग्निदेवः सनातनः १८

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिपतिश्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजशेखिमणीयनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये गिरिप्रसादसर्वस्वे वसोर्धारादिचित्युपस्थानान्तवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ आदितः अनुवाकसंख्या॥६७॥

इतिसर्वानुक्रमणिभाष्येगिरिप्रसादरचितेवेदार्थप्रदीपे
द्वितीयाध्यायस्यैकत्रिंशः खण्डः ३१

चैत्रेमासे शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां रवौ दिने
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे अग्निमन्त्राः समागमन्
अतः परं त्रिभिरध्यायैः सौत्रामणीमन्त्रा उच्यन्ते

विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाख्यमयन्त्रालये मुद्रितम्
विक्रमाब्दाः १९२९ शकाब्दाः १७९४ ज्येष्ठकृष्ण ३ भृगुवार ॐ शान्तिः

हरिः ओम्

अथ संक्षेपतः सूचीपत्रम्

हरिःॐ

ॐनमोयज्ञपुरुषाय

पश्चात्मकद्विरूपंच साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकंक्लृप्तं ब्रह्मरूपपरंस्तुमः १॥

अथसौत्रामणीप्रजापतेरार्षमश्विनोसरस्वत्याश्च

अ॰१ स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन। मधुमतीं
मधुमता सृजामि सꣳ सोमेन। सोमोऽस्यश्विभ्यांपच्यस्व
सरस्वत्यैपच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णेपच्यस्व॥१॥+

नत्वासरस्वतीं देवी मश्विनौचपुरन्दरम्
प्रदीपेत्रिभिरध्यायैःसौत्रामण्यःसमीर्यते १॥

अथ सौत्रामणी मन्त्रास्त्रिभिरध्यायैस्तेषां प्रजापत्यश्विसरस्व-
त्य ऋषयः॥ ऋद्धि काम स्याग्निचितो मुखेतरच्छिद्रसोमवा
मितो मुखेन सोम वामिनो राज्यच्युतनृपस्य पशुकामस्यचसौ
त्रामणीयागः॥

। स्वा-न।अ॰।सो-।म।६॰।अ-स्व।७॰।स-स्व।ऋ॰।इ-स्वा।लु॰।१॥

ओनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायोनवदशोऽधुना

सुरादीन्द्राभिषेकान्तोवेदभाष्येसमीर्यते२४

अन्तःपात्यस्थान में गोचर्मे विषें इतनेपदार्थ स्थापन करें-सोमसुरा विक्रयी वाक्लीव से मोल लेकर-सीसा(धातु)से शष्प्य(विरूढाव्रीह य:)लेकर-ऊर्ण(ऊन)करि तोक्मों(विरूढायवों)को-सूत्र से लाजाभ्र ष्ट व्रीहयों)को-किसी एक द्रव्य से नग्नहु(सर्जत्वक् त्रिफला शुण्ठीपु नर्नवा चतुर्जातक पिप्पली गजपिप्पली वंशावका इन्द्रवारुणी चित्रकेन्द्रवारुणी श्वगन्धा धान्यक यवानी जीरकद्वय हरिद्राद्वय विरूढयवव्रीहय:) को शष्प्यतोक्म लाज नग्नहूओं को दक्षिण द्वार से अग्नि गृह प्रति लेजा के भले प्रकार चूर्णकरि दर्शपौर्णमास धर्म से व्रीहि श्यामाक के चरू बहुत जल में पकाकर श्रुतालम्भ के अनन्तर तिन चरुओं के उष्ण निःस्राव को पृथक् पात्रों में लेके शष्प्यादि चारों के चूर्णों से मि लाय स्थापन करें-दोनों आचाम रूप चूर्णों की मासर संज्ञा है॥का॰ १९॰१॰२१॰एवं आचाम चूर्ण संसर्ग से मासरत्व निष्पादन के अन न्तर ओदनों व्रीहि श्यामाक चरुओं)को चारों चूर्णों से मिलाकर स्वाद्वींत्वा १ इस मन्त्र और अर्हसुना ते २०॰२७॰इस ऋचा से एकपा त्र में चूर्ण संसृष्ट ओदनों को मासरों से मिलाकर शाला के नैर्ऋत्य कोण में गर्त करके तीनि रात्र स्थापन करै।अयमर्थः। चरुओं को उद्वासन करि दोनों का पृथक् आचाम ग्रहण है ततः त्रिधा किये शष्प्य तोक्म लाज चूर्णों के तृतीयांश को द्वेधा करिके आचाम ओ

मेंडाले. ततः नग्नहु चूर्णहुधा करिके एकार्ध को द्वेधा विभागक
रि आचाम औं में डाले । एवंचूर्ण संसृष्ट आचाम औं की मासर
संज्ञाहै । ततः शष्पतोक्म लाज चूर्णो के दूसरे तृतीयांश कोद्विधा
करिके एक-एक भाग ओदन औं में डाले. नग्नहु चूर्ण के द्वितीया
र्द्ध को द्वेधा करिके ओदन औं में डाले. ततः ओदन औंको एकपा
त्र में करिके तत्र आचाम औंको डाले. ततः स्वाद्वीं त्वा अर्ठशुना
ते इन मन्त्रों से चूर्ण मासर सहित ओदन औं का आड्वालन क
रिके संसर्ग करना ततः त्रि रात्र निधान है. शष्पतोक्मलाजचूर्णो
के तृतीयांश का प्रतिदिन सुरा में निवा पार्थ रक्षण है इतिसूत्रार्थः
स्वाद्वींत्वा। सुरा सोम देवत्यानुष्टुप् सुरारूपः सोमो देवता । अथमं
त्रार्थः। हे सुरे तुझे सोम से संयुक्त करता हूं। कैसी तुझे स्वाद्वीं (मिष्ट॰
मिष्टरसा। तीव्रां (शीघ्रमदजनका। अमृत तुल्या। मधुरस्वादोपेता ।
कैसे सोमसे कि मीठे कटुरस सुधातुल्य मधुरस्वादु ॥ सोमोऽसि।
चत्वारि यजूर्ठंसि १॰दे-अ॰२॰या-गा॰३॰या-उ॰४॰या-ब्र॰ सुरादे
वत्यानि। पूर्व एव विनियोगः। हे सुरे तू सोम संसर्ग से सोमहै अतः
तुझे कहिता हूं कि अश्विनी कुमारों के अर्थ पाकहो औरसरस्व-
तीके अर्थ पाकहो औरभले प्रकार रक्षाकरने वाले इन्द्रके॰॥१॥

परी॒तो षि॑ञ्चता सु॒तर्ठं सोमो॒ य उ॑त्त॒मर्ठं ह॒विः। द॒ध
न्वा यो नर्यो॑ऽ अ॒प्स्व॒न्तरा सु॒षाव॒ सोम॒मद्रि॑भिः॥२

का॰१९॰१॰२२-२७॰सायं होम के अन्त में अश्विभ्यामपाकरोमि
इतिहाथसे एक गौकोस्पर्श करि तिसे दुहिके दुग्ध से अध्वर्युसुरा

कोसींचे परीत इस मन्त्रसे। रक्षित शष्प चूर्णोंके तृतीयांशको सुराभाण्ड में डाले। दूसरे दिनकी निशान्तमें सरस्वत्याऽ अपाकरो- मि इति दो गौओंको स्पर्शकरि तिन्हों के दुग्धसे तिसी मन्त्र करिसुरा कोसींचे और तोक्मचूर्णके तृतीयांशको डाले। तीसरे दिन रात्रि में इन्द्राय सुत्राम्णोऽपाकरोमि इति तीनि गौओं स्पर्शकरि तिन्हों के एकी किये दुग्धसे सुराकोसींचे तिसी मन्त्रकरि औरलाज चूर्ण तृतीयांशको डाले॥ भरद्वाजदृष्टा सोमदेवत्या बृहती। हे ऋत्विः इतः गौके सका शसे गृहीत दुग्धकरि इति शेषः अभिषुत सोम परिस्रुद्रूपको तुम परिइतः सींचो। तिस किसे कि जो सोम सब हवियोंमें श्रेष्ठ है और जो नरोंके अर्थ हित होते यजमानको धारण करता हुआ। जलोंके मध्य वर्तमान जिस सोमको पाषाणोंसे अध्वर्यु अभिषवन करता हुआ॥ तिस सोम सुरारूपापन्नको पयसे सींचो इति सम्बन्धः॥२॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमोऽअतिद्रुतः। इन्द्रस्ययु ज्यः सखा॥ वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमोऽअतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥३॥ + वा-स्वा॰अ॰२०॥३॥

का॰१९॰२॰८-१०॰ वायोःपूतःइति द्वे ऋचौ पुनाति तऽइति तृतीया तासां व्युत्क्रमेण विनियोगमाह। पूता सुराको लेकर गोऽश्वकेश निर्मित छन्नेसे पलाश पात्रमें तिसे छाने पुनातिते ४॰ इस मन्त्रसे ति से धारण करना- केचित् मुखेतर छिद्र सोमवामिन यजमानकेसौ त्रामणिमें वायोःपूतःपवित्रेण प्रत्यङ्ङिति मन्त्रसे सुराको छानते हैं और मुखेन सोमवामि यजमानके वायोःपूतः पवित्रेण प्राङिति मन्त्र

सें सुरा को छानते हैं॥ ऋर क्रयमाभूति हृष्टं सोमदेवत्यं गायत्रम्। अन्यञ्चति (अधोमुखचलता- गुदद्वारा गया) सोम पवित्र (उदरान्तर्वर्ति) वायु करि पूतः (शुद्ध) है। कैसा कि इन्द्र का योगार्ह सखा॥ प्राञ्चति (ऊंचे चलाता- मुख से निकलता) सोम पवित्र (हृदयान्तर्वर्ति) वायु सें पूत है जो इन्द्र का योग्य सखा॥३॥

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता। वारेण शश्वता तना॥४॥

अध्वर्युर्यजमानं प्रत्याचष्टे। हे यजमान सूर्य की दुहिता (पुत्री- श्रद्धा) तेरे परिस्रुत (सुरा) और सोम को पवित्र (शोधन) करै। यद्वा लुप्तोपमानम् तेरे परिस्रुत को सोमवत्पवित्र करै। यद्वा सोमरूपा पत्नी परिस्रुत को श्रद्धा शोधै। किस छन्ने करि कि अश्ववाल निर्मित। कैसे कि शाश्वत (अनादि) तथा तन (धनरूप) करि॥४॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय। शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि॥५॥

का॰१९॰२॰११॰ अज मेष लोमकृत छन्ने से वेतस पात्र विषें उत्तर दिशा में दुग्ध को छानें ब्रह्म क्षत्रमिति मन्त्रेण॥ सुरासोमदेवत्यात्रिष्टुप्। हे देव सोम शुक्र (शुद्ध- वीर्य) करि तू देवताओं (अग्न्यादिकों) को तृप्त करि। पुनः रस (घृतादि) सहित अन्न यजमान के अर्थ दे। क्योंकि सोम तू अभिषुतः सन् ब्राह्मण क्षत्रिय को तेज (कान्ति) इन्द्रिय (इन्द्रिय सामर्थ्य) देता है +। आसुतः सुरया तीव्री कियेस

+ श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता इति श्रुतेः।

+ पशवो वै सर्वेषां तेजः उपवर्त्मैते।

न् तू मदके अर्थ होती है। अर्थात् ईदृश सामर्थ्य युक्त तू देवताओं और यजमान को अभीष्टेन पूर्ण करि॥५॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहे हैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽएष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा॥६॥ + कु-न्ति। अ॰। उ-म्णे। इ॰। ए-त्वा। उ॰॥६॥

का॰ १९॰ २॰ १३॰ १४॰ एवं सुरा पय को छानिकर कुविदङ्गेति मन्त्रेण तीनि पयो ग्रहों को ग्रहण करै॰ मन्त्र पाठमें उपयाम गृहीतोऽसि एषते द्वे यजुषी एकवार पढीहुई तीनों ग्रहों में पृथक् होती हैं॥ तत्रैते मन्त्राः। कुविदङ्गेति ऋचाको पढिके उपयाम गृहीतोऽस्यश्विभ्यांत्वा। ऋग्व्याख्याता १०॰ ३२॰ हे पयोग्रह तू उपयाम पात्र करि गृहीत है अश्विनीकुमारों के अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं। सादयति एषते योनिस्तेजसे त्वा। यह तेरा स्थान तेजके अर्थ तुझे सादन करताहूं। द्वितीये पयोग्रहे कुविदिति पठित्वा उपयामगृहीतोऽसि सरस्वत्यैत्वा। सरस्वती के अर्थ तुझे ग्रहण करताहूं। सादयति एषते योनिर्वीर्यायत्वा। वीर्यके अर्थ तुझे सादन करताहूं॥ तृतीय पयो ग्रहे कुविदित्यन्ते उपयाम गृहीतोऽसीन्द्रायत्वासुत्राम्णे। रक्षक इन्द्र के अ॰। सादयति एषते योनिर्बलायत्वा। बल के अर्थ तुझे सा॰॥ एतेषां क्रमादश्वत्थोदुम्बरन्यग्रोधपात्रै ग्रहणम्॥६॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मासꣳसृक्षाथां परमे व्योमन्। सुरात्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वांयोनिमाविशन्ती॥७॥

का॰१९॰२॰२१॰ नाना हीति मन्त्रेण मृन्मय स्थालियों से तीनि सुराग्रहों को ग्रहण करै। आदि में आश्विन पयोग्रह को लेके आसादन करि आश्विन सुराग्रह का ग्रहण आसादन ततः सारस्वत पयोग्रह सुराग्रह का आसादन ततः ऐन्द्र पयोग्रह सुराग्रह का है। क्रमेणवा। उपयामयोनी अत्रापि पृथक् प्रथमे नाना हीति पठित्वोपयाम गृहीतोऽस्याश्विनं तेज इति ग्रहणमेष ते योनि मौंदाय त्वेति सादनम् द्वितीये नाना हीत्यन्ते उपयाम गृहीतोऽसि सारस्वतं वीर्यमिति ग्रहणमेष ते योनिरानन्दाय त्वेति सादनम् तृतीये नानेत्यन्ते उपयाम गृहीतोऽस्यैन्द्रं बलमिति ग्रहणमेष ते योनिर्महसे त्वेति सादनमिति सूत्रार्थः॥ सुरासोम देवत्या। हे सुरासोमो जिसकारण तुम्हारा नाना (पृथक्) स्थान किया+। कैसा स्थान कि देवताओं के अर्थ पथ्य वा स्थापित। इस कारण परम उत्कृष्ट व्योमवद्विशाल हवन स्थानों में तुम संसर्ग न करो ✶। एवं द्वौ प्रत्युक्ता सुरामाह हे सुरे तू सुरा है कैसी कि शुष्मिणी (बलवती) अतः तुझे पीके मत्त होता है। यह सोम शान्त है अतः अपने स्थान को प्रवेश करती हुई सोम को मत विनाशि माशब्दः पाद पूरणः॥७॥

+ सुरापयसोर्द्वैधीभवतः।

✶ आहवनीये पयो हूयते दक्षिणाग्नौ सुरा हूयते अतो न संसर्गः॥

उपयाम गृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम्। एष ते योनिर्मौदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा +

+ उ-म्। अ॰। ए-त्वा। इ॰॥८॥

सा–त्रि०। आश्विनं तेजः साक्षात्त्वमेव। और सरस्वती संबंधि सामर्थ्य तूहै। और इन्द्रसम्बन्धि बल तू है इति शेषः। सादयति यजुः। यहते रास्थान प्रमोद के अर्थ तुझे सादन करता हूं। आनन्द के०। महत्वके०। प्रत्येकं मन्त्राः॥ ८॥

तेजो ऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजो ऽस्योजो मयि धेहि मन्यु
रसि मन्युं मयि धेहि सहो ऽसि सहो मयि धेहि॥ ९॥ +

का० १९·२·१७· आश्विन ग्रह ग्रहण के अनन्तर सादन से पहिले द्वे दर्भ तृणे प्रागग्रे पात्रके ऊपर करिके गोधूम कुवल (स्थूल वदरी फल) का चूर्ण साथही दुग्ध में डाले॥ त्रीणि पयोदेवत्यानि १·या–ह०२·३·या–पं०। हे दुग्ध तू तेजहै अतः मुझविषे तेज स्थापन करि १॥ का० १९·२·१८· इन्द्रयवों सूक्ष्म वदरी फलों का चूर्ण सारस्वत पयोग्रह में डाले॥ हे ग्रह तू वीर्यहै अतः मुझमें वीर्य स्थापन करि॥ का० १९·२·२०· यवों अति स्थूल वदरी फलोंका चूर्ण ऐन्द्र पयो ग्रह में डाले॥ हे ग्रह तू बल है अतः मुझविषें बल स्थापन करि॥ का० १९·२·२३·२४· वृक व्याघ्र सिंहके मिश्रित केशों से प्रतिमन्त्र सुराग्रहों को मिश्रित करे ओजो ऽसीत्याश्विनम् मन्युरसीति सारस्वतम् सहो ऽसीत्यैन्द्रम्· एके आचार्या वृकादि केशों करि यथासंख्य ग्रह को मिश्रित करते हैं· वृकके शैराश्विनम् वैयाघ्रैः सारस्वतम् सैं हैरैन्द्रम्॥ सुरादेवत्यानि त्रीणि १·या–अ०·२·या–पं०·३·या–ह०। हे सुरे तू ओजहै अतः मुझमें कान्ति स्थापन करि॥ तू मन्यु (मानस कोप) है अतः मु०॥ स

+ पांचपात्मकः सततं निपुष्यत ऽ इति व्याख्यातं।

+ ते–हि। अ०। वी–हि। इ०। ब–हि। उ०। ओ–हि। क०। म–हि। ल०। स–हि। अ०॥ ९॥

ह(बल)है अतः मु०॥९॥

या व्याघ्रं विषूचिका॒भौ वृकं॑ च॒ रक्ष॑ति। श्येनं॑ पत॒त्रिण॑ᳪं सिᳪंहᳪं सेमं पा॒त्वᳪंह॑सः॥१०॥

का॰१९.२.२७. अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता रै साथही अन्तःपात्यस्थान में अवस्थित प्राङ्मुख यजमान को श्येनपिछोंसे मार्जन करैं दीक्षावदिति एक करि नाभिसे ऊपर प्रदक्षिण दूसरे करि नीचैं एक वार यद्वा दोनों करि नाभिसे नीचे और ऊपर छिरिति॥ हैमवर्चिदृष्टा विषूचि देवत्यानुष्टुप्। व्याध्यधिष्ठात्री देवतास्तिसा प्रार्थ्यते। जो विषूचिका। विषु सर्वत्र अञ्चति गछति विषूची सैव विषूचिका रोगविशेषः व्याघ्र वृक इन दोनो को रक्षा करती तथा श्येनपक्षी और सिंह दोनो को रक्षा करती है नहीं हैं तिन्हें अन्नपरिणामजनितदोष। वोह बिषूचिका इस यजमान को अंह (व्याधिहेतु भूत पाप) से रक्षा करैं॥१०॥

यदा॑पि॒पेष॑ मा॒तरं॑ पु॒त्रः प्रमु॑दितो॒ धय॑न्। ए॒तत्त॑द॑ग्ने॒ अ॒नृ॒णो भ॑वा॒म्यह॑तौ पि॒तरौ॒ मया॑। सम्पृच॑ स्थ॒ सं मा॑ भ॒द्रेण॑ पृङ्क्त॒ विपृच॑ स्थ॒ वि मा॑ पा॒प्मना॑ पृङ्क्त॥११॥ +

का॰१९.२.२८. अग्निं प्रेक्षस्वेति प्रैषा करि अध्वर्यु यजमान को अग्नि दिखाता है सो प्रेषित यदापिपेष मन्त्रेण औत्तर वेदिक अग्नि को देखता है॥ अग्नि देवत्या बृहती। मैं पुत्र प्रमुदित (प्रहृष्ट) स्तनपान करता जो माता (जननी) को आपिपेष पैरों से पीडा देता हुआ। हे अग्ने इस से तेरे समक्ष अनृण (ऋणत्रय रहित) हूं अत एव कहिता

+ य-पा॥ अ॰स-ङ्क्त॥ हु॰॥ वि-ङ्क्त॥ उ॰॥११॥

हूं कि मैंने माता पिता नहीं पीडित किये जो पुत्र प्रत्युपकरने को असमर्थ है स एव पितरों का हन्तेति भावः॥ का०१९.२.२९.यजमान साथही सम्पृचस्थ से पयो ग्रहों का स्पर्श करै॥ पयो ग्रह देवत्यम् या-त्रि०हे पयो ग्रह ओ तुम स्वत एव संयोजक हो अतः मुझे कल्याण युक्त करो॥ का०१९.२.३०.विप्रचस्थ इस से सोम ग्रहों का यजमानस्य०॥ सुरा ग्रह देवत्यम् य-त्रि०हे सुरा ग्रह ओ तुम वियोजक हो अतः मुझे निष्पाप करो॥११॥

२५०२ देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना। वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः॥१२॥

देवा यज्ञमित्यादि कण्डिका विंशतिर्ब्राह्मणरूपा तौ विनियोगाभावः। ब्राह्मणानुवाको विंशतिरनुष्टुभः सौत्रामण्याः सोम साम्य प्रतिपादिकाः। अत्रेतिहासः। अनुपहूत सोमपान से भ्रष्ट इन्द्र के वीर्य को नमुचि असुर ने पिआ तहां देवताओं ने इन्द्र का भैषज्य किया तहां अश्विनी कुमार और सरस्वती भिषज(वैद्य) हुए और सौत्रामणी औषध हुआ तथाच श्रुतिः शत०१२.८.३.१. त्वष्टा हतपुत्रोऽभिचरणीयमपेन्द्रठं सोम माहरत्तस्येन्द्रो यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत्स विष्वङ् व्यार्छत्तस्य मुखात्प्राणेभ्यः श्रीयशांस्यूर्ध्वान्युदक्रामँस्तानि पशून्प्राविशँस्तस्मात्पशवो यशो यशो ह भवति य एवं विद्वान्त्सौत्रामण्याभिषिच्यते ततोऽस्माऽएतमश्विनौ च सरस्वती च यज्ञठं समभरन्त्सौत्रामणी भैषज्याय तयैनमभ्यषिञ्चँस्ततो वै स देवानाठं श्रेष्ठोऽभवच्छ्रेष्ठः स्वानां भवति य एतयाभिषिच्य

॰ इति॥ देवताओंने यज्ञ(सौत्रामण्याख्य)भेषज(इन्द्र के औष-रूप)को विस्तार किया तब अश्विनी कुमार वैद्य हुए इतिशेषः। और सरस्वती वाणी(त्रयीलक्षण)करि वैद्य हुई। कैसे हैं सरस्वती अश्विनीकुमार कि इन्द्र के अर्थ वीर्यो(सामर्थ्य)को देते॥१२॥

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि। क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु॥१३॥

इदानीं सौत्रामण्याः सोमसम्पत्तिं निरूपयति। शष्प(नवप्ररूढव्रीहि रूप)दीक्षणीयेष्टि के रूपहैं(शष्पाणि दीक्षणीयात्वेन ध्येयानि एवमग्रेऽपि। तोक्म(नवप्ररूढयव)प्रायणीयेष्टिके रूपजानना। लाजा(भ्रष्टव्रीहि)सोमक्रय का रूपहैं। मधु सोम के अंशुएँ(खण्ड)तिसरूप करि जानना यद्वा मधुरस्वाद लाजाही सोमांशुएँजानना॥१३॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः। रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता॥१४॥

किंच मासर(व्रीहिश्यामाकौदनाचामयोः शष्पतोक्मलाज नग्नहुचूर्णैः संसर्गो मासरं पूर्वमुक्तम्) आतिथ्येष्टिका स्वरूपजानना सर्जत्वगादिषड्विंशति वस्तून्येकीकृतानि नग्नहुःपूर्वोक्तः वोहमहावीर(घर्म)का रूप॰॥ जो त्रिरात्र पर्यन्त सुरा आसुता(सब को एकपात्रमें करि स्वाद्वीं त्वेति मन्त्रेण गर्त में स्थापन)एतत् उपसत्संज्ञाइष्टीओंका रूप॰॥१४॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते। अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या॥१५॥

जो अश्विनी कुमारों और सरस्वती ने इन्द्र देवत्य इन्द्र के अर्थ औ-
षधं दुग्धं पयः अश्विभ्यामपाकरोमीति दुग्धेनैकगोः पयसासर
स्वत्याऽअपाकरोमीति दुग्धेन गोद्वय पयसाइन्द्रायापाकरोमीति दुग्धे
न गोत्रय पयसा तीनि दिनमें परिस्रुत् सुराजिस से सींचियेहैं वोह
क्रीतसोमका रूप०।एकस्याः पयसापाक्रतेनाश्विनेन परिषिञ्चतिसा
रस्वतेनद्वयोः प्रातः ऐन्द्रेणोत्तमे तिसृणामिति १९।१।२३।२५।२७।
कात्यायनेन निर्दिष्टत्वादश्विभ्यां सारस्वत्याचदुग्धमितिनिर्देशः॥१५॥

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी। अ
न्तर उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक्॥१६॥

यजमान के अभिषेकार्थ आसन्दी(मञ्चिका)सोम की आसन्दीका
रूप तत्त्वेन ध्येया। सुराधानी(सुरा रखतेहैं जिसमें वोह कुम्भी)वेदि
(सौमिक वेदि)का रूप०। अन्तर(दोनो वेदियों का मध्यभाग) उत्तर
वेदी रूप०। कारोतर(सुरछाननेकी चालनी)इन्द्र और यजमान
का भिषक् जानना॥१६॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्। यूपेन यू
प आप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना॥१७॥

वर्तमाना वेदि करि सौमिकी वेदि भले प्रकार प्राप्तहै अर्थात् त
द्रूपाध्येया। बर्हिओं करि सौमिक बर्हि समाप्यते। इन्द्रियों करि
इतिशेषः इन्द्रियें(सामर्थ्य) समाप्यते फलदाने उभयोरप्यस्ती
त्यर्थः। यूपकरि यहां यूप आप्यते। अग्नि करि प्रणीतोऽग्नि
(सौमिक) प्राप्यते॥१७॥

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती। इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः॥१८॥

इस सौत्रामणी में जो अश्विनी कुमार देवता वर्ते हैं तिन अश्विसद्भाव से सौमिक हविर्धान आप्यते॰ इत्यनुषङ्गः। यहां जो सरस्वती देवता है तिस सद्भाव करि सौमिक आग्नीध्र आप्यते। इन्द्र के अर्थ जो हवि वोह सौमिकसदः पत्नीशाला गार्हपत्यरूपेणध्येयम्॥१८॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य। प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः॥१९॥

प्रैषाओं से प्रैषाओं को प्राप्त होता है। आप्रीओं(प्रयाजयाज्याओं)से यज्ञ की आप्रीएँ प्राप्त॰ प्रयाजेभिरित्यादिवाक्यचतुष्टयस्योत्तरपदलोपश्छान्दसः॰ प्रयाजों से प्रयाजों को॰ अनुयाजों से अनु॰ वषट्कारों से वष॰ आहुतियों से आहु॰। प्रैषादीनामुभयत्र सद्भावात्॥१९॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीꣳष्या छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान्॥२०॥

पशुओं करि पशु॰ पुरोडाशों से पुरो॰ हवियों से हवि॰ छन्दों से छन्दों॰ सामिधेनियों से सामि॰ याज्याओं से याज्या॰ वषट्कारों से वष॰। पश्वादीनामुभयत्र सद्भावात्। अत्राप्युत्तरार्धलोपः पूर्ववत्॥२०॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि। सोमस्य रूपꣳ हविष आमिक्षा वाजिनं मधु॥२१॥

धानादयः सोम का रूप जानना। धानाः(भृष्टधान्य)करम्भः(उद

मन्थ। सक्तवः (सतुआ। परीवापः (हविष्पङ्क्ति। दूध। दही। एतानि सोम रूपम्। आमिक्षा (फटादुग्ध) मधुर और वाजिन (फटेदुग्धका जल हविकारूपहैं॥२१॥

धानानांꣳ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः। सक्तूनाꣳ रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य॥२२॥

नन्वधस्तनमन्त्रे धानादीनां सोमरूपत्वमुक्तम् तेऽत्र कुत्र सन्तीति धानादि सोमहविषां सोमस्य च सम्पत्तिं सौत्रामणीद्रव्यैराह। कुवल (कोमल वदरीफल) पूर्वोक्त धानों का रूप॰। गोधूमाः परीवाप का रूप॰। सर्व वदरीफल सक्तुओंकारूप॰ उपवाकाः (यवाः) करम्भका रूपजानना॥२२॥

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि। सोमस्य रूपं वाजिनꣳ सौम्यस्य रूपमामिक्षा॥२३॥

जे यवाः ते पयका रूप कर्कन्धु (स्थूलवदर) दधिका रूप वाजिन सोमका रूप आमिक्षा सौम्यचरुका रूपजानना॥२३॥

आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावोऽअनुरूपः। यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः॥२४॥

शस्त्रसम्पत्तिमाह। ओश्रावयेति शब्दः स्तोत्रियारूप (स्तोत्रे प्रथम स्तृचोऽनुवाकः) जानना। प्रत्याश्रावः (अस्तुश्रौषडिति शब्दः) अनुरूपः (उत्तरस्तृचः तद्रूपः। यजेति शब्दः धाय्या (निष्केवल्ये-स्तोत्रियानुरूपयोरनन्तरंधाय्या शस्यते) जानना। येयजामहाः (येयजामहे इति शब्दः प्रगाथा रूपत्वेन ध्येयाः॥२४॥

अर्धऋचै रुक्थानांॅरूपंपदै राप्नोति निविदः। प्रणवैः
शस्त्राणांॅरूपं पयसा सोमं आप्यते ॥२५॥

अन्त्य अर्धऋचों (आधीरियों) करि उक्थों (शास्त्र विशेषों) के रूपको प्राप्त होताहै। पदों से न्यूङ्खों को प्रा०। प्रणव (ओंकार) से शस्त्र के रूप० दुग्धकरि सोम प्रा०। अर्धऋचौदय उक्थादयो ध्येयाः ॥२५॥

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम्। वैश्वदेवं
ठं सरस्वत्या तृतीयमाप्तं ठं सवनम् ॥२६॥

सवन सम्पतिमाह। अश्विनी कुमार देवताओं से प्रातः सवन कोप्राप्त है इन्द्र देवता करि इन्द्र देवत्य माध्यन्दिन सवन प्राप्तहै सरस्वती-देवी करि विश्व देवत्य तृतीय सवन प्राप्त है॥२६॥

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम्। कुम्भीभ्यां
मम्भृणौ सुते स्थालीभिं स्थाली राप्नोति ॥२७॥

वायव्यों पात्रों करि वायव्यों सोमपात्रों को प्रा०। वेतसपात्रहै तिस करि द्रोणकलश को प्रा०। कुम्भीभ्यां (शतछिद्रा कुम्भी सुराधानी दोनों करि अम्भृणौ (पूतभृदाधवनीयो सोमाभिषवन करते तिन्हें प्रा० स्थाली करि स्थाली प्रा०॥२७॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः। छन्दोभिरु
क्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥२८॥

यजुओं से यजू हवि प्रा० ग्रहा ग्रहों से प्रा० स्तोमों से स्तोम प्रा० विष्टुति ओं (विविध स्तुतिओं) से विष्टुतिएँ प्रा० छन्दों से उक्थों और शस्त्रों को प्रा० साम करि साम प्रा०। अवभृथ करि अवभृथ प्रा०॥२८॥

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः। शम्युना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषासꣳस्थाम्॥२९॥

इडासे इडा को प्रा॰ भक्षोंसे भक्षको प्रा॰ सूक्तवाकोंसे सू॰ आशिषाओं से आ॰ शम्यु(होमविशेष)से श॰ पत्नीसंयाज से प॰ समिष्टयजु से स॰ संस्था से सं॰। इडादीनामुभयत्र सद्भावात्॥२९॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥३०॥

हुतोच्छिष्टभक्षश्च तू रात्रमग्निहोत्रं जुहोतीति व्रतेन दीक्षा को प्रा॰ दीक्षा से दक्षिणा को प्रा॰ दक्षिणा करि श्रद्धा आस्तिक्य बुद्धि१) को प्रा॰ श्रद्धा करि सत्य (ज्ञान अनन्त ब्रह्म) को प्राप्त होता है, श्रद्धा विना ज्ञानाभावात्॥३०॥

१ श्रत् सत्यं धीयते साश्रद्धा (पुरुषवर्तो मनो विशेषः)

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम्। तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते॥३१॥

यज्ञ(सोमयज्ञ)का एतावत्(एतत्परिमाण)रूप को जो देवताओं और ब्रह्मा(प्रजापति)ने किया(देखा।दर्शन करणयोः कोभेदः सुप्तप्रतिबुद्धन्यायो दर्शनं बुद्धिपूर्वं तु करणम्।सौत्रामणी यज्ञ विषैं सुए सोम अभिषवन करते सति तदेतत् सोमयागरूप सव को प्राप्त होता है॥३१॥ इति ब्राह्मणो ऽनुवाकः समाप्तः॥

अ॰३ सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः। दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः॥३२॥

का॰ १९॰ ३॰ ८॰ सुरावन्तमिति मन्त्रेण अध्वर्यु तीनि पयोग्रहोंकोसाथ ही होमें ॥ एवं सौत्रामण्याः सोमसम्पत्तिमापाद्य प्रकृतिमनुसरति। चतस्त्रस्त्रिष्टुभोऽश्विसरस्वसत्यैन्द्रदेवत्याः।महिषाः (महान्तः ऋत्विजः) +यज्ञ(सौत्रामणी संज्ञ)कोहिन्वन्ति(बढाते वा प्राप्तकरतेहैं। कैसे यज्ञको कि बर्हिओं पर वैठतेहैं देवता जहां। तथा सुरावन्तको +।सुवीर(शोभन ऋत्विज)को।कैसेहैं महिषाः कि नमः (नमस्कार वा अन्नों)सहित स्वर्गमें वर्त्तमान देवताओं विषें सोमकोधारण करते।तिसयज्ञ में इन्द्रकोयजामानाः(पूजाकरते)हमहृष्टहों।कैसेहैं हम कि स्वर्काः(शोभन हैं अर्चन वामन्त्र जिन्होंकेते।यद्वा शोभन है अर्क(अन्न+)जिन्होंके॥३२॥

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य। तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥३३॥

का॰ १९॰ ३॰ ९॰ प्रतिप्रस्थाता पालाशीरखलसे दक्षिणमें अग्निविषें यजै मृन्मयपात्र आहुतिको नहीव्याप्तहोते इत्युक्तेः॥ हे सुरे ओषधियों में वर्तमान जो तेरा रस एकीकिया। और सुरासहित सोमका जोवलहै। तिस मदजनक सुरारस और सोम शुष्म से यजमान और सरस्वती अश्विनीकुमार इन्द्र अग्नि को तृप्त करि॥३३॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय। इमं तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि॥३४॥

+ ऋत्विजो वै महिषा इत्यादि॰ शत॰ १२॰ ८॰ १॰ २॰ श्रुते॥

+ स्वर्को देवेरित्यादि॰ निरु॰ ५॰ ४॰।

का॰१९॰३॰१०—१३॰ अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता आग्नीध्र आश्विनपयो ग्रह को क्रमेण दो-दो आवृत्य करि भक्षण करें सब्रह्मन्मन्त्र होता ब्रह्मा मैत्रावरुण पूर्ववत् सारस्वत पयो ग्रह को भक्षण करें यजमान ऐन्द्र पयो ग्रह को भक्षण करें॥ नमुचिनेन्द्रस्य वीर्यं पीतमृतस्मिन्हते रुधिरमिश्रः सोमे जातस्तं देवाः पप्रुस्तदभिवादिन्येषाऽऋक् असुर के पुत्र नमुचि के सकाश से जिस सोम को अश्विनी कुमारों ने आहरण किया इति शेषः (अश्विनौ ह्येनं नमुचेरध्याहरतमिति १२॰८॰१॰३॰ श्रुते। और जिस अश्विनी कुमारों करि लाये हुए को सरस्वती ने इन्द्र के वीर्य वा भैषज्य के अर्थ अभिषवण किया तिस अश्विनी कुमारों करि लाये सरस्वती सुत इस राजा को इस यज्ञ विषें में भक्षण करता हूं। कैसे सोम को कि शुद्ध (लोहिता संसृष्ट) अत एव रसवन्त परमैश्वर्यप्रद ॥३४॥

यद॑त्र रि॒प्तꣳ र॒सिनः॑ सु॒तस्य॒ यदिन्द्रो॒ऽ अपि॑ब॒च्छची॑भिः। अ॒हं तद॑स्य॒ मन॑सा शि॒वेन॒ सोम॒ꣳ राजा॑नमि॒ह भक्षयामि॥३५॥

का॰१९॰३॰१४॰ पूर्ववत् अध्वर्यादयः आश्विन होत्रादयः सारस्वत यजमान ऐन्द्र सुराग्रहों को यदत्रेति मन्त्रेण विहार दक्षिण में स्थित प्राचीनावीति भक्षण करें आघ्राणमन्येन मूल्येन भक्षणम्॥ रसवत अभिषुत सोम के जिस भाग सुरा में लगे हुए और जिस सुरालग्न सोमांश को शचीभिः (कर्मों से शुद्ध करिके इन्द्र ने पिया तिस सुरा निर्गत सोम को शिव (शुद्ध) मन क

रिके इसयज्ञमें मैं (सुरासकाशसे शुद्धकरि +) भक्षण करता हूं ॥ ३५॥
पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः पितामहेभ्यः स्वधायि
भ्यः स्वधानमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः
अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः
शुन्धध्वम् ॥ ३६॥ +

का० १९.१.१७. सुराग्रहों का भक्षण घ्राण और अन्यमूल करि भूपा
ल पान ये तीनि पक्ष कहे चौथा कहिताहै अथवा परिधिसेवाहि
र में स्थित आहवनीय के अङ्गारोंविषें होम शेष सुराग्रहों को पि
तृभ्य इति प्रति मन्त्र होमें तदेवाह उत्तर अङ्गारमें आश्विन मध्यम
में सारस्वत दक्षिणमें ऐन्द्र सुराग्रहों को होमें ॥ अपसव्येनकर्म। स
प्त यजूंषि पितृदेवत्यानि १.या-त्रि०२.आसु-अ०३.सा-अ०४.दे-
पं०५.६.या-अ०७.या-गा०। पितरों के अर्थ स्वधा संज्ञक नमः (अ
न्न) हो ‡ यद्वा पितरों के अर्थ स्वधा (अन्न) हो और तिन्होंके अर्थ नम
स्कार हो कैसों के कि स्वधा (अन्न) प्रतिजाते हैं एवं शीलाः स्वधायिनः
तिन्हों के अर्थ ॥ एवं पितामहेभ्य इति मन्त्रौ व्याख्येयौ ॥ का० १९.३.
१८. सौरग्रहहोमपात्रक्षालनजल करि के यथा होम अङ्गारोंकोसींचे अक्षन् अमीमदन्त अतीतृपन्त मन्त्रोंसे ॥ पितरोंनेभक्षणकिया॥ पि
तर तृप्त हुए ॥ हम लोगों करि पितर तृप्त हुए गये हुए हम लोगों को तृ
प्त हुए अभीष्ट दान करि तृप्त करते हैं ॥ का० १९.३.१९. पितरः शुन्ध
ध्वं इति जपै ॥ हे पितरः तुम पाणिप्रक्षालन करि शुद्ध हो ओ ॥ ३६॥
पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुन

+ अहं तदस्मनसा शिवेनैव शिव इव वा अपि भक्षीय सुरया। भक्षणस्य शिवत्वेन मेत लत्वा त्मम्बन्न इति १२.८.१.५. श्रुतेः।

‡ स्वधा इति पितृणामन्नमिति श्रुतेः

+ पि-मः। अ०। इ०॥ प्र-मः। उ०। अ-रः। ऋ०। तृ क्र.पा०। पि-म। ई०॥ ३६
‡ पितृभ्य इति बहुवचनं पितृव्याद्यपेक्षं पूजार्थं वा।

न्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥ पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७ ॥ ॥ पु-षा॰अ॰पु-वै॰द्र॰॥३७॥

का॰१९॰३॰२०॰दक्षिणाहवनीयपार्श्वयोः दोनोस्तम्भोंकेऊपर दक्षिणाग्र वंशर रखिके तत्रस्थेशिक्ये शतछिद्राकुम्भीको रखिकुम्भीकेतलमें वालोंको रखिके तहांसुराशेषकोसींचि अग्निकेऊपरस्रुवती सुराविषें नवर्चे यजमान प्रति वांचे गोऽश्ववालकृतं सुरागलनम् पवित्रमजाविलोमकृतम् पयोगलनम् हिरण्यं शतमानमितम् प्रत्यृचं वाचनमिति सूत्रार्थः ॥ पुनन्तुमानवर्चें पावमानम् आद्ये द्वे पितृदेवत्ये ऽनुष्टुभौ प्रजापतिदृष्टे । पितरमुझे शोधैंकिससैं कि पवित्र गोऽश्ववालकृत सें कैसेसे कि शतायु(शतवर्षमित आयु जिस करि तिस सें अर्थात् जिसकरि पवित्र हुए शतायु होती है । पितामहाः और प्रपितामहाः मुझे पवित्र करें कैसे हैं पित्रादयः कि सोम्याः (सोम को सम्पादन करते ॥ आदरार्थं पुनर्वचनम् पितामहाः प्रपितामहाश्च मां पुनन्तु शतायुषा पवित्रेण । एवं पित्रादयोंसे पूतमैं सर्व आयु को प्राप्त होंउं ॥ ३७ ॥

अग्न ऽ आयूᳬषि पवस ऽ आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ३८ ॥

वैखानसदृष्टाग्निदेवत्या गायत्री । हे अग्ने तू स्वत एव आयुः आयकों कर्मों की चेष्टा करता है । अत एव हमारे अर्थ इष(व्रीहि आदिधान्य) और ऊर्ज(दध्यादि) दे (जीवन हेतुत्वात् । किंच दूरस्थित

दुच्छुनों (दुर्जनों० बावले कुत्तों० भेडियाओं० दुष्टों) को नाश करता है दुर्जने जीवना शक्के:॥३८॥

पुनन्तु मा देवजना: पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेद: पुनीहि मा॥३९॥

अनुष्टुप् लिङ्गोक्त(देवजनधीविश्वभूत जातवेदो)देवत्या। देवानुगामिनो जना: मुझे पुनन्तु मन सहित बुद्धि वा कर्माणि मुझे पुनन्तु सब भूत मुझे पु० हे जातवेद: तू भी मुझे पवित्र करि।॥३९॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२॥ऽ रनु॥४०॥

अग्नि देवत्या गायत्री। हे अग्ने हे देव शुद्ध पवित्र से मुझे पवित्र करि। कैसा है तू कि दीप्यमान। किंच हे अग्ने हमारे यज्ञोंको अनुलक्ष्य करिके क्रतु(कर्म)से तू पवित्र करि यज्ञ में मुझे पवि० वा यज्ञोंको भले प्रकार कराय॥४०॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा॥४१॥

आग्नेयी गायत्री तृतीय: पादो ब्रह्म देवत्य:। हे अग्ने तेरी ज्वालाओं के मध्य में जो ब्रह्म(त्रयीरूप वा परब्रह्मरूप) पवित्र विस्तृत है तिस पवित्र से आप मुझे पवित्र कराओ॥४१॥

पवमान: सो अद्य न: पवित्रेण विचर्षणि:। य: पोता स पुनातु मा॥४२॥

सोम देवत्या गायत्री + तृतीय: पादो वायु देवत्य:। वोह पवमान शो+ + मद्यपिएम

+ महीधरमते

धक सोम) इस दिनमें पवित्र से हमें शोधे केसा है सोम विचर्षणि (दृष्टा॰ कृता कृतज्ञ वा विशिष्ट हें मनुष्य॰ ऋत्विज जिसके वोह। किंच जोपोता (पवित्र करने वाला + वा वायु) वोह मुझे पवित्र करै ॥४२॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेनंच । मां पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

सवितृ देवत्या गायत्री। हे देवसवितः दोनों करिकै सर्वतः मुझे पवित्र करि किन दोनों कि पवित्र (अजाविलोम निर्मित) और सव (अनुज्ञा) करि अर्थात् तेरी आज्ञा से यज्ञ सिद्धि है ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्या गाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः । तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

विश्व देव देवत्या त्रिष्टुप् । इयं प्रवल्हिका । अज्ञाताभिधेया । ततः कांचिद्देवतामुद्दिश्य व्याख्यास्यामः दक्षिणाग्ने रुपरि शतातृण्णा कुम्भी क्षरति ताम् सौत्रामणी वा वाचं वा उखां वा । देवी द्योतमाना सुरा कुम्भी आई कैसी कि वैश्व देवी (सब देवताओं के अर्थहिता वा सब देवताओं के अर्थ आई) पावन करने वाली । जिसकुम्भी में ये प्रत्यक्षतो दृश्यमानाः बहुसंख्याकाः तन्वः (शरीर आया) धाराएँ वर्तें हैं कैसी तन्वः कि वीतपृष्ठाः (इष्ट हैं स्वरूप जिन्हों के ते कामिन शरीरा) सुराधाराएँ (सुरों करि चाह की जाती हैं । तिसकुम्भी करि सधमादों (साथ मद को प्राप्त हैं जिन यज्ञ स्थानों) में मोदमानाः सन्तः हम धनों के पति होवें ॥४४॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यम॒राज्ये॑। तेषां॑ लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् ॥४५॥

का॰ १९·३·२३· सकृद्गृहीत आज्य को दक्षिण अग्नि में प्राचीनावीती दक्षिणमुख यजमान जुहू करि होमैं॥ द्वे अनुष्टुभो। आद्यापितृदेवत्या। यमके राज्य(लोक)में जे पितर वर्तेहैं। कैसे पितर कि समानाः (जाति रूपादि से तुल्याः) समनसः तुल्यमनस्काः। तिन पितरों के लोक में स्वधा नमः(स्वधाशब्दोपलक्षित नमस्कार हो यद्वा अन्न और नमस्कार हो। और यज्ञ देवताओं को तर्पण समर्थ हो ॥४५॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः। तेषा॒ᳪ श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳪ समाः॑ ॥४६॥

का॰ १९·३·२४· उत्तर वेद्याहवनीय में सव्य करि यजमान अगली ४६ ऋचा से होमें॥ यजमानाशीः श्रीदेवत्या। जीवों(प्राणियों)में जे समानाः समनसः मेरे प्राणिनः हैं। सपिण्डाः जे मेरे ते मामकाः इस लोक(भूलोक)में शत वर्ष तिन मेरे जीवों की श्री मुझ विषैं क्लृप्ता हो अर्थात् तिन्हें छोडि मुझ विषैं आश्रित हो गोत्रिणोहि पापात्मानः सहजाः शत्रवोऽत एवं प्रार्थ्यते ॥४६॥

द्वे सृ॒ती अ॑शृणवं पितॄ॒णाम॒हं दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम्। ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ॥४७॥

का॰ १९·३·२५· ऋत्विग्यजमानों के अन्वारम्भ किये पर अध्वर्यु पयहोमें॥ देवयान पितृयान मार्ग देवत्या त्रिष्टुप्। मर्त्यों(मरणधर्मी प्राणियों)के द्वे सृती(दो मार्ग)में ने सुने १। कौन द्वे सृती अत आह

१ मनुष्य देवयानं पितृयानं च हृदि शुश्राव ॥

देवताओं का मार्ग और पितरों का मार्ग *। पितरों और मातरों कोजो अन्तरा भूलोक द्युलोक के मध्य वोह कम्यमान क्रियावत् यहसवगि नस्तती औं देवयानपितृयानों से संगत हैं तिन स्तुतीओं के अर्थ सुद्दुतहो ॥४७॥

इदꣳ हविः प्रजननं मेऽअस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥४८॥

का॰ १९·३·२६· उखास्थित पय शेष को यजमान भक्षण करै ॥ यजमानाशीर्देवत्या त्र्यवसाना अष्टिः। यह पयोरूप हविर्मेरे स्वस्ति (अविनाश) के अर्थ हो। कैसा हवि कि प्रजोत्पादक। जिस केपीने से दशवीरों (प्राण· अपान· व्यान· उदान· समान· नाग· कूर्म· क्ककर· देवदत्त· धनंजय· संज्ञक दशप्राणों *) की स्वस्थता होती है तथा सर्वगणों (सबअङ्गो) की स्वास्थ्य है। आत्मसनि (आत्मा को देती वा सम्भजती। प्रजासनि पशुसनि लोक (ऐहिकसुख) सनि अभय (स्वर्ग) सनि। एवं प्रार्थ्योग्निं प्रार्थ्यते अग्नि मेरी प्रजा को बहुला करै। एवमग्निमुक्त्वा ऋत्विज आह हे ऋत्विजः हमलोगों विषैं अन्न दुग्ध रेत (वीर्य) तुम स्थापन करो ॥ प्राणावै दशवीरा इत्यादि॰ शत॰ १२·८·१·२२· श्रुतेः ॥४८॥

अ॰ ४ उदीरतामवरऽउत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं यऽईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो ह

* पितरं मातरम् द्यौः पिता पृथिवी माता असौ वै पितेयं मातेति १२·८·१·२१ श्रुतेः ॥

* वास्तव में वायु प्राण एक है परन्तु स्थान कार्य भेद करि दश हैं· हृदयस्थ ऊर्ध्वचारी १ अधोगतवायु २ सर्व शरीरगत ३ कण्ठस्थ ४ नाभिस्थ ५ सोथकर्ता ६ पलक लगाने खोलनेवाला ७ क्षुधाकरनहार ८ जृंभालाताहै ९ शरीर को फड काताहै १० इति निवेदनभाष्ये ॥

वेषु ॥४९॥

का॰ १९॰ ३॰ २१॰ उदीरतामित्यादि त्रयोदशोर्चोऽनुवाकः तत्र उदीरताम् ४९॰ अङ्गिरसः ५०॰ येन ५१॰ इति ऋत्रयस्याग्निष्वात्तानित्यन्त्यायाश्च ६१॰ विनियोगः कल्पकृतोक्तः त्वं सोमेति ५२॰ तृचं सोमवताम् बर्हिषद इति ५५॰ तृचं बर्हिषदाम् आयन्तु न इति ५८॰ तृचमग्निष्वात्तानाम् पुनन्तु मेति ३९॰ नवर्चे वाचनानन्तरं त्वं सोमेत्यादि ५२॰ तन्वं कल्पयातीत्यन्तं नवर्चं प्रत्यृचमध्वर्युर्यजमानेन वाचयतीत्यर्थः॥ त्रयोदशशङ्खदृष्टाः पितृदेवत्याः एकादशी अग्निष्वात्ताः पितरः ५९॰ इयं जगती अन्या द्वादश त्रिष्टुभः। इसलोक में अवस्थित पितर ऊंचे लोक को जावें। परलोक में स्थित पितर तिसस्थानसै भी परस्थान को जावें। मध्य लोक में स्थित ऊंचे जावें। कैसे हैं पितर कि सोम को सम्पादन करते। और जे वात रूप को प्राप्त ते पितर आह्वानों में हमें रक्षा करैं। कैसे कि नहीं हैं शत्रु जिन्हों के ते उदासीना ऋतज्ञा सत्यज्ञा वा यज्ञज्ञा स्वाध्यायनिष्ठा वा ॥४९॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५०॥

जे हमारे पितर हैं तिन्हों की शोभन बुद्धि में हम होवें (ते हमारे में सुमति करैं) और तिन्हों के कल्याणकारि शोभन मनस्त्व में हम हों (हमारे विषें कल्याण मन करैं। कैसे तिन्हों कि यज्ञ सम्पादकों के। कैसे हैं पितर कि अङ्गिरसः (अङ्गिरसो बह्वन्यपत्यानि) नवा (नूतन) हैं ग्वा (गति

यें वानवनीया स्तोतव्या तिन्होंकी। अथर्वाणः अथर्वणो मुनेर्बहून्य पत्यानि। भृगवः भृगून्य त्यानि। सोम्यासः सोमसम्पादिनः॥५०॥

येनः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु॥५१॥

हमारे जे पहिले पितरः सोमपान को देवताओं प्रति प्राप्त करते हुए-कैसे कि सोम सम्पादन करनेवाले। वसिष्ठाः (वसिष्ठ के गोत्रापत्या) नि। यमः तिन्होंकरि संरराणः प्रीयमाणः सन् प्रतिकाम हवियोंको भक्षण करे। कैसा है यम कि कामयमान.। कैसे तिन्हों कि कामयमानों करि॥५१॥

त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्। तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः॥५२॥

तू अपनी बुद्धिकरि ऋजुतम देवयान पन्था को प्राप्त कराता है। कैसा है तू कि विशिष्ट चैतन्ययुक्त। किंच हे इन्दो सोम हमारे पितरोंने तेरे अभ्यनुज्ञान करि देवताओंकी वेष्टिमें रत्न (रमणीय यज्ञफल) को सेवन किया सोमयागे नैव स्वर्गाप्तेः। कैसे पितरों कि धीमन्तों (यज्ञज्ञानवन्तों) नें॥५२॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः। वन्वन्नवातः परिधीꣳरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः॥५३॥

हे सोम हे पवमान शोधक हमारे धीमन्तों पूर्वजाः पितरोंने जि

सकारण से तुरू करि यज्ञादि कर्मकिये अतः प्रार्थना करते हैंकि तू परिधी ओं (सर्वतः उपद्रव के अर्थ खडे हुओं) कोनिकालि। कैसाहैतू कि हमारे कर्मों को सम्भजमान। तथा वाताद्युपद्रवरहित। किंचवीरों और अश्वों सहित हमारा धनवान् हो यो यस्य दाता सतदीयधनवानिति लोक प्रसिद्धिः॥५३॥

त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावा पृथिवी ऽआततन्थ। तस्मै न ऽइन्दो हविषा विधेम वयꣳस्याम पतयो रयीणाम्॥५४॥

हे सोम तू द्यावा पृथिवी को विस्तार करताहुआ। कैसातू कि पितरों केसाथ संवाद करनेवाला। हेइन्दो तिस तेरे अर्थ हम हवियें देतेहैंओ रहविर्दान से हम धनों के पति होंवें॥५४॥ सोम वतां पितृणां षडृचः समाप्तः॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। तऽआगतावसा शंतमेनाथा नः शंयोररपो दधात॥५५॥

हे बर्हिषदः (बर्हिओं पर बैठने वाले पितरओ) ते तुम रक्षणनिमित्तकरि उरें आओ किमर्थमिति चेत् कितुम्हारे इनहवियोंको हम करते हुए तिन्हें तुम सेवन करो। इस के अनन्तर सुखयितृतमअन्न करि तर्पित हुए हमारें सुख रोग शमन भयोंका पृथक्करण औरपापाभाव स्थापन करो॥५५॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ऽ॥ अवित्सि नपातं च विक्रमणं

चं विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्व-
स्तऽइहागमिष्ठाः॥५६॥

मैं पितरों करि अभिमुख्येन जानता हूं। कैसे पितरों कि कल्याण दान अों। किंच विष्णु(व्यापनशील यज्ञ +) के नपात(नहीं है जहां गये हुओं का पात-देवयानमार्ग) और विक्रमण(विविध गमनागमन कि जहां गये हुओं का पुनः भोगान्त में पतन है-पितृयान पथ) अर्थात् यज्ञसम्बन्धि ओं देवयान पितृयान पन्थाओं और उक्रामि पितरों को जानता हूं। इसकारण कहिता हूं कि जे बर्हिषदः पितरः सवनीयलक्षण अन्न-सहित अभिषुत सोम के पान को सेवन करते हैं ते इस यज्ञ में आवें॥५६॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। त
ऽआगमन्तु तऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मा
न्॥५७॥

ते पितर इस यज्ञ में आवें ते हमारा वचन सुनें और सुनकर पितरों करि पुत्रों को जो कहिना उचित है तिसे कहें हमें पालन करें। कैसे हैं पितर कि अभिरुचित हवियों में आज्ञा देने वाले सोम्याः कैसे हवियों कि बर्हिओं पर सादिन तथा निधि वत्स्थापनीयों में॥५७॥

बर्हिषदां पितॄणां तृचः समाप्तः॥ ॥

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देव
यानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽव
न्त्वस्मान्॥५८॥

हमारे पितर देवयान मार्ग करि आवें देवताओं सहित चलते हैं पित

+यज्ञो वै विष्णुरिति १.१.३.९ श्रुतेः।

रजिन्हों में ते देवयान मार्ग हैं। कैसे पितर कि सोम पानार्हा। अग्निष्वाताः अग्नि करि स्वादिताः अग्निर्यान्दहन्स्वादयति। श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठायिनः। जिन्होंके पुत्रादिकों करि एतत्कर्म अनुष्ठानकरियेहैं +। किंच पितर आकर इस यज्ञ में स्वधा अन्न करि तृप्त हुए हमें अधिक कहें तिन्होंके वाक्य से तैसे ही हम अधिक होंवें ते पितर हमें पालन करें॥ ५८॥

+ तदुक्तम् पुत्रेण लोकान्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते अथपुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपमिति

अग्नि ष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः-सदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन॥ ५९॥

हे अग्निष्वात्ता पितर औ इस यज्ञमें तुम आओ और आकर सदः-सदः (प्रति घर में) बैठो। कैसे हो तुम कि शोभना प्रणीती वाले। ततः सद में बैठे हुए हवियों को भक्षण करो। कैसे हवियों को कि दर्भोपर नियम पूर्वक स्थापित हैं। इसके अनन्तर तृप्त हुए सर्ववीर धन को स्थापन करो॥ ५९॥

येऽअग्निष्वात्ता येऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति॥ ६०॥

जे पितर अग्निष्वाताः (अग्नि करि दग्ध हुए विधिवदौर्ध्वदेहिक को प्राप्त) और जे अनग्निष्वात्ताः (नहीं हैं अग्नि करि स्वादित, अदग्ध, श्मशान कर्म को न प्राप्त हुए) स्वर्ग के मध्य में स्वधा (स्वकर्मोपार्जित अन्न) करि तृप्त हुए सुख को सेवन करते हैं। स्वराट् (स्वैनैव राजते) यम तिन पितरों के अर्थ यथा काम नर शरीर को

देवें। कैसी शरीर कि असुनीति (प्राणयुक्ता, चिरकालजीवनी) को
ते जैसे पुनः स्तम्भन करते हैं॥६०॥

अग्निष्वात्तान् ऋतुमतो हवामहे नाराशंसे सोमपीथं
यऽआशुः। ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳस्याम प
तयो रयीणाम्॥६१॥

अग्निष्वात्ता पितरों को हम आह्वान करते हैं। कैसे कि ऋतुयुक्तों को
जे पितर नाराशंस चमस में सोम पान को पीते हुए+। ते पितर हमा
रे बुलाये शीघ्र आवें। एवं बुलाये पितरों विषें हम धनों के स्वामी हो
वें॥६१॥ चतस्र ऋचः समाप्ताः॥

अ०५ आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे। मा हि
ꣳसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम॥६२॥

कात्यायनेन आच्यजान्वित्यनुवाकस्य विनियोगो नोक्तः उदीरतामि
त्यनुवाकद्वयस्य श्राद्धे ऽभ्युदिजेषु जपे विनियोगः॥ दशर्चोऽनुवाकः
आद्या नव पितृदेवत्या। द्वे त्रिष्टुभौ। हे पितरः सब (सोमवन्तो बर्हिषदो
ऽग्निष्वात्ताश्च) तुम इस यज्ञ (सौत्रामणी) को स्तुति करो अर्थात् दक्षिणा
मन्त्रकालकर्त्र हविर्यजमानोत्कर्षकरि यह यज्ञ भला है यह स्तुति करो
क्या करिके कि बाईं जानु को नीची डालि तथा दक्षिणाभिमुख बैठिक
रि ‡। किंच हे पितरः किसी भी अपराध करि हमें हिंसा मत करो। क्यों
कि पुरुष भाव (चलचित्त) से तुम्हारा अपराध हम करें यद्यपि हम अ
पराधी हैं तथापि हमें मत मारो॥६२॥

आसीनासो ऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।

+ अथ यदिना राशꣳसेषु सन्न इत्युपक्रम्य पितृभ्यो नाराशꣳसेभ्यः स्वाहेति जुहुयादिति १९, ६, १, ३३। हुत्वा नाराशꣳसे चमसे पितृणां भक्षः श्रुतिप्रदिष्टः।

‡ सहि तेषां स्वभावः अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपसीदन्तीति श्रुतेः।

पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तऽइहोर्जं दधात ॥ ६३॥

हे पितरओ हविदेनेवाले मर्त्य(यजमान) के अर्थ तुम धन को देओ कैसे हो तुम कि अरुणीओं (अरुणवर्ण ऊर्णाओं) के उपरि भाग में बैठे हो * यद्वा अरुणवर्ण रश्मिओं के उत्संग में बैठे आदित्यलोकस्थाः) हो। किंच हे पितरओ पुत्रों(यजमानों) के अर्थ तिस धन को देओ (जो अभीष्ट धन तिसे देओ पितरों के पुत्र ऐसे यजमान हैं) । ते तुम इस हमारे यज्ञ में ऊर्ज(रस) को स्थापन करो ॥ ६३॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४॥

हे अनुष्टुभो। हे कव्यवाहनः † हे अग्ने तूभी जिस रयि(हविर्लक्षण धन) को उत्तम जानता है हमारे तिस रयि को देवताओं में दे। कैसे धन को कि गीः(वाचाओं- पुरोऽनुवाक्यायाज्यावषट्कारलक्षणाओं) करि सुनने योग्य को। तथा योग्य को ॥ ६४॥

योऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः। प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ६५॥

जो कव्यवाहनोऽग्निः पितरों को इष्ट करता हुआ। कैसे पितरों को कि ऋत(सत्य वा यज्ञ) को बढाते हैं तिन्हें। वोह अग्नि देवताओं और पितरों के अर्थ हवियें कहे अर्थात् ये देवताओं और ये पितरों के अर्थ यह कहे ॥ ६५॥

त्वमग्नऽईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया तेऽअक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६६॥

* यामिः कुतपाः क्रियन्ते ता ऊर्णा अरुणा भवन्ति कुतपं चासने दद्यादिति मनु॰ ३। २३४। त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिला इति च २३५ कुतपं नेपालकम्बलमिति कुल्लुकः

† कव्यं पितृभ्यो देयमन्नं वहतीति कव्यवाहनः

चंतस्त्रिष्टुभः। हे कव्यवाहन: हे अग्ने तू हवियें सुगन्धित करिकें कहता हुआ। कैसा है तू कि ईडितः(देवताओं और ऋत्विजों करि स्तुति किया गया। किंच हवियों को वहि करि स्वधा(पितरों के मन्त्र)से पितरों के अर्थे देता हुआ। और ते पितर भक्षण करते हुए। हे देव तू भी शुद्ध हवियें भक्षण करि॥६६॥

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यां२॥ उ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व॥६७॥

जे पितर इस लोक में वर्ते हैं और जे इस लोक में नहीं हैं और जिन पितरों को हम जानते और जिन्हें प्रकर्षेण नहीं जानते हैं। हे जातवेदः ते पितर यति(जितने) वर्ते हैं तिन्हें तू जानता है यद्वा यतीन्(सुझों नित्य नैमित्तिकानुष्ठानैर्निष्पापान्) तिन्हें तू जानि +। किंच स्वधा(पितरों के अन्न) से शोभनः यज्ञ को तू सेवन करि॥६७॥

+यति द्विभक्तिलोपः।

इदं पितृभ्यो नमो ऽअस्त्वद्य ये पूर्वासो य ऽ उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु॥६८॥

जे पितर पूर्वासः पूर्वे ईयुः स्वर्ग को गये) और जे उपरासः उपरतव्यापाराः(कृतकृत्य होकर परं ब्रह्म को प्राप्त हुए। और जे पार्थिवे रजसि(पृथिवी की अग्नि में) भले प्रकार बैठे और जे निश्चय यजमान लक्षण प्रजा में स्थित हैं। कैसी प्रजा कि सुवृजना शोभन बल जिस में तिस धर्म रूप बलयुक्ता में इस दिन में तिन चतु

विधों(स्वर्ग ब्रह्माग्नि यजमानस्थों) के अर्थ यह नमस्कार हो॥६८॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः। शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामाभिन्दन्तो अरुणीरपव्रन्॥६९॥

हे अग्ने हमारे पितर अध(देह पातोत्तरकाल) जिस प्रकार शुचि(निर्मल) दीधित रविमण्डल को प्राप्त हुए। कैसे पितर कि परा(उत्कृष्टाः) प्रत्ना(पुराणाः) ऋत(यज्ञ) को व्याप्त हुए। एवम्भूताः पितरः जैसे देवयान को प्राप्त तैसे हमभी अरुणवर्ण सूर्य रश्मिओं को व्याप्त हो देवयानमार्ग को प्राप्त होंवें। कैसे हम कि यज्ञों में शास्त्रों को पढते हैं। तथा भूमि को भेदते(वेदिचात्वाल यूपावटोपरवादिखनन करि विदारण करते अर्थात् सर्वोपकारण सैं यज्ञ को करते) हैं॥६९॥

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे॥७०॥

अनुष्टुप्। हे अग्ने उशन्तः(कामयमाना) हम तिस तुझे स्थापन करते हैं। कामयमाना एव हम तुझे संदीपन और तू कामयमानः कामयमान पितरों को प्राप्त करि क्या करने कि हवि यें भोजन करने को॥७०॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः। विश्वा यदजय स्पृधः॥७१॥

ऐन्द्री गायत्री अभिमानुवाक निदानभूता। हे इन्द्र जब कि तू सब संग्रामों को जीतता हुआ तब जलडिण्डीर करि नमुचि असुर का शिर छेदता हुआ॥७१॥

अ॰६ सोमो राजामृतꣳ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम्। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७२॥

का॰१९॰२॰२४॰ अष्टर्चं अनुवाक करि समान काल ही पयो ग्रहों और सुरा ग्रहोंकी अध्वर्यु उपस्थान करै यद्वा चारि करि पयो ग्रहों और चारि करि सुराग्रहों को ग्रहण के अनन्तरही उपस्थान करै मन्त्र पाठक्रमादंत्राले रवीत्यर्थः॥ अश्विसरस्वतीन्द्रदृष्टा अष्टौत्रचः अाद्यास्तिस्रो महाबृहत्यः। सोमो राजा अभिषुतः सन् अमृतरूप रसरूप होताहै क्योंकि ऋजीष(नीरस सोमलताचूर्ण) करि मृत्यु(स्थूलभाव) को नाश करताहै। इस ऋत(सत्य) करि यह सत्य जाना कि जो अंध(अन्न सोम)का विपान(विविच्यपान) शुक्र(शुद्ध)है अतएव इन्द्रियों को वीर्यप्रद हुआ और पय इन्द्रका ऐसा हो कैसा कि इन्द्रियों को वीर्यवत् (अमृत अजरामरत्वप्रद) और मधु(मधुर)॥ अपांफेनेनेत्यस्य मन्त्रास्याष्टर्चानुवाकस्य च श्रुत्या सम्बन्धउक्तः १२॰७॰३॰४॰ तस्य शीर्ष्णि छिन्ने लोहितमिश्रः सोमोऽतिष्ठत् तस्माद्बीभत्सन्त तऽएतदन्धसो विपानमपश्यन्त्सोमो राजामृतꣳ सुत इति तेनैनꣳ स्वदयित्वात्मन्नदधतेति। यथा एककारणानि वस्तूनि विविच्यमानानि दृश्यन्ते यथा च पृथग्भूतानि संसृष्टानि पुनर्विविच्यन्ते एवमयमपि लोहितमिश्रः सोमो विविक्तः सोम एवेति सर्वानुवाकार्थः॥७२॥ यद्वा सायनानुसारेण व्याख्या। तैत्तिरीय ब्राह्मण काण्ड २ प्रपाठक ६ अनुवाक २। यह अभिषुत सोम राजा आप अमृत समान है जैसे

+ सुत सत्य सुक्र सम सोम दूत मधुसोमभाव:।

अमृत पीने वाले की अपमृत्यु नहीं ऐसे सोमप की भी अपमृत्यु नहीं। तत्रायं हेतुः ऋजीष (कीट कूस्थानीय नीरस) करि मृत्यु को नाश करता हुआ। ऋजीष अपमृत्यु आप करसनिः सरण करि तिस के परित्याग से अपमृत्यु का हेतु परित्याग किया। अतः यह ऋत (यज्ञ निष्पादन) करि इन्द्रियों की वृद्धि का हेतु है तिस हेतु यह सत्य शपथ करता हूं। और अन्न रस से विशेषेण पान योग्य सोम रस रूप है अतः शुद्ध जो यह इन्द्र है तिस की भी इन्द्रिय वृद्धि का कारण किञ्च यह द्रव्य मधुर क्षीर रूप अत एव अमृत रूप है ॥२॥७२॥

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्क्रुङाङ्गिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्र मन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७३॥

आङ्गिरसः (अङ्गों का रस प्राण) जैसे क्रुङ् (हंस) हो बुद्धि करि जल के सकाश से दुग्ध को पीता है (मिले हुए दूध जल से क्षीर ही हंस पीता यह जाति का स्वभाव है। इस सत्य करि यह सत्य है कि जो अन्न का विपान शुक्र हो निरन्तर इन्द्र का पय वीर्य अमृत हो॥ यद्वा साय॰ दृष्टान्तः जैसे लोक में क्रौञ्च पक्षी आङ्गिरसः (पुष्टशरीर) तादृशः स्वबुद्धि करि क्षीर पात्र में स्वमुख क्षिप्ते सति मुखगत रस सम्पर्क से क्षीरांश और जलांश को न्यारा करता है तहां जल भाग को छोडि क्षीर भाग को पीती है तद्वत् यह इन्द्र भी सोम रस को जल भाग से विवेचन करि पीता है अतः इन्द्रिय द्वारेण इन्द्रिय वृद्धि हेतु सोम है तदेतत्सत्यम् ॥२॥७३॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हंसः शुचिषत्। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७४॥

हंसः (आदित्य) जल के सकाश से छन्द (वेद-वेदरूप किरणों) करि जैसे सोम को पीता है (सोम और उदक से सूर्य सोम ही को पी॰ ऋतेने त्युक्तम्। कैसा रवि कि शुचि (निर्मल गगन) में वास करना॥ यद्वा साय॰ व्याख्या-शुचि (स्वर्ग) हंसः (सब प्राणियों के हृदय में स्थित जीवात्मात रूप धारी इन्द्र) छंन्दसा साक्षितया॥२॥७४॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेनसत्यमिन्द्रियंविपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७५॥

अति जगती। प्रजापतिः (प्रथम शरीरी) परिस्रुतो अन्नात् (सुरारूप अन्न से) रस को ब्रह्म (गायत्री लक्षण) करि विविच्य पीता हुआ। और क्षत्र क्षत्रिय के पान वशीकरण) को पय और सोम को पीता हुआ अनेन सत्येनेदं सत्यम्॥७५॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना॥ ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतमधु॥७६॥

अति शक्वरी द्वे। इन्द्रिय (पुम्प्रजननलिङ्ग) योनि (स्त्री प्रजनन) में प्रवेश करते वीर्य को छोडता है योनिप्रदेश से अन्यच्च मूत्र को स

मानद्वार हैं रेत मूत्र के परन्तु मूत्र स्थान सै रेत अन्यत्र तिष्ठै है। जरायु(गर्भवेष्टन) करि आवृत गर्भ जन्म करि जरायु को त्यागता है†। ऋतेनेति व्याख्यातम्॥ यद्वा साय॰ जैसे लोक में पुरुष शिश्न को॰ त्यागता है एवं इन्द्रभी एक पात्र में स्थित सोमके सार को लेता और असार को त्यागता है॥७६॥

† भिन्नस्थाना नामेकद्वारेण माध्यमुदाहरण मएकस्थानाना मेकद्वारेणद्वि तीयम्।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृते॓ऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७७॥

प्रजापतिः रूपे(रूपवती॰ मूर्तिमती) सत्यानृते देखके व्याकरण पृथक्क करता हुआ(यह सत्य यह असत्य। तदेवाह॰ अनृतमें अश्रद्धा(नास्तिक्यवुद्धि) सत्यमें श्रद्धा (आस्तिक्य वुद्धि) स्थापन करता हुआ। अनेन ऋतेनेत्युक्तम्॥७७॥

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥७८॥

महा बृहती। प्रजापति(प्रथम शरीरी वा प्रजापति प्रजाका पालक इन्द्र) सुत(सोम) असुत(पय और परिस्रुत) केरूप वेद(ज्ञानवात्रयीविद्या) करि विविच्य पीतवान्। ऋतेनेत्युक्तम्॥७८॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत्पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस

इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७९ ॥

अतिजगती। प्रजापतिः परिस्रुत (सुरा) के रस को देखि शुक्र (मन्त्र) करि पय और सोम को शुक्र (शुद्ध) करिके वियुज्य पीता हुआ। अतेनेत्युक्तम् ॥ ७९ ॥

अ० ७ सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिणं ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति।
अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥ ८० ॥

का० १९॰४॰१२॰१३॰ ऋषभों (बडेबैलों) के खुरोंसे वसाकोलेसी सेनेति प्रति मन्त्र द्वात्रिंशत् सुरा ग्रहों † को होमें॰ एक मंत्रकरि दो ग्रहोंको ॥ अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्याः षोडश जगत्यः जगतीभिर्जुहोतीति १२॰८॰३॰१३॰ श्रुतिबलाद्व्यक्षर न्यूनानामपि कासां चिज्जगतीत्वमेव। दस्रादिभिर्यथा इन्द्रस्य भैषज्यं कृतं तदनेनानुवाकेन प्रतिपाद्यते। अश्विना (अश्विनौ॰ दस्रौ॰ अश्विनी कुमार) सविता सरस्वती और बरुण मन से विचारि करि यज्ञ (सौत्रामणी) को निष्पादन करते हैं। किस करि कि सीसा (शाष्पक्रयणा) और ऊर्णासूत्र (तोक्मक्रयणा) से। तत्र दृष्टान्तः जैसे कोई सीसाधातु विशेषकरि तन्त्र (अङ्ग विशेष) बनाता और ऊर्णा सूत्रकरि तन्त्र (पटविशेष) को बिनता है तद्वत् †। कैसे हैं अश्व्यादयः कि मेधाविनः। क्रान्त दर्शनाः। इन्द्र के रूप के भिषज्यन् अर्थात् इन्द्रकी भैषज्य के अर्थ यज्ञ को निष्पादन करते हैं ॥ ८० ॥

तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सꣳर

† पञ्च पलाग्रह इतिपरिशिष्टोक्तेः।

† तन्त्रं राष्ट्रेचसिद्धान्ते परछन्दप्रधानयोः अङ्ग दे कुटुम्बकृते तन्तुवाने परिच्छदे इतिकोशात्।

राणाः। लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मांसमभवन्न लाजाः॥८१॥

तीनों देवता(अश्विसरस्वत्यः) भले प्रकार रमणाणसत्यः इस इन्द्र के तिस अमरण धर्मि रूप को शचीओं(कर्मों) करि संदधुः(कर्मों से संधान करते हुए तदेवाह लोमों(इन्द्र के रोमों) को शष्पों(विरूढव्रीहिओं) से संदधुः और त्वचा को तोक्मों(विरूढयवों) से संदधुः लाजान (और लाजा) इसका मांस हुआ॥ अध्याय समाप्ति पर्यन्त नकाराः सर्वे चकारार्थाः॥८१॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम्। अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि॥८२॥

रुद्रवर्तनी(रुद्रवत् मार्ग जिन्हों का ते वा रुग्ण वर्तनी) भिषजा(वैद्य) अश्विनी कुमार और सरस्वती तदन्तर(शरीरान्तर वर्ति) इन्द्र के रूप को भले प्रकार बांधते हैं। तदेवाह मासर(शष्पादि चूर्ण निःस्राव) से अस्थिओं को भरे हैं। कारोतर(सुरा पावन चालनी) से मज्जा को भरे। कैसे हैं ते कि गौ के चर्म पर सुरा को स्थापन करते॥८२॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः। रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम॥८३॥

नासत्या(अश्विनीकुमारों) सहिता सरस्वती वसु(धन) और दर्शनीय वपु को पटमिव रजती इन्द्र का इति शेषः कैसा थ

नकिपेशल (हिरण्यवत् वा रूपवत्+। मनकरि विचारि के इति शेषः। परिस्नुत (सुरा) के रोहित (लोहित) और रस को स्रजती इन्द्र वपुरूज न के अर्थ अत एव वेदेषु इन्द्रः रोहितः पठ्यते। अथ तदा नग्नहुः (किण्व ः पूर्वोक्तः सुराकन्दः) तसर (वयनसाधन) और वेम (वेमा) तसर षमानो कुविन्दानां प्रसिद्धौ। कैसा नग्नहुः कि धीरः बुद्धि को प्रेरणा करता अर्थात् मादक॥८३॥

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः। अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात्॥८४॥

प्रहृतत्वात् अश्विनी कुमार और सरस्वती दुग्धकरि वीर्य को उत्पादन करते इन्द्र का इति शेषः। कैसे वीर्य कि शुक्र अनश्वर मान जननशील। समीप में स्थित हो तिस (प्रसिद्ध) ऊवध्य वातना गत और सब्व+को और सुराकरि मूत्र को उत्पन्न करते हैं। कैसे हैं ते कि अमति (बध्यभाव) और दुर्मति (दुर्बुद्धि) को निवर्त करते अर्थात् सुबुद्धि देते हैं॥८४॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान। यकृत्क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्॥८५॥

भले प्रकार रक्षा करने वाला इन्द्र (पुरोडाश देवता) इन्द्र के हृदय करि हृदय को उत्पादन करता है। और सविता पुरोडाश करि इन्द्र के सत्य को जजान। वरुण इन्द्र की चिकित्सा करते सन् यकृ

+ हिरण्यरूपमस्थानामिषा ॥ २.३.४७.

+ आमाशयपक्वाशययोर्मध्यम् मलमूत्रं पक्वाशयगतमन्नं सव्यम्।

नु(कालखण्ड)और क्लोमान(गलनाडिका) को जजान। वायव्यों (सोमिकोर्ध्वपात्रों) मतस्ने(हृदयोभयपार्श्वस्थे अस्थिनी) और पित्तको सृजताहै†॥८५॥

आन्त्राणि स्थाली मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः। श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दीनाभिरुदरं न माता॥८६॥

स्थाली(आन्त्राणि)हुई कैसी स्थाली कि मधुसिञ्चन्त्यः। पत्रगुदस्थान हुए। और शोभन दोग्ध्रीधेनु आदित्येष्टि की दक्षिणारूपा गुदाही हुई। और श्येन के पात्र प्लीहा(हृदयवामभागस्यसिथमांसपिण्ड गुल्मसंज्ञ)हुआ। और आसन्दी शचीकरि नाभि और उदर हुआ कैसी आसन्दी कि माता(जननीस्थानीया– आसन्द्याम भिषिच्यते ऽ तस्ततो जायत ऽ इव॥८६॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो ऽ अन्तः। प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः॥८७॥

सुराधानकुम्भ शचीओं(कर्मों)करि वनिष्ठु(स्थूलान्त्र)उत्पन्न करताहै। प्रथम जिस कुम्भ रूप योनिस्थान के मध्य में गर्भ(सुरारूप)उषितहै। शतधार उत्स(कूपतुल्य)कुम्भस्यष्ट शिश्न हुआ। और कुम्भी सुराधानी पितरों के अर्थ अन्न को पूरतीहै॥८७॥

मुखं सदस्य शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती। चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शे-

† सोमिकान्यौर्ध्वपात्राणिवायव्यसंज्ञानि।

यो हरसा तरस्वी॥८८॥

इस इन्द्र के सत(पात्रविशेष)शिर हुए। पवित्र जिह्वा हुई। अश्विनी कुमार और सरस्वती मुख हुए। और चप्य पायु इन्द्रि हुई। वाल(सुए गलनवस्त्र)इस इन्द्र के वेद्य गुदा और लिङ्ग हुए वालेन नयंजातम् कैसा लिङ्ग कि तरस्वी(वेगवान्॥८८॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन। पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो नशुक्लमसितं वसाते॥८९॥

अश्विनी कुमारों नें इस इन्द्र के चक्षु किये ग्रहों(अश्विनी कुमारों)ने नेत्रही अमृत(अनश्वर)किये। छागरूप पक्व हवि करि चक्षुसंबधि तेज किया। गोधूम पक्ष्मों करि नेत्र लोम किये कुवलों(वदरों)करि उतानि(चक्षुनिविष्ट लोम)किये। शुक्ल और कृष्णा नेत्रगतरूप अश्विनी कुमारों ने किया प्रकृतत्वात॥८९॥

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम्। सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान॥९०॥

अवि(सारस्वत)और मेष इन्द्र की नासिका में वीर्य के अर्थ अवस्थित हुए। सारस्वत ग्रहों ने प्राण वायु का मार्ग अनश्वर किया। सरस्वती उपवाकों(यवाङ्कुरों)करि इन्द्र की व्यान वायु को उत्पन्न करती है। बर्हि वदरों सहित नासिका के लोमों को उत्पन्न करती हैं॥९०॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्। यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात्॥९१॥

ऋषभः सामर्थ्य के अर्थ इन्द्र के रूप को करता हुआ। ऐन्द्र ग्रहों करि भूत भविष्य वर्तमान शब्द ग्राहि कर्णशष्कुलियों में श्रोत्रेन्द्रिय स्थापन कीगई। यवा और बर्हिः भ्रुओं के रोम हुईं कर्कन्धु (बेर) मुखसे सारघ मधुतत्तुल्य लाला श्लेष्मादि उत्पन्न करते हुए+॥९१॥

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिꣳहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि॥९२॥

आत्मा (शरीर) और उपस्थ (गुह्य) में जे लोम हैं ते वृक के लोम हैं। और मुख में जे श्मश्रु (डाढी मूँछ) हैं ते व्याघ्र लोम हैं और शिर में जे यश के अर्थ केश और जे शोभा के अर्थ शिखा और जो त्विषि (क्रान्ति) और जे इन्द्रियें ते सब सिंह के लोम हैं॥९२॥

अङ्गान्यात्मन्भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात्सरस्वती। इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः॥९३॥

अश्विनी कुमार वैद्य आत्मा (शरीर) में अङ्गों (अवयवों) को भले प्रकार योजते (जोडते) हुए सरस्वती तिस आत्मा को अङ्गों करि जोडती हुई। कैसे अश्व्यादय: कि इन्द्र के रूप और आयु को चन्द्र (आल्हादक) ज्योति सहित अनश्वर सम्पादन करते कैसे रूप कि शतमान

+ सारघा मधुमक्षिका तत्सम्बन्धिसारघम् पूर्णमधुना तत्सम्पृक्तं लालादि ... मधुसमानीतं ... लाला

अनेक प्राणियों की पूजा जिस में तिस जगत्पूज्यको॥९३॥

सरस्वती योन्या गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति। अपाꣳ रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रꣳश्रियै जनयन्नप्सु राजा॥९४॥

सरस्वती अश्विनी कुमारों की पत्नी होके योनि के मध्य में इन्द्रलक्षण गर्भ को शोभन कृत जैसें तैं बिभर्ति धारण करती और जलों का ईश्वर वरुण उदक रस भूत साम करि इन्द्र को शोभा के अर्थ जनयन्सन् बिभर्तीत्यनुषङ्गः॥९४॥

तेजः पशूनाꣳहविरिन्द्रियावत्परिस्रुता पयसा सारघं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः॥९५॥

इति सꣳहितायाꣳसप्तमोऽनुवाकः७

इतिश्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसꣳहितायां दीर्घपाठे एकोनविꣳशोऽध्यायः॥२९॥

वैद्यों अश्विनी कुमारों और सरस्वती नें इन्द्रियवान् (वीर्यवान्) पशुओंका सम्बन्धि हविले और परिस्रुत पय सहित सारघ और मधु लेकर तेज दुग्ध स्रवाया। और परिस्रुत पय करि अमृत रूप ऐश्वर्य प्रद सोम दुहा॥ एवं जिन सरस्वती अश्विनी कुमारों नें इन्द्र के अर्थ नानाद्रव्यों सें अनेक रसों को लेकर उपकार किया तिन सौत्रामणी द्रष्टाओं के अर्थ नमस्कार॥९५॥

इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थाश्चतुरो देयाद्यज्ञदेवः सनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेयनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येसौत्रामणीप्रकरणे सुरादीन्द्राभिषेकान्तवर्णनो नाम ऊनविंशोऽध्यायः॥१९॥

हरिः ओम्
ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपंचसाधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १

अ॰१ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि। मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः॥१॥ +क्ष-सि॥अ॰मा-सीः इ॰॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
सेकासन्द्यादिहोत्रान्तो विंशोऽध्यायः समीर्यते २॰

का॰१९॰४॰७॰ जानुप्रमाणपादा आसन्दी वेदियों के मध्य में सोमासन्दीवत् (मुञ्जरज्जु सेविनी दोपाद दक्षिण वेदि दोपाद उत्तर वेदि में जैसे तैसे) स्थापन करै॥ क्षत्रस्येति आसन्दी देवत्या द्विपदा गायत्री। हे आसन्दि तू क्षत्र का उत्पत्तिस्थान है (आसन्द्यामभिषिक्तो गुणधर्मान् हंति राजेतिभावः) और क्षत्र का बन्धन है॥ का॰

१९.४.८. आसन्दि पर कृष्णाजिनको बिछावै॥ मात्वेति कृष्णाजिन देवत्या आ–गा॰। हे कृष्णाजिन आसन्दि तुझे न मारे और तू मुझे न मारि+॥१॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥ मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि॥२॥ +

का॰१९.४.९. निषसादेति मन्त्रेण यजमान कृष्णाजिन पर बैठे॥ व्याख्याता १०.२७.॥ का॰१९.४.१०.११. आसन्दि पर बैठे यजमानके पैरों के नीचे दो रुक्म (मण्डलाकार भूषण विशेष) रखे राजत को सव्य के मृत्योरिति मन्त्रेण सौवर्ण को दक्षके विद्योदिति सौवर्ण रुक्म को शिर पर एक आचार्य कहिते हैं॥ रुक्म देवत्ये यजुषी दैव्यौ बृहत्यौ। हे रुक्म मृत्यु (अकालमरण) से मुझे रक्षा करि॥ हे सौवर्ण रुक्म विजली (विजलीपात) से मुझे रक्षा करि॥२॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि॥३॥ +

का॰१९.४.१४. वेतस पात्रस्थापित वसाग्रह शेषों से प्रति दिशा स्थित अध्वर्यु आसुरवादवस्तावयन् आसन्दीस्थ यजमान को सींचै मन्त्र त्रयेण कैसे कि सब सुगन्धिओं चन्दन कर्पूर कस्तूरी केसरादि से उद्वर्तित को। देवस्य त्वेति सावित्र यजु का तीनों मन्त्रों में अनुषङ्ग है। चतुर्थोऽभिषेकः उत्तरे स्थित तीनों मन्त्रों महाव्याहृति

+ नि–तुः। अ॰। स्र–हि। दृ॰। वि–हि। उ॰॥२॥
+ दे–म्। प्र॰। अ–मि। दृ॰। स–मि। उ॰। इ–मि। दृ॰॥३॥

+ यजौषि कृष्णाजिनं परस्य चैवात्मनश्चाहिंसार्थे इति १२.८.३.९. श्रुतेः।

यों से अथवा इन्द्रस्येति तृतीय मन्त्र से करे॥ देवस्यत्वा व्याख्यातम्
१-१०॥ अश्विनोः। त्रीणि लिङ्गोक्त देवतानि १॰ब्रा-छ॰२॰३॰आर्षी
गा॰ हे यजमान अश्विनी कुमारों के वैद्य कर्म करि तुम्हे अभिषेक
करता हूं किमर्थं कि तेज (कान्ति) के अर्थ ब्रह्म वर्च (सर्वत्र अस्खलि
त वेद वेदाङ्ग जनिता कीर्ति) के अर्थ॥ और सरस्वती के भिषक्कर्म
करि वीर्य (सामर्थ्य) के अर्थ अन्न भक्षण सामर्थ्य के अर्थ तुम्हे अभि
षेक करता हूं॥ और इन्द्र की इन्द्रिय (इन्द्रिय पाटव सामर्थ्य) करि बल
(सामर्थ्य) श्रिय (सर्व समृद्धि) यश (कीर्ति) के अर्थ तुम्हे अभिषेक कर
ता हूं॥३॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा। सुश्लोक सुमङ्ग
ल सत्य राजन्॥४॥

का॰१९॰४॰१९॰ अध्वर्यु यजमान का स्पर्श करे॥ प्रजापत्या गायत्री
उष्णिग्गर्भा। हे यजमान तू प्रजापति है श्रेष्ठ प्रजापति है (प्रजापति ब
हुत हैं तिन्हों में तू उत्तम है। प्रजापति पद प्राप्ति के अर्थ तुम्हे मैं अभिषे
क करता हुआ इति शेषः और प्रजापति के भाव के अर्थ अभिषे॰॥
का॰१९॰४॰२०॰ अध्वर्यु करि स्पर्श किया यजमान सुश्लोकादि संज्ञ
कों नरों को बुलावे॥ हे सुश्लोक (शोभन है कीर्ति जिसकी) यहां आ
इति शेषः। शोभन मङ्गल (उदय) जिसका है सुमङ्गल तू यहां आ।
हे सत्यराजन् (अविनाशी राजा जिसका) आ॥४॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि। राजा मे
प्राणोऽअमृतꣳसम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम्॥५॥

का०१९.४.२१. यजमान यथालिङ्ग अङ्गों को स्पर्श करे॥ इन्द्रशरी
रावयव देवताकं पञ्चर्चं तत्र तृतीया गायत्री अन्त्याच्यवसाना म
हापङ्क्तिः तिस्रोऽनुष्टुभः। अभिषिक्तो यजमान इन्द्ररूप आत्मानं
सर्वात्मकं पश्यन्नाह। मेरा शिर शोभा हो वा वर्नें मेरा मुख यश हो
केश और मुख के लोम दीप्ति हो। राजा (दीप्यमान) मेरा प्राणवायु अ
मृत हो। चक्षु इन्द्रिय भलेप्रकार राजमान हो। श्रोत्रेन्द्रिय विविध
राजमान हो॥५॥

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः। मोदाः
प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः॥६॥

मेरी रसनेन्द्रिय कल्याणरूपा हो। वागेन्द्रिय पूज्यमाना हो। मनको
धरूप हो क्रोधफल देवे। क्रोध स्वेनैव राजमान हो न तु कुतश्चित्प्रतिह
न्यतामित्यर्थः+। अङ्गुलियें आनन्दरूपा हों। अङ्गानि प्रकृष्टहर्ष
हों। मेरा मित्र रिपुनाशक हो॥६॥

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्। आत्मा क्ष
त्रमुरो मम॥७॥

मेरी बाहू बलवन्त होवें। और इन्द्रिय स्वकार्य क्षम हों। मेरे हस्त स
त्कर्म कुशल सामर्थ्यवन्त होवें। मेरा आत्मा (अन्तरात्मा) और हृद
य त्राण करनेवाला हो॥७॥

पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी। ऊरूऽअरत्नी
जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः॥८॥

मेरा पृष्ठ प्रदेश देशवत्सर्वाधार हो। मेरा उदर कन्धे कण्ठदेश क

+ तदुक्तम् शक्तिरहितोऽपि कुप्यति मानं चोद्वहति सेवकजनो ऽपि अपथ्यरहितोऽपि काम्यजनातिविधिविडम्बयितुमिति।

टि ऊरू अरत्नी (हस्त देशों) और जानुएँ और सब अन्य अङ्ग प्रजा वत् पोष्य हों ॥ ८॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मे ऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः। जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥९॥

मेरी नाभि ज्ञानरूप हो। गुदा ज्ञान जनित संस्काराधार हो। भसत् (स्त्री प्रजनन) प्रजा रूप सुभग हो (यजमान पत्नी विषय मेतत्)। मेरे वृषण सम्भोग जनित सुख के भोक्ता हों। मेरा लिङ्ग सर्वदा भोगासक्त हो। जङ्घाओं और पैरों (सर्वाङ्गों) से धर्म रूप होने सेही प्रजा विषेंराजा प्रतिष्ठित हूं (धर्म प्रतिष्ठित ही राजा होता है) ॥९॥

प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु। प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावा पृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥ १०॥

का॰ १९॰४॰२३ आसन्दी से यजमान उतरे। विश्वदेव देवत्यं यजुः। मैं क्षत्रिय जाति में प्रतिष्ठा युक्त हूँ। देश, अश्वों गौओं, अङ्गों (करपादाद्यवयवों) चित्त, पञ्च प्राणों, समृद्धि, स्वर्ग, पृथिवी, यज्ञ (ज्योतिष्टोमादिकों) विषें प्रतिष्ठा युक्त हूं। क्रियापादावृत्तिः फलातिशय द्योतनार्था। क्षत्रिय देशयोः प्रतिष्ठा वशीकरणम्। गो ऽश्व प्रतिष्ठा तत्प्राप्तिः प्राणाङ्ग प्रतिष्ठा नीरोगत्वम्। आत्मप्रतिष्ठा निराधित्वम्। पुष्टप्रतिष्ठा धनसमृद्धिः द्यावा पृथिव्योः प्रतिष्ठोभयलोककीर्तिः यज्ञे प्रतिष्ठा यज्ञकरणम्। वश्यविश्वः पशुमान्निराधिव्याधिः श्रीमान्यज्ञ कर्त्ताच भवे

यमिति भावः ॥२०॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः। बृहस्पतिपु-
रोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा ॥२१॥

का॰१९॰५॰८॰ शस्त्रसमाप्तिविषें वषट्कृते त्रया इति कण्डिका द्व्यात्म
क मन्त्र करि त्रयस्त्रिंश वसाग्रह को होमें॥ देव देवत्या त्र्यवसानापङ्क्तिः॥
एकादश देवता वक्ष्यमाण देवताओं सहित मुझे रक्षा करें। कैसे हैं के
त्रयाः (तीनि हैं अवयव जिन्हों के॰ एकादश त्रिगुण) ते कितने यह
आपही कहिता है कि त्रयस्त्रिंशाः (तेतीस है संख्या जिन्हों की ते) शो
भन है धन जिन्होंका। तथा बृहस्पति पुरोहित है जिन्होंका। तथा स
विता देवता की आज्ञा में वर्त्तमानाः। दीप्यमान है॥२१॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यय
ज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः
पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्का
रैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु
भूः स्वाहा ॥२२॥

कथमवन्तु तत्राह। विश्वदेवदेवत्यमाशीर्लिङ्गम् यजुः। प्रथमा देवा
द्वितीयों सहित मुझे रक्षा करें॰ द्वितीया तीसरों सहित॰ तृतीयाः सत्यस
हित॰ सत्य यज्ञ सहित॰ यज्ञ यजुओं सहित॰ यजुएँ सामों सहित॰ सा
म ऋचाओं स॰॰ ऋचाएँ पुरोनुवाक्याओं स॰॰ पुरोनुवाक्याएँ या
ज्याओं स॰॰ याज्याएँ वषट्कारों स॰॰ वषट्कारा आहुतिओं॰॰ एवं ती
नि प्रकार एकादशसंख्य देवताओं करि उत्तरोत्तर पालिता आह

ति यें मेरे अभिलाषों को पूरण करें भूः भुवनं भूः हुतं इदं स्वाहासुहुतमस्तु ॥ १२ ॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्म ऽआनतिरागतिः। माᳪंसं म ऽउपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म ऽआनतिः ॥ १३ ॥

का॰ १९. ५. १०. यजमान ग्रह शेष को प्रत्यक्ष उपहव पूर्वक भक्षण करै॥ लोमत्वगादि देवतानुष्टुप्। मेरे लोम प्रयतिः (जैसे मेरे लोमोंमें प्रयति (प्रयत्न) वर्ते है तैसे उद्यामी। मेरी त्वचा आनति (अर्थात् मेरी त्वचाको देख आते और मन करते हैं प्राणी। मेरा मांस उपनति (उपनमन करते हैं प्राणी जहां। मेरे अस्थि वसु धन रूप मेव। मेरी मज्जा आनति (आनमन्ति भूतानि यत्र। उपलक्षण मेतत् अर्थात् मेरी सप्त धातुएँ जगद्वशी करण समर्था हैं ॥ १३ ॥

अ॰ ८ यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳪंहसः ॥ १४ ॥

इत उत्तरमवभृथः॥ का॰ १९. ५. १३. अवभृथेष्टि करि के यद्देवा इत्यादि वरुण नो मुञ्च इत्यन्त १८. अ॰ सार्धकण्डिका चतुष्कात्मक मन्त्र से मासर कुम्भ को जल में तारे ॥ अग्निवायु सूर्य देवत्यानि तिस्रोऽनुष्टुभः कूष्माण्डीसंज्ञाः। दीप्यमाना हे देवताओ हमनें जो देवताओं का हेडन (अपराध) किया। अग्नि तिस पाप से मुझै पृथक् करै। और सब पापों (विघ्नों) से छुडावै ॥ १४ ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनाᳪंसि चकृमा वयम्। वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳪंहसः ॥ १५ ॥

यदि चेत् दिन में यदि रात्रि में हमने पाप किया। वायु तिस पाप और सब पापों (विघ्नों) से मुझे छुडावे॥१५॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न ऽएनाᳫंसि चकृमा वयम्। सूर्य्योमा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳫंहसः॥१६॥

यदि जाग्रदवस्था में यदि स्वप्न अवस्था में हमने पाप किया। सूर्य तिस पाप से और सब पाप से मुझे छुडावे। श्रुत्यात्वन्यथा व्याख्यातम्। जागते में मनुष्यों प्रति जो पाप किया सोते में पितरों प्रति जो पाप किया तिस से मुझे छुडावें॥१६॥

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्य्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि॥१७॥

लिङ्गोक्त देवतं यजुः। ग्राम में बन में सभा में पक्षपातादि जो पाप इन्द्रिय विषय में परापवाद परनारी दर्शनादि जो देवता विषय में वा शूद्र में वैश्य में जो पाप हमने किया। आवयोः- दोनो पत्नी यजमान में से एक का भी कर्म विषय में जो पाप धर्म लोपोप लक्षण तिस पाप का तू नाशक है। कुम्भ प्रतिवचनम्॥१७॥

यदापो ऽअघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनो ऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि॥१८॥ + य-च। अ०। अ-हि। इ०॥१८॥

यदापः जो जल इति विशेषः अन्यद्व्याख्यातम् ६-२२॥ का॰१९-५-१४॰ पूर्ववत् अवभृथेत्यादि ओषधीरुताप इत्यन्त मन्त्र करि सुण

मनुष्यों में जागरित मिथ्या॰ प्रति॰१२॰५-२-२॰

कुम्भ का जल में मज्जन है॥अवभृथव्याख्यातम् ३.४८ इत्यादि विशेषः अयक्षि अवायक्षि-नाशितवान् हूं॥१८॥

समुद्रे ते हृदय मप्स्वन्तः संत्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥१९॥

समुद्रे तेद्विपदा विराट्छन्दः आपो देवता व्याख्यातम् ८.२५॥का॰१९.५.१५.यजमान अवभृथ प्रदेश से दो विक्रम उदीची में चलकर सुमित्रिया इति जलाञ्जलि को ले जिस दिशा में कि रिपु है तिस प्रति दुर्मित्रिया इति सींचे॥व्याख्यातम् ६.२२॥१९॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणे वाज्य मापः शुन्धन्तु मैनसः॥२०॥

का॰१९.५.१६.जलस्थावेव जायापती सौमिकावभृथवत् स्नान करि के कर्मकाल में धारण किये वस्त्र को जल में डालें॥अब्देवत्यानुष्टुप्। जल मुझे पाप से पृथक् करें। तत्र दृष्टान्तत्रयमाह-द्रुपदादिवेति-द्रु तरु तन्मय पद(पादुका)तिस से छूटा जैसे पादुका दोष से असम्बद्ध होता है। और जैसे स्वेदयुक्त स्नान करते मल से पृथक् होता है। जैसे पवित्र ऊर्णके छन्ने करि तवाया आज्य तिनका तातें कीटपतङ्ग से पृथक् होता। तैसे जल मुझे शुद्ध करें॥२०॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥२१॥

का॰१९.५.१७.सोम बदिति उद्वयमिति मन्त्रेण जल से निष्क्रमण

है॰ अपाम सोम ममृता अभूमेति ऋग्वे॰८॰४८॰३॰ जप करते सन्
वों का त्रिपस्तु देश विषें आगमन है॥ सूर्य देवत्यानुष्टुप् प्रस्कण्वदृष्टा॥
हम तमो बहुल इस लोक से निकले। कैसे हैं हम उत्कृष्ट स्वर्ग को देख
ते किंच देवलोक में सूर्य को देखते हुए ज्योति ब्रह्म रूप को प्राप्त भए॥२१॥

अपो ऽअद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि। पयस्वा
नग्न ऽआगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धने
न च॥२२॥

का॰१९॰५॰१८॰ यजमान आहवनीय को उपस्थान करे॥ अग्निदेव
त्या पङ्क्तिः। हे अग्ने तिस मुझे ब्रह्मतेज पुत्रादि प्रजा और सुवर्णादि ध
न करि भले प्रकार जोडि जो कि मैं आप (जल) को प्राप्त हूं और जो मैं रस
(जल) करि संसृष्ट हूं और जो मैं उदकवान् होकर आया हूं। तिस मुझे
वर्च (तेज) आदि से जोडि॥२२॥

एधो ऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजो ऽसि तेजो मयि धेहि।
समाववर्त्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः। समु विश्वमिदं ज
गत्॥ वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वा
हा॥२३॥ + ए-हि। अ॰स-हि। इ॰। स-त्। उ॰वे-हा। ऋ॰॥२३॥

का॰१९॰५॰१९॰ यजमान एधो ऽसीति मन्त्र करि समिध लेके समिद
सीति मन्त्रेण अग्नि में धारण करे॥ समिद्देवत्ये यजुषी। हे समित्
तू दीपिका है हम तेरे प्रसाद से धनादि करि वृद्धि को प्राप्त हों॥ हे
समित् तू प्रकाशाती (दीपती) है और तेज है (तत्संयोगे नाग्नेर्ज्वलना
त्) अतः मुझ विषें तेज धारण करि॥ का॰१९॰५॰२०॰ यजमान स

क् गृहीत आज्य को कण्डिका शेष करि होमें॥ समाववर्त्ति आग्नेयी अनिरुक्त गायत्री॰ वैश्वानरज्योतिरिति यजुः। पृथिवी समाववर्त्ति नाशहोतीहै। और उषाः दिन भी समाववर्त्ति एवं सूर्यः समा॰ समस्तजगत् स०॥ अ॰ मैं वैश्वानर समस्तनरों के अर्थहित॰ परमात्मा तद्रूप ज्योति ब्रह्म एवहोंउँ। वडे कामों मनोरथों कोप्राप्त होंउँ। भूः स्वाहा भुवन॰ सत्ता मात्र ब्रह्म तिस के अर्थे सुहुतहो॥२३॥

अ॰ ३ अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतं च श्र- द्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो॰ अहम्॥ २४॥

का॰ १९.१.११. सौत्रामणि की आदि में आदित्येष्टिको समाप्त करि त्रिपश्वर्थे आहवनीय दक्षिणाग्नि विहरण करि और अन्यन्वाधान ब्रह्मवरण करिके आहवनीयविषें यजमान तीनि समिधाएँ प्रति ऋचासे आधान करताहै॥ अग्नि देवत्यास्तिस्रो॰ नुष्टुभः आश्वतराश्विदृष्टा। हे अग्ने व्रतों(कर्मों)के पालक मैं तुम विषें समिध होमताहूं तिस समिदाधान करि दीक्षित हो व्रत(कर्म) और श्रद्धा(विश्वास)को पहुंचताहूं तुम्हे दीपन करताहूँ॥२४॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥२५॥

पुण्य(पवित्र)लोक को जानूं (लोकमप्राप्तानां तल्लोकज्ञानं नभवतीति स्वलोक गमनं प्रार्थ्यते। वोह कौन कि जिस लोक मैं ब्राह्मणजाति और क्षत्रिय जाति वियोग रहित तिष्ठेहैं कैसे ब्रह्म क्षत्र- कि सम्यञ्चौ भले प्रकार अञ्चते। और जहां अग्नि सहित देवता

चरते हैं। अर्थात् सदाचार विप्राः और क्षत्रियाः जहां जाते हैं तिस देवलोक को प्राप्त होंउं ॥२५॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥२६॥

जिस लोक में इन्द्र और वायु भले प्रकार अञ्चते चरते हैं और जहां सेदि (अन्नाप्राप्तिजनित दुःख) नहीं विद्यमान है तिस लोक को पवित्र जानता हूं ॥२६॥

अꣳशुना ते ऽअꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो ऽअच्युतः ॥२७॥

सुरा देवत्यानुष्टुप् सुरासंर्जने विनियुक्ता तत्सूत्रं सौत्रामण्यारम्भे १९॰१॰ लिखितम् ॥ हे सुरे तेरे अंशु एँ (भाग) सोम के अंशुओं के साथ जुडें तेरे पर्व सोम के पर्वों के साथ युक्त हों। तेरे गन्ध अनश्वर और रस सोम आलिङ्गन करें किमर्थं कि मद के लिये (सुरायुक्त सोम पीने में मदजनक होता है इस हेतु दोनों का योग हो ॥२७॥

सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च। सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥२८॥

सुरादेवत्यैन्द्र देवत्या वानुष्टुप् पूतसुरादाने विनियोग उक्तः का॰ १९॰२॰७॰ ॥ बभ्रु वर्ण सुरा के मद में स्थित सुराकरिमत्त इन्द्र किं त्व किंत्व यह कहता है- किस की तू इत्यादिक अतिरस्कार करने वाले बचन कहता है। जिस सुरा को ऋत्विज पात्र में सींचते

पय आदि करि परिसींचते ग्रहों से उत्सींचते और गोवाल पवित्रहि रण्यादि करि पवित्र करते हैं॥२८॥

धानावन्त करम्भिणमपूपवन्त मुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्वनः॥२९॥

इन्द्र देवत्या गायत्री विश्वामित्र दृष्टा स्मार्ते श्रवणाकर्माणि धाना होमे विनियुक्ता प्रातःसवने पुरोडाश पुरोऽनु वाक्यापि। हे इन्द्र तू प्रातःकाल में हमारे पुरोडाश को सेवन करि कैसे को कि धानावन्त करम्भिण अपूवन्त उक्थिन (शस्त्र॰स्तुतियुक्त) को॥२९॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्र हन्तमम्। येन ज्योति रजनयन्नृता वृधो देवं देवाय जागृवि॥३०॥

का॰१९·५·२· अध्वर्यु करि प्रेषित ब्रह्मा इन्द्र देवत्या बृहती ऋचा विषे साम गावे॥ इन्द्र देवत्या बृहती नृमेध पुरुष मेध दृष्टा। हे मरुतः (ऋत्विजः) इन्द्र के अर्थ तुम बृहत्साम गाओ कैसे बृहत् कि वृत्र (पाप वा दैत्य) प्रति अतिशयेन गन्तारको। ऋत (यज्ञ) को बढाते देवता वा ऋत्विज जिस साम गान देवता (इन्द्र) के अर्थ तेज को उत्पादन करते कैसे तेज कि देव (दीप्यमान) जागृवि (जागरणशील॰ अविनश्वर को। सामगानेनेन्द्र स्तेजस्वी जात इत्यर्थः॥३०॥

अध्वर्यो॰अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र॰आनय। पुनाहीन्द्राय पातवे॥३१॥

का॰१९·२·११· ब्रह्मा पय को अनुमन्त्रणकरै। ऐन्द्री गायत्री। हे अध्वर्यो तू सोम को कम्बलमय छन्ने मेंसींचि। कैसेको कि पाषाणों

करि अभिषुन। ततः गलाय इन्द्र के पानार्थ॥३१॥

अ॰४ यो भूताना मधिपतिर्यस्मिँलोका अधि श्रिताः। य ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम्॥३२॥

का॰१९॰४॰२४॰ अभिषेक से पहिले सीसेन तन्त्रमिति १९॰८०षोडश ऋचाओं करि द्वात्रिंशत् वसाग्रह हैं तिन्हों के संस्रव करि यजमान का अभिषेक किया फिरि अध्वर्यु भूतानामिति सार्धकण्डिकात्मक मन्त्र करि त्रयस्त्रिंशतमे वसाग्रह को आर्षभ स्वर से ग्रहण करै॥आत्मप्रवादा ग्रह देवत्या नारायणीया कौण्डिन्य दृष्टा पङ्क्तिः॥ जो परमात्मा भूतों (जराय्वादि चतुर्विधों) का अधिपति और जिसमें भूरादि लोका अधिश्रिताः अर्थात् यदाधारा हैं। महान् (सर्वोत्कृष्ट) जो महत्तत्त्व प्रमुख तत्त्वगण का ईश (नियन्ता) वर्ते है। हे ग्रह मैं तिस परमात्मा करि तुझै ग्रहण कर्ता हूं मयि परमात्म भावमापन्ने मयि विषये मैं तुझै ग्रहण कर्ता हूं॥३२॥

उपयाम गृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽएष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥३३॥ † उ-सो। अ॰। ए-मो। इ॰॥३३॥

उपयाम॰ यजु सा-त्रि॰ व्याख्यातम् १०॰३२ इ॰ एष ते यजु॰ आद्य॰ सादने विनियोगः। ग्रह देवते द्वे यजुषी॥३३॥

प्राणपा मेऽअपान पाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे। वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः॥३४॥

का॰१९॰५॰४॰ सशस्त्र ग्रह होम के अनन्तर शेष को सब ऋत्विज दो कण्डिकाओं करि सूंघते हैं॥ ग्रह देवत्ये द्वे अनुष्टुबुपरिष्टाद्बृहत्यौ। हे ग्रह तू मेरे प्राणों का पालक अपान का पालक है नेत्रों का रक्षक और मेरे श्रोत्रों का रक्षक है। मेरी वागिन्द्रिय का विश्व भेषज (सब औषध जिस से वोह वाणी औषध उन्मार्ग निवृत्ति और जपादि में प्रवृत्ति तिस का कर्ता) है। और मन का विलायक (विषयों से निवर्त करि आत्मा विषें स्थापक आत्मज्ञानप्रद॰ यद्वा चक्षुरादिकों के साथ विलायक॰ सब इन्द्रियों के साथ मन का जोडने वाला) है॥३४॥

अश्विनं कृतस्य ते सरस्वति कृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य। उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि॥३५॥

हे ग्रह आज्ञा पाया में तुझे भक्षण करता हूं। कैसे तेरे का कि अश्विनी कुमारों करि दृष्ट तिस का। सरस्वती करि दृष्ट का भले प्रकार त्राण कर्ता इन्द्र करि दृष्ट का। ऋत्विजों करि आज्ञा दिये का॥३५॥

॥इत्याध्वर्यवं समाप्तम्॥

अ॰१ समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः।
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार॥३६॥

इतः सौत्रामणिकं हौत्रमुच्यते॥ का॰१९॰६॰१२॰ समिद्ध इन्द्र इत्याद्या एकादश ऋचाएँ प्रथम ऐन्द्र पशु की आप्रियें प्रयाजयाज्या हैं॥ आङ्गिरस दृष्टा एकादशाप्रियः त्रिष्टुभः तासां क्रमादेना देव

ता इध्मः तनूनपान्नराशंसो वाइडः बर्हिः द्वारः उषासानक्ता दैव्यौ होतारौ तिस्रो देव्यः त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहा कृतयः एता देवताः यथा योगमिन्द्र विशेषण त्वेन व्याख्येयाः अनुवाकेनानेनेन्द्रः स्तूयते। इन्द्र ने वृत्र(मेघ वा दैत्य) को मारा और दुरः(द्वारों, मेघके स्रोतों) को विवृत किया वा दैत्यपुरद्वारों को शून्य किया। कैसा है इन्द्र कि समिद्ध संदीप्त मुख प्रातःकाल में आगे प्रसरती एँ दीप्ति एँ आदित्यात्मा करि पूर्वदिशा को करता। और तेतीसो ३३ देवताओं सहित वर्धमान। वज्रपाणि॥३६॥

नराशंसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम। गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः॥३७॥

एकस्यामृचि नाराशंसस्तनूनपातौ। प्रचेता(कर्मज्ञाता यजमान) तिस इन्द्र को प्रतिदिन यजता है। तिस किसै कि जो ऐसा नराशंस(नरों ऋत्विजों करि समन्तात् शस्त्रों करि स्तुति करियै है यद्वा नरास्मिन्नासीनाः शंसन्तीति निरु॰ ८.६ यास्कोक्तेः नराशंसो यज्ञः तद्रूप वा तद्वान्। यज्ञस्य धाम(यज्ञ के स्थानों को जानता) एकः प्रति मिमान इत्यनेन सम्बध्यते परो यजतीत्यनेन। तथा शौर्यवान्। तनूनपात् तनोति(विस्तारता है सृष्टि को तनूः प्रजापति मरीचि तिसका नपात् नाती कश्यपात्मजः यद्वा शरीरको जठराग्नि करि रक्षा करता अग्नि तद्रूप वा तनोति भोगान् गौ तिसका पौत्र घृत गौसे पय होता है तिससे घृत अर्थात्

घृतरूप वा घृतवान्। गोभिर्वपावान् (पशुसम्बधिनी करिवपावान्) मधुस्वादोपेत घृतकरि समञ्जन् हवियें कोभक्षणकरता हिरण्यैः पश्ववदानभूत करि चन्द्री सुवर्णमस्यास्तीति॥३७॥

ईडि॒तो दे॒वैर्हरि॑वाँ२॥ऽअभि॒ष्टिरा॒जुह्वा॑नो ह॒विषा॒ शर्ध॑मानः। पु॒र॒न्द॒रो गो॑त्र॒भिद्वज्र॑बाहु॒रा या॑तु य॒ज्ञमुप॑ नो जुषा॒णः॥३८॥

एवंविधि इन्द्र आवै कैसा कि देवताओंकरि पूजित (स्तुत) हरी अश्वों वाला। अभिष्टिः (समन्तात् याग जिसका वा अभिस्तूयते) हवि निमित्त करि द्विजोंसे आह्वयमान। अति वलायमान। गोत्रभिन्त् (भूमि को वृष्टिसे त्राण करनेवाले मेघ तिन्हें वृष्टिके अर्थ भिन्दता वा गिरियों को भिन्दता। वज्रधरः। हमारे यज्ञको उपसेवमानः॥३८॥

जु॒षा॒णो ब॒र्हिर्हरि॑वान्न॒ इन्द्रः॑ प्रा॒चीन॑ꣳ सीदत्प्र॒दिशा॑ पृथि॒व्याः। उ॒रु॒प्र॒थाः प्रथ॑मानꣳ स्यो॒नमा॑दि॒त्यैर॒क्तं वसु॑भिः स॒जोषाः॑॥३९॥

इन्द्र हमारे प्रागभव प्रदेश प्रति बैठै कैसा इन्द्र कि हरी अश्वों युक्त। पृथिवी (देवयजनभूमि) को प्रदिशता। विस्तीर्ण ख्याति जिसकी प्रीति सहित संतुष्ट। बर्हिओं करि सेवमान कैसी बर्हिएँ कि विस्तीर्ण· सुखरूप· आदित्यों वसुओं और मरुतों करि अक्त+ चिक्कनी की हुई॥३९॥

इन्द्रं॒ दुरः॑ कव॒ष्यो॒ धाव॑माना॒ वृषा॑णं यन्तु॒ जन॑यः सु

+ वर्हिः स्तीर्णं मन्त्रे आदित्यादीनामुक्तत्वात् क्रमसंबर्हिः स्तीर्णं हविषा घृतेन समादित्यै वसुभिः संमरुद्भिरक्तम्॥१०.२१॥

पत्नीः। द्वारो देवी रभितो विश्रयन्ताꣳ सुवीरा वीरं प्रथमा
ना महोभिः॥४०॥

दुरः (यज्ञ गृह द्वार) इन्द्र को प्राप्त हों। कैसे इन्द्र को कि वर्षने वाले। अ
र। कैसी गृह द्वार कि कवष्यः (शब्द करती वा शब्द करते हैं मनुष्य
जिन्हों में। तथा धावमाना (आदर युक्ताः। तथोपमानम्। जनयः सुप
त्नीः (शोभना साध्विएँ पत्नी यज्ञ में सहाधिकारिणीयें स्त्री जैसे लु
प्तोपमानम् ते जैसे धावमाना प्राप्त होती हैं तैसे द्वार इन्द्र को प्राप्त हों
किंच इन्द्र को प्राप्त हो कर द्वारो देवी सर्वत्र विहृता हों। कैसी हें द्वारः कि
शोभन वीर (ऋत्विज लोग हैं जिन्हों में) वडे तेजों वा उत्सवों सें विस्तृ
ता होतीएँ॥४०॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्र
म्। तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः
सुरुक्मे॥४१॥

उषा आदित्यप्रभा और नक्ता रात्रि इन्द्र को (करि) यजतः (संगतः सं
गम) करें। कैसे इन्द्र कि महान्त सर्व देव पूज्य को। कैसी हें उषासा
नक्ता कि वडी उदक वालियें अवश्यायवतिएँ शोभन दुग्धाएँ वि
चित्र रूप करि योजती हें इन्द्र को तत्र दृष्टान्तः जैसे पट (वस्त्र) के अ
र्थ विस्तीर्ण सूत्र को रूप करि कोई विनता है। तथा शोभन कान्ति
जिन्हों की॥४१॥

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होतारा विन्द्रं प्रथमा सु
वाचा। मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हे

विषो दधात:॥४२॥

यह अग्नि और यह वायु मध्यम ते देवताओं के दोनों होतार वाय्वग्नी प्राची दिशा में वर्तमान ज्योति (आहवनीयाख्य) को हवि करि वढाते। कैसे होतार कि बहुधा यज्ञ की निर्मिमाण करते। मनुष्य होता से आदि हैं। वाचा जिन्हों की ते। यज्ञ के मूर्धन् (प्रधानाङ्ग में) इन्द्र को स्थापन करते॥४२॥

तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः। अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः॥४३॥

सरस्वती इडा भारती तीनों देवियें पय हवि करि के यज्ञ को विघ्नरहित करें इति शेष:। पुष्टियुक्ता:। साध्वी स्त्री (पत्नीएँ) जैसे इन्द्र को सेवमाना:। दीप्यमानाएँ सर्वगामिनीएँ॥४३॥

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि। वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान्॥४४॥

त्वष्टा यज्ञ के शिरस्थानीय आहवनीय विषें देवताओं को भोजन करावै। कैसा त्वष्टा कि यशस्वि सेन्द्र इन्द्र के अर्थ बहुत बल को धारण कराता। तथा अपाक: नहीं विद्यमान है प्रशास्य जिससे। वर्षने वाला वर्षनेवाले इन्द्र को पूजता। भूरिरेता: (सर्वजनक:) त्वष्टा+ करता है +। ऐसा त्वष्टा देवताओं भोजन करावै॥४४

+ त्वष्टा त्वक्षतेः करोत्यर्थस्येति निरु० ८.१३ यास्कोक्तेः॥

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न

देवः । इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥४५॥

वनस्पति यूपदेवता मधु(रस) और घृत करि यज्ञ को आस्वादन वा भोजन करावे कैसा वनस्पति कि अवसृष्टोन (आज्ञप्त) जैसे पाशों करिके अपने में पशुओं को योजता । तत्र दृष्टान्तः जैसे शमिता पशुओं कों पाशों करि अपने में योजता है । तथा हविर्षोंकरि इन्द्र के उदर को पूरण करता ॥४५॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् । घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥४६॥

इन्द्र और स्वाहाकृतयः देवाः तृप्त हों । किस उद्देश्य करि कि स्तोकानामिन्दुं प्रति स्तोका (वपासम्बन्धि घृतविन्दुएँ) तत्सम्बन्धि जो इन्दु (सोम) तिस प्रति तिस उद्देश्य करि वपास्तोकों में सोमत्व आरोपण करिये हैं अर्थात् वपास्तोक रूप सोम को उद्देश करि इन्द्र और स्वाहाकृतयः तृप्त हों । कैसा इन्द्र कि शूर वृषायमाण शत्रुओं प्रति गरजता वर्षनेवाला शत्रुओं को अभिभवता । कैसे स्वाहाकृतयः कि घृतविन्दु करि हीमन से मोदमानाः (संतुष्टाः) अमरणधर्माणः (नहीं है मरण जिन्हों का ते ॥४६॥

अ॰६ आयात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः । वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥४७॥

का०१८।ई।१३। और वपा की आपात्विन्द्र इति ४७ पुरोऽनुवाक्या आनइन्द्रो दूरादिति ४८ याज्या। पशुपुरोडाश की आन इन्द्रो हरिभिरिति ४९ पुरोऽनुवाक्या। त्रातारमिन्द्रमिति ५० याज्या। पशुयाग में इन्द्रः सुत्रामेति ५१ पुरोऽनुवाक्या। तस्य वयमिति ५२ याज्यासूत्रार्थः॥ सप्तत्रिष्टुभ इन्द्रदेवत्याः+। आद्या वामदेवदृष्टा‡। इन्द्र हमें रक्षा करने को समीप आवे। यहां आकर देवताओं के साथ भोजन कर्ता हो। कैसा इन्द्र कि शूर(विक्रान्त। हम लोगों करि स्तुत किया। वर्धमान। जिस इन्द्र के पहिले तविष्यः(बल॥ वृत्र वधादयः स्वर्ग जैसे कहियें हैं अर्थात् स्वर्ग जैसे स्तुति करियै है तैसे इन्द्र के बल स्तुति करियें हैं। और जो इन्द्र हमारे क्षत्र को पुष्ट करता है कैसे क्षत्र कि अभिभवनशील(शूर) को। वोह इन्द्र आवे इतिसम्बन्धः॥४७॥

आन॒ इन्द्रो॑ दूरादा न॑ आसादभिष्टि॒कृद॑वसे यासदु॒ग्रः। ओजि॑ष्ठेभिर्नृ॒पति॒र्वज्र॑बाहुः सं॒गे स॒मत्सु॑ तु॒र्वणि॑ः पृत॒न्यून्॥४८॥

इन्द्र हमारा दूरप्रदेश(द्युलोक)से आवे। और निकट प्रदेश से आवे। क्या करनेकि हमारे रक्षण को। कैसा इन्द्र कि मनोरथ प्रदः। उत्कृष्ट ओजिष्ठेभिः(तेजस्वितमैर्बलैर्युक्तः। नरों का पालक। बज्र बाहुओं में जिसके। तथा संगे समत्सु। संगसमदिति द्वे संग्राम नामनी निघं०२।१७। संगे(एक संग्राम में)समत्सु(बहुत संग्रामों में) अर्थात् दोनों में शत्रुओं को हनन करता॥४८॥

आन॒ इन्द्रो॒ हरि॑भिर्या॒त्वच्छा॑र्वाची॒नोऽव॑से॒ राध॑से च।

‡ तिसृणां वामदेवऋषिः इतिहलायुधः।

॥ तविषीति बलनाम तवतेर्वा वृद्धिकर्मण इतिनिरु०९।२५। यास्कः।

+ ऋ० ४।२०।१। ... [illegible]

तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाज
सातौ ॥४९॥

इन्द्र अभि मुख होकर हम को अभि आयातु (आवै। किन्होंकरि कि हरी अश्वों। किसलिये कि रक्षण के अर्थ और धन के अर्थ और आकर वज्री इन्द्र हमारे इस यज्ञ प्रति अन्न सम्भजन निमित्त में तिष्ठे। कैसा कि मघवा (धनवान्) विरप्शी (महान् ॥४९॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे-हवे सुहवꣳ शूर
मिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳस्वस्ति नो मघ
वा धात्विन्द्रः ॥५०॥

गर्गदृष्टा +। रक्षितार इन्द्र को प्रीणयितार इन्द्र को हव-हव (आह्वान-आह्वान वा यज्ञ) में सुहव (सुखेन आहूयत ऽ इति सुहव) को शूर को शक्र (समर्थ) को पुरुहूत (बहुतों करि आहूत) को ईदृश इन्द्र को बुलाता हूं। मघवा (धनवान्) इन्द्र बुलाया हुआ हमारे अविनाश स्थापन करे। इन्द्र शब्दा वृत्तिरादरार्थो ॥५०॥

+त्रिष्टुभौ गार्गीस्तम्भिःइन्द्रदेवत्या।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ २॥ ऽ अवोभिः सुमृडीको भव
तु विश्ववेदाः। बाधतां द्वेषो ऽ अभयं कृणोतु सुवीर्य
स्य पतयः स्याम ॥५१॥

इन्द्र अन्नों करि शोभन सुखकारी होवै। कैसा इन्द्र कि सुत्रामा (भले प्रकार त्राण करता है। स्ववान् (धनवान्। विश्ववेदा (सब धन जिसका वोह। और वोह इन्द्र दौर्भाग्य को निवर्त करे। और अभय करै। किंच इन्द्र के प्रसाद से हम सुवीर्य धन के स्वामी होवें

शोभनवीरों पुत्रादिकों के अर्थ हित तिस सुवीर्य के ॥५१॥

तस्यं व॒यꣳ सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म। स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॑ २॥ऽ इन्द्रो॑ऽ अ॒स्मे॑ऽ आ॒राच्चि॒द्द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु ॥५२॥

हम तिस इन्द्र के शोभन बुद्धि मे हों भद्र (कल्याणरूप) शोभनमन में हों अर्थात् इन्द्र हमारे विषें सुमति और मन भद्र करै। कैसे इन्द्र के कि यज्ञसम्पादक सुरक्षक धनवान् वोह इन्द्र हमसै दूर में वर्तमान दौर्भाग्य को अन्तर्हित करि के पृथक् करै ॥५२॥

आ म॒न्द्रैरि॑न्द्र॒ हरि॑भिर्या॒हि म॒यूर॑रोमभिः। मा त्वा॒ के चि॒न्नि य॑म॒न्विं न पा॒शिनो॑ऽति॒ धन्वे॑व॒ ताँ २॥ऽ इ॑हि ॥५३॥

विश्वामित्र दृष्टा बृहती। आमन्द्रैः एवेत् अनयोर्विनियोगाभावः॥ हे इन्द्र तू हरी अश्वों करि आ कैसें करि कि गम्भीरनाद मयूर केसे रोम जिन्हों के तिन मयूरसम वर्णों करि। किंच कोई दुष्टलोग आते हुए तुम्हें न बाँधें तत्र दृष्टान्तः पाशहस्ता व्याधिलोग जैसे पक्षियों को बाँधते हैं तैसे तुम्हें न बाँधें और जे परिपन्थी लोग होंवें तिन्हें अतिक्रमण करि आ कैसें कि धन्व-निरुदक देशः जैसे पान्थ मरुदेश को अतिक्रमण करि चलते हैं तैसे आ ॥५३॥

ए॒वेदिन्द्रं॒ वृष॑णं॒ वज्र॑बाहुं॒ वसि॑ष्ठासो अ॒भ्य॑र्चन्त्य॒र्कैः। स नः॑ स्तु॒तो वी॒रव॑द्धातु॒ गोम॑द्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५४॥

वसिष्ठदृष्टा। वसिष्ठापत्यानि मुनयः अर्कों (मन्त्रों) से एवमेव इ

न्द्र को पूजते हैं कैसे इन्द्र को कि वर्षितार वज्रबाहु तिसे वोह इन्द्र स्तुति किये सन् पुत्रयुक्त गोसंयुक्त धन हमारे अर्थ देवें। एवं पाद त्र येणेन्द्रं स्तुत्वा ऋत्विज आह हे ऋत्विजः तुम अविनाशी करि स र्वदा हमें रक्षा करो॥ ५४॥

अथ होत्रं त्रिपशोः

अ० ७ समिद्धो ऽअग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः। दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम्॥ ५५॥

का० १९। ६। १५। समिद्ध इत्याद्याद्वादश अनुष्टुप्छन्दस्काः त्रिपशुकी आप्रि यें (प्रयाजयाज्याएँ) हैं॥ विदर्भिर्दृष्टा अश्विसरस्वत्येन्द्र देवत्या आ प्री संज्ञा द्वादशानुष्टुभः॥ अश्विनावध्वर्यू देवानामिति तौ प्रति हो ता प्राह- हे अश्विनी कुमारो अग्नि दीप्त (हविके जलाने समर्थ) है घर्म (प्रवर्ग्य) तप्त है विविधं राजमान सोम अभिषुत है किंच धेनुगुण की प्रीणयित्री सरस्वती ने सोमको दुहा है कैसे सोम को कि शुद्ध इ न्द्र के अर्थ हित बलकरनेवाला। एतावता यज्ञ सम्पत्ति है तुमभी आओ इतिभावः॥ ५५॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान्॥ ५६॥

दोंनो अश्विनी कुमार सरस्वती मधुकरि लोकों को दुहते हैं। कैसे अश्विनी कुमार कि शरीरों के रक्षाकरनेवाले वैद्य। क्व सति। सोमे ऽभिषुते सति पूरते हैं। किंच अश्विनी कुमार सरस्वती इन्द्रके अर्थ वीर्य को यज्ञ मार्ग करि प्राप्त करते हैं॥ ५६॥

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम्। अधाता मश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥५७॥

सरस्वती नराशंस(यज्ञ)सहित इन्द्र के अर्थ सोम और सुराकन्द-धारण करते हुए किंच वैद्यों अश्विनी कुमारों के सोमे अभिषुते सति मधुर औषध धारण करते हुए ॥५७॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम्। इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः ॥५८॥

इन्द्र को बुलाने वाली सरस्वती और अश्विनी कुमार इन्द्र के अर्थ इन्द्रियें (चक्षुरादीनि) देते और वीर्य(सामर्थ्य) देते हुए पशुओं सहित अन्न देते हुए दध्यादि और धन देते हुए ॥५८॥

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता। सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥५९॥

इन्द्र के पानार्थ अश्विनी कुमार सुरा सहित अभिषुत अमलिन सोम को नमुचि असुर के सकाश से आहरण करते हुए और सरस्वती तिसही सोम को बर्हिषा स्तरणार्थ सहित आहरण करती हुई ॥५९॥

कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः। इन्द्रो नरोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥६०॥

अस्यामृचित्रयो नकारश्चार्थाः। अश्विनी कुमारों सहित सरस्वती और इन्द्र दोंनो द्यावा पृथिवी ओं के सकाश से कामों को दुहते हुए द्वारों और दिशाओं के सकाश से दुहते हुए कैसी द्वारें कि सछिद्राः अवकाशवत्यः ॥६०॥

उषासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः। सं जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥६१॥

हे अश्विनी कुमारो रविप्रभा और रात्रि सरस्वति सहित दिवस और सायंकाल में इन्द्र को वीर्यों सहित जोडते हुए। कैसे हैं ते कि एकमती। शोभन हैं रूप जिन्हों के ऐसी उषा कृष्णा रात्रिः ॥६१॥

पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति। दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥६२॥

हे अश्विनो दिवस में हमें रक्षा करो हे सरस्वति रात्रि में हमें रक्षा करि। हे देवसम्बन्धि होता और वैद्य और अश्विनो सोमे अभिषुते सति एकी होकर तुम इन्द्र को रक्षा करो ॥६२॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा। तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥६३॥

तीनों देवियें और अश्विनौ सुरा सहित सोम को इन्द्र के अर्थ अभिषवन करते हुए। कौन तीन्यों कि सरस्वती भारती और इडा कैसी हैं कि तीनि प्रकार करि स्थिताः इति शेषः सरस्वती मध्यस्थाना भारती द्युस्थाना इडा पृथिवीस्थाना कैसे सोम को कि पटुत्व कर मदजनक को ॥६३॥

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती। इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳरूपमधुः सुते ॥६४॥

अश्विना हमारे सरस्वती और त्वष्टा प्रयाज देवता सोम के अभिषुत होनें पर इन्द्र में वस्तुओं को स्थापन करते हुए किन वस्तुओं

कों कि श्रोषध श्रौर मधु रूप श्रोषधकीर्ति लक्ष्मी नानाविधरूप को॥६४॥

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता। कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती॥६५॥

वनस्पतिः प्रयाज देवः स्तुति हुए सन् काल- काल में सुरा सहित कीलाल (अन्नरस) को इन्द्र के अर्थ दुहते हुए। किंच सरस्वती अश्विनो सहिता धेनु होकर इन्द्र के अर्थ मधु दुहती हुई॥६५॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता। समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु॥६६॥

हे अश्विना मासर करि परिस्रुत सहित श्रौर गो प्रभृतिपसुत्रोंसहित अभिषुत सोम को श्रौर मधु इन्द्र विषें तुम आरोपण करते हुए हे स्वाहाकृतयः प्रयाज देवाः तुम सरस्वती सहित इन्द्र विषेंसोम मधु आरोपण करते हुए॥६७॥

अ॰८ अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती। आशुक्रमासुरादसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे॥६७॥

का॰१९-६-१६-१९॰ अश्विनेत्याद्यास्तिस्रस्तिसृणां वपानां क्रमाद्याज्यापुरोऽनुवाक्याः तत्प्रकारमाह आश्विन वपायागे अश्विनेति ६७॰ अनुवाक्या॰ यमश्विनेति ६८॰ याज्या॰ सारस्वत वपायागेयमश्विनेति ६८॰ अनुवाक्या॰ तमिन्द्रमिति ६९॰ याज्या॰ ऐन्द्रवपायागे तमिन्द्रमिति ६९॰ अनुवाक्या॰ अश्विनेति ६७॰ याज्येति सूत्रार्थः॥ एकेकाश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः॥ अश्विना श्रौर सरस्वती ने बुद्धि करिके नमुचि असुर के सकाश से इन्द्र के अर्थ इत

नी वस्तुएँ आहरण कीं हैं कितनीकि अमलिन हविः इन्द्रिय(वीर्य) और मघ(महनीय)वसुधन ॥६७॥

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन्। स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥६८॥

अश्विना और सरस्वती हवि करिके जिस इन्द्र को बढाते हुए वोह इन्द्र नमुचि असुर सहित मघ(महनीयबलमेघ)को विदारणकरता हुआ ॥६८॥

तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती। दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥६९॥

कर्माङ्गभूता पशवः गोमेषाजाः दोनों अश्विनौ और सरस्वती सहित एकी हो यज्ञमें हवि और वीर्य करि पुष्ट करते तिस इन्द्रको अभ्यनूषत(बढाते वा स्तुत करते हुए ॥६९॥

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः। स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥७०॥

का॰१९॰६॰१८॰ य इन्द्र इति तिस्र स्त्रयाणं पशुपुरोडाशानां याज्यानुवाक्याः पूर्ववत् य इन्द्रे ७०॰ सविता ७१॰ इत्यैन्द्रस्यानुवाक्या याज्ये॰ सविता ७१॰ वरुणः क्षत्रम् ७२॰ इति सावित्रस्य ते॰ वरुणः क्षत्रम् ७२॰ य इन्द्रे ७०॰ इति वारुणस्येति सूत्रार्थः ॥ प्रत्येकमिन्द्र सवितृ वरुण देवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः। सविता वरुण भग इति जे तीनों देवता इन्द्र विषें वीर्य को स्थापन करते हुए। वोह हवियोंका स्वामी शोभन त्राण कर इन्द्र यजमान को इष्ट दान करि सुखी

करै॥७०॥

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे। आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम्॥७१॥

सुत्रामा इन्द्र नमुचि असुर के सकाश से जो वसु धन और बल वीर्य ग्रहण करता हुआ सविता वरुण और भग पशु पुरोडाशमन्त्रदेवाः तिस नमुचि से लाये वस्वादि को यजमान के अर्थ देवें कैसे यजमान कि हवि देनेवाले के अर्थ॥७१॥

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम्। सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत॥७२॥

वरुण सविता और सुत्रामा इन्द्र यज्ञ(सौत्रामणी)को आशत(भक्षण करते वा व्याप्त हुए। कैसे हैं ते कि क्षत्र (त्राण सामर्थ्य) वीर्य को भाग्य सहित लक्ष्मी और यश सहित बल को यजमान में स्थापन करते हैं तहां वरुण क्षत्र और वीर्य को स्थापन करता है सविता भग प्रिय को सुत्रामा यश और बल को इति विभागः॥७२॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम्। हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्धयन्॥७३॥

का०१९.६.१९. अश्विना गोभिरिति तिस्रो हविषां याज्यानुवाक्याः पूर्ववत् अश्विना ७३. ता नासत्या ७४. इत्याश्विनपशुयागे पुरोऽनुवाक्यायाज्ये, ता नासत्या ७४ ता भिषजा ७५ इति सारस्वते. ता भिषजा ७५. अश्विना ७३. इत्यैन्द्रे इति सूत्रार्थः॥ अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः। अश्विना और सरस्वती इतने

पदार्थोंकरि इन्द्र और यजमानको बढाते हुए। किन्होंकरि तवाह गो प्रभृति पशुओं इन्द्रियपाटव अश्वों (दक्षिणरूपों) वीर्य (मनःसामर्थ्य) बल (शरीरदार्ढ्य) और पशु पुरोडाशकरि। इन्द्रका वर्धन तृप्ति और यजमान का वर्धन धन पुत्र पश्वादि पुष्टि॥७३॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा। सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत॥७४॥

वे नासत्या (नहीं हैं असत्य) अश्विना और सरस्वती कर्मों (सौत्रामण्यादियागों) में हमें रक्षाकरें हे इन्द्र तूभी हमें रक्षाकर। कैसे नासत्या कि हिरण्य करि उपलक्षित है मार्ग जिन्हों का वे अर्थात् जिस मार्ग में चलते हैं तहां सुवर्णही है। शोभन हैं रूप जिन्होंके और नराकार हैं। कैसी सरस्वती कि हविष्मती॥७४॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती। स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम्॥७५॥

वे प्रसिद्ध वैद्य अश्विनौ और वोह प्रसिद्धा सरस्वती वोह प्रसिद्ध वृत्रहा इन्द्र (कल्पान्तरप्रभव) इन्द्र (एतत्कल्पप्रभव) के अर्थ वीर्य को धारण करता हुआ यद्वा इन्द्रही दातृपात्ररूपकरि बहुधा होताहै देवानामचिन्त्यशक्तित्वात्। कैसे वैद्य कि शोभन हैं कर्म जिन्होंके। कैसी सरस्वती कि साधु दोहना। कैसा वृत्रहा कि शत क्रतु बहुकर्मकर्ता वा शत संख्या क किये हैं अश्वमेध जिसने॥७५॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत॥७६॥

का॰१९॰ई॰२०॰तीनों पयो ग्रहों और सुराग्रहोंकी युवमिति पुरोऽनुवाक्या पुत्रमिवेति याज्या॥ द्वे अश्वि सरस्वत्यैन्द्र देवत्ये ऽनुष्टुप्त्रिष्टुभौ। हेअश्विनौ हेसरस्वति तुम नमुचि असुर में वर्तमान सुरामय ग्रह कोसाथहीविविधपान करतेहुए कर्म में इन्द्रको समन्तात् रक्षाकरो॥७६॥

पुत्रमिव पितरांवश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः। यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्॥७७॥

इयंव्याख्याता१०॰३४॰॥७७॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः। कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये॥७८॥

का॰१९॰ई॰२१॰पशोः सम्बन्धिनिस्विष्टकृद्यागमें यस्मिन्नश्वासइति पुरोऽनुवाक्या आहव्यग्नऽइतियाज्या॥ द्वे अग्नि देवत्ये जगतीत्रिष्टुभौ। हे अध्वर्यो तिस अग्निके अर्थ मनो बुद्धि शुद्धे करो कैसेअग्नि के अर्थकि कीलालपे(अन्नरसकोपीनेवाले के। सोम पृष्ठ(सोमकी आहुतियें होमियें हैं तिसके। शुभमति करनेवालेके। तिस किसके कि जिस अग्निमें एते पशवः अवसृष्टाः(अवदाया वदाय चतुरवत्तेन निःक्षिप्ताः) तथा आहुताः(आदायादायहुताः। के पशवः कि अश्वाः ऋषभाः उक्षाणः(सेचनसमर्थावृषाःवा। वशाः(वन्ध्याः) मेषाः(अजाः। जिसमें एते पशवोहुताः तिसके अर्थ मनःशुद्धि करो इति हानुर्वाक्यम्॥७८॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः।
वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं
बृहन्तम्॥७९॥

हे अग्ने तेरे मुखमें हवि सर्वतः होम करतेहुए संततहोमेदृष्टान्तःस्रुची व घृतम् जैसे स्रुचामें घृत सर्वदास्थित चम्वा(अधिषवण चर्म)मेंसोम जैसे सर्वदा स्थित तैसे मैंनें तेरे मुखमें हवि होमा। हे अग्ने सो-तू हमारे विषें ये वस्तुएँ स्थापन करि। कौन कि वाजसनिं(अन्न काभोग।सुपुत्र युक्तधनं सर्वलोक प्रसिद्ध यश वा सोमदे(यशोवै सोमो राजेतिश्रुतेः॥७९॥

अ०७९ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। वाचेन्द्रो
बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्॥८०॥

का०१९-६-२६-७-१-३ त्रयस्त्रिंशावशा ग्रहसादन के अनन्तर अध्वर्यु का होता के पुरस्तात् प्रतिगरार्थ उपवेशन कहा तदाह प्रतिगरिष्यति अध्वर्यो-पुर उपविष्टे सति अध्वर्यु शोंसावो ३ मिति बुलाकर अश्विना तेजसा चक्षुः इत्येकादशार्चे शास्त्रको शंसा करै प्रथम और अन्तकी दोनों ऋचाएँ तीनि-तीनिवार शंसनीयहैं मध्यस्थ तीनों तृचोंकी आदिमें आहावः करियेंहैं॥ प्रथमाश्विसरस्वत्येन्द्र देवत्यानुष्टुप्।अश्विनौ तेजसहित चक्षु इन्द्रियं इन्द्रके अर्थ देतेहुए सरस्वती प्राण सहित वीर्य इन्द्रके अर्थ॰ और इन्द्र कल्पान्तरीण) बलसहित वाचा इन्द्र(एतत्कल्पोत्थ) के अर्थ॰एवंअश्विसरस्वन्तीन्द्रा इन्द्रके अर्थ॰॥८०॥

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना। वर्ती रुद्रा नृपाय्यम्॥८१॥

गृत्समदहष्टा अश्विदेवत्यास्तिस्रोगायत्र्यः। हे नासत्यौ अश्विना हे रुद्रौ (शत्रुओं के रुलाने वाले ओ) तुम मार्ग करि नृपाय्य (यज्ञ †) प्रति आओ क्याकरि के कि गो युक्त अश्वयुक्त धनलेकर॥८१॥

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः॥८२॥

हे वृषण्वसू (वृष्टि ही है धनजिन्हों का यद्वा वृष्टि करि के लोकों को-स्थापन करते हैं) हे अश्विनौ दुःशंस (दुष्ट-अपवाद को शंसा करता शत्रुमर्त्यः (मनुष्यःपरः-असम्बद्धः अन्तरः (सम्बद्धः स्वकीयो ऽपि ईदृशो मर्त्यः जिस इन्द्र को पराभव करने नहीं समर्थ है॥८२॥

ता न आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम्। धिष्ण्या वरिवोविदम्॥८३॥

हे धिष्ण्यौ (धिषणाग्निरूपौ वा धातारौ) हे अश्विना तुम हमारे धन को लाओ। कैसे धन को कि पिशंग संदृश (पीतवर्ण-सुवर्ण तथा वरिवोविदम् (धन को प्राप्त होता॥८३॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः॥८४॥

मधुच्छन्दोदृष्टाः सरस्वती देवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः। सरस्वती हमारे यज्ञ को वष्टु (कामयताम्-चाहै-जो जिसे इच्छा करता है वोह तिस प्रति आता है अर्थात् हमारे यज्ञ प्रति आवे। कैसी सरस्वती कि पा

नृपा॰ नृभिः पीयते सोमो येन तन्नृपाय्यम्।

† आद्यापाद निचृद्गायत्री

वयित्री। वाजों (अन्नों) करि वाजिनीवती (अन्न हैं विद्यमान जिसमें
वोह वाजनी - यज्ञक्रिया - वाजनी विद्यमान है जिससे वोह वाजि-
नीवती - यज्ञाधिष्ठात्री। धी (कर्म) करि वसु (धन) जिससे वो धि-
यावसु ॥ ८४ ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे
सरस्वती ॥ ८५ ॥

सरस्वती यज्ञ को धारण करती है। कैसी कि सूनृताओं (प्रियसत्य
वचनों - वेदमन्त्रीशब्दों) की प्रेरयित्री। शोभना बुद्धिओं की चेतने
वाली ॥ ८५ ॥

महो ऽअर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा
विराजति ॥ ८६

सरस्वती केतु (कर्मों वा प्रज्ञा) करि बडे उदकों को चेताती (सब भू-
मि में वृष्टि कराती) है। किंच सर्व जन्तुओं की बुद्धि प्रकाश करती है
तिसे स्तुति करता हूं ॥ ८६ ॥

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना
पूतासः ॥ ८७ ॥

मधुच्छन्दो दृष्टा इन्द्र देवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः। हे चित्रभानो (नाना
विधा दीप्तियों वाले) हे इन्द्र तू आ। क्योंकि ये सोम अभिषुत हैं। कैसे
हैं ये कि तुझे कामना करते। तथा अण्वीयों (अंगुलीयों) करि और त-
न (दशापवित्र) करि शोधन किये। अर्थात् शोधिताः सुताः सोमा-
स्तु हमें पीवे यह चाह करते हैं इस हेतु आ ॥ ८७ ॥

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः॥८८॥

हे इन्द्र अपनी बुद्धि करि प्रेरित हुआ (अनन्य प्रेरित) यहां आ। कैसा है तू कि विप्रजूतः (मेधावियों करि सेवितः) किमिति आगन्तव्यमिति चेत् कि सोमाभिषववान् यजमान के ब्रह्माणि (हवियों) के समीपमें वाघतः (ऋत्विजः) वर्तें हैं इति शेषः अर्थात् ऋत्विज हवि लेके स्थित वर्तें हैं॥८८॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः॥८९॥

हे हरिवन् हे इन्द्र तूतुजानः (त्वरमाणः + सन्) तू हवियोंप्रति आ। और जाके सोमे ऽभिषुते सति हमारा चनः (अन्न * सोमरूप हवि) उदर में धारण करि॥८९॥

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा। इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु॥९०॥

इतिसꣳहितायां नवमोऽनुवाकः॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसꣳहितायां दीर्घपाठे विꣳशोऽध्यायः॥२०॥

अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्यानुष्टुप्। अश्विनौ मधुर स्वाद सोम को पियें। कैसे अश्विनौ कि सरस्वती से प्रीतियन्तो। किंच सुत्रामा (भले प्रकार रक्षा करनेवाला) वृत्रहा (वृत्रहन्ता) ऐसा इन्द्र और अश्विनौ सरस्वती मधुर सोममय हवि को सेवन करें॥९०॥

* ऋत्विङ्नामसु निघं॰ ३.१८ + क्षिप्रनाम निघं॰ २.१५

* अन्ननाम निघं॰ २.७

इतिगिरिधरभाष्येनवमोऽनुवाकः९

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाश्रीमन्महाप्रयाग
यविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजोदेविकानन्दन
पतिगिरिप्रसादेनरचितेश्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येसौत्रामणी
करणेसेकासन्धादिहोत्रान्तवर्णनोनामविंशोऽध्यायः॥२०॥

हरिःओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकंद्विरूपंच साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददायकंकृष्णंब्रह्मरूपंपरंस्तुमः२१

अ०१ इमं मे वरुण श्रुधी हवमुद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके॥१॥

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायोवेदार्थदीपके

याज्यादिप्रैषणान्तोयमेकविंशः समीर्यते२१

का०१९।७।१२। अवभृथेष्टि में वारुण एक कपाल पुरोडाश की इमं मे पुरोऽनुवाक्या तत्त्वा याज्या॥ इंवरुण देवत्य गायत्री त्रिष्टुभौ शुनःशेप दृष्टे। हे वरुण तू मेरे इस आह्वान को सुनि। और आज के दिन में हमें सुख करि क्योंकि मैं तुझे चाहता हूं। कैसा हूं मैं अपनी रक्षा को तुझे इच्छा करता॥१॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो

हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मान आयुः प्रमोषीः॥२॥

व्याख्याता १८.४९.॥२॥

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्॥३॥

का॰१९.१७.१४. अवभृथेष्टिमें ही अग्निवरुणयागविषें पुरोऽनुवाक्यायाज्ये ३.४.॥ अग्निवरुणदेवत्ये त्रिष्टुभौ वामदेवदृष्टे। हे अग्ने तू हमारे प्रति वरुण देवताका क्रोधनिवर्तकरि। किंच सब दौर्भाग्य हमारे सकाशसे दूरिकरि। कैसा तू कि अपने अधिकारको जानता। अतिशयेनयष्टा। वह्नितमः (हवियोंका वोढा। शोशुचानः (अत्यन्त प्रकाशता॥३॥

सत्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि॥४॥

हे अग्ने सो तू इस उषाके व्युष्टिकाल (इसदिन) में ऊती (अवन) रक्षण) करि हमारा रक्षक और नेदिष्ठ (समीपतम) हो। यद्वा अत्यन्तमवतमः। किंच रराणः हवियें देते सन् हमारे वरुणको पूजि ततः सुखकरं हविभक्षण करि। किंच हमारा सुहवः (स्वाह्वान) हो॥४॥

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम। तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिं

ꣳ सुप्रणीतिम्॥५॥

का॰१४॰७॰१५॰ आदित्यं चरुं यक्ष्यमाणो निर्वपत्यादित्यमीजान इत्यादावन्ते चादित्यचरुरुक्तः तिसकी सुत्रामाणमिति द्वे पुरोऽनुवाक्या महीमूष्विति याज्या॥ अदिति देवत्या त्रिष्टुप्। हम रक्षा करने योग्य अदिति (अदीना-देवमाता) को बुलाते हैं। कैसी अदिति कि बडी को। सुब्रतां (शोभन कर्मों) की माता (निर्मात्री) को। ऋत (यज्ञ) की पत्नी (पालयित्री) को। तुविक्षत्रा (बहु क्षत्रा-त्राणशीला) को। जरारहिता को। बहुगमनशीला को। सुशर्माण (शोभन आश्रय वा सुख जिसका तिस) को सुप्रणीति (शोभना प्रणीति-प्रणयन-भजन जिसका तिस) को॥५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्। दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये॥६॥

अदिति देवत्या गयप्लावहृष्टा+। देवसम्बन्धिनी नाव यज्ञरूपा को स्वस्ति (कल्याण-अविनाश) के अर्थ हम आरोहण करें यज्ञ करि के स्वर्ग को जावें। कैसी नाव कि सुत्रामा। पृथिवी-विशाला। द्या (स्वर्गरूपा-स्वर्गहेतुभूता। अनेहस (क्रोधरहिता। यद्वा लुप्तोपमनम् पृथिवी जैसे पालयित्री स्वर्ग जैसे क्रोधरहिता। साधुसरणभूता। अदिति। सुप्रणीति (साधुप्रणेत्री। स्वरित्रा (साधु केन्दुवाला-प्रयाजादयोऽरित्रस्थानीयाः ‡। अनागस (अनपराधा) अस्रवन्ती (अच्छिद्रा-दोषरहिता) ईदृशी नावको आरोहण करूं॥६॥

+ गयप्लातगायस्फान

‡ अरित्र शब्दः कोन्दुवालवाचकः अरित्रं केनिपातक इत्यभिधानात् अमर॰१॰२॰२७।

सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राᳯस्वस्तये॥७॥

स्वर्गसम्बन्धिनी देवत्या गायत्री। नौर्वै सर्व एव यज्ञो नौः स्वर्ग्येति श्रुतेः स्वर्ग्या नौर्यज्ञएव। शोभना नाव यज्ञरूपा को अविनाश(संसार सागरोत्तरण)के अर्थ आरोहण करूं अर्थात् यज्ञकरूं। कैसी को कि अछिद्रा। अनागस(सर्वेष्टदा। बहुकेन्दुवाला ऋग्यजुःसाम करि॥ स्मार्ते नावारोहणे विनियोगोऽस्या ऋचः तथा च पारस्कर गृ॰३·१६·॥७॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजाᳯसि सुक्रतू॥८॥

का॰१५·७·१६· अवभृथ सैं निकलि मैत्रावरुणी पयस्या करियजै इति जो पयस्या तिसकी आनो मित्रा वरुणेति पुरोऽनुवाक्या प्रबाहवेति याज्या॥ मित्रावरुण देवत्या गायत्री विश्वामित्रदृष्टा। हे मित्रावरुणौ देवौ हमारे गव्यूति(यज्ञमार्ग)को घृतकरि तुम सींचो यद्वा गवि(पृथिवीमें ऊतिं(अवनहेतुभूतक्षेत्रको)घृतैः(शुद्धोदक करि) सींचो। किंच हे सुक्रतू(शोभन हैं कर्म जिन्हों के हे सुकर्माणौ)मधु करि लोकों को सींचो॥८॥

प्रबाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन। आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा॥९॥

मित्रावरुणदेवत्या त्रिष्टुप् वसिष्ठदृष्टा। हे मित्रावरुणौ हे तरुणौ॰

(च्छिन्नजरसो)हमारे चिरजीवन जीवनविघ्न निवारणकेअर्थ बाहुओं
प्रसारो। किंच हमारे गव्यूति(क्षेत्र)को घृत जल करि सींचो। तुम्हारे
निष्पन्नधान्य करि यज्विन मुझे जनपद में तुम समन्तात् सुनाओ
यह देओ यही में चाहताहूँ अर्थात् लोक में मुझे कहो। किंच तुम मेरे
इन आह्वानों को अर्थात् स्तुति के पूर्वोक्त करो॥९॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रव स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्म द्युयवन्न
मीवाः॥१०॥

वाजे-वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देव
यानैः॥११॥

१९·७·१७· पयस्या में वाजिनयाग है तहां शंन इति पुरोऽनुवाक्या
वाजे-वाजऽ इति याज्या॥ व्याख्याते ९·१६·१८·॥१०॥११॥

अ०२ समिद्धोऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः। गायत्री छ
न्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः॥१२॥

का०१९·७·१९· वपोधस पशु में समिद्धोऽअग्निरित्याद्या एकादश
ऋच आप्रियें प्रयाजों की याज्या॥ एकादश आप्री अनुष्टुभः स्व
स्त्यात्रेयदृष्टा वयोधा इन्द्रो देवता। अग्नि गायत्री छन्द और गौ ये
तीनों इन्द्र में इन्द्रिय(वीर्य)वयः(सत्त्व अन्न वा आयु)देवें। कैसा
अग्नि समिधा प्रयाज देवता करि दीप्त है और अति दीप्त है प्र
याज घृत करि इति शेषः वरेण्य(सम्भजनीय)है। कैसी गौ कि त्र्यविः

तीनि अवय अनुचरत्व करि जिसके वा † एक वर्ष छे महीने की ॥१२॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती। उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥१३॥

तनू (जल) का नपात् (नाती) अग्निः वा तनू (गौओं) का नपात् घृत प्रयाजदेवता सरस्वती उष्णिक्छन्द और गौ ये चारो इन्द्र विषें इन्द्रि॰ कैसा तनूनपात् कि शुद्ध है कर्म (व्रत) जिसका। कैसी सरस्वती कि शरीर की रक्षा करनेवाली। कैसी गौ कि दित्य हवि को वहती ॥१३॥

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवोऽअमर्त्यः। अनुष्टुप्छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥१४॥

इडा प्रयाजदेवता सहित अग्नि सोमो देवः अनुष्टुप्छन्द और गौ ये पांचो इन्द्र वि॰ कैसा अग्निः कि स्तुत्यः कैसा सोम कि अमरणधर्मा कैसी गौ कि पांच अवय अनुचर जिसके वा दो वर्ष छे महीने को ॥१४॥

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः। बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥१५॥

शोभन वर्हिः प्रयाज देवता अग्नि बृहती छन्द गौ ये चारो इन्द्रिय और वय इन्द्र में स्थापन करैं। कैसा अग्नि कि पूषण युक्त स्तीर्ण वर्हि यें जिसकी वो है अनश्वर। कैसी गौ कि तीनि वछडे अनुचर जिसके वा तीनि वर्षे की ॥१५॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः। पङ्क्तिश्छन्द इहे

† षण्मासावधिः कालोऽविः

न्द्रियं तुर्यवाड्गौर्वयोदधुः ॥१६॥

द्वारो देव्यः प्रयाज देवता महती दिशाएँ ब्रह्मादेवः बृहस्पति पङ्क्तिश्छ

न्द चारि वर्ष की गौ ये छे देवता इस इन्द्र में इन्द्रिय और वय ररवें ॥१६॥

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः । त्रिष्टुप्छन्द इ

हेन्द्रियं पष्ठवाड्गौर्वयो दधुः ॥१७॥

†द्विवचनात् उषे दिन और रात्रि †) अमर्त्याः विश्वेदेवाः त्रिष्टुप्छन्दः पष्ठ(भार)

‡महन्नामनिघ॰ ३॰ ३॰ को वहती गौये पांच इन्द्र में ॰ । कैसी उषे कि यह्वी (वडी ‡) शोभन

हैं रूप जिन्हों के ॥१७॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजो युजा ॥ जगती छन्द इ

न्द्रियमनड्वान्गौर्वयो दधुः ॥१८॥

दैव्यो होतारौ प्रयाज देवौ (यह अग्नि और यह मध्यमो वायु) जगती

छन्द अन (शकट) को वहते अनड्वानौः ये चारो इन्द्र में ॰ । कैसे होता

रौ कि वैद्यौ इन्द्र के साथ सयुजौ संयुक्तौ युजौ परस्परं संयुक्तौ ॥१८॥

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः । विराट् छन्द

इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥१९॥

इडा सरस्वती भारती तीनों प्रयाज देव्यः मरुतो विशः (इन्द्र प्र

जाः) विराट छन्द और धेनु (दोग्ध्री) गौ ये छे इन्द्र ॰ ॥१९॥

त्वष्टा तुरीपो ऽअद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना । द्विपदा छ

न्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥२०॥

त्वष्टा प्रयाजदेवः इन्द्राग्नी द्विपदा छन्द और उक्षा (सेक्ता) गौ ये

पांच इन्द्र ॰ । कैसा त्वष्टा कि तुरीप (तूर्णव्याप्त) अद्भुतः (महान्) कैसे इ

न्द्राग्नी कि पुष्टि(धनादिपोष)के बढानेवाले॥२०॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन्भगम्। ककुप्छन्दं इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः॥२१॥

वनस्पति प्रयाजदेव सविता(सूर्य)ककुप्छन्द वशा(वन्ध्या)गौ वेहत्(गर्भघातनी)गौये पांच इन्द्र॰।कैसा वनस्पति कि हमाराशमिता(सुखयिता)कैसा सविता कि भग(धन)को देता॥२१॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत्। अतिछन्दा इन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः॥२२॥

शोभनक्षत्र(क्षतत्राण जिसका)वोह वरुण स्वाहा(स्वाहाकृतिप्रयाजदेवों)सहित यज्ञलक्षण औषध इन्द्र के अर्थ करे।किंच अतिछन्दा छन्द बडा ऋषभ गौ वरुण और स्वाहाकृतयः ये चारें इन्द्रिय और वय इन्द्र विषें देवें॥२२॥

अ॰३ वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः। रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२३॥

का॰१९॰७॰२०॰ वयोधस पशु में ही छे ऋचाएँ वपादिकोंकी याज्यानुवाक्याः तत्र वपायागे वसन्तेनेति २३॰ पुरोऽनुवाक्या। ग्रीष्मेणेति २४॰याज्या। पशुपुरोडाशयागे वर्षाभिरिति २५॰ पुरोऽनुवाक्या। शारदेनेति २६॰याज्या। हृदयादियागे हेमन्तेनेति २७॰ पुरोऽनुवाक्या। शैशिरेणेति २८॰याज्येति सूत्रार्थः॥ अनुष्टुभः षट्लिङ्गोक्तदेवताः वयोधा इन्द्रो देवतेत्यर्थः। वसवो देवा इन्द्र विषें तेजसहित हवि(वपाख्य)और वय(शान्ति)स्थापन करें कैसे वसवः कि ब

सन्त ऋतु त्रिवृत्स्तोम और रथन्तर पृष्ठ करि स्तुता:॥२३॥

ग्रीष्मेण ऽऋतुना देवा रुद्रा: पञ्चदशे स्तुता:। बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधु:॥२४॥

रुद्र देवा इन्द्र में यश सहित बल हवि और वय स्थापै। कैसे रुद्र: कि ग्रीष्म ऋतु पञ्चदश स्तोम और बृहत्पृष्ठ करि स्तुता:॥२४॥

वर्षाभि ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुता:। वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधु:॥२५॥

आदित्या: देवा इन्द्र में विश प्रजा और ओजसहित हवि। कैसे आदित्या कि वर्षा ऋतु सप्तदश स्तोम और वैरूपपृष्ठ करि स्तुता:॥२५॥

शारदेन ऽऋतुना देवा एकविꣳश ऽऋभवस्तुता:। वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधु:॥२६॥

ऋभु संज्ञा देवा: इन्द्र में श्रिय हवि। कैसे ऋभव: कि शरद ऋतु एकविंश स्तोम वैराज पृष्ठ और लक्ष्मी करि स्तुता:॥२६॥

हेमन्तेन ऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुता:। बलेन शक्वरी: सहो हविरिन्द्रे वयो दधु:॥२७॥

मरुतो देवा: इन्द्र में बल सहित इन्द्रिय सामर्थ्य हवि। कैसे मरुत: कि हेमन्त ऋतु त्रिणव स्तोम शाक्वर पृष्ठ करि स्तुता:॥२७॥

शैशिरेण ऽऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशे ऽमृता स्तुता:। सत्येन रेवती: क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधु:॥२८॥

अमृता देवा: सत्यसहित क्षत्र (क्षतत्राण) हवि और वय (शक्ति) इन्द्र में स्थापन करें। कैसे अमृता: कि शिशिर ऋतु त्रयस्त्रिंश स्तोम रैवतपृ

ष्ठकरि स्नुत्ता: ॥२८॥

अ॰४ होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२९॥

का॰२९.६.२४. होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पद इत्यादयः द्वादश कण्डिकाएँ त्रिपशुकी प्रयाज प्रैषा हैं ॥ द्वादशाप्रीणां प्रयाज याज्यानां प्रैषा अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्या। होता यक्षत्समिधाग्निमित्यादि-सूक्ता ब्रूहीत्यन्ताः २९-६१ सर्वाणि यजूꣳषि इति हलायुधः २९.३० एकाधिका अत्यष्टि ४१ अ॰द्वु॰ उ॰प्रा-पं॰४८--५१ आर्ष्यो स्त्रिष्टुभः व्यवहित पदशाया २१ अष्टि ६४ धृतिः ६४ विकृति रिति महीधरः। देव्यो (देवसम्बन्धि होता) समिधा प्रयाज देवता सहित अग्नि अश्विनी कुमार इन्द्र और सरस्वती को इडः पद (गोपद आहवनीय) विषें यक्षत् (यजतु यजे+ ॥ तिस याग में अज और धूम्र (मेष) गोधूमों (गेंहुओं) कुवलों (वेरों) और शष्पों (अङ्कुरित व्रीहियों) सहित औषध होता है इन्द्र के अर्थ इति शेषः कैसा औषध कि मधुर तेजः प्रद इन्द्रिय सामर्थ्य प्रद। किंच ते अश्वि सरस्वतीन्द्रा दैव्य होता करि इज्यमानाः सन्तः पय मदिरा सहित सोम घृत और मधु को पियें हे होतः (मनुष्य होतः) तू भी अग्न्यादिकों के अर्थ आज्य को दे ॥२९॥

+ गोपदे स्थापयत इत्यर्थः गोपदे इडायां सोमं करोति

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेष-

जं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्य
स्य होतर्यज ॥३०॥

दैव्यो होता तनूनपात प्रयाजदेव सरस्वती अश्विनौ और इन्द्रकोय
जै। तत्र यागे अवि(अज) और मेष रसवता यज्ञमार्ग करि आत्मा-
को लाते सन् वदरीफलों इन्द्रयवों तोक्मों (अङ्कुरितव्रीहियों वा य-
वों) सहित वीर्यकर औषध होताहै। अश्वि सरस्वतीन्द्रा दैव्य[illegible]
करि हूज्यमान पय आदि को पियें हे होतः तूभी आज्य को दे ॥३०॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं
मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य
वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥

दैव्यो होता नराशंस प्रयाज देवसरस्वती को और भिषज अश्विनीकुमारों
के रथ को यजै कैसा रथ कि सुवर्णमयः +। तहां सुरा सहित न[illegible]
(किएवः) मेषः तीनों पशुओं की वपा वदर इन्द्रयव और तोक्मा[illegible]
सहिता इन्द्रका वीर्यकर भेषहो। अश्व्यादयः पय आदीनि पियें[illegible]
होता आज्य को दे। कैसा नराशंस कि पालक॥ द्वितीयोभेषजश[illegible]
आर्षः ॥३१॥

+ रथश्चयामो ऽश्विनारेवतङ्कुमक्ष आयुधं वाहनं
वाविसुनौ यशोहृ इश्वतां नमेव नत्सुनंविद्या
नशामो बहुधाहिमा॥

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं ब[illegible]
न वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं [illegible]
वैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परि[illegible]
घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

देव्यो होता इडा प्रयाज देवताकोसरस्वती इन्द्र और अश्विनौ कोयजैक्या करिकैकिऋषभ और गौ(धेनु) और बल कारि इडादिकों को वढातायजै। कैसा होता कि ऋत्विजों करिस्तुत इडादि कौंको बुलाता। तत्र यवोंक कन्धु ओं और लाजा ओं सहित मधु और मासर(ओदनकानिःस्राव) इन्द्र के अर्थ वीर्यकर औषध होताहै। अश्वि सरस्वतीन्द्रा होत्रेज्य माना पय आदीनि पियें और हे होतः तूयजि॥३३॥

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुहऽइन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३३॥

दैव्यो होता ऊर्णाजैसे म्रदीय वर्हि प्रयाज देव को वैद्यौ सत्य रूपौ अश्विनौ और सरस्वती को यजे। तत्र शिशुमती अश्वा(वडवा)भिषक् धेनुः और भिषक् इन्द्र के अर्थ औषध दुहती(पूरती)है अश्वादयो दक्षिणा दीयन्ते। ते पय आदीनि पियें होता यजि॥३३॥

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३४॥

देव्यो होता द्वारः प्रयाज देवीः को और इन्द्र सरस्वती अश्विनौको यजे कैसीहै द्वार + कि दिशा ऐसे सावकाशाः कवष्यः(ससुषिर) अन एव व्यचस्वतीः (गमनवत्यः) दिक्तुल्या द्वार अश्विनीकु

+ द्वार शब्दस्य सम्प्रसारणम्

मारों सहिता सती रोदसी (द्यावापृथिवीओं) के सकाशसै इन्द्रके अर्थ दुहती कैसी रोदसी कि दुघे दुहे। और सरस्वती धेनु होके इन्द्र के अर्थ शुद्ध ज्योति और वीर्य दुहती। अन्यदुक्तम्॥३४॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३५॥

होता सुपेशसा सुरूपे उभे (रातिदिन) प्रयाजदेवौ और सरस्वती सहित अश्विनी कुमारों को यजे। और तो अश्विनौ राति और दिनमें रज (ज्योति) और चित्त श्रिय सहित मासर रूप ओषध और श्येनपत्र कान्ति को इन्द्र में जोडते। ते पय आदीनि पियें हे होतः तू यजि॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३६॥

दैव्यौ होता दैव्यौ होतारौ (अयंचाग्निरसौ च मध्यमः) इन प्रयाजदेवों को और भिषजौ अश्विनौ इन्द्रको यजे। भिषग्भूता सरस्वती भेषजों सहित शूष (बल) और वीर्य को सीसा करिके दुहती कैसी सरस्वती कि दिन राति जागरण शीला (स्वकार्यसिद्धा व प्रमत्ता) अन्यादयः पय आदी०॥३६॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रू

पमिन्द्रं हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती-
मह इन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु
व्यन्त्वाज्यस्य होत यज ॥ ३७ ॥

दैव्यो होता इडा भारती और सरस्वती तीनों प्रयाजदेवियों इन्द्र और अश्विनी को यजे। जो सरस्वती वाचा(त्रयीलक्षण)करि औषध-और द्योतमानरूप तेज और इन्द्रिय इन्द्रके अर्थ दुहती। क्याकरिके कि त्रयस्त्रिधातवः (तीनों पशुओंकरि तीनोंधातुएँ प्रधानाङ्गोपयज्ञलक्षणाः प्रकारा जिन्हों के +। कैसे पशवः कि अपसः कर्मवन्तः। तीनो पशुओं जकरि भेषजरूपइन्द्रिय महांसि इन्द्रके अर्थ दुहती। शिष्टं समानम् ॥ ३७ ॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना
भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो
भिषग्यशः सुरया भेषजꣳश्रिया न मासरं पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होत यज ॥ ३८ ॥

होता त्वष्टार प्रयाजदेवकोइन्द्रअश्विनी सरस्वती औरभिषजको यजे। कैसे त्वष्टार कि सुरेतस(शोभन वीर्य वृष्टि लक्षण जिस का वा पुरुष के रेतः कारणभूत)वर्षितार नरों के अर्थ हित कर्म जिस का तिसे। केन यजतु तदाह रभसः(सोद्यमः)भिषक्(वैद्यभूत) जोवृकों तिस करि और सुरा करि और भेज जो मासर तिस करि यजे। एवं च यागे ओज तेज जूति(वेग)वीर्य और श्री सहित यश इन्द्रमेंहों इति शेषः। शिष्टमुक्तम् ॥ ३८ ॥

होता यक्षद्वनस्पतिंᳬ शमितारᳬ शतक्रतुं भीमं न मन्युᳬ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामᳬ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९॥

दैव्यो होता वनस्पति प्रयाजदेव को व्याघ्र विशेषेणाजिघ्रति ऐसे राजन् शतक्रतु इन्द्र अश्विनौ और सरस्वती को अन्नकरि यजै कैसे वनस्पति कि यूपरूपेण पशुओं के संस्कर्तार भयंकर क्रोधात्मा को। वैद्यरूपा जो सरस्वती इन्द्र के अर्थ क्रोध और वीर्य दुहती। तेवनस्पत्यादय पय आदी०॥३९॥

होता यक्षदग्निᳬ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाᳬ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याᳬ स्वाहा मेषᳬ सरस्वत्यै स्वाहऽऋषभमिन्द्राय सिᳬहाय सहसऽइन्द्रियᳬ स्वाहाग्निं न भेषजᳬ स्वाहा सोममिन्द्रियᳬ स्वाहेन्द्रᳬ सुत्रामाणᳬ सवितारं वरुणं भिषजां पतिᳬ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजᳬ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४०॥

होता अग्निं प्रयाज देव वा आहवनीय को यजै। किंच घृत के स्तोको (बिन्दुओं) को स्वाहा (सुष्ठु आह-शोभन कहता है यजमान इतिशेषः। मेदसां-वपासम्बन्धि मेदों को भलेहैं यह पृथक् कहताहै। अश्विनीकुमारों के अर्थ छाग को शोभन कहता है। सरस्वती के अ

र्थ मेष को शोभ॰ इन्द्र के अर्थ वीर्यप्रद ऋषभको शोभ॰ कैसे इन्द्र कि सिंह तुल्य शत्रुओं के अभिभवित्र तथा बलात्मक के अर्थ। और भेषज (हितकारिण) अग्निको शोभ॰। और वीर्यप्रद सोम को शोभ॰ एतावग्नी षोमावाज्यभागौ सुआहेत्यर्थः। सुत्रामा इन्द्र को सविता को और वैद्यों के पति वरुण को शोभ॰ पशुपुरोडाशदेवताः सुआहेत्यर्थः। प्रिय (इष्ट) पाथ (अन्नभूत) और भेषज पशु देवता के वनस्पति प्रयाज देव को शोभ॰ आज्यपा देवताओं को शोभ॰†। भेषज (औषधभूत) को सेवमान अग्नि अश्वि सरस्वती और इन्द्र दैव्य होताकरि इज्यमानाः पय आ॰॥४०॥

अ॰५ होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताꣳहविर्होतर्यज। होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताꣳहविर्होतर्यज। होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताꣳहविर्होतर्यज॥४१॥ + हो-जा।अ॰।इ॰।उ॰॥४१

का॰१९.६.२२. होता यक्षदश्विनौ छागस्य. होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य. होता यक्षदिन्द्रस्येति एक कण्डिका में तीनों वपाओं की क्रम से प्रैषा हैं॥ सप्तलिङ्गोक्तदेवता ४१–४५। दैव्यो होता अश्विनौ को यजै इज्यमानौ तौ अश्विनौ छागकी वपाका मेधसम्बन्धि हवि (स्निग्धभाग) सेवन करें हे होतः यजि॥१॥ होता सरस्वति को यजै वोह मेषकी व॰॥२॥ होता इन्द्र को यजै वोह इन्द्र ऋषभकी व॰॥३॥४१॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्म

† प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः। स्वाहेति क्रियाया यजमानः कर्ता देवा ह वा ऊचुर्हन्त विजितमेवानु सर्वं यज्ञꣳ सꣳस्थापयेत्युपक्रम्य तत उत्तमे प्रयाजे स्वाहाकारेणैव यज्ञꣳ समस्थापयन्नित्याहेति श्रुतेः समाप्तिवचनाः स्वाहाकारः।

भिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज॥४२॥

का॰१९.६.२३. होता यक्षदश्विनौ सरस्वती मिन्द्रमिति चौथा ग्रहों का प्रैष॥होता अश्विनौ सरस्वती और सुष्ठु रक्षितार इन्द्र को यजे। एवंहोतारमुक्ताध्वर्यूनाह–हे अध्वर्यवः ये सोमाः तुम करि अभिषुतहैं। कैसे सोमाः कि छागों मेषों और ऋषभों से सुरामाणः (रमणीयाः वा सुरामयहैं। तथा शष्पों तोक्मों और लाजाओं करि तेज युक्त हैं। मदाः (तृप्त करते हैं। पूर्वोक्त मासर करि अलंकृत शोचिष्मन्त। पययुक्त। अमृतकल्प। प्रस्थित होमाभिमुख चलित। और मधुस्राविहैं। अश्विनौ सरस्वती और सुत्रामा वृत्रहन्ता इन्द्रति न सोमों को सेवन करें सोम्य मधु के पियें मदन्तु (तृप्त हों) व्यन्तु (राजें वा हवि भक्षण करें। हे होतः तूभी यजि॥४॥ ४२॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेताꣳ हविर्होतर्यज॥४३॥

का॰१९.६.२४. चतुर्थ प्रैषा से आगे में पठनमाना (४१) होतायक्षद

श्विनौ छागस्य हविष इत्याद्याः तीनों यथालिङ्ग आश्विनादि हविर्यो गों की प्रैषा हैं॥ दैव्यो होता अश्विनौ को यजे। तौ इज्यमानौ अश्विनौ छागसम्बन्धि हविका + भक्षण करें। किंच आज दिन में उदर मध्य से उद्धृत मेद वपारूप को भक्षण करें कथमुद्धृतं तत्राह यज्ञ के द्वेष्टाओं (असुरराक्षसों) से उठाये अर्थात् जबतक ते पराभव के अर्थ आवें तिस से पहिले ही उद्धृत को तथा गृभः पौरुषेय्याः (इडा से पहिले उद्धृत को, वपायामिडा प्रयोजनाभावात् कैसी गृभः कि पौरुषेय्याः पौरुषेयी, ऋत्विगर्थी, तिस से॥ तौ अश्विनौ निश्चय अङ्गों का भक्षण करें। कैसे अङ्गों कि घास (ग्रास) में अजरों (नवीनों, रुचिजनकों) का +। तथा यवसों अन्नों के मध्य प्रथमों मुख्यों का (मांसत्वात्, एतद्वै परममन्नाद्यं यन्मांसमिति श्रुतेः। सुमत्क्षरों (अपने आप क्षरतों। शतरुद्रियों (असंख्य हैं स्तुतियें ‡ जिन्हों की तिन बहुमन्त्रस्तुतोंका। अग्निकरि आस्वादितों अर्थात् पाककाल में पूर्व अग्निकरि सुश्रृतों। पीवोपवसनों (स्थूलाङ्ग समीपस्थित सूक्ष्मोंका। किंच पार्श्व प्रदेश कटि प्रदेश शिताम (बाहुप्रदेश) छेदन प्रदेश से। अङ्गादङ्गात् (प्रत्यङ्ग से) अवदानधर्मकरि गृहीतों अङ्गावयवों का अश्विनौ तिन्हें भक्षण करें इति पूर्वेण सम्बन्धः। एवं अश्विनौ हविः सेवन करें भक्षितावदानौ तौ करतः तृप्तिमिति शेषः पुनर्वचनमादराय। हे मनुष्य होतः त्वमपि यज॥ ५॥ ४३॥

होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नू-

+ कर्मणिषष्ठी

‡ रुद्र इति स्तोत्रनाम सुनिघं० ३.१६

नं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवꣳ सरस्वती जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४४॥

होता सरस्वती को यजे वोह सरस्वरस्वती मेष का हवि भक्षण करै अद्य मध्यतो मेद इत्यादिव्याख्या पूर्ववत्। वोह अङ्गों को भक्षण करै। एवं सरस्वती हवि सेवन करै और तृप्ति करै। इत्येक वचनानि अन्यदुक्तम्॥६॥४४॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४५॥

होता इन्द्र को यजे वोह इन्द्र ऋषभ का भक्षण करै एवं इन्द्र हवि सेवन करै इत्यन्तं पूर्ववत्॥७॥४५॥

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित। यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य

प्रसिद्ध पत्र

विदित हो कि उक्तभाष्य महद्ग्रन्थ है इस हेतु विद्वानों के घर शी पहुंचने के अर्थ २०० पृष्ठ का खण्ड बाँधा न्योंछावरि प्रथम ३) प्रति खण्ड का डाक महसूल मगाने वाले को देना होगा और उक्तभाष्य के ६ खण्ड होंगे विद्वानों को उचित है कि पूर्ण पुस्तक की न्योछावर प्रथम देवें आगें जो इच्छा शुभं भवतु॥

श्रीशुक्लयजुषि

माध्यन्दिनीयाशाखीयावाजसनेयसंहिता

श्रीव्याघ्रपादान्वयगिरिप्रसादवर्मरचित-

श्रीवेदार्थप्रदीपाख्यगिरिधरभाष्यसहिता

खण्ड ५

चिरञ्जीव गरुडध्वजेन लिखिता

वेशमेति प्रसिद्धिं गते गतिप्राचीने विश्वामित्रपुरीयनवलाख्यदुर्गस्थ

व्याघ्रपादप्रकाशाकाशमयन्त्रालये

पण्डितद्वारकानाथशर्मणोऽधिकारान्मुद्रिता

संवत् १९२९ शाका १७९४ ईस्वर १८७२

सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांꣳसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान्प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करद्देवं देवो वनस्पतिर्जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥४६॥

का॰ १९ ६ २५॰ अन्तमें पठ्यमानौ होता यक्षद्वनस्पतिमभि॰ होता यक्षदग्निꣳ स्विष्टकृतमिति क्रमेण वनस्पति याग और स्विष्टकृद्यागमें प्रैषौ॥ यूपो देवता। दैव्यो होता वनस्पति यूप को सर्वतः यजे जिस कारण वनस्पति रज्जु करिके धारण करता हुआ पशुओं को इति शेषः कैसी रज्जु कि अत्यन्त सुरूपा॥ इदानीं वनस्पतिः प्रार्थ्यते जहां अश्विनोः सम्बन्धि छागरूप हवि के प्रिय(इष्ट)धाम(स्थान)वर्तें हैं इति शेषः एवमग्रेऽपि जहां सरस्वती सम्बन्धि मेषरूप हवि के प्रिय॰॰ जहां इन्द्र सम्ब॰ ऋषभरू॰ हविप्रिय॰॰ एतेषां पशुदेवानां स्थानानि। जहां अग्नि के प्रि॰॰ जहां सोम के प्रि॰॰ एतावाज्यभागौ। जहां सुत्राम्णा इन्द्र के प्रि॰॰ जहां सविता के प्रि॰॰ जहां वरुण के प्रि॰॰ एते पशु पुरोडाशदेवाः। जहां वनस्पति के प्रिय पाथ(अन्न)हैं। अथ जहां आज्यपा देवताओं प्रयाज याज्याओं के प्रिय स्थान हैं। जहां होतुरग्नेः स्विष्टकृत के प्रि॰ स्था॰ हैं। एतान् छागादीन् पशुओं को रभीयस इव + और अत्यन्त रभार करिके और प्रकर्षेण स्तुत और समीप में स्तुत करि तिन पूर्वोक्त स्थानों में वन-

स्पति देवता उपावस्रक्षन् (स्थापन करे) वनस्पति देव एवं करत् (करे) और हवि सेवन करै हे मनुष्य होतः तू भी यजि॥४६॥

होता यक्षदग्निꣳ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छा
स्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हवि
षः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रि
या धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट्सोमस्य प्रिया
धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट्सवि
तुः प्रिया धामान्ययाड्वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड्वन
स्पतेः प्रिया पाथाꣳस्ययाड्देवानामाज्यपानां प्रिया
धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं महि
मानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सोऽअध्वरा जात
वेदा जुषताꣳ हविर्होतर्यज॥४७॥

स्विष्टकृदग्नि देवता। होता स्विष्टकृदग्नि को यजे जो अग्निः स्विष्टकृत् अश्विनी कुमारों सम्बन्धि छागरूप हवि को प्रियों स्थानों को अयाट् (अयाक्षीत् इष्टवान्) अर्थात् अवदानों को यजता हुआ एवमग्रेऽपि सरस्वती॰ मेष॰ इन्द्र॰ ऋषभ॰ एता प्रधान देवताः। अग्निके प्रियधामों को अयाट्॰ सोम के प्रि॰ एता आज्य भागो। सुत्राम्ण इन्द्र॰ सवितुः॰ वरुण॰ एताः पशुपुरोडाशदेवताः। वनस्पतेः॰ एतत्प्रधानाङ्गम्। आज्यपादेवा॰ एते प्रयाजानुयाजाः। होतुरग्नेः स्विष्टकृतः अपने ही प्रिय धामों को इष्टवान्। स्वं महिमानं (अपनी विभूतिको) इष्टवान्। किंच एज्या समन्तात् (यजने योग्या) या

मर्हा)इषः(सकामाप्रजा)आयजताम्(भलेप्रकार यजें अर्थात् या
गशीला और यागयोग्या होंवें।वोह जात वेदा(स्विष्टकृदग्नि)अध्व
रं(यज्ञों)को करे और हवि सेवन करे। हे मनुष्य त्वमपि यज॥४७॥

म॰६ देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना। तेजो न चक्षु
रक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु
यज॥४८॥

का॰१९॰७॰८॰९॰ देवं बर्हिः सरस्वतीत्याद्या एकादश कण्डिकात्रि
पशुओं के अनुयाजों की प्रैषा और याज्या होतीहैं॥एकादशानुया-
जप्रैषा अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्या। सुदेव(शोभना देवाजिसकेवोह)जो
बर्हि देव(अनुयाजदेवता)तिसबर्हि सहित सरस्वती और अश्विनो
इन्द्र में तेज दधुः(धारणकरें)न(और।)इन्द्र के नेत्रों में चक्षु इन्द्रिय +
धारणकरें।वसुवनन(धनलाभ)के अर्थ और वसुधेयस्य(वसुनिधा
नके अर्थ)अश्विसरस्वतीन्द्रा व्यन्तु(हविभक्षणकरें।हे मनुष्य हो
तः त्वमपियज॥४८॥

+ नकारः पादपूरणार्थः

देवीर्द्वारोऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती। प्राणं न वीर्यं न-
सि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४९॥

जे द्वारो देवी(यज्ञगृहद्वारो देव्योऽनुयाजदेवाः)तिनद्वारें सहित अ-
श्विनो वैद्यौ और सरस्वती इन्द्र में वीर्य और बल धारण करें इन्द्रकी
नासिका में प्राणेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय स्थापनकरें वसु वनेतिव्या
ख्यातम्॥४९॥

देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वा

चैमास्य ऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्यव्य-
न्तुयज ॥५०॥

उषासा देवी(नक्तोषसौ अनुयाजदेव्यौ)तिन नक्तोषाओं सहित अश्वि-
नौ और सुत्रामा(शोभनरक्षयाकर्त्री)सरस्वती इन्द्रमें बल को दधुः औ-
र मुखमें वागिन्द्रिय को दधुः वस्वित्युक्तम् ॥५०॥

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। श्रोत्रं न कर्ण-
योर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य
व्यन्तुयज ॥५१॥

जे जोष्ट्री सुखकी सेवन करनेवाली अनुयाज देवी द्यावा पृथिवीएं
वा अहोरात्रे +) तिन जोष्ट्रीओं सहित सरस्वती और अश्विनौ इन्द्रको
बढाते हुए कथम वर्धयन् तत्राह इन्द्र में यश दधुः और कर्णों में श्रो-
त्र इन्द्रिय को दधुः वसु० ॥५१॥

देवी ऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजाव-
तः। शुक्रं न ज्योति स्तनयो राहुती धत्त इन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२॥

जोष्ट्रो रेव देवता विकल्पः। जे देवी ऊर्जाहुती ऊर्जा(रसवती)आहुति
आहुति वा आह्वान जिन्होंका ते दुहे(कामपूरके)सुदुघे(सुदोहने)
तिन आहुतियों सहित सरस्वती और भिषजौ अश्विनौ इन्द्र को
रक्षा करते हैं कथम् तदाह ज्योतिः(तेज)इन्द्र में धारण करते हैं औ-
र स्तनों में शुक्र इन्द्रिय रखते हैं वसु० ॥५२॥

देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना। वषट्कारैः

+ सस्यंच सम्यञ्चैति कालकृथः। निरु० ९.४१.

सरस्वतीत्विषिं न हृदये मतिर्ठं होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं व
सुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५३ ॥

जो दोनों देवी जो होतारौ अनुयाज देवौ तिन होताओं और वषट्का
र सहित भिषजो अश्विनौ और सरस्वती इन्द्र में त्विषि (कान्ति) रक्खें ह
दय में मति और बुद्धीन्द्रिय दधुः वसु॰ ॥ ५३ ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवी रश्विनेडा सरस्वती। शूषं न मध्ये
नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु
यज ॥ ५४ ॥

जे तीनों देवियें भारती इडा सरस्वती तिन तीनों देवियों सहित अ
श्विनौ सरस्वती और इडा इन्द्र की नाभि और मध्य में शूष बल औ
र इन्द्रिय रक्खें वसु॰ ॥ ५४ ॥

देव इन्द्रो नराशर्ठंसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते
रथः। रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रि
याणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

नराशंस देवोऽनुयाज रूपी यज्ञः † रेत (वीर्य रूप (सौन्दर्य) अमृत जनि
त्र (उत्तम जन्म) और इन्द्रियें इन्द्र के अर्थ रक्खें। कैसा नराशंस कि इन्द्र
ऐश्वर्यवान् त्रिवरूथः तीनि वरूथ - घर - सद हविर्धान आग्नीध्र जि
सके बीह) तथा त्वष्टा जगत्कर्ता †। जिस नराशंस का रथ सरस्वती औ
र अश्विनी कुमारों से चलाइये है। वसु॰ ॥ ५५ ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्याठं सरस्वत्या सु
पिप्पल इन्द्राय पच्यते मधु। ओजो न जूतिर्ऋषभो न मा

† नरः आसिन्नासीनाः शंसन्तीति यास्कोक्तेः निरु॰ ८॰ ६॰

मं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्यव्यन्तु यज॥४६॥

वनस्पतिर्देवः हमारे को ओज(तेज)जूति(वेग)भाम(क्रोध)और इन्द्रि यें स्थापन करै जो वनस्पतिर्यूपः इन्द्र के अर्थ मधुर फलपकता फलता है इन्द्र के अर्थ फल दे। कैसा बनस्पति कि देवा जिसके हिरण्मय पर्ण पत्र-पत्ते हें अश्विनी कुमार सरस्वती जिस वनस्पति के सुपिप्पल(शोभन फल) हें। ऋषभः(पूज्यहै।वसु॰॥४६॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः। ईशायै मन्युꣳ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४७॥

हे इन्द्रः वारितीनां(जल में गति जिन्हों की तिन जलोद्भवा ओषधीओं की सम्बन्धि)बर्हिऐं तेरे सदः(सद)में अध्वर(यज्ञ)में अश्विनी कुमारें और सरस्वती करि आस्तृत हें कैसी बर्हिः कि दीप्यमान ऊर्ण जैसेकोमल अत एव सुखरूप। किंच अश्विसरस्वत्यः बर्हिओं सहित दीप्यमान क्रोध और इन्द्रिय हे इन्द्र तुम विषें ऐश्वर्य के अर्थ दधुः॥वसु॰॥४७

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत्स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपाः स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४८॥

स्विष्टकृत् (शोभनयाग को करता) अग्नि दैव: यथा यथं (जैसे जैसे जो इष्टव्य तैसे) वक्ष्यमाण देवतओं को इष्ट करे (यजै। किन देवताओंको तदाह- होतारो (अयं चाग्निरसौ च मध्यमो वायु: होतृ मैत्रा वरुणौ वा) इन्द्र और अश्विनौ वाचा (मन्त्र) करि-वाचा को सरस्वती अग्नि और सोम को यजे। किंच स्विष्टकृत् शोभनयज्ञकारी सुत्रामा शोभनरक्षक इन्द्र स्विष्ट: (सुष्टु इष्ट:) सविता वरुण और भिषगिष्ट: वनस्पति दैव: इष्ट: आज्यपा देवा: प्रयाजानुयाजा: स्विष्टा: अग्नि (अधिष्ठाता) अग्नि (भौम) करि हविर्द्वारा स्विष्ट: (सुष्टु इष्ट:। किंच होता दैव्य: स्विष्टकृत् मनुष्य होता के अर्थ यश इन्द्रिय ऊर्जे (अन्न) अपचिति (पूजा) स्वधा (पितरों के अर्थ अन्न) देवै। वसुवनन और वसुधान के अर्थ देवा हवि भक्षण करें हे मनुष्य होत: यजि॥ ५८॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशान्बध्नन्नश्विभ्यां छागꣳ सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋषभꣳ सुन्वन्नश्विभ्याꣳ सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान्त्सूपस्था अद्य ॥ ५९ ॥

का॰ १९.७.१०- अग्निमद्य होतारमित्यादि सूक्ता ब्रूहीत्यन्त: कण्डिकात्रयात्मक: सूक्तवाक में प्रैष: होताहै॥ लिङ्गोक्त देवत: सूक्तवाक प्रैष:। यह यजमान आज अग्नि होतार को वरण करता हुआ क्या करिके कि पचाने योग्य हवियों को पचाके सामान्ये नोक्त्वा विशेषमाह पुरोडाशों को पचाके अश्विनी कुमारों के अर्थ छागको बाँधिकर यूपमें इति शेष: सरस्वती के अर्थ मेषको बाँध और इन्द्र के अर्थ ऋषभको बाँ

ध तथा अश्विनौ सरस्वती और सुष्ठु रक्षक इन्द्र के अर्थ सुरा और सो
मों को सुवाय अग्नि को वरण करता हुआ॥ ५९॥

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सर
स्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षँस्तान्मेदस्तः प्रति पच
ताग्रभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः
सुत्रामा सुरासोमान्त्स्वामद्य॥ ६०॥

आज वनस्पतिर्देवः छागकरिके अश्विनी कुमारों के अर्थ सूपस्था
अभवत् सुष्ठु उपतिष्ठते सेवते सूपस्थाः छागकरि अश्विनीकुमा
रों की सेवा करता हुआ। मेषकरि सरस्वती के अर्थ सूपस्था होता हु
आ ऋषभ करि इन्द्र के अर्थ सूपस्था हुआ वनस्पति ने छाग मेष
ऋषभ करि अश्विनादिकों का उपस्थान किया। वोह कैसे जाना तहां
कहता है अश्व्यादयो मेदस्तः (मेद वपा को आरम्भ करि तिन छा
गादिकों को भक्षण करते हुए। पुनः पक्व अवदानों को प्रति ग्रहण क
रते हुए। पुनः ते पुरोडाशों कर बढते हुए। किंच अश्विना सरस्वती
और सुत्रामा इन्द्र सुरा सोमों वा सुरामय सोमों को पीते हुए॥ ६०॥

त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीतायं य
जमानो बहुभ्य आ संगतेभ्य एष मे देवेषु वसु वा
र्यायक्ष्यत इति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्मा
आ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवा
च्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि॥ ६१॥

इतिसंहितायां षष्ठोऽनुवाकः ६

इतिश्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहितायां
दीर्घपाठे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

दैव्यो होता अग्निरुच्यते। हे ऋषे (मन्त्रद्रष्टः) हे आर्षेय यजमानार्षेयैर्व्रियते +) हे ऋषियों के नपात् (पुत्र †) यह यजमान बहुभ्यः संगतेभ्य (मिलित देवताओं के अर्थ) इस हेतु अथ तुम्हें ही भले प्रकार वरण करता हुआ। यह क्याकि यह अग्नि मुरूकारि देवताओं के अर्थ देनेयोग्य धन को ग्रहण करैगा। किंच हे देव अग्ने जिन तिन दानों को देवाः देते हुए तिन दानों को इस यजमान के अर्थ इच्छाकरि। दान के अर्थ उद्यम करि १। हे होतः तू इषित प्रेषित (प्रेरित) कथम् तदाह किं भद्रवाच्याय कहने योग्य शुभवाणी के अर्थ अर्थात् भद्र कहि इति प्रेषित है। किंच सूक्तिये तू कहि इति सूक्तवचन के अर्थ और सूक्त कहिने को मानुष होता प्रेषित है ॥६१॥   ॥ इतिभाष्ये षष्ठोऽनुवाकः ६

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन् पुमार्थांश्चतुरो देयाद्यज्ञदेवः सनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सौत्रामणीप्रकरणे याज्याप्रैषा वर्णनो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥   ॥ समाप्तोऽयं सौत्रामणियागः

आदितोऽनुवाकसंख्या द्वाविंशः २२

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसाद रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे द्वितीयोऽध्यायः २

ज्येष्ठेमासेऽमले पक्षे दशम्यां रविवासरे ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे सौत्रमन्त्राः समागमन्

अतः परं चतुर्भिरध्यायैः अश्वमेधो वर्ण्यते

+ इत्येवसंबोध्यते

१ शाखा ३ ऐष्वकारी ५ विभिन्नकर्मी

† ऋषीणांपुत्रः ५.४. ऋत्विजो वेदविदः ऋषयः तैरुत्पादितत्वात्तेषां पुत्रवत्पुत्रः।

अथ संक्षेपतः सौत्रमन्त्राणां सूचीपत्रम्

विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाश्मयन्त्रालये मुद्रितम्
विक्रमाब्दाः १९२९ शकाब्दाः १७९४ श्रावणशुक्ला ३ बुधवार ओम् शान्तिः

हरिःओम्

चत्वारोऽध्याया अश्वमेधमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः

पञ्चात्मकं द्विरूपञ्च साधनैर्वेदरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परंस्तुमः॥

अ०१ तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे॥१॥+

नत्वा रामं चोग्रसेनं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्
वेदे चतुर्भिरध्यायैरश्वमेधः समीर्यते

बाईस के अध्याय से ले पच्चीस पर्यन्त अश्वमेधके मन्त्र तिन्हों को प्रजापति ने देखा। सर्वकामा राजा का अश्वमेधयज्ञ तिसका फाल्गुण शुक्ला अष्टमी को आरम्भहै॥

+ते-हि।अ०दे-मू।हृ।आ-दे।उ०॥१॥

ॐनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अश्वमेधाहुतिर्नाम द्वाविंशोध्याय ईर्यते २२

का०२१.१८- चतुःसुवर्णनिर्मित आभरणविशेषनिष्ककोयजमानकेकण्ठमें वांधते अध्वर्यु तेजोसिइसमन्त्रकोपढैऔरतिसनिष्ककोप्रातहोंमकेअन्तमेंपूर्णाहुति करि अध्वर्युके अर्थदेदै॥ तेजोसीत्यस्य प्रा-अ०सौवर्णनिष्कदेवता। हे निष्क तेजहै-आग्नेयत्वसै।शुक्रं-और अग्निका वीर्यहै-अग्निर्हवायो ऽभिदध्यावित्युपक्रम्य तासुरेतः प्रासिञ्चत्तद्धिरण्यमभवदिति श्रुतेः।अमृतं-और वन्हितापमें अनुच्छिद्य(द्या)मानद्रवत्वाधिकरणत्व और दानकरि अमृतत्व प्रदानसै- हिरण्यदा अमृतत्वंभजन्त- इतिश्रुतेः।आयुष्या-आयुका पालन करने वाला गोपायिता अतः याचना करताहूं कि मेरी आयुकी रक्षाकरि यज्ञसमाप्तिपर्यन्त आयुको प्रार्थनाकरताहूं॥ का०२०.१.२७.देवस्यत्वेत्यादिसरमारपन्तीत्यन्तेन मन्त्रेण त्रयोदशारत्निदर्भमयीद्विगुणा अश्वबन्धनार्थ रशना(लेजु)कोले ब्रह्मन्नश्वमित्यादि तेन-राध्यासमित्यन्त ४.अ० मन्त्रको ब्रह्माप्रतिकहै॥ देवस्यत्वा व्याख्याता१.१०.आददेतिदे- अ० इयमपिव्याख्याता१.२४.॥१॥

इ॒मामगृभ्णन्र॒श॒नामृ॒तस्य॒ पूर्वे॒ आयु॑षि वि॒दथे॑षु क॒व्या। सा नो॑ अ॒स्मिन्त्सु॒त आब॑भूव ऋ॒तस्य॒ साम॑न्त्स॒रमा॒रप॑न्ती॥२॥

संवत्सर-यज्ञपुरुष द्दष्टा रशनादेवत्या त्रिष्टुप्। हमारे इस य

न्त में वोह रशना उत्पन्ना। कैसीकि यज्ञ के प्रसार को कहती अर्थात् य ज्ञ प्रसारहो यह कहिती। वोह कौंन कि यज्ञों में कुशल प्राजापत्यादिक जिस इस रशना को यज्ञ के पूर्व आयुके आरम्भ में ग्रहण करते हुए जो पूर्वोंसे गृहीता वोह रशना यहां उत्पन्न हुई इत्यर्थः॥२॥

अभिधा असि भुवनमसि यन्तासि धर्ता। स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः॥३॥

का० २०.१.२८. तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेनरा ध्नुहीति ४.इ० मन्त्र करि ब्रह्मा से आज्ञापाया अध्वर्यु. अभिधा असी त्यादि स्वगात्वा देवेभ्यः प्रजापतय ऽ इत्यन्तेन मन्त्रेण रशना से अश्व को बांधे॥ लिङ्गोक्तानि यजूꣳषि अश्वोदेवताद्यस्य। हे अश्व जो तू अभिधा और सवों का आश्रय है और नियमन कर्ता और जगत का धारण करने वाला है। एवंविधः तू स्वाहाकार करिके होमाहुआ अग्नि को प्राप्तहो. कैसे अग्नि कि सव नरों के अर्थ हित विस्तार सहित वा सर्वतः तिर्यगूर्ध्व और अधः प्रथत॥३॥

स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम्। तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि॥४॥ + स्व-मू। अ०तं-हि। इ०॥४॥

हे अश्व तुझे देवताओं और प्रजापतिके अर्थ आपही से चलने वाला करताहूं इतिशेषः॥ ब्रह्मन्नश्वम् सा-पं० ब्रह्मदेवता ब्रह्माणमामन्त्रयते। हे ब्रह्मन् देवताओंऔर प्रजापतिकेअर्थ अश्वबंधन करताहूं तिस अश्वबंधन से कर्मसमाप्तिरूपासिद्धि को प्राप्तहोऊं॥ तंबधान अध्व

र्युर्देवतं यजुः ब्रह्मा प्रस्तौति। हे अध्वर्यो जिसे बाँधता चाहता है तिस अश्व को देवताओं और प्रजापति के अर्थ बाँधि तिस अश्व बंधन से यज्ञस माप्ति लक्षण सिद्धि को प्राप्त होगा॥४॥

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। यो ऽअर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्तः परः श्वा॥५॥ †

का०२०।१।३७। ततः अध्वर्यु तडागादिस्था जल विषें जाकर तिस जलसे पांच मन्त्रों करि प्रतिमन्त्र से अश्व को प्रोक्षण करे॥ लिङ्गोक्त देवतानि पञ्च १ या-त्रि०२ या-पं०३ या-बृ०४।५ या-ज०। हे अश्व प्रजापति के अर्थ प्यारे तुझे सींचता हूं इस सींचने से प्रजापति के से वीर्य को अश्व में स्थापन करे॥ तथा च श्रुति शत०१३।१।२।५ प्रजापतिर्वै देवानां वीर्यवत्तमो वीर्यमेवास्मिन्दधाति तस्मादश्वः पशूनां वीर्यवत्तम इति॥१॥ इन्द्राग्नी के अर्थ-हूं इस से इन्द्राग्नी के से ओजको स्था-करे॥ शत०१३।१।२।६ इन्द्राग्नी वै देवानामोजस्वितमा ओज एवास्मिन्दधाति तस्मादश्वः पशूनामोजस्वितम इति॥२॥ वायु के अर्थ-हूं इस से वायु के से वेग को-करे॥ शत०१३।१।२।७ वायुर्वै देवानामाशिष्ठो जव मे वास्मिन्दधाति तस्मादश्वः पशूनामाशिष्ठ इति- आशिष्ठो वेगवत्तरः॥३॥ विश्वे देवाओं के अर्थ-हूं इस से अश्व में यश को-करे। शत०१३।१।२।८ विश्वे वै देवा यशस्वितमा यश एवास्मिन्दधा

† प्र-मि। अ। इ-मि। इ। वा-मि। उ। वि-मि। त्र। स-मि। त्र। यो-श्वा। अ।॥५॥

ति तस्मादश्वः पशूनां यशस्वितम इति॥४॥ सब देवताओं के अर्थ प्रि
य तुझे प्रोक्षण करता हूं। इससे सब देवता अश्वमें स्थापन करे॥ शत०
१३·१·२·९· सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामीति सर्वा एवास्मिन्देवता अ-
श्वे अन्वायातयतीति॥४॥ का० २०·२·१· शूद्र से वैश्यामें उत्पन्न हु-
आ पुरुष अध्वर्यु करि प्रेरित चतुर्नेत्र श्वान में खैर के मुशल से हनन
करने सति यो अर्वन्तमित्यादि- वरुण इत्यन्त मन्त्र को यजमान प्र
तिपढे॥ गायत्री पूर्वार्धे अश्वस्तुतिः परार्धे लिङ्गोक्त देवता। जो अर्वन्त
अश्वको मारने की इच्छा करता वरुण तिस अश्वमारनेवाले को मारे॥
का० २०·२·२· परो मर्त्तः परः श्वा इस मन्त्र से वेतस वृक्ष कृत कटक क
रि मृतक श्वान को अश्व के नीचें जल में तिरावे॥ अश्व को मारने की
इच्छा करने वाला मनुष्य पराभूतः (अधस्पदंनीतः) नीचे पटका औ
र श्वान परें किया अर्थात् श्वानरूपसे अश्वका हन्ता ही पराकृतः॥५॥

अ०२ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे
स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्प-
तये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा॥६॥ +

का० २०·२·३·४· ततः स्थावर जल के सकाशसे अश्वको अग्निके स
मीप लाकर अग्नये स्वाहेत्येक कण्डिकात्मक अनुवाक करि प्रति मन्त्र
एक वार ग्रहण करी जिह्वा से स्तोकीय संज्ञा दश आज्याहुति होमें अथ
वा अनुवाक को आवर्तन-आवर्तन करि सहस्र आज्याहुति होमें॥
दश यजूंषि १·२·४·५·६·७·८·९· दै- पं० ३·८· दै- ज० १०· दै- त्रि०
लिङ्गोक्त देवतानि। अङ्गतीत्यग्निः। सुनोतीति सोमः। अपां जलानां

+ अ-हा। अ०। सी-हा। इ०। अ-हा। उ०। स-हा। ऋ०। व-हा। लृ०। वि-हा। आ०। इ-हा। ऊ०। मि-हा। ऋ०। व-हा। लृ०। ६॥

मोदाय मोदयति हर्षयति मोदः। सूते सविता। वातीति वायुः। वेवेष्टि
व्याप्नोति विष्णुः। इन्दतीन्द्रः। बृहतां वेदानां पतिर्बृहस्पतिः। मिद्यति
स्निह्यति मित्रः। वृणोति भक्तं भजते वरुणः। एताभिराहुतिभिरेतेभ्यो
दशदेवेभ्योऽश्वं ददाति तथाच श्रुतिः १३·१·३·३ एतावन्तो वै सर्वे देवास्ते
भ्य एवैनं जुहोतीति॥६॥

अ०३ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहावक्रन्दाय
स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय
स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा
वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा
जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय
स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायना
य स्वाहा प्रायणाय स्वाहा॥७॥

का०२०·३·३·हिङ्काराय स्वाहेत्यादिकों के अर्थ उद्धार किये हुए दक्षिणा
ग्नि में प्रति मंत्र प्रक्रम संज्ञक उनंचास होमों को होमें॥ अश्वस्यै को
नपञ्चाशच्चेष्टितानि (व्यापारा) कण्डिका द्वयात्मके नानुवाकेनऽवे
यजुषि। हिङ्काराय (हींसता हिंकार) तिसके अर्थ स्वाहा (हविर्दत्तम्॥१॥
हिङ्कृत (कियाजिसने हिङ्कार) तिस—त्तम्॥२॥ क्रदन् (बडा शब्दकरता॥३
अवक्रन्दन् (नीचे से बडा शब्दकरता॥४॥ प्रोथन् (घासखाता हुआ फु
रबोलता॥५॥ प्रप्रोथ प्रकृष्टेन प्रोथति॥६॥ गन्धलेता॥७॥ आघ्राण
करता॥८॥ निवेशकरता॥९॥ उपवेशकरता॥१०॥ सन्दित (खण्डन
टापमारता॥११॥ वल्गन् (कूमता॥१२॥ आसीनः चुपचापखडा॥१३॥

...करता ॥२४॥ सोताहुआ ॥२५॥ जाग्रत् ॥२६॥ कूजता ॥२७॥ प्रबुद्ध ...जम्भाईलेता ॥२९॥ विशेषेणदीप्तिमान् ॥२०॥ संगतशरीर ॥२१॥ उ...स्थित ॥२२॥ अयते अयनः-स्वरकरता ॥२३॥ ... कूदता-उछल...ता ॥२४॥ अ।

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत्पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८॥

एतीतियन् धीरे-धीरे स्वाभाविक चलता ॥ २५॥ धावति किसी वस्तुकी ओडी चलता ॥२६॥ उद्द्राव अधिकगति जिस्की ॥२७॥ उद्द्रुत अधिक भागता ॥२८॥ शूइतिकरोति सिंह फुङ्कारकरता ॥२९॥ किया जिसने शूकार ॥३०॥ बैठता ॥३१॥ उठता ॥३२॥ जवते वेगवान् ॥३३॥ बलजिस्मेंहै ॥३४॥ विवर्तमान् इधर उधर लुठता ॥३५॥ विवृत्त इधर उधर लुठताहुआ ॥३६॥ कम्पता ॥३७॥ विधूयते सो विधूतः कांपकर गिरता ॥३८॥ सुनने की इच्छा करता ॥३९॥ सुनता ॥४०॥ ईक्षमाण देखता ॥४१॥ देखताहुआ ॥४२॥ वीक्षित विशेषेणदेखताहुआ ॥४३॥ पलकमारता ॥४४॥ जोकुछ खाता तस्मै ॥४५॥ जोजलादिक पीतातिस

पान करने वाले के अर्थे ॥४६॥ जो मूत्र करता तस्मै मूत्र करै
करता ॥४८॥ करता हुआ। तस्मै स्वाहेति सर्वत्र ॥४९॥ इत्येकोन
पञ्चाशत्प्रक्रमा ॥८॥

अ॰४ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्र
चोदयात् ॥९॥

षडृचः सवितृदेवत्या गायत्र्यः सावित्रीणामिष्टीनां याज्यानुवा
क्याः॥ प्रथमा व्याख्याता ३.३५.॥९॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये। स चेत्ता दे
वता पदम् ॥१०॥

मेधातिथिदृष्टा। मैं रक्षा के अर्थे सविता को आह्वान करता हूं। कैसे स
विता को कि हिरण्य पाणि जिस्का। यतः वोह सविता चेतयिता (सर्वज्ञ।
देवता। पदं ज्ञानियों का स्थान ॥१०॥

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे। सुमतिᳫं सत्यरा
धसम् ॥११॥

हम सविता देवता की सुमति (शोभना बुद्धि) को प्रकर्षेण प्रार्थना कर
ते हैं। कैसे सविता की कि चेततः (चेतता। कैसी सुमति को कि वडी सत्य
(अनश्वर) है धन जिस का वा सत्य को साधन कराती ॥११॥

सुष्टुतिᳫं सुमतीवृधो रातिᳫं सवितुरीमहे। प्र देवाय
मती विदे ॥१२॥

हम सविता देवता की शोभन स्तुति और दान को प्रकर्षेण याचना
करते हैं। कैसे सविता की कि शोभन मति को वढाता। तथा सर्वों की

मति को जानता ॥ १२ ॥

एतिर्ठं सत्पतिं मुहे सवितार॒मुपह्वये। आसवं देव वीतये ॥ १३ ॥

में देवताओं के तर्पणार्थ सविता को आह्वान करता और पूजता हूं। कैसे सविता को कि दान को देता। श्रेष्ठों का पालक। आभिमुख्येन कर्मों को आज्ञा देता ॥ १३ ॥

दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्म॒तिमा॑स॒वं वि॒श्वदे॑व्यम्। धि॒या भगं॑ मना महे ॥ १४ ॥

सविता देवता की मति (बुद्धि) प्रति हम बुद्धि से भग (धन) को याचना करते हैं अर्थात् सविता देवता की बुद्धि हमारे विषें दान तत्पर हो। कैसे भग को कि धन करि सबों के आज्ञा देने को समर्थ। सब देवताओं के अपेक्षित। धनेनैव देव तर्पणादित्यर्थः ॥ १४ ॥

अ॒ग्निꣳ स्तोमे॑न बोधय समिधा॒नो ऽअम॑र्त्यम्। ह॒व्या दे॒वेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

तिस्रः स्विष्टकृति पुरोऽनुवाक्याः। अग्नि देवत्या गायत्र्यो यथा संख्यं (क्रमं) सुतम्भर विश्वामित्र विश्वरूप दृष्टाः। हे अध्वर्यो तू भले प्रकार दीपन करि के स्तुति से अग्नि को अवगतार्थ करि। कैसे अग्नि को कि मरण धर्म रहित सो अग्नि बोधित हुआ हमारी हवियें देवताओं के विषें धारण करै यह उसका अधिकार है ॥ १५ ॥

स ह॒व्य॒वाडम॑र्त्य उ॒शिग्दू॒तश्च॑नो॑हितः। अ॒ग्निर्धि॒या समृ॑ण्वति ॥ १६ ॥

वोह अग्नि बुद्धि करि देवताओं के साथ हविर्दान के अर्थ एकी है
हे अग्निकि हवियों का वोढा। मरणहीन। उशिक्-कामनीय वा
वी। देवताओं का दूत। चनोहितः-अन्न के अर्थ हित-हविरूप अन्न
भक्षण के अर्थ स्थापित ॥ १६ ॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ२॥ऽआ
सादयादिह ॥ १७ ॥

जिस अग्नि को मैं पुरतः स्थापन करता हूं तिस प्रति कहिता हूं क्या कि
हे अग्ने इस यज्ञविषें तू देवताओं को समन्तात् सादन करि। कैसे अग्नि
को कि दूत देवताओं हवि का वोढार ॥ १७ ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः। गो
जीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥

त्र्यरुण (अरुण) त्रसदस्युभ्यां दृष्टा पवमानदैवत्यापिपीलिकामध्या
कृतिरनुष्टुप्। पवमानस्तुतिः। हे पवमान तूने सूर्य को उत्पन्न कियाहै
सामर्थ्य से जल को विशेषेण धारण कियाहै किस हेतु करि कि गोओं
की जीविका का हेतु जल को धारण कियाहै तिन्हों के हवि से यज्ञ नि
ष्पत्ति और प्राणियों के जीवन से। कैसाहै तू कि पुरन्ध्या रंहमाणः-ब
हुत स्थापन करनेवाली धाराओं से प्राप्त होता अर्थात् दशापवित्र
से द्रोणकलश को प्राप्त होता ॥ १८ ॥

अ० ५ विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वा
सि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि। ययुर्नामा
सि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवा आशापाला ए

देवेभ्यो ऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१९॥+

का० २०.२.१९. तीसरी सावित्री इष्टीकी समाप्ति में अध्वर्यु यजमानौ अश्व के दक्षिण कर्ण में विभूर्मात्रेति मन्त्र को जपैं॥ अश्वदैवतं यजुः। हे अश्वत् माता पृथिवी के सकाश से समर्थ है- पिता द्यौ के सकाश से समर्थ है+। अथनामभिरश्वं स्तौति। तू अश्व मार्ग को व्याप्त होता वा व्याप्त है। हय-चलता है। अत्य (सतत गामी) है। मय (चलता वा सुखरूप) है। अर्वा (चलता वा वैरियों को मारता है। सप्ति (सैन्य करि भले प्रकार प्राप्त होता) है। वाजी (गति शील वा पक्षों वाला) है। वृषा (सींचने वाला) है। नृमण (यजमानों में मन रखता) है। ययु (चलता अश्वमेधीय अश्व) है। किंच नामकरि शिशु (स्तनको कृश करनेवाला) है। एवं विधि नामा तू आदित्यों अर्थात् देवताओं के मार्गको प्राप्त हो॥ का० २०.२.११ देवा आशापाला इति चतुर्विंशति वार्षिक अश्व शतमध्यस्थ ईशान दिशामें उत्कृष्ट अश्व के रक्षक नरों को शिक्षा करि नियत करै कैसे नरों को कि तितनेही अनुचरी संख्यक अर्थात् शत १०० राजपुत्र शत १०० क्षत्रियपुत्र शत १०० सूत ग्रामणी (सूत- अश्वपोषक. ग्रामणी- मुख्य तिन्होंके) पुत्र शत १०० क्षात्र संगृहीतृयों (क्षत्तार. आयव्यय. अध्यक्ष. तिन्होंके पुत्र क्रमसे कवचि. निषङ्गि. कलापि. दण्डिनः अर्थात् राजपुत्र कवचि क्षत्रिय पुत्र खड्ग सहित सूत ग्रामणी पुत्र इषुधिमन्त क्षात्र संगृहीतृ पुत्र वंशादि दण्ड धराः वडवा और जल स्थान से अश्व ढीलना-

+ शत० १३.१.६.१ पृथिवी माता द्यौ पिता

[illegible]

+ वि- हि। अ० दे- तू। इ० इ- न्ति:। उ०। इ- मा। उ०। इ- ति:। ल०। इ- हा। आ०॥१९

वर्षभरि अश्व का रक्षण॰ तवतक यजमान वावाता (प्यारी राणी) के साथ शयन करै॰ सावित्री करै वीणा गान॰ पारिप्लव शस्त्र का पाठ॰ और धृति होम इत्यादि ज्ञेयमिति सूत्रार्थः॥ देव देवत्यं आर्चीउ॰ आशा दिशः पालयन्तीति आशापाला हे देवा तुम इस अश्व को रक्षा करो कैसे कोकि याग के अर्थ प्रोक्षित (प्रोक्षण करि संस्कृत) राजपुत्रादिक ही आशापाला हैं तदुक्तं शतं वै तल्प्या राजपुत्रा आशापालास्तेभ्य एवैनं परिददातीति शत॰१३॰१॰६॰२॥ का॰२०॰३॰४॰ सूर्य अस्त हुए पर अग्नि होम से पहिले अग्नि होत्रार्थ उद्धृत आहवनीय में चतस्र ४ धृति संज्ञा आहुति प्रति मंत्र वर्ष पर्यन्त होमें एवं चत्वारिंशदधिकाचतुर्दशशती १४४० होती है॰ तथा च श्रुतिः संवत्सरमाहुतीर्जुहोति षोडशानवतीरेता वाऽअश्वस्य बन्धनं ताभिरेवैनं बध्नातीति शत॰१३॰१॰६॰२॥ चत्वारि यजूंषि १॰३॰दे॰ब्र॰ २॰दे॰पं॰ ४॰दे॰ज॰ अग्निदेवत्यानि। चतुर्थ मन्त्रान्ते स्वाहाकार श्रवणात्रिष्वपि स्वाहाकारः प्रयोज्यः अश्वं प्रत्युच्यते॰ हे अश्व यह रमण तेरा हो॥१॥ यहां तुम रमण करो॥२॥ यह तेरा सन्तोष हो॥३॥ इस यज्ञ में निज धरण हो स्वाहा॥१९॥

अ॰६ काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा दित्यै मह्यै स्वाहा दित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरंधिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वा

हा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥

का॰ २०·४·३-५· चारि ४ आध्वरिक औद्ग्रभणों को होमिके काय स्वाहेत्याश्वमेधिक तीनि उद्ग्रभणों को होमें अत औद्ग्रभण होमके अन्तर दीक्षणीया शेष को समाप्त करि कृष्णाजिनदीक्षा तत्रउपवेशनान्ता करियेहैं। सप्ताह प्रचरन्तीति शत॰ १३·१·७·२· श्रुतेः सप्ताह दीक्षणीया करियेहै तत्रप्रति दिवसका कर्तव्य कहियेहै अध्वरदीक्षणीया के चारि ४ औद्ग्रभणों (आकूत्यै प्रयुजेत्यादि ४·७·) और तीनि ३-तीनि आश्वमेधिको (कायस्वाहेति कण्डिका पठित प्रति दिवस अन्य-अन्य पाठक्रमेण एवं सात ७-सात ७ प्रति दिवस होमिये। कायस्वाहेतिकण्डिकामें पठित सात त्रिकों के मध्य सात दिवसों विषें क्रमेण एक-एक त्रिक होमिये है तहां दूसरे त्रिक के तीनों मन्त्रों की आदि में स्वाहाकार है +॥ औद्ग्रभण संज्ञानि यजूंषि लिङ्गोक्तदेवतानि काय॰ प्रजापतिके अर्थ सुहुतमस्तु ॥१॥ कस्मै॰ प्रजापति- मस्तु ॥२॥ कतमस्मै॰ श्रेष्ठप्रजापति ०॥३॥१॥ आधान्न को अधीत (प्राप्त) के अर्थ ॥१॥ मन्न विषें वर्तमान ॥२॥ सर्वों के चित्त साक्षि प्रजापति के अर्थ ॥३॥२॥ अखण्डता के अ॰ ०॥१॥ पूज्या अदिति के अर्थ ०॥२॥ सुखयित्री अदिति के अर्थ ॥३॥३॥ सरस्वति॰ वागधिष्ठात्री के अर्थ ०॥१॥ शोधयित्री सरस्वती के अर्थ ०॥२॥ बडी सरस्वती के अर्थ ॥३॥४॥ पूषा के अर्थ ०॥१॥ प्रगत पंथा तत्र भव प्रपथ्यः पूषा के अर्थ ०॥२॥ नरको उदयेन शब्दयति पूषा के अर्थ ०॥३॥५॥ त्वष्टा (तनू करने वाले) के अर्थ ०॥१॥ तुरीप॰ वेगको रक्षा करने वाले के

+ स्वाहाधिमाधीताय इत्यादि

अर्थ॰॥२॥ वज्ररूपी त्वष्टाके अर्थ॰॥३॥६॥ व्यापक विष्णु के अर्थ॰॥१॥ निभूयप (नितरांभूत्वा॰ मत्स्यादि अवतार करि रक्षा करने वाले) विष्णु के अर्थ॰॥२॥ शिपिविष्ट (पशु॰ प्राणियों में अन्तर्यामिरूपसे प्रविष्ट) विष्णुके अर्थ ॥३॥७॥२०॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा॥२१॥

का॰२०॰४॰७॰१०॰ सातमी दीक्षणीया में यह विशेष है कि प्रतिदिवस चारि ४ आध्वरिक औद्ग्रभण होमते हैं तिन चारों के स्थानमें छे ६ आग्निक आकूतिं प्रयुजमग्निं स्वाहेति ११॰६६॰ होमिके और आश्वमेधिक तीनि विषणवे स्वाहेत्यादिक होमि विश्वोदेवस्य दशमे औद्ग्रभण को होमें इति॥ व्याख्याता ४॰८॥२१॥

अ॰७ आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो ऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरंधिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥२२॥

का॰२०॰४॰११॰ कृष्णाजिन दीक्षा से आरम्भ करि के उखाविषें त्रयोदश समिदाधान पर्यन्त कर्मकरि अध्वर्युही आब्रह्मन् यहजपे॰ उत्सर्गोपस्थान काल में एक आचार्य आब्रह्मन् इस जपको रक्षा करते हैं यद्वा अश्व के उत्सर्ग काल विषें अर्थात् विभूर्मात्रेति

के अनन्तर ॥ लिङ्गोक्त देवता महीधरमते उत्कृति छन्दः। हे ब्रह्मन्
मारे देश विषें ब्रह्मवर्चसी (यज्ञाध्ययन शील) ब्राह्मण उत्पन्न हो।
र क्षत्रिय ऐसा उत्पन्न हो। कैसा कि शूरः (पराक्रमी) शूर विक्रान्तो शम
ति शूरः इषव्य (बाणों से बीधने वाला वा बाण विद्या कुशल। अतिव्या
(शत्रु भेदन शील: । महारथः (एक सहस्र को जीते वोह महारथः। दुग्ध
रयित्री धेनुः उत्पन्न हो राष्ट्र इति सर्वत्र सम्बन्धः। वृषभ (बैल) वहन
लहो। अश्व शीघ्रगामी उ०-हो। स्त्री पुरंधिः (सर्वगुण सम्पन्न शरीरको
रण करने वाली उ०-हो। रथ में स्थित युयुत्सु नर जयनशील उ०हो। इस
जमान का युवा (समर्थ) सभा विषें योग्य वीर पुत्र उ०-हो। किंच हमारे रा
ष्ट्र विषें पर्जन्य (मेघ) निरन्तर कामना में वर्षे। हमारें यवाद्या ओषधीएँ
फल युक्ता (स्वयमेव पक्व) होंवें। हमारा योगक्षेम- योग करि युक्त क्षेम- यो
ग (अलब्ध का लाभ) क्षेम (लब्ध का परिपालन) कल्पताम् हो ॥२२॥

अ०८ प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा
श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥

का०२०.४.३१. आज्यादिकों का प्रति प्रहर विषें एक-एक को क्रमकरिके
सर्वरात्र उत्तर वेदिस्थ अग्नि में होम करै प्राणाय स्वाहेत्यादि द्वादशका
ण्डिकात्मक अनुवाकोंसे। किंकृत्वा आवर्तम् कि प्राणाय स्वाहेत्यादिक एकशता
य स्वाहेत्यन्त मन्त्र गणको आवर्त-आवर्त करिके सर्व रात्रमिति द्वितीया ग्र
हण सै होमक्रिया का सब रात्रि का संयोग करिये है ततः प्रथम याम में घृत से
याग है दूसरे में सक्तुओं से तीसरे में धानों से चौथे में लाजा से। एकस्मै इति
द्वादशे ऽनुवाके ३४. एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳ स्वाहेत्यन्त त्रिभ्यः स्वाहा चतुर्भ्यः

स्वाहा पञ्चभ्यः स्वाहा षड्भ्यः स्वाहा सप्तभ्यः स्वाहा अष्टभ्यः स्वाहा नव-
भ्यः स्वाहेत्येव माद्यो मन्त्राः अपठित हैं परन्तु एक-एक के उच्चय करिके श-
त पर्यन्तों का प्रयोजन है एकोत्तरं जुहोतीति श॰ १३।२।१।५। श्रुति से। व्यु-
ष्टा (रात्रि) की समाप्ति विषें व्युष्टायै स्वाहेति एक घृत की आहुति को और सू-
र्य के उदय में स्वर्गाय स्वाहेति होमें इति सूत्रार्थः। लिङ्गोक्त देवतानि यजू-
ꣳषि। प्राणदय इन्द्रिय देवाः॥२३॥

अ॰ ९ प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वा-
च्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दि-
शे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वा-
हार्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा॥२४॥

अ॰ १० अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा
स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्या-
भ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरि-
राय स्वाहा॥२५॥

अ॰ ११ वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योत-
मानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाव-
वर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहो-
द्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा-
ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा॥२६॥

अ॰ १२ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षा-
य स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वा-

हार्वाच्यै दिशे स्वाहा॥२७॥

अ॰१३ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्ध
मासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वा
हा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा चन्द्राय स्वाहा
सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा
दित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूले
भ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः
स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा॥२८॥

अ॰१४ पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा च
न्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वन
स्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृ
पेभ्यः स्वाहा॥२९॥

अ॰१५ असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गण
श्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा
शूषाय स्वाहा सᳬंसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वा
हा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा॥३०॥

अ॰१६ मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा न
भसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सह
से स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाᳬंहसस्पतये स्वाहा॥३१॥

अ॰१७ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा

स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

अ०१८ आयुर्यज्ञेन कल्पतांस्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पतांस्वाहापानो यज्ञेन कल्पतांस्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पतांस्वाहोदानो यज्ञेन कल्पतांस्वाहा समानो यज्ञेन कल्पतांस्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पतांस्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतांस्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पतांस्वाहा मनो यज्ञेन कल्पतांस्वाहात्मा यज्ञेन कल्पतांस्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतांस्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतांस्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पतांस्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पतांस्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पतांस्वाहा ॥३३॥

अ०१९ एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यांस्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥

इति संहितायामेकोनविंशोऽनुवाकः १९

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

प्राच्यैदिग्देवताः ॥२४॥ अद्भ्यः। जलदेवताः ॥२५॥ वाताय। मेघोपयोगिदेवताः ॥२६॥ अग्नये। अग्न्यादयः प्रसिद्धाः ॥२७॥ नक्षत्रेभ्यः। नक्षत्राद्यः कालाधिष्ठात्र्यः ॥२८॥ पृथिव्यै। पृथिव्यादयो लोकाधिष्ठात्र्यः ॥२९॥ असवे। असवाद्यश्च ॥३०॥ मधवे। मध्वादयो मासाधिष्ठ

तारः॥३१॥ वाजाय। वाजाद्योऽन्नाधीशाः॥३२॥ आयुः। यज्ञेनाश्वमेधे नायुः कल्पताम् एवमग्रेऽपि प्रार्थना मन्त्राः॥३३॥ एकस्मै। संख्याधीशाः। व्युष्टीरात्रिः स्वर्गो दिनम् रात्रिर्वै व्युष्टिरहःस्वर्गोऽहोरात्रे एव तत्प्रीणातीति श्रुतेः १३·२·१·६ ॥ प्राणाद्योऽश्वमेधस्यावयविनोऽवयवाः स च प्रजापतेरवयवः स आत्मन इत्यात्मैव स्तूयते इज्यते इति भावः सर्वमिदं यदयमात्मेति श्रुतेः॥३४॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः २२
इतिगिरिधरभाष्ये एकोनविंशोऽनुवाकः १९

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेयनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये अश्वमेधाहुतिवर्णनो नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

हरिः ओम्
ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं क्षितिरुपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २३

अ॰ १ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥४॥

ॐनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

त्रयोविंशोऽयमध्यायोवर्ण्यतेऽश्वमेधिकः२३

द्वाविंशेहोममन्त्रास्त्रयोविंशेऽध्यायेशिष्टंकर्मोच्यते का॰२०॰५॰१॰२॰ प्रातः काल दूसरे दिनमें उक्थ्यसंस्थ दिवस होताहै तहां महिम संज्ञक दो ग्रहोंका आगन्तुत्व से आग्रयण उक्थ्य के मध्य में गृहण करे (आग्रयणोक्थ्यावागन्तुस्थानं ग्रहाणामिति वचनात्) दोनों के मध्य में पूर्व महिमानको सौवर्ण उलूखल करि के गृहण करे ॥ व्याख्याता २३॰४॰॥१॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा।यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतयेस्वाहा देवेभ्यः॥२॥ + उ-मि॰अ॰ए-मा॰इ॰य-भ्यः॰उ॰॥२॥

प्राजापत्यं यजुः॥ उपयाम॰ प्रजापति केअर्थतुझ रुचित को हे ग्रह ग्रहण करता हूं॥का॰९॰५॰२४॰एषते योनिरिति ग्रह सादनम्॥या-त्रि॰। यह तेरा स्थान तेरी महिमा (शक्ति) सूर्यः दीपस्येव प्रभा॥का॰२०॰७॰१६॰ पूर्व महिमान ग्रह को होमें वषट्कृते सर्बहुतम्॥ देवदेवत्यं यजुः॥ हे महिमन् जो तेरी महिमा दिवस और संवत्सर निमित विषें उत्पन्न हुई वायु और अन्तरिक्ष विषें जो तेरी महिमा उत्पन्नदिवि और सूर्य विषें जो तेरी महिमा उत्पन्न तिस महिम्न प्रजापति और देवताओं

अर्थ स्वाहा-सुहुत मस्तु॥२॥

अ॰२ यः प्राणतो निमेषतो महित्वैक ऽइद्राजा जगतो बभूव। य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥

का॰२०॰५॰२ दूसरे महिमान ग्रह को राजत उलूखल करिके ग्रहणक हिरण्य गर्भदृष्टाक देवत्यात्रिष्टुप्। तिस प्रजापति देवता के अर्थ हमने हवि दिया। तिस किस के कि जो प्रजापतिजीवन करते निमेषण(दृगादि इन्द्रियों के व्यापार)करते अर्थात् सचेतन जगत का एक एव राजा हुआ तिस महित्व(महाभाग्य)करिके। और जो इस द्विपद(मनुष्य पक्षी आदिकों)और चतुष्पद(हस्ती गवादिकों)प्राणिजातका ऐश्वर्य करता है॥३॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा॥४॥ †उ-मि॰अ॰ए-मा॰इ॰य-हा॰उ॰॥४॥

उपयामेति व्याख्यातं यजुः २॥सादयति॥या-ज॰चन्द्रमा तेरी महिमा॥ का॰२०॰७॰२६ वपायाग के अन्त में दूसरे महिम्न करिके पूर्व वदिति स र्वहुत महिमान को होमें॥यजुः॥हे महिमन्! रात्रि और संवत्सर विषें जो तेरी महिमा॰पृथिवी और अग्नि विषें जो॰ नक्षत्र और चन्द्रमा विषें जो॰सर्व व्यापक जो॰तिस महिम्न प्रजापति और देवताओं के अर्थ स्वा-

हा॰ सुहुतमस्तु॥४॥

अ०३ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥५॥

का०२०।५।११। अश्व को रथ में जोडै॥ मधुछन्दोदृष्टा आदित्यदेवत्या गायत्री। कर्मार्थ स्थित ऋत्विज लोग ब्रध्न (आदित्य) को रथ में जोडते हैं +। कैसे ब्रध्न कि क्रोध रहित वैदिक कर्म सिद्ध्यर्थ सर्वत्र चलते को। जिस ब्रध्न की दीप्तिएँ आकाश में प्रकाशें हैं वा चन्द्र तारादीनि दीप्तिएँ सूर्य की भा करि प्रकाशें हैं॥५॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा॥६॥

का०२०।५।११। इतर तीनि अश्वों को जोडै॥ गायत्री अश्वस्तुतिः। ऋत्विजः हरी अश्वो रथ में जोडते हैं। कैसे कि इस अश्वमेधिक अश्व के काम सम्पादनो नहीं है एक रथ चलाने को शक्त इति विपक्षसा (शरीर को ग्रहण करते वा विविध हैं पक्ष जिन्हों के यद्वा विरिति शकुनिनाम ‡ पक्षिणः इव पक्ष हैं जिन्हों के। रक्तौ प्रगल्भौ नृणां वोढारौ॥६॥

यद्वातो ऽअपो ऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम्। एतꣳ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः॥७॥

का०२०।५।१४। चारों अश्वों करि युक्त रथ को अध्वर्यु यजमान आरोहण करि तडागादि जल प्रति जाकर जल विषें अश्व के प्रविष्ट होने में यजमान प्रति पढै॥ बृहती अश्वस्तुतिः। वात समान वेगो अश्व जिस कारण जलों को आगनीगन् अत्यर्थ गया और इन्द्र के प्यारे शरीर को अत्य

+ अश्व आदित्यत्वेन स्तूयते असौ वा आदित्यो ब्रध्नोऽरुषः असौ वा आदित्यं युनक्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै इति श० १३।२।६।१। श्रुतेः॥

‡ वैतानिक कर्मणः इति याज्ञिकाः निरु० ९।६

र्थ गया और इन्द्र के प्यारे शरीर को अत्यर्थ गया अतः हे स्तोतः (अध्वर्यो) इस हमारे अश्व को इस मार्ग करि कि जिस मार्ग करि आया फिरि तिसी करि लौटाओ ॥७॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा। भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्य एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥+

का०२०.५.१५. जल प्रदेश से देवयजन प्रति आये रथसे छूटे अश्व को महिष्याद्याः तीनों पत्नि एँ यथाक्रम अश्व के पूर्वादि कों को घृत से चुपरें महिषी पूर्वकाय को वसव इति वावाता देह मध्य को रुद्रा इति परिवृक्ता पश्चाद्भागको आदित्या इति मन्त्रेणेति सूत्रार्थः ॥ लिङ्गोक्त देवत्यानि १. ३ आसु-अ०२ या-ज०त्रीणि। हे अश्व आठौ वसु देवता गायत्री छन्द करि तुझे स्निग्ध करैं॥ एकादश रुद्र त्रिष्टुप् छ०॥ द्वादश आदित्य जगती छ०॥ का०२०.५.१६. महिष्याद्याः तीनों पत्नि एँ एकाधिकशत-एकाधिकशत सुवर्णमणीओं को जैसे न गिरें तैसे केसरों (शिरः स्कन्ध पुच्छ रोमों) में बांधे अर्थात् महिषी अश्वशिर रोमों में भूरिति-१०१ मणीएँ बांधे वावाता ग्रीवा रोमों में भुव इति १०१ परिवृक्ता पुच्छरोमों में स्वरिति १०१ बांधे ॥ भूर्भुवः स्वः व्याख्याता ३.५.३७॥ का०२०.५.१८.१९. सक्तु धाना लाजा रूप रात्रिहुत शेष को अश्व के भक्षार्थ देवे। और जो अश्व न खावे तो जल में डाले॥ लाजीन् अश्वदेवत्यं यजुः॥ लाजाओं का समूह सक्तुओं का समूह यवों का समूह दध्यादि गविओं

+व-सा।अ०।रु-सा।दू०।आ-सा।उ०।भू-ते।त्र०॥८॥

का समूह हे देवताओ इस अन्न को खाओ हे प्रजापते इस अन्न कोखा ये
श्वीऽश्वः प्रोक्षितस्तद्रूपोऽश्वः सम्बोध्यते॥८॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः। किꣳ स्विद्धि
मस्य भेषजं किम्वावपनं महत्॥९॥

का॰२०॰५॰२०॰ यूपके दक्षिणतः उदङ्मुख ब्रह्मा यूपोत्तरतः दक्षिण
मुख होता को पूछे॥ ब्रह्मोद्ये कर्मणि होतुर्ब्रह्मणश्च प्रश्न प्रति प्रश्न भू
तास्व तस्रोऽनुष्टुभः। स्विदिति वितर्के एक असहायः अकेला कौं
न चलता है। उपाद पूरणः कः स्वित् विनष्ट होने पर उत्पन्न होता है
किंस्वित् शीतकी औषध है। किंस्वित् बडा वपने का स्थान है॥९॥

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिम
स्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥१०॥

का॰२०॰५॰२१॰ होता ब्रह्मा प्रति कहे॥ सूर्य अकेला + चलता है अने
न होतृब्रह्माणौ यजमाने ब्रह्मवर्चसं धत्तः असौ वा आदित्य ए
काकी चरत्येष ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मवर्चसमेवास्मिंस्तद्धत्त इति १३॰२॰६॰
१०॰ श्रुतेः। चन्द्रमा क्षीण हुआ फिरि करि बढता है अनेनायुर्धत्तः
चन्द्रमा वै जायते पुनरायुरेवास्मिंस्तद्धत्त इति ११॰ श्रुतेः। हिम की
औषध अग्नि है अनेन तेजो धत्तः अग्निर्वै हिमस्य भेषजं तेज
एवास्मिंस्तद्धत्त इति १२॰ श्रुतेः। भूमि (यह लोक) वडा वपने का स्था
न है अनेनास्मिन्प्रतिष्ठां धत्तः अयं वै लोक आवपनं महदस्मिन्ने
व लोके प्रतितिष्ठतीति १३॰ श्रुतेः॥१०॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद्बृहद्वयः। का

+एक कीली पर घुमता है वा सूर्यके चलते हुए कोई न छाय
मारा दिखलाई नहीं देता।

स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥११॥

का०२०.५.२२. होता ब्रह्मा को पूछे ॥ पूर्वचित्तिः-सर्वों की प्रथम स्मृति-
विषया कौन थी वडी वयका पक्षी कौनथा। पिलिप्पिला कौन और
पिशङ्गिला कौन थी ॥११॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः। अविरासीत्पिलि-
प्पिला रात्री रासीत्पिशङ्गिला ॥१२॥

का०२०.५.२३. ब्रह्मा होता प्रति कहे ॥ पूर्वस्मरणविषया द्यौः (वृष्टि+)
थी। अश्व मेध बृहद्वय था १। अविः (पृथिवी) पिलिप्पिला (चिक्कण ४)
थी। रात्रि पिशङ्गिला (रूपोंकी गिलने वाली ‡) थी ॥१२॥

अ०४ वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः
शल्मलिर्वृद्ध्या। एषस्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदग-
न्ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥१३॥ +

का०२०.६.७. अच्छ स्तोषधीभ्य इति प्राकृतेन मन्त्रेण ६.८. और
वायुष्ट्वेत्यारभ्य देवः सविता दधात्वित्यन्तेन १६. अश्व मेधि चारि
करिडका करि अश्व प्रोक्षण करै ॥ लिङ्गोक्तानि यजूंषि १. या-वृ०
२.५.या-ज०३.या-गा०४.दे-पं०६.७.या-अ००दे-बृ०। हे अश्व वा
यु पाक करि तुम्हें रक्षा करै (वायु संयोग सें अग्नि शीघ्र पचाता है ॥
असित है ग्रीवा जिस की धूम से (अग्नि+) छाग करि तुम्हें रक्षा करै ॥
न्यग्रोध चमस (सोमपात्र) करि तुम्हें रक्षा करै ॥ शल्मलि (सेंभरिवृ
क्ष:) वृद्धि करि तुम्हें रक्षा करै ‡ ॥ किंचस्यः (स) एष वृषा (सींचनेवाला
अश्व) राथ्यः (रथविषें साधु) चारि पैरें करि आत्ता है ५ ॥ किंच अक्रष्णः

1 वा-तु। अ०। अ-गे। इ०। य-से। उ०। प्रा-ध्या। ऋ०। ए-षा। ल्ट०। प-न्। आ०। ब्र-तु। ई०। न-ये। ऊ०॥१३॥

* अश्व शब्देनाश्वमेधो लक्ष्यते अश्वमेधेन वयसेव स्वर्गमारोहतीत्यश्वमेधोवयः

४ अवतीत्यविः पृथिवी सा रसात्पिक्कणा भवति श्रीर्वै पिलिप्पिलेति १३.२.६.१६. श्रुत्या प्रपन्नएनामितिश्रीशब्देनभूरे

५ अश्वस्त्रिभिः पादैस्तिष्ठति चतुर्भिश्च गच्छतीति चतुर्ग्रहणम् तथाच श्रुतिः १३.२.७.५. तस्मादश्वस्त्रिभिस्तिष्ठन्त्सर्वयुक्तैः
सर्वैः पद्भिः समापुनः इति

+ द्यौ शब्देनवृष्टिर्लक्ष्यतेसर्वप्राणिनामिष्टत्वा न्तथाचश्रुतिः १३.२.६.१४. द्यौर्वैवृष्टिः पूर्वचि त्तिर्दिवमेववृष्टिमवरुन्धे इति ।

‡ पिशङ्गिला रूपाणिगिलतीतिपिशङ्गिला। रात्रीसर्वाणिरूपाणिनिगिरति

+ अग्निर्वा असितग्रीव इति १३.२.७.२ श्रुतेः कृष्णग्रीवःप्राग्निःसिताग्रः इति २४.१. वक्ष्यमाणत्वात अश्वा इत्युक्ताः ग्रीवास्य। धूमवत्त्वात्

‡ शल्मलिर्वृद्ध्येति समिधां वर्षिष्ठं वर्धते इति श्रु० १३.२.७.४.श्रुतेः ।

(नहीहै कृष्ण· लाञ्छनजिसमें वोह ब्रह्मा (चन्द्रमा †) हमें रक्षा करै वा हमारे अश्वको रक्षाकरै॥अग्निके अर्थ नमस्कार हो (विघ्नाभावाया ग्नेर्नतिः क्रियते॥१३॥

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः। सꣳशितो ऽअप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः॥१४॥

तिस्रो ऽश्वदेवत्या नुष्टुब्विराड्त्रिष्टुभः क्रमेण †। हयः (अश्वः) रश्मि करि संशित शोभित †) है। अप्सुजा (जलमें हुआ· अश्व वा जल करि संशित है ५। कैसाहै कि ब्रह्मा (परिवृढः) सोमपुरोगवः (सोम को आगे करि स्वर्ग लोक को जाता है ॥॥१४॥

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयंजुषस्व। महिमा ते ऽन्येन न संनशे॥१५॥

हे वाजिन् तू अपने शरीर (रूप) को करि याइश मिच्छसीति १३·२·७·११ श्रुतेः (जैसा तू चाहताहै) स्वाराज्यतेराहै इति भावः अतः अपने को पूजि नहीतेरा अन्य पूजने वाला स्वयं जुषस्व (इष्टस्थान को सेवन करि। यतः तेरी महिमा अन्यमहिम करि नहीव्याप्तहोती॥१५॥

नवा ऽउ ऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२॥ ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः। यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु॥१६॥

हे अश्व हमलोगों करि जो तू संज्ञपन किया जायगा इस करि तू नही मरता और न विनाश को प्राप्त होता। जिस साधु गमन देवयानमार्ग करि देवताओं प्रति जाताहै। किंच साधु कारिणः मनुष्य जिस लोक में रहते और

† चन्द्रमा वै ब्रह्माकृष्णश्चन्द्रमस ऽएनं परिवृढत्यमीति १३·२·७·७ श्रुतेः।
† त्रिपदाविराजं।

* सम्पूर्वः श्यतिः शोभनार्थः रथः रश्मिना कृत्वासंशितः दर्शनीयो भवतितस्मादयः पशुतो दर्शनीयतमो भवतीति १३·२·७·८ श्रुतेः।
५ अप्सुयोनिर्वा ऽश्व इति १३·२·७·१० श्रुतेः।
॥ सोमपुरोगवः मे वैनꣳ स्वर्गं लोकं गमयतीति १० श्रुतेः।

सुकृती गये तिस लोक में सविता देवता तुम्हे स्थापन करे +॥२६॥ + सवितैवैन स्वर्गेलोकेद धातीति १३।२। ७।१२ श्रुतेः।

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः। वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः।सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः॥२७॥

का॰ २०।६।८। अपां पेरुरिति ६।१०। प्राकृत मन्त्र और अग्निः पशुरिति वैकृत मन्त्र करि प्रोक्षणी अश्व के पीने के लिये गृहण करे॥ अश्व देवत्यानि त्रीणि यजूंषि। सृष्टि देवताओं का अग्नि पशु हुआ था तिस अग्नि रूप पशु करि देवता यजन करते हुए वोह अग्नि पशुभाव को छोडि इस (पृथिवी) लोक को जीतता हुआ जिस लोक में अग्नि है हे अश्व वोह लोक तेरा होगा तिस लोक को तू जीतैगा यह प्रोक्षणी का जल पी #। वायुः पशु हुआ था सूर्य पशु हुआ था वायु लोक (अन्तरिक्ष) सूर्यलोक स्वर्ग वे भी तेरे होंगे अन्यत्समानम्॥२७॥

पावकानतिक्रम्य पीयताम् इत्यादि। शत॰ १३।२।७।१३ श्रुतेः॥

अ॰५ प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा। अम्बे अम्बिके म्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥२८॥+

का॰ २।६।११। परिपशव्ये स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ६।११। दो आहुतियें होमि के प्राणायेत्याद्या तीनि आहुतियें होमें। एक अश्वसंज्ञपनकी आदि में चारि अन्त में॥ त्रीणि यजूंषि १।३। दे॰ प॰ २ दे॰ नि॰। प्राणाये-

+ अ॰ हा। अ॰। अ॰ हा। इ॰। व्य॰ हा। व॰। अ॰ मू। त्र॰।२८॥

त्यादि इन आहुतियोंसे अश्व को प्राणवन्त करना है+॥ का० २०।६।१२।
सब पत्नीएँ पशु शोधन के लिये पान्नेजनी हस्ताः पशुओं प्रति प्राप्ति हो
ते नमस्त आतानेति ६।१२। प्राकृतमन्त्र और अम्बे इत्याश्व मेधिक
मन्त्र को कहै॥ अश्व स्तुति रनुष्टुभः। पत्न्यः परस्परं वदन्ति हे अम्बे हे
अम्बिके हे अम्बालिके नामान्येतानि कोई क नर (मनुष्य) मुझै नही
प्राप्त कराता नहिं किमर्थे गम्यते तत्राह- अश्वकः (खोटा घोडा) अकु
त्सितोऽपीर्ष्य या कुत्स्यते- सुभद्रिका (खोटी स्त्री) सुभद्रिका ईर्ष्यया कु
त्स्यते- तिस नारी को लिये सोता है अश्व अन्य को लेकर सोता है इ
ति मया गम्यते नतु मां कश्चन्नयतीतिभावः। कैसी सुभद्रिका कि का
म्पील नगर में रहती तिसै (तत्र हि विदग्धाः सुरूपा कामिन्यो भवन्ति॥१८

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥१९॥+

का० २०।६।१३। सब पत्नीएँ पान्नेजनी हस्ता हो प्राण शोधन सै पहिले
अश्व को तीनि-तीनि प्रदक्षिणा देवें मध्य में तीन अप्रदक्षिणा फिरें
तीनों मन्त्रों से और वसो ममेति तीनों में अनुषङ्ग है तत्रैवम् प्रथम
गणानां इस मन्त्र करि तीनि प्रदक्षिणा फिरें तहां एक मन्त्रपूर्वक दोचुप
केसै फिरि प्रियाणाम् तीनि अप्रदक्षिणा निधीनाम् तीनि प्रदक्षिणा ऐ
सै नव ९ कृत्व इति सूत्रार्थः॥ चत्वारि लिङ्गोक्तानि यजूꣳषि। हे अश्व
हम तुझै आह्वान करती हें कैसे तुझै कि गणों के मध्य गणरूपेण पा
लक को। प्रियों वल्लभों के मध्य प्रिय के पालक को निधीओं (सुखनि

+ प्राणैर्वाश्विम्प्रीणात्यादि० श्रत० १३।२।८।२ श्रुतेः।

+ ग-मा०अ०।आ-तु।इ०॥१९॥२०॥

वीओं के मध्य सुखनिधि के पालक को। हे वसुरूप अश्व मेरा पति तू हुआ इति शेषः। का०२०.६.१४ पत्नीओं करि शोधित पशुओं के प्राणों विषें अध्वर्यु यजमान प्राण शोधन करते आहमजानीति मन्त्रेण महिषी अश्व समीपमें सोवै॥ अश्व देवत्यम्। हे अश्व गर्भधारक रेत(शुक्र) को मैं खींचि कर डालती हूं और तू गर्भधारक रेम खींचिकर डालि॥१९॥

ता॰ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु॥२०॥

पूर्वमन्त्र शेषः। तू और में दोनों चारो पैरोंको पसारें तेरे दो मेरे दो एवं संवेशन प्रकारः॥ का०२०.६.१५. अधीवास(नीचे और ऊपर से आछादन शक्त वस्त्र) करि स्वर्गेलोक इति अश्व महिषी को आछादन करै॥ अध्वर्यु वेदति। हे अश्व महिष्यो तुम स्वर्गलोक इस यज्ञभूमि+)में कपडे करि आछादित होओ॥ का०२०.६.१६. महिषी आपही अश्वशिश्न को निकालि वृषा वाजीति अपनी योनि में रखै॥ अश्वदेवत्यम्। अश्व मेरे विषें वीर्य स्थापन करै कैसा अश्व कि सींचने वाला वीर्य का धारण कराने वाला॥२०॥

+ पृथिवी स्वर्गलोको [illegible] नि०२३.४.८. [illegible] श्रुतेः।

अ०६ उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्। य स्त्रीणां जीवभोजनः॥२१॥

का०२०.६.१७. उत्सक्थ्या इति अश्व को यजमान अभिमन्त्रित करै॥ अश्व देवत्या गायत्री। हे वृषन्(सेक्तः) अश्व महिषी की गुदा के ऊपर वीर्य धारण करि कैसी महिषी कि उत्सक्थ्या(ऊंची हैं ऊरूएँ जिसकी) तिसकी। कथं तदाह कि लिङ्ग को भले प्रकार योनि में प्रवेश करि जो

लिङ्ग स्त्रीओं का जीव भोजन है जिस लिङ्ग के योनिमें प्रविष्ट होते स्त्रि
यें जीवती और भोगों को प्राप्त होती हैं तिसै प्रवेश करि॥२१॥

यका॒स॒कौ श॑कुन्ति॒का ह॒लगि॑ति॒ वञ्च॑ति। आह॑न्ति॒ ग॒भे प॒
सो॒ निग॑ल्गलीति॒ धार॑का॥२२॥

का॰२०।६।१८॰ अध्वर्य्वाद्यः पञ्च हये-हये॰सावितित नमोच्चारणपूर्वं
क हये हये प्रियं वदे॰ जघन चपले॰मन्मथ मोहिनीत्यादि संमुखी करि
करिके दशर्च सम्बन्धिनीदो-दो ऋचाओं करि कुमारी पत्नीओं के सा
थ उपहास सहित भले प्रकार कहें तहां प्रथम अध्वर्यु कुमारी कोपू
छता है अर्थात् हये-हये कुमारी यकासकौ शकुन्तिकेति॥कुमार्यो लि
देवत्या दश तन्मध्ये द्वितीयो परिष्टाद्बृहती अन्या नवानुष्टुभः॥अङ्गु
ल्या योनिं प्रदर्शयन्नाह।यका(या-जो)असकौ(असौ-यह†)शकुन्तिका
(अल्प पक्षिणी) इव आहलक्(हले हले†) शब्द करती हुई चलती है
(स्त्रीओंकी शीघ्रगमनमें योनि हल हला शब्द करती है।जब कि शकु
निसदृश्या गभे (भग*)में लिंग आहन्ति(भलेप्रकार जाता है तब धार
का लिङ्गकी धारण करने वाली योनि)निगल्गलीति(निरन्तर में वीर्य
को रूरती है॰चाहे जितनी पोंछो लिङ्गके घुसते ही सरला होजाती है)
यद्वा शब्दानुकरणम् गल्गल शब्द करती है(जबकि विशेषतः सरला
होजाती है तब गल्गलशब्द निकलता है॥२९॥

यको॰सकौ श॑कुन्त॒क आह॒लगि॑ति॒ वञ्च॑ति। विव॑क्ष॒
त-इव॒ ते॒ मुख॑मध्व॒र्यो॒ मा न॒स्त्वम॒भिभा॑षथाः॥२३॥

कुमारी अध्वर्यु प्रति कहती है।अङ्गुल्या शिश्नं प्रदर्शयन्त्याह। हे

† यह बोली ...वर्मों के ...की बोली में बोली जाती है पथा हमको ... हमारे बात मत ... जानते हो हमसम कसमूहम गडुमम हमसम ... टेसी वसमात नसमहसमी जसमात समेसम म हम ...

* शब्दानुकरणम् ४ वर्णविपर्ययः यह भी उलटी बोली बोली जाती है यथा लोटा सा ...

अध्वर्यो जो यह अल्पपक्षी इव वोलने की इच्छा करता तेरा मुखरी से हल हल वोलता इधर उधर चलताहै अग्रभाग में सछिद्र लिंग ऐसे तेरा मुख भासैहै। अतः हमारे प्रति मति वोलि तुल्यत्वात्॥ २३॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः। प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत्॥२४॥

ब्रह्मा महिषीमाह। हये-हये महिषि तेरे माता और पिता जव कि वृक्षजनित(काष्ठमय) मुञ्च के ऊपर आरोहणकरते हुए तब तेरे पिताने योनिमें मुष्टितुल्य लिङ्ग (छोटा और मोटा दृढ होताहै लम्बा पतला लंचिजाता है युक्तत्वात्) को डाला एवं तवोत्पत्ति वा लिङ्ग को उत्थान करि अलंकृत किया प्रतिलामी (तेरे भोग से चिकना हुआ) यह कहिकर इति शेषः॥२४॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य क्रीडतः। विवक्षत-इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु॥२५॥

अनुचरी सहिता महिषी ब्रह्मा प्रति कहती है। हे ब्रह्मन् तेरे माता और पिता ने जब काष्ठमय मुञ्च के ऊपर में रमण किया तब तेरी उत्पत्ति है तवापि तुल्यम् (यत्रोभयोः समो दोषः परिहारोऽपि वा समः। नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे इति न्यायात् तुरुकारि यह कहना योग्य नही इति भावः। एवं सत्यपि बोलने की इच्छा करता ऐसे तेरा मुख लखियेहै इति शेषः। हे ब्रह्मन् तू बहुत मत वोलि॥ २५॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव। अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव॥२६॥

उद्गाता वावातामाह। कंचिन्नरं प्रत्याह। हे नर इस वावाताको ऊँची उ-

ठाओ। कैसे कि जैसे कोई पर्वत के ऊपर भारको आरोहण करते निसे उ-
ठाता है तैसे इसे ऊँची करो। कैसे ऊँची कीजिये तहां कहिता है जैसे इ-
स वावाता की योनि बढिजावे तैसे बीच में पकडि कर उठाओ। दृष्टा-
न्तर माह जैसे शीत वाते पुनन्निव (धान्य पवन (परवत वाई)) करिके
कृषान धान्य पात्र (छवडा) को उठाता है तैसे॥ २६॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारं हरन्निव। अथास्य मध्यमे-
जतु शीते वाते पुनन्निव॥ २७॥

वावातोद्गातारं प्रत्याह। भवतोऽप्येतत्समानम्। हे नर इस उद्गातारको
ऊंचा उठाओ गिरौ भारमिति पूर्ववत्। जैसे इस उद्गाता का लिङ्ग कांपे
लहके शीतेवाते उक्तम्॥ २७॥

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्। मुष्काविदस्या
एजतो गोशफे शकुलाविव॥ २८॥

होता परिवृक्तामाह। जबकि इस परिवृक्ता की छोटी योनि प्रति स्थूललि-
ङ्ग जाता है तब दोनो वृषण इस की योनि के ऊपर कांपते हैं अर्थात् योनि
के छोटे होने और लिङ्ग के स्थूल होने से वृषण बाहिर रहते हैं। तत्र दृष्टा-
न्तः जैसे उदक पूर्ण तडाग में गो के पद के नीचे मत्स्य कांपते हैं। कैसी
इस की कि अंहुभेद्याः भग विदार्ये है जिस की वा भग भेदिये है जिस
की॥ २८॥

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः। सक्थ्ना देदिश्य-
ते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा॥ २९॥

परिवृक्ता होतारमाह। जब देवासः (देवता) क्रीडा करते हैं होत्रादिक-

लोग(ललामगु) लिङ्ग को योनि में प्रवेश कराते हैं। ललामेति सुखना
सुख को प्राप्त होता है लिङ्ग वा लिङ्ग योनि में प्रवेश करके उठता पुएड्र
होता है। कैसा है लिङ्ग कि विशेषेण गीला अर्थात् लिङ्ग योनि प्रवे
में भीगि जाता है। जब कि देवता(शिश्न क्रीडी लोग) लिङ्ग को योनि में प्र
श करते हैं तब स्त्री ऊरुओं करि अत्यन्त लखियै है अर्थात् भोग समय
स्त्री के सब अङ्गों के पुरुष व्याप्तत्व से ऊरुमात्र से ही लखियै है कि यह
ती है। तत्र दृष्टान्तः सत्यस्याक्षिभुवो यथा इति सत्य दो प्रकार का आँखों
का देखा और कानों का सुना- जैसे कोई अक्षिभुवा प्रत्यक्ष सत्य
करि अत्यन्त लखियै है तहां विश्वास होता है तैसे ऊरुओं करि देखने
से नारी लखियै है इत्यर्थः। श्रोत्रग्राह्ये तु सत्ये वक्तुराप्ततमत्वमपे
क्षितम्॥२९॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते। शूद्रा यदर्यजा
रा न पोषाय धनायति॥३०॥

क्षत्ता पालागलीमाह। जब कि हिरण क्षेत्रस्थ धान्य को भक्षण करता
है तब क्षेत्री पशु(हिरण) को पुष्ट हुआ नहीं मानता अर्थात् मेरे धान्य भ
क्षण से पशु पुष्ट हुआ यह भला नहीं जानता किंतु मेरे क्षेत्र को खाया इ
स से दुःखी होता है। एवं शूद्र जाति स्त्री अर्यजारा होती है अर्थात् वैश्य
जब शूद्रा प्रति जाता है तब शूद्र पुष्टि को नहीं इच्छा करता (मेरी स्त्री वै
श्य के भोग से पुष्ट हुई नहीं इच्छा करता किंतु व्यभिचारिणी हुई यह
दुःखी होता है॥३०॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते। शूद्रो यदर्यायै

जारो न पोषमनु मन्यते॥३१॥

पाला गली क्षत्ता रमाह। जब हिरण क्षेत्र खाताहै तब बहुत जैसे तैसे पशु की पुष्ट नहीं मानता इदं भवतोऽपि तुल्यम् इत्यन्वि शेषः जब शूद्र वैश्या का जार होताहै तब वैश्य पुष्टि को नहीं मानता अर्थात् मेरी स्त्री पुष्टा हुई यह नहीं भला मानता किंतु शूद्र (नीच) ने भोगी यह क्लेश पाता है॥३१॥ इति श्लील भाषणं (गालीबकना) समाप्तम्॥

दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूᳬषि तारिषत्॥३२॥

का॰२०॰६॰२१॰ महिषी (यजमान की प्रथम परिणीता पत्नी) अश्व समीप में सोती हुई को उठाकर अध्वर्यु ब्रह्मा उद्गाता होता क्षत्ता मन्त्र को पढ़ै॥ वामदेवात्मज दधिक्रा वद्दष्टाश्व दैवत्यानुष्टुप् सुरभिमती। हम अध्वर्य्यादिकोंने बुराकाम किया अश्लील भाषणमिति शेषः। किमर्थम् अश्वके संस्कारायेति शेषः अर्थात् अश्व संस्कार के लिये श्लील भाषण किया। कैसे अश्व के कि दधिक्रावा (मनुष्य को धारण करते चलताहै) तिसके। जयनशील के। चलने वाले के। हमारे मुख सुगंधित करै यज्ञ इति शेषः अर्थात् श्लील भाषण से दुर्गन्ध प्राप्त मुखों को यज्ञ सुगंध करै। किंच हमारे आयूᳬषि (बाल्य यौवन वार्धक्य जीवनों को बढावै+ कुबकने गाली देने से मुख में दुर्गन्ध होजाती और अवस्था घट जाती है इस कारण मुखों में सुगन्ध और जीवन की वृद्धि यज्ञ से प्रार्थना की॥ इति सुरभिमती ऋक्॥३२॥

अ॰७ गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह। बृहत्युष्णिहा

+सुरभिमतीमृचमन्तोऽन्वाहुर्वाचमेव पुनतऽइति १३.२.८.४ श्रुतेः।

ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥३३॥

का॰२०.७.१॰गायत्री त्रिष्टुविति षड़्चे दो-दो ऋचाओं करि महिष्याद्याः तीनों पत्नीएँ ताम्ररूप्यस्वर्णमयी प्रत्येक १०१-१०१-१०१ एकाधिकशत सूचीओं से अश्वके अङ्गमें शासकेमार्गोंकोकरें शासके सुख प्रवेश के लिये सुईयों से वितुन-वितुन के अश्वत्वच कोजर्जरी करें॥ अश्वदेवत्याः षड़्चः आद्योष्णिक्। हे अश्व गायत्री त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुप् पङ्क्त्या करि सहित बृहती उष्णिक् सहित ककुप् ये छन्दांसि इन सूचीओंसे तुम्हे संस्करें। विकरणव्यत्यय असि पथके अर्थ त्वग्भेदन संस्कार है॥३३॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः। विछन्दा याश्च सछन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥३४॥

चतस्रोऽनुष्टुभः। दोपद हैं जिन्हों के ते जे चारिपद के जे तीनि पद के जे छैः पद के जे छन्द लक्षण हीन जे छन्द लक्षण युक्त ते सब छन्दों की जातियें हे अश्व सू॰॥३४॥

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः। मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥३५॥

महत् नाम जिन्हों के तेमहानाम्नी शक्वर्य ऋचाएँ। जिन ऋचाओंमेंसाम गाया जाता है वे रेवती। सब दिशाएँ। कैसी दिशाएँकि प्रभूवरीः सव भूतों के धारण करने को समर्थ हैं। मेघसें उठी विजली और वेदलक्षणवाचा। ये सब हे अश्व॰॥३५॥

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया। देवानां पत्न्यो

दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

हे अश्व नारियें (स्त्रियें) तेरे रोमों को मन से विचारि उखेडें। कैसी स्त्रियें कि यजमान भार्या (महिष्याद्या) पालि एँ। किंच इन्द्रादि देवताओं की पत्नि एँ प्राच्याद्या दिशाएँ हे अश्व०॥३६॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वस्य वा जिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः॥३७॥

रजताः (रजतमय्यः) हरिणीः (सुवर्णमय्यः) सीसाः (ताम्रमय्यः) तीनिप्रकार की सूचीएँ होतीहैं लोहमयी रजतमयी हिरण्मयी दिशाएँ लोहमयी। अवान्तर दिशाएँ रजतमयी। ऊर्ध्वा हिरण्मयी तिन्हों से सीमा करतीहें + सूचीओं का दिग्रूप होने से अश्व संस्कार क्षमत्व है ते सूचीएँ कर्मों करि अश्वदेह में सीमाकरण योग्या होतीहें। कैसी हें ते कि एकीभूताः। ते सूचीएँ वेगवान् अश्व त्वचा में भले प्रकार रेखाएँ करें। कैसी हें कि संस्कार करने वाली एँ॥३७॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति॥३८॥

व्याख्याता १०।३२। अ०॥३८॥

अ०८ कस्त्वाछ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति। क उ ते शमिता कविः॥३९॥

का०२०।७।६। षड्ऋच अनुवाक करि अश्व के उदर को फाडे मेद के उद्धरण के अर्थ वपा के अभाव से उदर मध्यस्थ घृताभ श्वेत मांस को मेद कहिते हैं॥ अश्वदेवत्या षड्ऋचः आद्या गायत्री। हे अश्व कः (प्रजापति) तु

तैं छेदताहै। हे अश्व प्रजापति तुझै विशास्ति त्वचाकाढताहै। तेरे गात्रों को शमन करि हविकरता है। और प्रजापति ही मेधावी तेरा शमिता शमन करनेवाला अर्थात् प्रजापति ही सब करताहै कुछ मैं नहीं करता हूं॥३९॥

ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु। संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा॥४०॥

पञ्चानुष्टुभः। हे अश्व ऋतुएँ शमितारः ऋतुथा (काल-कालमें) तेरे पर्वों (अस्थिग्रन्थियें) को कर्मोंकरि भिन्नकरें। किसकरि कि संवत्सरात्मक काल के तेज से। किंच ऋतुएँ तुझै पर्वविशासनकरि हविकरें॥४०॥

अर्धमासाः परूंषि ते मासा आछ्यन्तु शम्यन्तः। अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते॥४१॥

पखवारे और महीने तिन्हों के अभिमानी देवाः संस्कार करते हे अश्व तेरे पर्वों को भले प्रकार छेदें। किंच अहोरात्राभिमानी देवा और मरुद्देवा तेरे अल्प अङ्गों को व्यर्थ न होनेदें॥४१॥

दैव्या अध्वर्यवस्त्वा छ्यन्तु वि च शासतु। गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः॥४२॥

देव सम्बन्धिनी अश्विनीकुमार अध्वर्यु हे अश्व तुझै समन्तात् छेदें और हविकरें किंच तेरे शरीरों पर्वों-पर्वों में मर्यादा (रेखा) करें कैसी रेखाएँ कि संस्कुर्वाणाः॥४२॥

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते। सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया॥४३॥

स्वर्ग पृथिवी अन्तरिक्ष तीन्यों लोकों के अभिमानी देवाः अग्नि वायु सूर्य और वायु (शरीरस्थ प्राणादि) हे अश्व तेरे छिद्रों (न्यूनों) को पूरें और च नक्षत्रयुक्त सूर्य तुझे उत्तमलोक देवे ॥४३॥

शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः। शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥४४॥

हे अश्व तेरे ऊंचे अवयवों (शिरआदिकों) के अर्थ सुख हो। और नीचे गात्रों (पादादिकों) के अर्थ सुख हो। तेरे अस्थ्यों (हड्डों) और मज्जा के अर्थ सुख हो किम्बहुना तेरे सब शरीर का भी सुख हो ॥४४॥

अथ ब्रह्मोद्यम्

अ०६ कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः। किं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥४५॥

का०२०.७.१०. वपा होम से पहिले चारि ऋचा ओं से पूर्व वदुक्ति प्रत्युत्तया सद के मध्य में जाकर होता और अध्वर्यु संवाद करें॥ अष्टादश ऋचो ब्रह्मोद्य संज्ञाः-ब्रह्मोद्यं परस्परं संवादः आद्याश्चतस्रोऽनुष्टुभः ४५-४८. चतुस्रस्त्रिष्टुभः ४९-५२. ततश्चतस्रोऽनुष्टुभः ५३-५६. पुनः षट् त्रिष्टुभः ५७-६२.। होताध्वर्युं पृच्छति व्याख्याता ॥४५॥

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

अध्वर्युः प्रत्याह। व्याख्याता १०॥४६॥

किं स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किं समुद्रसमं सरः। किं स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥

अध्वर्यु होतारं पृच्छति। हे होतः सूर्य मण्डल तुल्य तेज कौंन है तिसैक हु। समुद्र समान सर कौंन। पृथिवी के सकाशसे वर्षीय(महत्तर) कौंन किसका परिमाण नहीहै॥४७॥

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः। इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्गोस्तु मात्रा न विद्यते॥४८॥

होता प्रत्याह। सूर्यसमान ज्योति ब्रह्म(त्रयीलक्षण वा पर) है। समुद्रसम सर द्यौ(अन्तरिक्ष)है क्योंकि वृष्टि होती है। पृथिवी के सकाश से इन्द्र वर्षीयान्(वृद्धतर)है। और गौ(धेनु)का परिमाण नही है(यज्ञ धारकत्वात्)॥४८॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ। येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ३॥ऽ॥४९॥

\+ भुवनमाविवेशा इति वा पाठः।

का० २०.७.११. ब्रह्मा उद्गाता को पूछे चारि ऋचाओंसे सदमें॥ ब्रह्मा उद्गातारं पृच्छति। हे देवताओं के मित्र उद्गातः तुझे ज्ञान के अर्थ में पूछताहूँ यहाँ मेरे किये प्रश्न में जोकि तू मनकरि जानता है। किंपृच्छसीत्यत आह- विष्णु(यज्ञ)जिन तीनों पदों(गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्नि)में याग करि तर्पित है तिन तीनों पदो में सब भूतजात प्रविष्ठ है वानही॥४९॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश। सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम्॥५०॥

द्गाता प्रत्याह। जिन तीनों पदों में सब भूतजात प्रविष्टहै जो तूमें पूछता
तीनोंपदों में मेंभी स्थित हूं और तूभी नहांही है किमेताव देवजान
ताहूं किंतु पृथिवी द्यां(स्वर्ग)दिवः(स्वर्ग)का उपरि भाग भी सद्यः(स्व
क्षणमेव) एकेनाङ्गेन(मनकरि)पर्येमि(जानताहूं)किम्पुनर्भूतानि
प्रविष्टानीति भावः॥५०॥

केष्वन्तः पुरुष आविवेश कान्यन्तः पुरुषेऽअर्पिता-
नि। एतद्ब्रह्मन्नुपवल्हामसि त्वा किᳬस्विन्नः प्रतिभा-
स्यत्र॥५१॥

उद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति। हे ब्रह्मन् पुरुष किन पदार्थों के मध्यमें
समन्तात् प्रविष्टहै। पुरुष के मध्य में कौन वस्तु स्थापित हैं। एतत्
तुमें स्पर्धा करि पूछता हूं। इस प्रश्न में क्या तू कहिता है॥५१॥

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पिता-
नि। एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्त-
रो मत्॥५२॥

ब्रह्मा प्रत्याह। पुरुष(आत्मा)पांचो प्राणों के मध्यमें प्रविष्टहै ते(प्रसिद्ध)
प्राणाधिकरण पुरुषके मध्य में स्थापित हैं(प्राणात्मनामन्योऽन्यापेक्षासि-
द्धिरित्यर्थः न चात्मानमन्तरेण प्राणाः ख्यायन्ते न प्राणमन्तरेणा-
त्मेति बह्वृचश्रुतेः यद्वा पांचो भूम्यादि भूतों में आत्मा प्रविष्टहै औ-
र ते आत्मा में प्रविष्ट हैं(तानि सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति श्रुतेः। हे
उद्गातः में इस प्रश्न में यह उत्तर देताहूं। किंच बुद्धि करि मुझसे उत्तर
अधिक तू नहीं(मुझसे बुद्धिमान् नहीं है)॥५२॥

अ॰१॰ का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद्बृहद्वयः। का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशंगिला॥५३॥

का॰२०॰७॰१२॰ फिरि सद से निकलकर हविर्धान के साम्ने उत्तरवेदि के [illegible] बैठिकर होता अध्वर्यू चारि ऋचाओं से संवाद करें॥ होताध्वर्युप्र[illegible]ति। व्याख्याता ११॰॥५३॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः। अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशंगिला॥५४॥

अध्वर्यु प्रत्याह। व्याख्याता १२॰॥५४॥

क ईमरे पिशंगिला क ईं कुरुपिशंगिला। क ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पति॥५५॥

अध्वर्युर्होतारं पृच्छति। अरे† होतः कौन पिशंगिला और कौन कुरुपिशंगिला और कौन फुद्दी मारिके चलता और कौन मार्ग प्रति सरपट्टा भरताहै॥५५॥

अजारे पिशंगिला श्वावित्कुरुपिशंगिला। शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां विसर्पति॥५६॥

होता प्रत्याह। अरे अध्वर्यो अजा (नित्या॰ माया वा रात्रि) रूप को भक्षण करती है‡। श्वावित् (सेही) कुरु (शब्दानुकरणं) पिश (अवयव) कुरु-कुरु शब्द करती हुई मूलाद्यवयवों को निगलती है*। शश (सस्सा) फुंदक-फुंदक करि चलता है। सर्प मार्ग को विशेषेण जाताहै॥५६॥

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः। यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतु-

† अरे इति नीच सम्बोधनम्।

‡ पिशंगिला (माया) विश्वरूपस्तेन रात्रिः वर्णि रूपाणि न प्रकाशयन्ति तमसा।

* कुरु इति शब्दं कुर्वाणा पिशान्मूलाद्यवयवानिगिलति पिशंगिला मूलानां शतं कुक्षौ स्थापयति शतं च भक्षयतीति सेधायाः स्वभावः।

शो यजन्ति ॥५७॥

का॰ २०.७.१३. उत्तरो पश्चाद्दुक्तौ ब्रह्मा और उद्गाता चारि ऋचाओंसे संवाद करैं। ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति। इसयज्ञ के कितने विष्ठाः(विशेषेणस्थितिष्ठे हे यज्ञ जिन्हों में ते अन्न हैं। और अक्षर कितने। होम कितने। समिधाएँ कितनी। यज्ञवेदित्वत्व हेतु करि इस स्थान में तुम्हें मैं पूछता हूं कि ऋतु-ऋतु में कितने होता पूजते हैं॥५७॥

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः। यज्ञस्य ते विदथा प्रब्रवीमि सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति ॥५८॥

उद्गाता प्रत्याह। इस यज्ञ के छै ६ अन्न हैं(सर्वेषामन्नानां षड्रसात्मत्वात्। शत अक्षर हैं(छन्दोंसे यज्ञ निष्पादन करियै है और ते छन्द गायत्र्यादि अतिधृत्यन्त चतुर्दश· चतुर्विंशत्यक्षरादि चतुर्वर्णान्तर· तिन्हें की क्रमोत्क्रमगति करि दो मिलनेसे शत अक्षर होते हैं। तथाहि। गायत्री २४ अक्षर अतिधृति ७६ एवं हे १०० उष्णिक् २८ धृति ७२ एवं १०० अनुष्टुप् ३२ अत्यष्टि ६८ एवं १०० बृहती ३६ अष्टि ६४ एवं १०० पङ्क्ति ४० अतिशक्वरी ६० एवं १०० त्रिष्टुप् ४४ शक्वरी ५६ एवं १०० जगती ४८ अतिजगती ५२ एवं १०० अनेनाभिप्रायेण शतमक्षराणीत्युक्तम्। अशीति होम हैं(अश्वमेधमें इक्कीस २१ यूप हैं तहां अग्निष्ठ मध्यम यूपमें अश्व तूपर गोमृगों को जोडै इतरों में षोडश पशुओं को तहां वीस २० यूपों में चारि-चारि अशी ८० पशु होते हैं इत्यभिप्रायेणोक्तम् अशीतिर्होमाः ह (स्फुटं) तीनि ३ समिधाएँ अश्व· तूपर· गोमृग· प्रजापति के पशु हैं त

रूप समिधाओं से यज्ञ प्रकाशैहै। किंच सप्त७ होतारः (वषट्कर्तारः) ऋतुयाजों में यजते हैं॥५८॥ + अ॰५७ का॰७॥५३ऋक्

कोऽ अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवीऽ अन्तरिक्षम्। कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः॥५९॥

उद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति। हे ब्रह्मन् इस भूतका नाभि (बन्धन स्थान॰ कारण) कौन जानताहै। द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्षको कौं॰—है। बड़े सूर्यकी उत्पत्ति किससेहै। यतः चन्द्रमाकी उत्पत्ति तिसे कौन जानताहै॥५९॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवीऽ अन्तरिक्षम्। वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः॥६०॥

इस भुवन का कारण मैं जानताहूं परब्रह्मैव जगत्कारणहै। द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष को ब्रह्मका विकार भूतजानताहूं। बड़े सूर्यका उत्पति कारण ब्रह्मही जानताहूं। और यतः परमात्मा से हुआ चन्द्रमाको जानताहूं॥६०॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः। पृच्छामि त्वा वृष्णोऽ अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम॥६१॥

का॰२०७।१४॰ यजमानोऽध्वर्युं पृच्छति। हे अध्वर्यो पृथिवी का परमन्त (अवधिभूतपर्यन्त) तुम्हे मैं पूछताहूं। जिसस्थल मैं भूतजातका कारण वोह भी तुम्हे पू॰ सींचने वाले अश्वके वीर्यको तु॰ वाणी (त्रयीलक्षण)

के उत्कृष्ट स्थान को तुझे पूछता हूं ॥६१॥

इयं वेदिः परो॒ऽअन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। अयर्ठं सोमो वृष्णो॒ऽअश्वस्य रेतः ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥६२॥

का॰२०॰७॰१५॰ अध्वर्युः यजमानं प्रत्याह। यह वेदि(उत्तरवेदि)पृथिवी की परअवधि है(वेदेःसर्वपृथ्वीरूपत्वात्। यह यज्ञ (अश्वमेध)प्राणिजात का कारण है(यज्ञाद्वै प्रजाःप्रजायन्तऽइतिश्रुतेः।यह सोम(सोमलता) अश्व का वीर्य है। यह ब्रह्मा(ऋत्विक्)वाणी(त्रयीरूपा)का परमस्थान है(ब्रह्मणस्त्रिवेदसंयोगात्॥६२॥ ॥ इति ब्रह्मोद्यं समाप्तम् ॥

अ॰११ सुभूः स्वयम्भूः प्रथमो॒ऽन्तर्महत्यर्णवे। दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः॥६३॥

सुभूरिति पूर्वस्य महिम्नः पुरोऽनुवाक्या उत्तरस्य याज्या च। उदिते ब्रह्मोद्यं सम्प्रपद्याध्वर्युर्हिरण्मयेन पात्रेण प्राजापत्यं महिमानं ग्रहं गृह्णाति तस्य पुरोरुग्घिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रऽइत्यथास्य पुरोऽनुवाक्या सुभूः स्वयम्भूरिति १३॰५॰२॰२३॰ श्रुतेः। प्रजापतिदेवत्यानुष्टुप्। पुरुषःमहति अर्णव(कल्पान्तकालीनसमुद्र)के मध्यमें गर्भको स्थापन करताहुआ। कैसा कि सुभू(विश्वोत्पादक)स्वयंभू(स्वेच्छाधृत शरीरः। कैसे गर्भको कि ऋत्वियम्(प्राप्तकालम्)जिस गर्भ से प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुआ॥६३॥

होता यक्षत्प्रजापतिर्ठं सोमस्य महिम्नः। जुषतां पिबतु सोमर्ठं होतर्यज ॥६४॥

प्राजापत्यः महिम्नः प्रैषः। होता यक्षत्प्रजापतिमिति प्रैष इति १३॰५॰२

२३·श्रुतेः। यजुः। महिमसंज्ञक सोमग्रह के सम्बन्धि प्रजापति को दैव्योहो-
ता यजन करे। इज्यमान वोह प्रजापति सेवन करे और सोम (महिम ग्रह)
को पीवै। हे मनुष्य होतः तूभी यजन करि॥६४॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। य-
त्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयथंस्याम पतयो रयीणाम्॥६५॥

इतिसंहितायामेकादशोऽनुवाकः ११

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहितायां
दीर्घपाठे त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

पूर्वस्य महिम्नो याज्या। प्रजापतेन त्वदेतान्यन्य इति होता यजतीति-
१३·५·२·२३·श्रुतेः। हिरण्यगर्भदृष्टा प्रजापतिदेवत्या त्रिष्टुप्। दशमे
ऽध्याये २०·अ· यजुर्मध्या व्याख्याता अत्र तु ऋगियम्॥६५॥

इति भाष्ये एकादशोऽनुवाकः ११

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देया धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः २३

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्व-
य विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जय किशोर देव वर्म्मात्मज रौक्मिणेय
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये आश्वमेधि
कस्त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

हरिः ओम्

ओंनमोऽनन्तपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २४

अ०१ अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयो
रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ
बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याᳪं सौर्ययामौ श्वेत-
श्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वा-
यव्यः श्वेतः पुच्छ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वा-
मनः ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्काय
गिरिप्रसादसंगेन वेदभाष्येसमीर्यते
वेदनेत्रमितोऽध्यायो देवतापशुवाचकः २४

श्रुतिरूपमन्त्रा आश्वमेधिकानां पशूनां देवतासम्बन्धविधायिनोऽध्या-
येनोच्यन्ते॥ का० २०।६।२-५ अग्निष्ठेऽश्वतूपरगोमृगान्नियुनक्ति य-
थोक्तमश्वादौ देवताः यथाश्वस्तूपरोऽध्यायः पर्यङ्ग्यान् श्वेः पञ्चदश-
पञ्चदश रोहितादीन्त्सौर्यान्तानितरेषु॥ तत्राश्वमेधे एकविंशतिर्यूपाः
सन्ति तत्र मध्यमो यूपोऽग्निष्ठसंज्ञः तत्र सप्तदश पशवो नियोजनीयाः
तान्देवतासम्बन्धकथनपूर्वकमाह। अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः।
अश्वः तूपरः(शृङ्गोत्पत्तिकालेऽतीतेऽपि शृङ्गहीनः) गोमृगः(गवयः)
एते प्रजापतिदेवताः ततः प्रजापतये जुष्टं नियुनज्मीति मन्त्रेण ब-
न्धनीयाः। एवमग्रेऽपि यो यद्दैवत्यः पशुः सः असुष्मै जुष्टं नियुनज्मी-
त्यादिमन्त्रैर्बन्धनीयः॥ आग्नेयोऽग्निदेवतः कृष्णग्रीवः श्यामव-

लोऽजः अश्वस्य पुरस्तात् ललाटे उपायेन बन्धनीयः।हन्वोरधस्ता
त्सारस्वती मेषी बन्ध॰।आश्विनावधोरामौ अधोभागे शुक्लवर्णौवजौ
बाह्वोः अश्वस्य पूर्वपादयोरेकैकः।सोमपूषदेवत्यः श्यामः शुक्लकृष्ण
माजोऽश्वस्य नाभ्यां बन्ध॰। श्वेतः कृष्णश्च सौर्ययामौ श्वेतः पशुः सू
र्यदेवतो दक्षिणपार्श्वे बन्ध॰यमदैवतः कृष्णोऽश्ववामपार्श्वे।त्वाष्ट्रौत्व
ष्टृदेवतौ लोमशसक्थौ बहुरोमपुच्छिकौ पशू अश्वस्य सक्थ्योरूर्वोःप
श्चान्यदयोरेकैकः।वायव्यः श्वेतवर्णः पशुरश्वस्य पुच्छे। स्वपस्यायशो
भनकर्मणे इन्द्राय स्वपस्येन्द्रदेवता वेहत् गर्भघातिनी वैष्णवो वाम
नः पशुश्च पुच्छ॰एव अङ्गान्तरानुक्तेः॥एवमश्वादिभिः सह पञ्चदश
भवन्ति एते पर्यङ्ग्या उच्यन्ते।अत्राश्वस्य शरीरं नरणाय तुंबीफलवद्र
ज्जुं बद्ध्वा गुम्फनीयम् ततः कृष्णग्रीवः आग्नेयो रराट॰इत्यादयोऽश्व
स्य शरीरे यथोक्तस्थाने सम्बद्धायां रज्ज्वां बन्धनीयाः ततो रोहितोधूम्र
रोहित इत्यादयो द्वादशसंख्याकाः शितिबाहुरन्यन्तःशितिबाहुः समन्त
शितिबाहुस्ते बार्हस्पत्या इत्यन्ता मध्यमे एव यूपे नियोज्याः सप्तदशैव
पशून्मध्यमे यूप॰आलभत॰इति १३॰५॰१॰१५॰श्रुतेः तत्र त्रयोऽश्वतूपर-
गोमृगाः द्वौ चाग्नेयावैकादशिनौ द्वादश रोहितादयः एवं सप्तदश म
ध्यमे यूपे। ततः पृषती क्षुद्रपृषतीत्यादीनां श्वेताःसौर्या इत्यन्तानां १९॰
शतत्रयसंख्याकानां पशूनां मध्ये पञ्चदश-पञ्चदश पशूनेकैकस्मिन्यू
पे युनक्ति। एवमितरेषु यूपेषु पञ्चदश-पञ्चदशैते पशवः एकैकश्चै
कादशिनः।एवं मध्यमयूपव्यतिरिक्तेषु विंशतियूपेषु षोडश-षोडश
पशवो भवन्ति षोडश-षोडशेतरेष्विति १३॰५॰१॰१५॰श्रवणात्॥१॥

+ २९॰५०॰५९॰द्वावैकादशिन्यौ पशव उक्ताः

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥२॥

रोहितः सर्वरक्तः धूम्ररोहितः धूम्रवर्णमिश्रो रक्तः तृतीयः कर्कन्धुरोहितः बदरसदृशरक्तः ते त्रयः सौम्याः सोमदेवत्याः सोमाय जुष्टं नियुनज्मीत्यादिमन्त्रेण प्रत्येकं मध्यमे यूपऽएव नियोज्याः। ततो बभ्रुः कपिलवर्णः अरुणबभ्रुः अरुणवर्णमिश्रः कपिलः शुकबभ्रुः शुकपक्षिसमवर्णः कपिलश्च ते त्रयो वारुणाः वरुणदेवत्याः मध्यमयूपऽएव। शिति कृष्णं रन्ध्रं छिद्रं यस्य स शितिरन्ध्रः अन्यतइत्येकपार्श्वे शितिरन्ध्रः एते सारस्वताः मध्यमे एव। शितिबाहुः श्वेतपूर्वपादः अन्यतःशितिबाहुः एकस्मिन्नेव पार्श्वे शितिपादः समन्तशितिबाहुः सर्वश्वेतबाहुः शिती धवलमेचकौ एते बार्हस्पत्याः बृहस्पतिदेवत्याः मध्यमे एव॥ ॥अथ द्वितीययूपे। पृषती विचित्रवर्णविन्दुयुक्तशरीरा क्षुद्रपृषती सूक्ष्मविचित्रविन्दुयुक्ता स्थूलपृषती स्थूलविचित्रविन्दुयुक्ता एते स्त्रीपशवो मित्रावरुणदेवताः द्वितीये यूपे नियोज्याः॥२॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥३॥

शुद्धवालः शुभ्रवालः सर्वशुद्धवालः मणिशुद्धवालः मणिवर्णकेशः

त्रय आश्विदैवत्याः द्वितीये। श्येतः श्वेतवर्णः श्येताक्षः श्वेतनेत्रः अरु-
णः रक्तः ते त्रयो रुद्राय पशुपतये पशुपतिरुद्रदैवता द्वितीये। कर्णास्त्र-
यः पशुविशेषाः कर्णश्चन्द्रे च वृक्षे चेति विश्वोक्तेः कर्णश्चन्द्रसदृश-
न कर्णास्त्रयः पशवः बहुवचनस्य त्रिले पर्यवसानात् यामाः य-
देवताः द्वितीये। अवलिप्ताः सगर्वास्त्रयो रौद्राः। एते द्वितीये पञ्च-
दश॥ ॥अथ तृतीये यूपे। नभोरूपाः आकाशवन्नीलवर्णाः पार्ज-
न्याः पर्जन्यदेवताः पशवस्तृतीये नियोज्याः॥३॥

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितो-
र्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्या-
लोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थ-
स्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः॥४॥

पृश्निः विचित्रवर्णः तिरश्चीनानि पृश्नीनि बिंदवो यस्य सः एवमू-
र्ध्वानि पृश्नीनि यस्य सः ते त्रयो मारुताः मरुद्देवत्यास्तृतीये। फल्गूः
अपुष्टशरीरा लोहितोर्णी रक्तरोमवती पलक्षी श्वेता पलक्षशब्दो-
वलक्षार्थः श्वेतपर्यायः तास्तिस्रोऽजाः सारस्वत्यः सरस्वतीदेवतास्तृ-
तीये। प्लीहाकर्णः प्लीहा रोगविशेषः तद्युक्तौ कर्णौ यस्य स प्लीहकर्णः
अन्येषामपि दृश्यत इति पा॰६।३।१३७ संहितायां दीर्घः शुण्ठकर्णः ह्र-
स्वकर्णः अध्यालोहकर्णः रक्तवर्णकर्णः ते त्रयस्त्वाष्ट्राः त्वष्टृदेवतास्तृ-
तीये। कृष्णग्रीवः शितिकक्षः श्वेतकक्षः अञ्जिसक्थः अञ्जि पुण्ड्रं
सक्थ्नोरूर्वोर्यस्य सः ते त्रय ऐन्द्राग्नाः इन्द्राग्निदेवताः तृतीये। पञ्च-
दश पूर्णाः॥ ॥अथ चतुर्थे कृष्णाञ्जिः कृष्णपुण्ड्रः अल्पाञ्जिः महाञ्जिः अल्पम-

न्त्रि यस्य स तथा ते त्रय उषस्या: उषोदेवताश्चतुर्थे यूपे नियोज्याः॥४॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचे॑ऽविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः॥५॥

विचित्रवर्णास्तिस्रः स्त्रीपशवो वैश्वदेव्यः विश्वदेवदेवताश्चतुर्थे। रोहिण्यः रक्तवर्णाः त्र्यवयः सार्धसंवत्सरास्तिस्रोऽजा वाचे वाग्देवताश्चतुर्थे। अविज्ञाताः कृष्णग्रीवादिचिह्नविज्ञानशून्यास्त्रयः पशवोऽदित्यै अदितिदेवताश्चतुर्थे। सरूपाः समानरूपास्त्रयः पशवो धात्रे धातृदेवताश्चतुर्थे। एवं पञ्चदश॥ ॥अथ पञ्चमे यूपे तिस्रो वत्सतर्यः बालछाग्यो देवानां पत्नीभ्यः तद्देवताः पञ्चमे॥५॥

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाꣳ रोहिता रुद्राणाꣳ श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः॥६॥

कृष्णग्रीवाः कालकण्ठास्त्रयः पशव आग्नेयाः अग्निदेवताः पञ्चमे। शितिभ्रवः श्वेतवर्णभ्रूयुक्तास्त्रयो वसूनां वसुदेवताः पञ्चमे। रोहिताः रक्तवर्णास्त्रयः रुद्राणां रुद्रदेवताः पञ्चमे। श्वेताः अवरोकिणः अवलोकिनः यद्वा अवाधस्ताद्रोकः छिद्रं येषां ते छिद्रं निर्व्यथनं रोकः ते त्रयः आदित्यानां तद्देवताः पञ्चमे॥ ॥अथ षष्ठेयूपे नभोरूपाः पार्जन्यास्त्रयः षष्ठे॥६॥

उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः॥७॥

उन्नतः उच्चः ऋषभः पुष्टः वामनः बहून्यपि वयसि गते ह्रस्व-

रहितः ते त्रय ऐन्द्रा वैष्णवाः इन्द्रविष्णुदेवताः षष्ठे। उन्नतः शिति-
भ्रुः श्वेतपूर्वपादः शितिपृष्ठः श्वेतपृष्ठः ते त्रयः ऐन्द्राबार्हस्पत्याः
इन्द्रबृहस्पति देवताः षष्ठे। शुकरूपाः शुकपक्षिसमवर्णाः त्रयोवा-
जिनाः वाजिदेवताः षष्ठे। कल्माषाः कर्बुरास्त्रयः पशव आग्नि-
मारुताः षष्ठे। एवं पञ्चदश॥ ॥अथ सप्तमे यूपे। श्यामाः शु-
क्लकृष्णवर्णाः पौष्णाः पूषदेवताः सप्तमे॥७॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह
आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतएन्यो मैत्र्यः॥८॥

एताः कर्बुरवर्णास्त्रय इन्द्राग्निदेवताः सप्तमे। द्विरूपाः वर्णद्वयोपे-
तास्त्रयः अग्नीषोमीयाः अग्निसोमदेवत्याः सप्तमे। वामना अ-
नड्वाहः त्रय आग्नावैष्णवाः अग्निविष्णुदेवत्याः सप्तमे। व-
शाः बन्ध्याः तिस्रोऽजाः मैत्रावरुण्यः तद्देवताः सप्तमे॥ ॥अष्ट-
ष्टमे यूपे। अन्यतएन्यः एकपार्श्वे कर्बुरवर्णास्तिस्रोऽजा मैत्र्यः
मित्रदेवत्याः अष्टमे॥८॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या
अविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां
पत्नीभ्यः॥९॥

कृष्णग्रीवा आग्नेयास्त्रयः अष्टमे। बभ्रवः कपिलवर्णास्त्रयः सौ-
म्याः सोमदेवत्याः अष्टमे। श्वेतास्त्रयः वायव्याः वायुदेवत्याः अ-
ष्टमे। अविज्ञाताः चिन्हाविशेषेणाज्ञातास्त्रयः अदितिदेवत्याः अ-
ष्टमे॥ ॥अथ नवमे। सरूपाः धातृदेवत्याः नवमे। वत्सतर्यः देव-

पत्नीदेवत्यास्तिस्रः नवमे ॥९॥

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥१०॥

कृष्णाः भौमाः भूमिदेवत्यास्त्रयः नवमे । धूम्रवर्णास्त्रयः अन्तरिक्षदेवत्याः नवमे । बृहन्तो महान्तस्त्रयः दिव्याः द्युदेवत्याः नवमे ॥ ॥ अथ दशमे । शबलाः कर्बुरास्त्रयः वैद्युताः विद्युद्देवत्याः दशमे । सिध्माः सिध्माख्यरोगवन्तस्त्रयः तारकाः नक्षत्रदेवत्याः दशमे ॥१०॥

अ० २ धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान्ग्रीष्माय कृष्णान्वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥११॥

धूम्रवर्णान् त्रीनजान् वसन्ताय वसन्तदेवतानालभते नियुनक्ति दशमे । श्वेतान् त्रीन्ग्रीष्माय दशमे । कृष्णवर्णान् त्रीन्वर्षाभ्यः दशमे ॥ ॥ अथैकादशे । अरुणान् रक्तान् त्रीन् शरदे एकादशे । पृषतः नानावर्णविन्दुयुक्तान् त्रीन्हेमन्ताय एकादशे । पिशङ्गान् लोहितमिश्रकपिलवर्णान् त्रीन् शिशिराय एकादशे ॥११॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे ॥१२॥

सार्धसंवत्सरास्त्रयः गायत्र्यै एकादशे । सार्धद्विसंवत्सरास्त्रयः त्रिष्टुभे एकादशे ॥ ॥ अथ द्वादशे यूपे । दित्यवाहः द्विसंवत्सरास्त्रयो जगत्यै द्वा० । त्रिवत्साः त्रिवर्षाः त्रयोऽनुष्टुभे द्वा० । तुर्यवाहः सार्धत्रिसंवत्सरास्त्रय उष्णिहे द्वा० ॥१२॥

पष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे॥१३॥

पष्ठवाहः चतुःसंवत्सरास्त्रयो विराजे द्वा०। उक्षाणः सेचनसमर्थो युवानस्त्रयः बृहत्यै द्वा०॥ ॥अथ त्रयोदशे यूपे। ऋषभाः उक्ष्णोऽप्यधिकवयस्काः त्रयः ककुभे त्रयोदशे। अनड्वाहः शकटवहनसमर्था अजास्त्रयः पङ्क्त्यै त्रयो०। धेनवः नवप्रसूता अजास्तिस्रः अतिच्छन्दसे त्रयो०॥१३॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः॥१४॥

अथ चातुर्मास्यदेवाः पशवः श्वेताः सौर्या इत्यन्ताः। तत्र प्रथमं वैश्वदेवपर्वपशव उच्यन्ते। कृष्णग्रीवाः त्रयः आग्नेयाः त्रयो०। बभ्रवः कपिलास्त्रयः सौम्याः॥ ॥अथ चतुर्दशे यूपे। उपध्वस्ताः उपध्वंसनमधः पतनं तद्गुणविशिष्टा वर्णान्तरमिश्रिता वा त्रयः सवितृदेवताः चतु०। वत्सतर्यः तिस्रः सरस्वती देवताः चतु०। श्यामाः शुक्लकृष्णवर्णाः पौष्णाः पूषदेवत्याः चतु०। पृश्नयः तनुकाया विचित्रवर्णा वा त्रयो मरुद्देवताः चतु०। बहुरूपास्त्रयो वैश्वदेवाः चतु०॥ ॥अथ पञ्चदशे। वशाः वन्ध्यास्तिस्रो द्यावापृथिवीयाः द्यावापृथिवीदेवत्याः पञ्च०॥१४॥

उल्काः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः॥१५॥

अथ वरुणप्रयासपर्वपशव उच्यन्ते। संचर शब्देन कृष्णग्रीवा आग्नेया इत्यादयः पूर्वकण्डिकोक्ताः पञ्चदश पशव उच्यन्ते पञ्च संचराणि हवींषि भवन्तीति वत् यथा चातुर्मास्येषु चतुर्ष्वपि पर्वसु आग्नेयादीनि पञ्च हवींषि समानानि एवम त्रापि चतुर्णां पर्वणां सम्बन्धिनां आद्यानां पञ्चानां देवानामाद्या ते पञ्चदश पशवः समाना एव भवन्ति। तेन संचरा उक्ताः आग्नेयादयः पञ्चदश पशव उक्ता इत्यर्थः। आग्नेयाः कृष्णग्रीवास्त्रयः पञ्चदशे। सौम्याः बभ्रवस्त्रयः पञ्च॰। सावित्रा उपध्वस्ता त्रयः पञ्च॰। सारस्वत्यः वत्सतर्यः तिस्रः पञ्च॰॥ ॥अथ षोडशे। पौष्णाः श्यामाः त्रयः षोडशे। ऐते संचराः उक्ताः। एताः कर्बुरास्त्रय ऐन्द्राग्नाः इन्द्राग्निदेवताः षो॰। पृश्नयः तनुशरीरास्त्रयः मारुताः षो॰। त्रयः तूपराः निःशृङ्गाः कायाः कदेवताः षो॰॥१५॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान्मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान्मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान्॥१६॥

अथ सप्तदशे। अथ साकमेधपशवः। प्रथमजान् मात्रा प्रथमगर्भे जातान् त्रीन् अजान् अनीकवते अनीकवद्गुणविशिष्टायाग्नये आलभते नियुनक्ति सप्त॰। वातसमूहो वात्या तया सह वर्तन्त इति सवात्याः वातमण्डलीमध्यस्थान् त्रीनजान् सांतपनेभ्यः मरुद्भ्यः सप्त॰। बष्किहान् चिरप्रसूतान् त्रीन्गृहमेधिभ्यो मरुद्भ्यः सप्त॰। संसृष्टान् सहसृष्टान् त्रीन् क्रीडिभ्यो मरुद्भ्यः सप्त॰। अनु-

...ष्टान् अनु क्रमेणजातान् त्रीन् स्वतवद्भ्यो मरुद्भ्यः सप्त०॥२६॥

उक्ताः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः॥२७॥

अथाष्टादशे यूपे महाहविः पशवः कृष्णग्रीवादयः पञ्चदश पूर्वेन्॥ ॥अथैकोनविंशतितमे एताः कर्बुरास्त्रय ऐन्द्राग्नाः एकोन०। प्राशृङ्गाः संहितायां दीर्घः प्रकृष्टशृङ्गयुक्ता माहेन्द्रदेवताः एकोन०। बहुरूपास्त्रयो वैश्वकर्मणाः विश्वकर्मदेवताः एकोन०॥२७॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणां सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितॄणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः॥२८॥

अथ पित्र्येष्टिदेवतापशवः। धूम्राः कृष्णवर्णमिश्रा लोहितवर्णाः बभ्रुनीकाशाः कपिलवर्णसदृशास्त्रयः पशवः सोमवतां पितॄणां नियोज्याः एकोन०। बभ्रवः कपिलाः धूम्रनीकाशाः धूम्रा इव नितरां काशन्ते इति तादृशास्त्रयः बर्हिषदां पितॄणामेकोन०॥ ॥अथ विंशे यूपे। कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः अग्निष्वात्तानां पितॄणां विंशे। कृष्णाः पृषन्तः बिन्दुयुक्ताः त्रैयम्बकाः त्र्यम्बकदेवताः विंशे॥२८॥

उक्ताः संचरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः॥२९॥

अथ शुनासीरीयपशवः। तत्र संचराः आग्नेयादयः पञ्चदशोक्ताः। तेन कृष्णग्रीवा आग्नेयाः विंशे। बभ्रवः सौम्याः विंशे। उपध्वस्ताः सावित्राः विंशे॥ ॥अथैकविंशे यूपे। वत्सतर्यः सारस्वत्यः स-

कविंशे। श्यामाः पौष्णाः एक०। एताः कर्बुराः शुनासीरीयाः शुनारदेवताः एक०। श्वेताः त्रयो वायव्याः वायुदेवत्याः एक०। श्वेताः त्रयः सौर्याःसूर्यदेवताः एक०॥ एवं समाप्ताः यूपाः इत्यश्वाद्याः सौर्यान्ताः सप्तविंशत्यधिकशतत्रयं ३२७ ग्राम्याः पशवः सर्वे उक्ताः॥२५॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान्॥२०॥

अथारण्याः पशव उच्यन्ते॥ का०२० ६·६· कपिञ्जलादीन्पृषतान्तांस्त्रयोदश-त्रयोदश यूपान्तरेषु। अत्रैकविंशतिर्यूपाः तेषां यूपानां विंशतिरन्तरालानि तेष्वन्तरालेषु अन्तरालोत्पत्तिक्रमेण कपिञ्जलादयस्त्रयोदश-त्रयोदश पशव आलम्भनीयाः। अत्र यूपान्तरालेष्वारण्यपशूनां बन्धनोपाय उक्तो मानवसूत्रे नाडीषु शुषिमशकान् करण्डेषु सर्पान् पञ्जरेषु मृगव्याघ्रसिंहान् कुम्भेषु मकरमत्स्यमण्डूकान् जालेषु पक्षिणः कारासु हस्तिनो नौषु चोदकानि यथार्थमितरानिति। ये पशवो येनोपायेन यूपान्तरालेषु तिष्ठन्ति ते तेनोपायेन स्थापनीया इति तात्पर्यम्॥ अत्र येषामारण्यजीववाचिपदानामर्था नज्ञायन्ते ते निगम निरुक्तनिघण्टुव्याकरणोणादिवृत्त्यभिधानग्रन्थेभ्यो विलोक्यावगन्तव्याः आटवीकेभ्यश्च लक्षणीयाः॥ तत्र प्रथमोत्पन्ने यूपान्तराले त्रीन्कपिञ्जलान्वसन्ताय आलभते नियुनक्ति। त्रीन्कलविङ्कान् चटकान्ग्रीष्माय। तित्तिरीन् त्रीन्वर्षाभ्यः। वर्त्तिकाः पक्षिविशेषान् शरदे। त

...णां ककराणां मध्ये एकं ककरं हेमन्ताय॥ ॥अथ द्वितीये-ऽवकाशे शिष्टौ द्वौ ककरौ पक्षिविशेषौ हेमन्ताय। त्रीन्विककरान् शि...राय॥२०॥

...३ समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान्॥२१॥

...न् शिशुमारान् जलचरजन्तून्समुद्रायालभते। त्रीन्मण्डूकान्भे...पर्जन्याय। त्रयाणां मत्स्यानां मध्ये द्वौ अद्भ्यः॥ ॥अथ तृतीया-ऽवकाशे एकं शिष्टं मत्स्यमद्भ्यः। त्रीन्कुलीपयान् जलजान्मित्राय। त्रीन्नाक्रान् नक्रा एव नाक्रास्तान् जलचरान् वरुणाय॥२१॥

सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां कुञ्चान्मित्राय मद्गून्वरुणाय चक्रवाकान्॥२२॥

त्रीन् हंसान्सोमाय। तिस्रो बलाकाः बकपत्नीः वायवे॥ ॥अथचतुर्थे-ऽवकाशे। त्रीन् कुञ्चान्पक्षिणः इन्द्राग्निभ्यां। त्रीन्मद्गून् जलकाका-न्मित्राय। त्रीन् चक्रवाकान्वरुणाय॥२२॥

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमा-भ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपो-तान्॥२३॥

त्रीन्कुटरून् कुक्कुटानग्नये। ततस्त्रयाणामुलूकानां मध्ये ए-कमुलूकं वनस्पतिभ्यः॥ ॥अथ पञ्चमेऽवकाशे द्वौ उलूकौ का-कवैरिणौ। त्रीन् चाषानग्नीषोमाभ्यां त्रीन्मयूरानश्विभ्यां त्रीन्कपो-तान्मित्रावरुणाभ्याम्॥२३॥

सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥२४॥

त्रयाणां लवानां लावकानां मध्ये द्वौ सोमाय॥ ॥अथ षष्टेऽवकाशे एकं लवं सोमाय। कौलीकान्पक्षिणः त्वष्ट्रे। तिस्रो गोषादीः गवां सादयित्रीः पक्षिणीः देवानां पत्नीभ्यः। तिस्रः कुलीकाः पक्षिणीः देवजामिभ्यः देववधूभ्यः जामिस्वसृकुलस्त्रियोः। त्रीन्पारुष्णसंज्ञान्गृहपतयेऽग्नये॥२४॥

अहे पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः संधिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥२५॥

अथ सप्तमेऽवकाशे। त्रीन्पारावतान्कलरवानह्ने तिस्रः सीचापूः पक्षिणीः रात्र्यै तिस्रो जतूः पात्राख्याः पक्षिणीः अहोरात्रयोः संधिभ्यः। त्रीन्दात्यूहान् कालकण्ठान्मासेभ्यः त्रयाणां महतां सुपर्णानां मध्ये एकं संवत्सराय॥ ॥अथाष्टमेऽवकाशे द्वौ महान्तौ सुपर्णौ संवत्सराय॥२५॥

भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्दिवे कशान्दिग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः॥२६॥

भूम्यै आखून्मूषकान् त्रीन् पाङ्क्त्रान् मूषकजातिविशेषानन्तरिक्षाय कशान् तद्भेदानेव दिवे त्रीन्नकुलान्दिग्भ्यः तत्र द्वौ अष्टमे॥ ॥अथ नवमे एकम्। त्रीन्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः॥२६॥

वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून्विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान्॥२७॥

त्रीनृष्यान् वसुभ्यः ऋष्यादयो मृगविशेषाः। रुद्रेभ्यः रूरून्। त्रीन्यङ्कूनादित्येभ्यः॥ ॥अथ दशमेऽवकाशे त्रीन्पृषतान्विश्वेभ्यो देवेभ्यः त्रीन्कुलङ्गान् साध्येभ्यः॥२७॥

ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय महिषान्बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र उष्ट्रान्॥२८॥

परस्वतः मृगविशेषानीशानाय। त्रीन्गौरान्मृगान्मित्राय त्रीन्महिषान्वरुणाय तत्रैकं दशमे॥ ॥अथैकादशेऽवकाशे द्वौ महिषौ त्रीन्गवयान्गोसदृशानारण्यपशून्बृहस्पतये त्रीनुष्ट्रान्त्वष्ट्रे॥२८॥

प्रजापतये पुरुषान्हस्तिन आलभते वाचे प्लुषीँश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः॥२९॥

प्रजापतये पुरुषान्हस्तिनः त्रीन्। त्रीन्प्लुषीन्चक्रतुण्डान्वाचे तन्मध्ये द्वौ प्लुषी एकादशे॥ ॥अथ द्वादशेऽवकाशे एकं प्लुषिम्। त्रीन्मशकान् चक्षुषे। त्रयो भृङ्गाः श्रोत्राय नियोज्याः॥२९॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती॥३०॥

प्रजापतये च वायवे च एको गोमृगः गवयः। एक आरण्यो मेषो वरुणाय। एकः कृष्णो मेषो यमाय। एको मर्कटः मनुष्यराजाय। एको रोहिदृष्यः शार्दूलाय। एका गवयी ऋषभाय तदाख्यदेवाय॥ ॥अथ त्रयोदशेऽवकाशे एका वर्ति क्षिप्रश्येनाय देवाय। एकः कृमिः

कीटः नीलंगोः नीलंगवे। शिशुमारः एको जलचरः समुद्राय। हस्ती हिमवते ॥३०॥

अ॰४ मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥३१॥

मयुः प्राजापत्यः तुरगवदनः किंनरः प्रजापतिर्देवतः। उलो मृगविशेषः हलिक्ष्णः सिंहविशेषः वृषदंशो विडालः ते त्रयो धात्रे एकः कङ्कः बकः दिशां दिग्भ्यः। एका धुङ्क्षा पक्षिणी आग्नेयी अग्निदेवत्या। कलविङ्कः चटकः लोहिताहिः रक्तवर्णसर्पः पुष्करसादी पुष्करे सीदतीति कमलभक्षी पक्षिविशेषः ते त्रयः त्वाष्ट्राः त्वष्टृदेवताः ॥ ॥अथचतुर्दशेऽवकाशे एकः क्रुञ्चः वाचे ॥३१॥

सोमाय कुलङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥३२॥

कुलङ्गः कुरङ्गो हरिण एकः सोमाय। आरण्यो वनजोऽजश्छागः नकुलः शका शकुन्तिः एते त्रयः पौष्णाः पूषदेवत्याः। क्रोष्टा शृगालो मायोर्देवस्य। एको गौरमृगः इन्द्रस्य। पिद्वो मृगविशेषः न्यङ्कुः अपि कक्कटः स एव ते त्रयोऽनुमत्यै। चक्रवाकः प्रतिश्रुत्कायै ॥३२॥

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥३३॥

वलाका वकस्त्री सूर्येदेवत्या। शार्गः पक्षिविशेषः॥ ॥अथ पञ्चदशेऽवकाशे सृजयः पक्षिविशेषः शयाण्डकोऽपि ते मैत्राः मित्रदेवत्याः पुरुषवाक् मनुष्यवद्वादिनी शारिः शुकी सरस्वत्यै। श्वाविन् सेधा भौमी भूदेवत्या शार्दूलो व्याघ्रः वृकः चित्रकः पृदाकुः सर्पः ते त्रयो मन्यवे। पुरुषवाक् शुकः सरस्वते समुद्राय॥३३॥

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः॥३४॥

सुपर्णः गरुत्मान्पर्जन्यः पर्जन्याय आतिः आडी वाहसः दर्विदा काष्ठकुट्टः ते त्रयः पक्षिविशेषाः वायवे। बृहस्पतये वाचस्पतये वाचो वाण्याः पतये इति बृहस्पतिविशेषणम् ईदृशाय बृहस्पतये पैङ्गराजः पक्षिविशेषः॥ ॥अथ षोडशेऽवकाशे। अलजः पक्षिविशेषः आन्तरिक्षः अन्तरिक्षदेवतः। प्लवः जलपक्षी मद्गुः कारण्डवः मत्स्यः ते नदीपतये। कूर्मः कच्छपः द्यावापृथिवीयः द्यावापृथिवीदेवतः॥३४॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः॥३५॥

पुरुषमृगः पुंमृगः चन्द्रमसः। गोधा कालका पक्षिविशेषः दार्वाघाटः सारसः ते वनस्पतीनाम्। कृकवाकुः ताम्रचूडः सावित्रः सवितृदेवतः हंसः वातस्य नाक्रः मकरः कुलीपयः ते त्रयो जलचरविशेषाः अकूपारस्य समुद्रस्य त्रयाणां मध्ये द्वौ षोडशे॥ ॥अथसप्त-

दऽवकाशे एकः कुलीपयः अकूपारस्य । शल्यकः श्वावित् ह्रियै देव्यै ॥३५॥

एएयन्हो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश
आश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतर-
जनानां जहका वैष्णवी ॥३६॥

एणी मृगी अन्हः आलभ्या । मण्डूको मूषिका तित्तिरिः ते त्रयः सर्पाणाम् । लोपाशो वनचरविशेषः आश्विनः अश्विदेवतः । कृष्णो मृगः रात्र्यै । ऋक्षः भल्लूकः जतूः सुषिलीका एतौ पक्षिविशेषौ ते त्रयः इतरजनानां देवानाम् । जहका गात्रसंकोचनी वैष्णवी विष्णुदेवत्या ॥३६॥

अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणा-
मपामुद्रो मासां कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका ते-
ऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥३७॥

अन्यवापः कोकिलाख्यः पक्षिविशेषोऽर्धमासानां पशुः ॥ ॥ अथाष्टादशोऽवकाशे । ऋश्यो मृगविशेषः मयूरः बर्ही सुपर्णो गरुत्मान् ते गन्धर्वाणां पशवः । उद्रः जलचरः कर्कटसंज्ञः अपां पशुः । कश्यपः कच्छपः मासां मासानाम् । रोहित् ऋश्यः कुण्डृणाची वनचरीविशेषः गोलत्तिकापि ते त्रयोऽप्सरसाम् । असितः कृष्णः पशुर्मृत्यवे ॥३७॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बला-
याजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते

निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥३८॥

वर्षाहूः वर्षाभूः भेकी ऋतूनाम्। आखुः मूषकः कशः मान्थालश्च नद्विशेषौ ते त्रयः पितृणाम्॥ ॥अथैकोनविंशे। अजगरो महासर्पः बलाय। कपिञ्जलो वसूनाम्। कपोतः उलूकः शशः ते निर्ऋत्यै। आरण्यो मेषो बरुणाय॥३८॥

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौन्द्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः॥३९॥

श्वित्रः श्वेतः पशुरादित्यानाम्। उष्ट्रः दीर्घग्रीवः घृणिवान् तेजस्वी पशुविशेषः संहितायां घृणिशब्ददीर्घः वार्ध्रीनसी कण्ठे स्तनवानजः ते त्रयो मत्यै देव्यै। सृमरः गवयोऽरण्याय देवाय। रुरुः मृगः रौद्रः रुद्रदेवतः क्वयिः पक्षिविशेषः॥ ॥अथ विंशेऽवकाशोकुटरुः कुककुटः दात्यौहः कालकण्ठः ते त्रयो वाजिनां देवानाम्। पिकः कोकिलः कामाय॥३९॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः॥४०॥

इतिसंहितायांचतुर्थोनुवाकः४

इतिश्रीशुक्लयजुषिमाध्यन्दिनीयायांवाजसनेयसंहितायांदीर्घपाठेचतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

खड्गो मृगविशेषो विश्वदेवदेवतः। एकः कृष्णः श्वा सारमेयः द्वि

तीयः कर्णो लम्बकर्णो गर्दभः तृतीयस्तरक्षुः मृगादनः ते त्रयो र-
क्षसां पशवः। सूकरः इन्द्राय। सिंहो मारुतः मरुद्देवतः। कृकला-
सः सरटः पिप्पका पक्षिणी शकुनिः पक्षी ते त्रयः शरव्यायै। एक-
पृषतः मृगविशेषो विश्वेषां देवानां पशुर्भवति विश्वेभ्यो देवेभ्यो
जुष्टं वियुनज्मीतियोज्यः॥ ॥ एवं षष्ट्यधिकं शतद्वयमारण्या
पशव उक्ताः॥ ॥ अत्रद्वाविंशति रेकादशिनः २२ सप्तविंशत्यधिका-
नि त्रीणि शतानि अश्वादयः सौर्यान्ताः ३२७ षष्ट्यधिकं शतद्वयं
कपिञ्जलादयः पृषतान्ता आरण्याः पशवः २६० सर्वे मिलित्वा ष-
ट् शतानि नवाधिकानि पशवो भवन्ति ६०९। श्लोकश्च षट् श-
तानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि अश्वमेधस्य यज्ञस्य
नवभिश्चाधिकानि चेति॥ तेषारण्याः सर्वे उत्स्रष्टव्या न तु
हिंस्याः॥४०॥

इति श्री गिरिधरभाष्येचतुर्थोऽनुवाकः४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्

पुमार्थांश्चतुरो देया द्वमे पुत्रो युधिष्ठिरः २४

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वय
विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जय किशोर देव वर्म्मात्मज रौक्मिणेयनृ
पति गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्येऽश्वमेधप्र
करणे देवता सम्बन्धविधायि पशु वर्णनो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः
२४॥

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २

अ०१ शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दर्ष्ट्राभ्याᳬं
सरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन ता
लु वाजᳬं हनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्यामादि
त्यॉं श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां वि
द्युतं कनीनकाभ्याᳬं शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा
पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवो ऽवार्याणि पक्ष्माणि
पार्या इक्षवः ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
पञ्चविंशोऽयमध्यायो वर्ण्यते वाजिमेधिकः २५

का०२०.८.४.५ वनस्पतियागके अनन्तर स्विष्टकृद्यागसे पूर्व शूल
विषं अर्पित मांसको प्रजापति + के अर्थ होमिके अमुष्मै स्वाहेति + [प्रजापतिके अर्थ उच्चैर्होमात्]
शादादित्यन्त १-८ देवताओं और अश्वके अङ्गोंके अर्थ घृतहो
में अनादेशे घृतस्योक्तत्वात् । और अग्निर्ᳬं हृदयेनेत्यादि विश्वे
भ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्यन्ता ३८ ८-१३ आहुतियेंभी होमें अश्वमेध
त्वात् तत्राग्निर्ᳬं हृदयेनेत्यादि पुरीतदित्यन्ता ३८ ८.८ देवताओं
र अश्वाङ्ग हैं ततः लोमभ्यः स्वाहेत्यादि द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वा

हेत्यन्ता १०-१३ प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिंशत् ॥ तत्र शादं दद्भि-
रित्यादि-पृथिवीं त्वचेत्यन्तः संहिताभागो ब्राह्मणं न मन्त्राः १-७
यजूꣳषि। शादादयो देवाः दन्ताद्यङ्गानि। ततः चतुर्गृहीत आज्य
कोले-लेकर शादाय स्वाहा दद्भ्यः स्वाहेत्यादि पृथिव्यै स्वाहेत्यन्तं जु-
हुयादित्येकः पक्षः शाखान्तरोदितः। शादं दद्भिः प्रीणामि स्वाहेत्या-
दि होममन्त्राः। देवता भोक्त्री द्वितीयया निर्दिश्यते अश्वाङ्गं भोग्यं
तृतीयया करणविभक्त्या निर्दिश्यते। क्वचित्केवला देवतैव यथा
शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहेति क्वचिदन्यविभक्त्यैव द्रव्यदेवतयो
र्निर्देशः यथा अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिति। तथा च श्रुतिः
१३·३·५·१· शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैरित्याज्यमवदानानि कृ-
त्वा प्रत्याख्यायं देवताभ्य आहुतीर्जुहोति या एव देवता अपिभागा-
स्ता भागधेयेन समर्धयतीति। अस्यायमर्थः। शादं नाम देवमश्व-
स्य दद्भिर्दन्तैः प्रीणामीति शेषः स्वाहाकारो दानार्थः ततश्च शा-
दं दद्भिः प्रीणामि स्वाहेति एवमन्यान्यपि योज्यानि। आज्यमव
दानानि कृत्वा आज्यमेवाश्वाङ्गत्वेन परिकल्प्य प्रत्याख्याय-
मवदानमवदानं प्रति शादादिदेवता आख्यायाख्याय आज्याहु
तीर्जुहोति संकल्पिताश्वाङ्गभावा घृताहुतीः शादादिभ्यो ददाति
एवं कुर्वन्नपिभागाः कल्पितभागास्ता भागेन समर्धयति प्रीणा-
तीत्यर्थः ॥ अथ संहितार्थः। अश्व के दान्तों करि शाद देवताको
प्रीणामि तृप्त करता हूं। दाँतों की जड करि अवका देवताको प्री-
णन करता हूं (?) करि मृद देव०। दंष्ट्रारूपों करि तेगा दे०। जिह्वाके अ-

+ शादाः स्रोतःप्रसिद्धा देवाः आदित्यादयः प्रसिद्धाः।

ग्रकरि सरस्वती दे॰। जिह्वाक॰ उत्साद दे॰। तालु॰ अवक्रन्द॰। हनुओं (वक्त्रैकदेश॰) वाज॰। मुख॰ आपो॰। अण्डो (वृषणों॰) वृषण॰। श्मश्रुओं (मुखकेशों॰) आदित्यों॰। भ्रूओं (ललाटग रोमपङ्क्तिओं॰) पन्थान॰। वर्त्तओं (पक्ष्मपङ्क्तिओं॰) द्यावापृथिवी॰। कनीनकाओं (नेत्रकी पुतली॰) विद्युत॰। शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा देवोद्देश एव नत्वङ्गम् शुक्लाय कृष्णाय देवाय सुकृतमस्तु यद्वा चक्षुष्योरश्वाङ्गमेव निर्दिश्यते प्राजापत्योऽश्व इति वचनाद्देवोऽध्याहर्तव्य शुक्ल और कृष्ण अश्वके अङ्ग करि प्रजापतिको प्री॰ एवं लोमभ्यः स्वाहेत्यादावपि बोध्यम् ३९. १०–१३.। पक्ष्मों (नेत्रोपरि लोमों ऊपर के पलक की बिरूपनियों॰) पार॰। इक्षुओं॰ (नेत्राधोभागरोमों नीचे के पलक की बिरूनी॰) अवार॰। विपरीतं वा अवार्याणि (अवार देवत्यानि) पक्ष्माणि इक्षवः पार्याः (पार देवत्याः) ॥१॥

अ॰२ वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रꣳ श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिꣳ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान्रेष्माणꣳ स्तुपेन ॥२॥

अश्वकी प्राण वायु करि वातको प्री॰। अपान वायु॰ नासिका संज्ञक दो देवताओं॰। नीचे के ओष्ठ॰ उपयाम दे॰। ऊपर के ओष्ठ॰ सत्संज्ञक दे॰ प्रकाश (ऊपर के देहकी कान्ति॰) अन्तर दे॰। नीचे के देह की का

न्ति॰ बाह्यरे॰। मस्तक॰ निवेष्य॰। शिरो॰ऽस्थि मध्य संलग्न मज्जाभाग॰ स्तनयित्नु॰। शिरोमध्यस्थ जर्जर मांसभाग(मस्तकमज्जा ।)॰ अश नि॰। कनीनकाओं॰ विद्युत॰। कर्णों (कर्णशष्कुलीओं)॰ श्रोत्र(अत्रा ध्यात्मिक एव देवता)॰ श्रोत्रेन्द्रियों॰ कर्णौ॰। कण्ठाधोभाग॰ नेदनीदे॰। कण्ठ के निर्मांस देश॰ आपदे॰। मन्या(ग्रीवाके पीछे की नाडियों)॰ नि त्त॰। शिर॰ अदिति॰। नितरजर्जरीभूत शिरभाग॰ निर्ऋति॰। संक्रोशों (चलते हुए अश्वके बोलने वाले अङ्गों)॰ प्राणदेवताओं॰। स्तुप(शिख भूतअङ्ग)॰ रेष्माण॰॥२॥

अ॰३ मशकान्केशैरिन्द्रꣳस्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनि सादेन कूर्माञ्छफैराक्रमणꣳस्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेना रण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम्॥३॥

केशों(स्कन्धरोमों)॰ मशक देवताओं॰। वह (स्कन्ध)॰ इन्द्र॰ कैसे वह क रिकि स्वपसा शोभन है अप॰ कर्म अर्थात् धारण नरवहनादि जिस॰ का। शकुनि(पक्षीवत्) साद(गमन) वेगवत् कूदना तिस करि बृहस्पति॰ खुरों॰ कूर्मदेवताओं॰। गुल्फों॰ आक्रमण॰। ऋक्षलाओं(गुल्फाधःस्थाना डियों)॰ कपिञ्जल देवताओं॰। जङ्घाओं(गुल्फजानुओं के मध्यभाग)॰ जव॰। बाहुओं(अगिले पैरकी जानुओं के ऊर्ध्वभाग)॰ अध्वान॰। जाम्बी र(जम्बीर तरु के फल सदृश जानु मध्यभाग)॰ अरण्य॰। अत्यन्त रो चमानों(जानु देशों)॰ अग्नि॰। करों(अगिली जानुओं के अधोदेशों)॰

पूषा॰।अंसौ(स्कन्धौ)॰ अश्विनी कुमारौ॰। दोरी(अंसग्रन्थिरौ)॰ रुद्र॥३॥

अ॰४ अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्यच तुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताᳲ सप्तमी बृह स्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशीव रुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी॥४॥

अत्र षष्ठ्या देवतोद्देशः प्रथमया ङ्गोद्देशः ततोऽस्त्वित्यध्याहारः।अ ग्नेः देवस्यपक्षतिरस्तु। पक्षः साध्य विरोधयोः बले काले पतत्रे च रु चौ पार्श्वे प्रकल्पिते इत्यभिधानोक्तेरत्र पक्षः पार्श्ववाची पक्षस्य मूलं पक्षतिः पक्षात्तिरिति पा॰५॰२॰२५॰ मूलार्थे तिप्रत्ययः ततः पक्षस्य पा र्श्वस्य मूलभूतान्यस्थीनि वङ्क्रिशब्दवाच्यानि पक्षतिशब्देनोच्य न्ते तानि च प्रतिपार्श्व त्रयोदश भवन्ति षड्विंशतिरश्वस्य वङ् क्रय इति श्रुतेः कौषीत॰ ब्रा॰१०॰४॰। तेषां क्रमेण देवतासम्बन्धं वक्तिः। तत्रादौ दक्षिणपार्श्वस्था देवता आह अग्नेः पक्षतिः, दक्षिणपार्श्वका पहिला अस्थि अग्निदेवताका हो विभक्तिव्यत्ययो वा पक्षति करि अग्नि देवता को प्रीणामि तृप्त करताहूं। निपक्षति द्वितीया पक्षति वायु देवता॰। तृतीया पक्षति इन्द्रस्येत्यादीनिस्पष्टा नि॥४॥

अ॰५ इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीया पां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणा ᳲ सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्र स्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृ

थिव्यो दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥

अथ वामपार्श्वास्थ्नां देवानाह। प्रथम (उपरिस्थ) वामपार्श्वास्थि अग्नि देवताओं का हो। द्वितीया पक्षति सरस्वती का हो इत्यादि स्पष्ट अथ समस्तयोः पार्श्वयोर्देवानाह॰ दक्षिणपार्श्व द्यावा पृथिवी का हो। उत्तर वामपार्श्व सबदेवताओं का हो ॥ ५ ॥

अ॰ ६ मरुताꣳ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणꣳ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥

अथाङ्गान्तराणां देवता आह। विभक्ति व्यत्ययः। स्कन्ध प्रदेशों को मरुत् देवताओं को प्री॰। कीकस (पुच्छ के ऊपर की प्रथमा अस्थिपङ्क्ति) विश्वे देवाओं को॰। द्वितीयास्थिपङ्क्ति॰ रुद्रों॰। तृतीयाकीकस॰ आदित्यों॰ पुच्छ॰ वायु॰। भासदौ (नितम्बों-चूतडों)॰ अग्नीषोम देवताओं॰। श्रोणियों (दक्षिणवाम कटिप्रदेश)॰ कुञ्चौ॰। ऊरूओं॰ इन्द्राबृहस्पती॰। अल्गाओं (दोनों ऊरूसन्धिओं) मित्रावरुणौ॰। स्थूरों (नितम्बों के अधो भागों)॰ आक्रमण॰। कुष्ठों (ककुन्दरों)॰ बलदेवता को॰ ॥ ६ ॥

अ॰ ७ पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान्पित्तेन प्रदरान्पायुना कूश्मान्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

वनिष्ठुः (स्थूलान्त्र) करि पूषा देवता को प्री॰। स्थूलगुदा॰ अन्धसर्पों॰

स्थूल गुदातिरिक्त गुदभाग० सर्पों० । अन्त्र सम्बधि मांसभाग० विह्रुतदेवताओं० वस्ति (नाभि के नीचे वर्तमान मूत्रपुट) ० आपो देवता: ० आण्डों (लिङ्गोभय पार्श्वस्थौ मांसपिण्डों) ० वृषण० । शेप (लिङ्ग) ० वाजिनों० । रेत (वीर्य) प्रजा दे० । पित्त (पित्ताधातुविशेष:) चाष देवताओं० पायु (गुदा के तीसरे भाग) प्रदर देवताओं० । शक (विष्ठा के पिण्डों) ० कूश्मदेवताओं० ॥ ७ ॥

अ० ८ इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान्हृदयोपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिरुपलान्प्लीह्ना वल्मीकान्क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान्हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान्कुक्षिभ्याᳬं समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ ८ ॥

पुनर्देवे षष्ठी अङ्गे प्रथमा । क्रोड (वक्ष्यका मध्यभाग) इन्द्र देवताका हो अथवा क्रोड करि इन्द्र देवता को प्री० । पाजस्य (बलकर अङ्ग) अदिति० जत्रुओं (अंस कक्षओं कीसंधि) दिशा देवताओं० भसत् (लिङ्गका अग्रभाग) अदिति ॥ पुनर्देवे द्वितीया अङ्गे तृतीया । हृदयस्थ मांसकरि जीमूतों को प्री० । पुरीतत् (हृदयाच्छादक अन्त्र) ० अन्तरिक्ष० । उदरस्थ मांस० नभ० । मतस्नाभ्यां (ग्रीवाधस्ताद्भागस्थित हृदयोभय पार्श्वस्थे अस्थिनीओं०) चक्रवाकों० । वृक्का (मुख्यमांस १) ० दिव दे० । प्लाशियों (शिश्नमूलनाडियें तिन्ह नाडियोंकीही द्वारा अन्न देही में चलताहै तिन्हों) ० गिरीदेवताओं० । प्लीहा (हृदय के वामभाग में सिथलमांसभाग पुप्पुस

१ वृक्क आदाने वृक्कोने ह्लादुतया गृह्यते वृक्का नाम पुरुषस्य ह्लीयके इति श्रीस्वामी । वृक्के कुक्षिस्थे मांसगोलकावाम्रफलाकारौ इति याज्ञिका: ॥

संज्ञहै तिस)० उपल देवताओं०। क्लोमाओं० + वल्मीक देवताओं०। ग्लौ (ग्लावों-हृदयनाडियों)० गुल्म देवताओं०। हिराओं (अन्नवाहिनीनाडिओं)० स्रवन्तिःदेवताः०। कुक्षी (जठरके दक्ष वामभाग)० ह्रद देवताओं०। उदर (पेट)० समुद्र०। अङ्गोंत्थ भस्म करि वैश्वानर देवता को प्रीणामि॥८॥

अ०९ विधृतिं नाभ्या घृतꣳ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाꣳसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा॥९॥

नाभि (उदर के नीचेकी ग्रन्थि) करि विधृति देवता को प्रीणामि। रस (वीर्य धातुविशेष)० घृत दे०। यूष्ण (पक्वान्नरस)० आप दे०। विप्रुट् (वसाविन्दुओं)० मरीची०। ऊष्मा (शरीरगत ऊष्णता)० नीहार०। वसा० (मांसस्नेह) + ० शीन०। दूषिका (नेत्रों के मल)० ह्रादुनी०। असृक् (रुधिर)० राक्षसों०। अङ्गों (पूर्वोक्त अवयवों)० चित्र देवताओं०। रूप (सौन्दर्य)० नक्षत्र देवताओं०। त्वचा (चर्म)० पृथिवी देवी को प्रीणामि स्वाहेति मन्त्रों से आज्यको होमें इत्यर्थः॥ का०२०।८।१६। अवभृथ याग के अन्त में जल विषें मग्न पिङ्गलाक्ष खल्वाट दन्तुर अतिगौर पुरुष के शिर पर जुम्बकायेति मन्त्र से सकृद्गृहीत आज्य को होमें॥ वरुण देवत्या द्विपदा यजुर्गायत्री उदन्यपुत्र मुण्डिभदृष्टा। जुम्बकाय- वरुण के अर्थ स्वाहा-सुहुतमस्तु। वरुणो वै जुम्ब इति श्रुतेः। एषा चान्तर्जले जप्ता पापनाशिनी कात्या० सर्वा० अध्या०३। खण्ड ५। तथाचोक्तं हारीतेन- जुम्बका नाम गायत्री वेदे वाजसनेयके। अन्तर्जले सकृज्जप्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥९॥

+ वसा (मांस इत्यमरः२।६।४६। शुद्धमांसस्ययः स्नेह सा वसेति वैद्या इति स्वामी

+ क्लोमा उदर्यौ जलाधारः। हृदयस्य दक्षिणे यकृत् क्लोमा वामे प्लीहा पुप्फुसश्चेति वैद्या इति क्षीरस्वामी क्लोमा गलनाडीति कर्कः।

अ०१० हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१०॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक ऽइद्राजा जगतो बभूव। य ईशे ऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥११॥

मन्त्रः कदेवत्याः त्रिष्टुभः प्रजापतिसुतहिरण्यगर्भदृष्टाः प्राजापत्यपशूनामश्वादीनां याज्यानुवाक्याः द्वे व्याख्याते १३.४॥१०॥२३.३॥११॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१२॥

हम कस्मै(प्रजापति के अर्थ) हवि देते हैं। इन हिमाचल प्रभृति पर्वतों को जिस प्रजापति का महिमान्‌ कहिते हैं पण्डितलोग। नदियोंसहित समुद्र को महिमान कहिते हैं। ये पूर्वाद्या प्रकृष्टा दिशाएँ जिसका महित्व कहते हैं जिस की बाहुएँ जगद्रक्षण को इति शेषः। अर्थात् सब जगत् जिस प्रजापति की विभूति है॥१२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व ऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥१३॥

कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातम्। जो प्रजापति आत्मदा(आत्मा को देता- उपासकों का सायुज्यप्रदः)बलदा(सामर्थ्य देता-मुक्तिमु-

क्तिप्रदः। सब मनुष्य जिसके प्रशिष (शासन) को उपासते और देवता जिसके प्रशिष को उपासते †। किंच जिस की छाया (आश्रय ज्ञानपूर्वक उपासन) अमृत (मुक्तिहेतु) और जिसका अज्ञान (न जानना) इति शेषः मृत्यु (संसारहेतु) है *॥१३॥

अ॰११ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥१४॥

वैश्वदेव पशु वपा पुरोडाशपशूनां याज्यानुवाक्या दश ऋचो विश्वदेव देवत्या गोतमदृष्टाः। तत्रादौ पञ्च जगत्यः। क्रतवः (यज्ञ वा संकल्प) हमारे प्रति आवें अर्थात् हम यज्ञ कर्त्ता होवें। कैसे क्रतवः कि कल्याण कारिणः। तथा निर्विघ्नाः। अपरीता (अज्ञाताः केनचित्फलानुमेया इत्यर्थः। उद्भिदः (यज्ञान्तरों के प्रकटीकर्तारः। किंच जिस प्रकार करि देवता हमारी सदैव वृद्धि के अर्थ हों तैसे क्रतवः आवें। कैसे देवता कि अप्रायुवः (अनालसाः) हमारी वृद्धि के अर्थ हों तथा प्रतिदिन पालक हों॥१४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬं रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाᳬं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥१५॥

कल्याण कारिणी देवताओं की शोभना बुद्धि हमारे प्रति अभिमुखी हो। कैसे देवताओं की कि ऋजूयताम् (अवक्र गामियों वा साधु यजमान कामयमानों की। किंच देवताओं का दान हमारे अभिमुख हो अर्थात्

† यत्प्रशेषावधि ज्ञानं शिक्षावधि च शासनम्। कार्यावधि च कर्तृत्वं स स्वयम्भूः पुनातु वः इति॥

* तदुक्तम् येतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवोपयन्तीति श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।१०॥

देवता हमारे अर्थ दें। देवताओं की मैत्री को प्राप्त हों। देवता हमरि आयु को बढावें ॥२५॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥२६॥

पूर्वया (प्राचीना॰ अकृत्रिमा॰ स्वयम्भुवा) निविदा (वेदरूपवाचा) करि हम तिन (प्रसिद्ध) देवताओं को बुलाते हैं। तिन किन्हें तत्राह भग को मित्र अदिति (देवमाता) दक्ष (प्रजापति) अर्यमा वरुण सोम अश्विनी कुमारों को। अस्त्रिधम् इति भगादीनां विशेषणम् अच्युतों को। किंच सुभगा (शोभनभाग्या) सरस्वती भगादि सहिता हमारा सुख करै ॥२६॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥२७॥

पवन हमारे को औषध हित जैसे तैसे वहे अर्थात् अनुग्रह करे वा हित देवै कैसा हित कि मयो भु (सुखोत्पादक। माता (जगत की निर्माण करनेवाली) पृथिवी तिसहित को दे। पिता (पालक) स्वर्ग हित दे। सोमाभिषव करनेवाले पाषाण तिस भेषज को दें। कैसे हैं पाषाण कि सुख के देने वाले। हे अश्विनी कुमारो तुम तिस वातादिकों से भेषज प्रार्थन को सुनों अर्थात् तुमभी हित देओ। कैसे हो तुम कि गृहवत् धारण करने वाले ॥२७॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥१८॥

हम तिस(प्रसिद्ध)ईशान रुद्र को वुलाते हैं। कैसे तिसे कि जगतः(जङ्गम)और स्थुषः(स्थावर)भूतजात के पति को। बुद्धि संतोष कारक को। किस लिये वुलाते हैं कि तृप्ति करने को यथा(जिस प्रकार से)पूषा हमारी वृद्धि और कल्याण के अर्थ हो तैसे वुलाते हैं। कैसा पूषा कि वेदसां धनों वा ज्ञानों का रक्षक। पालक पुत्रादिकों का। अनुपहिंसित॥१८॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥१९॥

विराट्स्थाना(त्रिष्टुप्। इन्द्र हमारे अर्थ स्वस्ति(अविनाशशुभ) देवै। कैसा है इन्द्र कि वृद्धश्रवाः(बडी है कीर्ति जिसकी वोह। पूषा हमारे अर्थ स्वस्ति देवै कैसा कि विश्ववेदाः(सबधन जिसका वा सब जानता। तार्क्ष्य(रथवा गरुड) हमारे अर्थ स्वस्ति देवै कैसा कि अरिष्टनेमिः(अनुपहिंसित हैं चक्रधारा वा पक्ष जिस के। बृहस्पति(देवताओंका गुरु हमारे अर्थ स्वस्ति देवै॥१९॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह॥२०॥

जगती। मरुतो देवाः अन्न(हविर्लक्षणहेतु)करि इस यज्ञ में आवैं। कैसे मरुतः कि पृषदश्वाः पृषती संज्ञा हैं अश्वा(वडवा वाहन†)जिन्हें

†पृषत्यो मरुतामितिनिघ॰१।१५॰

[redacted] ते यद्वा प्रबल हैं अश्व जिन्हों के ते। पृश्नि(द्यौ-गौ-दिति वा) जननी [redacted] की ते। शुभ(कल्याण) को प्राप्त होते वा करते हैं। विदथों(यज्ञगृहों) [redacted] गमन शील हैं। अग्निजिह्वा(अग्नि है जिह्वा भोजन साधन जिन्हों [redacted] ते+। मनवः(सर्वज्ञाः) सूरचक्षः(सूर्य है चक्षु जिन्हों का वा सूर्य को [redacted]खते। किंच केवल मरुत ही नहीं सब देवता भी हमारे यज्ञ में आवें॥२०॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥२१॥

[redacted]स्त्रिष्टुभः। हे देवताओ ओत्रों से भद्र(कल्याण-अनुकूल्य) हम सुनें। हे यजत्राः(यजन्तं त्रायन्ते-यजमान पालको) नेत्रों से हम भद्र देखें। किंच देवहित(देवताओं करि स्थापित वा देवताओं की उपासना योग्य) जो आयु(जीवन) तिसे हम प्राप्त होवें। कैसे हैं हम कि स्थिर(दृढ) अङ्गों(अवयवों कर(चरणादिकों)) से और तनूः(शरीर वा पुत्रादिकों से युक्त) तुष्टुवाᳬसः तुम्हे स्तुति करते॥१॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥२२॥

हे देवताओ शतवर्ष पर्यन्त तुम समीप में होओ इति शेषः। जहां शतशरद में हमारे शरीरों की तुम जरा करो अर्थात् वार्धकावधि तुम समीप में होओ। यत्र-हमारे पुत्र पितर हों(पुत्रवन्त हों) अर्थात् जब तक हमारे पौत्र हों तब तक मध्य में हमारी आयु मत नष्ट करो। कैसी आयु कि गन्तोः(गमनशील+॥२२॥

+ नदुक्रम सेचितार-सेचितस्य नमुरदाड मृतं मनुष्यस्य बिन्दुमायास्य। वषायुसिक्ता- दृष्य चर्म हत्वा: सर्वे प्रपतानाः शिथिली भवन्तीति॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्ज-
नित्वम् ॥२३॥

मन्त्र दृक् सर्वात्मकत्वेनादितिं स्तौति। स्वर्ग अदिति है (तदधिष्ठातृत्वात्
त्वमग्रेपि। अन्तरिक्ष अदिति है। माता और पिता वोह ही अदिति है। पञ्च
नाः (मनुष्य) भी अदिति है। किं बहुना उत्पन्न हुए प्राणीजात और होने
र अदिति ही है॥२३॥

अ०१२ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि-
ख्यन्। यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वी-
र्याणि॥२४॥

का०२०।८।७। मान इत्यादि षोडश कण्डिकात्मक दो अनुवाकों से पूर्वम्
चतुर्गृहीत आज्य लेकर होमें और षोडशाश्वस्तोमीया जुहोतीति १३।३।
५।१। श्रुति में मानो० यदश्वस्य० ये दो अष्टक कहे हैं। द्वाविंशत्यृचमश्व
स्तुति कात्या०सर्वा० खंड ४। द्वाविंशति ऋचो अश्वस्तुतिपरत्वादश्वदेवत्या
स्त्रिष्टुभो दीर्घतमोदृष्टाः अत्र एष छाग इति २६। तृतीया यूपव्रस्का इति २८
षष्ठी एते द्वे जगत्यौ। ततः षोडशों से होम छेओं से स्तुति वा सबों से होम
है अश्वस्तोमीयं हुत्वा द्विपदा जुहोतीति १३।३।५।३। श्रुतेः॥ अथ मन्त्रा-
र्थः। विदथ (यज्ञ) में अश्व के वीर्यों (चरित्रों) को जो कि हम उच्चार करते
हैं तहां मित्रादयः देवाः हमारे को निन्दा न करें अस्माभिर्देवाः स्तुत्या
न त्वश्वादयस्तिर्यञ्च इति यद्यपि निन्दोचिता तथाप्यश्वरूपेण देवाना-
मेव स्तुतिः क्रियते। अथवा महानुभाव देवजात अश्व को तुच्छ मनुष्य

स्तुति करते हैं यह न कहें। कैसे अश्व के कि वाजिनः (वेगवान) देवजात (सूर्यसे उत्पन्न वा देवताओं करि उत्पन्न करण द्वारा) के †। सप्ते: (देवताओं सहित जोड़िये है तिस के। केमानिन्दन्तु तानाह- मित्रः (अहरभिमानी देव) वरुण: (रात्र्यभिमानी देव)। अर्यमा (आदित्य) आयु (वायु) इन्द्रः (देवराज:) ऋभुक्षाः (ऋभवो देवाः जहां निवास करते हैं वोह देवाधार प्रजापति वा सबको व्याप्त इन्द्र विशेषणं वा॥२४॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति। सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः॥२५॥

जब कि विप्रलोग अश्व के मुखाग्र में गृहीत राति (दान- आज्यसक्तु धानालक्षण को प्राप्त करते हैं † तब अज (छाग) भक्षण के अर्थ प्राप्त होता है। कैसा अज कि सुप्राङ (भले प्रकार पूर्व को जाता अर्थात् ललाट में बंधा †। तथा मेम्यत् (शब्दानुकरणम्- मे-मे यह शब्द करता। विश्वरूपः (सर्वरूप- नानावर्ण) किंच इन्द्रापूष्णोः (इन्द्र और पूषा के) प्रिय (इष्ट) पाथ (अन्न- पशुलक्षण) को भक्ष के अर्थ वोह नाभिबद्ध आता है † अर्थात् हुतशेष अन्न जब अश्व के अर्थ दिया जाता है तब ललाट नाभि बद्ध छाग भक्ष के अर्थ आते हैं। कैसे अश्व के कि निर्णिजा (स्नानकरि प्रावृत संस्कृत स्नापित के। तथा रेक्णसा (धनकरि ॥) प्रावृत (आछादित) के ॥२५॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसा

† सौर्यश्वेत- सर्वे निरतहैत्युक्तेः २४-२३।

† लाजीं ३- शाचीं ३ निति २३-८- रात्रि हुतशेष को

† कृष्णग्रीव आग्नेयोललाट इत्युक्तेः २४-२।

अश्व के अर्थ देते हैं इत्युक्तेः॥

† सौमापौष्णः श्यामो नाभ्यामित्युक्तेः २४-१।

॥ धन (सौवर्णमणिलक्षण- एकशत- एकशत सुवर्णमणियें) को भूरित्यादिमन्त्रेण महिष्यादि तीनों पात्नी अश्व के शिर आदि केसरों में बांधती हैं इत्युक्तम् २३-८।

यं जिन्वति ॥२३॥

जब कि यह छाग वेगवान अश्वकरि पुरस्तात् प्राप्त करियेहै (ललाट ब-
द्धत्वात्) कैसा छाग कि पूष्णोभागः (पुष्णाति देवानिति पूषाग्नि तिसका
भाग-भजनीय) तथा विश्वदेव्यः (सर्वदेवार्ह) है। तब त्वष्टा (प्रजापति) ही
अर्व (अश्व) सहित इसछाग को तृप्त करता है। किसलिये कि सो श्रवस (सु
कीर्ति) के अर्थ (यज्ञे मृतानां स्वर्गो प्रेरुक्तत्वात्) कैसे इसै कि देवताओं
के समन्तात् तृप्त करनेवाले। पुरोडाश (पुरस्ताद्दातव्य) को ॥२६॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेद-
यन्नजः ॥२७॥

मनुष्याः (ऋत्विजः) जब कि अश्व को तीनिवार पर्यग्नि करते हैं। कैसे
अश्व को कि हविर्योग्य। ऋतुशः (यज्ञकाल में) देवयान (देवताओं
के प्रापणीय वा देवयानमार्गगामी यद्वा देव-आदित्यवत् गति
जिस की अर्थात् अनिवारितगति) को। इस समय (पर्यग्निकाल) में पू-
ष्णः पोषक वा हृद्ध-अग्नि का भाग अज पुरोगामी हो चलता है। क्या
करने कि देवताओं के अर्थ यज्ञ को प्रतिवेदयन् (प्रख्यापयन्-अप
ने शब्द करि जताने ॥२७॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता
सुविप्रः। तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृ-
णध्वम् ॥२८॥

हे होत्रादयः ऋत्विजः तिस (प्रसिद्ध) यज्ञ (अश्वमेध) करि वक्षणाः (नदी-

तकुत्स्याद्याः) आपृणध्वम्(घृतपयोदधिपयस्या पुरोडाश मांस से पू-
र्ण करो अर्थात् यज्ञ को सम्पादन करि फल को साधन करो। कैसे यज्ञ
कि स्वलंकृत विग्रहविर्देक्षणादि करि शोभित। सुष्टु इष्ट। के ऋत्विज
माह- होता(आह्वान करने वाला देवताओं का तन्नामक ऋत्विक्।
अध्वर्यु(अध्वर चाहाता। आवयाः(आभिमुख्येनावयति- प्रतिप्रस्था-
ता। अग्निमिन्धः(अग्नि को जलाता। ग्रावग्राभः(ग्रावस्तोता। और प्रं
शंस्ता(प्रशस्ता। सुविप्रः(मेधावी- ब्रह्मा सर्वविद्यः। अय मनुक्तर्त्विगु-
पलक्षकः। एते यज्ञेन वक्षणा आपृणध्वमिति सम्बन्धः॥२८॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं येऽ अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्व-
तु॥२९॥

तिन ऋत्विजों का अभिगूर्ति(उद्यम)हमें तृप्त करै व्याप्त हो वा हमारे
यज्ञ को भले प्रकार साधै। तिन किन्हों का कि जे यूप के लिये वृक्ष छे-
दते हैं और जे यूप को लाते हैं। और जे अश्वबन्धन यूप के अर्थ चषाल
(यूप के अग्रभाग में स्थाप्य काष्ठ) कों तक्षति(तक्षन्ति- साधु सम्पादन
करते छीलते)हैं। और जे मनुष्य अश्व के अर्थ पचन(पाकसाधन का-
ष्ठभाण्डादि लाते हैं तिन्हों का उद्यम हमें तृप्त॰॥२९॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृ-
ष्ठः। अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा
सुबन्धुम्॥३०॥

मन्म(मननीय फल)सुमत् स्वयं समीप प्राप्त हो वोह मननीयफल

मुरु कारि धारणकिया। किंच यह वीत(पुष्ट) पृष्ठ यद्वा पीत(काम्य) पृष्ठ अश्व † देवताओं के मनोरथों को पूरै इति शेषः॥ किंच देवपुष्टि निमित्त जिस अश्व को हम शोभन बांधते हुए विप्राः (मेधाविनो ऋषयः (मन्त्र दर्शिनो ऋत्विजः) उस अश्व को तोषें॥३०॥

यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य। यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते ऽअपि देवेष्वस्तु॥३१॥

वेगवान अश्व की जो दाम(ग्रीवाबद्धा रज्जु) और जो संदान(पादबन्धनरज्जु) और जो शिरोबद्धा इस अश्व की रज्जु और भी कटिस्थ रशना रज्जु है अथवा इस अश्व का घ(प्रसिद्ध) मुख में प्रक्षिप्त तृण है। हे अश्व तेरे सब तिन देवताओं में(देवोपयोगीनि) हो वा देवत्व को प्राप्त हों(अत्रोपयुक्तानां सर्वेषां देवत्वमाशास्यते॥३१॥

अ॰ १३ यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति। यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते ऽअपि देवेष्वस्तु॥३२॥

मक्षिएं अश्व की क्रवि जो खाती हुई अथवा जो मांस स्वरु(पश्वञ्जनकाल †) लिप्त है। और जो स्वधित(शास) में लिप्त है छेदन काल और अवदानकाल में। और जो शमिता के हाथों में और जो नखों में लिप्त है हे अश्व सब त्वदीय देव भोग्य हो॥३२॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य ऽआमस्य क्रविषो गन्धो ऽअस्ति। सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ शृत

पाकं पचन्तु ॥३३॥

उदर का ऊवध्य (थोडा जीर्ण तृणपुरीष †) जो नीचे चलता है। आम (अपक्व) के मांस का जो गन्ध (लेश) है विशसितारः तिस सबको सु संस्कृत करें। और मेध्य (अश्व) शृतपाक (देवयोग्य होवे पाक जिस कर्म में) जैसे तैसे पचें अर्थात् अतिपक्व और ईषत्पक्व न करें॥३३॥

† अशितस्य पक्वामाशयस्थमूवध्यमुच्यते।

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति। मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु॥३४॥

हे अश्व अग्नि करि पच्यमान तेरे शरीर से जो ऊष्मा वा रस नीचे जाता है। तथा निः शेषेण हत का जो अङ्ग शूल करि किये पाक में निकलता है वोह निर्गत ऊष्माङ्गादिक भूमि में आश्लिष्ट न हो। तथा विशसन समय में तृणलग्न न हो। किं तर्हि वोह पतित तृणलग्न सब देवताओं के अर्थ दत्त हो। कैसे देवताओं के अर्थ किचाह करते हैं हविकी॥३४॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति। ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु॥३५॥

जे मनुष्य अश्व को देखते हैं कि यह पक्व यह जानते हैं। और जे यह कहिते हैं क्या कि सुगन्धपाक हुआ अतः अग्नि के सकाश से उतारो। और जे मनुष्य अश्व के मांस की याचना करते हैं। उतो· अपि· च· और तिन्हों का उद्यम हमें तृप्त करें यद्वायं मन्त्रो देव परो व्याख्येयः॥

जे देवता पक्व अश्व को देखते हैं कि कब होजायगा और जे बिल
देखकर सुरभि पाकहुआ हमारे अर्थ देओ और जे घोडे के मांस को
याचते हैं तिन्हों का संकल्प हम को सफल हो॥३५॥

यन्नीक्षणं मा॒ᳪस्पच॑न्या उ॒खाया॒ या पात्रा॑णि यू॒ष्ण
आ॒सेच॑नानि। ऊ॒ष्म॒ण्या॒पि॒धाना॑ च॒रू॒णाम॒ङ्का॑ः सू॒नाः
परि॑ भूषन्त्यश्व॑म्॥३६॥

एते पदार्थो अश्व को अलं(स्वव्यापारेणसाधन) करते हैं। एते के
तानाह- कि जो उखा स्थाली का नीक्षण(पाकपरीक्षार्थदर्शन) कर
ते हैं। कैसी उखा कि मांसपाकाधिकरणभूता। तथा यूष्ण (पक्वरस)
के आसेचनपात्र। और जे चरुओं(मांसपूर्णपात्रों) के अपिधाना(ढक
ने)। कैसे हैं ढकने कि ऊष्मण्यापिधाना(ऊष्मा-भाप-बाहिर को न
निकले। तथा अङ्काः(चिन्हसाधनानि- हृदयाद्यवयवज्ञापकानि-
वेतसपात्राणि। सूनां(विशसनकारणभूताः- स्वधित्यादयः। एते अश्वं परि
भूषयन्ति॥३६॥

मा त्वा॒ग्निर्ध्व॑नयीद्धू॒मग॑न्धि॒र्मोखा भ्राज॑न्त्य॒भि वि॑क्त॒
जघ्रि॑ः। इ॒ष्टं वी॒तम॒भिगू॑र्तं॒ वष॑ट्कृतं॒ तं दे॒वासः॒ प्रति॑गृभ्ण॒
न्त्यश्व॑म्॥३७॥

हे अश्व(पच्यमानाश्वावयव) अग्निः तुम्हें ध्वनि न करावे कारणयह
है कि ध्वनिहोने में भाण्डभङ्ग होता है- दह्यमानमांस सिमि-सिम य
ह शब्द करता है सो नहो। कैसा अग्नि कि धूमगन्धिः(धूमका है लेश
जहां वोह। किंच भ्राजन्ती- अतिताप करि दीप्यमाना उखा(स्थाली)

न चले। कैसी उखा कि जघ्रिः (गन्ध को ग्रहण करती- अधिष्ठात्री दे-
[illegible] का घ्राण। तिस एवंविध अश्व को देवाः प्रतिग्रहण करें। कैसे अश्व
कि इष्ट (प्रयाजों) वीतं (आप्रियों) करि पर्यग्निकिये- अभिगूर्त (ये यजा
[illegible]ति आगूर्त्योक्त) वषट्कृतं (वषट्कार करि संस्कृत) को॥३७॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः। य-
च्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता तेऽअपि देवेष्व-
स्तु॥३८॥

जो निक्रमण (निरन्तर करने का स्थान) निषदन (उपवेशनस्थान) विवर्तन (इधर उधर लुठने का स्थान) और जो अश्व का पड्बीश (पाद-बन्धन। क्रियापरा वा निक्रमणादयः शब्दाः- आलम्भ समय में जे अश्व की निक्रमणादि चेष्टाएँ। किंच जो जलपीया और जो तृणादि खाया सो सब तेरे निक्रमणादिक देवताओं में हों। अर्थात् देवार्थ अश्व के रोमादिकों का निरर्थकत्व न हो॥३८॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वायामयन्ति॥३९॥

प्यारी ये वस्तुएँ देवताओं में आगमन कराती हैं अर्थात् ऋत्विज अश्व की ये देवताओं में ही प्राप्त कराते हैं। कानीत्यत आह- अश्व के अर्थ जो अधीवास (आच्छादकवस्त्र) उढाते हैं तथा जे हिरण्यशकलें इस (अश्व) के अर्थ उपस्तरण करते हैं। तथा अश्व का शिरबन्धन और पाद बन्धन। ये देवताओं में प्राप्त कराती हैं। कैसी हैं ये कि देवताओं की प्यारी॥३९॥

अ०१४ यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद। स्रुचेव ता हविषोऽअध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि॥ ४०॥

हे अश्व अश्ववार(घुडचढा)चलते में तेरा(तुझे)पार्ष्ण्यौं(पाद के अधो भाग-एड) वा कशा(कोरडा वा रज्जु)करि पीडा देता हुआ। जो सा तेरा कि बल करि शूकृत का यद्वा शब्दानुकरणम् बल करि शूकार करते हुए को। अध्वर में ते सब तेरे पार्ष्णि कशादि ताडन ब्रह्मण(मन्त्र) करि मे चुवाता हूं अर्थात् यज्ञमें आहुतित्व करि कल्पता हूं। तत्र च दृष्टान्तः हवि(आज्यादिक)जैसे स्रुचि करि टपकाता हूं तद्वत्। एकं ता पादं पादपूर्णाय॥ ४०॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति। अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त॥ ४१॥

स्वधितिः(पशुछेदन साधन-असि)अश्व की चतुस्त्रिंशत्संख्याका उभयपार्श्वास्थियों को भलेप्रकार आती है छेदन के अर्थ। कैसे अश्व की कि वेगवान। देवताओं के प्यारे वा देवता हैं प्यारे जिस के तिसकी। अतः हे ऋत्विजः ज्ञान करि अश्व के गात्रों को छिद्रहीन करो स्वधिति करि सच्छिद्र वर्त्ते हैं तिन्हें अच्छिद्र करो। किं च परुष्परुः(प्रति पर्व प्रत्यवयव) अनुघुष्य यह-यह इसनामकरि तुम छेदन करो॥ ४१॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः। या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता-ता पिण्डानां

प्रजुहोम्यग्नौ ॥४२॥

अश्व का विशसनकर्ता एक ऋतु। कैसे अश्व कि त्वष्टा दीप्त का। अर्थात् ऋतूपलक्षित कालात्मा प्रजापति ही अश्व का शास्ता है। तथा नियमकर्त्तारौ दो द्यावा पृथिव्यभिमानी देवौ होते हैं तयोरेवसर्वेषां नियन्तृत्वादिति भावः। एव मश्वस्य विशसतयन्तृनुक्त्वाध्वर्युः स्वकर्माह हे अश्व तेरे गात्र सम्बन्धि मांसपिण्डों को जिन अङ्गों में छेदता हूं ऋतूपलक्षित वसन्तादि यज्ञ काल में तिन अङ्गों को अग्नि में प्रकर्षेण हुत करता हूं ॥४२॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥४३॥

हे अश्व प्यारा + तेरा आत्मा(देह)तुझे प्राप्त दुःखित न करे(तुझे देहवियोगजनिता व्यथा न हो इति विज्ञानात्मानं प्रत्युच्यते।कैसे तुझे कि देवलोक को चलते। किंच स्वधितिः(शस्त्र)तेरे अङ्ग न स्थापन करे अर्थात् सब छेदि के देवताओं के अर्थ दे। किंच शमिता तेरे अङ्गों को छोडि (शास्त्रोक्तक्रम छोडि)कर शास करि मिथ्या छिद्र(अयथछिन्न) न करे। कैसा शमिता कि लोभी(केवल मांस ग्रहणेच्छुः)अत एव विशसन में अकुशल है अर्थात् भले प्रकार अवदानानि करे ॥४३॥

न वाऽउऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२॥ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषतीअभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥४४॥

+ भोगाययतमान

वै॰ एवार्थे॰ उ॰ अवधारणे। हे अश्व तू एतन्नैव मरता(इतरअश्ववत् नहीं मरता)है*। अत एव नहीं हिंसा होता †। ननु प्रत्यक्षत्वे मरणभङ्गनाशश्च दृश्यते तर्हि कथमेव मुच्यते तत्राह साधु गमन मार्गों देवयानरूपों करि देवताओं को जाता है अयोयुक्तामदुक्तिः। कथं देवान्प्रति गमनम् तत्राह हे अश्व तेरे हरी(इन्द्र के घोडे)रथ में युक्त होंगे तथा पृषती(मरुतों के घोडे)रथ में होवेंगे। किंच रासभ (अश्विवाहन)के धुरि(स्थान) में कोई वाजी(अश्व)उपस्थित होगा। देवत्वं प्राप्तस्य तव वहनाय इन्द्रादयो निजवाहनानि प्रेषयिष्यन्तीति भावः यद्वा तत्तद्देवभावं प्राप्तं त्वां तानि-तानि वाहनानि वक्ष्यन्तीत्यर्थः॥४४॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुꣳसः पुत्राँ२॥ऽउत विश्वापुषꣳरयिम्। अनागास्त्वं नोऽअदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽअश्वो वनताꣳ हविष्मान्॥४५॥

इदानीं याञ्चाक्रियते। वाजी(देवत्वं प्राप्तोऽश्वः)हमारा शोभन गोसमूह करै। तथा शोभन अश्वसमूह करै तथा पुंसः(पुत्र वा पुरुषार्थसाधक पुत्रों को) करै। और सर्वजन पोषण समर्थ धन करै। किंच हमारा अनागस्त्व(निष्पापत्व)करै पापसद्भावेउक्तफलाप्राप्तेः। किंच अश्व हमारा क्षत्र(क्षतत्राण बल वा पराभवाद्रक्षण)करै। कैसा अश्व कि अदितिः(नहीं है खण्डन वा दैन्य जिसका। हविष्मान् यद्वा देवत्वाख्या हविष्मान्। ईदृशोऽश्वः हमारा क्षत्र वननीय करै॥४५॥

अ॰ १५ इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्। य-

* व्यर्थहिंसाया अभावात्

† देवत्वप्राप्तेर्वक्ष्यमाणत्वात्

इमं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति॥४६॥

का०२०.८.१२. अयस्मयपात्र करि अश्वलोहित होमानन्तर इमानु कमित्याद्याः षट् द्विपदाएँ होमें, दो करिडकाओं की षट् अर्धारियें हैं तिन्हों से षट् आहुतियें होमें॥द्विपदा छन्दस्का विश्वदेव देवत्या आप्त्य भुवन दृष्टाः साधन दृष्टा वा तिस्र ऋचः।नु कम्, एतौ निपातौ पाद पूरणौ, ये भूतजात हम वशी करते हैं।किं च इन्द्र(ऐश्वर्यवान्) अपने गणों(परिवार)सहित और विश्वे देवा द्वादश आदित्यों और एकोनपञ्चाशत्संख्य मरुतों सहित हमारे अर्थ औषधें करें अर्थात् सब देवता हमारे हितकारी हों।किंच इन्द्र आदित्यों सहित हमारे यज्ञ(अश्वमेध) शरीर और पुत्रादि प्रजा को वशी करै नीरोगाः सपुत्रा हम भले प्रकार यज्ञ को करते हैं इति भावः॥४६॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥४७॥†

इति सꣳहितायां पञ्चदशोऽनुवाकः १५

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेयसꣳहितायां दीर्घ पाठे पञ्चविꣳशोऽध्यायः॥२५॥

तिस्रो द्विपदा व्याख्याताः अध्या० ३.२५. अ० इ० २६. अ०॥ ॥ समिद्धोऽअञ्जन् २९.१. आश्वमेधिको ऽध्याय इति वचनादत्र होत्रे तन्मन्त्राणां विनियोगः॥समाप्तोऽश्वमेधः सप्तविंशत्युत्तर वर्षे साध्यः॥४७॥

† इ-वाः।अ०आ-त्र।इ०।य-ति।उ०॥४६॥ † अ-ध्य।अ०व-दाः।इ०।तं-भ्य।उ०॥४७॥

इतिभाष्येपञ्चदशोऽनुवाकः १५

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दंनिवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्धर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः २५

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय विश्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेय नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये अश्वमेध प्रकरणे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५॥

अथाश्लीलभाषणे श्रुतिः शत॰ काण्ड १३

अथ वा एतस्मात् । श्री राष्ट्रं क्रामति योऽश्वमेधेन यजते ॥१॥ ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयेति । श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छ्रयति ॥ २॥ गिरौ भारꣳ हरन्निवेति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रꣳ संनह्यत्यथो श्रियमेवास्मिन्राष्ट्रमधिनिदधाति ॥३॥ अथास्यै मध्यमेधतामिति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यꣳ श्रियमेव राष्ट्रे मध्यतोऽन्नाद्यं दधाति ॥४॥ शीते वाते पुनन्निवेति । क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति ॥ ५॥ यकासकौ शकुन्तिकेति । विड्वै शकुन्तिकाहलगिति वञ्चतीति विशो वै राष्ट्राय वञ्चन्त्याहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारकेति विड्वै गभो राष्ट्रं पसो राष्ट्रमेव विश्याहन्ति

तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः ॥६॥ माता च ते पिता च न इति । इयं वै मातासौ पिताभ्यामेवैनर्ठं स्वर्गं लोकं गमयत्यग्रं वृक्षस्य रोहत इति श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रर्ठं श्रियमेवैनर्ठं राष्ट्रस्याग्रं गमयति प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतर्ठंसयदिति विड्वै गभो राष्ट्रं मुष्टो राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः ॥७॥ यद्धरिणो यवमत्तीति । विड्वै यवो राष्ट्रर्ठं हरिणो विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुमन्यत इति तस्माद्राजा पशून्न पुष्यति शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायतीति तस्माद्वैशीपुत्रं नाभिषिञ्चति ॥८॥ अप वा एतेभ्यः प्राणाः क्रामन्ति ये यज्ञेऽपूतां वाचं वदन्ति दधिक्राव्णो अकारिषमिति सुरभिमतीमृचमन्ततोऽन्वाहुर्वाचमेव पुनते नैभ्यः प्राणा अपक्रमन्ति ॥९॥ ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥ २ ॥९॥

आदितः अनुवाक संख्या ४५

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसाद रचिते वेदार्थप्रदीपे तृतीयाध्यायस्य पञ्चमो खण्डः ५॥

समाप्तोऽयमश्वमेधः ॥

ज्येष्ठेमासेऽमलेपक्षे पौर्णिमाभृगुवासरे +
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे हयमन्त्राःसमागमन्
अतः परं दशभिरध्यायैः खिल्यान्युच्यन्ते

विक्रमाब्दाः १९२९ शकाब्दाः १७९४ आश्विनशुक्ला १ भृगुवार शुभं भवतु॥

+ विदित हो कि संवत् १९२८ अधिक भाद्रपद शुक्ला १२ रविवार से ही मैंने थोडा-थोडा अश्वमेध के भाष्य लिखने का आरम्भ किया इसहेतु अग्नि के समीप ही यह भी समाप्त हुआ॥

हरिः ओम्

अथ संक्षेपत अश्वमेधमन्त्राणां सूचीपत्रम्

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

(अथ खिल्यानि विवस्वद्दृष्टानि)

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः॥

अ०१ अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे संनमतामदो वायुश्चा
न्तरिक्षं च संनते ते मे संनमतामद आदित्यश्च द्यौ
श्च संनते ते मे संनमतामद आपश्च वरुणश्च संनते ते मे
संनमतामदः। सप्त संसदो अष्टमी भूतसाधनी। सकामाँ२॥
अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना॥१॥

आचार्यं याज्ञवल्क्यं तथा माध्यन्दिनं मुनिम्
शुक्ले वेदे दशाध्याया उच्यन्ते खिलसंज्ञकाः॥

इषे त्वेत्यारभ्य दर्शपौर्णमासपितृयज्ञाग्निहोत्रोपस्थानपशुचातुर्मास्या
ग्निष्टोमवाजपेयराजसूयाग्निसौत्रामण्यश्वमेधसम्बन्धा मन्त्राः व्याख्याताः।
इदानीं खिल्यान्युच्यन्ते क्वचिद्विनियोगानुक्तेः। तेषां विवस्वानृषिरन्यस्यानुक्तेः
आदित्यानीमानि यजूंषि व्याख्यायन्त इति श्रुतेः बृहदारण्य०५।५।३३। याज्ञ
वल्क्येन वा याज्ञवल्क्येन व्याख्यायन्त इति श्रुतेः॥

ओंनमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अनुक्तमन्त्रकथनः षड्विंशोऽध्याय ईर्यते २६

अग्निश्च। सप्तलिङ्गोक्तानि यजूꣳषि। अग्निश्च १॰ वायुश्च २॰ आपश्च ४॰ आर्चीं गा॰ आदित्यश्च ३॰ सप्तसंसदः ५॰ यथेमाम् ७॰ यजूंषि सकामाम् ६॰ प्रा-अ॰॥ अग्नि और पृथिवी संनते (आनुकूल्येन प्रवृत्ति भोग के अर्थ संगत हैं अतः कहिता हूं कि ते अग्नि पृथिव्यो मे (मेरे) अदः (अमुक देवदत्त को) संनमताम् (संनमयताम् वशवर्ति करे॥१॥ एवमुत्तरेष्वपि मन्त्रेषु योज्यम्। वायु और अन्तरिक्ष संनते॰॥२॥ आदित्य और द्यौ संन॰॥३॥ आप (जल) और बरुण संन॰॥४॥ परमात्मानं प्रत्युच्यते हे स्वामिन् जो कि तेरे सप्त संसदः (सात अधिष्ठान अग्नि १ वायु २ अन्तरिक्ष ३ आदित्य ४ द्यौ ५ जल ६ वरुण ७) हैं तहां अष्टमी भूतसाधनी (पृथ्वी भूतों को उत्पादन करती +) है अतः सर्वाधिष्ठान भूत तू अध्वनः (मार्गों को सकाम करि अर्थात् जिन मार्गों में मैं चलूं तहां मुझे काम प्राप्ति हो। किंच देवदत्त करि मेरा संगत ज्ञान (मेरी इष्ट से प्रीति) हो। विज्ञानात्मा वोच्यते जिस तेरे सप्त संसदः (पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि मन और बुद्धि सप्तायतन) हैं अष्टमी भूतसाधनी (भूतों को बशी करने वाली वाणी) है सो तू हमारे अध्वनः सकाम करि अमुक सहित मेरा संगत ज्ञान हो॥५॥६॥१॥

+भूमि बिना भूतोत्पत्ति असंभव

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां

दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥२॥ +प-च।अ०।त्रि-तु।इ०॥२॥

यह कल्याणी अनुद्वेगकरी वाचा को मैं यथा यतः सर्वतः कहता हूं (दीयताम् भुज्यताम् इति सर्वेभ्यो वच्मि। केभ्यस्तदाह ब्राह्मणों के अर्थ राजन्यों वैश्यों शूद्रों स्व (अपनों) अर्णों (परायों, शत्रुओं वा वाक्सम्बन्धरहित शत्रुओं) के अर्थ॥ प्रियो देवानाम् मध्ये ऽवसानरहितानुष्टुप् लोगाक्षिदृष्टा। यथेति पूर्वोक्तेरत्र तथाशब्दोऽध्याहार्यः ऽयतः मैं ब्राह्मणादिकों के अर्थ कल्याणी वाणी कहता हूं तथा (ततः) देवताओं का प्यारा होंउं और इस संसार में दक्षिणा के दाता का प्यारा होंउं अर्थात् देवाः दक्षिणा और दातार मेरे विषें प्रीति करें। किं च मेरा अयं, यह काम (अयमिति नामनिर्देशः धनपुत्रदिलाभकामः) सफल हो। किंच यह (देवदत्त) मुझे प्रीणयतु (तृप्त करै॥२॥

बृहस्पते ऽअति यदर्यो ऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥३॥+ र-मृ।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उ०॥३॥

ब्रह्मदेवत्या त्रिष्टुप् गृत्समददृष्टा बृहस्पतिसवे बार्हस्पत्यग्रहणेऽस्याः सोपयामाया विनियोगः॥ हे ऋतप्रजात (सत्य वा ब्रह्म) के सकाशसे जन्म जिसका) हे बृहस्पते (बृहत् वेदों के पालक) नानाविध वोह धन हम यजमानों में स्थापन करि। वोह कौन कि जिस धन को स्वामी पूजा करै (अर्थात् ईश्वरयोग्य धन दे। जो धन को लोकों में विविध शोभै। कैसा

धन कि द्युमत् (कान्तिमान्) क्रतुमत् (जिस से यज्ञ किये जावें) अर्थात् नाना धन दे। जो धन बल करि दिलाता वा शान्ति कराता अर्थात् अनान्ता बोह धन दे॥ उपयामेति सा॰-उ॰॥ उपयाम पात्र करि गृहीत है बृहस्पति के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं॥ एष ते या॰-त्रि॰॥ यह तेरा स्थान बृहस्पति के अर्थ तुझे सादन करता हूं॥ ३॥

इन्द्र॒ गोम॑न्नि॒हा या॑हि॒ पिबा॒ सोम॑ꣳ शतक्रतो वि॒द्यद्भि॒र्ग्राव॑भिः सु॒तम्। उ॒प॒या॒म गृ॑ही॒तो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ गोम॑त॒ ए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ गोम॑ते॥ ४॥ +

हे शतक्रतो (शत कर्म जिस के) हे इन्द्र हे गोमान् (गावः-धेनवः-स्तुतयः-किरणा वा विद्यते यस्य स) तू इस यज्ञ में आ और सोम को पान करि। कैसा सोम कि ग्रावों (पाषाणों) से अभिषुत कैसे पाषाणों कि विद्यत् (विशेषेण खण्डनं करते-पीसते हैं तिन्हों करि॥ उप॰ ४. ५. सा॰-उ॰। गोमान् इन्द्र॰। सादयति एष॰ ४. ५. या॰-ज॰॥ ४॥

इन्द्रा या॑हि वृत्रहन्पिबा॒ सोम॑ꣳ शतक्रतो। गोम॑द्भि॒र्ग्राव॑भिः सु॒तम्। उ॒प॒या॒मगृ॑ही॒तो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ गोम॑त ए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ गोम॑ते॥ ५॥

हे वृत्रहन् (वृत्र-दैत्य के मारनेवाले) हे शतक्रतो हे इन्द्र तू आ और सोम को पी कैसे सोम कि ग्रावों करि सुत कैसे ग्रावों कि स्तुति है जिन्हों की॥ उप॰ एष॰ व्याख्याते॥ ५॥

ऋ॒तावा॑नं वैश्वान॒रमृ॒तस्य॒ ज्योति॑ष॒स्पति॑म्। अज॑स्रं घ॒र्मभी॑महे। उ॒प॒या॒मगृ॑ही॒तो॒ऽसि वैश्वान॒राय॑ त्वै॒ष ते॒ यो॒-

+ इ॰-मू॰। अ॰। उ॰-ते। इ॰। ए॰-ते। ज॰॥ ४॥ + इ॰-मू॰। अ॰। उ॰-ते। इ॰। ए॰-ते। ज॰॥ ५॥

नि वैश्वानराय त्वा ॥६॥ + ऋ-हे।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उआई

निस्रो वैश्वानरीयाः पुरोऽनुवाक्याः। आद्या गायत्री प्राद्युरक्षिहं ष्टा। हम वैश्वानर को याचना करते हैं यज्ञ समाप्ति को इति शेषः। कैसे वैश्वानर कि ऋतावान(सत्य यज्ञ वा जलवान)को सत्य (अविनाशि) ज्योति के पति अर्थात् तेजोऽधिष्ठान को। अजस्र (अनुपक्षीण)को। घर्म (जलक्षरते वा दीप्त)को ॥ उप॰ ६.७.८.सा-उ॰ वैश्वानर के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं ॥ एष॰ ६.७.८.या-त्रि॰ सादन करता हूं ॥६॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७॥ + + वै-ए।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उ०॥७॥

त्रिष्टुप्कुत्सदृष्टा। वैश्वानर की शोभन बुद्धि में हम होवें। कं-निपातः पादपूरणः। हि-जिस हेतु से वैश्वानर इतः अरणि से उत्पन्न हो इस सब कर्मानुरूप को देखता और सूर्यसम तेजा है। कैसा अग्निः कि राजता भूतजातों का आश्रयणीय। उप॰ एष॰ व्याख्याते ॥७॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः। अग्निरुक्थेन वाहसा। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥+ +वै-सा।अ०।उ-त्वा।इ०।ए-त्वा।उआई

गायत्री। हमारी रक्षा के अर्थ दूर देश से वैश्वानर अग्नि आवे किस वाहन करिकि उक्थ (स्तोम +) करिके ॥ उप॰ एष॰ व्याख्याते ॥८॥

+ सोमा इन्द्र नाम और कृष्णाजी सोमस्य वाहनस्तुत्सम

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे
महागयम्। उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एषते
योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥९॥ +

अग्निदेवत्या गायत्री वसिष्ठभरद्वाजदृष्टा पुरोरुक्। महान्गयः(म
हास्तुति जिस की वा महागृहरूप) तिस अग्नि को हम याचना करते
हैं। तिस किसे कि जो अग्नि ऋषि(मन्त्रदृष्टा। पवमान(इधरउधरच
लता वा शोधता) है। पाञ्चजन्यः(पञ्चजनों के अर्थ हित। पुरोहित(अ
ग्र में स्थापित) हैं॥ उप॰ सा-उ॰। तेजरूप अग्नि के अर्थ तुझे ग्रह॰॥
एष॰ या-ज॰॥९॥

महाँ२॥ऽइन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु। हन्तु पा
प्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि। उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय
त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥१०॥ +

महेन्द्रदेवत्या गायत्री वसिष्ठकृता। पुरोरुक्। इन्द्र शर्म(सुख) देवै।
और जो हमें दुःख दे तिस पापिष्ठ को मारे यद्वा हमारे द्वेष्टार और
पाप्मान(पाप- ब्रह्महत्यादिक) को नाश करे। कैसा इन्द्र कि महान्(श्रे
ष्ठ। वज्र है हाथ में जिस के वोह। षोडशी-पञ्चप्राणा दशेन्द्रियाणिम
नश्चेति षोडशपदार्था लिङ्गशरीररूपा जिस के वोह आत्मरूपइत्यर्थः॥
उप॰ आसु-अ॰। एष॰या-पं॰ द्वे उक्ते॥१०॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः। अभि व
त्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥११॥

इन्द्रदेवत्या पथ्या बृहती नोधागोतमदृष्टा। स्वाध्यायादिषु नियुक्ता

+ अ-मृ। अ॰। उ-से। इ॰ए-से। उ॰॥९॥ + म-ष्टि। अ॰। उ-त्वा। इ॰ए-त्वा। उ॰॥१०॥

हे यजमानओ तिस इन्द्र को हम स्तुति लक्षण वाणियों करि स्तुति करते हैं। कैसे इन्द्र को कि तुम्हारे दर्शनीय। ऋतिषह(अभिभवता शत्रुओंको) तिसे। स्थिति हेतुभूत अन्नकरि मोदमान को। दृष्टान्तमाह वत्सं नस्वसरेषु(दिनों में जैसे नवप्रसूता गौएँ बछडे को बुलाती हैं। तद्वत् हमइन्द्र को स्तुति करते हैं॥११॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो। महिषीव त्वद्र्यिस्त्व द्वाजा उदीरते॥१२॥

अग्नि देवत्यानुष्टुबसूयुदृष्टा। हे उद्गातः अग्नि के अर्थ तिस बृहत्साम का गान करि। वोह क्या कि जो प्राप्त कराता है अतिशयेन इष्ट को। किंच सामगान से प्रत्यक्ष अग्नि को कहि क्या कि हे विभाव(कान्तिही है धन जिस का वोह) हे अग्ने धन और अन्न तेरे सकाशसे ऊंचे चलते हैं। तत्र दृष्टान्तः महिषीव-जैसे प्रथमपरिणीता स्त्री घर से भोग के अर्थ ऊंची चलती है। एकं त्वत्पदं पादपूरणम् वा धन तुम से ऊँचा चलता है॥१२॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥१३॥

अग्नि देवत्या गायत्री भरद्वाजदृष्टा। हे अग्ने तू आ। इस प्रकार करि(+) इतराः (अन्याः) स्तुति लक्षण वाणिएँ सुतरा कहें। किंच इन सोम विन्दुओं से बढि॥१३॥

ऋतवस्ते यज्ञं वितन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः। संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परिपातु नः॥१४॥

अग्नि देवत्या बृहती। हे अग्ने ऋतुलक्षणाः कालविशेषाः तेरे यज्ञ

को विस्तारें। चैत्रादि मासाधिष्ठातारो देवाः तेरे हवि(पुरोडाश)को रक्षा करें। संवत्सराधिष्ठाता देवता तेरे अर्थ हमारे यज्ञको पुष्ट करें और हमारी पुत्रादि प्रजा को संवत्सर ही रक्षा करें॥१४॥

उपह्वरे गिरीणाꣳ संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो ऽअजायत॥१५॥

सोम देवत्या गायत्री वत्सदृष्टा। वनों के निकट और नदीयों के संगममें मेधावी सोम उत्पन्न हुआ किस बुद्धि करि कि विप्रादिक मुरू करि यज्ञ करेंगे यह विचारि के इत्यर्थः॥१५॥

अ॰२ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे। उग्रꣳ शर्म महि श्रवः॥१६॥

सोमदेवत्यास्तिस्रो गायत्र्य आमहीयवदृष्टाः। हे सोमतेरे अन्न (रसरूप) से उत्पन्न होम से हुए अपूर्व ऊंचे गये स्वर्ग में विद्यमान को भूमि ग्रहण करती है। किं तत् द्युलोकस्थं भूमिर्गृह्णाति तदाह। उत्कृष्ट सुख (गृहपुत्रादिजन्य) को वडे श्रवः(कीर्ति वा धन) को॥ अनेन मन्त्रेण पञ्चाहुति परिणाम उक्तः। स यथा। होम किई हुई आहुति प्रथम दिवि में जाती है ततः अन्तरिक्षमें जल रूप करि फिरि भूमि में अन्न रूप से ततः नर में रेत रूप से फिरि योनि में नररूप करि आके नर को धन यश से सुखी करती है इति भावः॥१६॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परिस्रव॥१७॥

हे सोम तू हमारा परिस्रव क्षर(रस रूप)होके आहुतित्व को प्राप्त हुआ

इन्द्राय॰। किमर्थम्। कि इन्द्र वरुण और मरुतों के अर्थ अर्थात् इन्द्रादिकों की तृप्ति के अर्थ परिस्रव। कैसे इन्द्र कि पूजने योग्य के अर्थ। यज्यवे (यज्यवे इदं त्रयाणां विशेषणम्। यज्युभ्य इति (पूजा योग्यें) मरुतों के अर्थ। कैसा है तू कि वरिवोवित् धनका ज्ञाता वा प्रापक ॥१७॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे ॥१८॥

ईश्वर सोम इन सब मनुष्यों के द्युम्नों (धनों वा यशों) को लावै इति शेषः अर्थात् हमारे अर्थ देवै तिन सोमदत्त द्युम्नों को हम सम्भजें। कैसे हैं हम कि सिषासन्तः (दान को करते) धनभाज हों इत्यर्थः ॥१८॥

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः। अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९॥

यज्ञपुरुषमुद्गलदृष्टा त्रिष्टुप् आशीरियं देव देवत्या। हम वीरों (पुत्रों) करि पुष्ट होंवेंगे धेनुओं से पुष्ट होंवेंगे अश्वों से पु॰ और और कामनाओं गृहादि कों से पु॰। द्विपदों (दासादि मनुष्यों) और चतुष्पदों (गजादि कों) से पुष्ट हों। किंच ऋतु-ऋतु में देव हमारे यज्ञ को प्राप्त हों ॥१९॥

अग्ने पत्नीरिहावह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये ॥२०॥

अग्नि देवत्या गायत्री मेधातिथि दृष्टा। इतः पञ्च ऋचोऽग्निष्टोमे नेष्टुर्याज्याः आद्या प्रातःसवने नेष्टृचमसयागे याज्या। हे अग्ने देवताओं की पत्निएँ इस यज्ञ में तू ला कैसी पत्निएँ कि कामयमानाः। किं-

च सोम पान के अर्थ त्वष्टा देवता को प्राप्त कर ॥२०॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिबऽऋतुना। त्वꣳ हि रत्नधा असि ॥२१॥

हे ऋतुदेवते गायत्र्यो मेधातिथिदृष्टे ऋतुयागे नेष्टुर्याज्ये। हे ग्नावः (पत्नीवन्) हे नेष्टः हमारे यज्ञ को स्तुति करि। किंच ऋतु देवता सहित पान करि सोम को इतिशेषः। क्यों कि तू रत्नों (रमणीयधनों) का दाता है ॥२१॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२२॥

द्रविणोदाः (धनदाता अग्नि) पीने चाहता है सोम को इतिशेषः। अतः हे ऋत्विजः तुम होमों और कर्म मे उद्युक्त होओ। किं च नेष्टा के धिष्ण्य से देवों सहित सोम प्रति जाओ ॥२२॥

नवायꣳसोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शꣳश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि। अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठरऽइन्दुमिन्द्र ॥२३॥

इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप् विश्वामित्रदृष्टा। माध्यन्दिने सवने नेष्टृचमसयागे याज्या। हे इन्द्र तेरा यह सोम है अतः अस्मदभिमुखः तू आ सर्व काल इस सोम की (को) रक्षा करि। कैसा है तू कि प्रसन्नचित्त। किंच इस यज्ञ में आस्तृत दर्भों पर बैठि इस सोम को उदर में रखि ॥२३॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन। अथा मन्दस्व जुजुषाणोऽअन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥२४॥

त्वष्टृदेवत्या जगती गृत्समददृष्टा। तृतीयसवने नेष्टृच्चमसयागे याज्या। देवपत्न्यः प्रार्थ्यन्ते। अपने घर में ऐसे हमारे यज्ञ को हे देवपत्नीओ तुम आओ। हि-पादपूरणः। दर्भों पर बैठो। रणिष्टन(परस्पर वार्ता करो। कैसी हो तुम कि शोभन है आह्वान जिन्हों का। एवं देवपत्नीरुक्त्वाथ त्वष्टारमाह हे त्वष्टः तू निरन्तर आई हुई देवपत्निओं विषे तृप्त हो। कैसा है तू कि हविर्लक्षण अन्न को सेवमान और देवपत्नीओं से सुमद्गणः(संतुष्ट हैं देवगण और स्त्रीगण जिसके॥ २४॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः॥ २५॥

सोमदेवत्ये द्वावनिरुक्तौ+गायत्र्यौ मधुछन्दोदृष्टे जपादिषु नियुक्ते। हे सोम धारा करि दशा पवित्र से द्रोण कलश प्रति जा। कैसी धारा कि अत्यन्त स्वादवती। अत्यन्त मदयित्री। क्योंकि इन्द्र के पीने को तू अभिषुत है हम लोगों करि इस हेतु धारा॰ प्रति जा॥ २५॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते। द्रोणे सधस्थमासदत्॥ २६॥

इति सꣳहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेय सꣳहितायां दीर्घपाठे षड्विꣳशोऽध्यायः॥ २६॥

सोम द्रोणकलश लक्षण स्थान को तिष्ठे है। कैसा है सोम कि राक्षसों (दुष्टों) का हन्ता विश्वचर्षणि(सब जगत्)को देखता वा सब मनुष्य ऋत्विग्यजमान लक्षण जिस के कण्डना हरणादि में वोह। तथा कैसा है

वृ्रेण कलश कि लोह करिके हत (उत्कीर्ण) बनायागया। तथा सब सम्भर्तृ्ता धें हैं। सोमजहां॥२६॥

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः२

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्॥

पुमार्थाश्चतरो देयाद्भानुदेवः सनातनः२६

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तरगत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वयकि श्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मज रौक्मिणेय नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये खिलप्रकरणेऽनुक्रमन्त्र कथनः षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपंच साधने र्बहुरूपकम्

स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २६

समास्त्वाग्निकोऽध्यायः(प्रजापतिदृष्टः)

अ॰१ समास्त्वाग्नऽऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या। सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशश्चतस्रः १

ओंनमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके॥॥

सप्तविंशोऽयमध्याय आग्निकोवर्ण्यतेऽधुना२७

अयमध्यायः पञ्चचितिकस्याग्नेः सम्बन्धी प्रजापतिदृष्टः। नव ऋचोऽग्नि-

देवत्या त्रिष्टुभोऽग्निना दृष्टाः इष्टकापशौ समिध्यमानसमिद्धवत्यो रन्तराले आसां विनियोगः। अग्निर्ऋषिः कर्मोङ्गभूतमग्निं स्तौति। हे अग्ने रत्ने तुम्हे बढावें। के कौन। कि समा(समाः= महीनें†) वसन्ताद्या ऋतुएँ संवत्सरः तिस के अधिष्ठातारः। ऋषयः(मन्त्रद्रष्टारः) जे हैं सत्य अर्थात् सत्यरूपा मन्त्राः। और तू इन्हों से वर्धमान दिवि में हुई दीप्ति करि संदीप्त हो। किंच सब प्रदिशाएँ और चारों दिशाएँ दीप्त करि ॥१॥

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा च रिषदुपसत्ता तेऽअग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥

हे अग्ने संदीप्त हो और इस यजमान को ज्ञातार्थ करि†। वडे ऐश्वर्य देने को उद्यम करि। किंच हे अग्ने तेरे समीप बैठनेवाला(यजमान) नाश न हो‡। तेरे ब्राह्मणाः(ऋत्विग्यजमानाः) यशस्विनः हों। और और यजन न करने वाले यशस्विनः नहों ॥२॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवोऽअग्ने संवरणे भवा नः।
सपत्नहा नोऽअभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥

हे अग्ने ये ऋत्विग्यजमानाः तुम्हे याग के अर्थ भजें हैं अतो हे अग्ने संवरणे(ब्राह्मणों सहित एकस्मिन् वरणे सति)हमारे को शान्त हो। हमारे शत्रुओं का हन्ता हो और हतावशिष्टों का जेता हो। किंच अपने घर में प्रमाद छोडि सावधान हो॥३॥

इहैवाग्नेऽअधिधारया रयिं मा त्वा निक्रन्पूर्वचितो निकारिणः। क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां तेऽअ-

\+ संवत्सरस्य पूर्णगुणैः। समाशब्दो मासवाचकः।

† अग्निश्चेतय इति।

‡ यजमानोधिष्ठाने मुपसीदति।

निष्टृतः ॥४॥

हे अग्ने इहैव- हम यजमानों में तू धन को अधिक दे। किंच पूर्वचितः (प्रथम अग्नि को चित करनेवाले) अत एव निकारिणः (निरन्तर यज्ञ करणशीलाः) तुझे नीचा न करें (मा अवजानन्त्वित्यर्थः। किं च हे अग्ने क्षत्रजाति तेरे सुख करिके वशी करने को समर्थ हो। किंच तेरा उपसदन कर्ता यष्टा अनुपहिंसितः सन् धन पुत्रादि करि बढे ॥४॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व। सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥

हे अग्ने तू क्षत्रियों को यज्ञ कराय। कैसा है तू कि स्वायुः (शोभन है आयु- जीवन जिस का वा शोभन आयु + मनुष्य-यजमान है जिसका वोह। किंच हे अग्ने मित्र (सूर्य) सहित वर्तमान होते मित्रधेये यतस्व- मित्र (यजमान) का धेय (कार्ययागलक्षण) तहां यत्न करि (यजमानकरि यज्ञ कराय। किं च समानजन्मा भी यज्ञकर्ता हों। किं च हे अग्ने इस यज्ञ गृह में दीप्त हो। कैसा है तू कि राजाओं करि यज्ञमें आह्वातव्यः ॥५॥

+ आयुः उकारान्तो मनुष्यवाची

अति निहो ऽअति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने। विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳ सहवीरार्ꣳ रयिं दाः ॥६॥

हे अग्ने हि (निश्चय) सब पापों को तू निवारि। क्या करि के कि निहः (मारनेवालों को अतिक्रमण करिके। कुत्सिताचारों को अति॰। अन्यमनस्कों को अति॰। अदातारों को अति॰। अर्थात् सब दुष्टों को अतिक्रम्य पाप का नाश करि। किंच निरन्तर हे अग्ने हमारे अर्थ

पुत्रों सहित धन दे॥६॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह। विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परिपाहि नो वृधे॥७॥

हे अग्ने इस कर्मविषें वर्तमान तू सब दिशाएँ प्रकाशि। कैसा है तू कि अनाधृष्यः(पराभवितुं अशक्यः)जातवेदाः(जातहै धन वा ज्ञान जिस से)अनिष्टृतः(नहीं है हिंसित किसी से। विविध राजमान क्षत्र को पुष्ट करता। किं च मानुषी भियः(जन्मजरामृति दैन्य शोकादिकाः) कोनिवर्तयन्सन् शान्तों से हमें रक्षा करि॥७॥

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्संतरांꣳसꣳशिशाधि। वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनुमदन्तु देवाः॥८॥

हे बृहस्पते हे सवितः इस यजमान को कर्माभिज्ञ करि किं च चित् चिदप्यर्थे संशितं चित् शिक्षित को भी संतरम्(अतितरां)शंशिशाधी शिक्षाकरि। किं च वडे ऐश्वर्य के अर्थ इसे वढा। विश्वे देवा इस यजमान को अनुमदन्तु(तृप्ता हृष्टा वा भवन्तु) हों बृहस्पति सवितृशब्दाभ्यां सामिधेन्यङ्गभूतोऽग्निरेवोच्यते वाक्यद्वयं वा एकेन बृहस्पतिरुक्तोऽन्येन सविता॥८॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पतेऽअभिशस्तेरमुञ्चः। प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः॥९॥

हे बृहस्पते तू अमुत्रभूयात् (परलोक गमन मरण से छुटा अर्थात मरण से रक्षाकरि। अथ (अथ) यम का भय (परलोकभय नरकपातादि तिस) सेभी बचा। किंच अभिशाप (लोकापवाद) से भी छुटा। देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारो इस यजमान से मृत्यु को निवर्त करो किन्हों करिके कि शचीओं कर्मों करिके अत्र बृहस्पति रग्नेरेव सामिधेनी प्रकरणस्याग्नेयत्वात् ॥९॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

व्याख्याता २०·२१· ॥१०॥

अ॰ २ ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः। द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥११॥

द्वादशर्ची देवत्या उष्णिहो विषमपादा आग्नेय्योऽग्निना दृष्टाः। अग्निः प्रजापतित्वेन स्तूयते तेन प्राजापत्या अपि। ता आग्नेय्यः प्राजापत्या यदग्निरपश्यत्तेनाग्नेय्यो यत्प्रजापतिमप्रीणात्तेन प्राजापत्या इति श्रुतेः। इस अग्नि की समिधाएं ऊर्ध्वा (देवगामिन्यः) होती हैं और तेजांसि ऊर्ध्वा होते हैं। कैसे तेज कि शुद्ध। द्युमत्तमा (विश्वप्रकाशक। कैसे अग्नि के कि सुष्ठु मुख जिसका। तथा यजमान पुत्र की + जो ऐसा तिसे स्तुति करते हैं इति शेषः ॥ ११॥

+ पवेन जनयति तेनासौ पुत्र इति श्रुतेः।

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः। पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥१२॥

देवोऽग्निर्मधुरघृत करि यज्ञ मार्गों को छिडके भावयह है कि यज्ञमेंघृ

न बहुत होकि जिसकरि मार्गघृताभ्यक्त हों। कैसा देव कि तनूनपात
जल का पौत्र। असुरः(प्राणवान्। विश्ववेदाः(सर्वधनः। देवों में भी
दीप्तिमान् श्रेष्ठ॥१२॥

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशंसो अग्ने। सुकृद्दे
वः सविता विश्ववारः॥१३॥

हे अग्ने तू मधु स्वादघृत करि यज्ञ को व्याप्त है। कैसा है तू कि देव
ताओं को तृप्त करता। नराशंस(ऋत्विजों करि आशंस-स्तुत। शोभ
नकारी। दीप्तिमान्। विश्वोत्पादक। विश्ववार(सर्वों करि सेवितवास
व को अङ्गी करता॥१३॥

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा। अग्नि
ꣳ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु॥१४॥

यह अधर्यु अध्वरों में वर्तमान अग्नि को प्राप्त करता है। कैसा कि ज्ञा
न बल करिके स्तुतः। तथा वह्निः(वहता है यज्ञभार को यज्ञनिर्वाह
कः। क्या करिके कि घृत हविर्लक्षण अन्नसे उपलक्षिताः जुह्वाद्याः ग्रहण
करि इतिशेषः॥१४॥

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च॥१५॥

वोह अधर्यु इस अग्नि के महिमान को यजे और मदजनक हवियें
देवे। कैसे अग्नि के कि सुप्रयसः(शोभन हैं अन्न जिस के। कैसे अ
ग्नि के महिमान को यजे कि जो वसुः वासयिता अतिचेतयिता धनों
का दातृतमः॥१५॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते ऽअग्नेः। उरु-
व्यचसो धाम्ना पत्यमानाः॥१६॥

द्वारो देव्यः इस अग्नि के व्रत (कर्म) धारण करती हैं। पीछे सब दे-
वता अग्नि के॰। कैसी हैं द्वार कि विशालान्तरा। तथा स्थानों से ऐश्व-
र्य कराती अर्थात् ऋत्विजों को स्थान देतीं ताः स्तुमः॥१६॥

ते ऽअस्य योषणे दिव्ये नयोना ऽउषासानक्ता। इमं य-
ज्ञमवतामध्वरंनः॥१७॥

अहोरात्रि देव्यौ हमारे इस यज्ञ को रक्षा करें। कैसी हैं ते कि अग्नि
की भार्याएँ। तथा स्वर्गस्थे। कैसे अग्नि की योनि में कि गार्हत्य स्था-
न में स्थित के इति शेषः- नकारः पादपूरणः। कैसे यज्ञ को कि
अध्वर (अकुटिल) को॥१७॥

दैव्या होतारा ऽऊर्ध्वमध्वरं नो ऽग्ने र्जिह्वामभिगृणीत-
म्। कृणुतं नः स्विष्टिम्॥१८॥

हे दैव्या होतारौ (अग्निवायू) तुम हमारा शोभन यजन करो। किंच ह-
मारे यज्ञ को ऊँचा (देवमार्गगामी) करो। अग्नि की ज्वाला को वर्णन क-
रो अर्थात् समीची वन्हिज्वाला है यह स्तुति करो॥१८॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती। म-
ही गृणाना॥१९॥

तीनों देवि इस बर्हि पर बैठें। कौन तीनों कि इडा (पृथिवीस्थाना) सर-
स्वती (मध्यस्थाना) भारती (द्युस्थाना)। मही (महती) गृणाना (स्तुवन्ति इ-
ति विशेषणद्वयं तिसृणाम्॥१९॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम्। रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे॥२०॥

त्वष्टा देव तिस (प्रसिद्ध) धन की पुष्टि को हमारी नाभि प्रति छोडे नाभि पर छोडा उत्सङ्ग में गिरता है इति भावः। कैसे धन की पुष्टि को कि हमें शीघ्र प्रापक। अद्भुत (महान्। पुरुक्षु (बहुतों में निवास करता। साधु वीर्य। अर्थात् ऐसे धन को दे॥२०॥

वनस्पतेऽवसृजा रराणस्त्मना देवेषु। अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति॥२१॥

अग्निः शमिता हव्य को संस्करता है यतः अतो हे वनस्पते तिस संस्कृत हव्य को अवसृज (स्रुङ्मुख से अर्वाचीन डालि। कैसा है तू कि आत्मा करि देवों में हवि देता॥२१॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्। विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम्॥२२॥

हे अग्ने हे जात प्रज्ञान हवि को इन्द्र के अर्थ स्वाहाकार करि के दे। किं च विश्वे देवा इस हवि को सेवन करें॥२२॥

अ० ३ पीवोऽअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः। ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः॥२३॥

अथैतं वायवे नियुत्वते शुक्लं तूपरमालभते इति हुतस्य पशोः पीवोऽअन्ना रयिवृध इत्याद्याः षट् याज्यानुवाक्याः। हे वायुर्देवताः त्रिष्टुभो वसिष्ठदृष्टे। शुक्लो हि वायुरिति श्रुतेः। श्वेतो वायुः जिन नियुत्वों (अश्वों) को

सेवन करता है ते नियुतः समानमनस्काहो वायु के अर्थ विशेषेणनि-
ष्ठ हैं। कैसे अश्वों कि पुष्ट है अन्न जिन्हों का तिन्हें। तथा धन को बढाते।
कैसा श्वेत कि शोभन बुद्धि जिस की। अश्वों का आश्रयणीय। एवं वायु
करि किये अध्वयोग में नरः (ऋत्विजः) सर्वाण्येव शोभनापत्यप्राप-
कानि करता हुआ कर्म इति शेषः॥२३॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देव-
म्। अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं
निरेके॥२४॥

ये रोदसी द्यावापृथिव्यौ जिस वायु को उत्पादन करती हुई नु (क्षिप्र)
किमर्थम् कि धन (उदकरूप) के अर्थ। बुद्धि को देती वाणी देवी देव
(वायु) को धारण करती है धन के अर्थ रोदसी के सद्भाव में भी वा-
यु विना जगद्धारणाशक्त से वायु उत्पादितः। अध उत्पत्त्यनन्तरमेव
उत (निश्चय) निजाश्वा वायु को सेवन करते हैं। कहां कि निरेके (बहु-
जनाकीर्ण स्थान में। कैसे वायु कि श्वेत वर्ण को। तथा धन के धार-
यितार को॥२४॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्ती-
रग्निम्। ततो देवानाᳬ समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय
हविषा विधेम॥२५॥

द्वे प्रजापतिदेवत्ये त्रिष्टुभौ हिरण्यगर्भप्राजापत्यदृष्टे प्रथमा द्यौभिका। आ-
पो हवाऽइदमग्रेसलिलमेवासेति ११।१।६।१ ब्राह्मणमेतयोः कश्चित्कथानि-
दानभूतं बोध्यम्। ह (प्रसिद्धौ) जब कि जल विश्व को प्राप्त हुए। कैसे

जल कि वकुला:। तथा गर्भ (हिरण्यगर्भलक्षण) को धारण करते अतएव अग्नि (अग्नि रूप हिरण्यगर्भ) उत्पादन करते ततः संवत्सरोषित गर्भ से देवताओं का प्राणरूप आत्मा लिङ्ग शरीर रूप हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। प्रजापतिरूप हिरण्यगर्भ के अर्थ हवि देते हैं ॥२५॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥

चिद्प्यर्थे:- और जो अन्तर्यामी देव महिमा करि पूर्वोक्त जलों को देखता हुआ। कैसी जल कि दक्ष (कुशल) प्रजापति को स्थापन करती। यज्ञ को उत्पन्न करती। अर्थात् सृष्टिकर्त्री। और जो देवताओं के ऊपर एक देव रहा तिस देवता के अर्थ हवि देते हैं ॥२६॥

प्र याभिर्यासि दाश्वाꣳसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे। नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

हे वायुदेवत्ये त्रिष्टुभो वसिष्ठदृष्टे। हे वायो तू जिन नियुतों (अश्वाओं) करि के याग के अर्थ यज्ञगृह में वर्तमान हविर्दत्त यजमान को अभिमुख जाता है तिन नियुतों करि आके हमारे अर्थ धन को दे। कैसे धन कि सुष्ठु भोगिये है। किं च पुत्र और गौ अश्व रूप धन को दे ॥२७॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्। वायोऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥

हे वायो अश्वाओं करि हमारे यज्ञ को प्राप्त हो। कैसी अश्वाओं करिकि
शतिनी सहस्रिनी(शत सहस्र संख्या हैं जिन्हों की॰ भाव यह है कि बा-
हु वाहन तर्पण में समर्थी हैं। और आकर इस तीसरे सवन में तृप्त
हो। अथ पादेन ऋत्विज आह॰ हे ऋत्विजः कल्याणें करिके तुम
हमें रक्षा करो॥२८॥

नियुत्वान्वायवागह्ययꣳ शुक्रोऽअयामि ते। गन्तासि सु-
न्वतो गृहम्॥२९॥

षड्चो वायुदेवत्याः वायव्येष्टकापशुपक्षे वपादीनां याज्यानुवाक्या-
त्वेन नियुक्ताः आद्या गायत्री गृत्समददृष्टा। हे वायो यतः सुन्वतः(य-
जमान के)गृह प्रति तू गमन शील है। अतः अश्वावान् हो आ। यह
शुक्रो ग्रहः तुरु प्रति प्राप्त हो। शुक्रादि ग्रहाणां पात्रं त्वमेवेति भावः॥२९॥

वायो शुक्रोऽअयामि ते मध्वोऽअग्रं दिविष्टिषु। आयाहि
सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता॥३०॥

अनुष्टुप्पुरुमीढाजमीढदृष्टा। हे वायो शुक्र ग्रह तुझे प्राप्त हो। कैसा शु-
क्र कि दिविष्टिषु(द्यौः प्रार्थना करियें हैं जिन्हों करि॰ यज्ञाः+) मधु(रस)
का अग्र(सारभूत) अर्थात् यज्ञरस में शुक्रग्रह सारभूत है। किंच हे
देववायो अश्वावता रथ करि सोमपान के अर्थ आ कैसा है तू कि य-
जमानादिकों करि स्पृहणीय॥३०॥

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम्। शिवो नि-
युद्भिः शिवाभिः॥३१॥

हे गायत्र्यो। वायु कल्याणरूपा अश्वाओं करि चित्त सहित सादर

+ ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्युक्तेः

यज्ञ को चलें कैसा कि आगे चलने वाला। यज्ञश्रीःयज्ञकरि तूं प्रज्ञोता कल्याण कर॥३१॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि। नियुत्वान्त्सोमपीतये॥३२॥

हे वायो जे तेरे सहस्र संख्याकाः रथाः हैं तिन रथोंकरि सोमपान के अर्थ आगमन करि। कैसा है तू कि अश्वायुक्तः† ॥३२॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशती च। तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च नियुद्भिर्वायविह ता विमुञ्च॥३३॥

त्रिष्टुप् अनयर्चा पात्राणि मुच्यन्ते। हे स्वभूते निजासमृद्धिर्जगद्रूपा जिस की सो हे वायो एक दश दो वीस तीनि और तीस अश्वाओं करिके जे पात्र वहे हैं ते पात्र इस यज्ञ में विशेषेण छोडि। पञ्च चकाराः समुच्चयार्थाः॥३३॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत। अवांस्या वृणीमहे॥३४॥

गायत्री आङ्गिरस्योव्यश्वदृष्टा। हे वायो हे ऋतस्पते (सत्यके पालक) हे त्वष्टुर्जामातः (आदित्य से जल लेकर वायु गर्भता है फिरि वृष्टि होती है इस कारण वायु आदित्य का जामाता। हे अद्भुत (आश्चर्यरूप) तेरे अन्नों की प्रार्थना करते हैं॥३४॥

अ॰ ४॰ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥३५॥

† नियुतो वाय्वोनियुतः। निघं॰ १।१५

बृहतीसतोबृहतीद्वयं प्रगाथं वसिष्ठदृष्टमिन्द्रदेवत्यम्। रथन्तरं द-
क्षिणे पक्षे इति श्रुतेः। नान्योऽध्वर्योर्गायेदित्यध्वर्यो गानं विहितम्।
अतः साम्नां योनय ऋचः पठ्यन्ते तत्रैन्द्रः प्रगाथो रथन्तरस्य यो-
निः। हे शूर हे इन्द्र हम तुझे आभिमुख्यकरि अत्यन्त स्तुति करते
हैं। तत्र दृष्टान्तः जैसे अदुग्धा गोएँ वत्साओं को स्तुति करती हैं।
कैसे तुझे कि जङ्गम के ईशान स्वदृश (आप देखता है वा आदित्य)
को स्थावर के प्रभु अर्थात् नियन्तार को॥३५॥

न त्वावाँ२॥ऽअन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनि-
ष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा
हवामहे॥३६॥

हे मघवन् (धनवन्) हे इन्द्र दिवि में हुए ओंविषें तेरे सदृश नहीं है
इति शेषः और न हुआ और न होगा। इस हेतु हम तुझे बुलाते हैं
कैसे हैं हम कि अश्वों को कामयमानाः। हविर्युताः। गोकामाः। अ-
र्थात् गोघोडे वे॥३६॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्वि-
न्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥३७॥

ऋग्द्वयमैन्द्रः प्रगाथः शम्युदृष्टः बृहत्साम्नो योनिः अध्वर्योर्गा-
नस्योक्तेः आद्या बृहती द्वितीया सतोबृहती बृहदुत्तरे पक्षे इति
श्रुतेः। हे इन्द्र कारवः (यज्ञों के करनेवाले) नरः (ऋत्विज) हम तुझे
बुलाते हैं। इत् एवार्थे हि निश्चये। किस निमित्त कि अन्न के लाभ
निमित्त शत्रुघातनिमित्त दिग्विजयनिमित्त। कैसे तुझे कि सज्जनों

(श्रुतिस्मृत्युक्त आश्रमों निषिद्धत्यागियों) के पालक को। तथा अश्वप्राप्ति निमित्त। त्वां शुद्धा वृत्तिरदरायी॥३७॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥३८॥

हे चित्र (आश्चर्यकारिन्) हे वज्रहस्त हे अद्रिवान् हे इन्द्र सो तू हमारें गो और अश्व दे। कैसे अश्व कि रथवहन समर्थ। कैसा है तू कि सामर्थ्य और तेज करि स्तूयमानः। कैसे कि जैसे जिग्युषे (जीतने अश्व वा हस्ती के अर्थ) अन्न देते हें तैसे हमारे अर्थ दे॥३८॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥३९॥

तिस्रो गायत्र्य इन्द्रदेवत्या वामदेवदृष्टाः वामदेव्यसाम्नो योनिः वामदेव्य मात्मन्निति श्रुतेः अन्त्या पादनिचृत् सप्ताक्षरत्रिपदा। पूर्वर्चः इन्द्रपदमनुषञ्जनीयम्। इन्द्रः किस ऊती (अवन तर्पण वा प्रीणन) करिके हमारा सहाय आभिमुख्येन होताहै। तथा तिस अतिशयवती यागक्रिया करि हमारा सखा होताहै। कैसा इन्द्र कि चित्रः विचित्र वा पूज्य। सदा वर्धमानः॥३९॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु॥४०॥

हे इन्द्र अन्ध (सोमरूप अन्न) का कः (अंश) मत्त करताहे। कैसा कि मदजनक हवियों के मध्य मंहिष्ठ श्रेष्ठ (अत्यन्त मदजनक वा अत्यन्त प्रकाशता वा बढाना। जिस अंश करि मत्त हो दृढों कनकादि धनोंको

तू चूर्ण करता अर्थात् देने को तोडि-तोडिकर देता है ॥४०॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥४१॥

हे इन्द्र तू पालन के अर्थ भले प्रकार शत(बहुत रूप रखता) है। कैसा है तू कि मित्रों स्तुति करने वालों हम ऋत्विजों का पालयिता ॥४१॥

यज्ञा-यज्ञा वोऽअग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे । प्र-प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥४२॥

तृचः प्रगाथः आग्नेय्यः प्रथमा शम्युदृष्टा यज्ञायज्ञियस्य साम्नो योनिः । यज्ञायज्ञियं पुच्छमिति श्रुतेः । द्वे बृहत्यौ तृतीया सतोबृहती । अनेक यज्ञों में अन्या-अन्या स्तुति करि के तुम्हें वा तुम्हारे अर्थ अग्नि को स्तुति करता हूं। कैसे अग्नि कि उत्साहिन वा बलवन्त को। अमरणधर्मे को। जात है ज्ञान वा धन जिस से तिसे प्रीतिजनक को। जैसे कोई मित्र को स्तुति करता है तद्वत् अग्नि को स्तुति करता हूं । अत्र विकरणव्यत्यः ॥४२॥

पाहि नोऽअग्नऽएकया पाह्युत द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥४३॥

भर्गदृष्टा। हे अग्ने हे अन्नों के पालक हे वसो(वासयित वा वसुमन्) एक गिरा ऋग्लक्षणा करिके स्तुतः सन् हमें रक्षा करि। और दूसरी यजुर्लक्षणा से स्तुतः सन् हमें रक्षा करि । तीनों ऋग्यजुःसामल-

क्षणओं) सेस्तु० चारों (ऋग्यजुः सामनि गद्लक्षणओं) सेस्तुगद्य पद्य काव्यादि रूपा चतुर्थी गीः॥४३॥

ऊर्जो नपात॑ᳪं स हि॒नायम॑स्म॒युर्दाशे॑म ह॒व्यदा॑तये।
भुव॒द्वाजे॑ष्ववि॒ता भुव॑द्वृ॒ध उ॒त त्रा॒ता त॒नूना॑म्॥४४॥

अग्न्युद्दष्टा यजमानोंऽर्युं प्रार्थयते। हे अध्वर्यो जल के पौत्र अग्नि को से तू तर्पण करि। क्यों कि यह अग्नि हमें इच्छा करता है अतः हवियों के दानार्थ संकल्प करते हैं। यतः यह अन्नों में रक्षिता होताहै और शरीरों (भार्या पुत्रादिकों के शरीरों) का रक्षिता होता है। अग्नि अन्न शरीर रक्षितावर्धयिता हमें चाहता है अतः हविर्दान के अर्थ तिसे संकल्प करते हैं॥४४॥

सं॒व॒त्स॒रो॑ऽसि परिवत्स॒रो॑ऽसीदावत्स॒रो॑ऽसीद्वत्स॒रो॑ऽसि व॒त्स॒रो॑ऽसि। उ॒षस॑स्ते कल्पन्तामहोरा॒त्रास्ते॑ कल्पन्तामर्धमा॒सास्ते॑ कल्पन्तां मा॒सास्ते॑ कल्पन्तामृ॒तव॑स्ते कल्पन्ता॒ᳪं सं॒व॒त्स॒रस्ते॑ कल्पताम्। प्रेत्या॒ऽएत्यै॒ सं चाञ्च॒ प्र च॑ सारय। सु॒प॒र्ण॒चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वः सी॑द॥४५॥

इति सᳪंहितायां चतुर्थोऽनुवाकः ४

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायांवाजसनेयसᳪंहितायां दीर्घपाठे सप्तविᳪंशोऽध्यायः॥२७॥

अग्नि देवत्यं यजुः चित्याग्निमर्शने विनियोगः। पञ्च संवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्राजापतिमिति ज्यो० १। १ ज्योतिः शास्त्रोक्तमिहोच्यते। हे अग्नि तू संवत्सर है परिवत्सर है इदावत्सर है इद्वत्सर है वत्सर है

अर्थात् निर्विशेषेण पांच संवत्सरात्मक युग रूपहै +। तिस तेरे उषसः (प्रातः कालादयः कालविशेषाःसंगवमध्यान्हादयः) अहोरात्राः (दिवस निशाः) अर्धमासाः (पक्षाः) मासाः (चैत्रादयः) ऋतवः (वसन्तादयः) कल्पन्ताम्, अवयवत्व करि क्लृप्ताहोंवें। संवत्सरश्च उपलक्षणमेतत् और पांचो संवत्सरादिक भी कल्पन्ताम्। किं च प्रममन के अर्थ समञ्च और प्रसारय, भाव यह है कि संकोच विकास करि। किं च सुपर्णाकारकरि चितत्व से सुपर्णचित् है। तिस देवतया वाचा सहितः सन् अङ्गिरस इव (प्राण इव) ध्रुवः (स्थिर) सीद (तिष्ठ ॥४५॥

+युग संवत्सरपंचकैर्ज्योतिःशास्त्रोक्तैः॥

इति भाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः४

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्गिरिदेवः सनातनः२७

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देववर्म्मात्मज रौक्मिणेयनुगतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये खिलप्रकरणेऽग्निवर्णनोनाम सप्तविंशोध्यायः॥२७॥

हरिः ओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपंच साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः२८

इन्द्रमिडःसौत्रामणिकोऽध्यायः(प्रजापत्यश्विसरस्वत्यदृष्टः)

अ·१· होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि। दि-
वो वर्ष्मन्त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य
होतर्यज ॥१॥

ॐनमोयाज्ञवल्काय
गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
वसुनेत्र मितेऽध्याये सौ. त्रशिष्ठः समीर्यते ॥

अथमध्यायः सौत्रामणीसम्बन्धी सौत्रामण्यङ्गभूतयोरैन्द्रवाय्योधस्योः
एधन्तपश्वोः प्रयाजानुयाजप्रैषरूपः ततश्च प्रजापत्यश्विसरस्वत्योःऽध्या-
यस्य ऋषयः। आद्येऽनुवाके एकादशेन्द्रपशोः सम्बन्धिन आप्रीदेवताः
समित्तनूनपादित्यादिदेवताकाः प्रयाजानां प्रैषाः होता यक्षत्समिधेन्द्र
मित्यादयो होता यक्षदिन्द्रमित्यन्ताः क०११। हलायुधमते सर्वाणि यजू
ंषि १–४६· महीधरमते आर्षीत्रि०१·४·६·२१·२२·३५·३६· अतिजगती अ
५·७·९·१२·१५·१७·१८·२४·४०·४२·४३· ब्रा–अ०८·४१·४६· उ० शाक्करी २०·
११·१३·२६·२७·३०–३२·३९·विकृति १६·२३·ज·४६·उ० कृति १९· अतिशा
करी २०·२८·२९·३४·प्रा– ज०२३·अ०·जगती २५·अत्यष्टि ३३·ब्रा–बृ०
३७·३८·४४·४५·ब्रा–गा०४६·अ०+ ॥ अथ मन्त्रार्थः। दैव्यो होता-
समिधा (हविर्भूत समित्काष्ठ करि वा समिधा प्रीदेवता) सहित इन्द्र को
यजे। जो इन्द्र तीनों स्थानों में दीपे है पहिले इडा (पृथिवी) के पद य-
जनीयप्रदेशमें अग्न्यात्मा करि दीपै है। दूसरे पृथिवी (अन्तरिक्ष+) के
नाभि (मध्य) विद्युदात्मा करि अधि (ऊपर में। तीसरे दिव (स्वर्ग) के वर्षि
ष्ठ प्रदेश में आदित्यात्मा करि दीपै है। कैसा कि चर्षणिसहामोजि

+ आर्षीत्रि०७ आर्षीजग०१२ ब्रा–उ०२ ब्रा–अ०४ शाक्करी ५ विकृति १ कृति अतिशाक्क०४
प्रा–ज०१ जगती १ अत्यष्टि १ ब्रा–बृ०४ ब्रा–गा०१ ॥ ४६

+ पृथिवीशब्देनान्तरिक्षम्।

ष्ठ मनुष्यों के अभिभावुकों में अत्यन्त ओजस्वि एवंविधि इन्द्र आज्य को पिये। हे मनुष्य होतः तूभीयजि॥१॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्। इन्द्रं देवᳬस्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशᳬसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥२॥

नराशंस देवता सहित तनूनपात और इन्द्र देवता को होता यजे। किन्हों से कि पथियों (जाते हैं स्वर्ग को यजमान जिन्हों से तिन हवियों) करि। कैसीओं कि ऊतियों (तृप्ति करती हैं तिन्हों) तथा मधुमत्तमाओंसे। कैसे इन्द्र कि शत्रुओं के जीतनेवाले किसी से भी न पराभूत स्वर्विद (स्वर्ग को जानते वा अपनों को जानते वा स्वर्ग में विद्यमान को। कैसे नराशंस कि तेजस्वि करि युक्त। एवं दो देवताओं युक्त इन्द्र आज्य पिऐ। शेषं पूर्ववत्। अत्र तनूनपान्नराशंसावेकत्र प्रयाजे पठितावित्युभयवानयं प्रयाजः॥२॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्। देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरंदरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥३॥

होता इडाओं (प्रयाज देवताओं) सहित इन्द्रको यजे। कैसे इन्द्र कि ईडित (ऋत्विजों करि स्तुत) आजुह्वान (यजमानों करि आहूयमान वा देवताओं को आह्वयन्त) अमरण धर्म को। ऐसा इन्द्र देव आज्य पिये कैसा देव कि सवीर्य (समान वीर्य जिस का वोह अर्थात् सब देवताओं में जितना वीर्य वोह अकेले इन्द्र में। वज्रहस्त। पुरंदर (शत्रुओं के नगरों

दाता। उक्तमन्यत्॥३॥

होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम्। वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥४॥

बर्हि प्रयाज देवतापर स्थित इन्द्र को होता यजे कैसे इन्द्र कि उप वेष्टाओं में श्रेष्ठ वर्षितार नरों (यजमानों) के अर्थ हितकारि। सो इन्द्र वसुओं रुद्रों आदित्यों तीनों सवन देवों सहित बर्हि पर भले प्रकार बैठे और आज्य पिये। कैसे वसु आदिकों कि सयुक् (समान योगों) सहित॥४॥

होता यक्षदोजो न वीर्यं सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन्। सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥५॥

जे द्वारः प्रयाज देवाः इन्द्र में ओज (इन्द्रियबल) वीर्य (शारीरबल) और सह (मनोबल) बढाते हुए तिन द्वारों को होता यजे। और ते द्वार इन्द्र के अर्थ विवृता हों और इस यज्ञ में आज्य पियें। कैसी द्वारः कि सुखेन प्रकृष्ट गमन जिन्हों में। ऋत (यज्ञ) को बढाते। कैसे इन्द्र कि सींचने वाले के अर्थ॥५॥

होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही। सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज॥६॥

होता नक्तोषे + यजे और ते तेजकरि इन्द्र को बढावें और आज्य पियें। तत्र दृष्टान्तः सवातरौ न (समान हैं वाता- बछडे जिन्हों के ते एक शिशु के गौएं वत्स को जैसे बढाती हैं तैसे इन्द्र को बढावें कैसीं

+ उषासानक्ता ।

नक्तोषे कि धेनू (प्रीणयित्र्यौ। दुग्ध को पूरयन्त्यौ। मातृवत्पालिके। महत्यौ॥६॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः। कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज॥७॥

दैव्यौ होतारौ (अयंचाग्नि रसौ च मध्यमः) तिन्हे होता यजे और जे हवि करि इन्द्र को चिकित्सतः। इन्द्र के अर्थ वीर्य को धारण करते हें। कैसे कि चिकित्सा कुशलौ अन्योन्यं स्नेहवन्तौ। क्रान्तदर्शनौ। दीप्यमानौ। प्रकृष्ट ज्ञान जिन्होंका तौ॥७॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः। इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥८॥

भेषजरूपा जे तीनों लोक तिन्हें और इडा सरस्वती भारती तीनों देवीओं को होता यजे और ते आज्य को पियें। कैसे हें तीनों कि अग्नि वायु सूर्य तीनों धर्त्तार हें जिन्हों के। अपस्विनः (कर्मवन्तः) शीतोष्ण वातवर्षादि जिन्हों के कर्म हें। कैसी हें तीनों कि महत्वः इन्द्र की पत्नीएँ (पालयित्र्यः। हविष्मतीएँ॥८॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम्। पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥९॥

होता त्वष्टा प्रयाज देवता को यजै। कैसे त्वष्टा कि इन्द्र (प्रभु) देव (दाता

भिषज (रोगनिवर्तक) माधु यष्टव्य को घृत करि के शोभा है जिसकी तिसे पुरुरूप (बहुत हैं रूप जिस के तिसे। शोभन हैं रेत (वीर्य) जिस का तिसे। मघवन्त धनवन्त) को और सो त्वष्टा इन्द्र के अर्थ वीर्यों को धारण करते सन् आज्य पिये॥९॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम्। मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥१०॥

होता वनस्पति प्रयाज देवता को यजे। कैसे वनस्पति कि उलूखलादिरूप करि हवियों के संस्कर्ता। शतक्रतु (बहुकर्मा) बुद्धि के सेवितार इन्द्रिय (आत्मा के हित वा वीर्यरूप) को। वोह वनस्पति मधु स्वादु घृत करि यज्ञ को संमृक्षयन्सन् सुगमन मार्गों से मधु (स्वादु) घृत करि यज्ञ को देवताओं प्रति प्राप्त करै आज्य को पिये॥१०॥

होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज॥११॥

होता इन्द्र को यजे। स्वाहाकार करि आज्य के देवताओं को यजे। स्वाहाका० मेद के देव०। स्वाहाका० स्तोकों (सोमबिन्दुओं) के देव०। स्वाहा० स्वाहाकृतीः प्रयाजदेव०। स्वाहा० हव्यसूक्तीओं (हव्य सम्बन्धि सुवचनों) के देव०। स्वाहाकार करि आज्यपा देवाः प्रीयमाण होते और इन्द्र आज्य को पियें॥११॥

अ० २ देवं बर्हिरिन्द्रं सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत् । वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतं राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१२॥

एकादश ऐन्द्रपशोः सम्बन्धिन एवानुयाजप्रैषाः । देवता बर्हिरादयः ॥ मैत्रावरुण कहिता है । बर्हिः संज्ञानुयाज देवता इन्द्र को बढाता है कैसा बर्हिः कि शोभना देवा मरुदादयः जहां वोह । तथा देवों (शास्त्री ऋत्विजों) करि वीरयुत । वेदी में आच्छादित । वस्त (दिन) में वृत (लून) अक्त (रात्रि) में प्रभृत (प्रकर्षेण धृत) जो बर्हिः हविर्लक्षण धन करि बर्हिष्मत (बर्हिकरियुक्तों) अन्य यागों को अति क्रमण करि गया । सत्त्वोत्कर्ष से वोह बर्हि वसुवनन (धनदान) के अर्थ वसुधान (धननिधान यजमान के घर में निखनन) के अर्थ वेतु (आज्य को पिये । और हे मनुष्य होतः तू यजि । एव मग्रेपि कण्डिका शेषो व्याख्येयः ॥१२॥

देवीर्द्वार इन्द्रं संघाते वीड्वीर्यामन्नवर्धयन् । आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणं रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

यज्ञ गृह द्वारें देवताः । याम (नियत होते हैं ऋत्विज जहां कर्म) में जे द्वारे देविएँ इन्द्र को बढाती हुई । कैसी द्वारः कि संघात (देहली कपाट द्वारशाखा गेला समूह) हे सति दृढा हैं (संघात विना द्वार दृढ नहीं होता ॥ ते द्वार रेणुककाट (रेणुओं करि ककाट कुत्सित कूप) को निवर्त करें । किमित्यतो विशेषणे । कैसे कूप कि वत्स (गोपुत्र) तरुण और कुमार करि आभिमुख्येन अर्वाण (जाते हैं जहां तिस) को कैसे मीवता

कि मीवता (हिंसाशील करि। हिंसाशील (चञ्चल) उच्चलन्त वत्स और कुमार जहां गिरते हैं तिस कूप को रोकें- उपलक्षण मेतत् आशय यह है कि यज्ञ प्रजा के विघ्नकारी कूपादिकों को मार्ग से निवर्तक हैं। और ते आज्य पियें ॥१३॥

देवी॑ उ॒षासा॒नक्तेन्द्रं॑ य॒ज्ञे प्र॑य॒त्य॒ह्वेताम्। दे॒वीर्वि॒शः प्रा॒यासि॒ष्टाथं॑ सुप्री॒ते सुधि॑ते वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वी॒तां य॒जे ॥१४॥

अहो रात्राधिष्ठात्र्यौ देवी (देव्यौ) यज्ञ में प्रवर्तमाने सति इन्द्र को बुलाती हुई। और जे देव सम्बन्धिनी प्रजा (वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इत्यादिकों) को चलाती हुई। और ते पियें कैसी हैं कि सुप्रीते (अतितुष्टे) सुधिते (सुतरां हिते ॥१४॥

दे॒वी जोष्ट्री॑ वसु॒धिती॑ दे॒वमिन्द्र॑मवर्धताम्। अ॒याव्य॒न्याघा द्वेषा॑थंस्या॒न्या॒ वक्ष॒द्वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शि॒क्षि॒ते वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वी॒तां य॒जे ॥१५॥

प्रीति युक्ते देव्यौ वसुधिती (धनका धारण जिन्हों से ते द्यावा पृथिव्यौ अहोरात्रे वा- सत्यं च समा चेति कात्थक्यः निरु॰८॰४१॰) ते इन्द्र देवता को बढाती हुई। तिन्हों के मध्य अन्या (एका) अघौं (पापों) और द्वेषों (दौर्भाग्यों) को दूरि करती। दूसरी वार्यो (वरणीय भोगयोग्यों) धनों को प्राप्त कराती। कैसी हैं ते कि शिक्षिते (विदितवेद्ये- तत्वज्ञे। ते पीयें ॥१५॥

दे॒वी ऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दुघे॒ पय॒सेन्द्र॑मवर्धताम्। इष॒मूर्ज॑म॒न्या व॑क्ष॒त्सग्धि॒ठं सपी॑तिम॒न्या नवे॑न॒ पूर्वं॒ दय॑माने

पुराणेन नवमधातामूर्ज मूर्जाहुती ऽऊर्जयमाने वसु वार्याणि
यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥

अथस्तन मन्त्रोक्तो देवता विकल्पः। देव्यौ पूर्व प्रैषोक्ते दुग्ध करि इन्द्रको बढाती हुई। कैसी हैं कि ऊर्जाहुती बलयुक्त आह्वान जिन्हों का ते। दुग्धे (दोग्ध्यौ +) सुदुघे (साधुदोहने। तिन्हों के मध्य एका अन्न और दध्यादि यजमान के अर्थ प्राप्त करती है। दूसरी सग्धि (समान भोजन) और सपीति (पुत्रादि सहित पान भोजन) को वहती है। जे देवियें नये अन्न करि पुराने अन्नको पुराने अन्न करि नये अन्न को यजमान के धारण कराती और वार्यो वसुओं को रखाती अर्थात् अन्न धन को अक्षय करती हुई। कैसी हैं कि ऊर्जयमाने (उक्षन्त्यौ वा कृपयन्त्यौ। शिक्षिते। ते पियें ॥१६॥

+ अन्नयोरेतु सर्वौ गाविमाः सर्वाः प्रजा अन्नसम्पुजन ऽइतिश्रुतेः।

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं मवर्धताम्। हताघशꣳसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१७॥

एकः पार्थिवोऽग्निः अन्यो मध्यमः। देवौ दैव्यौ होतारौ इन्द्रदेव को बढाते हुए और यजमान के अर्थ वीर्यो वसुओं को आहरण करते हुए। कैसे कि हताघशंसौ (पापनिवर्त्तकौ। तौ पियें ॥१७॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन्। अस्पृक्षद्भारतीदिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१८

तीनों देवीयें पालक इन्द्र को बढाती हुई। ताएवाह-भारती (भरत-रविति

सकी कान्ति) स्वर्ग को स्पर्श करती है। सरस्वती रुद्रों युता यज्ञ को स्पर्श करती। वसुयुता इडा गृहों (भूलोक) को स्पर्श करती है। ते पिये॥१८॥

देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिꣳ स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥१९॥

नराशंस (यज्ञदेव) इन्द्रदेव को बढाता हुआ। कैसा नराशंस कि ऐश्वर्यवान्। त्रिवरूथ (तीनों घर, सद हविर्धान आग्नीध्र जिसके वोह। त्रिबन्धुर (ऋग्यजुः सामलक्षण तीनों बन्धन जिसके। वोह नराशंस शिति (श्याम) पृष्ठों गौओं के शत करि आहितः सन् गोसहस्र करि प्रवर्ते है। मित्रावरुण इस नराशंस के होतृकर्म में योग्य होते हैं बृहस्पति औद्गात्र को अश्विनौ इस के आध्वर्यव को योग्य होते हैं। वोह पिये॥१९॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२०॥

यूप उच्यते वनस्पतिर्देवः देवों सहित इन्द्र को बढाता हुआ। कैसा कि हिरण्यमय हैं पत्ते जिस के। रसवती शाखा जिसकी। शोभन फल जिसके। जो वनस्पति अग्र (टुकसी) करि स्वर्ग को स्पर्श करता है अन्तरिक्ष को मध्य करि इति शेषः सर्वतः स्पर्श करता पृथिवी को जर करि इति शेषः दृढ करता। सो पिये॥२०॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्वासस्थमिन्द्रे-

एासन्नमन्या बर्हीॐष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२१॥

बर्हि (अनुयाज देव) इन्द्रदेवको बढाता हुआ अन्यबर्हिओंको अभिहोताहैवोह पिये। कैसा बर्हि कि वारितीयों (ओषधीओं) के मध्य में देव (दीप्यमान श्रेष्ठ) स्वासस्थ (सुख आसन करि जहां स्थित होते हैं वोह। इन्द्र करि आश्रित ॥२१॥

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२२॥

स्विष्टकृद्देवः अग्निः इन्द्र देवको बढाता हुआ वोह हमारा स्विष्ट (साधुइष्ट) करे और पिये। कैसा कि स्विष्ट करते सन्तु स्विष्टकृत्नामजो भन इष्ट को करूंगा यह तिस का अधिकारहै॥२२॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन। त्वामद्यऽऋषे ॥२३॥+

त्वामद्य अयं प्रतीकः उभयत्रापि। ऐन्द्रपशुसम्बन्धी सूक्तवाकप्रैषः त्वामद्यऽऋषे इत्ययं मन्त्र उभयत्रापि ऐन्द्रानुवाके वायोधसानुवाके च प्रतीकोक्तेः आदिमात्रेणोक्तः सकलो ज्ञेयः। व्याख्यातः प्रैषः २१॰ ५७–६१॰॥२३॥

अ॰ ३॰ होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमि-

+ अ॰-म॰।अ॰।सू॰-न॰। इ॰।त्वा-पे॰।उ॰॥२३॥

न्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२४॥

एकादश वायोधसे पशौ प्रयाज प्रैषाः समित्तनूनपादाद्याप्रीदेवताः। दैव्यो होता अग्नि को और वयोधा इन्द्र (आयु के दातार वा धारयितार) को यजे। कैसे अग्नि कि दीप्यमान। वडे यशकरि दीप्त। वरणीय को। क्या करता यजे कि गायत्री छन्द वीर्य एकवर्ष छै महीने की गो और आयुस्थापन करता इन्द्र में इति शेषः। प्रयाज देवता इन्द्र युता आज्य को पियें। हे मनुष्य होतः तू भी यजि। एव मग्रे ऽपि॥२४॥

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम्। उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२५॥

होता तनूनपात प्रयाज देवता को और वयोधा इन्द्र को यजे अदिति ने जिसे गर्भ में धारण किया अर्थात् तिस इन्द्र को। कैसे तनूनपात को कि उद्भिद (यज्ञफलों के उद्भेत्तार। पवित्र को। क्या करता कि उष्णिक् छन्द वीर्य दो वर्ष की गो और आयु इन्द्र में स्थापन करता॥२५॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यं सहः सोममिन्द्रं वयोधसम्। अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२६॥

होता इडाओं प्रयाज देवताओं सहित वयो०। कैसे इन्द्र कि ईडेन्य (स्तुतियोग्य) को। ईडित (ऋषियोंकरि स्तुत। अत्यन्त वृत्रहा। ईडा (सर्वोंकरि स्तुत्यः। सहः सोमं (वलकरि सोमवदाल्हादक) को। क्या करता कि अ-

नुष्टुप् छन्द इन्द्रिय दोवर्ष छे महीने की गो और वय इन्द्र में स्थापन करता ॥२६॥

होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्। बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥२७॥

होता वयो०। कैसे को कि शोभन बर्हिः अयाज देवता जिस के तिसे पू षणयुक्त। अमरण धर्मा। प्रिय अनश्वर बर्हि पर बैठे को। क्या० कि बृहती छन्द इन्द्रिय तीनि वर्ष की गो (का वृषभ) और आयु इन्द्र में स्थापन करता॥२७॥

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्। पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥२८॥

होता द्वारो देवीः और ब्रह्मा (परिवृढ) वयो०। कैसी द्वारः कि गमनावकाश विद्यमान हैं जिन्हों में। अत एव शोभन प्रकर्ष करि गमन है जिन्हो में। सत्य की वढाने वाली। हिरण्मयी दृढाः। क्या० कि पङ्क्ति छन्द इन्द्रिय तीनि वर्ष छे महीने की गो और वय इस इन्द्र में स्थापन करता॥२८॥

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहतीऽउभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्। त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज॥२९॥

होता दोनों नक्तोषा (रात्रि और रात्रि के अपरभाग) और सर्वात्मक बयो॰। कैसीओं को नक्तोषसौ कि शोभन हैं रूपा जिन्हों के। सुशिल्पे (यद्वै प्रतिरूपं तच्छिल्पमिति श्रुतेः) शोभन शिल्प जिन्हों के ते अन्योन्य प्रतिरूपे। बृहत्यो। दर्शनीये। क्या॰ कि त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रिय चारि वर्ष की गौ और वय इन्द्र में स्था॰। ते पियें॥२९॥

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्। जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्धोतामाज्यस्य होतर्यज॥३०॥

होता दैव्यौ होतारौ + और बयो॰। कैसे होतारो कि प्रचेतसौ (प्रकृष्ट ज्ञान जिन्हों का तिन्हें। देवानामुत्तमं यशः (युंजी क्रतदेव यशोरूपौ। कवी (क्रान्तदर्शिनौ। समानयोगौ। क्या॰ जगती छन्द इन्द्रिय शाकटस्समो वृषः और वय इन्द्र में स्था॰। तौ पियें॥३०॥

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहती र्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम्। विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३१॥

होता तीनों देवियों और पालक वयो॰। कैसी तीनों कि रूप समृद्धा। हिरण्यालङ्कृत देहाः। बृहतीः (प्रभाव करि। महतीः (तेज करि आदित्येन्द्राग्नि सम्बन्धात्। किन तीनों कि इडा सरस्वती भारती। क्या॰ विराज छन्द इन्द्रिय धेनु (दोग्ध्री गौ) और वय इन्द्र में स्था॰। इन्द्रसहिता ता पियें॥३१॥

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक्पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं

आयत्वाणि रसी न म श्रम इति होता मे

भारतीं बृहद्वनामिडा सरस्वतीमुपलक्षणम्

गां न वयो दधदेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

होता त्वष्टा और वयो॰। कैसे त्वष्टा कि शोभन रेत जिस का । जगदुत्पादकत्वात्। पुत्रादि पुष्टि के वर्धयितार । पृथक् (नानाजातियों में) रूपों और पुष्टि को धारण कराते को। क्या॰ द्विपद छन्द इन्द्रिय रेतः से कक्षम ऋषभ और वसद् ॰। इन्द्र सहित त्वष्टा पिये ॥ ३२ ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

होता वनस्पति और वयो॰। कैसे वनस्पति कि हवियों के संस्कर्ता। बहुकर्मा। हिरण्मय पत्रोंवाले। उक्थिन (शास्त्रवाले वा यज्ञवन्त)। रज्जु को धारण करते+। कान्त। भजनीय। क्या॰ कि ककुप् छन्द इन्द्रिय वन्ध्या और गर्भोपघातिनी गौ और वय इ॰। इन्द्र सहित वनस्पति पिये ॥ ३३ ॥

होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिछन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

होता स्वाहाकृतीः प्रयाज देवताओं और इन्द्र को यजे। कैसे इन्द्र कि अग्नि (आगे में गन्तार) पृथक् (प्रत्येक) यज्ञों में गृह के पालक। वरुण (ऋत्विजों करि वरणीय)। रोगनाशक। क्रान्तदर्शन। प्रहार से त्राता। वयोधा (आयु के दाता)। क्या॰ कि अति छन्द के छन्द इन्द्रिय (वीर्य) बड़े पुष्ट गौ और वय इन्द्र में स्थापन करता। इन्द्र सहिताः स्वाहा

+ यूपं बध्नाति यया रज्जुः पशुबन्धनाय तद्धारणाद्

कृतयः देवाः आज्य पियें। हे मनुष्यहोतः त्वमपि यज॥ ३४॥

अ॰४॰ देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत्। गायत्र्या छन्दसे-
न्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥ ३५॥

वयोधसे पशावेवैकादशानुयाजानां प्रैषाः बर्हिरादि देवताः। बर्हिर्देव वयोधाइन्द्रदेवता को वढाता हुआ। कैसाबर्हि कि गायत्री छन्द करिके चक्षु इन्द्रिय और वय इन्द्र में स्थापन करता। वोह वसुवनन और वसुधान के अर्थ आज्यपियें। हे मनुष्य होतः तूभी यजि। एवमग्रेऽपि व्याख्येयम्॥ ३५॥

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्धयन्। उष्णि-
हा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेय-
स्य व्यन्तु यज॥ ३६॥

द्वारो देवियें वयोधा पवित्र इन्द्र॰। उष्णिक्छन्द करि प्राणेन्द्रिय॰॥ ३६॥

देवीऽउषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धता-
म्। अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुव-
ने वसुधेयस्य वीतां यज॥ ३७॥

उषासानक्तौ देवियें दीप्यमाना वयोधादीप्यमान इन्द्र॰। अनुष्टुप् छन्द करि बल इन्द्रिय॰ एकं देवी देवं शब्दो दीप्तिवाचको अन्यो सुखवाचको॥ ३७॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवम-
वर्धताम्। बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्व-
सुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥ ३८॥

दीप्यमाने देव्यौ (अनुयाज देवते) जोष्ट्रियें दीप्तवयोधा इन्द्र॰ बृहती छन्द करि श्रोत्रेन्द्रिय॰॥३८॥

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥३९॥

ऊर्जाहुत्यौ देव्यौ (दात्र्यौ) पयकरि दीप्त वयो॰ कैसीं कि दुघे॰ सुदुघे॰ पङ्क्ति॰ छन्द करि शुक्रेन्द्रिय॰॥३९॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम्। त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥४०॥

दैव्यौ देवौ (दीप्तौ) देवसम्बन्धिनौ होतारौ दीप्तवयो॰ त्रिष्टुप् छन्द करि कान्ति इन्द्रिय॰॥४०॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन्। जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४१॥

तीनों देवियें भारतीडासरस्वत्यः वयोधा पति इन्द्र को॰ जगती छन्द करि बल इन्द्रिय॰ अभ्यास आदरार्थः॥४१॥

देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत्। विराजा छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥२५॥

दाता नराशंसो देव दीप्त वयोधा इन्द्र देव॰ विराज छन्द करि रूप

न्द्रिय॰॥४२॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत्।
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने
वसुधेयस्य वेतु यज ॥४३॥

दाता वनस्पतिर्देव द्योतन वयोधा इन्द्र देव॰। द्विपदा छन्द करि
भगेन्द्रिय ॰॥४३॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्ध-
यत्। ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने
वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

वारितीयोंकेमध्यदीप्त(श्रेष्ठ) बर्हिः देव दीप्यमान वयोधा इन्द्र देव॰।
ककप् छन्द करि यशोरूप इन्द्रिय॰॥४४॥

देवो ऽअग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमव-
र्धयत्। अतिछन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दध
द्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४५॥

दाता स्विष्टकृत् अग्निः देव(दीप्त)वयोधा इन्द्र देव॰। अति छन्द छन्द
करि क्षत् सेत्राणरूप इन्द्रिय ॰॥४५॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः
पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम्। सूपस्था
अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन।
अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन।
त्वामद्य ऽऋषे ॥४६॥

इतिसंहितायां चतुर्थोऽनुवाकः ४

इति श्री शुक्ल यजुषिमाध्यन्दिन शाखीयायांवाजसनेयसंहितायांदीर्घपाठे ऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

वायो धस पशुसम्बन्धि सूक्त वाक प्रैषः । व्याख्यातः कण्डि० २३ । इन्द्राय वयोधसे इतिविशेषः ॥४६॥

इतिगिरिधरभाष्येचतुर्थोऽनुवाकः ४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्

पुमार्थांश्चतुरोदेयाद्यज्ञदेवः सनातनः २८

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेयनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीये गिरिधरभाष्ये सौत्रामणि सम्बन्धिप्रयाजानुयाजप्रैषनिरूपणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परंस्तुमः २९

समिद्धोऽअञ्जन्नाश्वमेधिकोऽध्यायः (प्रजापतिदृष्टः)

अ० १० समिद्धोऽअञ्जन्कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः । वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके॥
ग्रहनेत्रयुतेऽध्याये हयशिष्टः समीर्यते २९

आश्वमेधिकोऽध्यायः ततोऽस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आद्या एकादशत्रिष्टुभः आप्रीसंज्ञा अश्वस्तुतयो वामदेवपुत्रेण बृहदुक्थेन समुद्रपुत्रेणाश्वेन वा दृष्टाः समित्तनूनपादिडादि देवताकाः। हे अग्ने हे जातवेद तू देवताओं के सहस्थान प्रति प्रियमावक्षि (देवताओं को तृप्त करि। कैसा है तू कि दीप्तः मतीओं (बुद्धिओं) के छद्र (उदर-गर्भ) को व्यक्त करता अर्थात् बुद्धिरहस्य को प्रकाश करता। स्वादु घृत को देवताओं में सींचता। वाजी (चलनवान्। वाजिन (हवि) वहन् (देवताओं को प्राप्त करते सन् तृप्तकरि॥१॥

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान्प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳪं स्वधामस्मै यजमानाय धेहि॥२॥

अश्व देवताओं को प्राप्त करे। कैसा कि घृत करि देवताओं के मार्गों (हवियों) को आंजता। प्रजानन् (देवताओं का हविर्हं यह जानता। एवं परोक्षमुक्त्वा प्रत्यक्षमाह। हे सप्ते (अश्व) दिगाश्रय भूत तुझे सेवन करें। किं च इस यजमान के अर्थ अन्न दे। अत्र घृत शब्दस्तनूपाद्वाची॥२॥

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः॥३॥

हे सप्ते हे वाजिन् स्तुत्यहे नमनीयहे और आशुमेध्यः (अश्वमेधके अर्थ योग्य हे। किंच जातवेदाः अग्नि तुझे देवताओं को प्राप्त करे। कैसा अग्नि कि वसु देवताओं करि प्रीति सहित। कैसे तुझे कि नीत (तुष्ट) वन्हि (हवियों के वोढार) को॥३॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्। देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु॥४॥

हम बर्हि सुष्टरीम (साधुस्तरणकरते हें) अदितिर्देवी स्तीर्ण वोह बर्हिः स्वर्गलोकमें स्थापन करे। कैसी अदिति कि प्रीति करि युक्ता। सुखको करती। प्रीयमाणा कैसे बर्हि कि बहुत विस्तीर्ण। पृथिवी में विस्तार्यमान। देवताओं सहित॥४॥

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः। ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु॥५॥

हे ऋत्विज यजमानो तुम्हारी ये द्वारो देवीः (यज्ञगृह द्वारे देव्यः) इहश्रीहों। व पादपूरणः। कैसी कि सुभगाः (शोभन श्रीजिन्हों में नाना रूपचित्राः। पक्षों (पक्षप्राय कपाटें) से विस्तार्यमाणाः। कैसे पक्षों कि ऊर्ध्व प्रसृतों। पुनः कैसी द्वारः कि इतस्ततो गमनशीलाः महत्यः। सतीः (समीचीनाः। कवषः (कपाटजोडते समय प्राब्द करती वा सुषिरा। शोभमानाः॥५॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभिसंविदा

ने। उषासा वाᳬ सुहिरण्ये सुशिल्पेऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥

हे पत्नीयजमानो तुम्हारे यज्ञके स्थान में इन रात्रिदिन कोस्थापन करता हूं। कैसीं रात्रिदिन कि मित्रावरुणौ अन्तरा(द्यावापृथिवीके मध्य में) वर्तमाने+। यज्ञों(अग्निहोत्र) के मुख(होमकाल) को कहतीं-उठो यह अग्निहोत्र होमकाल है यहविप्र प्रातःकाल कहितेहे उषस्युपचर्येते। साधुहिरण्यंभूतं जिन्हो का ने। अन्योन्यंप्रतिरूपे॥६॥

+ अयं वै लोको मित्रो असौ वरुणः इतिश्रुतेः।

प्रथमा वाᳬ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा। अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता॥७॥

हे यजमानो तुम्हारे मुख्यो होतारो(अयं चाग्निरसौ च मध्यमः) को में प्रीणितवान् हूं। कीदृशौ कि सरथिनो(एकरथारूढौ) शोभनबर्णौ। देवौ(दीप्यमानौ-दातारौ। सब भुवनों को देखते। तुम्हारे चोदना(कर्मों) को निर्मिमाणौ। प्रदिशा(प्रदेश-अभिनय) करि ज्योतिःदिशन्तौ (आहवनीयाख्यज्योति यष्टव्य यह दिखलाते॥७॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञᳬ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत्। इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त॥८॥

आदित्यों करि युता भारती हमारे यज्ञ को चाहे। सरस्वती रुद्रों सहित हमारे यज्ञ की रक्षा करे। और इडारक्षा करे कैसी कि उपहूता(कृतो-

हवा) वसु देवताओं से प्रीतियुता। एवं परोक्षमभिधाय प्रत्यक्षमाह। हे देवी: (भारती सरस्वतीडा:) हमारे यज्ञ को देवताओं में स्थापन करो॥८॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः॥९॥

त्वष्टा वीर(पुत्र) को उत्पन्न करता है कैसे पुत्र कि देवकाम(ऋएन आपाकरणसमर्थ) को। त्वष्टा के सकाश से अश्व उत्पन्न होता है कैसा अश्व कि अर्वा (गमनशील) आशु (दिशः व्याप्त होता वा भक्षणकरता) किंच त्वष्टा इस सब भूत को उत्पन्न करता। हे होतः एवं बहुत कार्यके कर्तार त्वष्टा को इस यज्ञ में तू यजि॥९॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२॥ऽऋतुशः पाथ एतु। वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत्॥१०॥

अश्वः पाथः (अश्वरूपहवि) ऋतुशः (यज्ञकाल में) आप देवताओं को प्राप्त हो। कैसा अश्व कि घृतकरि समक्त (पत्नीओंकरि समुक्षित) किंच वनस्पति देव हवियें वहे देवताओं प्रति। कैसी हवियें कि अग्निनें आस्वादन करि मिष्टी किइं॥१०॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने। स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः॥११॥

हे अग्ने तू यज्ञ को धारण करता है कैसा है तू कि प्रजापति के तप करि वर्धमा-
न। सद्यो जातः (अरणी से उत्पन्न। किं च स्वाहाकार कहे हुत हवि
सहित अग्रगामी सन् देवताओं प्रति जा तेरे गये सति देवताश्रे-
ष्ठ हवि भोजन करें॥११॥

अ॰ २ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरी-
षात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जा-
तं ते अर्वन्॥१२॥

त्रयो दृशा मी स्तुति रूपास्त्रिष्टुभो भार्गवो जमदग्नि दृष्टा दीर्घतमा दृष्टाश्चा-
श्वस्तुतौ विनियुक्ताः। हे अर्वन् (अश्व) जबकि तू अक्रन्द (बडे शब्द से
हींसता हुआ) तब तेरा माहात्म्य स्तुति योग्य हुआ। कैसी स्तुतियोग्य त-
दाह- कि श्येन के पक्षौ हिरण के बाहू इस क्रन्दन से जीते इतिशेषः
अर्थात् शौर्य करि श्येनपक्षौ वेग करि हरिण बाहू। कैसा है तू कि स-
मुद्र (अन्तरिक्ष वा उदधि) से जायमान उत वा (अथवा) पुरीष (प-
सु) के सकाश से उत्पद्यमान॥१२॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं[1] प्रथमो अध्यति-
ष्ठत्। गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो
निरतष्ट॥१३॥

वसवो ऽष्टगणदेवाः सूर (आदित्यमण्डल) से अश्व को निरतष्टः (निः
तक्षते हुए। ततः त्रितः (त्रिस्थानो वायुः) यम करि दिये इस अश्वको
जोडता हुआ। और इन्द्र इस अश्व को प्रथम अधिष्ठित हुआ। गन्धर्व
(विश्वावसु) इस अश्व की रशना (रज्जु) पकडता हुआ। जो ऐसाति-

[1] एणमिति णत्वं छान्दसम्।

से स्तुति करते हैं॥१३॥

असि यमो ऽअस्यादित्यो ऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन। असि सोमेन समया विपृक्त ऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥१४॥

हे अर्वन् तू यम है और आदित्य है गोप्य व्रत (कर्म) करि त्रित (त्रिस्थान इन्द्र) है। सोम सहित एकीभूत है। एव यमादि करि सायुज्यप्राप्त तुरु आदित्य रूप करि नभ में स्थित के तीनि बन्धन बुद्धिमान कहते हैं (ऋग्यजुः साम रूप मण्डलान्तर पुरुष की अर्चिएँ तीनि बन्धन स्वरूप हैं॥१४॥

त्रीणि तऽआहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे। उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा तऽआहुः परमं जनित्रम्॥१५॥

हे अर्वन् जहां तेरा परम जनित्र आदित्य रूप बुधा कहते हैं तहां तेरे पूर्वमन्त्रोक्त तीनि बन्धन कहते हैं। जल में तीनि बन्धन कहते हैं (कृषि॰ वृष्टि॰ बीज रूप करि। समुद्र (अन्तरिक्ष) में तीनि बन्धन (मेघ॰ विद्युत्॰ स्तनयित्नु) कहते हैं। उतेव॰ और वरुण रूप तू मुझे प्रशंस (अर्चन) है॥१५॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाꣳ सनितुर्निधाना। अत्रा ते भद्रा रशना ऽअपश्यमृतस्य या ऽअभिरक्षन्ति गोपाः॥१६॥

हे वाजिन् तेरे इन अवमार्जनों (वेतस कटादिकों) को मैं देखता हूं। शफों (खुरों) के सनितुः (सम्भक्तुर्नियन्तुः पादवास के) इन निधानों (स्थानों)

+ यदेनम् आहुर्त [illegible] यदि दुक्षमित्यादि श्रुतेः॥

को देखता हूं। इस यज्ञ में तेरी रशना(मध्यबन्धनरज्जुः) देखता हूं। कैसी रशना कि भद्राः(कल्याणरूपाः) स्तुत्याः। गोपाः(रक्षणकर्त्र्यः।जो रशना यज्ञ को सर्वतः रक्षा करती है॥१६॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतंगम्। शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि॥१७॥

एवमश्वं स्तुत्वा भविष्यत्कर्मणास्तौति। हे अश्व तेरे आत्मा को मन करि दूरि मैं जानता हूं। कैसे आत्मा कि अधः प्रदेश से नभो मार्ग करि पतंग(सूर्य) प्रति उत्पतन्त को। किं च तेरे शिर को सूर्य रूप देखता हूं। कैसे शिर कि नभोमार्ग करि जेहमान चलता कैसे मार्गों कि सुगमों रेणु(उपद्रव) रहितों करि। पुनः कैसे कि पतत्रि(पतनशील-गन्ता को॥१७॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः। यदा ते मर्तो अनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः॥१८॥

हे अश्व इस गोः पद(सूर्यकेमण्डल) में तेरे उत्तम रूप को समन्तात देखता हूं। कैसे रूप कि इष(हविरूप अन्न) जीतने को इच्छा करता। किंच मनुष्य जब कि तेरे हवि रूप भोग को समर्पण करता है अनन्तरमेव तू हविएं(ओषधिरूपाः) भक्षण करता है कैसा है तू कि अत्यन्त भक्षयता॥१८॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः

कनीनाम्। अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते॥१९॥

हे अर्वन् (अश्व) रथ तुम्हें अनुवर्त्ते हैं इतिशेषः। मनुष्य तुम्हें अनु। गौ तु॰। कन्याओं का सौभाग्य तु॰। अर्थात् जहां तू तहां रथादिक हैं। किंच व्राताः (मनुष्यसंघा) तेरे सख्य (मैत्री) को प्राप्त हुए। किं बहु ना देवता तेरे वीर्य (सामर्थ्य) को अनुममिरे (अनुमितवन्तः॥१९॥

हिरण्यशृङ्गोऽयोऽअस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्। देवा इदस्य हविरद्यमायन्योऽअर्वन्तं प्रथमोऽअध्यतिष्ठत्॥२०॥

जो प्रथम (मुख्य) अर्वन्त (अश्व) को अधिष्ठित हुआ वोह भी इन्द्रापेक्षया न्यून था कैसा इन्द्र कि हिरण्यशृंग (हिरण्यवत् दीप्ति जिसकी। इस अश्व के पादा अयः (लोहरूपा वा हिरण्यरूपा) कैसे पादा कि मनोवत् वेग जिन्हों का ते। किंच देवा इस अश्व के हविर्लक्षणभक्ष्य प्रति आये॥२०॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳ शूरणासो दिव्यासोऽअत्याः। हꣳसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः॥२१॥

सूर्याश्वरूपेणायमश्वः स्तूयते। जब कि अश्वाः (सप्त रविरथस्थाः) अपि भूताः हंस ऐसे भलेप्रकार प्रयत्न करते हैं तब दिवि में हुए अज्म (गमन वा संग्राम) को व्याप्त होते हैं अर्थात् हंस जैसे गमन के अर्थ प्रयत्न करते हैं तैसे अश्व भी। कैसे घोडे कि ईर्मान्तासः (प्रेरित है अन्तः शा-

[redacted] जिन्हों का अर्थात् पृथुजघनोरस्का। सिलिकमध्यमासः(संलग्न है मध्य प्रदेश जिन्हों का अर्थात् कृशोदरा। शूरणासः(शीघ्र है खवायु ह जिन्हों का यद्वा शूरण रवि तिस के सम्बन्धिनः। दिव्यासः(दिवि में हुए। अत्याः(सतत चलते हैं। सहस्रयुक्ता ब्रह्म ह पर्यन्त रविरथ को वहते हैं॥२१॥

तव शरीरं पतयिष्णर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान्। तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति॥२२॥

हे अर्वन् तेरा शरीर उत्पतनशील है। तेरा चित्त गतिमान् वात जैसे वेगवत् सूक्ष्मार्थों को जाता। तेरे शृङ्ग(दीप्तियें) वनों में दवाग्निरूप करि प्रसरती हैं कैसी शृङ्ग कि बहुधा विष्ठिता(विविधस्थित विद्युच्चन्द्रार्काग्नि में स्थित। जर्भुराणा(जृम्भ विकसन में विकसित हैं॥२२॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः। अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः॥२३॥

अर्वा(अश्व)विशसनस्थान को समीप आया। कैसा अर्वा कि वाजी(गमनशील वा अन्नवान्। देवद्रीचा मनसा दीध्यानः(देवताओं प्रति गये चित्त करि दीप्यमान। किं च इस अश्व के आगे में अज स्थापन करिये है†। इस की नाभि में अज स्थापन करिये है†। इस के पीछे कवयः(ऋत्विजलोग) चलते हैं। कैसे कवयः कि रेभाः(स्तुतिकर्तारः॥२३॥

† कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरस्तादिति २४॰१॰ † सोमापौष्णः श्यामो नाभ्यामिति २४॰१॰

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वा २॥ऽ अच्छा पितरं मातरं च। अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि॥ २४॥

एवमश्वं स्तुत्वा यजमानाह। अर्वान् (अश्व) पिता और माता (द्यावापृथिव्यो) के अच्छ (समीप) में परम उत्कृष्ट जो सहस्थान तिस के समीप गया अश्व के ही देवलोक को जाते हैं यजमान प्रीततमः सन् अद्य (अश्व) तू देवलोक को जावेगा अथैवं देवत्व को गये हविर्दत्तवते तेरे अर्थ वरणीय भोग्य वस्तुएँ क्षिप्र देवगण वा अश्व देवें॥ २४॥

अ॰ ३॰ समिद्धो ऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः। आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः॥ २५॥

द्वादशाप्रीसंज्ञास्त्रिष्टुभः जमदग्निदृष्टाः समित्तनूनपादादयो देवताः। हे जातवेदः (जातज्ञान) मनुष्य (यजमान) के यज्ञ गृह में आज तू देवताओं को यजि। कैसा है तू कि दीप्तदानादिगुणयुक्त। और हे मित्रमहः (मित्रों-यजमानों को पूजता है) देवताओं को बुला अर्थात् यजि। क्योंकि तू ऐसा है कि चिकित्वान् (चेतनवान्) दूत क्रान्तदर्शी प्रचेता (प्रकृष्ट चेत जिसका वोह) अत एव यजि॥ २५॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व। मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः॥ २६॥

हे तनूनपात (अग्ने) हे सुजिह्व (शोभनाजिह्वा जिस की वोह †) अत्र

† नाना देवयानि द्रव्याणि भक्षयन्नपि नोच्छिष्टानि करोतीति वन्हेः शोभनजिह्वत्वम्।

के पयों (हवियों) कों स्वदय (रोचय-भक्षन करि । क्या करता कि मधुर रस करि संम्रक्षयन् । किं च हमारे यज्ञ को देवत्रा (देवताओंप्रति प्राप्त करि । क्या करता कि बुद्धिओं सहित ज्ञानों और यज्ञ को समर्धयन् अर्थात् हमारे ज्ञान और यज्ञ को बढाके यज्ञ को देवलोक में प्राप्त करि ॥२६॥

ये पायन्ते पेयेषु ते पानास्तान् । कः तो यज्ञः तस्य गमनसाधना हवींषि ।

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः । ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२७॥

नराशंस (प्रजापति वा अग्नि) के महाभाग्य को इन देवताओं के मध्य में हम स्तुति करते हैं । कैसे नराशंस कि यज्ञों करि यजत के । इनकिन्हों के कि जे देवाः उभय हवियें (सोम और इतरें को) भक्षण करते । कैसे देवा कि शोभन हैं कर्म जिन्हों के । निध्यायाः । बुद्धि वा कर्म को स्थापन करते ॥२७॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चायाह्यग्ने वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥२८॥

हे अग्ने तू आ कैसा है तू कि देवताओं को बुलाता । स्तुत्यः । नमनीयः । वसु देवताओं से समान प्रीतिः । किंच हे यह्व (महन्) जो तू देवताओं का आह्वाता है सो तू एतान् (आयों को) यजि । कैसा है तू कि इषितः (प्रेषित वा अभीष्ट) यजीयान् (अत्यन्त यष्टा ॥२८॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे-

ग्रे॑ऽअन्हा॑म्। व्यु॑ प्रथते वितरं॑ वरी॑यो दे॒वेभ्यो॒ऽअदि॑त स्योनम्॥२९॥

दिनों के अग्र (पूर्वान्ह) में बर्हिः प्रागग्र प्रस्तीर्य्य है + प्रदिशा (प्रागग्र ‡) इस वेदी के आछादन को। सो बर्हिः स्तीर्यमान सत् विविध स्तीर्ण होती है। कैसी बर्हिः कि अत्यन्त विस्तीर्ण। देवताओं और अदिति के अर्थ सुखकर॥२९॥

व्यच॑स्वतीरुर्वि॒या विश्र॑यन्तां पति॑भ्यो॒ न जन॑यः शुम्भ॑मानाः। देवी॑र्द्वारो बृहती॑र्विश्वमिन्वा दे॒वेभ्यो॑ भवत सुप्राय॒णाः॥३०॥

द्वारो देव्यः विहृता हों। कैसी द्वारः कि उरुत्व करि गमनवत्यः कैसे कि जैसे पत्निएँ पतिओं के अर्थ ऊरू फैलाती हें। एवं परोक्ष मुक्त्वा प्रत्यक्षमाह हे द्वारो देव्यः तुम देवताओं के अर्थ सुप्रगमना होओ। कैसी कि बृहत्यः विश्वमिन्वा (विश्वजाता हैं जिन्हों मेंवे) शोभमानाः। उर्विया इति द्वारविशेषणम् उरवः (विशालाः) इयाट् (इयाजू इयार) श्चेति॥३०॥

आ सु॒ष्वय॑न्ती यज॒तेऽउपा॑केऽउ॒षासा॒नक्ता॑ सदतां॒ नि योनौ॑। दि॒व्ये योष॑णे बृह॒ती सु॑रु॒क्मेऽअधि॒ श्रिय॑ꣳ शु॒क्रपि॑शं॒ दधा॑ने॥३१॥

अहो रात्रे देवते यज्ञगृह में भले प्रकार बैठें। कैसी कि सुष्वयन्ती (परस्पर हसन्ती वा साधु स्वपन्ती) यजनीय में। परस्पर समीपस्थित अवि में हुईं। स्त्रीरूपिणीयें। बृहत्यौ। सुरुक्मे (साभरणे। शुक्रपिशं (शुक्ल-

+ प्रातर्यागकालस्य प्रसस्तत्वा दन्हामग्र इत्युक्तम्
‡ किं स्वबुद्ध्या चेत्याह प्रदिशा प्रागग्रं बर्हिः स्तृणातीति श्रुति वाक्येन प्रदिक् शब्देन श्रुति वाक्यम्

दिवस॰ कपिशा॰रात्रि) श्रिय(शोभा) को धारण करतीएँ॥३१॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै। प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता॥३२॥

दैव्यौ होतारौ ऐसे हों इति शेषः। कैसे कि आद्यो। शोभनवाक् जिन्होंकी तौ। मनुष्य के यजनयोग्य यज्ञ को निर्मिमाणौ। यज्ञों में ऋत्विजः प्रेरयन्तौ। कारू(स्वयंकर्तारौ) पूर्वदिशा में हुई ज्योति आहवनीय रव्य को प्रदिशा(अभिनय श्रुतिवाक्य करि) दिशान्ता(पूजेंगे यह कहते॥३२॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती। तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु॥३३॥

भारती इडा और सरस्वती हमारे यज्ञ को क्षिप्र आवें। कैसी कि मनुष्यवत् इस कर्म में चेतयन्ती(कर्मज्ञान को बोधयन्ती) यह तीनों का विशेषण। ये तीनों देविये सुखरूप इस बर्हि पर बैठें। कैसीं कि शोभन हैं कर्म जिन्हों के॥३३॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा। तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्॥३४॥

हे होतः आजप्रेषितः सन् तू त्वष्टा देवता को इस यज्ञ में यजि। कैसा है तू कि अत्यन्त यष्टा। अपने अधिकार को जानता। वोहक्या

कि जो त्वष्टा ये द्यावा भूमी यें रूपें करि विचित्र करता हुआ। सब प्र
जातें कों रूपें करि विविध करता हुआ। कैसी द्यावा पृथिवीएँ कि
प्राणियों की उत्पादन करने वाली एं॥३४॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा ह
वीᳪषि। वनस्पतिः शमिता देवोऽअग्निः स्वदन्तु ह
व्यं मधुना घृतेन॥३५॥

यजमानो वदति। हे होतः अपने से हवियें यज्ञकाल में तू दे। क्या क
रता कि देवताओं के पाथ (हवि) मधुररस (घृत) करि के संमृक्षयन्।
देवताओं के इत्युक्तं तानाह- वनस्पति (यूप) शमिता देवः अग्निः
ये तीनों होता करि संमृज्यदिये हवि को भक्षण करें॥३५॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पु
रोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतᳪ
हविरदन्तु देवाः॥३६॥

देवा हवि भक्षण करें। कैसा हवि कि इस अग्नि के वाचि (वागिन्द्रियो
पलक्षित- मुख में) स्वाहा कार करि हुत को कैसा इस का कि होतुः
(देवताओं के बुलानेवाले) प्रदिशि (पूर्व दिशा में) ऋतस्य (आह
वनीयात्मा करि स्थित का। इस किस का कि जो अग्नि सद्य उत्पन्न
हुए सन् यज्ञ को विशेष करि निर्माण करता हुआ और जो देवता
ओं का अग्रगामी (मुख्य) हुआ॥३६॥

अ॰ ४॰ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुष
द्भिरजायथाः॥३७॥

अग्निदेवत्या गायत्री मधुछन्दोदृष्टानिरुक्ता। हे अग्ने तू उषतू (अग्निहोत्रव
र्तीरयजमानों) करिउत्पन्न है। कैसाहै तू कि अकेतु (अज्ञानी) अर्य (मनुष्य)
केअर्थकेतु (ज्ञान) को करता। अपेशसे (विन सुवर्णकेमनुष्यके अर्थ सुवर्णकरता। ३७।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे। अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥३८॥

एवमग्निं स्तुत्वाश्वरक्षणे योधा। युद्धोपकरणानि च स्तूयन्ते। भरद्वाजसुतपायुः संग्रामाङ्गानि प्रत्यृचं स्तौति त्रिष्टुब्भिः। वर्म स्तूयते। जबकि वर्मी (कवची) समदों (संग्रामों) के उत्सङ्ग में जाता है तब प्रतीक (सेनासुख) जीमूत (मेघ) कासा होता है। सह माद्यन्ति (तृप्त होते हैं) योधा जिन्हों में ताः समदः (संग्रामाः। मेघ का मुख विद्युत्स्तनयित्नुधाराओं से जैसे असह्य है एवं हस्त्यश्वरथपदात्यस्त्रजालतूर्यनाद शरौघकरि सेनासुख असह्य होता है इत्यर्थः। अतः मैं कहिता हूं कि हे वर्मिन् अक्षत शरीर करि तू शत्रुओं को मारि के जय को प्राप्त हो। किं च वोह वर्म की महिमा तुम्हें पालन करे ॥३८॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३९॥

धनुः स्तूयते। धनुष करिके हम पृथ्वी जीतें। धनुष करि मार्ग जीतें। उग्र संग्रामों को धनुष करि जीतें। धनुष शत्रुओं के मनोरथाभाव करता है। किं च धनुष करि सब प्रदिशाएँ जीतें ॥३९॥

वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णं प्रियꣳसखायं परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन्ज्याऽइयꣳ समने पारयन्ती॥४०॥

ज्यास्तूयते। यह ज्या धनुष के ऊपर में विस्तारिता सती अव्यक्तशब्द करती है। कैसे कि जैसे कामिनी कामुक के रञ्जनार्थ अव्यक्त कहती है ऐसे यह भी। कैसी ज्या कि संग्राम से उतारती अर्थात् विजय करती। यह कौन कि जोज्या आकृष्टासती योधा के कर्णप्रति अत्यर्थ आती है। कैसी कि जैसे अन्य बोलने को इच्छा करता कर्णप्रति आता है। इसप्रियसखा (इष्टमित्रबाणरूप) को आलिङ्गन करती॥४०॥

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्यताꣳ संविदानेऽआर्त्नीऽइमे विष्फुरन्तीऽअमित्रान्॥४१॥

धनुःकोटी स्तूयेते। ते प्रसिद्ध आर्त्नी (धनुःकोटीयें) उत्सङ्ग (मध्यभाग) में धारण करें शर को इति शेषः। तत्र दृष्टान्तः जैसे माता धारण करती है पुत्र को उत्सङ्ग में। और शत्रुओं को ताडन करें। कैसी आर्त्न्यौ कि आती हैं धानुष्क प्रति तत्र दृष्टान्तः कि समान मन हैं जिनों के ते स्त्रियें जैसे कान्त को आती हैं परस्पर संकेत करती एँ। शत्रुओं प्रति टङ्कार करती एँ॥४१॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समनावगत्य। इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः॥४२॥

इषुधिः स्तूयते। जो इषुधिः (तूण) बह्वतों (बाणों) का पालक है। क्योंकि बाणों को रखता है। इस इषुधि के बहुत पुत्र † (बाण समूह पुत्रस्थानीय) हैं (पाल्यमानत्वात्। सो इषुधिः संग्रामों को जानि कर चिश्चा कृणोति (चिश्च यह शब्द करता, शब्दानुकरणमेतत्, तूण से निकलते हुए बाण में चिश्च यह शब्द होता है। और वोह इषुधिः धानुष्क करि पीठि में बंधा भी अनुज्ञातः सन् सब शत्रु सेनाएँ जीतता है। कैसी शत्रु सेनाएँ कि सङ्काः (सचन्ते, संवध्यन्ते वा संकीर्यन्ते, योधा जिन्हों मे वे † ॥४२॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र-यत्र कामयते सुषारथिः। अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनुयच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

अर्धेन सारथिरर्धेन रश्मयः स्तूयन्ते। जगती इयम्। शोभन सारथि जिस-जिस प्रदेश में चाहता कि मैं यहां जाऊंगा तहां-तहां पुरो वर्तमानों वाजियों को प्राप्त करता है। कैसा कि रथ में बैठा। तिसे स्तुति करता हूं इति शेषः। इदानीं रश्मयः स्तूयन्ते। हे मनुष्यओ अभीशूओं (रश्मिओं) के महाभाग्य को तुम स्तुति करो। जे रश्मिएँ पीछे में वर्तमान हुई मन (अश्वचित्त) को वशवर्ति करती हैं ॥४३॥

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः। अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्क्षिणन्ति शत्रूँ२॥रनपव्ययन्तः ॥४४॥

अश्वाः स्तूयन्ते। वृषा (आश्वाः) हाथ में जिन्हों के ते वृषपाणयः (अश्ववराः) तीव्रघोषों (जय-जय इन शब्दों) को करते हैं। अश्व भी रथस

+ पुरून्बहून् त्रायतेति पुत्रः

† सङ्काः सक्ताः सम्पृक्ता भवन्तीति वा निरु० ९।१४

हित चलते हुए तीव्रघोषों (हेषाशब्दों) को करते और शत्रुओं को नाश करते हैं। कैसे अश्व कि पादाग्रों (खुरों) से रिपुओं को अवक्रामन्तः (ठुकराते-रूंदते हैं ॥४४॥

रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म। तत्रा रथमुप शग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः ॥४५॥

शकटद्वारा रथः स्तूयते। इस (अन-शकट) का रथवाहन (रथको वहता) नाम है †। तथा इस का हविर्धान नाम है। जहां (इस शकट में) योधा के वर्म और आयुध स्थापित हैं तहां (शकट में) हम रथ को उपसादन करते हैं। कैसे रथ कि सुखकर को। कैसे हैं हम कि सर्वदा शोभन मन जिन्हों के ते ॥४५॥

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः। चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥४६॥

रथगोपान्स्तौति। ऐसे नर हमारे रथ के गोप्तार हों इति शेषः। कैसे कि स्वादुसंसदः (सुख जैसे तैसे भले प्रकार सीदें हैं ते। पितरः (रक्षितारः। अन्न वा आयु को धारण करते। कृच्छ्रेश्रितः (कष्ट में सेवन करते वा दुःख को प्राप्त होके भी स्वामि सेवन पराः। शक्तीवन्तः (सामर्थ्यवान् वा आयुधवान्। गम्भीर बलाः और गम्भीरप्रज्ञाः। नाना विधा सेना जिन्हों की ते। बाणों करि बल जिन्हों का। अमृध्राः (कठिनाङ्गा वा उग्रशासना। सतोवीराः (अश्वमेधयाजिनः

† वाजपेये ऽनसि रथस्यारोप्यमाणत्वात् का० १४। ३। १ व्याख्यातम् अ० ६ का० ५।

भ्रता: यद्वा विद्यमानवलके प्रेरका: । उरवः(प्रथुजघनोरस्का)॥ व्रात साहा: (भूरसमूहों को अभिभवते हैं ते ॥४६॥

ब्राह्मणास: पितर: सोम्यास: शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा । पूषा न: पातु दुरिताहृतावृधो रक्षा माकि र्नो ऽअघशंस ईशत ॥४७॥

जगती लिङ्गोक्तदेवता । ब्राह्मण: हमें रक्षा करें । और पितर रक्षा करें । कैसे कि सोमसम्पादिन: वा सोमपानयोग्या । द्यावाभूमी हमें रक्षा करें । कैसी कि कल्याणकारिण्यो । अपराधनिवर्तके । किंच सूर्य हमें पापों से रक्षा करे । एवं परोक्षेणोक्त्वा प्रत्यक्षमाह हे ऋतावृधः (सत्यको बढाते देवाः) हमें रक्षा करो । कोई पापी हमारे ऐश्वर्य को न करे अर्थात् हम दुष्टवशान हों + ॥४७॥

सुपर्णं वस्ते मृगो ऽअस्या दन्तो गोभि: संनद्धा पतति प्रसूता । यत्रा नर: सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषव: शर्म यंसन् ॥४८॥

द्वाभ्यामिषुं स्तौति आद्या त्रिष्टुप् अन्यानुष्टुप् । जो वाण सुपर्ण (पक्षिपिछ) को धारण करता है-शोभन पिछ जिस का वोह सुपर्ण (पक्षी) तिस का विकार सौपर्ण (तत्र कृत्स्नवन्निगमा भवन्तीति निरु॰२॰५॰ यास्कोक्ते: सुपर्ण शब्द करि तत्पिछ लेंना-वाणपुङ्ख में पिछ के आरोप्यमाणत्व से । किंच इस वाणका दन्त: (फल) मृग: (रिपुओं को मारता । किंच जो वाण गोविकार (स्नायु) करि संनद्धा (बद्धा) प्रसूता (धनुष्मता करि प्रेरितासती) पतति (शत्रुवल प्रति जाती है) और जहां नर (योद्धार) भले प्रका

+ अघशंसः (पापं) शंसति वक्ति प्रकाशयतीति वा अघशंसः (दुष्टः)

र जाते और विविध प्रसरते हैं तहां (रण में) बाण हमें सुख देवें ॥४८॥

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः। सोमो
ऽअधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥४९॥

हे ऋजीते (ऋजुगामिनि) हे इषो हमारे विषें मत पतन करि। किंच हमारा शरीर पाषाण तुल्य दृढ हो। सोम हम को अधिक कहै। अदितिः (देवमाता) सुख देवै ॥४९॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ ॥ ऽउपजिघ्नते। अश्वाज
नि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥५०॥

अनुष्टुप्। कशा स्तूयते। हे अश्वाजनि (अश्व चलाइयें और क्षिपियें हैं जिस सें वोह) हे कशे तू संग्रामों में अश्वों को जय के अर्थ प्रेरि कैसें को कि प्रकृष्ट (शूर) हैं चेत (मन) जिन्हों के ते। हे कशे जिस तुझ करि अश्ववारा इन अश्वों के सानु (सानुतुल्य मांसोपचित अङ्गों) को ताडन करते जघनों (कटिभागों) को मारते हैं। अर्थात् तुरङ्गारोहा जिस करि अश्वों को वश करते हैं सो तू अश्वों को प्रेरि ॥५०॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमा
नः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं
सं परि पातु विश्वतः ॥५१॥

सप्त त्रिष्टुभः। आद्या हस्तघ्नः स्तूयते। हस्त में स्थित हनै है हस्तघ्न (खेटक) यद्वा हस्त को प्राप्त है हस्तघ्न (प्रकोष्ठत्राण) पुमांस मुझे सर्वतः परिपातु (रक्षा करै)। कैसा है हस्तघ्न कि सब ज्ञानों को जानता। तथा पुमान् (पुंस्त्वयुक्त शूर) जो हस्तघ्न भोगों (स्वशरीरावयवों) करि के हस्त को वे

[illegible] करता है। कैसे कि अहिरवि (जैसे सर्प भोगों करि स्वदेह हस्तादि [illegible] को वेष्टन करता है। कैसा कि शत्रुप्रेरित ज्यायाः हेतिं (बाण) को निवर्त करता खेटकपक्षे प्रकोष्ठत्राणपक्षे तु ज्यायाहेतिं (प्रहार) को निवारण करता (ज्याघातस्य निवारकत्वात्॥ ५१॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि॥५२॥

तिस्र ऋचो रथ देवता। हे वनस्पते (काष्ठमय रथ+) तू दृढाङ्ग हो। कैसा कि हमारा मित्रभूत। प्रतरणः (संग्रामपार को जाता। सुवीरः (शोभन रथी जहां। किंच हे रथ यतः तू गोविकार चर्मों से बद्ध है अतः आत्मा को स्तम्भन करि। किंच तेरा स्थाता (रथी) जेतव्य रिपु धनों को जीते॥५२॥

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः। अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज॥५३॥

हे अध्वर्यो तू हवि करिके रथ को यजि। कैसे रथ कि द्युलोक से पृथिवी के सकाश से समन्तात् उद्धृत की ओजः (तेज)। तथा वृक्षों से समन्तात् आनीत बल को। तथा जलों के ओज्मान (तेज सारभूत) अर्थात् द्यावापृथिवी वृक्षजल चारों के तेज करि निर्मित को। तथा किरणों करि वेष्टित को + यद्वा गो के चर्म से वेष्टित। तथा इन्द्र के वज्र से हुए को। जब कि इन्द्र ने वृत्र के अर्थ वज्र को मारा तब वज्र

+ काष्ठविकाररथ। निरु० १२।

गोभिरिति किरणैः

शरीर की कठिनता करि प्रतिहत चतुर्धा हुआ यूप॰ स्फ्य॰ रथ॰ और शर॰ ये चतुः खण्ड हैं तहा यूप और स्फ्य विप्रों नें गृहण किये रथ और शर नृपों नें †। अर्थात् ऐसे रथ को यजि ॥५३॥

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑। सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥५४॥

हे रथ हे देव सो तू हवियें प्रति गृह करि कैसा है तू कि इन्द्र का वज्र (वज्रोत्पन्नत्वात्)। मरुतों का मुख्य (देवताओं के जय प्रापकत्वात्)। मित्र (सूर्य) करि स्तूयमान। वरुण का नाभि (हननसाधन †)। हमारे इस हवि के दान को सेवमान ॥५४॥

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त्। स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥५५॥

तिस्र ऋचो दुन्दुभिदेवत्याः। हे दुन्दुभे सो तू पृथिवी और द्यां (अन्तरिक्ष को) उपश्वासय (शब्दित करि)। विविधस्थित जगत् (स्थावरजङ्गमादिक) बहुधा तुमे जानें (यह कि दुन्दुभिनाद करता है)। सो तू अत्यन्त दूर शत्रु को निकालि। कैसा है तू कि इन्द्र और देवताओं करि प्रीतियुक्त ॥५५॥

आ क्र॑न्दय॒ बल॒मोजो॑ न॒ आधा॒ नि ष्ट॑निहि दुरि॒ता बाध॑मानः। अप॑ प्रोथ दुन्दुभे दु॒च्छुना॑ इ॒त इन्द्र॑स्य मु॒ष्टिर॑सि वी॒डय॑स्व ॥५६॥

† इन्द्रोह यत्रैनमाहिनत् शत० १।२९।४।१।२ श्रुतेः।

* नश्यते अरिमारियेहैं इस करि।

हे दुन्दुभे तू बल (शत्रुसैन्य) को आक्रन्दय (रुलाय-भागो-भागो हमारे सब मारे गये इत्यादि शब्द कराय। हमारे को तेज दे। पापों को निरा करते सन् निष्टनिहि (शब्द करि। किं च हमारी सेना के सकाश से दुच्छुनों (दुष्ट श्वानों तिन दुष्टश्वान सदृश शत्रुओं) को नाश करि। क्योंकि तू इन्द्र का मुष्टि (मुष्टिवत् अङ्गभूत) है अतः हम लोगों को दृढ करि ॥५६॥

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥५७॥

हे इन्द्र अमूः (शत्रुसेना) को तू समन्तात् परिक्षेप करि। क्योंकि दुन्दुभिः केतुमत् (प्रज्ञावत्) जैसे अत्यन्त बजै है अतः हमारी सेना प्रत्यावर्तय (जय को प्राप्त करि के लोटाय। किं च हमारे नर (योधा) संचरें हैं कैसे योधा कि अश्व का सा पतन जिन्हों का ते। किं च हमारे रथस्था युद्ध में जय को प्राप्त हों ॥५७॥

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः॥५८॥

अश्वमेधे श्रुतिरस्ति द्वे त्वेवैतेऽएकादशिन्यावालभेतेति शत॰ १३॰ ५॰ १॰ ३॰ तयोरेकादशिन्योः पशवस्तद्देवताश्च कण्डिकाद्वयेनोच्यन्ते तेनेमानि ब्राह्मणवाक्यानि द्रव्यदेवताप्रतिपादकानि न तु मन्त्राः। कृष्ण ग्रीवा जिस की वोह कृष्ण ग्रीव पशु आग्नेयः (अग्निदेवत्यः) १॰ मेषी सारस्वती (सरस्वतीदेवताका) २॰ बभ्रुः (पिङ्गलवर्णः पशुः) सोम देवत्यः ३॰

श्यामः (कृष्णवर्णः) पूषदेवत्यः ४॰ शितिपृष्ठ (श्याम) पृष्ठजिसका वोह शि
तिपृष्ठः बृहस्पतिदेवत्यः ५॰ शिल्पः (विचित्रवर्णः) विश्वदेवदेवत्यः ६॰
अरुणः (रक्तः) इन्द्रदेवत्यः ७॰ कल्माषः (कर्बुरः) मरुद्देवत्यः ८॰ संहित
(दृढाङ्गः) इन्द्राग्निदेवत्यः ९॰ अधोरामः (अधोदेशमें श्वेत) सवितृदेव
त्यः १०॰ एकःशितिः (श्वेतपादजिसका) वोह एकशितिपात् (एकपद
श्वेत अन्यत्रकृष्णः) पेत्वः (पतनशील) वेगवान् पशुः) वरुणदेवत्यः ११॰
एवमेकादश जाताः ॥५८॥

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ
पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः
कल्माष आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारु
णः पेत्वः ॥५९॥

द्वितीयैकादशिनी पशुदेवानाह। रोहित (रक्त) अञ्जि (तिलक जिस
का सो अनड्वान् (छकडे का बैल) अनीकवान् (अनीक-मुखवा
सैन्य जिसका उस) अग्निके अर्थ १॰ अधोरामौ (अधोभाग में श्वेत
दो पशु) सवितृदेवतौ २॰ ३॰ रजत वर्ण नाभि जिन्हों की वे रजतना
भी द्वौ पूष देवत्यौ ४॰ ५॰ पिशङ्गौ (पीतौ) तूपरौ (शृङ्गरहितौ) विश्वदे
वदेवत्यौ ६॰ ७॰ कल्माषः (कर्बुरः) मरुद्देवत्यः ८॰ कृष्णः (श्यामः) अजः
(मेषः) अग्निदेवत्यः ९॰ मेषी सारस्वती १०॰ पेत्वः (वेगवान्) वरुणदेव
त्यः ११॰ एवमेकादश। अश्वमेध में एकविंशति यूप होते हैं तहां अ
ग्निष्ठ संज्ञक मध्यम यूप में दो पशु दोनों एकादशिनियों (कृष्णग्रीव
पशु अग्नि देवत्यः १॰ रोहिताञ्जि अनड्वान् अग्नयेऽनीकवते २॰) के बां

धे जाते हैं शेष विंशत यूपों में प्रत्येक यूप में प्रत्येक पशु बाँधतेहैं॥५९॥

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्कराय चरुः सवित्रऽऔष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्याऽअष्टाकपालः॥६०॥

इति संहितायां चतुर्थोऽनुवाकः४

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशाखीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

अथाग्निषोमीयस्य पशुपुरोडाशमनु दिशामावेष्टीर्निर्वपतीत्युपक्रम्य तदाहुर्दश हविषमन्त्यामिष्टिं निर्वपेदिति श्रुत्या दश हविष्कावेष्टिसंज्ञेष्टिः कथिता तस्या देवता हवींषि चाह। इमान्यपि ब्राह्मणवाक्यानि न मन्त्राः॥ अग्नि के अर्थ अष्टाकपालः(आठकपालों में संस्कृत पुरोडाश करियेहै) कैसे अग्नि कि गायत्री करि स्तुति किये के अर्थ त्रिवृत्स्तोम करि स्तुति किये के अर्थ रथन्तरसाम करि स्तुति किये के अर्थ १ इन्द्र के अर्थ एकादश कपाल पुरोडाश करिये है कैसे इन्द्र कि जगती छन्द करि स्तु॰ सप्तदशस्तोम॰ वैरूपसाम॰ २ विश्वदेवाओं के अर्थ द्वादशकपालः पुरोडाशः कैसों के कि जगती छन्दकरि स्तु॰ सप्तदशस्तोमस्तु॰

वैरूपसाम॰३॰ मित्रावरुणोंके अर्थ पयकरि श्रित चरुः कैसो के अर्थवि
अनुष्टुप् करि स्तु॰ एकविंशस्तोम॰ वैराज साम॰४॰ बृहस्पति के अर्थ
चरुः कैसे के कि पङ्क्तिछन्द॰ त्रिणव स्तोम॰ शाक्वर साम॰५॰ सविता के अ-
र्थ द्वादश कपालः पुरोडाशः कैसे कि उष्णिक् छन्द॰ त्रयस्त्रिंश स्तोम॰
रैवत साम॰६ एवं छन्दः स्तोम सहितानि षट् देवताओं को कहि कर
चतुरः केवलों को कहिता है॰ प्रजापति देवत्यश्चरुः करिये है॰७॰ वि-
ष्णुपत्नी अदिति के अर्थ चरुरेव ८॰ वैश्वानर गुणविशिष्ट अग्नि-
के अर्थ द्वादश कपालः पुरोडाशः ९॰ अनुमति देवता के अर्थ अष्टा
कपालः पुरोडाशः करिये है १०॰ दश हविषोऽवेष्टेर्देवता हवींष्यपि
अश्वमेधोपयोगित्वादुक्तानि समिद्धोऽअञ्जन्नाश्वमेधिकोऽध्याय
इति कात्यायनोक्तेः अनुक्रमण्याम् अ॰३॰ख॰११॰॥६०॥

इति गिरिधरभाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः॥४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय
विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेवबर्म्मोत्म रौक्मिणेय नृपति
गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये खिल प्रकरणे
आप्री आदि पुरोडाशान्त वर्णनो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

समाप्तोऽयमन्थशिष्टः

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३०

देवसवितर्द्वाविंशाध्यायो पुरुषमेधो नारायणः पुरुषो ३० ददर्श

अ० १. देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥१॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥२॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥३॥

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम्॥४॥

ॐनमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके।

त्रिंशेऽध्याये प्रकथ्यन्ते पशवो नरमेधिकाः ३०

इतउत्तरं पुरुषमेधः। द्वाविंशाध्यायो नारायणः पुरुषोऽपश्यत्। अतिष्ठाकाम+ ब्राह्मण राजन्य का पुरुषमेधसंज्ञक यज्ञ होता है। चैत्र शुक्लदशमी में आरम्भ है। अत्र त्रयोविंशति दीक्षा होती हैं द्वादश उपसद पञ्च सुत्या इति चत्वारिंशद्दिनों करि सिद्धि होता है। अत्र यूपैकाद

+ सर्वभूतान्यतिक्रम्यस्थानमिच्छा

श्चिनी होती है एकादश अग्नीषोमीयाः पशु होते हैं तिन्हों का प्रतियू
प वा मध्यम यूप में यथेच्छ नियोजन है॥ का० २१।१।६। एक वार लिये
आज्य करि देव सवितरिति प्रति ऋचा से तीनि ३ आहुतियें आहव
नीय में होमें॥ तत्र देव सवितः ११।७। तत्सवितुः ३।३५। द्वे व्याख्याते
१॥२॥ विश्वानि देव द्वे गायत्र्ये सवितृ देवत्ये क्रमेण श्यावाश्व ३ मेधा
तिथि ४ दृष्टे। हे देव सवितः सब पापों को दूर में चला। जो कल्याण है
हमारे प्रति आगमन करि॥३॥ हम सविता देवता को बुलाते हैं कैसे
को कि वासयितुः नाना विध धन के विभज्य दातार नरों के यथा यो
ग्य द्रष्टार को॥४॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे
शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीब
माक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय माग
धम्॥५॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणमिति द्वे कण्डिके तपसो नुवाकश्च ब्राह्मणरूपाः। अ
तः परं पुरुष मेधकाः पशवः आ अध्याय समाप्तेः। ततः प्रति यूप
एक-एक एकादशिन को नियोग करि ब्राह्मणादीनि अष्टचत्वारिं
शत्संख्य पुरुषों प्रकामोद्याधोपसदमित्यन्तों को अग्निष्ठ यूप में नि
योग करै इतर यूपों में एकादश-एकादश पुरुषों बर्णायानुरुधमि
त्यादीनि को जोडे॥ ब्रह्मणे ब्राह्मणम् तत्र ब्रह्मणे जुष्टं नियुनज्मीति
अग्निष्ठे ब्राह्मणं प्रथमं नियुनक्ति। एवमग्रे सर्वेषां यूपे एव बन्धनम्
चतुर्थ्यन्तं देवतापदं द्वितीयान्तं पुरुषपदं बोद्धव्यम्॥ ब्रह्मा के अर्थ

ब्राह्मण को नियोग करता हूं १॰ क्षत्राय राजन्यं(क्षत्रियम्)२॰ मरुद्भ्यो वैश्यम् ३॰ तपसे शूद्रम् ४॰ तमसे तस्करं(स्तेनम्)५॰ नारकाय वीरहणं(नष्टाग्निं शूरं वा)६॰ पाप्मने क्लीबं(नपुंसकम्)७॰ आक्रयायै अयोगूमयसो गन्तारम्)८॰ कामाय पुंश्चलूं(व्यभिचारिणीम्)९॰ अतिक्रुष्टाय मागधं(मगधदेशजं क्षत्रियायां वैश्यपुंसो जातं वा)१०॥५॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम्॥६॥

नृत्ताय सूतं(ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातः सूतः)११॰ गीताय शैलूषं(नटम्)१२॰ धर्माय सभाचरं(सभायां चरतीति तम्)१३॰ नरिष्ठायै भीमलं(भयकरम्)१४॰ नर्माय रेभं(शब्दकर्तारं वाचाटम्)१५॰ हसाय कारिं(करणविशिष्टम्)१६॰ आनन्दाय स्त्रीषखं(स्त्रियाः सखायम्)१७॰ प्रमदे कुमारीपुत्रं(कानीनम्)१८॰ मेधायै रथकारं(माहिष्येण करिण्यां जातम्)१९॰ धैर्याय तक्षणं(सूत्रधारम्) २०॥६॥

अ॰२॰ तपसे कौलालं मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्यायाऽइषुकारꣳ हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम्॥७॥

तपसे कौलालं(कुलालापत्यम्)२१॰ मायायै कर्मारं(लोहकारम्)२२॰ रूपाय मणिकारं(रत्नकर्तारम्)२३॰ शुभे(शुभाय)वपं(वीजवप्तारम्)

२४॰ शरव्यायै इषुकारं(वाणकर्त्तारम्)२५॰ हेत्यै धनुःकारं(चापकारिणम्)२६॰ कर्मणे ज्याकारं(प्रत्यञ्चनकर्त्तारम्)२७॰ दिष्टाय रज्जुसर्जं(रज्जुः स्रष्टारं, निर्मातारम्)२८॰ मृत्यवे मृगयुं(मृगग्राहम्)२९ अन्तकाय श्वनिनं(श्वनो नेतारम्)३०॥७॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तर्ठं सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यतायाऽअकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्॥८॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठं(पुञ्जिष्ठोऽन्त्यजः, पुल्कसस्तदपत्यम्)३१॰ ऋक्षीकाभ्यो नैषादं(निषादपुत्रम्)३२॰ पुरुषव्याघ्राय दुर्मदमुन्मत्तम्)३३॰ गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं(सावित्रीपतितम्)३४॰ प्रयुग्भ्यः उन्मत्तम् ३५॰ सर्पदेवजनेभ्यः अप्रतिपदं(प्रतीपद्यते जानातीति प्रतिपत्, अतथाविधं विकलमित्यर्थः ३६॰ अयेभ्यः कितवं(द्यूतकारम्)३७ ईर्यतायै अकितवमद्यूतकृतम् ३८॰ पिशाचेभ्यः विदलकारिणीं(वंशपात्रकारिणीम्)३९॰ यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीं(कण्टकी कर्मतत्कारिणीम्)४०॥८॥

संधये जारं गेहायोपपतिमार्त्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराद्ध्याऽएदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीर्ठं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम्॥९॥

संधये जारसुपपतिम् ४१. गेहाय उपपतिं(व्यभिचारिणम्)४२. आर्त्यै परिवित्तम्(ऊढे कनिष्ठेऽनूढम्)४३. निर्ऋत्यै परिविविदानम्(अनूढे ज्येष्ठे ऊढवन्तम्)४४. अराध्यै देव्यै एदिधिषुःपतिम्(ज्येष्ठायां पुत्र्यामनूढायामूढा एदिधिषुः तत्पतिम्)४५. निःकृत्यै पेशस्कारीं(रूपकर्त्रीम्)४६. संज्ञानाय स्मरकारीं(कामदीप्तिकरीम्)४७. प्रकामोद्याय तत्संज्ञाय देवाय उपसीदतीत्युपसत्(समीपस्थितस्तम्)४८. एतानग्निष्ठे नियुनक्ति॥ ॥अथ द्वितीये यूपे। वर्णाय अनुरुध्यते(ऽनुसरतीत्यनुरुत् तम्)१. बलाय उपदाम्(उपददातीत्युपदास्तमुपायनदातारम्) २.॥९॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामं स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम्॥१०॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं(वक्राङ्गम्)३. प्रमुदे वामनं(ह्रस्वाङ्गम्)४. द्वार्भ्यः स्रामं(सर्वदाजलक्लिन्ननेत्रम्)५. स्वप्नाय अन्धं(नेत्रहीनम्)६. अधर्माय बधिरं(कर्णेन्द्रियहीनम्)७. पवित्राय भिषजं(वैद्यम्)८. प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं(नक्षत्राणि दर्शयति, गणकम्)९. आशिक्षायै प्रश्निनं(प्रश्नवन्तम्, शुकमादिप्रष्टारमित्यर्थः)१०. उपशिक्षायै अभिप्रश्निनम्११.॥ ॥अथ तृतीये यूपे। मर्यादायै प्रश्नविवाकं(कृतान्प्रश्नान्यो विविनक्ति ब्रूते स प्रश्नविवाकस्तम्)१.॥१०॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्याय-

विपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपश्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम्॥११॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं(गजपालकम्)२॰ जवाय अश्वपं(तुरगपालकम्)३॰ पुष्ट्यै गोपालकम् ४ वीर्याय अविपालम् ५॰ तेजसे अजपालम् ६॰ इरायै कीनाशं(कर्षुकम्,कीनाशः कर्षुके यमे)७॰ कीलालाय सुराकारं(मद्यकृतम्)८॰ भद्राय गृहपं(गेहपालकम्)९॰ श्रेयसे वित्तधं(वित्तं दधातीति वित्तधस्तम् धनकर्तारम् १०॰ आध्यक्ष्याय अनुक्षत्तारं(सारथ्यनुसारिणम् ११॰॥११॥

भायै दार्वाहारं प्रभायाऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमवऽऋत्यै बधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम्॥१२॥

अथ चतुर्थे यूपे। भायै दार्वाहारं(काष्ठानामाहर्तारम्)१॰ प्रभायै अग्न्येधम् (अग्निमेधयतीति तमग्नेर्वर्धकम् २॰ब्रध्नस्य विष्टपाय (सूर्यलोकाय) अभिषेक्तारम् ३॰ वर्षिष्ठाय नाकाय(उत्कृष्टस्वर्गाय)परिवेषणकर्तारम्)४॰ देवलोकाय पेशितारम्(पेश अवयवे पिंशतीति पेशिता तम् प्रतिमाद्यवयवकर्तारम्)५॰ मनुष्यलोकाय प्रकरितारम्(कॄ विक्षेपे विक्षेप्तारम् ६॰ सर्वेभ्यो लोकेभ्यः उपसेक्तारमुपसेचनकर्तारम् ७॰ अवऽऋत्यै बधाय उपमन्थितारमुपमन्था

नकर्तारम् ८॰ मेधाय वासःपल्पूलीम् (वाससां प्रक्षालनकर्तारम्, पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयोः) ९॰ प्रकामाय रजयित्रीं (वस्त्राणां रङ्गकारिणीं नारीम्) १०॥१२॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥१३॥

ऋतये स्तेनहृदयं (स्तेनस्येव हृदयं यस्य तम्) ११॰ ॥ ॥ अथ पञ्चमे यूपे। वैरहत्याय पिशुनं (परवृत्तसूचकम्) १॰ विविक्त्यै क्षत्तारं (प्रतीहारम्) २॰ औपद्रष्ट्र्याय अनुक्षत्तारं (प्रतिहारसेवकम्) ३॰ बलाय अनुचरं (सेवकम्) ४॰ भूम्ने परिष्कन्दम् (परितः स्कन्दति रेतः सिञ्चति तम्) ५॰ प्रियाय प्रियवादिनं (मधुरभाषिणम्) ६॰ अरिष्ट्यै अश्वसादम् (अश्वारोहम्) ७॰ स्वर्गाय लोकाय भागदुघम् (भागं दुग्धे भागदुघस्तन् विभागप्रदम्) ८॰ वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ९॰॥१३॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥१४॥

मन्यवे अयस्तापमयस्तप्तं लोहतापकम् १०॰ क्रोधाय निसरं (नितरां सर्तारम्) ११॰ ॥ ॥ अथ षष्ठे यूपे। योगाय योक्तारं योगकर्ता-

रम् १ शोकाय अभिसर्तारं (संसुखमागच्छन्तम्) २ क्षेमाय विमोक्तारं (विमोचनकरम्) ३ उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम् (त्रिषु तिष्ठतीति त्रिष्ठी तम् विद्यादिषु स्थितं शीलवन्तमित्यर्थः ४ वपुषे मानस्कृतं (पूजाया अभिमानस्य वा कर्तारम् सक् छान्दसः ५ शीलाय आञ्जनीकारीम् (अञ्जनविद्याकर्त्रीम्) ६ निर्ऋत्यै कोशकारीं (खड्गाधारणं कोशस्तत्कारिणीं स्त्रियम् ७ यमाय असूम् (न सूते सा असूः ताम् वन्ध्याम्) ८ ॥१४॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाᳪ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳪ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसंधᳬ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥१५॥

यमाय यमसूं (युग्मप्रसवित्रीम्) ९ अथर्वभ्योऽवतोकां (निरपत्याम्) १० संवत्सराय पर्यायिणीम् (पर्यायोऽनुक्रमस्तद्वतीमनुक्रमज्ञाम्) ११ ॥ ॥ अथ सप्तमे यूपे। परिवत्सराय अविजाताम् (अप्रसूताम्) १ इदावत्सराय अतीत्वरीमत्यन्तं कुलटाम् पुंश्चली कुलटेत्वरी २ इद्वत्सराय अतिष्कद्वरीम् (अतिस्कन्दति स्रवति इत्यतिस्कद्वरी स्कन्देर्वन्प्रत्ययात् ङीब्रेफौ ३ वत्सराय विजर्जरां (शिथिलशरीराम्) ४ संवत्सराय पलिक्नीं (श्वेतकेशाम्) ५ ऋभुभ्यः अजिनसंधं (चर्मसंधातारम् ६ साध्येभ्यः चर्मम्नं (चर्माभ्यासकरम्) ७ ॥१५॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्तं

र्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम्॥१६॥

सरोभ्यो धैवरं(कैवर्तापत्यम्)८॰ उपस्थावराभ्यः दाशम्(दाशृ दाने दातारम् दाशो धीवरो वा)९॰ वैशन्ताभ्यो वैन्दं(विन्दो निषादापत्यम् १०॰ नड्वलाभ्यः शौष्कलं(मत्स्यजीविनम् शुष्कला मत्स्यास्तैर्जीवति तम्)११॰॥ ॥ अथाष्टमे यूपे। पाराय मार्गारम्(मृगारेरपत्यं मार्गारस्तम्)१॰ अवाराय केवर्तम् २॰ तीर्थेभ्यः आन्दम्(अदि बन्धने अदति आन्दस्तं बन्धनकर्तारम्)३॰ विषमेभ्यो मैनालम्(अल वारणे मीनानलति वारयति जालैरसौ मीनालस्तदपत्यम्)४॰ स्वनेभ्यः पर्णकं(भिल्लम्)५॰ गुहाभ्यः किरातम् ६॰ सानुभ्यः जम्भकं(जभि नाशने जम्भयतीति तम् हिंसकम्)७॰ पर्वतेभ्यः किम्पूरुषं(कुत्सितनरम्)८॰॥१६॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्याऽअपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम्॥१७॥

बीभत्सायै पौल्कसं(पुल्कसापत्यम्)९॰ वर्णाय हिरण्यकारं(स्वर्णनिष्पादकम्)१०॰ तुलायै वाणिजं(वणिगपत्यम्)११॰॥ ॥ अथ नवमे यूपे। पश्चादोषाय ग्लाविनं(ग्लै हर्षक्षये अहृष्टम्)१॰ विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं(सिध्माख्यरोगवन्तम्)२॰ भूत्यै जागर-

णं जागरूयकम्)३. अभूत्यै स्वपनं(शयालुम्)४. आर्त्यै जनवादिनं (जनान्वदति तम्)५. व्यृद्ध्यै अपगल्भम् ६. संशराय प्रच्छिदं(प्रच्छेदन कर्तारम् ७. ॥१७॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥१८॥

अक्षराजाय कितवं(धूर्तम्)८. कृताय आदिनवदर्शम्(आदिनवो दोषस्तं पश्यति तथाभूतम्)९. त्रेतायै कल्पिनं(कल्पकम्)१०. द्वापराय अधिकल्पिनम्(अधिकल्पना कर्तारम्)११. ॥ ॥ अथ द्वाप्रमे यूपे। आस्कन्दाय सभास्थाणुं(सभायां स्थिरम्)१. मृत्यवे गोव्यच्छं(गाः प्रति गमनशीलम्)२. अन्तकाय गोघातं(गवां हन्तारम्)३. क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति यः पुमान् गां विकृन्तन्तं छिन्दन्तं भिक्षमाणो याचमानः उपतिष्ठते तं याचितारं क्षुधे देव्यै आलभेत ४. दुःकृताय चरकाचार्यं(चरकाणां गुरुम्)५. पाप्मने सैलगं (सीलगो दुष्टस्तदपत्यम्)६. ॥१८॥

प्रतिश्रुत्काया अर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकं शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतो अरण्याय दावपम् ॥१९॥

[illegible]कार्य आर्तनं(दुःखिनम्)७ घोषाय भषं(जल्पकम्)८ अन्ताय बहुवादिनम् ९ अनन्ताय मूकं(वाग्विकलम्)१० शब्दाय आडम्बराघातम्(आडम्बरमाहन्ति तम् कोलाहलकर्तारम्)११ अथैकादशे यूपे। महसे वीणावादं(वीणावादनकर्तारम्)१ क्रोशाय तूणवध्मम्(तूणवं वाद्यविशेषं धमति तथाभूतम्)२ अवरस्पराय शङ्खध्मं(शङ्खवादकम्)३ वनाय वनपं(वनपालकम्)४ अन्यतोऽरण्याय दावपं(वनवन्हिपम्)५ ॥१९॥

नर्माय पुँश्चलूँ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥२०॥

नर्माय पुंश्चलूं(दुष्टां नारीम्)६ हसाय कारिं(करणशीलम्)७ यादसे शाबल्याम्(शबलः कर्बुरवर्णः तदपत्यभूतां स्त्रियम्)८ ग्रामण्यं(ग्रामनेतारम्)९ गणकं(ज्योतिर्विदम्)१० अभिक्रोशकं(निन्दकम्)११ तान् त्रीन्महसे जुष्टं नियुनज्मीति एकादशे यूपे आलभते ॥ ॥ एवं प्रतियूप एकादश-एकादश नियुक्तोंमें जे अधिक (अवशिष्ट) हैं तिन समाप्ति पर्यन्तों को दूसरे उच्छ्रित यूपमें नियुक्त करै और ते वीणावादं पणिघ्नमित्यादीनि रात्र्ये कृष्णं पिङ्गाक्षमित्यन्ताः चतुर्दश हैं ततः अथैतानष्टौ विरूपान् इत्यष्टौ और मागधादीनि चतुरः एवं षड्विंशति दूसरे यूपमें पूर्वोक्ता एकादश एवं सप्तत्रिंशत् ३७। तानेवाह। वीणावादम् पाणिघ्नं हस्ततालवादकम् तान् त्रीन् नृत्ताय आलभते ३ आनन्दाय तलवम्(वा गतिगन्धनयोः ग-

न्धनं हिंसातलं हस्तादितलं वाति वाद्यमुखं हन्ति स तलवस्तम् (वाद्यवादकम्)४॰॥२०॥

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डाल-मन्तरिक्षाय वꣳशनर्तिनं दिवे खलतिꣳ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षꣳ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥

अग्नये पीवानं(स्थूलम्)५॰ पृथिव्यै पीठसर्पिणं(पीठेनासनेन सर्पति गच्छति पीठसर्पी तं पङ्गुम्)६॰ वायवे चाण्डालं(चण्डालकर्माणम्)७॰ अन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम्(वंशेन नर्तनशीलम्)८॰ दिवे खलतिमलोमशिरस्कं खल्वाटमित्यर्थः ९॰ सूर्याय हर्यक्षं(हरितनेत्रम्)१०॰ नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं(कर्बुरवर्णम्)११॰ चन्द्रमसे किलासं(सिध्मरोगवन्तम्)१२॰ अह्ने शुक्लवर्णं पिङ्गाक्षम् १३॰ रात्र्यै कृष्णवर्णं पिङ्गाक्षम् १४॰॥२१॥

अथैतानष्टौ विरूपानालभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः॥२२॥

इति सꣳहितायांद्वितीयोऽनुवाकः२

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशाखीयायांवाजसनेयसꣳहितायां दीर्घपाठे त्रिꣳशोऽध्यायः ३०

ततः इन बक्ष्यमाण आठों विरूपों (परस्परविरुद्धरूप) पशुओं को आलम्भ करै। तानाह। अतिदीर्घ (लम्बा) १॰ अतिह्रस्व (बौना) २॰ अतिस्थूल ३॰ अतिकृश ४॰ अतिशुक्ल ५॰ अतिकृष्ण: ६॰ अतिकुल्व (रोमरहित) ७॰ अतिलोमश (सर्वाङ्गव्यापिरोम) का। ते आठों शूद्र ब्राह्मण व्यतिरिक्ता पशु होते हैं और ते आठो प्राजापत्या (प्रजापतिदेवता के) हैं†। अत्र जाति नियम से पूर्वों में जाति का नियम नही है बीणावादादय श्चतुर्दश अतिदीर्घादयोऽष्टौ एवं द्वाविंशतिः शेषाः। यथा मागधः १॰ पुंश्चली २॰ कितवः ३॰ क्लीवः ४॰ ये चारों भी शूद्रब्राह्मणव्यतिरिक्ताः प्रजापतिदेवताः पूर्वों सहित षड्विंशति हैं ते सब दूसरे यूप में नियोज्याः॥ ॥सबों के नियोगानन्तर तिन नियुक्त पुरुषों को सहस्रशीर्षा पुरुष इति ३१-१-१६ षोडशर्चे अनुवाक करि दक्षिणात उपविष्टो होतृवदभिष्टौति (होतृवदिति प्रथमोत्तमयोस्त्रिर्वचनम् ऋगन्तानां प्रणवेन संधानं च। यथा। सहस्रशीर्षा पुरुष॰—ङ्गुलो ३। पुरुष एवेद॰—॰ रोहितो ३म्। एवमभिष्टौति। ततः आलम्भन क्रमसे यथादेवत प्रोक्षणादि है। ब्राह्मणादिकों के पर्यग्निकरणानन्तर इदं ब्रह्मणे॰ इदं क्षत्राय॰ इत्येवं सबों का यथास्वस्वदेवतोद्देश करि त्याग है। ततः सब ब्राह्मणादिकों को यूपों से खोलि करि उत्सर्जन करै (छोडै)‡। ततः एकादशिनी के पशुओं से संज्ञपनादि प्रधान यागान्त वनस्पति याग करिके स्विष्टकृत से पहिले अध्वर्यु आज्य को संस्कार करि एकवार लिये आज्य को लेकर ओम् पुरुष देवताभ्यो ब्रह्मादिभ्यः आहवनीय में होमैं ओम् ब्रह्मणेस्वाहा १॰ क्ष-

† अथ उत्तमानालभत इत्युपक्रम्य ते वै प्राजापत्या भवन्तीति १३-६॰ २०॰ श्रुतेः।
‡ आश्वमेधिक आरण्य पशुओंवत् छोडे जाते हैं इन्हीं का हिंसन नहीं है।

चाय स्वाहा २॰ मरुद्भ्यः ३॰ तपसे ४॰ तमसे ५॰ इत्यादि अध्याय पर्यन्त च तुरधीत्युत्तरशतसंख्या कों १८४ के अर्थे तितनी ही घृताहुती होमिके स्विष्टकृदादि उदवसानीयान्त कर्म करि अन्तमें यजमान अयंते यो- निः ३॰१४॰ इतिमंत्रेण आत्मा में अग्नियें आरोपण करि अपश्यामत्म- मृत इति ३१॰१७–२२ षड्ऋच अनुवाक से सूर्य को उपस्थित करि पीछे अनदेखते आरण्य को जाके संन्यास करे (गार्हपत्ये अर- रणिमनु प्रहृत्याहवनीय उत्तरारणिमात्मन्नग्नी समारोप्यारण्यं व्रजेदिति शाङ्खायनोक्तेः। यदि पुरुषमेधके अनन्तर ग्राम वासेच्छा नहिं उदवसानीयान्ते सायमाहुती होम के अरण्य में अग्नी स- मारोपण करि उत्तरनारायण से अर्क को उपस्थान करि देवयज- न को आदीपन करिके घरको चले घर में आ मन्थन करि अग्नि को स्थापन करे और यथेच्छ यज्ञों को करे। अयमपि पक्षोऽस्ति। तत्पुरुषमेधानन्तरं संन्यास एव॥२२॥

इति गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्गिरिजः पुरुषः परः ३०

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्यासप्रपाला- यविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव वर्म्मोज रौक्मिणेयन्- पति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये नरमेधि- कपशुवर्णनो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३१

अथ पुरुषसूक्तानुवाकः प्रथमः १

अ॰ १ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

ॐनमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके

नरमेधोऽध्याय एष एकत्रिंशोऽयमीर्यते ३१

का॰ २१॰ १॰ ११॰ नियुक्तां ब्राह्मणमित्यादि पशुओं को सहस्रशीर्षेति षोडशर्च अनुवाक करि ब्रह्मा होतृवत् (त्रिः प्रथमा त्रिः उत्तमा इत्यादि उक्त प्रकार से) स्तुति करै॥ नारायण पुरुष दृष्टा जगद्बीज पुरुष देवत्याः षोडश ऋचः पञ्चदशानुष्टुभः षोडशी त्रिष्टुप्। ब्रह्मणे ब्राह्मणमित्याद्याः पुरुषमेधरूप परमात्मा के अवयव पूर्वाध्याय के अन्त में कहे तिन्हों का अवयवी पुरुष यहां स्तुति करिये है। अव्यक्त महदादि विलक्षण चेतन जो पुरुष- पुरुषान्न परः किंचिदित्यादि श्रुतिषु (पुरुष से नहीं है परे कोई इत्यादि श्रुति में) प्रसिद्ध सर्वप्राणि समष्टिरूप ब्रह्माण्डदेह विराजनामा है। कैसा कि सहस्रशीर्षा† (असंख्यात हैं शिर जिस के* सब प्राणियों के जे शिर हैं ते सब तिस देह के अन्तःपातित्व से तिसी के हैं यह सहस्रशीर्षत्व है- एवमग्रेऽपि। असंख्यात

* शिरो ग्रहणं सर्वावयवोपलक्षणम्।

† सहस्र शब्दो बहुत्ववाची। संख्यावाच के सहस्राक्ष इति विरोधः स्यात् नेत्रं सहस्रद्वयेन भाव्यम्।

है नेत्र जिस के†। असंख्यात हैं पाद जिस के‡। सो पुरुष भूमि (ब्रह्माण्डलोक रूपा वा पञ्चभूतों) को व्याप्त हो दशाङ्गुल परिमित देश को अत्यतिष्ठत् (अतिक्रमण करि अवस्थित) है। दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम् अर्थात् ब्रह्माण्ड से बाहिर भी सर्वतः व्याप्त हो अवस्थित यद्वा नाभि के सकाश से दशाङ्गुल अतिक्रमण करि हृदय में स्थित है – नाभि से यह कहां से पाया कि कतम आत्मेत्युपक्रम्य सोऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिरिति श्रुतेः विज्ञानात्मा का हृदय में अवस्थान है कर्मफल भोग के अर्थ अन्तर्यामी नियन्तृत्व करिके तदुक्तम् ऋक्सं॰ अष्ट॰ २ अध्या॰ ३ व॰ १७ मण्ड॰ १ अनु॰ २२ सू॰ १६४ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीतीति इति॥ स पुरुषोऽत्र देवता तथा च श्रुतिः १३·६·२·१· इमे वै लोकाः पूरयमेव पुरुषो योऽयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुष इति॥१॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥२॥

जो यह वर्तमान जगत् सो सब पुरुष ही है और जो भूत जगत् और जो भविष्य जगत् वोह भी पुरुष ही है (जैसे इस कल्प में वर्तमाना प्राणिदेहाः सब विराट् पुरुष के अवयव हैं तैसे ही भूत भविष्य कल्पों के भी द्रष्टव्य हैं इति भावः। और अमृतत्व (देवत्व) का स्वामी वोह पुरुष जिस से प्राणियों के भोग्य अन्न (फल-निमित्त भूत) करि अपनी कारण अवस्था को अतिक्रम्य परिदृश्यमान जगदवस्था

† नेत्रग्रहणं सर्वज्ञानेन्द्रियोपलक्षकम्।
‡ पादग्रहणं कर्मेन्द्रियोपलक्षकम्।

को प्राप्त होता है तिस से पुरुष है। अर्थात् प्राणियों के कर्मफलभोग के अर्थ जगदवस्था स्वीकार से नहीं है तिस का यह वस्तुत्व॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

अतीतानागतवर्तमानकालसम्बद्ध यावत् जगत है एतावान् (सर्वोऽपि) इस पुरुष की महिमा (स्वकीयसामर्थ्यविशेषविभूति) है न तु वास्तव स्वरूप है वास्तव तो पुरुष है और यह महिम्न (पुरुष) जगज्जाल से ज्यायान् (अतिशयेनाधिकः। एतदुभयं स्पष्टी क्रियते- इस पुरुष के सब भूत (कालत्रयवर्ति प्राणिजात) पादः (चतुर्थांशः) इसका अवशिष्ट (त्रिपात्स्वरूप) अमृत (विनाशरहित) वोह दिवि (द्योतनात्मक स्वप्रकाशस्वरूप) में अवतिष्ठे है इति शेषः। यद्यपि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्याम्नात परब्रह्म की इयत्ता के अभाव से पाद चतुष्टय निरूपण करने को अशक्त तथापि यह जगत् ब्रह्मरूपापेक्षा करि अल्प है इति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥४॥

जो यह त्रिपात्पुरुष संसारस्पर्श रहित ब्रह्मरूप ऊर्ध्वः उदैत् (इस अज्ञानकार्य संसार से वहिर्भूत यहां के गुणदोषों से अस्पृष्ट उत्कर्ष करि स्थित हुआ। तिस का पाद (लेशजगद्रूप) इस माया में फिरि उत्पन्न हुआ (सृष्टिसंहार करि फिरि-फिरि आता है। फिरि माया में आकर निरन्तर उदवतिर्यगादि रूप करि विविध हो व्याप्त हुआ क्या क-

रिके कि साशनानशने अभि अर्थात् अशनादि व्यवहारोपेत चेतन
प्राणिजात अशनरहित अचेतन गिरिनद्यादिक ते अभिलक्ष्य स्व-
यमेव विविध होके व्याप्त हुआ ॥४॥

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अ-
त्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तम् तदेव प्रपञ्च्यते । तिस आदिपुरु-
ष से विराट् (ब्रह्माण्डदेह) हुआ (विविध राजें है वस्तुएँ जहां इति विराट्)
विराट् देह के ऊपर उसही देह को अधि करण करि के पुरुषः (तिस देहाभि-
मानी एक एव पुमान् हुआ (अर्थात् सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स्वमाया
करि विराड् देह ब्रह्माण्डरूप को सृजि के तहां जीवरूप करि प्रविश्य
ब्रह्माण्डाभिमानी देवता आत्मा (जीव) हुआ +। किं च सो हुआ विराड्
पुरुष अतिरिक्त देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूप हुआ पीछे (देवादि जीवभा-
व से ऊपर) भूमि को सृजा इति शेषः अथः (भूमि सृजने के अनन्तर)
तिन जीवों के पुर (पूरे हैं सात धातुओं से शरीर) सृजे ॥५॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूँस्ताँश्च-
क्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥ ८॥

तिस सर्वहुत् (सब होमियें है जिस में तिस पुरुषमेध) यज्ञ से पृषदा-
ज्य (दधिमिश्रित आज्य दध्याज्यादि भोग्यजात) सम्पादित है पु-
रुष करि इति शेषः। तथा वोह पुरुष वायु देवता काः तिन (प्रसिद्ध)
पशुओं को उत्पन्न करता हुआ। तिन किन्हे कि जे आरण्याः (अर-
में हु (ए हरिणादयः) और जे ग्राम्याः (गाँव में हुए गवाश्वादयः) तिन

पशुओं को किया ॥ ६ ॥ ८ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥ ९ ॥

तिस सर्वहुत यज्ञ से ऋचाएँ और सामाएँ उत्पन्न हुईं । और गायत्र्यादीनि छन्दांसि उत्पन्न हुईं तिस से यजु उत्पन्न हुआ (ऋग्यजुः साम और छन्दों विना यज्ञ नहीं सिद्ध होते ॥ ७ ॥ ९ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥ १० ॥

तिस यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए तथा जे कोई अश्व से अतिरिक्त गर्दभादयः और अश्वतराः उभयदन्ता (ऊपर नीचे दाँत युक्त) हैं ते भी उत्पन्न हुए । तथा ह (स्फुटं) और तिस यज्ञ से गौएँ हुईं । किंच तिस यज्ञ से छेरी और भेडी हुईं । नहीं पशुओं विना यज्ञसिद्ध होता ॥ ८ ॥ १० ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥ ७ ॥

यज्ञ साधन भूत तिस पुरुष को पशुत्व समझकर यूप में बँधे को वर्हिओं से मानस यज्ञ में प्रोक्षणादि संस्कारों से संस्कार करते हुए । कैसे को कि सृष्टि से आगे हुए पुरुषत्व करि उत्पन्न को (एतच्च प्रागेवोक्तम्॰ ततोविराडजायत विराजो अधिपूरुषः इति । तिस पुरुषरूप पशुकरि देवाः पूजते (मानस याग करते) हुए कौन ते देवाः इत्यत्राह कि जे साध्याः (सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृत

य:) और जे तदनुकूला ऋषय: (मन्त्रद्रष्टार:) ते सबभी [...]
ते हुए॥९॥११॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते॥१०॥१२॥

प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टिं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते। प्रजापति के प्राणरूपा देवा जब कि पुरुष को व्यदधु: (कालकरि [...] दपादयन् तब कितने प्रकारों करि विविध कल्पना करते हुए कि इस पुरुष का मुख क्या है कौंन बाहुएँ और कौंन ऊरू हैं किं च पाद भी कौंन हैं॥१०॥१२॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत:। ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्याᳪं शूद्रोऽअजायत॥११॥१३॥

पूर्वोक्तप्रश्नोत्तराण्याह। ब्राह्मण (ब्रह्मजाति विशिष्ट पुरुष) इस प्रजापति का मुख हुआ (अर्थात् मुख से उत्पन्न। राजन्य (क्षत्रियत्व जातिविशिष्ट) बाहूकृत: (बाहुत्व करि निष्पादित:। तब इस प्रजापति के जे ऊरू तद्रूप वैश्य सम्पन्न (ऊरूओं से उत्पादित:। तथा इस के पैरों करि शूद्रत्वजातिमान् पुरुष उत्पन्न हुआ॥११॥१३॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो: सूर्योऽअजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥१२॥१४॥

यथा दध्यादिद्रव्याणि गवादय: पशव: ऋगादिवेदा: ब्राह्मणादयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्ना: एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मादेवोत्पन्ना इत्याह। मन के सकाश से चन्द्रमा हुआ चक्षुओं से

सूर्य हुआ वायु और प्राण श्रोत्र से उत्पन्न हुआ मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ ॥१२॥ ॥१४॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। प॒
द्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २॥ऽ अकल्पयन्॥१३॥ ॥१५॥

यथा प्रजापतेर्मनः प्रभृतयश्चन्द्रादीनकल्पयन् तथान्तरिक्षादिलोकानित्याह नाभ्येति॰ प्रजापति की नाभि के सकाश से अन्तरिक्ष हुआ शिरसे द्यौः (स्वर्ग) उत्पन्न हुआ। पैरों से भूमि उत्पन्न हुई श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न हुई तथा तिस(उक्त प्रकार) करि भूरादि लोकों को प्रजापति के सकाश से कल्पना करते हुए फलदानोत्सुकाः काला इति शेषः ॥१३॥ ॥१५॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासी
दाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥१४॥ ॥६॥

जब कि (पूर्वोक्तक्रम से) देव शरीर में ही देवता उत्तर सृष्टिसिद्ध्यर्थं बाह्य द्रव्य के अनुत्पन्नत्व करि मन से हविष्ट्व करि संकल्प्य पुरुषाख्य हवियों से मानस यज्ञ को विस्तारते हुए तब इस यज्ञ का वसन्त ऋतु आज्यत्व करि संकल्प करते हुए एवं ग्रीष्म इध्मत्व करि संकल्प करते हुए तथा शरद् को पुरोडाशादि हविष्ट्व करि संकल्पते हुए। पहिले पुरुष के हवि सामान्यरूपत्व से संकल्प है अनन्तर वसन्तादिकों का आज्यादि विशेषरूपत्व करि संकल्प इति द्रष्टव्यम्॥ यहां कण्डिका व्युत्क्रम है॰ इस ऋचा के अनन्तर तं यज्ञम् ९॰ फिरि तस्माद्यज्ञात् तीन्यों क्रम से ६॰ ७॰ ८॰ ततः सप्तास्यासन् १५॰ यह क्रम अपेक्षित है॥१४॥ ॥६॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्य-
ज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्॥ १५॥ ॥११॥

जब कि देवाः (प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपा) मानसयज्ञ को करते पुरुषं प-
शुमबध्नन् (विराट्पुरुषको ही पशुत्व करि भावना करते हुए। यह ही
अभिप्राय पहिले १४· पुरुषेण हविषेत्युक्तम् तब इस संकल्पित यज्ञ के
सातों गायत्र्यादीनि छन्दांसि परिधयः हुए (ऐष्टिक आहवनीय के तीनि
परिधि और उत्तर वेदिक तीनि आदित्य सातवां परिधि प्रतिनिधिरूप है +।
त्रिः सप्त ३+) ७ एकविंशति संख्याकाः समिधाएँ किईं (द्वादश महीने पां-
च ऋतुएँ ये तीनों लोक यह आदित्य इक्कीसवां इक्कीसो दारुयुक्त इ-
ध्मत्व करि कल्पना किये वा तीनि सातगुने छन्दवर्ग समिधः कृताः
गायत्र्यादीनि सप्त ७ अतिजगत्यादीनि सप्त ७ कृत्यादीनि सप्त-
ति ७॥ १५॥ ॥११॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्या-
सन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः
सन्ति देवाः॥ १६॥

पूर्व प्रपञ्चेनोक्तमर्थं संक्षिप्याह। देवाः (प्रजापतिप्राणरूपाः) यज्ञ
(यथोक्त मानससंकल्प) करि यज्ञ (यज्ञस्वरूप प्रजापति) को पूजते हुए
तिस पूजन से तिन (प्रसिद्ध) धर्मों (जगद्रूपविकारों के धारकों) प्रथ-
मों (मुख्यभूतों) को हुए। एतावना सृष्टिप्रतिपादक सूक्तभागार्थः सं-
गृहीतः अथोपासनतत्फलानुवादकभागार्थः संगृह्यते। यत्र (जि-
स विराट्प्राप्तिरूप) नाक (स्वर्ग) में पूर्वे साध्याः (पुराने विराडु-

+ तथा च श्रुतिः। त्रयो वा इमे लोकाः ... परिधयः ... अग्नीनां ... परिधयो ... सप्त परिधयः ... ॥

[illegible]क:) देवा: तिष्ठें हैं तिस विराट् प्राप्ति रूप स्वर्ग को होते महिमा-
न:(तिस के उपासक महात्मा) प्राप्त होते हैं। सृष्टे: प्रवाहनित्यतां द-
र्शयति तदुक्तम् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयदिति॥१६॥
इति पुरुष सूक्तानुवाक:प्रथम:॥१॥

अथोत्तरनारायणो मन्त्र:

अ॰ २॰ अद्भ्य: सम्भृत: पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मण: समवर्त-
ताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देव-
त्वमाजनमग्रे॥१७॥

का॰२१॰१॰१७॰१८॰ मेधातवी (उदवसानीयेष्टि:) तिस के अन्त में अ-
यंते योनिरित्यग्नि आत्मा में समारोहण करि तिस उष्माण को मु-
ख में प्रवेश करिके अद्भ्य: सम्भृत इति षड्चेनानुवाकेन सूर्य को
उपस्थित करि पीछे न देखते वन को जाकर ग्राम को न आवै अ-
र्थात् वानप्रस्थ हो। यद्वा ग्राम में वास करने को इच्छा करता अरणि-
ओं में अग्नी समारोपण करि अर्कोपस्थान के अनन्तर ग्राम में जाकर य-
ज्ञों को करे॥ इतिसूत्रार्थ:॥ अद्भ्य: सम्भृत इत्युत्तर नारायणेनादित्यमुपस्था-
येति १३॰६॰२॰२०॰षट्कण्डिका उत्तरनारायणम्। उपान्त्ये द्वे अनुष्टुभौ शे-
षास्त्रिष्टुभ: आदित्य देवत्या:। पूर्वकल्पे पुरुषमेधयाजी आदित्यरूपं प्रा-
प्त: स्तूयते। अद्भ्य:(जल) और पृथिवी के सकाश (पृथिव्यपां ग्रहणं भूतप-
ञ्चकोपलक्षकम्-पांचोभूतों) से जो रस सम्भृत (पुष्ट) तथा विश्व कर्म (का-
ल) के रस (प्रीति) से जो रस अग्र (पहिले) में हुआ अर्थात् भूतपञ्चक और
काल के सर्वो प्रति कारण होने से पुरुषमेधयाजी के लिङ्गशरीर में

पाँचो भूत तुष्ट और काल ततः तुष्टों से कोईक रसविशेष फलरूप उत्तमजन्म प्रद हुआ। तिस रस के रूप को धारण करता त्वष्टा (आदित्य) प्रतिदिन उदय करता है। अग्र (पहिले) में तिस मर्त्य (पुर्षमेधयाजी मनुष्य) का आजान (मुख्य) देवत्व है सूर्यरूप करिके। द्विविधा देवता हैं कर्मदेवाः (उत्कृष्टकर्म करि देवत्व को प्राप्ताः) और आजानदेवाः (सृष्टि की आदि में उत्पन्नाः) ते कर्मदेवाओं से श्रेष्ठ हैं +॥१७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥१८॥

इस महान्त (सर्वोत्कृष्ट) पुरुष सूर्यमण्डलस्थ को मैं जानता हूं इति ऋषेर्वचनम् कैसे कि आदित्यवर्ण (आदित्य का सा वर्ण जिस का तिस उपमान्तर अभाव से स्वोपम) तथा तम (अविद्या) से दूर (तमरहित) तिस आदित्य को जानकर मृत्यु को अतिक्रामति (परंब्रह्म को जाता है) अयन (आश्रय) के अर्थ अन्य पन्था नहीं विद्यै है (सूर्यमण्डलान्तः पुरुष को आत्मरूप जानना ही मुक्ति है॥१८॥

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१९॥

जो सर्वात्मा प्रजापति हृदय के भीतर स्थितः सन् गर्भ मध्य में प्रवेश करता है और जो उत्पद्यमानः नित्यः सन् बहुधा (कार्यकारणरूपकरि) विजायते (मायाकरि प्रपञ्चरूपेण उत्पन्न होता है) धीराः

+ ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्द इति श्रुतेः बृहदा० आ० ४·१·३३ सृष्टिपश्च आजानदेवाः॥

(ब्रह्मविदः) तिस प्रजापति के योनि (स्वरूप) को देखते (अहं ब्रह्मास्मि जानते) हैं। सब भुवन (भूतजात) तिस ही कारणात्मा ब्रह्म में स्थितहैं। अर्थात् सब तदात्मक हैं॥१९॥

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वो यो
देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

जो प्रजापति आदित्यरूप देवताओं के अर्थ प्रकाशे है और जो देवताओं का पुरोहित (सबकार्यों में नीत) है और जो देवताओं के सकाश से प्रथम उत्पन्न है तस्मै आदित्यायनमः (तिस आदित्य के अर्थ नमस्कार) कैसे कि रुचः (दीप्यमान) के अर्थ तथा ब्राह्मये (ब्रह्म के अपत्य ब्राह्मि, वा ब्रह्मावयव भूत के अर्थ॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्। यस्त्वैवं
ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥२१॥

देवाः (दीप्यमानाः प्राणाः) रुच (शोभन) ब्राह्म (ब्रह्म के अपत्य आदित्य) को उत्पादन करते हुए वोह वचन बोले। वोह क्या सत आह कि जो ब्राह्मण हे आदित्य तुझे एवं (उक्तविधिकरि) उत्पन्न जानें तिस ब्राह्मण के देवता वशी होते हैं अर्थात् आदित्योपासिता जगत्पूज्य होता है॥२१॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि
रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण
सर्वलोकं मऽइषाण॥२२॥

इति संहितायांद्वितीयोऽनुवाकः२

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेय-
संहितायां दीर्घ पाठे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

ऋषिरादित्यं स्तुत्वा प्रार्थयते। हे आदित्य श्री और लक्ष्मी तेरी पत्नि-
यें (जायास्थानीये त्वद्वश्ये) हैं। तिस करि सर्वजनाश्रणीय होता है वो-
ह श्री (श्रीयतेऽनयाश्रीः अर्थात् सम्पत्) जिस करि लखिये (देखिये) है ज-
नों करि वोह लक्ष्मी अर्थात् सौन्दर्य। अहोरात्रे तेरी पार्श्वे स्थानीये। नक्ष-
त्राणि (गगन में चलने वाले तारा) तेरा रूप (तेरे तेजसे भासें) हैं। अश्विनौ
(द्यावापृथिव्यौ+) तेरे व्यात (विकासित ॰ मुखस्थानीये) हैं। जो ईह-
पा तिस तुम्हें याचना (कर्मफल को इच्छा) करते वा अन्नेच्छा करते
सन् इच्छा करता है। कि मेषणीयं तत्राहै अमुं (परलोक) मे (मम) इ-
षाण (परलोक समीचीन हो यह इच्छा अर्थात् अमेयेच्छत्व से इष्ट
होता है। सर्वं मे (मम) इषाण (सर्वलोकात्म में होंउ यह इच्छा अर्था-
त् मुक्त होंऊ। सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति सामश्रुतेः ॥२२॥ इत्युत्तरना-
रायणोमन्त्रः ॥ ॥ समाप्तश्चायं पुरुषमेधः ॥

इतिगिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थ प्रदीपन तमो हार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देया द्विराज पुरुषः परः ३१

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयवि-
श्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव वर्म्मात्मज रौक्मिणेय नृपति
गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये पुरुषमेध प्रकरणे पु-
रुष सूक्तानुवाक सूर्योपस्थान वर्णनो नामैक त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

+ अश्नुवाते व्याप्नुतस्तौ अश्विनौ। अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ इमेह वै सर्वमश्नुवाता-
मितिश्रुतेः।

प्रसिद्ध पत्र

विदित हो कि उक्तभाष्य महद्ग्रन्थ है इसहेतु विद्वानों के घर शीघ्र पहुंचने के अर्थ २०० पृष्ठ का खण्ड बांधा न्योछावरि प्रथम ३) प्रति खण्ड का डाक महसूल मगाने वाले को देना होगा और उक्त भाष्य के ६ खण्ड होंगे विद्वानों को उचित है कि पूर्ण पुस्तक की न्योछावर प्रथम देवें आगें जो इच्छा शुभ भवतु ॥

श्रीशुक्लयजुषि

माध्यन्दिनीयाशाखीयावाजसनेयसंहिता

श्रीव्याघ्रपादान्वयगिरिप्रसादवर्मरचित

श्रीवेदार्थप्रदीपाख्यगिरिधरभाष्यसहिता

खण्ड ६

चिरञ्जीवगरुडध्वजेनलिखिता

वेशमेतिप्रसिद्धिंगतेऽतिप्राचीनेविश्वामित्रपुरीयनवलाख्यदुर्गस्थ

व्याघ्रपादप्रकाशकाश्मयन्त्रालये

पण्डितद्वारकानाथशर्मणोऽधिकारान्मुद्रिता

संवत् १९३० शाका १७९५ ई॰सन् १८७४

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

अथ सर्वमेध मन्त्राः स्वयम्भुब्रह्मदृष्टाः

पञ्चात्मकं हि रूपं च साधनैर्बृह्म रूपकम्

स्वानंददायकं कृष्णां ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३२

अ॰१॰ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शु-
क्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

सार्वमेधिकमन्त्रोक्तिर्द्वात्रिंशोऽध्याय ईर्यते ३२

एकत्रिंशे पुरुषमन्त्रा उक्ताः। अथ सर्वमेधमन्त्रा उच्यन्ते प्रवायुमच्छेत्यस्मात्प्राक् ३३।५१ स्वयम्भुब्रह्मदृष्टाः आत्मदेवत्याः सप्तमेऽहनि आप्तोर्यामसंज्ञिके सर्वहोमे विनियुक्ताः आप्तोर्यामः सप्तममहर्भवतीत्युपक्रम्य सर्वं जुहोति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै इति श्रुतेः १३।७।१।८॥ द्वे अनुष्टुभौ। विज्ञानात्मा परेणात्मना विशिष्टोऽग्न्यादिष्वोतप्रोततत्वेनोपास्योऽभिधीयते। अग्निः तदेव कारण है (ब्रह्मैव) आदित्य वोहही है वायु वोही है तैसे ही चन्द्रमा। शुक्र प्रसिद्ध। ब्रह्म (त्रयीलक्षण) ब्रह्मैव। प्रसिद्धाः जलानि प्रसिद्ध प्रजापति भी वोह ही ब्रह्म है॥१॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि। नैनमूर्ध्वं
न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्॥२॥

सर्वे निमेषाः त्रुटिकाष्ठा घटी आदिक कालविशेष अधिपुरुष के स काश से उत्पन्न हुए। कैसे पुरुष से कि विशेषेण प्रकाशमान। किंच कश्चिदपि इस पुरुष को ऊपरि भाग में नहीं परिगृह्णाति॰ ग्रहण करता। न इसे चारों दिशा में न परि॰ मध्यदेशमें भी नहीं ग्रहण करता अर्थात् यह प्रत्यक्षादिकों का विषय नहीं है +जग्रभत्॰ ग्रहे॰ शतरि जुहोत्यादित्वेन रूपम्॥२॥

+स एष नेति-नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यत इति श्रुतेः

नतस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः॥३॥ +न-श।अ॰।हि-ष।इ॰॥३॥

द्विपदा गायत्री। तिस पुरुष का प्रतिमा (प्रतिमान॰ उपमान) कोई वस्तु नहीं अत एव नाम (प्रसिद्ध) बडा यश जिसका अर्थात् सर्वातिरिक्तयशा है॥ हिरण्यगर्भ इत्येषोऽनुवाकश्चतुर्ऋचः। हिरण्यगर्भः॰ यः प्राणतः॰ यस्येमे॰ य आत्मदा॰ इति २५.१०-१३.। मा मा हिंसीज्जनितेत्येका एषा १२.१०२.। यस्मान्न जातः॰ इन्द्रश्च सम्राडिति ८.३६.३७. द्व्यृचोऽनुवाकः। एताः प्रतीकचोदिताः पूर्वं पठितत्वात्प्रतीकमात्रेणोक्ताः ब्रह्मयज्ञे (जपे) च सर्वा अध्येयाः। एवं सर्वत्र॥३॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भेऽअन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥४॥

+ [illegible]

चतस्रस्त्रिष्टुभः। यह प्रसिद्ध +देव सब दिशाओं को व्याप्त होस्थित है। हे मनुष्यो यह प्रसिद्ध प्रथम उत्पन्न है। गर्भ के मध्यमें

वोह ही स्थित है। और वोह ही उत्पन्न है। और वोह ही उत्पत्स्यमाण है। प्रत्यङ् (प्रति पदार्थ) को अञ्चन करता है। सर्वतःमुखाश्चव अव जिस के (अचिन्त्य शक्ति है॥४॥

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥५॥

जिस से पहिले कुछ भी न हुआ और जो सब भूतजातों को समन्ताद्भावयामास। वोह षोडशावयवलिङ्ग शरीरी प्रजापति प्रजाकरि रममाण तीनि ज्योतिएँ (सूर्यचन्द्र अग्निरूपी) सेवन करता है॥५॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥६॥

जिस पुरुष ने द्यौ उद्गूर्ण वृष्टि का देनेवाला किया इतिशेषः। और तिस ने पृथिवी दृढ की (सब प्राणियों का धारण वृष्टि का ग्रहण और अन्ननिष्पादन यह भूमि की दृढता है। जिसने आदित्य मण्डल को थांभा और जिसने स्वर्ग थांभा। जो अन्तरिक्ष (नभ) में जल (वृष्टिरूप) का निर्माता। तिसे छोडि किस देवता के अर्थ हवि देते हैं अर्थात् किसी के अर्थ नहीं॥६॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम। आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदापः॥७॥

क्रन्दसी (द्यावापृथिवीएं) जिस पुरुष को मन कार साधुकम यहदेख
तीं हुई केसी हैं क्रन्दसी कि अवसा॰ हविर्लक्षण वृष्टिजन अन्नकरि
प्राणिजात को थांभतीं। शोभमान हैं। सूर्यजिन द्यावा पृथिवीओंसे
उदित हो अधिक प्रकाशता वा शोभता है तिसे छोडि किस देवता के
अर्थ हवि देते हैं॥ आपो ह यद्बृहतीः २७.२५ यश्चिदापः २७.२६ इे प्रती
कोक्ते जपादावध्येये॥७॥

अ॰ २॰ वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनी
डम्। तस्मिन्निद॑ꣳ सं च वि चैति सर्व॑ꣳ स ओतः प्रो
तश्च विभूः प्रजासु॥८॥

वेनः (विदितवेदान्तरहस्यः पण्डितः) तत् (ब्रह्म) को देखता (जानता) है।
कैसे तत् को कि गुहा (रहःस्थान) में स्थापित बुद्धीं प। सत् (नित्य) जि
स ब्रह्म विषें विश्व (कार्यजात) एकनीड (एक ही है आश्रय जिस का
अर्थात् अविभक्तमविशेष कारणमेव) होता है। तिस ब्रह्म में यह
भूतजात संहार समय जाता और सर्ग काल में निकलता है। सोपर
मात्मा प्रजाविषें ओत और प्रोत (ऊर्ध्वतुन्तुमें पट जेसे शरीर भावक
रि ओत॰ तिर्यक्तन्तु में पट जैसे प्रोत) है। कैसा है कि विभूः (कार्यका
रण रूपेण विविध होता है) सब वोह ही है॥८॥

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा स
त्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स
पितुः पिता सत्॥९॥

गंधर्व (वेदवाचाको विचार करनेवाला॰ वेदान्तवेत्ता) विद्वान् (पण्डित)

क्षिप्र अमृत (शाश्वत) तत् (ब्रह्म) को प्रकृष्टेन कहै गुहा विषें विद्यमान धाम (स्वरूप) विभृत (सर्गस्थिति प्रलय रूपसे विभक्त। किं च इस अमृत के तीनि पद (स्वरूप) गुहाविषें निहित हैं (तीनिपद सर्गस्थिति प्रलय वा ३ वेद ३ काल वा ब्रह्म अन्तर्यामी विज्ञानात्मा। किं च जो तीनि पदों को जानता है वोह पिता (परब्रह्म) ही होता है॥९॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥१०॥

वोह परमात्मा हमारा बन्धुवन्मान्य है उत्पन्न करने वाला और वोह धारण करनेवाला। वोह सब भूतजातों और स्थानों को जानता। अग्न्यादिक देवता तीसरे स्थान (स्वर्ग) में स्वेच्छया वर्त्ते हैं। कैसे हैं देवता कि अमृत (मोक्षप्रापकज्ञान) को जिस ब्रह्म विषें व्याप्त हुए भाव यह है कि ब्रह्मनिष्ठज्ञान को प्राप्त हुए स्वर्ग में देवता मोदते हैं॥१०॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश॥११॥

इदानीं सर्वभूतेष्वहमस्मि सर्वाणि भूतानि मयीति ज्ञानवतः सर्वमेधयाजिनो मुक्तिरुच्यते। किं च सर्वमेधग्रहोऽपि न ज्ञानं प्रधानम् ब्रह्मज्ञानवतो यजमानस्याग्निहोत्रादयोऽपि यज्ञाः सर्वमेधा एवेत्याह परीत्य भूतानीति कण्डिकाभ्याम्॥ एवं ज्ञानवान् सर्व मेधयाजी आत्मा (जीवरूप) करि ऋत (यज्ञ) के आत्मा (अधिष्ठा-

तार (परमात्मा) को प्रवेश करता अर्थात् ब्रह्मही होता है। क्या करिके कि सब भूतों को ब्रह्मत्वेन जानि। सब दिशा और विदिशाओं को तद्रूपा जानि के। प्रथमोत्पन्ना (त्रयीरूपावाचा) को उपस्थित हो (संसेव्य) अर्थात् यज्ञादि करि के। अपि हि तस्मात्पुरुषाद्ध्येव पूर्वमसृज्यते ति श्रुतेः प्रथमा वाक् वेदरूपा ॥११॥

परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्य इ॒त्वा परि॑ लो॒कान्परि॒ दिशः॒ परि॒ स्वः᳚। ऋ॒तस्य॒ तन्तुं॒ वित॑तं वि॒चृत्य॒ तद॑पश्य॒त्तद॑भव॒त्तदा॑सीत् ॥१२॥

सर्वमेधयाजी तत् (ब्रह्म) को देखता है ब्रह्म ही होता वास्तव्य से ब्रह्म ही है। भाव यह है कि अज्ञान निवृत्ति देखना और होना है। क्या करि के कि द्यावापृथिवी सद्यः तद्रूपेण जानि कर लोकों दिशाओं और आदित्य को तद्रूपे॰। गुह्यं वस्तु पुनः-पुनः कथितं चिन्तमारोहतीति पुनरुक्तिः। ऋत (यज्ञ) के तन्तु (कर्त्तव्यता) को जैसे प्रसारा तैसे समाप्त करि अर्थात् यज्ञ करि के ॥१२॥

सद॑स॒स्पति॒मद्भु॑तं प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म्। स॒निं मे॒धाम॑यासिष॒ꣳ स्वाहा॑ ॥१३॥

इत उत्तरमृक्चतुष्ट्ये मेधा याच्यते चतुर्थ्यां श्रीर्याच्यते। प्रथमा गायत्री लिङ्गोक्तदेवता। अग्नि द्रव्यदान और मेधा को याचना करता हूं। कैसे अग्नि को कि यज्ञगृह के पति अचिन्त्यशक्ति इन्द्र के मित्र धनमेधार्थियों करि कामनीय ॥१३॥

यां मे॒धां दे॑वग॒णाः पि॒तर॑श्चो॒पास॑ते। तया॒ माम॒द्य मे॒-

† तदेव सन्तत्तदु तद्भवामीति श्रुतेः ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येतीति श्रुतेश्च ब्रह्मरूपस्य जीवस्याज्ञाननिवृत्तिरेव ब्रह्मप्राप्तिरित्यर्थः।

अथाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥

अनुष्टुप्। हे अग्ने तिस मेधा से आज मुझे मेधावी (बुद्धियुक्त) करि स्वाहा सुहुतमस्तु। तिस किस से कि जिस मेधा को देवताओं के समूह और पितर पूजते हैं। अर्थात् देवपितृमान्या बुद्धि हमारे को हो॥ १४॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

लिङ्गोक्त देवतानुष्टुप्। वरुण मेरे अर्थ मेधा देवे अग्नि और प्रजापति मेरे॰ देवें इन्द्र और वायु मेधा को देवें धाता मेरे॰ स्वाहा सुहुतमस्तु॥ १५॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ १६ ॥

इति सᳫँहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेय सᳫँहितायां दीर्घ पाठे द्वात्रिᳫँशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मन्त्रोक्त देवतानुष्टुप्। श्री कामोऽनयाश्रियं याचते। ब्राह्मणजाति क्षत्रियजाति ये दोनों मेरी श्री को सेवन करें। देवता मेरे विषे उत्तमा श्री को स्थापन करें। प्रसिद्धा तुम श्री के अर्थ सुहुत हो। श्री मेधे विना यज्ञासिद्धेस्ते प्रार्थ्येते॥ १६॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्।
पुमार्थांश्चतुरो देयात्स्वयंब्रह्मसनातनः ३२

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वयवि श्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जय किशोर देव वर्म्मात्मज रैकिमणेय नृ पति गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधर भाष्ये गिरिप्र साद सर्वस्वे सर्वमेध वर्णनो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२॥

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्द दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः ३३

अ॰ १॰ अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासोऽअग्नयः पा वकाः। श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वा यवो न सोमाः॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन त्रयस्त्रिंशः प्रदीपके

सर्वमेधो ब्रह्मयज्ञारम्भान्तोऽध्याय ईर्यते ३३

सर्वमेधेऽग्निष्टोम संस्थेऽग्निष्टुत्संज्ञे प्रथमेऽहनि अस्याजरासइ त्याद्या मह्यो अग्ने इत्यन्ताः सप्तदश ऋचोऽग्निदेवत्याः पुरोरु चो भवन्ति। पुरोरुक्शब्देन ऋग्रूपा ग्रहणमन्त्रा उच्यन्ते न य जूरूपाः ऋग्घि पुरोरुगिति श्रुतेः। उक्थ्य महा वैश्व देव पात्नी वत हरियोजनेषु यजूरूपे ग्रहणमन्त्रे सत्यपि तं वाऽअपुरो रुकं गृह्णातीति श्रुतेस्तत्र न दोषः अत एवाग्नेयीभिर्ऋग्भिरेव स्त

निवर्त्यन्ते नोपयामादीनि॥ ॥आद्ये द्वे ऐन्द्रवायवग्रहस्य पुरोरुचौ। वत्सप्रीदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप् आ वायवित्यस्याः ७॰७॰स्थाने। इस यजमान के अग्न्यय: ऐसे हों कैसे कि अजरास:(वार्द्धक्यहीना:) दमामरित्रा घरों के रक्षका:(अरित्रा:वैरियों से त्राण करनेवाले यद्वादमामरित्रा: दमनीय-राक्षसों से तारका:। अर्चनीय धूमोपलक्षिताज्वाला जिन्हों की ते अर्चद्धूमा:) पावका:(सोधका:। श्वितीचय:(यजमान का उज्ज्वलत्व बढाते। श्वात्रास:(क्षिप्रफलप्रदा:। भरणकर्तार:) वनर्षद:(बन-काष्ठ में स्थित:। वायु-इव दीप्तार:। सोमा-इव यजमानेष्टदा:॥१॥

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नय:॥२॥

गायत्री विरूपदृष्टा इन्द्रवायू इत्यस्याः ७॰८॰ स्थाने। अग्नय: पृथक्(नानाप्रकारेण) स्वर्ग चलने को यत्न करते हैं। कीदृशा: कि हरितवर्णा:। धूमकेतव:(धूमएव ज्ञापक जिन्हों का ते+। वातजूता:(वात करि प्रसार जिन्हों का ते॥ आ वायो इन्द्रवायू इमे ७॰ ७॰८॰ अनयो: स्थाने एते द्वे उक्ते॥२॥

+पथ धूमसन्धानिनिगिरि ज्ञाप्ये:

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ २॥ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम्॥३॥

गायत्री गोतमदृष्टा मैत्रावरुणस्य पुरोरुक् अयं वामित्यस्याः ७॰९॰ स्थाने। हे अग्ने हमारे मित्रावरुणा यजि। देवताओं को यजि। वडे यज्ञ को यजि। अपने गृह की यजि॥३॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ २॥ऽअश्वाँ॥ऽअग्ने रथीरिव।नि
होता पूर्व्यः सद॥४॥

आश्विनग्रहस्य पुरोरुक् या वां कशेत्यस्याः स्थाने ७·११·व्याख्यातेयम् १३·३७॥४॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेऽअन्यान्या वत्समुपधापये
ते। हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रोऽअन्यस्यां
ददृशे सुवर्चाः॥५॥

शुक्रग्रह पुरोरुक् कुत्सदृष्टा त्रिष्टुप् तं प्रत्नथेत्यस्याः ७·१२·स्थाने। द्वे राज्यहनि निरन्तर प्रवर्ते हैं। कीदृशे कि विविध रूप जिन्हों के कृष्ण रात्रिः शुक्लं अहः। स्वर्थे (कल्याणप्रयोजने। अन्यान्या (अन्या और अन्या) वत्स को उपधापयेते (क्षीरपिलाती) अर्थात् अन्या (एक) रात्रि वत्स (अग्नि) को उपधापयते। अन्या दिवसरूपा वत्स (आदित्य) को उप०*। किं च तदेवाह अन्यस्यां (रात्रिमें) हरिः (हरितवर्ण अग्नि) अन्नवान् होता है दिनमें शुक्ल आदित्य शोभन तेजा दीप्त होता है। यद्वा द्वे द्यावा पृथिव्यो अग्निर्भूमौ स्वधावान् रविर्दिवि सुवर्चा दृश्यते॥५॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्व
रेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं
विभ्वं विशेविशे॥६॥

मन्थिग्रह पुरोरुक् अयं वेन इत्यस्याः ७·१६·स्थाने। व्याख्याता ३·१५·॥६॥

* अन्हि सूर्य देवत्वमग्नि होत्रम्।

+ रात्रावग्निरेवस्वामन्निहोत्रम्।

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा ऽआदिद्धोतारं न्यसादयन्त॥७॥

विश्वामित्रदृष्टा त्रिष्टुप् विश्वदेव देवतस्याग्रयणग्रहस्य पुरोरुक् ये देवास इति ७॰१९॰ स्थाने। त्रीणि शतानि त्रीणि सहस्राणि त्रिंशत् और नव देवाः यथा ३३३९। एते वस्वादिगण देवा अग्नि को परिचरते हैं। यद्वागमोक्ता देवाः नवैवाङ्कास्त्रिवृद्धाः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः। के ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदत इति ते च ३३३ ३३३ ३३३ एतावन्तो भवन्ति। कथं परिचरन्ति तदाह ते घृत करि अग्नि कों सींचते अस्मै (इस अग्नि के अर्थ) वर्हिः आच्छादन करते अनन्तरमेव होता को वरण करिके होत्रकर्म में विठलाते हैं। घृत सेचनवर्हिःस्तरणहोतृवरणमेवाग्निपरिचर्येतिभावः॥७॥

मूर्धानं दिवो ऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽआ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥८॥

प्रकृतिवदेव ध्रुवग्रहपुरोरुक्। व्याख्याता ७॰२४॥८॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः॥९॥

गायत्री भरद्वाजदृष्टा ऐन्द्राग्नग्रहपुरोरुक् इन्द्राग्नी ऽआगतमित्यस्याः ७॰३१॰ स्थाने। अग्नि पापों को अत्यन्त नाश करता है। किससे कि विविधा पूजा करि। कैसा अग्नि कि हविर्लक्षणधन को इच्छा

करता। दीप्त। शुद्ध। निमन्त्रित॥९॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिः॥१०॥

गायत्री मेधातिथिदृष्टा वैश्वदेवग्रहपुरोरुक् श्रीमासश्चर्षणीत्यस्याः ७·३३· स्थाने। हे अग्ने विश्वेदेवाओं इन्द्र और वायु सहित सोम मय मधु को पी। कैसा है तू कि मित्र के धामोंकरि स्तुत इति शेषः +॥१०॥

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके। अग्निः शर्धमनवद्यं युवानꣳ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च॥११॥

त्रिष्टुप् शक्तिसुतपराशरदृष्टा मरुत्वतीयग्रहपुरोरुक् इन्द्र मरुत्व इत्यस्याः ७·३५· स्थाने। जब कि तेज का हेतुभूत हवि नृपति (यजमान के पालक अग्नि) को व्याप्त होता है अर्थात् जब अग्नि में हवि होमिये है तब अग्नि रेत (जगद्बीजभूतजल) को द्यौ के समीप अन्तरिक्ष में उत्पन्न करता है और मेघरूपेण पुरः वृष्टि द्वारा करि क्षरता है। कैसा तेज कि वृष्टि के अर्थ देवतोद्देश करि अग्नि में हुत। शुचि (मन्त्र संस्कृत। कैसा रेत कि शर्द्ध (बलहेतुभूत) अनवद्य (निर्दोष प्रशस्य। युवतुल्य (परिपक्करस) दृढ। स्वाध्य (चिन्तनीय) सब दृष्टिको चाहते हैं। अर्थात् हवि करि तर्पित अग्नि अष्टमास करि जलको निष्पादन करिके वर्षा में वर्षता है। व्यवहित पदो मन्त्रः॥११॥

अग्ने शर्धं महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि

+ त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः। त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय॥ इत्यादिश्रुतेः॥

सन्तु। सं जास्पत्यं सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभि-
तिष्ठा महांसि॥१२॥

त्रिष्टुप् अत्रदुहिता विश्ववाराहष्टा द्वितीयमरुत्वतीयपुरोरुक् मरुत्वन्तं वृषभमित्यस्याः ७·३६·स्थाने। हे अग्ने तू बल को प्रकट करि किस लिये कि बडे सौभाग्य(लोकस्थिति) के अर्थ। तेरे उदय होते द्युम्न (हविर्लक्षण अन्न वा यश) उत्कृष्ट हों। किं च जास्पत्य(जायापत्य पत्नीयजमानरूप) को सुयम(जितेन्द्रिय मन्योन्याबद्धराग) करि। किं च शत्रुत्व को इच्छा करते औं तेजवानों को पराभव दे॥१२॥

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने। इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः॥१३॥

त्रिष्टुब्भरद्वाजहष्टा माहेन्द्रग्रहपुरोरुक् इन्द्रो नृवदित्यस्याः ७·३८·स्थाने। हे अग्ने हम तुझे वरण करते हैं कैसे तुझे कि अतिगम्भीर किन्हों से कि अर्कशोकैः(अर्कवत् दीप्त मन्त्रों अविप्लुत ब्रह्मचर्य करि यथोक्त अधीतों से। क्यों कि हमारे स्तोत्र को तू सुनता है। किं च नृतमाः(मनुष्यश्रेष्ठाः) तुझ देवता को हविरूप अन्न करि पूरण करते हैं। कैसे तुझे कि बल करि इन्द्र जैसे और वायु जैसे स्थिन को॥१३॥

त्वेऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः। यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम्॥१४॥

द्वे बृहत्यौ आदित्यग्रहपुरोरुचौ आद्या वसिष्ठहष्टा अन्या प्रस्क-

एवहष्टा कदाचन स्तरीरसि कदा चन प्रयुञ्छसीत्यनयोः ८·२·३·
स्थाने। हे स्वाहुत(सुष्टुहूयते)हे अग्ने जनों के मध्य में जनाः गौओं
सम्बन्धि दुग्ध दधि घृत सहित अन्नविशेषपुरोडाशादिकों को देते हैं।
ते पण्डिताः तेरे प्यारे हैं। कैसे हैं ते कि निगृहीतेन्द्रियाः अनवन्तः॥१४

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः। आ
सीदन्तु बर्हिषि मित्रो ऽ अर्यमा प्रातर्यावाणो ऽ अध्व
रम्॥१५॥

हे श्रुत्कर्ण+देवताओं सहित तू यज्ञ को सुनि। कैसे देवताओं कि वह्नि
ओं से हवियों को वहाते तिन्हों करि। साथ चलने वालों। किं च मित्र अ
र्यमा और प्रातर्यावाणः(प्रातःकाल हवि को प्राप्त होते हैं ते- प्रातःस
वन में जिन्हों की हविः प्राप्त है॥१५॥

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणा
म्। अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृडीको भवतु
जातवेदाः॥१६॥

त्रिष्टु बौतमहष्टादित्य गृहदधिश्रयणे विनियुक्ता यज्ञो देवानामित्य
स्याः ८·४·स्थाने। अग्नि ऐसा हो कैसा कि सब देवताओं के मध्य में अ
दितिः(नहीं है खण्डन जिसका- अदीन) कैसे देवताओं कि यज्ञार्ह।
तथा सब मनुष्यों के पूज्य देवताओं के हविर्लक्षण अन्न को परिव
रण करता। सुमृडीकः(शोभन सुख जिससे। जातवेदाः॥१६॥

महो ऽ अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे
स्वस्तये। श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो

+ शृणुतः शृणुतो अर्थिवचः श्रोतारौ कर्णौ यस्य स श्रुत्कर्णः॥

ऽपच्या वृणीमहे॥१७॥

लुशोधानाकदृष्टा त्रिष्टुप् सावित्रग्रहपुरोरुक् वाममद्येत्यस्याः ८·६·स्थाने। देवताओं के तिस हविर्लक्षण अन्न को हम संस्करते हैं। क्व सति कि सूर्य की आज्ञा में+। कैसी आज्ञा कि श्रेष्ठ (अन्यदेवताओं की आज्ञा से सूर्य आज्ञा उत्कृष्टा। कैसे हम कि अग्नि मित्र बरुण के आश्रय में अपराधरहिता। कैसे अग्नि कि पूज्य दीप्यमान के॥१७॥ अग्निष्टुत्संज्ञं प्रथममहः समाप्तः॥ ॥

अ॰ २· आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त
ऽइन्द्र। याहि वायुर्न नियुतो नोऽअच्छा त्वं हि धी
भिर्दयसे वि वाजान्॥१८॥

इन्द्रस्तुदुक्थ्यो द्वितीयमहर्भवति तस्यैन्द्राग्रहा भवन्त्यैन्द्र्यः पुरोरुचः सर्वमैन्द्रमसदिति सर्वमेधे श्रुतिः १३·७·१·४·।ततः इन्द्रस्तुत्संज्ञे उक्थ्यसंस्थे सर्वमेधस्य द्वितीयेऽहनि आपश्चिदित्यादि इमा तऽइत्यन्ता द्वादश ऋचः तं प्रत्नथा अयं वेनः महां इन्द्रः कदा चनस्तरीः कदा चन प्रयच्छसीति पञ्च प्रतीकोक्ताः एवं सप्तदशैन्द्र देवत्याः ऐन्द्रवायवादिसावित्रान्तानां ग्रहाणां ग्रहणमन्त्राः॥ ॥वसिष्ठदृष्टात्रिष्टुप् ऐन्द्रवायवस्य पुरोरुक् आ वायो इत्यस्याः ७·७·स्थाने। हे इन्द्रः ऋत्विजतेरे यज्ञ को व्याप्त होतेहैं। आपः चित् (निग्राभ्यारूप जलभी सोम को बढ़ातीहैं। तत्र दृष्टान्तः स्तर्यो गावो न (जैसे सोम सवन कराने वाली वेदरूपा वाणी सोम को बढ़ाती हैं तैसे जल भी। अत एव तू हमारे अभिमुख प्राप्त हो कि जैसे वायु अपने नियुतों (अश्वों) करिसं सुख आताहै। क्योंकि

तू बुद्धियों वा कर्मों करि अन्नों को विविध देता है अत एव आगमन करि॥१८॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया॥१९॥

तिस्रो गायत्र्यः आद्या पुरुमीढाजमीढदृष्टा ऐन्द्रवायवस्य द्वितीया पुरोरुक् इन्द्रवायू इत्यस्याः ७. ८. स्थाने। गाव उच्यन्ते हे गौओ अवत (कूप[+] चात्वालरूप) के समीप में प्राप्तहोओ (दानार्थम् चात्वालान्तरेण गवां संचरोऽस्ति। को हेतुरागमने तत्राह मही (महत्यौ द्यावापृथिव्यौ) यज्ञ की रूप देनेवाली हों (शोभाकरें इति तुम आओ। किंच तुम्हरे दोनों कर्णौ हिरण्मयौ अत एव दानार्थं आओ इत्यर्थः॥१९॥

+ अवत इति कूपनाम निघ॰ ३.२३.

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रोऽअर्यमा। सुवाति सविता भगः॥२०॥

वसिष्ठदृष्टा मैत्रावरुणपुरोरुक् अयं वामित्यस्याः ७. ९. स्थाने। आज सूर्य उदिते सति मित्र अर्यमा सविता और भग जो प्रेरता है सो कर्म करे इति शेषः। नहीं है अपराध जिस का वोह अनागा इति चतुर्णां विशेषणम्॥२०॥

आ सुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम्। रसा दधीत वृषभम्। तं प्रत्नथायं वेनः॥२१॥

सुनीतिदृष्टाश्विनपुरोरुक् या वामित्यस्याः ७. ११. स्थाने। रसा (नदी) वृषभ (वर्षितार सोम) को पुष्ट करती है[+]। तिस सोम के

+ नदीसमीपे हि सोमोत्पत्तेः॥

अभिषुत होंने में समन्तात् सींचौ चमसों में इति शेषः ऋत्विजः प्रति वचन मेतत् । कैसे वृषभ कि पृथिवी के आश्रय को है । सर्वतः शोभाजिस की तिसे ॥ तं प्रत्नथा· अयंवेनः· द्वे प्रती कोक्ते शुक्र मन्थिनो आक्ते ७·१२·१६· पुरोरुचौ ॥२१॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः । महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥२२॥

विश्वामित्र दृष्टाग्रयणपुरोरुक् ये देवास इत्यस्याः ७·१९· स्थाने । इन्द्रस्य वृष्टिकर्मोच्यते । विश्वेदेवाः समन्तात्स्थित इन्द्र को परि रक्षतवन्तः । सो इन्द्र सर्वतः चलता है । कैसा है कि श्रियो वसानः (देवताओं की दीप्ति आच्छादन करता) स्वरोचिः (अनन्याधीन दीप्तिः) किं च विश्वरूपः (विश्व को निरूपण करता इन्द्र) जिस कारण जलों को आस्थितवान् वृष्णः (इन्द्र) का वोह प्रसिद्ध नाम वासवो वृत्रहा इत्यादि । कैसे वृष्ण कि असुर (प्राणवान· सावधान· प्रज्ञावान) का ॥२२॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे । इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥२३॥

सुचीक दृष्टा त्रिष्टुप् ध्रुवग्रहपुरोरुक् मूर्धानमित्यस्याः ७·२४· स्थाने । हे ऋत्विजो तुम विश्वानर (सबयजमान जिसकेतिस) के अर्थ पूजा करो कैसे कि वड़े के अर्थ । तुम्हारे हविरूप अन्नकरि मोदमान के । विश्वभू (सर्वव्यापि वा सब होता है जिस से तिस के । किं च द्यावापृथिवी जिसके

न्द्र की इन पदार्थों से पूजा करते हैं किन्हों से कि शोभन यश कर बडा यश और धन। अर्थात् जिस की द्यावाभूमी मरवादिकों से मान ता करते हैं तिसे पूजो ॥२३॥

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः। येषामिन्द्रो युवा सखा॥२४॥

त्रिशोकदृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्नपुरोरुक् इन्द्राग्नी इत्यस्याः ७॰३१॰ स्थाने। युवा(समर्थ) इन्द्र जिन यजमानों का सखा है इन्हों का इन्द्रम हानेव होता है। शस्त(शस्त्र) भूरि(बहुत) स्वरुः(खड्ग) पृथुः(विशाल। अ त्र बाहुल्यमाशास्यत इत्यर्थः॥२४॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा॥२५॥

मधुछन्दोदृष्टा गायत्री वैश्वदेवपुरोरुक् ओमास इत्यस्याः ७॰२३॰ स्थाने। हे इन्द्र आगमन करि आके हविर्लक्षण अन्न और सो मांशुओं करि तृप्त हो। कैसा है तू कि तेज करि श्रेष्ठ। अभियष्टव्य॥२५॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः। अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥२६॥

विश्वामित्रदृष्टा त्रिष्टुप् प्रथममरुत्वतीयपुरोरुक् इन्द्र मरुत्व इत्यस्याः ७॰३५॰ स्थाने॥ इन्द्र वृत्र(दैत्य) को युद्ध के अर्थ ढक्का हुआ। मायावी दैत्यों का मारता है। व्यंसमहन् (दुष्ट को मारता है) तिसे कहा कि वनों में अर्थात् वनस्थों को मारता है। राम्या

एनं येना आविः अकृणोत् (यजमान स्तुति करते हैं यह देवताओं में प्रकट करता है। कैसा है इन्द्र कि शार्धनीतिः (चतुरङ्ग बल में नीति: जिस की। वर्पनीतिः (नाना रूपधारी। उशधक् (चोरों का दाहक॥२६॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था। सम्पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे। महाँ २॥ इन्द्रो य ओजसा कदा चन स्तरीरसि कदा चन प्रयुच्छसि॥२७॥

अगस्त्यदृष्टा त्रिष्टुप् सशस्त्रमरुत्वतीयपुरोरुक् मरुत्वन्तमित्यस्याः ७॰३६॰ स्थाने। इन्द्रं प्रति मरुद्वाक्यम्। हे इन्द्र हे सत्पते (श्रुतिस्मृतिसदाचाररतों के पते) तू एक (असहाय) होकर कहां जाता है तेरे गमन में क्या प्रयोजन है। कैसा है तू कि माहिनः (पूज्य वा उत्सववान्। किंच भले प्रकार चलते सन् शोभन वचनों से तू पूछता है कि कौनसा पन्था यह लोगों से (एकाकित्वात्। हे हरिवः इन्द्र हमसे उस एकाकी गमन कारण को कहि क्यों कि हम तेरे हैं इस हेतु कहि †॥ तिस्रः प्रतीकोक्ताः तत्र महाँ इन्द्र इत्यस्याः ७॰४०॰ माहेन्द्र ग्रहणे विनियोगः नृवदित्यस्याः ७॰३९॰ स्थाने कदा चनेति ८॰२॰३॰ द्वयोसदित्य ग्रहणे विनियोगः॥२७॥

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्। सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन्॥२८॥

शक्तिसुत गौरीवितिदृष्टा त्रिष्टुप् आदित्यग्रहस्य दधिश्रयणे विनियोगः यज्ञो देवानामित्यस्याः ८॰४॰ स्थाने। हे इन्द्र मनुष्य तेरा वोह कर्म पूजते हैं।

* कृष्णाजिनेन इति ७० इन्द्रमरुत्वान् महराजः

कि जे मनुष्य सोमरूप अन्न को सर्वतः हिंसा करने(सुवाने) चाहते हैं कैसे अन्न कि गोमन्त (निग्राभ्या लक्षणोदक युक्त ।) को। किं च जे मनुष्य भूमि को दुहते ते भी तेरा कर्म स्तुत करते हैं। कैसी भूमि कि सकृत्स्वम् (एकवार ही सवती हिरण्यधान्यादि देती है) पुरुपुत्रा (बहुतपुत्रा है) सहस्रधारा(असंख्य धाराएँ हिरण्यादय। जिस की तिस बहुभोगदा वा असंख्य प्राणिजात को धारण करती। बडी। अर्थात् जे विप्र सोमाभिषव करते और जे क्षत्रिय भूमि को दुहते (पालते देते हैं) ते इन्द्र का वृत्र वधादि कर्म स्तुति करते हैं नहीं कोई अन्य दुर्बुद्धि॥२८॥

इमां ते धियं प्रभरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे। तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु॥२९॥

कुत्सदृष्टा जगती सावित्र पुरोरुक् वाममद्येत्यस्याः ८.६. स्थाने। हे इन्द्र इस अपनी धी(बुद्धि स्तुति वा कर्म) को तेरे अर्थ समर्पण करता हूं। तुझ कैसे कि पूज्य के। कैसी बुद्धि कि बडी जिस से इस यजमान की धिषणा (बुद्धि वा वाक्) क्रियमाण स्तोत्र में तुझे व्याप्त करती है। किं च देवता तिस इन्द्र को स्तुति करते हैं। कहां स्तुति करते हैं कि उत्सव (अभ्युदय) और प्रसव (गुर्वाद्यनुज्ञा वा पुत्रादि रूप उत्सव) में। कैसे इन्द्र कि बल करि शत्रुओं के अभि भवितार को॥२९॥ इन्द्रस्तुत्संज्ञं द्वितीयमहः समाप्तम्॥

अ० ३ विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति॥३०॥

* सर्वे पदार्थाः पृथिवीत उत्पद्यन्ते।

अथ तृतीयमहः सूर्यस्तुत् तथा च श्रुतिः १३॰७॰१॰५॰ सूर्यस्तुदुक्थ्यस्तृतीयमहर्भवति तस्य सौर्या ग्रहा भवन्ति सौर्य्यः पुरोरुचः सर्वं सौर्यमसदिति। चतुर्दश पुरोरुचस्तिस्रः प्रतीकोक्ताः एवं सप्तदश ऋचः सूर्यस्तुत्संज्ञे उक्थ्यसंस्थे सर्वमेधस्य तृतीयेऽहनि॥ ऐन्द्रवायवादिसावित्रान्तानां ग्रहाणां पूर्वोक्तक्रमेण ग्रहणमन्त्रा बोध्याः॥ विभ्राडसौर्यदृष्टा जगती ऐन्द्रवायवपुरोरुक्। विविधराजमान सूर्य सोम्य(सोमरूप हवि)को पियें कैसे सोम्य कि बडे मधुरस्वादु को। जो सूर्य आत्मा करि प्रजा पालन करता और पुष्टि करता बहुधा शोभे है। कैसा है कि यज्ञपति(यजमान) में अखण्डित आयुस्थापन करता। वात करिके प्रेरित(वातकरि प्रेरित रवि मण्डल भ्रमता है इति प्रसिद्धः॥३०॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥३१॥

तिस्रः प्रस्कण्वदृष्टाः आद्या ऐन्द्रवायवस्य द्वितीया पुरोरुक्। व्याख्याता ७॰४१॰॥३१॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ २॥ऽ अनु। त्वं वरुण पश्यसि॥३२॥

गायत्री मैत्रावरुणपुरोरुक्। सर्वमेधे पक्ष्याकारेणाग्निश्चीयते तद्रूपमात्मानं सम्पाद्य मुक्तिमाप्नोति तदत्र प्रार्थ्यते। हे पावक(शोधक)जिस दर्शन करि तू भुरण्यन्त(भुरण्यु-क्षिप्रयाती पक्षि सदृश आत्मा करता है तिस) को देखता है। अर्थात् सर्वमेधयाजि भुरण्युपक्षिरूप आत्मा को करिके स्वर्गजाते को जिस दर्शन करि देखता है। तिसी द

पान करि हम सुखयें को हे वरुण (सूर्य) देखि ॥३२॥

दैव्यावध्वर्यू आगतं रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञं समञ्जाथे । तं प्रत्नथायं वेनश्चित्रं देवानाम् ॥३३॥

आश्विनपुरोरुक् गायत्री । हे दैव्यौ अध्वर्यौ अश्विनौ तुम रथ करि आओ कैसे रथ कि सूर्य की सी कान्ति जिस की । आके मधुर हवि (सोमपुरोडाशदध्यादि) करि यज्ञ को बहु हवि करो ॥ तं प्रत्नथा ७·१२· अयं वेनः ७·१६· चित्रं देवानाम् ७·४२· तिस्रः प्रतीकोक्ताः आद्ये द्वे शुक्रमन्थिपुरोरुचौ तृतीयाग्रयणस्य ॥३३॥

आ न इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु । अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥

अगस्त्यदृष्टा त्रिष्टुप् ध्रुवपुरोरुक् । विश्वनरहितकारी सविता देवः हमारे यज्ञ गृह में आवे । कैसे कि इडाभिः सुशस्तिः (जैसे इडा भक्षण करि शोभना शंसा जिस में अर्थात् सब इडा भक्षण करते हैं तैसे आवे यद्वा इडाओं करि शोभन प्रशंसायुक्त यज्ञ गृह में । एवं सूर्य मुक्त्वा देवानाह हे जररहिताः देवताओ तुम निश्चय आगमन काल में तृप्त होओ तैसे हमारे जगत् (पुत्रगवादिकों) को बुद्धि करि तृप्त करो । अर्थात् जैसे आप लोगों करि तृप्ति करिये तैसे हमारी प्रजा तर्पणीय है ॥३४॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र

ते वशे॥३५॥

सुकक्षसुतकक्षदृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्नपुरोरुक्। हे वृत्र हन् (†वृत्रजनित अन्धकार के नाशक) हे सूर्य हे इन्द्र (ऐश्वर्य युक्त) आज जहां कहीं तू उदय होता है सो सव तेरे वश में है इति शेषः यद्वा जो कुछ प्राणिजात उदय होता सो सव तेरे वश में है अर्थात् सवों का प्रेरक तूही है॥३५॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमाभासि रोचनम्॥३५॥

प्रस्कण्वदृष्टा गायत्री वैश्वदेवपुरोरुक्। हे सूर्य तू तेज का कर्ता है और विश्व को प्रकाशता अर्थात् अग्नि विद्युन्नक्षत्र ग्रहताराओं में तेरा ही तेज है। कैसे विश्व कि दीप्यमान को तेरे प्रकाशकरि इति भावः। कैसा है तू कि तरणिः (अतिक्रमण करता नभोवर्त्म में। विश्व का दर्शनीय॥३६॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततꣳ संजभार। यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥३७॥

कुत्सदृष्टे द्वे त्रिष्टुभौ मरुत्वतीययोः पुरोरुचौ। सूर्य का वोह देवतानुभाव और वोह महाभाग्य ऐश्वर्य है वोह क्या कि कर्तोः (ईश्वर कार्यश्रेष्ठ जगद्रूप के) मध्य में विस्तारित अंशुजाल को संहरता है अर्थात् नहीं कोई एतादृश अंशुजाल के प्रसारने वा संहरने को समर्थ है। किंच जब ही हरितवर्णरश्मिओं को अपने में

† वृत्रो मेघे रिपौ ध्वान्ते दानवे वासवो गिराविति कोशात्

आरोपण करता सधस्थ (सह तिष्ठे हैं अंशुजाल जहां तिस व्योममध्य से अर्थात् सन्ध्या काल में पीतवर्ण अंशुओं को जब कि व्योममध्य से अपने में योजता है। अनन्तर ही रात्री सर्व वस्तु को तम से आच्छादन करती है॥३७॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे। अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति॥३८॥

सूर्य द्युलोक के उत्सङ्ग में मित्र और वरुण के तिस रूप को करता है कि जिस रूप से जनों को देखता अर्थात् मित्ररूप करि सुकृतिओं पर अनुगृह और वरुण रूपकरि दुःकृतिओं का निगृह करता। इस सूर्य का एकरूप अनन्त (काल और देश करि परिछेद्य) रुशत् (शुक्लदीप्यमानविज्ञानघनानन्द ब्रह्मैव) है। अन्यत् (दूसरा) कृष्ण (द्वैतलक्षणरूप) हरित दिशाएँ वा इन्द्रियें धारण करती हैं। इन्द्रियग्राह्य द्वैतरूप एक और दूसरा शुद्ध चैतन्य अद्वैत रूप ये दो रूप सूर्य के सगुण निर्गुण हैं अर्थात् ब्रह्म सूर्य ही है॥३८॥

बण्महाँ २॥ऽअसि सूर्य बडादित्य महाँ २॥ऽअसि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ २॥ऽअसि॥३९॥

जमदग्निदृष्टे द्वे बृहतीसतोबृहत्यौ। आद्या माहेन्द्री पुरो रुक्। हे सूर्य प्रेरे है कर्मों में जगत् को) बट् (सत्य) तू महान् (श्रेष्ठ) है। हे आदित्य आदान करता है अंशुओं को) सत्य तू श्रेष्ठ है। किंच तुझ बड़े की बड़ी महिमा लोकों करि स्तुति करिये है। हे देव अद्धा (सत्य) तू बड़ा है।

...किरादरार्था॥३९॥

बट्सूर्य श्रवसा महाँ२॥ऽअसि सत्रा देव महाँ२॥ऽअसि। मन्हा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥४०॥

आदित्यग्रह प्रथम ग्रहणम्। हे सूर्य सत्य श्रव (धनवा यश) करिके तू महान् है। हे देव सत्य तू महत्व करि देवताओं के मध्य में श्रेष्ठहै। कैसा है तू कि असुर्यः (प्राणिहितः) पुरोहितः (अग्र में स्थापित सब कार्यों में पूज्य क्यों कि सब देवताओं की पूजा का सूर्यार्घ दानान्तर ही अधिकारसे। व्यापक अनुपहिंस्य तेज तू ही है॥४०॥

श्रायन्त-इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जाते जनमानऽओजसा प्रति भागं न दीधिम॥४१॥

नृमेधदृष्टा बृहती। आदित्यस्य पुनर्ग्रहणम्। सूर्य को आश्रयन्त (रश्मीएँ) ही इन्द्र के सब धनों (वृष्टिधान्यनिष्पत्त्यादिकों) को विभाग करि प्राणियों को देती अर्थात् इन्द्र दत्ता वृष्टि को भूमि में विभाग करती हैं। किंच हम तिन्ह ही धनों करि उत्पद्यमान पुत्र में तेज सहित धारण करते हैं। कैसे कि जेसे अपने भाग को पुत्रादिकों में धारण करें हैं॥४१॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरᳫंहसः पिपृता निरवद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽउत द्यौः॥४२॥

कुत्सदृष्टा त्रिष्टुप् दध्यादित्यग्रहश्रयणे विनियोगः। हे देवाः (रश्मयः)

हमें पापों से छुडाओ और दुर्यशों से पृथक् करो। कहा कि आज के दि-
न सूर्य उदय में हमें शुद्ध करो। किंच मित्र॰ वरुण॰ अदितिः सिन्धुः पृ-
थिवी और द्यौः हमें पूजें अर्थात् अङ्गीकरें॥४२॥

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं
च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि
पश्यन्॥४३॥

आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टा त्रिष्टुप् सावित्रपुरोरुक्। सविता देव-
ता हिरण्मय रथ करि आता है। क्या करते कि कृष्ण रज रात्रिलक्ष-
ण सहित पुनर्भ्रमण करते अमृत (देवादिक) और मर्त्य (मनुष्यादि-
क) को अपने-अपने प्रदेश में स्थापन करते भुवनों को देखते
कि कौन भला और कौन बुरा करते यह विचारते॥४३॥ तृतीयं
सूर्यस्तुदुक्थ महः समाप्तम्॥

अ॰ ४॰ प्रवावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट
इयाते। विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्व-
स्तये नियुत्वान्॥४४॥

अथ चतुर्थमहः वैश्वदेवस्तुत् तथा च श्रुतिः १३.७.१.६ वै-
श्वदेवश्चतुर्थमहर्भवति वैश्वदेवा ग्रहा भवन्ति वैश्वदेव्यः पु-
रोरुच इति। वैश्वदेवस्तुति चतुर्थेऽह्नि एकादश पुरोरुचः षट्
प्रतीकोक्ताः इति सप्तदश ऐन्द्रवायवादि सावित्रान्तग्रहाणां पु-
रोरुचो ग्रहणमन्त्राः॥ वसिष्ठदृष्टा त्रिष्टुप् ऐन्द्र वायव पुरो-
रुक्। इन यजमानों के कल्याणार्थ अन्तरिक्ष में वर्तमान वायु

और पूषा आते हैं। कैसा वायु कि नियुत्संज्ञा अश्वों वाला। किस समय कि रात्रि और दिवस के प्रथमाह्वान (अग्निहोत्रहोमसमय) में दिन के पूर्वाह्वान में रवि आता है रात्रि में वायु· वायुसखत्व करि अग्नि जानना· रात्रि होम के अग्निदेवत्यत्व से। तत्र दृष्टान्तः जैसे विशां पती (दो राजा) मनुष्यों के गण में आते हैं तद्वत् ते भी तिन्हों के कल्याणार्थ आते हैं। इन किन्हों कि जिन्हों की बर्हिएं शोभन प्रस्तरण प्रस्तीर्य हैं॥४४॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्। आदित्यान्मारुतं गणम्॥४५॥

मेधातिथिदृष्टे द्वे गायत्र्यौ आद्या ऐन्द्रवायवस्य पुनर्ग्रहणे द्वितीया मैत्रावरुणग्रहणे। इन्द्रवायू· बृहस्पति· मित्र· अग्नि· पूषा· भग· आदित्यों· मरुत्सम्बन्धिगण इन्हों को आह्वान करता हूं॥४५॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः॥४६॥

वरुण और मित्र सब रक्षणप्रकारों से प्रकर्षेण रक्षक हों। किंच हमें शोभन धनवान् करें॥४६॥

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना। तं प्रत्नथायं वेनो ये देवास आ न इडाभिर्विश्वेभिः सोम्यं मध्वोमासश्चर्षणीधृतः॥४७॥

कण्वसुत कुसीदिदृष्टा गायत्र्याश्विनपुरोरुक्। हे इन्द्र हे विष्णो हे मरुतः हे अश्विनौ हमारे इन सजातीयों के मध्य तुम आओ॥ अत्र प्रतीकोक्ताः तं प्रत्नथा ७·१२· शुक्रग्रहे अयं वेनः ७·१६·मन्थि-

गृहे ये देवासः ७·१९· आग्रयणस्य आ न इडाभिः ३३·३४· ध्रुवस्य विश्वेभिः सोम्यं मधु ३३·१०· ऐन्द्राग्नस्य ओमासश्चर्षणीधृतः ७·३३ वैश्वदेवस्य ग्रहणे ॥४७॥

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्रयन्त मारुतोत विष्णो । उभा नासत्या रुद्रोऽअध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥

प्रतिक्षत्रदृष्टा त्रिष्टुप् मरुत्वतीयपुरोरुक् । हे अग्ने हे इन्द्र हे वरुण हे मित्र हे देवताओ हे मरुद्गणः और हे विष्णो तुम बल देवो । एवं प्रत्यक्षमुक्त्वा परोक्षणमाह दोनो नासत्याः (अश्विनौ) रुद्रः अध (अथ) ग्नाः (देवपत्न्यः) पूषा भग और सरस्वती सेवन करें हविर्ये ॥४८॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२॥ऽअपः । हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥४९॥

काश्यपो वत्सारदृष्टा जगती सशस्त्र मरुत्वतीयपुरोरुक् । इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ अदिति स्वः (आदित्य) पृथिवी द्युलोक मरुतः पर्वतों अपः विष्णु पूषा ब्रह्मणस्पति भग शंस (स्तुत्य) सविता इन्हें क्षिप्र रक्षा के अर्थ बुलाता हूं ॥४९॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः । यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२॥ऽअवन्तु देवाः ॥५०॥

पञ्च त्रिष्टुभः आद्या प्रगाथदृष्टा माहेन्द्रपुरोरुक् । जो नर शंसा

(शस्त्रों) को करता है स्तोत्रों को प्रकर्षेण जपता है यज्ञः (आतजि-तधनः) सन् देता है हवियें तिसे और हम यजमानों को देवाः र-क्षा करें। कैसे देवा कि हम यजमानों के विषें धन के सेक्तारः। रुद्राः (रुलानेवाले शत्रुओं को। पर्वतासः (उत्सववन्तः। वृत्रासुरबध के अ-र्थ संग्राम में बुलाये एकमतयः। इन्द्र है ज्येष्ठ जिन्हों का ते। ऐसे दे-वा रक्षा करें ॥५०॥

अर्वाञ्चोऽअद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमा-नो व्ययेयम्। त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥५१॥

गार्त्समदो कूर्मदृष्टादित्यस्य प्रथमा पुरोरुक्। हे यजत्राः (यजन्तं त्रायन्ते वा यष्टव्याः) देवाः आज तुम हमारे अभिमुख होओ। क्योंकि मैं भयमान तुम्हें मन करि बुलाता हूं। किं च हे यजत्राओ हमें वृक से रक्षा करो कर्त (कूप) से रक्षा करो। कैसे कूप वृक कि निजुर (हिंस-क) से। सीढीयों करि उतरते हैं तिस कूप से ॥५१॥

विश्वेऽअद्य मरुतो विश्वऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः स-मिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रवि-णं वाजोऽअस्मे ॥५२॥

लुशोधानाकदृष्टादित्यपुनर्ग्रहणे। व्याख्याता १८·३१·॥५२॥

विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे येऽअन्तरिक्षे यऽउ-प द्यवि ष्ठ। येऽअग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्या-स्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥५३॥

सुहोत्रदृष्टादित्यग्रहस्य दध्ना श्रयणे विनियुक्ता। हे विश्वेदेवाः जे तुम अन्तरिक्ष में स्थित हो और जे स्वर्ग समीप में और जे वह्निमुखाः और जे यजत्रा ते सब तुम मेरे आह्वान को सुनो और सुनिके बर्हिओं पर बैठि तृप्त होओ॥५३॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम्। आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः॥५४॥

वामदेवदृष्टा जगती सावित्रग्रहस्य पुरोरुक्। हे सवितः निश्चय उदय समय में यज्ञियार्ह देवताओं के अर्थ तू उत्तम भाग (अग्निहोत्ररूप) को प्रेरता (आज्ञादेता) है। कैसे भाग कि अमृतप्रद को। उदय के अनन्तर ही रश्मिसमूह को प्रसारता है। फिरि मनुष्यों के अर्थ जीवन हेतु कर्मों को विस्तारता†। कैसे कर्मों अनूचीनों रश्मिसमूहानुगतों*। अर्थात् लौकि वैदिक व्यवहार का प्रवर्तयिता तू है॥५४॥ इति वैश्वदेवस्तुचतुर्थमहः समाप्तः॥ ॥समाप्तोऽयं सर्वमेधः॥

अथानारभ्याधीतं मन्त्रगणं आदित्ययाज्ञवल्क्यदृष्टम्

अ॰ ५॰ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम्। द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो॥५५॥

अथ पञ्चदश पञ्चदश त्रयोदशर्चास्त्रयोऽनुवाकाः पुरोरुचोऽनारभ्याधीताः श्रौत कर्मण्यविनियुक्ताः ब्रह्मयज्ञार्हा आदित्ययाज्ञवल्क्यदृष्टाः पितृमेधपर्यन्तम्। पञ्चदश ऋचः द्वेच प्रतीकोक्ते:

† सूर्योदयानन्तरमेव आदित्या कर्मसु प्रवर्त्तन्ते:

* ममसि तदभावात्

सप्त दशाक: पुरोरुग्गण:॥ऋजिश्वदृष्टा त्रिष्टुप् वायुदेवत्या।
हे प्रयज्यो (प्रकर्षेण यजति॰अध्वर्यो) बडी बुद्धि करिके आभिमुख्ये-
न तू वायु को प्रकर्षेण यजने चाहता है। कैसा है तू कि ज्ञानी। कैसे
वायु कि महाधन। विश्ववार (सब के वरणीय वा सर्वव्यापक। यजमा-
न के अर्थ देने योग्य धन करि रथ को पूरने वाले। दीप्यमान नि-
यमन वाले। नियुत्संज्ञक अश्वों करि चलते। क्रान्तदर्शन। अर्था-
त् ईदृश वायु को यजि॥५५॥

इन्द्रवायूऽइमे सुता उप प्रयोभिरागतम्। इन्दवो वा-
मुशन्तिहि॥५६॥

व्याख्याता ७॰८॰॥५६॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृ-
ताचीꣳ साधन्ता॥५७॥

हे मधुच्छन्दोदृष्टे गायत्र्यौ आद्या लिङ्गोक्तदेवत्या। मित्र औरव-
रुण को आह्वान करता हूं। कैसेको कि पूतदक्ष (सदाचार कोधन
पुत्रादि करि बढाता। रिशादस (दुष्टों को नाशकरता। कैसें कोकि
घृताची (घृतहोमते हेंजहां तिस) धिय (कर्म) को साधन करते॥५७॥

दस्रा युवाकव: सुता नासत्या वृक्तबर्हिष:। आयातꣳ
रुद्रवर्तनी॥तं प्रत्नथायं वेन:॥५८॥

आश्विनी। द्वयोरश्विनोरेकस्य दस्र इति नामापरस्य नासत्य इ-
ति। हे दस्रौ (दर्शनीयौ) हे नासत्यौ (सत्यवादिनौ) तुम आओको
कि अभिषुत हें सोमा इति शेष:। कैसे सोम कि युवाकव: (तुम्हेंच-

हते यह कि हमें पीवें यह इच्छा करते यद्वा अग्नि में मिश्री होते हैं वृक्त हैं बर्हियें जहां ते। कैसे हो तुम कि रुद्रवद्गमनशीलो। तं प्रत्न था ७.१२ अयं वेनः ७.१६ एते द्वे प्रतीकोक्ते ॥ ५८ ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः। अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५९ ॥

कुशिकदृष्टा त्रिष्टुप् इन्द्रदेवत्या। पहिली सरमा (त्रयीलक्षणवाणी) यज्ञ को प्रतिपादन करती है। कैसी सरमा कि सुपदी (शोभनपद सुप्तिङन्त हैं जिस में) अकारादिक अक्षरों के शब्द को ज्ञापन करती। जो कि तिस सरमा को अध्वर्यु जानें तो पाथः (सोमलक्षण अन्न को) क्या करें क्यों कि वेदों के अभिज्ञ का सोम कण्डन की अधिकार नहीं। कैसे पाथ कि सोमाभिषव ग्रावों करि अभिषुत। महत् उपांश्वन्तर्यामैन्द्रवायव पात्रों में पूर्व गृहीत। सहैव हवनार्थ चलते। यजमान की मुख्यत्व प्राप्त करने वाले को (यज्ञ करि यजमान मुख्य होता है ॥ एवमधियज्ञं मन्त्रो व्याख्यातः। बह्वृचानां तु संवाद सूक्तमिदम् ऋक्स॰म॰३.३.३१. अ॰३.२६.। तत्र पणिभिरसुरैर्देव गोधने ऽपहृते इन्द्रेण देवशुनी तद्वीत्यै प्रेरिता तदभिप्रायेण व्याख्यायते। सरमा (देवशुनी) इन्द्र करि गवान्वेषण के अर्थ प्रहिता सती जब कि गिरि के द्वार को प्राप्त हुई तब इन्द्र नें हवि (अन्न) को क्या किया कि तिस के अर्थ दिया। फिरि शोभनपादयुक्ता वोह सरमा अनपहृत गौओं के प्रान्त को प्राप्त हुई। प्रथम गौओं के स्थाने

को जानकर सामनें गई। कैसा अन्न कि बड़ा। पूर्व्य (पूर्व प्रेषणका-ल में तेरी प्रजा अन्नादिनी करूंगा यह प्रतिज्ञात। सध्यकू (इतरों सहित भोज्य॥ ५९॥

> नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर एतारम-ग्नेः। एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजि-त्याय देवाः॥ ६०॥

विश्वामित्रदृष्टा त्रिष्टुब्वैश्वानरी। देवाः वैश्वानर (अग्नि) सें अ-न्य स्पश (दूत) और पुर एतार (सबकार्यों में पुरःसर) को नहीं प्राप्त हु-ए। आ ईम् (अथ) अमृत (देवा) इस वैश्वानर को बढाते। कैसे कि अग्नि अमरणधर्मा को यजमान की क्षेत्र प्राप्ति के अर्थ॥ ६०॥

> उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृ-डात ईदृशे॥ ६१॥

भरद्वाजदृष्टा ऐन्द्राग्नी गायत्री। हम इन्द्राग्नी को आह्वान करते हैं कैसे इन्द्राग्नी कि उग्र (उद्गूर्णबलौ)। हिंसकों को नाश करते। वे इ-न्द्राग्नी हमें ईदृश भयानक संग्राम वा कर्म में सुख देवें॥ ६१॥

> उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ२॥ इयक्षते॥ ६२॥

देवलदृष्टा सितदृष्टा वा सोम देवत्या गायत्री। हेनरः (ऋत्वि-जः) इस सोमके अर्थ उपगान (उद्गातृशास्त्र को अनुसरण करिके बो-लो-स्तोत्रें) को करो। कैसे सोम कि पवमान (दशापवित्रकरि द्रोणकलश को चलते। संमुख देवताओं के यजने को इच्छा करते के अ-

र्थ॥६२॥

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ। ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः॥६३॥

विश्वामित्र दृष्टाद्या द्वे त्रिष्टुभौ इन्द्रदेवत्यास्तिस्रः। हे मघवन् जे मरुतोगण देवाः वृत्र हनन रूप कर्म में तुम्हे जहिवीरयस्वेत्यादि वचनों से बढाते हुए। हे हरिवः (हरिनाम काश्व युक्त) शाम्बर सम्बन्धि युद्ध में जे तुम्हे बढाते हुए। और जे मरुतः पणि असुर करि हरी हुई गौ के इष्ट (प्रत्याहरण) युद्ध में तुम्हे बढाते हुए। और जे विप्राः (मेधाविनः मरुतः) निश्चय तुम्हे उत्कर्ष देते वा तृप्त करते हैं। हे इन्द्र तिन मरुतों करि गण सहित हो सोम को पान करि (आतृतेः मरुत्वतीयादि ग्रह को पी॥६३॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः। अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा॥६४॥

गौरीवितिदृष्टा। हे इन्द्र तू बल के अर्थ उत्पन्न हुआ है। कैसे बलकि वेगवान्। कैसा है तू कि उत्कृष्ट। स्तुत्य। अत्यन्त औजस्वी। बलाभिमानः (सब जगत् मेरी विभूति यह भूयिष्ठाभिमनः। यहां वृत्र वध में ईदृश इन्द्र को मरुतः भी बढाते हुए स्तुति सहायों करि इतिशेषः॥ और इन्द्र सौभाग्य गर्भकालीन को यह कहिते हैं कि अदिति माता धनिष्ठान्या वीर इन्द्र को गर्भ में धारण करती हुई॥६४॥

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमागहि। महान्महीभिरूतिभिः॥६५॥

वामदेवऋषिः गायत्री। हे वृत्रहन् (आवरक पापों के नाशक) हे इन्द्र तू हमारे प्रति क्षिप्र आ और आके हमारे देवयजन देश को प्राप्त हो। कैसा है तू कि बडी रक्षाओं करि महान् (जो दूसरों को रक्षा करता है वोह महान् कहलाता है॥६५॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः। अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥६६॥

नृमेधऋषिः द्वे ऐन्द्र्यौ पथ्याबृहतीसतोबृहत्यौ। प्रकृष्टा हैं हिंसाजिन्हों की जहां वा शत्रु वा संग्राम तिन प्रतूर्तिओं में हे इन्द्र तू सब शत्रुसेनाओं को अभिभवता है। किंच यतः सब रिपूओं को मारता है ततः शत्रुओं को मारि। कैसा है तू कि अशस्तिहा (शंसा रहितो) दुष्टों का हन्ता। जनिता (स्वपक्ष प्रशंसोत्पादकः॥६६॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा। विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥६७॥

हे इन्द्र क्षोणी (द्यावापृथिवीस्थालोक) तेरे बल को अनुगमन करते (बहुत मानते हैं) कैसे बल कि शत्रुओं के हिंसक को। अनुगमने दृष्टान्तः जैसे मातापिता बालक को अनुगमन करते हैं यस्य बलाद् द्यावापृथिव्यावप्यबिभीतामिति निरु॰१०॰१०॰यास्कः। तेरेव प्रपञ्चयति सब शत्रुसेनाएं तेरे क्रोध से खिन्ना होती हैं अर्थात् तेरे

क्रोध दर्शन से उद्विग्न हैं युक्तमेतत् क्योंकि युद्ध में इन्द्र तू वे ... रों करि अबध्य वृत्र को मारता हुआ॥६७॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः॥ आ वो॑ऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत॥६८॥

कुत्सदृष्टा त्रिष्टुप्।व्याख्याता ८।४।॥६८॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम्। हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳस ईशत॥६९॥

भरद्वाज दृष्टा जगती सवितृ देवत्या। हे सवितः(सब के उत्पन्न करने वाले) पालनों करि हमारे गय(घर वाधन) को तू आज सर्वतः पालि। कैसे पालनों कि अनुपहिंसितों।शान्तों। कैसा है तू कि हिरण्यजिह्व(हिरण्यवत् अचला जिह्वा जिसकी, सत्यवाक् वा हित रमणीया ज्वाला जिसकी)†। किं च नवतर सुख के अर्थ हमें रक्षा करि। किं च कोई अघशंस(शत्रु) हमारे ऊपर समर्थ न हो॥६९॥ पञ्चमः पुरोरुग्गणः समाप्तः

अ॰ ६ प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः॥ वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय॥७०॥

पञ्चदश ऋचः द्वे प्रतीकोक्ते एवं सप्तदशाकः पुरोरुचां समूहः॥ वसिष्ठ दृष्टा त्रिष्टुप् वायुदेवत्या॥ हे पत्नीयजमानौ तुम्हारे सोमाः चूर्ण हुए। कैसे सोमाः कि प्रवीरया(ज्ञानोद्भवा ऋत्विज जिन्हों को

† हिरण्यं कस्मादिति हितरमणीयं भवतीति वा निरु॰ २।१०।३ पाक्तोक्तेः

निर्मला:। अध्वर नेताओं (ऋत्विग्विशेषों) करि सुता:। मधु (निग्राभ्या रूप जल) वन्त:। एवं पूर्वार्धे पत्नी यजमानौ सम्बोध्य वायुमाह हे वायो (सर्वत्र चलनेवाले) नियुत संज्ञ अश्वों को तू देवयजन को प्राप्त करि के सोमाभिमुख वा सोम प्राप्ति को आ। और आकर मद (तृप्ति वा मत्तता) के अर्थ अभिषुत सोम के अंशु को पी ॥७०॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ॥७१॥

व्याख्याता ३३॰१९॥७१॥

काव्ययो राजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे। रिशादसा सधस्थ आ ॥७२॥

दक्षदृष्टा गायत्री मैत्रावरुणी। हे रिशादसौ (शत्रुपक्षयितारौ मित्रावरुणौ) यजमान के सधस्थ (देवमनुष्यों के सह सोमपानस्थान) में तुम आओ। कैसे यजमान कि काव्ययो: (तुमक्रान्तदर्शनों ज्ञानसमुच्चयकारयों) के हित समन्तात् जन्म में सोमपानार्थ आविर्भूत देवयजन भूमि और यज्ञगृह में यज्ञकर्म करि दक्ष (उत्साहवान्) यजमान के यज्ञ को वढावो इत्यर्थ:॥७२॥

दैव्यावध्वर्यू आगतꣳ रथेन सूर्यत्वचा। मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे। तं प्रत्नथायं वेन: ॥७३॥

व्याख्याता ३३॰३३। तं प्रत्नथा ७॰१२। अयं वेन: ७॰१६। इति द्वे प्रतीकोक्ते॥७३॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामध: स्विदासी ३ दुपरि-

स्विदासी३त्। रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा
अवस्तात्प्रयतिः पुरस्तात्॥७४॥

परमेष्ठी प्रजापतिदृष्टा त्रिष्टुप् भाववृत्तदेवत्या भावेषु पदार्थेषु वृत्तः स्थितो भाववृत्तः परमात्मा सोऽस्या देवता। आग्रयणग्रहे विनियोगः क्रमपाठाल्लभ्यते ततोऽधियज्ञं तावद्व्याख्यायन्ते। आधवनीयादुन्नेता निगृाभ्यास्वासिञ्चति ताः पवित्रे यजमानस्ततो ग्रहग्रहणमा ध्रुवादिति का॰ ९·५·१७· कात्यायनेनोक्तम् तदभिप्रायेणोच्यते। इन पूयमान सोमों की रश्मिएँ ऋजीषादिकल्कनियामक दशापवित्रलक्षणः तिर्यङ् एव विस्तारित हैं उद्गाता ओं करि इति शेषः। तिस दशापवित्र के नीचे हुआ और ऊपर हुआ। किंच तहां एके पदार्था ग्रहचमसाधवनीयद्रोणकलशादयः रेत (जगदुत्पत्तिवीजसोम) को धारण करते हैं ते रेतोधा (सोमाधार भूता) हैं + तथा परे पदार्थाः सोमरसरूपा तहां आधेय होके महिमान (उत्कृष्ट) हैं। आधाराधेयभाव करि यह सब यज्ञात्मा ही स्थित है इति भावः *। किंच स्वधा (अन्न तद्रूप) अवस्तात् (होम से पहिले नीचे) रहा। प्रयतिः (प्रयत्नवान् होमानन्तर लब्धफलकः सन्) परस्तात् (उत्कृष्ट) हुआ॥ ॥अथाधिदैवतं व्याख्या। इन प्रसिद्ध सूर्यरश्मिओं के एक सुषुम्णाख्यो रश्मि तिरश्चीन। विस्तृतः सन्निम् द्युलोक से नीचे स्थित हुई और ऊपर स्थित हुई (स्विदिति वितर्के। किंच वोह रश्मि रेत (विश्वबीज उदक) की धारण करनेवारी हुई ॥। और-और रश्मिएँ महात्म्याध्यायिका हैं (विश्वप्रका

\+ ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविरिति स्मृतेः भगवद्गी॰ अ॰ ४· श्लो॰ २४·

॥ सूर्यस्य हवाऽएको रश्मिर्वृष्टिवनिर्नाम येनेमाः सर्वाः प्रजा बिभर्तीति श्रुतेः।

* यज्ञो वै प्रजाः प्रजायन्त इति श्रुतेर्जगद्बीजत्वं सोमस्य

[illegible]ीं च स्वधा (अन्ननिष्पादकः) वोहही रश्मि अवरः (भूम्यभि-
[illegible] प्रयतिः (सेयत्न से ऊर्ध्वमुखः सन्) परस्तात् (परः उत्कृष्टः) दर्श-
नमात्र करि देवताओं की तृप्ति देनेवाली है। तथोक्तं छन्दोग्यश्रुतौ
छान्दोग्योपनिषत् ५.१-६) असौ वा आदित्यो देवमधित्युपक्रम्य
न वै देवा अश्नन्ति न पिवन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्तीति॥ ॥
अथाध्यात्म पक्षे व्याख्या। नासदासीदिति सप्तर्चेऽध्यात्म प्रतिपा-
दके सूक्ते अष्ट॰८.७.१७माण्ड॰१०.११.१ बह्वृचा इमामृचं पठन्ति
तत्र नासदासीदिति निरस्तसमस्तप्रपञ्चां प्रलयावस्थामनूद्य विश्व-
बीजमविद्योक्ता। कामस्तदग्रे समवर्ततेति पादेन च काम उक्तः। म-
नसो रेतः प्रथमं यदासीदिति पादेन पुण्यापुण्यात्मकं कर्मोक्तम्। ए-
वमविद्या कामकर्माणि सृष्टिहेतून्युक्त्वा तेषां स्वकार्यं जनने शैघ्र्य-
माह तिरश्चीन इति। इन अविद्याकामकर्मों का रश्मि जैसे कार्य-
वर्ग वियदादि विस्ततः सन् तिर्यक् अवस्थित (मध्य में स्थित) हुआ
और नीचे और ऊपर अर्थात् सूर्यरश्मिवत् युगपत्सर्वव्यापी हुआ।
मेदव विभज्यते रेतोधा इति। सृष्ट कार्य वर्ग में कोईक रेतोधा (वी-
जभूत कर्म के कर्तार और भोक्तार) हुए दूसरे महिमानः (महान्तः
विपुला वियदादयः भोग्या) हुए। एवं माया में ईश्वर सव जगत्
को सृजि और आप प्रवेश करि भोक्तृभोग्य रूपेण विभाग कर-
ता हुआ। तिन भोक्तृभोग्यों के मध्य में स्वधा (अन्न) भोग्यप्रपञ्च
अवस्तात् (निकृष्ट) हुआ प्रयतिः (भोक्ता) परस्तात् (उत्कृष्टः) अ-
र्थात् भोक्तृप्रपञ्चाधीन भोग्यप्रपञ्च किया॥ ७४॥

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अ-
धारयन्। सो अध्वराय परीणीयते कविरत्यो न वा-
जसातये चनोहितः॥७५॥

तमेव वैश्वानराख्यं भोक्तारं परमात्मानं स्तौति। विश्वामित्र दृष्टा जगती भाववृत्त देवत्या (वैश्वानरदेवत्या। जब कि अरणी से उत्पन्नमात्र इस वैश्वानर को कर्मवन्त यजमानाः कर्म में स्थापन करते हुए तब वोह द्यावाभूमी को सर्वतः पूरताहुआ। न केवल द्यावापृथिवी किंतु महत् (प्रभूत) स्वः (अन्तरिक्ष) को सूर्यात्मा करि पूरताहुआ। अर्थात् जै लोक्य को जाठरात्मा करि पूरित किया। गार्हपत्यादीनां लोकत्वं श्रुत्योक्तम्। अयं वै लोको गार्हपत्यो द्यौराहवनीय इति। उक्तार्थमेव विवृणोति स इति वोह अग्नि याग के अर्थ सर्वतः अतिप्रणीत (आग्नीध्रीयादि धिष्ण्यादिकों में प्रकर्षेण प्राप्त किया है। नयने दृष्टान्तः अत्योन वाजसातये (जैसे अश्व अन्नलाभ के अर्थ सर्वतः प्राप्त करिये है। जैसे राजा अश्ववान् भोगजात को प्राप्त होता तद्वत् विप्र अग्नि को सेवमान ब्रह्मलोकान्त भोगों को इति भावः। कैसा अग्नि कि सर्वज्ञ। अन्न के अर्थ हित अर्थात् सर्व भोग सम्पादकः॥७५॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा। आङ्गू-
षैराविवासतः॥७६॥

वसिष्ठ दृष्टा भाववृत्त देवत्या (इन्द्राग्नि देवत्या) गायत्री। जे इन्द्राग्नी आङ्गूषों (आघोषो) चित (लौकिक वाक्स्तोमों से भी) आते हैं वे उक्थों गिरा (स्तोत्रात्मिका स्तुति) करि परिचरण करियें हैं य-

जमानोंकरि इति शेषः। कैसे हैं वे कि वृत्र (आवरकपापो) केअति श-
येन हन्ता। स्वभाव से मोदमानौ॥७६॥

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडी-
का भवन्तु नः॥७७॥

सुहोत्रदृष्टा वैश्वदेवी गायत्री। जे मरणहीन प्रजापति के पुत्र
(विश्वेदेवा) हैं ते हमारी गिरा समीप आकर सुनें और सुनि के
हमारे शोभन सुख करने हारे हों॥७७॥

ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो
मे अद्रिः। आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहत
स्ता नो अच्छ॥७८॥

तिस्रस्त्रिष्टुभः द्वे इन्द्रमरुत्संवादे इन्द्रमरुद्देवत्ये आद्येऽगस्त्यदृ-
ष्टे। इन्द्रो मरुतः सहचरानाह हे मरुतः ब्रह्माणि (मन्त्रवाक्यात्म
क स्तुति वचन वा आज्यादि हविये) मेरा स्वभूत हैं चोदनावाक्ये
ऽग्न्यादि देवान्तरसम्बन्धेन प्रतीयमानान्यपि सर्वदेवतात्मा-
त्मनः मुरू इन्द्र के ही ते हैं इति भाव। मननयुक्ता स्तुतियें भी मेरी
सुखोत्पादिका हैं। तथा अभिषुता सोमा मेरे अर्थ ही हैं इस हेतु
यज्ञ में चलना चाहिये इतिभावः। किं च मुरू करि प्रकर्षेण कि-
या अद्रि (वज्र) जाते ही लक्ष्य (वेध्ये) प्रति नहीं प्रतिहत होता। कैसा
वज्र कि शत्रुओं को सुखाता अत एव चलने में राक्षसादिकों का
उपद्रव नहीं है। केवल हवि आदिक ही मेरे न जानना। अपि तु
यजमान प्रार्थना करते हैं जिन उक्थ शास्त्रों से वोह स्तोत्रशस्त्रभी

मुझे चाहते हैं। किंच हमारे ये हरी घोड़े यज्ञाभिमुख मुझे प्राप्त करते हैं अत एव हमें शीघ्र चलना योग्य है इतिभावः। यद्वा अर्थान्तरम्। ब्रह्माणि मतयः सुताः सोमाः प्रहृतः अद्रिः (सोमाभिषवग्रावा) शुष्मः (सुखरूपः) एतत्सर्वं मम शं (सुखं) अर्पयति (उद्गमयति) समानमन्यत्॥७८॥

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२॥ अस्ति देवता विदानः। न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध॥७९॥

एवमिन्द्रेणोक्ता मरुतः प्रत्याहुः। आ इति स्मरणे (हम जानते हैं कि) हे मघवन् (धनवन् इन्द्र) तेरा किसी करि नहीं नाशित महाभाग्य इति शेषः। नु (निश्चय) नहीं कोई भी तुम से महाभाग्यवान् इति शेषः। नहीं केवल तेरा ऐश्वर्यमात्र किंतु सर्वज्ञत्वमपीत्याह तेरे सदृश विद्वान् देवता नही है। किं च हे प्रवृद्ध (पुराणपुरुष) जिन कर्मों वृत्र वधादिकों को तू करता है तिन कर्मों को वर्तमान और भूत देवमनुष्यों में नही करता है। और न करेगा उत्पत्स्यमान इति शेषः। अर्थात् तीनों काल में तेरे सदृश नही है इस हेतु तू मन्त्रेश है।॥७९॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः॥ सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः॥८०॥

आथर्वणो बृहद्दिवदृष्टा माहेन्द्री त्रिष्टुप्। भुवनों (भूतजातों) में

१ ऋग्वे० अ० २। अ० ३। व० २६। म० १। अ० २३। सू० १६। एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो यानु दधृष्वान्कृणवै मनीषा। अहंह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषां॥१०॥ इदानीमिन्द्र आह।

वोह ही ज्येष्ठ(श्रेष्ठ) होनेहार सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मही था कि जिस ज्ये-ष्ठ से उत्कृष्ट इन्द्र हुआ। कैसा कि त्वेषनृम्णः (तेजोधनः) कार्य हुआ कारण महत्त्वं कल्पते। किं च जो इन्द्र जायमान एव तत्क्षण शत्रुओं को मारता है। किं च सब देवता जिस इन्द्र को अनुलक्षक-रते हैं। कैसे सब देवता कि रक्षक हैं॥८०॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावक-वर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत॥८१॥

मेधातिथिदृष्टे आदित्यदेवत्ये द्वे बृहत्यौ। हे पुरूवसो(बहुधना-दित्य जे मेरी ये गिरः(शस्त्ररूपा वाचाएं तुझे बढावें। किंच विद्वां-सः(तेरे स्वरूपाभिज्ञाउद्गातारः) स्तोमों(स्तोत्रों-बहिष्पवमानादि) करि तुझे स्तुति करते हुए। कैसे विद्वांसः कि पावकवर्णाः(अग्नि-तुल्यतेजसः-ब्रह्मवर्चसवन्तः) अत एव शुचयः(शुद्धागमाः) अ-र्थात् स्तोत्रशस्त्ररूपा गिरः तुझे स्तुति करती हैं॥८१॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः। ति-रश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽअज्यते र-यिः॥८२॥

हे आदित्य यह सर्वोऽपि आर्यः(वर्णाश्रमविहितकर्मानुष्ठाता) होकर दासवत् सर्वदा रक्षणीयः शेवधिपाः(निधिरक्षक कृपण) तेरा शत्रु। किंच एवंविध कृपण अर्य(धनस्वामी वा वैश्य) विषे अ-न्तर्भूत(भूमिगर्तादिक में निक्षिप्तोऽपि) तिस का धननिचयः तेरे अर्थ ही व्यक्त होता है अर्थात् कृपण का धन तेरे अर्थ उपयुक्त

है पक्षहरणादि करि नतु कृपण भोग के अर्थ होता है। कैस अर्थ कि रुशमः (धनापहर्ता आतिथ्यादितिरस्कार करि आत्माही के हिंसक) विषें पवीरवान् (आयुधवान् इन्द्र है। घनि करि अतिथ त्व से गुप्तमपि धन को छीनि कर धर्मिष्ठ के अर्थ देता है इति भावः॥८२॥

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽइव पप्रथे। सत्यः सोऽअस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥८३॥

मेधातिथिदृष्टादित्यदेवत्या सतोबृहती। यह आदित्य रूप इन्द्र उदधिवत् प्रथित (व्यापक) हुआ। कैसा यह कि सहस्र संख्याक ऋषियों (अतीन्द्रियार्थदर्शिओं) करि बल से युक्त किया +। किं च आदित्य की वोह महिमा सत्य (अवितथ) और बल सत्य है। यज्ञों विषें विप्रों के राज्य (स्तोत्रशास्त्रसंघ) में स्तुति करता हूं तिस महिमान को इतिशेषः। अर्थात् स्तोत्रशस्त्रों के संघ में पठन करि सो यह स्तुति करिये है॥८३॥

+ स्तुत्यादि देवता बल बढ़ें

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम्। हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नोऽअघशꣳस ईशत॥८४॥

व्याख्याता ३३॥६९॥ ॥८४॥ षष्ठः पुरोरुग्गणः समाप्तः॥ ॥

अ॰ ७॰ आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः। अन्तः पवित्रऽउपरि श्रीणानोऽयꣳ शुक्रोऽअया-

मि ते ॥८५॥

इतोऽध्याय समाप्त्यन्तं त्रयोदश ऋचः प्रतीकोक्ताश्च तस्त्रश्चेति ऐन्द्रवायवादिसावित्रान्तानां ग्रहाणां ग्रहणमन्त्राः पूर्ववत् ॥ जमदग्निदृष्टा वायुदेवत्या । बृहत्य आद्या नव द्वादशी च दशम्येकादशीत्रयोदश्यः सतोबृहत्यः । हे वायो हमारे यज्ञ को आगमन करि कैसे यज्ञ कि द्युलोकव्यापि अर्थात् ऋत्विग्यजमान वैदुष्य और दक्षिणासम्पन्नत्वसे स्वर्गमें भी श्रूयमाण को । आगम्य किं फलमतआह कि पात्र मध्यस्थ दशापवित्र के उपर में होतृचमस करि विषिच्यमान यह शुद्ध (ऋजीषकल्करहित) सोम (रसात्मा) त्वदीयभागत्व करि सुरु से संस्कृत है ॥ ८५॥

इन्द्रवायू सुसंदृशा सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्व इज्जनोऽनमीवः संगमे सुमना असत् ॥८६॥

तापसदृष्टेन्द्रवायवी । इस यज्ञ में हम इन्द्रवायू को बुलाते हैं । कैसे इन्द्रवायू कि भले प्रकार देखने । शोभनाह्वानौ । तैसे बुलाते हैं कि जैसे हमारे सर्व एव जनाः (पुत्रपौत्रादि) ऐसे हों कैसे कि व्याधि रहित संगम (धनप्राप्तिवासमागम) में सुमनाः (शोभनचित्ताः वा उदार और वक्ता ॥ ८६॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये । यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥८७॥

जमदग्निदृष्टा मैत्रावरुणी । निश्चय जो मनुष्य अभिमतलाभ और हव्य दाति (हवि के दान) के अर्थ मित्रावरुण को सेवन करता है । वोह मनुष्य इस हेतु (सेवनरूप) करि यमनियम शमादि युक्त होता है । कैसा है वोह कि देवतातिः देवता के कर्म- यज्ञ) के अर्थ समृद्धिवान् (यज्ञसम्पत्तिक्षमधनाढ्यः हो) शा-

न्त होता है। सत्य वचन वा सत्य युक्त होता है॥८७॥

आयातमुपभूषतं मध्वः पिबतमश्विना। दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमागतम्॥८८॥

वसिष्ठदृष्टाश्विदेवत्या। हे अश्विनौ तुम यज्ञ प्रति आओ। और आ के यज्ञ को अलं करो। मधुर सोम को पिओ। किंच हे यज्ञफल के सींचनेवालेओ हे जेन्यावसू (जेतव्य वा जित समन्तात् धन जिन्हों करि ताहशौ वशी धनौ) तुम वृष्ट्युदक दुग्ध को अन्तरिक्ष से दुह्यो। किंच हमें हिंसा न करो। किं बहुना तुम आओ (आदरार्थं पुनर्वचनम्॥८८॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥८९॥

कण्वदृष्टा वैश्वदेवी। ब्रह्म (वेद) का पति (हिरण्यगर्भ) हमारे यज्ञ को प्रकर्षेण आवे। तथा देवी (देवतात्मा) सूनृता (प्रियसत्यस्वरूपातिस की वाणी त्रयीरूपा) यज्ञ को प्रक०। किं च यष्टव्या देवा हमारे यज्ञ को करावें। कैसे यज्ञ कि वीर (शत्रुओं के विशेषेण उन्मूलयितार) को। मनुष्यों के अर्थ हित को। पङ्क्तिराधस को (इन्द्र का पुरोडाश हर्योर्धानाः पूष्णः करम्भः सरस्वती के अर्थ दधिमिश्रा वरुण की पयस्या यह हविः पङ्क्ति है। द्विनाराशंस प्रातः सवन द्विनाराशंस माध्यन्दिन सवन सकृन्नाराशंस तृतीय सवन यह नाराशंसपंक्ति है। त्रीणि सवनानि पशुरूपवसथ्यः पशुरनुबन्ध्यः यह सवन पङ्क्तिः इन पङ्क्तिओं करि समृद्धि जिस की वा पङ्क्तिएँ साधियें हैं जहां तिस को। ब्रह्मणस्पत्यादयः ऐसे

यज्ञ को हम लोगों से करावें इति सर्वार्थः॥ ८९॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि। रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत्॥ ९०॥

आप्त्यसुत त्रितदृष्टाहुतिपरिणामवादिन्यैन्द्री। आहुतेर्होमद्रव्यस्य परिणामो द्युपर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषात्मकपञ्चाग्निक्रमेण परिपाकः इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति श्रुत्योक्तः तं वदत्येषा ऋक्। अधियज्ञं तावदर्थः। चन्द्रमा (देवताओं का आल्हाद करता) लतारूप सोम अभिषुतः सन् जल (वसतीवरी निग्राभ्यादिजलों के) मध्य में रसरूप करि स्थित अग्नि मे हुतः सन् सुपर्ण (गरुडाकृति वा साधुपतन) होके दिव में शीघ्र चलता है। हरितवर्ण सोमही दिव में गया पर्जन्य रूप को धारण करि उदकदानद्वारा से धान्यभाव को प्राप्त होता अर्थात् व्रीहि आदि अन्नरूप होता है। कैसा धान्य कि पिशंग (परिपाक करि पीतवर्ण) होता है। बहुल (असंख्यात-चतुर्विध भूतग्राम जीवन पर्याप्त। पुरुस्पृह (बहुत जिस धान्य को इच्छा करते तिस रूप) होता है। कैसा हरि कि कनिक्रदत् (पर्जन्यरूप अत्यर्थ गर्जता॥ ९०॥

देवं-देवं वोऽवसे देवं-देवमभिष्टये। देवं-देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया॥ ९१॥

मनुदृष्टा वैश्वदेवी। देवं-देवं + (जितने देवता तिन तुम्हें पालन के अर्थ हम बुलाते हैं। अभिलषितफलप्राप्ति के अर्थ देव-देवं हमबु॰। अन्नलाभ के अर्थ देवं-देवं हु॰। कैसे हैं हम कि देवया (देवतायाथा-

+ वीप्सार्थोऽभ्यासः।

त्म्यानुसंधानपरा) बुद्धि करि स्तुति करते वा स्वरादिसौष्ठवकरि दीप्यमाना स्तुति करि स्तुति करते॥९१॥

दिवि पृष्टोऽअरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन्। क्ष्मया वृधान ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः॥९२॥

इन्द्रसुतमेधदृष्टा वैश्वानरी। जो अग्नि द्युलोक में पृष्ठः (सिक्तः) आदित्यात्मा करि स्थितः सन् प्रकाशै है। कैसा अग्नि कि सबनरें का हित। बडा। किं च वोह अग्नि स्वप्रकाश करि लोकानुग्रह के अर्थ रात्रिजनिततम को निवर्त कर्ता है। कैसा कि पृथिवीस्था मनुष्यां करिदिये हवि से वर्धमान अत एव ओजसो चनोहितः (ओषधिपाकक्षम तेज करि अन्न के अर्थ हित अर्थात् अन्ननिष्पादकः॥९२॥

इन्द्राग्नीऽअपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः। हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत्॥९३॥

सुहोत्रदृष्टा इन्द्राग्निदेवत्या प्रवल्हिका। हे इन्द्राग्नी यह स्वयं पादरहिता उषापादयुक्ता सोती हुई प्रजा के अर्थ प्रथम भाविनी सती आती है और वोह तिस प्रजा के शिरो हित्वी (निद्रात्याजन करि प्रेरयित्री वा आप अशिरस्कासती) प्राणियें की वागन्द्रिय करि शब्द कराती हुई प्रसरती है। एवं चरती हुई उषा एकदिन (अहोरात्र) करि त्रिंशत्संख्याक पदों (गमनसाधनभूत मुहूर्तों) को निरन्तर में क्रमती है॥ यद्वा वाक्यश्लेषेऽर्थः। इन्द्र (प्राण) अग्नि (पुरुष) हे

इन्द्राग्नी तुम्हारा एतत्कर्म जो पादरहिता (गद्यात्मिकाब्यीलक्षणायह वाणी) प्रथमभाविनी सती आता है पादयुक्तों रामायणभारतादिश्लोकात्मक वाल्मीकि व्यासादि वाणीके सकाश से। वेदवाच: प्राथम्यं श्रुत्योक्तम् ततो ब्रह्मैव प्रथम सृज्यतेति। एवं प्रथमजाया वाणी का अविकृतत्व निर्णय करि मानुष्या वाणी का विकृतत्व कहिता है हित्वी शिर इति प्राधान्यात् आख्यातपदमुच्यते अभ्याज गां दण्डेन शुक्लां गां दण्डेनाभ्याजेत्येवं लौकिक्या वाणी पदप्रयोगानियमाभाव से शिर: स्थानीय आख्यातपद को हित्वा (छोडिके) विदुष: (विद्वानोंकी) वागिन्द्रिय करि अतिवदन्ती सती चरति (प्रकाशी होती है। एवं चरन्ती वोह त्रिंशत्पदों को निक्रमण करती है (यहां पद शब्द अङ्गुलवाची है- मूलाधार से ले मुख पर्यन्त त्रिंशदङ्गुलों को क्रामति। एवं वाग्विषयोऽर्थ:॥८३॥

> देवा॒सो॒ हि ष्मा॒ मन॑वे॒ सम॑न्यवो॒ विश्वे॑ सा॒कं सरा॑तयः। ते नो॑ऽअ॒द्य ते॑ऽअप॒रं तु॒चे तु॒ नो॒ भव॑न्तु वरिवो॒विद॑:॥८४॥

मनुदृष्टा वैश्वदेवी। ते प्रसिद्धा विश्वे देवा: राकी हुए आज (वर्तमान कालमें) हमारे को धन प्रापका: हों। पुन: भविष्यत्काल में हमारे तुचों + (पुत्रादिकों) के अर्थ धनप्रापका: हों। कैसे हैं ते कि मुरु मनु नामक मुनि (मन्त्रदर्शि) के अर्थ समन्यव: (एकमत्य को प्राप्ता: वा क्रोध सहित वर्तमाना: अर्थात् हमारे शत्रुहनन के अर्थ क्रोधयुक्ता: तथा सरातय: (दानसहिता: अर्थात् दातार:॥८४॥

+ तुचित्यपत्य नाम निघं० १०.२९

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण॥५५॥

नृमेधदृष्टे द्वे मरुत्वद्गुणविशिष्टेन्द्रदेवत्ये। हे बृहद्भानो (बड़ी दीप्तियोंवाले) हे मरुद्गण: (मरुत हैं गण जिसके वोह) हे इन्द्र देवा: (वसुरुद्रादित्या:) तेरे सख्य (मैत्री) के अर्थ येमिरे कैसे कि इन्द्र हमको सखिभाव के अर्थ वरण करै इस अभिप्राय से अपने को संयत करते हुए सो तू अभिशापों (शत्रुप्रयुक्तापवादों) कों निवर्त करता है। अथ (पीछे) द्युम्नी (अन्नवान् वा यशस्वी) सर्वत: धनवान होता है। कैसा है तू कि अशस्तिहा (निन्दित असुरों का मारने हारा। इन्द्र: (ऐश्वर्यवान्। भाव यह है कि जो दुष्टहन्ता अभिशापनाशक यशस्वी तेजस्वी बहुभृत्यसेव्य है तिस के सख्य को अन्य भी यत्न करते हैं यह युक्त है॥५५॥

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥५६॥

हे मरुत: अपने स्वामी इन्द्र के अर्थ तुम ब्रह्म (वेद, सामरूप स्तोत्र) को प्रकर्षेण उच्चारण करो। कैसे इन्द्र कि बडे। ततो वृत्रहा (वृत्र, असुर वा पापी का मारने हारा। किस करि कि अपने आयुध शत हैं पर्व (धाराएँ वा ग्रन्थियें) जिस की तिस वज्र से। कैसा वृत्रहा कि शतक्रतु (बहुकर्मा वा बहुप्रज्ञ॥५६॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पू

वेथा। इमा उ त्वा यस्यायमयᳬ सहस्रमूर्ध्वऊ षुणः॥
॥९७॥

इतिसᳬहितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इतिश्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशाखीयायां वाजसने-
यसᳬहिताया दीर्घपाठे त्रयस्त्रिᳬशोऽध्यायः॥३३॥

मेधातिथिदृष्टा माहेन्द्री। इन्द्र इस ही यजमान के वृष्ण्य (वीर्य) और शव (बल) को बढाता है। कहां से कि अभिषुत सोम के विष्णु (सर्वशरीरव्यापक मद में से यज्ञा विष्णो (यज्ञ में अभिषुत के इतिसम्बन्धः) अर्थात् सोमपान करि मत्त इन्द्र यजमान के महात्म्य और बलको बढाता है। किं च इन्द्र के तिस (उक्त) यञ्चन (वीर्योदिवर्धनरूपमहिमान) को इस काल में भी मनुष्य आनुपूर्व्येण स्तुति करते हैं नत्र दृष्टान्तः जैसे पूर्वऋषिस्तुति करते हुए ऐसे अब भी मनुष्य स्तुति करते हैं इत्यर्थः॥इमा उत्वा-यस्याऽयम्-अयंसहस्रम्' ३३-८१-८३· ऊर्ध्व ऊ षु णः ११-४२·एताः प्रतीकोक्ताः॥ ९७॥

इतिभाष्येसप्तमोऽनुवाकः ७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरोदेयात्स्वयं ब्रह्मसनातनः॥३३

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जयकिशोर देववर्म्मात्मज रौक्मिणेय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येखिलप्रकरणेसर्वमेधादि ब्रह्मयज्ञारम्भान्तवर्णनो नाम त्रयस्त्रिᳬशोऽध्यायः॥३३॥

इत्येवं विष्णुरिति श्रुतेः॥

हरिः ओम्
ओं नमो यज्ञपुरुषाय
पञ्चात्मकं हरिं पंच साधनैर्वेद्यरूपकम्
स्वानंद दायकं कृष्णं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः ३४

म० १. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसं-
कल्पमस्तु ॥ १॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय
गिरि प्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
चतुस्त्रिंशोऽयमध्यायो ब्रह्मयज्ञार्थईर्यते ३४

अनारभ्याधीतोऽध्यायः आपितृमेधात् आदित्य याज्ञवल्क्यदृष्टा मंत्रा पाठे विनियुक्ताः ॥ षड्ऋचस्त्रिष्टुभो मनोदेवत्याः शिव संकल्पदृष्टाः ऋषिर्वदति। तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु (शिवः (कल्याणकारी धर्मविषयः) संकल्प जिसका तैसा हो अर्थात् मेरे मन में सदा धर्म ही हो न कदाचित्पाप हो। वोह क्या कि जो मन जाग्रत् पुरुष का दूर को चलता अर्थात् चक्षुराद्यपेक्षा करि दूरगामी है। और जो दैव (विज्ञानात्मा आत्मग्राहक)। और जो मन सोते हुए पुरुष का जैसे गया तैसे ही फिरि आता (स्वापकाल में सुषुप्तावस्थाविषें फिरि आजाता है। और जो दूरंगमम् (दूर चलता अर्थात् अतीतों आगत वर्तमान विप्रकृष्ट व्यवहित पदार्थों का ग्राहक। और जो मन ज्योतिओं (प्रकाशकों श्रोत्रादीन्द्रियों) का एक ही

१ मनःसंकल्पादुद्भवमानं धर्म्यं शुभमिति श्रुतेः

ज्योति(प्रकाशक)प्रवर्तक·प्रवर्तित ही श्रोत्रादीन्द्रियें स्वविषय में प्रवर्ते हैं। आत्मा मन करि संयुक्त होता है मन इन्द्रियों से इन्द्रिय अर्थ से इस न्यायोक्ति से मनः सम्बन्धमन्तरातिन्हों की अप्रवृत्ति है। तादृश मेरा मन शान्तसंकल्प हो ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

मेधावि लोग यज्ञ में जिस मन से कर्मों को करते हैं †। किन्हों में कि विदथों (यज्ञसम्बन्धि हविरादि पदार्थों के ज्ञान) में। कैसे मेधाविनः कि अपसः (कर्मवन्तः सदाकर्मनिष्ठः)। तथा धीराः (धीमन्तः) और जो मन अपूर्व (इन्द्रियों से प्रथम वा आत्मरूप। और जो यजने को शक्त। और जो प्रजाओं (प्राणिओं) के शरीर के भीतर में स्थित हैं तादृश मेरा मन शिवसंकल्प हो ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

जो मन प्रकर्षेण ज्ञान जनक और जो सामान्य विशेषज्ञान जनक और जो धैर्यरूप। और जो जनों के भीतर में वर्तमान हुए परज्योतिः (सब इन्द्रियों का प्रकाशक। और जो अमरण धर्मि आत्मरूप जिस से ऋत में जिस मन विना कोई भी कर्म नहीं करते हैं अर्थात् सब कर्म में प्राणिओं के मन की पूर्व प्रवृत्ति है। तादृश मेरा ॥३॥

† मनः स्वास्थ्य विना कर्माप्रवृत्तेः।

* इतरेन्द्रियाणि बहिःस्थानि मनस्त्वन्तरिन्द्रियमित्यर्थः।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥४॥

जिस मन करि यह सब परिगृहीत (सर्वतः ज्ञात) है। यह कि भूत वर्तमान भविष्यत् कालसम्बन्धि वस्तु अर्थात् त्रिकाल सम्बद्ध वस्तु में मन प्रवर्तै है श्रोत्रादिक तो प्रत्यक्ष ही ग्रहण करत हैं। कैसे जिस कि अमृत (शाश्वत मुक्तिपर्यन्त अर्थात् श्रोत्रादिक नाश होते हैं परंतु मन अनश्वर है। और जिस करि यज्ञ (अग्निष्टोमादि) विस्तारिये हैं। कैसा यज्ञ कि सप्त होता (देवताओं के आह्वाता होता १ प्रशास्ता २ ब्राह्मणाच्छꣳसी ३ पोता ४ नेष्टा ५ आग्नीध्र ६ अच्छावाक ७) हैं। तादृश०॥४॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥५॥

जिस मन में ऋचाएँ प्रतिष्ठिता हैं जिस में सामाएँ प्रतिष्ठिता जिस में यजुषिएँ प्रतिष्ठिता हैं +। तत्र दृष्टान्तः। जैसे रथचक्र की नाभि के मध्य में आरा प्रतिष्ठित हैं तद्वत् छन्दजाल मन में। किंच प्रजाओं का सर्व (सर्वपदार्थविषयि) चित्त (ज्ञान) जिस मनमें ओत प्रोत (पटजैसे) निहित है †। तादृश मेरा मन प्रशान्तव्यापार हो॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशु-

† मनः स्वास्थ्ये एव ज्ञानोत्पत्तिर्मनोवैयग्र्ये ज्ञानाभावः।

+ ऋगादिशब्दराशिर्मनस्येव प्रतिष्ठितो भवति।

+ मनसः स्वास्थ्ये एव वेदवाक्यानि स्फुरन्ति ... मनसि ...

भिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे
मनः शिवसंकल्पमस्तु॥६॥

जो मन मनुष्यों को इधर उधर से अत्यर्थ लाता है (मनःप्रेरिता ही प्राणी वर्तें हैं मनुष्यग्रहण प्राणिमात्र का उपलक्षक है। तत्र दृष्टान्तः। जैसे शोभन सारथि कशा करि अश्वों को लाता है। द्वितीयो दृष्टान्तः जैसे शोभनसारथी रश्मिओं करि अश्वों को लाता है इत्यनुषङ्गः। उपमाद्वयम् प्रथमायां नयनम् द्वितीयायां नियमनम् तैसे मन प्रवर्ते और नियच्छे है नरों को इत्यर्थः। और जो मन हृदय में स्थित है (हृदय में ही मन उपलभिये है। और जो मन अजर (जरारहित बाल्य यौवन स्थाविरों में मन के तिस अवस्थात्व से। और जो मन वेगवत् +। तादृश॰॥६॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्। यस्य त्रितो
व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत्॥७॥

अगस्त्य दृष्टा उष्णिक् अन्नस्तुति। तिस बल के धारयितार अन्न की स्तुति करता हूं। तिस किसे कि जिस अन्न के बल करि त्रितः (त्रिस्थान इन्द्र) वृत्र (दैत्य) को विपर्व (विगतसम्बन्धन) करि के विविधमर्दन करता हुआ अर्थात् इन्द्र ने वृत्र अन्न बल ही से मारा॥७॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि। क्रत्वे
दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंषि तारिषः॥८॥

चतस्रोऽनुष्टुभः द्वयोरनुमतिर्देवता। इत् निपातोऽनर्थकः। हे अनुमते तू हमारे कहे को बोधन करि। और हमारा सुख ही करि। पु-

+ न वै वातात्किंचनाशीयोऽस्ति न मनसः किंचनाशीयोऽस्तीति श्रुतेः।

नः हमारे क्रतु (संकल्प) और दक्ष (तत्समृद्धि के अर्थ) अर्थात् सं-
कल्पसिद्धि के अर्थ हमें प्राप्त करि हमारी अवस्थाएं बढाय॥८॥

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अग्निश्च
हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः॥९॥

अनुमति आज हमारे यज्ञ को यज्ञिय देवताओं में आज्ञा देवे औ-
र हवियों का वोढा अग्नि यज्ञ को य॰। किं च हवियें देनेवाले य-
जमान के अर्थ अनुमत्यग्नी सुख रूपी होवें॥९॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व
हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥१०॥

हे गृत्समदहष्टे आद्यासिनीवाली देवता। हे सिनीवालि हे पृथुष्टु-
के (पृथुकेशभारे वा महास्तुते वा पृथुकामे) जो तू देवताओं की भ-
गिनी (बहनि) है सो तू आहुत हव्य को ग्रहण करि और हे देवि ह-
मारे अर्थ प्रजा को दे॥१०॥

अ॰ २ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः। सरस्वती
तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥११॥

सरस्वतीनदीदेवत्या। जे दृषद्वत्याद्याः पांच नदिएं सरस्वती को जाती
हें कैसी कि समान हें प्रवाह जिन्हों के ते। सो सरस्वती ही पञ्चधा
देश में नदी हुई (पांचों अपने नामों को छोडि सरस्वती ही
हुई॥११॥

त्वमग्ने प्रथमोऽअङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभ-
वः शिवः सखा। तव व्रते कवयो विद्मनापसो-

जायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥२२॥

ततस्त्र आग्नेय्यः हे जगत्यौ आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टे अन्ये त्रिष्टुबनुष्टुभौ भारतोदेवश्रवा देववातश्च दृष्टे। हे अग्ने तू देवताओं का आद्यो मित्रभूतः तूही हुआ। कैसा है तू कि अङ्गिराः (अङ्गोका रस वा यजमानों के अर्थ सुख। ऋषि (द्रष्टा। देव (द्योतमान। शिव (कल्याण। किंच तेरे व्रत (वर्तमानकर्म) में मरुतः ऐसे हुए। कैसे कि क्रान्तदर्शिनः। विद्मनापसः (विदितकर्माणः। भ्राजदृष्टयः (शोभमान आयुध जिन्हों के ते ॥२२॥

त्वं नोऽग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य। त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥२३॥

रक्षणार्थो मन्त्रः। हे अग्ने हे देव (द्योतमान) हे स्तुत्य तेरे कर्म में वर्तमान धनवानों (यजमानों) को पालि। हमारे शरीरें को पालि। किन्हें करि कि अपने पालनों से क्यों कि तू सावधान पालन करते सन् पुत्र पौत्र और गौओं का रक्षक है ॥२३॥

उत्तानायामवभरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान। अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥२४॥

जो इडा (पृथिवी) का पुत्र अग्नि वयुने (अज्ञान कर्तव्यमें) अजनिष्टः (हुआ। कैसा कि अरुषस्तुपः (अहिंसक है ज्वालोच्छ्राय जिस का वोह। इस अग्नि का दीप्त बल उत्तानाा (अरणी) में अवाची

न हर। चिकित्वान् (अरणिबल को जानता। क्याबल इति चेत् जो अरणि कामिता सती सेत्कार अग्नि को तत्काल उत्पन्न करती है सो अग्नि उत्पन्न हुआ ॥१४॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥१५॥

हे जातवेदः (जातप्रज्ञान) हे अग्ने पृथिवी के स्थान देवयजनाख्य में और पृथिवी की नाभि उत्तर वेदी के मध्य में हवि वहने के लिये हम तुझे स्थापन करते हैं ॥१५॥

प्रमन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्। सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१६॥

चतस्र ऐन्द्र्यस्त्रिष्टुभः द्वे नोधाहष्टे। हम इन्द्र के अर्थ स्तोम (त्रिवृदादिक) को प्रमन्महे (जानते हैं। कैसे स्तोम कि बलहेतु। और अर्क (मन्त्र) अर्चाम (उच्चारण करते हैं+) अङ्गिरस्वत् (अङ्गिराओं ने जैसे स्तोम जाना और मन्त्र पढा तद्वत्। कैसे इन्द्र कि शवसानः (बलभिलषमाण) के अर्थ। पुनः कैसे कि गिर्वणसे (गिरः स्तुति करि सम्भजवाना है आत्मा को अभिलषितदान से स्तोतृयों के अर्थ वा गिरा करि इसे देवता भजते हैं तिस के अर्थ। पुनः कैसे कि शोभना स्तुतिओं करि स्तुति करता है तिस के अर्थ यजमानों को इति शेषः†। पुनः कैसे कि ऋग्मियाय (वेदमय वा स्तुति योग्य के अर्थ। पुनः कैसे कि नररूप के अर्थ। पुनः कैसे कि

+ धातूनामनेकार्थत्वात्

† तदुक्तम् त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठमर्त्यमिति ६।३७।

विश्रुताय (शौर्यदानवलादिलब्धख्याति के अर्थ ॥१६॥

प्र वो म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्यं॑ शवसा॒नाय॒ साम॑। येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥१७॥

बडे बल को अभिलषमाण इन्द्र के अर्थ बडे अन्न को तुम समर्पण करो (मुनियों का पुत्रादिकों प्रति वचन है। आङ्गूष्य स्तोम आघोष के अर्थ हित साम उच्चारण करो। क्योंकि हमारे पूर्व पितरः अङ्गिरसः जिस अन्न और साम करि अर्चन करते गाः (सूर्यकिरणों को प्राप्त हुए वोह ही सामों का लोक है वोह साम उच्चारण करो। कैसे अङ्गिरसः कि पदज्ञाः (आत्मस्वरूप को जानते ॥१७॥

इ॒च्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यासः॒ सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोमं॒ दध॑ति॒ प्रयां॑सि। तिति॑क्षन्ते अ॒भिश॑स्तिं॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा कश्च॒न हि प्र॑के॒तः ॥१८॥

हे भारतौ देवश्रवा देववातश्च दृष्टे। हे इन्द्र तेरे सकाश से कोई भी लोकान्तरः प्रकेतः (प्रकृष्टोज्ञानविशेषः) समन्तात् यतः होता है अतः सखायः (ब्राह्मणाः) तुम्हे इच्छा करते हैं अथ जे ब्राह्मणाः शुश्रुवांसः (अनूचानाः) ते +। कैसे ब्राह्मणाः कि सोमसम्पादिनः। इच्छन्तीति कथं ज्ञातम् तत्राह यतः ते सोम को अभिषव करते हैं और हवियों को धारण करते हैं। किं च जनो के अभिशस्ति (दुर्वचन) को सहते अर्थात् मनोवाक्कायसंयताः क्षान्तिपराः हैं ॥१८॥

+ मनुष्य देवा इत्युक्तै देवानां विप्राणां च सविलम्

न ते दूरे परमा चिद्रजांथ्स्या तु प्रयाहि हरिवो हरिभ्याम् । स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने ऽअग्नौ ॥१९॥

हे हरिवान् हृढसौहृद तुम्सेक्त के अर्थ समिध्यमान अग्नि में ये प्रातः सवनादीनि किये हैं और ग्रावाणः अभिषव कर्म में जोडे हैं इस हेतु हरी अश्वों करिके आगमन करि। ननु स्वर्ग से अतिदूर में कैसे मेराजाना यह नहीं कहता है कि दूरदेशस्थस्थान तुम्हें दूर नहीं हैं अर्थात् अति दूरभी तेरे निकट हैं इस हेतु आ ॥१९॥

अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिंथ्स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् । भरेषुजांथ्सुक्षितिंथ् सुश्रवसं जयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥ २०॥

चतस्रः सोमदेवत्यास्त्रिष्टुभः गोतमदृष्टा। हे सोम तुम्हें जयन्त (उत्कर्षेण वर्तमान) को अनुमदेम (अनुसरण करते हम हृष्ट होवें। कैसे तुम्हें कि युद्धोंमें अनभिभूत को। पुनः कैसे कि सेनाओंकेप्रतिपालयितार। दिवि को सम्भजन करते। जलों को सम्भजन करते। बल के रक्षक। संग्रामों के जेतार। सुनिवास। शोभनकीर्तिवाले को॥२०॥

अ० ३ सोमो धेनुंथ् सोमो अर्वन्तमाशुंथ् सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदथ्यंथ् सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२१॥

जो यजमान इस सोम के अर्थ हविदेता है तिस के अर्थ यह सोम धेनु देता है। और शीघ्र अश्वको सोम देता है। और वीर(पुत्र) को सोम दे-

ता है। कैसा पुत्र कि कर्म में साधु। गृह में साधु। यज्ञ में साधु। पित्राज्ञाकारी (विनीत॥२१॥

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपोऽअजनयस्त्वं गाः। त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥२२॥

हे सोम तू ये सब ओषधीएँ जल गौएँ उत्पन्न करता हुआ। तू विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को विस्तारता हुआ और तू तेज (आदित्यात्मा) करि अन्धकार को दूर करता है अर्थात् सर्वात्मा तू है॥२२॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभियुध्य। मा त्वातनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ॥२३॥

हे देव सोम बलवन् देवसम्बन्धि मन सहित धन के भाग को हमारे अर्थ दे। एवं दानप्रवृत्त तुझे कोई मत बाँधो। कुतस्त्वमेवमुच्यसऽइति चेत् यतः तू वीरकर्म का ईश्वर है। किं च गविष्टौ (स्वर्गेषणा विषयभूता में) दोनों लोक प्राप्त्यर्थ चिकित्सा करि (उभय लोक प्रतिबन्धक विघ्न को निवर्तकरि। देवमन को प्राप्त हो लब्धधना और अरोगा सत्कर्म करते जैसे स्वर्ग को जावें तैसे करि इति वाक्यार्थः॥२३॥

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्। हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि॥२४॥

चतस्रः सावित्र्यः आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टाः द्वितीया जगती

त्रिष्टुभोऽन्याः। वोह सविता देव आवे। क्या करने कि हविर्देनेवाले य-
जमान के अर्थ वरणीय रत्नों को देने वा स्थापन करने। कैसा कि हिर-
ण्याक्षः (हिरण्यकीसी कान्तियुक्त नेत्र जिस के वा अमृतदृष्टि। वो-
ह कौन कि जो सविता पृथिवी सम्बन्धिनी आठौ ककुभः (दिशाएं)
प्रकाश करता हुआ। और जो तीनि धन्व (लोकों) को प्रका०। और जो
योजन गव्यूति क्रोशादि † अध्व (मार्ग) परिमाणविशेषों को प्रका०।
और जो सप्तसिन्धुओं गङ्गादि सप्तनदीओं) को प्रका०। उपलक्षण-
मेतत् सर्वजगत्प्रकाशकः सविता रत्नों को देने आवे॥२४॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी
अन्तरीयते। अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णे-
न रजसा द्यामृणोति॥२५॥

सविता (प्रसविता) सूर्यः दोनों द्यावापृथिवीओं के मध्य में जब कि
आता है तब अन्धकारलक्षण रोग को निवर्त करता है। अथ ज-
ब कि अस्तमय समय में जाता है तब अन्धकारलक्षण करि द्युलो-
क को अभिव्याप्त करता है। कैसा सूर्य कि हिरण्यपाणि। कृताकृ-
त प्रत्यवेक्षक॥२५॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ या-
त्वर्वाङ्। अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्र-
तिदोषं गृणानः॥२६॥

जो देव (रवि) राक्षसों और यातुधानों (असुरप्रकारों) को अपगमन
कराते सन् उदय होता है वोह देव हमारे अभिमुख आवे। कैसा दे-

† क्रोशः प्रसिद्धः तद्द्विगुणो गव्यूतिः तद्द्विगुणितो योजनम्:

कि हिरण्य हस्तः (हिरण्य दानार्थं हाथ में जिस के वा रूपेण। असुरः (प्राणें को देता। सुनीथः (कल्याणस्तुति। साधु सुखयिता। धनवान्।) प्र प्रति दोष (प्रतिजन दोष श्रुति स्मृति विहित धर्म पराङ्मुखों के जितने दोष तिन) को उच्चारण करता उपभोगार्थं को इत्यभिप्रायः॥ २६॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरि-
क्षे। तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो
अधि च ब्रूहि देव॥ २७॥

हे देव हे सवितः पन्थाः (मार्गाः) अन्तरिक्ष में साधुकृताः (धात्रा) वर्तेहैं। कैसे हैं ते कि पूर्वकालों में हुए। रेणुरहित। तिन मार्गो करि हमें अवप्राप्त करि इति शेषः। पुनः चलता हमें रक्षा करि और अधिब्रूहि अङ्गीकारिके कहि कि ये मेरे वा हमारा जो हित वोह उपदेश करि यद्वा अधिक कहि कि ये महा याज्ञिक दातार हैं। कैसे मार्गो कि सुगमनों अर्थात् अन्न पान प्रभूतों करि॥ २७॥

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रि-
याभिरूतिभिः॥ २८॥

आश्विन्यस्तिस्रः एका गायत्री प्रस्कण्वदृष्टा। हे अश्विनौ तुम दोनों हमारे अर्थ अविद्रीर्ण (अखण्डिता) पालनों सहित शर्म (सुख वा शरण) को देओ। और दिये सुख की पालन करो इत्यर्थः॥ २८॥

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा
मनीषाम्। अद्यूत्येऽवसे निह्वये वां वृधे च नो
भवतं वाजसातौ॥ २९॥

हे त्रिष्टुभो कुत्सदृष्टे। हे अश्विनौ हे दर्शनीयौ हे सेकारौ तुम हमारी वाणी को कर्मवती करौ तथा हमारे मन की इच्छा को कर्मवती करौ। अर्थात् मन वाणी से यज्ञ करें तैसे करौ। क्यों कि हम तुम्हें बुलाते हैं किस निमित्त कि अघृत्य (सन्मार्गागत +) अन्न के दानार्थ। किंच वाजसानि (यज्ञ में) हमारी वृद्धि के अर्थ होओ॥२९॥

द्युभिरक्तुभिः परिपातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥३०॥

हे अश्विनौ दिवसों और रात्रियों करि हमलोगों को सर्वतः रक्षा करो। किन्हीं से कि सौभगों (शोभनधनों) अनुपहिंसितों से अर्थात् अखण्डितधनों से हमें रक्षा करो। किंच मित्र॰ वरुण॰ अदिति॰ सिन्धु॰ और द्यौ॰ ये हमारे उस तुम से किये पालन को पूजन करें अर्थात् मानें॥३०॥

अ॰ ४॰ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥३१॥

व्याख्याता ३३-४३॥३१॥

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः। दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥३२॥

भरद्वाजपुत्री कश्यपादृष्टा रात्रिदेवत्या पथ्याबृहती। हे रात्रि जिस

+ घृताद्यागतं घृते भवं वा घृत्यम् न घृत्यम् अघृत्यम् यस्मिन् घृताद्यागतं कर्मीर्थं न भवतीत्यर्थः पुष्पान्ते घृतमन्त्रेषामयन्यायधनागमानामुपलक्षकम्।

गुरु कीरि पार्थिवं रजः (पृथिवीसम्बन्धिलोकः) पितुः (मध्यमलोक) के स्थानों सहित समन्तात् पूरती है। और जो तू द्युलोक के स्थानोंको महती सती व्याप्त होती है। तिस तेरा तम आवर्ते तथापि प्रवर्ते है कैसा तम कि त्वेष (महाप्राग्भार॥३२॥

उषस्तच्चित्रमाभरास्मभ्यं वाजिनीवति। येन तोकं च तनयं च धामहे॥३३॥

उषो देवत्या गौतमदृष्टा पुरोष्णिक्। हे उषः हे वाजिनीवति (अन्नवति) हमारे अर्थ वोह (प्रसिद्ध) आश्चर्यकारि महनीयधन दे किजिस धन करि हम पुत्र और पौत्र (सव संतानवर्ग) को पुष्ट करें॥३३॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम॥३४॥

सप्तर्चं वसिष्ठदृष्टं आद्या जगती बहुदेवत्या। हम प्रातः + पुनः पुनः
+ प्रातः प्रातर्वीप्सावचनं॥
इन देवताओं को बुलाते हैं – इति प्रत्येकं सम्बध्यते। किन्हें कि अग्नि को इन्द्र· मित्रावरुणौ· अश्विनौ· भग· पूषा· बृहस्पति· सोम· और· रुद्र को॥३४॥

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह॥३५॥

पञ्च भगदेवत्यास्त्रिष्टुभः। हम तिस भग (आदित्य) को बुलाते हैं। कैसे को कि प्रातः जयनशील। उग्र (उत्कृष्ट वा उद्गूर्णदान। अदितिके

पुत्र। तिस किसे कि जो जगत का धारयिता। और जो आध्रश्चित् (मही तृप्त होता वा समन्तात् तृप्त होता वा अतृप्त-बुभुक्षित-दरिद्री वापि) जिस भग को भजता है अर्थात् उदय को इत्याह क्या करने कि स्वार्थ सिद्धि के अर्थ पूजने वोह ही सूर्योदय में भिक्षादि करि किंचित् पाता है ततः उदय को वाञ्छा करता है। तुरः (आतुर) भी जिस भग को भजता है उदय को दिवस में तिस के सुखोदय से रोगी की रात्रि कष्ट से जाती है यद्वा तुरो यमः वोह भी मारण के अर्थ दिनों को गिनता है। राजा भी जिस भग को भजता है इत्याह तिस के उदय में ही राजों की व्यवहारदर्शन करि सर्वेष्टसिद्धि है॥३५॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥३६॥

हे भगः हे प्रणेतः (प्रकर्षेण धन को प्राप्त करता है) हे भगः † हे सत्यराधः (अविनश्वर धन जिस का वोह) हे भग तू धन को देते सन् हमारे (रे) इस धी (प्रज्ञा वा कर्म) को ऊंची (वा) चला जैसे सूक्ष्मार्थों को देखें तैसे करि इति भावः। किं च हे भग हमें गो और अश्वों करि बढा। हे भग हम मनुष्यों (पुत्रादिकों) करि मनुष्यवन्त प्रकर्षेण हों॥३६॥

† आदरार्थं पुनः सम्बोधनम्

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाᳬसुमतौ स्याम॥३७॥

हे मघवन् (धनवन् रवे) और भी हम ऐसे भगवन्त (धनवन्त वा ज्ञान

वन्त) हों और सूर्य के अस्तमय में भग॰। और मध्यदिन में भग॰। और सूर्य के उदय में भग॰। किं वहुना सर्वदा हमारी धनवत्ता हो इत्यर्थः॥ किंच देवताओं की कल्याण बुद्धि में हम हों अर्थात् देवता हमारे में शोभना अनुग्रह विषया बुद्धि धारण करें॥३७॥

भग एव भगवाँ२॥ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह॥३८॥

हे देवताओ भग ही भगवान् (धनवान्) हो। फिरि क्या अदाता धनी देवताओं करि इतिभावः॥ तिस भगदत्त धन करि हम भगवन्त हों। एवं देवानुक्त्वाथ भगमाह हे भग सब ही मनुष्य तिस (प्रसिद्ध) तुम्हें इष्टसिद्धि के अर्थ अत्यन्त आह्वान करता है हे भग सो तू इस हमारे कर्म में अग्रयायी हो अर्थात् अग्रेसर होके सब कार्यों को साधि॥३८॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आवहन्तु॥३९॥

प्रातःकाल के अधिष्ठातार देवता अध्वर के अर्थ प्रह्वी होते हैं कैसे कि दधिक्रावा (अश्व) जैसे अग्न्याधान के अर्थ शुचि पद को। ते देवाः भग (आदित्य) को हमारे अभिमुख आगमन करावें कैसे भग कि वसु (धन) लाभ होता है जिस से तिसे। पुनः कैसे कि जैसे वाजिनः (वेगवन्त वा अन्नवन्त) घोडे रथ को चलाते हैं॥३९॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भ-

शुभ्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्ति-
भिः सदा नः॥४०॥

उषोदेवत्यात्रिष्टुप्। उषाएँ सदाकाल हमारे अज्ञानलक्षणतम
को दूर करें। कैसी उषाएँ कि अश्ववतीएँ गोमतीएँ वीरवतीएँ क-
ल्याणरूपाः जल को क्षरतीएँ सर्वतःधर्मार्थकामों को बढातीएँ।
एवं परोक्षं भाष्य प्रत्यक्षमाह हे उषाओ तुम स्वस्तिओं अविना-
शों करि हमें रक्षा करो॥४०॥

अ॰ ५॰ पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त
ऽइह स्मसि॥४१॥

हे पौष्ण्यो गायत्रीत्रिष्टुभौ आद्या सुहोत्रदृष्टा द्वितीयाऋजिश्व-
दृष्टा। हे पूषन् तेरे कर्म में वर्तमाना हम कदापि विनाश न हों। किं-
च इस कर्म में तेरे स्तुतिकर्तारः हों॥४१॥

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतोऽअभ्यान-
डर्कम्। स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं-धियꣳ
सीषधाति प्र पूषा॥४२॥

जो पूषा अर्कदेव को सर्वतः व्याप्त होता है कैसा कि वाञ्छितवेद-
लक्षण वचन करि अभिमुखीकिया। कैसा अर्क कि सब मार्गों का स्वा-
मी। वोह पूषा हमारे अर्थ शोकनाश करने हारे साधनों को देवै
कैसे शोक नाश करने हारे साधन कि चन्द्राग्राः आल्हादक है
अग्र जिन्हों की तिन साधनों के करने में आल्हाद होता है पुनः पू-
षा सब कर्मों को प्रकर्षेण सिद्धि करावै॥४२॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥४३॥

वैष्णव्यौ गायत्र्यौ मेधातिथिदृष्टे द्वयोर्ऋचोरेकवाक्यम्। जोविष्णु (यज्ञ) तीनि पदों (अग्निवाय्वादित्याख्यों) को व्याप्तहुआ। कैसा विष्णु कि जगत का रक्षक अहिंस्य। क्या करने कि इन तीनि पदों धर्मों (पुण्यों॰ कर्मों) कोधारण कराने॥४३॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥४४॥

तिस विष्णु (यज्ञ) का जो परमपद (ब्रह्मलक्षण) वोह ब्राह्मणलोगप्रकाशते (उपासते) हैं। कैसे ब्रा॰ कि विगत है संसार व्यवहार जिन्होंसे (निष्कामाः जागरणशीलाः अप्रमत्ताः) ज्ञान कर्म में समुच्चयकरने हारे॥४४॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते ऽअजरे भूरिरेतसा॥४५॥

भरद्वाजदृष्टा जगती द्यावापृथिवीदेवत्या। द्यावापृथिव्यौ वरुण (आदित्य) कीधरणशक्ति करि दृढी हैं अर्थात् वरुणने अपनी शक्ति से दृढी करीं। कैसी हैं ते कि घृतवतीएं (उदकवतीएं। भूतजातों की आश्रयणीयें। उर्व्यौ (वस्तीर्णे) पृथिव्यौ (पृथुलं+। उदक की दुहने हारीएं। सुरूपाएं। जराहिते। भूरिरेतसौ (बहुतरेतवालिएं)सब भूतों के रेत तिन्हों से ही उत्पन्न होते हैं॥४५॥

+ आयाम विस्ताराभ्यां महांतं विशेषणं द्वयेनोक्तम्।

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्। वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन्॥४६॥

त्रिष्टुब्विहव्यदृष्टा लिङ्गोक्तदेवता। जे हमारे शत्रु ते अप (अपगतवीर्य। निरुद्यम। पराभव) हों। यतः हम तिन शत्रुओं को इन्द्राग्निबल करि नाश करें। किंच आठौ वसु एकादश रुद्र द्वादश आदित्य ये मुझे ऐसा करें। कैसा कि उच्चस्थानस्थित। उत्कृष्ट। ज्ञातार। अधिपति (ईश्वर)॥४६॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना। प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥४७॥

हिरण्यस्तूपदृष्टा जगती अश्विदेवत्या। हे नासत्यौ हे अश्विनौ त्रिगुण एकादशों (त्रयस्त्रिंशत्संख्याक) देवों सहित मधुपेय (सोमपान) प्रति आओ। किंच आयु बढाओ। पापों को नाश करो। दौर्भाग्य को नाश करो। संयुक्तौ होओ। अष्टौ वसव इत्यादिना त्रयस्त्रिंशद्देवा गणिताः॥४७॥

एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः। एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥४८॥

अगस्त्यदृष्टा मारुती त्रिष्टुप्। हे मरुतः कारोः (यजमान का) यह स्तोम और यह गीः सत्या और (प्रिय वाणी) तुम्हारे अर्थ वर्ते हैं इति शेषः। कैसे यजमान कि मान्दार्य (में मेरा इस स्वस्वामि सम्बन्ध-

को दारण करता है तिस वीतराग) की यद्वा मुझे दारण करता इत्येवं शत्रुओं के प्रत्यय को स्थापन करता तिसकी। वा मन्दार (कल्पवृक्ष तिस) तुल्य अर्थात् कामपूरक की। मान्य (मानार्ह) की। किंच हे मरुतः तुम अन्ननिमित्त करि आओ किसलिये कि हमारे बाल्य यौवन स्थाविर अवस्था सम्बन्धिनी देही की स्थित्यर्थ (हमारे शरीर दृढी करने के लिये इतिभावः। किंच अन्न और बल को हम प्राप्त हों कैसे अन्न बल कि जीवितदातृ (अन्न और बल को प्राप्त हों इति प्रार्थना॥४८॥

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः। पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन्॥४९॥

ऋषिसृष्टिप्रतिपादिका त्रिष्टुप् प्राजापत्यो यज्ञदृष्टा। दैव्याः सप्त ऋषयः॰ देव (प्रजापति) के ये (प्रजापतिप्राणाभिमानिनः सप्त ऋषयः भरद्वाज· कश्यप· गोतम· अत्रि· वसिष्ठ· विश्वामित्र· जमदग्नि· संज्ञाः†। अन्वालेभिरे (सृष्टवन्तः सृष्टियज्ञ को इतिशेषः। क्या करिके कि अधस्तन कल्पोत्पन्नों अवसिताधिकारों के मार्गों को देखि अर्थात् पूर्व कल्पोत्पन्न ऋषियों करि जैसे सृजा गया तैसे सृजते हुए (सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयदित्युक्तेः। कैसे कि कि जैसे रथ्यः (रथमें साधु) इष्ट देश प्राप्त्यर्थ पहिले रश्मिओं (प्रग्रहों) को आलभते (स्पर्श करता वा सृजता है) तैसे ते भी सृष्टि यज्ञ को सृजते हुए। कैसे ऋषयः कि स्तोमसहिताः। गायत्र्यादि छन्दों करि सहिताः। आवृत् (कर्म) सहिताः। (श्रद्धासत्य प्रधान कर्मों के

† इमावेव गोतमभरद्वाजाविति० शत०१४·५·२·६· श्रुतेः॥

अनु ष्ठातारः । प्रभा सहिताः (शब्दप्रमाण परीक्षणतत्पराः।धीराः (धीमन्तः॥४९॥

आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम्। इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥५०॥

तिस्रः उष्णिक् शक्करी त्रिष्टुभः दक्षदृष्टाः। हिरण्यस्तुतिः यह हिरण्य जय के अर्थ मुझ विषे तिष्ठे। कैसा कि आयु के अर्थे हित तेज के अर्थ हित धन का वर्धक उद्भित् (धन वा स्वर्ग का प्रकाशक) वर्चस्वत् (अन्नसंयुक्त॥५०॥

अ० ६। न तद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुःस मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥५१॥

राक्षसलोग और पिशाचलोग तिस हिरण्य को नहीं हिंसा करसकते क्यों कि यह हिरण्य प्रथमोत्पन्न देवताओं का तेज ही है। अतएव जो हिरण्य को दाक्षायण (अलंकारत्व) करि धारण करता है वोह देवलोक में बहुत कालतक वसता है और वोह मनुष्य लोक में अपनी आयु को दीर्घ करता है (मनुष्यायु को अतिक्रम्य जीवता है॥५१॥

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्मान्जरदष्टिर्यथासम्॥५२॥

दाक्षायणाः (दक्षवंशोत्पन्ना ब्राह्मणाः) जिस हिरण्य को शतानी

क (बहुत सैन्यों वाले) राजा के अर्थ बांधते हुए। कैसे दाक्षायणाः कि सुमनस्यमानाः (मन में शोभन ध्यान करते शोभन मन करते) वोह हिरण्य अपने में बांधता हूँ किस लिये कि शत शरद्जीवने के अर्थ। जिस प्रकार हिरण्य बन्धनाख्य करि मैं दीर्घजीवी और जरदष्टि (जरा को व्याप्त वा जरा प्राप्त शरीर होंऊं तैसें बांधता हूं ॥५२॥

उत नो ऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥५३॥

ऋजिश्वदृष्टा त्रिष्टुप्। और अहिर्बुध्न्यः (रुद्रविशेषः) सुनें हमारे वचनों को इतिशेषः अज एकपात् (रुद्र वा प्राण) सुनें और पृथिवी सुनें और समुद्र सुनें और विश्वे देवा सुनें। और सुनि केते अहिर्बुध्न्यादयः हम को पालन करें कैसे हैं ते कि ऋत (सत्य वा यज्ञ) के बढाने हारे। मन्त्रों करि स्तुताः। कविशस्ताः (मेधावियोंकरि पूजिताः॥५३॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि। शृणोतु मित्रो ऽअर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो ऽअंशः॥५४॥

गार्त्समदोकूर्मदृष्टा आदित्यदेवत्या त्रिष्टुप्। इस वाणी जुहू (स्रुचा) करि आदित्यों के अर्थ होमता हूं (स्तुतिलक्षणवाणी बुद्धिरूपास्रुचा करि आदित्यों के अर्थ समर्पण करता हूं। कैसी वाणी कि घृतस्नूः (घृत प्रसारिणी वा घृतहोमसहचरिता। कैसे आदित्यों कि चिर-

काल दीप्यमानों के अर्थ। वोह स्रुचाहूयमाना हमारी वाणी सुनें। कौन कि मित्र· अर्यमा और भग। तुविजातः (त्वष्टा वा वात+)। वरुण· दक्ष· और अंश। एते सूर्यविशेषाः ॥५४॥

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदम-
प्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो
अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥५५॥

अध्यात्मवादिनी जगती। सप्त ऋषयः (प्राणाः* त्वक् चक्षुः श्रवण रसना घ्राण मनो बुद्धिलक्षणाः) शरीर में व्यवस्थित हैं ते ही सातों सदाकाल सावधान जैसे तैसे शरीर को रक्षा करते हैं। ते सातों सोते हुए मनुष्य के लोक (आत्मा#) को प्राप्त होते हैं। कैसे हैं सातों कि आपः (व्याप्त होते हैं देह को। तहां तिन ऋषीओं की लोकगमनावस्था में देवौ (दीप्यमानौ प्राणापानौ) जागरण करते हैं। कैसे कि अस्वप्नजौ (नही निद्रा जाती है जिन्हों में। तथा सत्रसदौ (जीवितदातारौ ॥५५॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रय-
न्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥५६॥

तृचो ब्रह्मणस्पतिदैवतः द्वे बृहत्यौ अघोरोकएवद्दष्टे तृतीया त्रिष्टुप् गृत्समदद्दष्टा। हे ब्रह्मणस्पते (ब्रह्मणः देवस्य पते) उतिष्ठ (ऊँचा· आरब्धकार्य हो। क्यों कि हम देवताओं को चाहने हारे तुझे याचना करते हैं अतः आगमन करि। तेरे आने के समीप में मरुतः आवें। कैसे मरुतः कि सुदानवः (शोभन दातारः। हे इन्द्र

+ सवितृ बृहस्पतिः प्रजापतिः

* ...

लोकशब्देन विज्ञानात्मा हृदयाकाशप्रतिष्ठ उच्यते

तू भी सह गमन के अर्थ प्रकर्षेण शीघ्र हो॥५६॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्। यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रोऽअर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥५७॥

ब्रह्मणस्पति निश्चय उक्थ्य (शस्त्रयोग्य मन्त्र) को प्रकर्षेण उच्चारता है कि जिस मन्त्र में इन्द्र· वरुण· मित्र· अर्यमा· और अन्यदेवाः निवासों को करते हुए। अर्थात् सर्वदेवाधारभूत शस्त्रपठनीय मन्त्र को कहिता है॥५७॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः। य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पितान्नपतेऽन्नस्य नो देहि॥५८॥

इति संहितापाठे षष्ठोऽनुवाकः६

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेय संहितायां दीर्घपाठेचतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

हे ब्रह्मणस्पते यतः तू इस जगत का नियन्ता है अतः प्रार्थना है कि मेरी कही स्तुति को बोधन करि। और मेरे तनयों (अपत्यों) को प्रीति करि। देवाः जिस भद्र (कल्याण) को पालन करते हैं वोह सब भद्र हमारे को हो इति शेषः। किं च सुवीराः (कल्याणपुत्राः) हो कर हम यज्ञ में बृहत् (महत्) बोलें (देवो भोगो इत्यादि उच्चारण करें। अथ चतस्रः कण्डिकाः प्रतीकोक्ताः य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत् १७·१७· विश्वकर्मा विमना। १७·२६· यो

नः पिता १७·२७· अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ११·८३· इति। ता ब्रह्म-
यज्ञेऽध्येयाः॥५८॥

इति भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः६

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्

पुमार्थांश्चतुरो देयात्स्वयं ब्रह्म सनातनः३४

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादा-
न्वय विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देववर्म्मात्मज रो-
हिणीय नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधर-
भाष्ये खिलप्रकरणे ब्रह्मयज्ञवर्णनो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्या-
यः॥३४॥ ॥समाप्तोऽयं ब्रह्मयागः॥ ॥ ॥

हरिः ओम्

ओंनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानंददाय कं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः३५

अध्यायस्य पितरो देवता आदित्या ऋषयो देवा वा

अ० १· अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः। अस्य लो-
कः सुतावतः॥ द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो द-
दात्ववसानमस्मै॥१॥ + अ-तः।अ॰।द्यु-स्मै।इ०॥१॥

ओंनमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थप्रदीपके

पञ्चत्रिंशोऽयमध्यायः पितृमेधार्थदर्शने ३५

त्रयस्त्रिंशेऽध्याये सर्वमेधसम्बन्धिनः कियतोमन्त्रानुक्त्वा प्रवायुमच्छेत्यारभ्य ३३।५५ अनारभ्याधीतान्मन्त्रानुक्त्वा चतुस्त्रिंशेऽध्याये तानेव समाप्येदानीं पञ्चत्रिंशेऽध्याये पितृमेधसम्बन्धिनो मन्त्रा उच्यन्ते स च पितृमेधो मृतस्य वर्षास्मरणे भवति वर्षस्मृतौ तु विषमवर्षेषु भवति एकतारकनक्षत्रे चित्रादौ दर्शे वाग्रीष्मे शरदि माघे भवति॥ पितृमेध करनेहारे द्विज करि कुम्भ में अस्थिसंचय करिये है। और मृतक के जितने अमात्य पुत्र पौत्र हैं तितने कुम्भ कर्मदिन में लाइयें हैं और कुम्भों से अधिक छत्र हैं। ततः अरण्य में कुम्भ विषें किये अस्थिसंचयन को ग्रामसमीप में लाकर शय्या में कुम्भ को स्थापन करि वस्त्र के एक देश से वेष्टन करि लोहमय बाजों के बाजते और वीणा के बाजते में मृतक के पुत्र पौत्र उत्तरीयों और वीजनाओं से अस्थि कुम्भ को बीजते हुए तीनि-तीनि प्रदक्षिणाएँ फिरें। कोईक आचार्य स्त्रियों को भी फिरना कहिते हैं। रात्रि के पूर्व मध्य अपर भागों में तिस दिन विषें बहुत अन्नदान करते और नाचते गाते बजाते और अस्थिकुम्भ के अर्थ अन्न को उपहरते हैं। फिरि उपप्रात अस्थिकुम्भसहिताः पूर्वोक्त कुम्भों और छत्रों को लेकर ग्राम से दक्षिण दिशा को बाहिर चलते हैं अध्वर्युयजमानामात्याः। श्मशानान्तकर्म करते जैसे रवि उदय हो तैसें रात्रि में आरम्भ करना तहां वन में चलिके ग्राम से मार्ग से और अश्वत्थ तिल्वक हरिद्र स्फूर्जक विभीतक श्लेष्मान्तक कोविदारादिकों से दूर में अन्यवृक्षगुल्मादिवृत वा ऊषर वा ऊ-

दक्प्रवण दक्षिणप्रवण वा सम में वा सुखकारि रम्य में वन वा उ-
दक से पूर्वभाग वा उत्तरभाग में वर्तमान गर्तवान् वीरणतृणवान्
प्रदेश में श्मशानार्थ दिक्कोण पुरुषप्रमाणक्षेत्र को मान करते हैं।
पैतृक्यां द्विपुरुषं समचतुरस्रं कृत्वा करणीमध्येषु शङ्कवः स समा-
धिरिति यजुःपरिशिष्ट॰ ७॰ २॰ शुल्वोक्तविधि करि वोह चतुरस्र उ-
त्तर और पश्चिम से पृथु (विशाल) होता है। तत्र साधनप्रकार। पूर्व
दक्षिणपार्श्वों से नौ ९ अङ्गुल अपने त्रयोदशांश करि अङ्गुलचतु-
र्थभाग सहित पुरुषप्रमाणमध्य में न्यून करियें हैं पश्चिमोत्तरपा-
र्श्वों से तितने पुरुषप्रमाण से अधिक तथा हि॰ पुरुषमात्रक्षेत्र की
अपक्षणया प्राची करिके तिस के प्रान्तों में शङ्कुएँ रखि सार्धाष्टादशा-
ङ्गुलहीना पुरुषद्वयप्रमाणा उभयतःपाशा रज्जु को मध्यम देश में
सल्लक्षणकरिके पूर्वा शङ्कुओं से तिस की पाश छोडि मध्यलक्षण
करि दक्षिण से चलाय दक्षिण कोण साधियें हैं ततः सार्धाष्टादशा-
ङ्गुलाधिका पुरुषद्वयप्रमाणा रज्जु उभयतःपाशा को मध्यलक्षणयु-
ता करिके शङ्कुओं के पाश छोडि मध्यलक्षण करि उत्तरतः चलाय
उत्तरकोण साधियें हैं इति। ततः पूर्वादिकोणों में पालाश शमी वा-
रण अश्मय चारि शङ्कुएँ रखियें हैं। इस कर्म करनेहारों के निक-
ट में कोई यजमानपुरुष तृणपूलक ऊंचा करिके धारण करे। क-
र्मसमाप्ति में घर को आकर तिसे घर में ऊँची करे प्रजावृद्धि के अ-
र्थ। इत्यादि वोध्यम्॥ कात्यायनः २१॰ ३॰ ३२॰ अपप्रादक्षिण्येन नि-
व्यादिन कीई हुई रज्जु से तिस क्षेत्र को समन्तात् अपदक्षिण

वेष्टित करि अपेतो यन्त्विति मन्त्रेण क्षेत्रमध्य पतित तृणपर्णा-
दिकों को पलाशशाखा करि क्षेत्र से बाहिर निकालै इतिसूत्रार्थः॥
अस्याध्यायस्य पितरो देवता आदित्या ऋषयो देवा वा।आद्या
गायत्री।पणयः(पराये द्रव्य को व्यवहार करने हारे असुरलोग)
निकलजावें।कैसे पणयः कि असुम्नाः(असुखकराः।तथा देव
पीयवः(देवताओं के द्वेष करने हारे।किमिति असुराणं अपग
मोऽर्थ्यते तत्राह इस अस्थिभूत यजमान का यह लोक(स्थान)
है।कैसे यजमान कि सोमाभिषव करने हारेका॥ द्युभिरहोभिरि
ति यजुः।यम इस यजमान के अर्थ अवसान(स्थान)दे।कैसा
स्थान कि द्युओं(ऋतुओं।)दिवसों और रात्रियों करि स्पष्टी कि
या(अर्थात् ऋत्वाद्यधिष्ठात देवताओं से प्रकटित स्थान इ-
स के अर्थ यम देवे॥१॥

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु।त-
स्मै युज्यन्तामुस्त्रियाः॥२॥

का॰२१॰३॰३४॰फिरि अध्वर्यु तिस पलाशशाखा को दक्षिणमा-
ही निकालि परिश्रितों से वेष्टन करि तिस क्षेत्र के दक्षिणतः
वा उत्तरतः छे ६ बैलों करि हल को जोडे तिस युज्यमान में युङ्क्ते-
ति सम्प्रेष्य सवितेति मन्त्र को जपे॥ गायत्री।हे यजमान सूर्य तेरे
शरीरों के अर्थ पृथिवी में स्थान को इच्छा करे(सविता की आज्ञा वि-
ना कोईभी ठैरने को समर्थ नहीं होता।द्वितीयं वाक्यमाह तिस स-
विता करि दिये क्षेत्र के संस्कारार्थ अनड्वाहः युक्ता होवें॥२॥

+ तदेन मृत्युमिश्रा होरपैद्य सलोकं करोतीति श्रुतेः १३.८.२.३।

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा। विमुच्यन्तामुस्रियाः॥३॥+

का॰२१॰४॰१॰२॰ अध्वर्यु सर्वतः वेष्टित रज्जु को अनुलक्षी करिके वायुः पुनात्विति प्रतिमन्त्रं पादेन-पादेन सीतायें (हलाई ये॰ हरैया) अप्रदक्षिण कृषै (जोतै) तहां पहिली सीता उत्तर पार्श्व में पश्चिम को कृषै दक्षिणतः सीरयोजनपक्षेऽपि तिस सीर (हल) को अप्रदक्षिण उत्तर से लाकर पहिले उत्तर से ही कृषै॥ चत्वारि यजूंषि १॰३॰ दै-पं॰२॰४॰ दै-त्रि॰ लिङ्गोक्तदेवतानि। हे पृथिवि तुम्हे वायु पुनातु (विदारै। सूर्य तुम्हे विदारै। अग्नि दीप्ति करि और सूर्य तेज करि तुम्हे विदारै॥ का॰२१॰४॰४॰ एवं पूर्वोक्त चारों मन्त्रों से चारों पार्श्वों में कर्षण करिके मध्य में भी सर्व क्षेत्र जैसे कृष्ट हो तैसे परिमिताः सीताः करिके बैलों को हल से छोडे विमुच्यन्तामिति॥ दै-ज॰ वृषदैवत्यम्। उस्रा (धेनु तिस) के अपत्य उस्रियाः (अनुड्वाहः) सीर से छूटें॥३॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥४॥

का॰२१॰४॰४॰ हल को दक्षिण दिशा में चुपके से फेंकि जुते क्षेत्र में सर्वौषधि बोवै॥ अनुष्टुप् व्याख्याता १२॰७९॰॥४॥

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आवपतु। तस्मै पृथिवि शं भव॥५॥

का॰२१॰४॰५॰ तिस पुरुषमात्र क्षेत्र के मध्य में मृतक के अस्थियों

+ सद्यसलवि पर्यावृत्योत्तरतः प्रतीचीं प्रथमाᳫं सीतां कृषति वायुः पुनात्विति सविता पुनात्विति जघनार्धेन दक्षिणामग्नेर्भ्राजसेति दक्षिणार्धेन प्राचीᳫं सूर्यस्य वर्चसेत्युत्तरेणोदीचीमिति श॰७॰२॰२॰६॰ श्रुतेः।

+ वा-तु। भ्रा॰ स-तु। दू॰। अ-सा। उ॰ सू-सा। क॰। वि-याः। ल॰॥३॥

की राशि करैं और यह कर्म सूर्योदय काल में कर्तव्य है † ॥ सवितृ-
देवत्या गायत्री। हे यजमान सूर्य तेरे शरीरें (अस्थियें) को माता
(पृथिवी) की उपस्थ (गोदी) में स्थापन करैं। हे पृथि तिस सविता
करि स्थापन किये यजमान के अर्थ सुखरूपा हो ॥ ५ ॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

उष्णिक् प्रजापतिदेवत्या अस्थिनिवापे एव विनियुक्ता। असा-
विति नाम ग्रहणम् अनुदात्तत्वादामन्त्रितम्। हे देवदत्त उद-
क समीपवर्तिस्थान में प्रजापति देवता विषें तुम्हें स्थापन करता हूं। वो-
ह प्रजापति हमारे पाप को अत्यर्थ दहै यद्वा हमारे से निकालि-
हमारे शत्रु को दहै ‡ ॥ ६ ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो
देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा
नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥ ७ ॥

का॰ २१॰ ४॰ ७॰ दक्षिण को चलिकर चुपके से कुम्भ को डालि-
कर लौटि। यह कोई विघ्न भेजा है तिस के कुम्भ को डालिकर
लौटते में यजमान वा अध्वर्यु जपै ॥ मृत्युदेवत्या त्रिष्टुप् संक-
सुकदृष्टा। हे मृत्यो पराङ्मुख होके पर (अन्य) पन्था को अनु-
गमन करि। तमेव दर्शयति जो कि तेरा पन्था देवयान मार्ग
से इतर (तुच्छ) अन्य (पितृयानाख्य) है। किं च चक्षुष्मान् (ज्ञा-
नी) और सुनने हारा तेरा कुछ एक कहिता हूं (आदरार्थ वच-

‡ सायणोक्तम् ऋ॰ सं॰ भाष्ये वेदार्थ प्रकाशे म॰ १॰ अ॰ १४॰ सू॰ ९७॰ अपनः शोशुचदघम्

† यथा कुर्वतोऽभ्युदयादिति १३॰ ८॰ ३॰ २॰ श्रुतेः।

नम् नहि तस्यादृष्टमश्रुतं वास्ति षष्ठ्यर्थे चतुर्थ्यौ) क्या कि
हे मृत्यो हमारी प्रजा (संतति॰ वंश परम्परा) को मत हिंसा क
रि और हमारे वीरों (पुत्रों) को मत हिंसि॥७॥

शं वातः शंꣳ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः॥
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभिशू-
शुचन्॥८॥

का॰२१॰४॰८॰शंवात इति दो मन्त्रों करि तिन मध्य में न्युप्त अ
स्थिओं को यथाङ्ग (जो अस्थि जिस अङ्ग का तिस अस्थि से
तिस अङ्ग) को कल्पना करि प्राक्शिर पुरुषाकृति करिके ति
स के मध्य में पादमात्री इष्टका को चुप के से रखे॥ द्वे ऋचा वनु-
ष्टुब्बृहत्यौ विश्वेदेवदेवते। हे यजमान वायु तेरा सुखरूप हो॥हि
(पुनः)घृणिः(सूर्यकिरणः) तेरा सु॰इष्टका मध्य में और प्रतिदि-
शा तीनि-तीनि डाली हुई तेरी सु॰हों। और अग्निएँ तेरे सु॰हों।
और पृथिवी में हुए अग्निएँ तुझे सर्वतः न तपावें॥८॥

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भ-
वन्तु सिन्धवः। अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां
ते दिशः सर्वाः॥९॥

दिशाएँ तेरे अर्थ क्लृप्ता होंवें। जल तेरे अर्थ कल्याणकारिणीएँ
होंवें। और सिंधुएँ (समुद्र वा नदिएँ) कल्या॰। अन्तरिक्ष (आका-
श) तेरे अर्थ कल्याणकारि हो। सब दिशाएँ तेरे अर्थ क्लृप्ता हों। आ-
दरार्थं कात्स्न्यार्थं वा पुनर्वचनम्॥९॥

अश्मन्वती रीयते सꣳरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः। अत्र जहीमोऽशिवा येऽअसञ्छिवान्वय मुत्तरेमाभि वाजान्॥१०॥

का॰२१.४.२२. गर्त वा पूर्व वर्जित कृषी (जुती) हुई दिशा से मृदा लेकर तिस से विप्र का मुखमित क्षत्रिय का उरोमित वैश्य का ऊरूमित स्त्री का भगमित शूद्र का जानुमित वा सबों का जानुमित ऊंचा श्मशान को करि शैवल और कुशाओं से आच्छादि तिस के दक्षिणतः दो गर्त खोदि दूधजल से सम्पूरि श्मशान के उत्तर में सात ७ गर्तों को खोदि दक्षिणोत्तरों को जल करि पूरि उत्तर गर्तों में अध्वर्यु यजमान अमात्य तीनि पाषाणों को डालि कर अश्मन्वतीरिति मन्त्र करि तिस गर्त के ऊपर चलते हैं॥ विश्वदेवदेवत्या त्रिष्टुप् सुचीकहष्टा। हे मित्रो यह पाषाणवती नदी चलतीहै इस हेतु तुम उतरने के अर्थ प्रयत होओ। उठो (अभिमुखहोओ) प्रकर्षेण तिस नदी को तरो। किमिति क्यों कि इस प्रदेश में जे अशिवाः (अशान्ताः दुष्टा राक्षसादयः) हैं तिन्हें हम परित्याग करते हैं तिन्हों के त्यागने में सुख करों वाजों (अन्न विशेषों) को हम प्राप्त करावेंगे॥१०॥

अ॰ २. अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः। अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव॥११॥

का॰२१.४.२३. ते अमात्या यज्ञोपवीतिनः होके जल का उपस्पर्श करि हाथ में लिये अपामार्ग करि अपने शरीर को शोधें केचित् अपामार्गबीजों से उद्वर्तन करें॥ लिङ्गोक्तानुष्टुप् शुनःशेप

दृष्टा दुःस्वप्ननाशनी। हे अपामार्ग तू हमारे सकाश से अघ(मानस पाप) को दूर चलाय। और किल्विष (कीर्तिभेदक कायकपाय) को दूर च॰। कृत्या (परकृत अभिचार) को दूर॰। और रपः (वाचिक पाप) को दू॰। और दुःस्वप्न से उठे असुखरूप फल को हम से दूरि चलाय॥११॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥१२॥

का॰ २१.४.२४. सुमित्रिया इति मन्त्रेण स्नान करि के नूतनवस्त्रों को धारण किये अनड्वाहमिति मन्त्रेण वृषपुच्छ को स्पर्श करि उद्वयमिति मन्त्रेण यजमानामात्या ग्राम को आते हैं यद्यपि यहां सुमित्रिया इस मन्त्र से स्नान कहा तथापि सुमित्रिया इतिजल अञ्जिलि करि लेके दुर्मित्रिया इति शत्रु को सींचे का॰ १९.५.५५. द्वयं विधेयम् (दुर्मित्रिया --- द्विष्म इति यामस्य द्वेष्यः स्यात्तां दिशं परासिञ्चत्तेनैव तं पराभावयतीति १३.८.४.५. श्रुतेः॥ व्याख्याता ६.२२॥१२॥

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये। स न इन्द्र इव देवेभ्यो वन्हिः संतारणो भव॥१३॥

अनुष्टुप् अनडुद्देवत्या उत्तरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः ततः सर्वनाम्नोऽध्याहारेण सामर्थ्यम्। हम स्वस्ति (अविनाश) के अर्थ अनड्वाह को स्पर्श करते हैं कैसे कि सुरभी के अपत्य को। हे अनड्वन् सो तू हमारा दुःखनाशक हो। किं च तू वन्हि (देवताओं का

वोढा। तत्र दृष्टान्तः जैसे इन्द्र देवताओं के अर्थ तारक है॥१३॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥१४॥

उद्वयं तमिति ग्राम को आते हैं। व्याख्याता २०।२१॥१४॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्। शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन॥१५॥

का॰२१॰४॰२५॰ स्वनिवासग्राम और श्मशान के मध्य में वडाभारी मृदा का ढेला अध्वर्यु ही रखै॥मृत्युदेवत्या मनुष्यदेवत्या त्रिष्टुप् संकसुकदृष्टा।जीवों (विद्यमान जन्तुओं)के अर्थ परिधि (मर्यादा) को स्थापन करता हूं कथमिति चेत् कि इनजीवों के मध्य में अपर(कोई)क्षिप्र (वेदोक्त आयु से वरें) इस अर्थ (पितृलोक गमनकार्य को उद्देश करि) न जावे। ये जीवाः शतवर्षायुषः हों कैसे शतवर्षायुषः कि पुरूचीः (ज्ञानाध्यनयागानुकूलाः। किंच पर्वत (लोष्ट-ढेले) करि ही मृत्यु को अन्तर्हित करें ये जीवाः॥१५॥

अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥१६॥

का॰२१॰४॰२६॰ कज्जलादि करि नेत्रों को आंजि तेल से पैरों को चुपरि औपासन करने आवसथ्याग्नि को दर्भों से परिस्तरण करि वारणवृक्ष के अवयवों से चारि ४ परिधिओं को चारों दिशा में चुपके से राखि वारणस्रुवा करि एका आहुति दो २ ऋचा

ओं। से होमें। औपासनः प्रेतस्यैव तस्यैवाद्वारेण निरसनीयत्वा दिति हरिस्वामिनः कर्तुरेवौपासने होम स्तस्यैक देश निरसनमि ति कर्कोदयः॥ व्याख्याता १७॰३८॰॥१६॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृत योनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पु त्रमभिरक्षतादिमान्त्स्वाहा॥१७॥

अग्निर्देवत्या त्रिष्टुब् वैखानसहृष्टा। हे अग्ने तू ऐसा हो केसा कि आयुष्मान् (चिरंजीवी। तथा हवियों करि वृद्ध। तथा घृत मुख जिस का। घृत उत्पत्तिस्थान जिस का (उत्तरवेद्याधारणा भिप्रायमेतत्। सो तू गो सम्बन्धि घृत को पी कर इन जीवों को समन्तात् रक्षा करि। तत्र दृष्टान्तः जैसे पिता पुत्र को रक्षा क रता है। केसा घृत कि मधुर चारु (सुगन्धि) स्वाहा (सुहुतम स्तु॥१७॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत। देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ २॥ आदधर्षति॥१८॥

का॰२१॰४॰२७॰ अध्वर्यु यजमानामात्यों का परिदा (रक्षण) संज्ञक मन्त्र परीमे गामिति कहे॥ इन्द्रदेवत्यानुष्टुप् भरद्वा जात्मजशिरिम्बिठदृष्टा। ये जीवलोग गो (अनड्वाह) को प रिणीतवन्तः (अनुडुत्पुच्छालभनाभिप्रायम्। और ये जीवलो ग अग्नि को परिहृतवन्तः (यस्मिन्नग्नावेतत्कर्म कृतं तं परि जहुः (अद्वारेणौपासनं निरस्यतीत्येतदभिप्रायम्। ये देवाः

+ अपरः अप्नुर्दृष्टोसि आयुष्मानग्न इति

(कर्म में प्रकाश करते ऋत्विज:) तिन्हों में ऋव:(दक्षिणालक्षण धन) करते हुए। अत: इन कर्मों से कृतकृत्य हुए इन जीवों को कौन तिरस्कार करने को समर्थ होगा (अशक्यप्रतिक्रिया ये हुए इति भाव: ॥१८॥

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाह:। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥१९॥

का॰ २१·४·२८· आहुतिहोम के अनन्तर जहां हुता तिस औपासन के एकदेश को निरसै·प्रेत का ही उपासन इस पक्ष में सब को निरसै क्रव्यादमित्यर्धेन ॥ अग्निदेवत्या त्रिष्टुप्। जिस करि पुरुष जलता है तिस क्रव्याद अग्नि को अपुनरागमन के अर्थ दूर पहुंचाता हूं वोह गया हुआ क्रव्यादाग्नि यम के राज्य प्रति जावै कैसा कि रिप्रवाह: (पाप का नाश करने हारा ॥ का॰ २१·४·२९· इहैवायमिति यजमान जपै ॥ यह क्रव्यादाग्नि से इतर (अन्य) जातवेदा: (जात:प्रज्ञानोऽग्नि:) इस घर में देवताओं के अर्थ हवि को प्राप्त करै क्या करिके कि अपने अधिकार को जानिकर ॥ ॥इति पितृमेध: समाप्त:॥ उपधानासन्दी वृषभ अजीर्णयवों को तिस के दक्षिणात्व करि देवै जो इच्छा होतो सुवर्णादि भी देवै ॥१९॥

वह वपां जातवेद: पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके। मेदस: कुल्या उप तान्स्रवन्तु सत्या ए-

षामाशिषः संनमन्ताथं स्वाहा ॥२०॥

जातवेदोदेवत्या त्रिष्टुप्। अस्या विनियोगः श्रौत सूत्रे नास्ति गृह्यसूत्रेऽस्ति तथा हि पारस्कर॰३-३॰ मध्यमाष्टका गोपशु करि करियें है तिस धेनु की वपा को होमे वहवपामिति मन्त्रेण॥ हे जातवेदः (जान है धन जिस सें) पितरों के अर्थ तू वपा (धेनुसम्बन्धिनी चर्मविशेष) को प्राप्त करि। पराक्रान्त (दूरभी) जिस देश में स्थापितों इन पितरों को तू जानता है तहां प्राप्त करि इत्यर्थः। तिस वपा सें निकले मेद (धातुविशेष) की कुल्याः (नदियें) तिन पितरों प्रति उपस्रवें (प्रसरें। किंच इन देनेहारों के आशिषः (मनोरथाः) सत्याः अवितथाः) प्रह्वीहों। स्वाहा (सुहुतमस्तु। स्वाहेति ऋग्भिन्नं यजुः॥२०॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥ अप नः शोशुचदघम्॥२१॥

पृथिविदेवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा। अस्या अपि श्रौते विनियोगो नास्ति स्मार्ते प्रस्तरारोहणे शयने विनियोगः। तथा हि पारस्कर॰३-२॰ स्योना पृथिविनो भवेति दक्षिण करवट करि पूर्व में शिर करिके शयन करै॥ हे पृथिवि तू हमारी सुखरूपा हो। कैसी है तू कि अनृक्षरा (नहीं हैं चोर काँटे दुखदायि जिस में। तथा निवेशनी (साधु प्रतिष्ठाना। तथा सप्रथाः (सर्वतः विस्तारसहित। किंच हमारे अर्थ शर्म (शरण) दे॥ अतः परं यजुः तद्विनियोगो गृह्यसूत्रे सम्बन्धिमरणनिमित्ते स्नाने जलापनोदने तथा हि पारस्कर॰३-१०॰ सव्यस्यानामिकया अपनोद्यापनः शोशुचदे-

यमिति। यह जल हमारे पाप को अत्यन्त दहै॥२१॥

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा॥२२॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः२

इतिश्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशाखीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५

का॰२५॰७॰३७॰ साग्निक की पात्र प्रतिपत्ति के अन्त में दाह से पूर्वे पुत्र वा भ्राता वा अन्य ब्राह्मण आज्याहुति को होमें॥ अग्नि देवत्यागायत्री अनिरुक्ता। हे अग्ने तू इस यजमान से आधान काल में अधि उत्पन्न है। इस हेतु यह यजमान तुझ से उत्पन्न हो। असाविति विशेषनाम वचनः तथा हि देवदत्त स्वर्गलोक की प्राप्त्यर्थ तुझ से उत्पन्न हो। तेरा वंश ही हो इतिभावः। स्वाहा सुहुत मस्तु॥२२॥

इति श्री गिरिधर भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः२

श्रीवेदार्थप्रदीपेन नमोहार्दं निवारयन्। धुमार्थांश्चतुरोदेयाद्रमाधीशोगदाधरः ३५

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीय शाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देववर्म्मात्मज रौक्मिणेयनृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये पितृमेध वर्णनो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥ ॥आदितोऽनुवाकसंख्या॥३५॥

इतिसर्वानुक्रमणिभाष्येगिरिप्रसादरचितेचतुर्थाध्यायस्यचतुर्थःखण्डः४॥

आश्विनस्यासितेपक्षेऽमावायांवुधवासरे॥ ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे रिवल्यमन्त्राः समागमन् ॥ अतःपरं पञ्चभिरध्यायैः शुक्रमन्त्राभविष्यन्ति॥

अथ संक्षेपतः खिल्यमन्त्राणां सूचीपत्रम्

विश्वामित्रपुरीपनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाश्मयन्त्रालये मुद्रितम्
विक्रमाब्दाः १९२९ शकाब्दाः १७९४ चैत्रकृष्ण ७ भृगुवार ॐ शान्तिः ३

हरिःओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३६

ऋचं वाचं पञ्चाध्यायी दध्यङ्ङाथर्वणो ददर्श
आद्योऽध्यायः शान्त्यर्थो वैश्वदेवः

अ० १ ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये
चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥

दध्यङ्ङाथर्वणं नत्वा नासत्यौ च पुरंदरम्
वेदे पञ्चभिरध्यायैः शुक्रभाष्यं तनोम्यहम्

पञ्चाध्यायी अथर्वण के पुत्र दधीच ने देखी (दध्यङ्ह वा ऽआथर्वण एतर्ठं शुक्रमेतं यज्ञविदां चकारेति १४·१·१·२०·श्रुतेः) उग्रश्चेत्यग्नि को मन्त्रः ३९·७· अग्निर्ठंहृदयेनेत्यादि अध्याय समाप्ति पर्यन्त आश्वमेधिक हैं ३९·८–१३·तिन दोनों को छोडि कै॥का० २६·७·५८· प्रवर्ग्याचरण की आदि और अन्तमें ऋचं वाचमिति अध्याय करि शान्ति करण करना स्वाध्याय मन्त्र पाठ प्रवर्ग्य मन्त्रों की आदि में इस अध्याय के दर्शन से। अत एवोक्तम् का० अनुक्रम०४·५·॥

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अध्यायः शान्तिपाठार्थः षट्त्रिंᳪंशोऽयंसमीर्यते ३६॰

अध्यायो विश्वदेवदेवत्यः। पञ्च यजूᳪंषि लिङ्गोक्तदेवत्यानि। ऋग्रूपावाचा को मैं प्रपद्ये (प्रवेश करता॰ शरण जाता हूं। यजुरूप मन को प्र॰। प्राणरूप साम को प्र॰। चक्षु इन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय को प्र॰(वागादिकों का ग्रहण सप्तदशावयवोपलक्षण है अर्थात् सप्तदशावयव प्रजापति के लिङ्ग को प्र॰ भाव यह है कि त्रयीविद्या और लिङ्गशरीर को प्रवेश हुए प्रवर्ग्य नहीं नाश करै। तथा वागिन्द्रिय ओज (मानसबल धार्ष्ट्य) और पुनः ओजो ग्रहण से शरीर बल है और प्राणपानौ (उच्छ्वासनिश्वासवायू) एते एकीभूताः सन्तः मुरुविषें वर्त्ते हैं। अतोऽपि प्रवर्ग्य हम लोगों को न मारै इतिभावः॥१॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥२॥

बृहस्पतिदेवत्या पङ्क्तिः। प्रवर्ग्याचरण करि इति शेषः। मेरी चक्षुरिन्द्रिय का जो छिद्र (अवखण्डन) हुआ। हृदय वा बुद्धि का जो छिद्र हुआ। मन का वा जो अतितृण्ण (अतिहिंसन। प्रवर्ग्याचरण करि जो चक्षु बुद्धि मन का व्याकुलत्व हुआ बृहस्पति (देवगुरु) मेरे तिस छिद्र और अतितृण्ण को दधातु (संदधातु छिद्र को निवर्त्त करै। भूतजात का जो अधिपति प्रवर्ग्यरूपो यज्ञः सो

हमारे को सुख रूप हो। अर्थात् बृहस्पति करि छिद्रापाकरण से प्रवर्ग्य कल्याण रूप हो॥२॥

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥३॥ +भू-स्वः। अ॰। त-त्राइ॰॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥४॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु॥५॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः॥६॥

भूर्भुवः स्वः त्रीणि यजूंषि॰ तत्सवितुः॰ कया नः॰ कस्त्वा॰ अभीषु णः॰ एताश्चतस्र ऋचो व्याख्याताः ३॰ ३५॰ २७॰३९–४१॰ अभी षु ण इति इस ऋचा में शतं भवास्यूतिभिः यह बहुवचन है पहिले ऊतये यह पाठ था। ऊतिभिः (अवनों के हेतुओं से) शत (असख्य) रूप है॥३॥४॥५॥६॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्रमन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आभर॥७॥

इन्द्र देवत्या गायत्री अनिरुक्तेन्द्रपदहीना। हे वृषन् (सेक्तः इन्द्र) किस ऊति (तर्पण हविर्दान) करि हम लोगों को सर्वतः तृप्त+ करता है। और किस ऊति करि स्तुति करनेवाले यजमानों के अर्थ आहरण करता है धन देने को इति शेषः तिन दोनों करि तैसे

+ मदि- स्वप्ने जाड्ये मदे मोदे स्तुतौ गतौ

हम करते हैं इति भावः॥७॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो॑ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥८॥

द्विपदा विराट्। जगत का इन्द्र (परमेश्वर महावीर वा आदित्य) राजति (प्रकाशे वा ईश्वर है। सो हमारे द्विपदों (पुत्रादिकों) का सुख रूप हो और चतुष्पदों (गवादिकों) का सुखरूप हो॥८॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥९॥

द्वे अनुष्टुभौ। महावीर के प्रसाद से मित्र (भक्तों में स्नेह रखता है) देव हमारा सुखरूप हो। वरुण (अङ्गी करता है भक्त को) सुख॰। अर्यमा (चलता है भक्त प्रति) हमा॰। इन्द्र (देवेश) हमा॰। बृहस्पति (देवगुरु-वेदों का पालक) सुख॰। विस्तीर्ण है पादन्यास जिस का वोह विष्णु (व्याप्त) हमारा॰॥९॥

शं नो वातः पवताᳬं शं नस्तपतु सूर्य्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो॑ऽअभिवर्षतु॥१०॥

वायु हमारा सुखकारी (अपरुष और अव्याधिजनक) वहै। सूर्य (प्रेरणा करता है जनों को अपने-अपने व्यापार में) सुखरूप (अदहन और भेषजरूप) हमारे को किरिणें प्रसारे। पर्जन्य (पूरता है जल को वा पहिले उत्पन्न होता है जल इस करि-पर्जन्य शोदेवः) हमारा सुखकर (काष्ठानिक्षार रहित जैसे तैसे) सर्वतः सींचे। कैसा कि कनिक्रदत् (अत्यन्त शब्द करता॥१०॥

अहानि शं भवन्तु नः शᳫं रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥११॥ †

द्विपदागायत्री। दिन हमारे सुखरूप हों रात्रीः सुखरूपाः हमारे विषें प्रति स्थापन करे महावीर इति शेषः॥ शं न इन्द्राग्नी त्रिष्टुप्। इन्द्राग्नी पालनों करिके हमारे सुखरूप होवें। हविस्तृप्तौ इन्द्रावरुणौ हमा॰। अन्न के दान निमित्तभूत में इन्द्रपूष संज्ञो देवौ हमा॰। इन्द्रसोमौ देवौ सुख॰। किमर्थम् कि सुविताय (साधुगमन वा साधु प्रसव के अर्थे। तथा शं (रोगों के शमन के अर्थे। योः भयों के पृथक्करण के अर्थे। अर्थात् रोग और भय को निवर्त करि सुखरूपौ हों॥११॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः॥१२॥

गायत्री। दीप्यमाना जल हमारे अभिषेक वा अभीष्ट और पान के अर्थ सुखरूपा हों (हमारे स्नान और पान में जल सुखप्रियो होवें। जल रोगों का शमन और भयों का पृथक्करण अभिस्रवें अर्थात् भय रोगनाश करें॥१२॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥१३॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे

† अ॰ मू॰ अ॰। शं॰ यो॰। दू॰॥११॥

रणाय चक्षसे ॥१४॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उश॒
तीरिव मातरः ॥१५॥
तस्मा ऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥१६॥

स्योना पृथिवि। व्याख्याता ३५.२१.॥ आपो हिष्ठा। तृचो व्याख्यातः ११.५०—५२.॥१३॥१४॥१५॥१६॥

अ॰ २॰ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्ति
रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शा
न्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १७॥

यजूꣳषि संदृशि जीव्यासमित्यन्तानि क॰१९.। द्युलोकरूपा जो शान्ति और अन्तरिक्षरूपा जो शान्ति भूलोकरूपा जो शान्ति जलरूपा जो शान्ति ओषधिरूपा जो शान्ति वृक्षरूपा जो शान्ति सर्वदेवरूपा जो शान्ति ब्रह्म (त्रयीलक्षण वा परं तिस) रूपा जो शान्ति सर्वजगद्रूपा जो शान्ति स्वरूप से ही जो शान्ति वोह शान्ति मुझ प्रति हो। अर्थात् महावीर प्रसाद से सब शान्तिरूप मुझ प्रति हो। यद्वा दिवि अन्तरिक्ष पृथिवि इत्यादिकों में जो शान्ति वोह मुझ प्रति हो † ॥१७॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूता
नि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि

† सप्तम्यर्थ प्रथमा विभक्तिव्यत्ययः।

भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥१८॥

दृते (दृ विदारे विदीर्णे जराजर्जरितेऽपि शरीरे) हे महावीर मुझे तू दृढी करि यद्वा दृते (विदीर्ण कर्म विषें) मुझे दृढी (अच्छिद्र कर्म) करि यद्वा ससुषिरत्व और सेक्तृत्व से दृति शब्द करि महावीर है: हे दृते (महावीर) मुझे दृढी करि। कथं दार्ढ्यं तदाह, सब प्राणी मुझे मित्र की आंख से देखें न बैरी की दृष्टि से अर्थात् सबों का प्यारा होऊं। किं च मैं भी सब भूतों को मित्र की आंख से देखूं (सब मेरे प्यारे हों। मित्रचक्षु: शान्त होती है मित्र किसी को नही मारता और मित्र को कोई नही मारता एवं परस्पर अद्रोह करि सबों को न मारते मित्र की आंख से हम देखते हैं॥१८॥

दृते दृꣳह मा। ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥१९॥

हे दृते (वीर) मुझे दृढी करि+। हे महावीर तेरे संदर्शन विषें मैं ज्योक् (चिर) जीऊं। पुनरुक्तिरादरार्था॥१९॥

+ आदरार्थं पुनर्वचनम्।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे। अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव॥२०॥

व्याख्याता १७॰११॰॥२०॥

नमस्तेऽअस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥२१॥

हे अनुष्टुभौ। हे भगवन् (महावीर) तुझ विद्युद्रूप के अर्थ नम-

स्कार हो तेरे तिस गर्जितरूप के अर्थ नम॰। जिस कारण से स्वर्ग जाने के लिये तू चेष्टा करता है इस हेतु तेरे अर्थ नमस्कार हो॥२१॥

यतो-यतः समीहसे ततो नो ऽअभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्यो ऽभयं नः पशुभ्यः॥२२॥

हे महावीर जिस कारण-जिसकारण दुश्चरित से तू हमारे विषें अप करने के लिये चेष्टा करता है तिसकारण-तिसकारण से हमें अभय करि। किं च हमारी प्रजा के अर्थ सुख करि और हमारे पशुओं के अर्थ अभय करि॥२२॥

सुमित्रिया न ऽआप ऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥२३॥

यजुः। व्याख्यानम् ६-२२॥२३॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥२४॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः२

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

सूर्यदेवत्या (अक्षरातीत) पुर उष्णिक् छन्दस्का। इन मन्त्रों करि जो महावीर हमलोगों नें स्तुति किया वोह चक्षुः (जगत के नेत्रभूत आदित्यरूप को) पूर्व की दिशा में उदय करता है। कैसा वोह कि

देवहित (देवताओं करि स्थापित वा देवताओं का प्यारा) शुक्र (पापासंस्पृष्ट वा शोचिष्मत्) तिस के प्रसाद से शत १०० शरद + (वर्ष) हम देखें (शतवर्षपर्यन्त हम अव्याहत चक्षुरिन्द्रिया होंवें। शत शरद अपराधीनजीवना होंवें। शत शरद स्पष्ट श्रोत्रेन्द्रिया होंवें। शत शरद अस्खलित वागिन्द्रिया होंवें। शत शरद किसी के भी अगाडी दैन्य न करें। और शत शरद के ऊपर भी बहुत काल तक पश्येमेत्यादि योज्यम् ॥ २४ ॥

+ शत वर्ष में शत शरद होती हैं

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयाद्विश्वदेवाऽधिपः स्वयम् ३६

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीय शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जयकिशोर देव वर्म्मात्मज रौक्मिणेय नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये शुक्रियायां शान्तिपाठ वर्णनो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्
स्वानंददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १

अ॰ १॰ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नारिरसि ॥ १ ॥ +

+ दे-म्। अ॰। आ-सि। ई॰॥ १॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा॥२॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके॥

अभ्र्यादिरौहिणान्तोऽयं सप्तत्रिंशो निरूप्यते ३७

का॰ २६·१·३ उदुम्बरतरूत्था वा विकङ्कततरूत्था हस्त प्रमाण अभ्रि को देवस्य त्वा नारिरसीति मन्त्र से ले वाम हस्त में तिसे करिके दक्षिणहस्त से स्पर्श करि युञ्जते मन इति मन्त्र को जपे॥ देवस्य त्वा आ–बृ॰ सावित्रम्। आददे॰ अभ्रिदेवत्यं दे–ज॰ हे अभ्रे सविता देवता की आज्ञा में स्थित अश्विनीकुमारोंकी बाहुओं पूषा के हाथों से तुझे ग्रहण करता हूं और तू नारि (स्त्री नाम्नी) है॥ युञ्जते मनः। व्याख्याता ५·१४·॥१॥२॥

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥३॥ दे–द्या॰। अ॰म–शी॰ई॰॥३॥

का॰ २६·१·४· अध्वर्युः देवीति मन्त्र करि बिघण मृत्पिण्ड को लेवे पिण्डवदिति पाणिओं से ग्रहण करे दक्षिणः साभ्रिरिति लभ्यते इति सूत्रार्थः॥ देवीति यजुः। मखायेति या–पं॰ देवी–शीर्ष्णे ब्रा–गा॰ द्यावापृथिवीदेवतम्। हे देवी (दीप्यमाने) द्यावा पृथिव्यो इस दिन में पृथिवी के देवयजनस्थान में मख (यज्ञ) का

शिर राध्यासम् + (साधन सिद्ध करता हूं। महावीरो यज्ञशिरः। क्या करिके कि तुम द्यावा पृथिवीओं (दिवों शा जल पृथिव्यं शम् द) को लेके इत्यर्थः। एवं द्यावा पृथिव्यौ प्रार्थ्य मृदमाह हे मृत् मख (यज्ञ) के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं। एवं सामान्येनोक्त्वा विशेषमाह मख (यज्ञ) के शिर (महावीर) के अर्थ तुझे ग्रहण करता हूं इति शेषः। तिस मृत्पिण्ड को उत्तरस्थापित कृष्णाजिन पर स्थापन करे॥३॥

+ राध॰साध के संसिद्धौ।

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥४॥ + दे-व्याः। अ॰। म-र्ष्णे। कृ॰॥४॥

का॰ २६॰१॰५॰६॰ देव्यो-शीर्ष्णे। उपदीकृतो मृत्संचयः (वल्मीकः) तिस की वपा तिस के मध्यस्थ लोष्ट को लेके कृष्णाजिन पर मृत्पिण्ड से उत्तर में चुपके से स्थापन करे॥ देव्यो॰ यजुः। मखाय॰ या-पं॰। देव्यो-शीर्ष्णे आर्षी पंक्तिः। हे देव्यो (दीव्यमानाः) वम्र्यः (उपजिह्विकाः) तुम्हें लेके पृथिवी के देव॰- करता हूं। कैसी हो तुम कि भूत (प्राणिजात) की प्रथमजाः (प्रथमोत्पन्नाः) पृथिवी जन्तुओं की प्रथमजा तिस सम्बन्ध से वम्र्यः भी प्रथमजा कहियें हैं॥४॥

इयत्यग्र आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥५॥+

का॰ २६॰१॰७॰ इयत्यग्र इति वराहोत्खातमृदा को ले चुपके से कृष्णाजिन पर वल्मीकवपा के उत्तर में स्थापन करे॥ इयतीति

+ इ-व्याः। अ॰म-र्ष्णे। वृ॰॥५॥

आर्ची अ०। मखायेति या-पं०इय-शीर्ष्णे·ब्रा-गा० वराहविहतमृद्देवत्यं। हे पृथिवि भवती आदि (वराहोद्धरणसमय) में इयती (प्रादेशमात्री +) थी तुम्हें पृथिवि के देवयजन स्थान में०-करता हूं॥ मखायेति व्याख्यातम्॥५॥

इन्द्रस्यौज स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥६॥ +

का०२६·१·८·पूतीकों (रोहिषतृणों) को इन्द्रस्येत्यादिशीर्ष्णेइत्यन्त ले चुपके से कृष्णाजिन पर वराहविहत के उत्तर में स्थापन करे॥ इन्द्रस्य-शीर्ष्णे आदार देवत्यम् ऋक्त्रिष्टुप्। हे पूतीकाओ तुम इन्द्र का ओज (तेजरूप) हो तुम्हें लेकर पृथिवी के देव यजन में यज्ञ का शिर सिद्धि करता हूं मख के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं और मख के शिर (महावीर) के अर्थ ग्रहण करता हूं॥ का०२६·१·९·मखायेति पय लेकर चुपके से कृष्णाजिन पर स्थापन करे॥ या-पं०पयोदेवत्यम्। हे पय मख के अर्थ मखशिर के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं॥ का०२६·१·१०· चुपके से गवेधुका भी ग्रहण करियें हैं॥ का०२६·१·११· मखायेति सम्भृत सम्भारों को हाथ से स्पर्श करे॥ या-पं०सम्भार देवत्यम्। हे सम्भारओ मख और मखशिर के अर्थ तुम्हें स्पर्श करता हूं॥६॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः। मखाय त्वा मख

+ इयती ह वा ऽ इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्रीत्यादि वगाह उज्जघानेति १४·१·२·११·श्रुतेः।

+ ब्र-ब्या:। अ०। म-षों। बृ०॥६

स्य त्वा । शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ७ ॥ +

मैतु ७ मखस्य ८ अम्बस्य ९ ऋजवेत्वा १० यमाय त्वा देवस्त्वा अर्चिरसि ११ घर्मदेवत्यानि (यो घर्मः स आदित्यो य एव तपति ॥ का० २६ । १ । १२ अध्वर्यु प्रति प्रस्थाचाद्यः कृष्णाजिन को समन्तात् लेकर मैत्विति जपते हुए अन्तःपात्य से उत्तर में परिवृत (पञ्चारत्निमितः समचतुरस्रः प्राग्द्वारः सिकतोपकीर्णः पूर्वमेव किये सप्तभूसंस्कारसंस्कृतः छाये हुए प्रदेश) प्रति जावें ॥ बृहती । व्याख्याता ३३ । ८९ ॥ का० २६ । १ । १३ । १४ अध्वर्यु कृष्णाजिनस्थों ही सम्भारों को मखायेति परिवृत में स्थापन करें कैसे परिवृत्त कि उल्लिखित जलसिक्त (ये दो संस्कार पञ्चसंस्कारों से अधिक हैं) और सिकतायुक्त प्राग्द्वार में इति सूत्रार्थः ॥ हे सम्भारो मख के अर्थ तुम्हें स्थापन करता हूं ॥ का० २६ । १ । १५ मखायेति गवेधुका अजापय पृथक् करिके वल्मीकवपादि तीनि सम्भारों करि मृत्पिण्डको मिश्रित करें ॥ हे सम्भारओ तुम्हें मख के अर्थ मृत्पिण्ड करि संयुक्त करता (मिलता) हूं ॥ का० २६ । १ । १६ महावीरपर्याप्त चुपके से मृदा लेकर मखायेति मन्त्रेण महावीर करें कैसा कि प्रादेशोच्च गर्तवन्त मेखलायुत मध्य में संकुचित मेखला के ऊपर तीनि अङ्गुल ऊंचा इति सूत्रार्थः ॥ हे महावीर मख और तिस के शिर के अर्थ तुम्हें करता हूं ॥ ७ ॥

मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।

+ वै० न० । अ० ५ ब्रा० श्री० सू० ॥ ७ ॥

मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य
त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥८॥

यजु॥ का०२६·१·१७·वामकरस्थ निष्पन्न महावीर को मखस्य शिर इति स्पर्श करे॥ मखस्य शिरोऽसि या—गा०। हे महावीर तू मख का शिर है॥ का०२६·१·१९·इतर दो महावीरों को प्रतिमन्त्र वैसे ही करे और स्पर्श करे॥ मखाय॰ दूसरे महावीर को करता हूं। मखस्य॰ निष्पन्न को स्पर्श करता हूं॥ मखाय॰ तीसरे महावीर को करता हूं। मखस्येति निष्पन्न को स्पर्श करे +। मख का शिर है मख के अर्थ तुम्हे मख के शिर के अर्थ तुम्हे स्पर्श करता हूं॥ का०२६·१·२२·गवेधुकाओं से तीनों महावीरों को रगड कर सचिक्कण करे मखायेति प्रतिमन्त्र से एक-एक को॥ मख और मख के शिर के अर्थ तुम्हे गवेधुकाओं करि श्लक्ष्ण करता हूं॥ एवमग्रिमौ मन्त्रौ॥८॥

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय

+ तीसरे महावीर के स्पर्श में मखस्य॰ मखाय॰ दोनों पढ़े।

त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥९॥+

का॰२६॰१॰२३॰ दक्षिणाग्नि करि दीप्त अश्वपुरीष से तीनों मन्त्रों करि तीनों महावीरों को धूपै एक-एक धूपने में सात-सात अश्वलेण्ड ग्रहण करे॥ अश्वस्य॰प्रा-बृ॰हे महावीर पृथिवि के देवयजन स्थान में मख और मखशिर के अर्थ सेक्ता अश्व के पुरीष करि तुझे धूपन करता हूं॥ एवं इतरमन्त्रों से इतर दोनों को का॰२६॰१॰२४॰मखायेति तीनों मन्त्रों से तीनों महावीरों को पिन्वन रौहिणों सहित उखावत् अपे (पकावे॥ मख और मखशिर के अर्थ तुझे निर्दह करता हूं॥ एवं इतरौ॥९॥

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥१०॥+

का॰२६॰१॰२५॰ पक्व महावीरों को अपाकादिव उद्धार करे (निकाले तीनि मन्त्रों से॥ ऋजवे त्वा तिस्रो हैं-बृ॰ ऋजवे प्रथमम्। असौ लोक ऋजुः तत्र सत्यमेव न तु कौटिल्यम्। सत्यमादित्यः हे महावीर ऋजु (सत्य-आदित्य) के अर्थ तुझे उद्वपन करता हूं इति शेषः तथा च श्रुतिः १४॰१॰२॰२२॰ स उद्वपेत्युजवे त्वेत्यसौ वै लोक ऋजुः सत्यꣳ ह्यृजुः सत्यमेष य एष तपत्येष उ प्रथमः प्रवर्ग्यस्तदेत मेवैतत्प्रीणाति तस्मादाहर्जवे त्वेति॥ अथ द्वितीयम् साधवे त्वा। साधु (वायु) की प्रीति के अर्थ तुझे उद्वप॰। तथा च श्रुतिः

+ अ-व्याः। अ॰। म-र्ष्णे। इ॰। अ-व्याः। उ॰। म-र्ष्णे। ऋ॰। अ-व्याः। तृ॰। म-र्ष्णे। आ॰॥९॥
+ ऋ-त्वा। अ॰। सा-त्वा। इ॰। सु-त्वा। उ॰। म-र्ष्णे। ऋ॰॥१०॥

१४॰१॰२॰२३॰ साधवे त्वेत्ययं साधुर्योऽयं पवत एष हीमां लो-
कान्त्सिद्धोऽनुवत एष उ द्वितीयः प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणा-
ति तस्मादाह साधवे त्वेति॥ अथ तृतीयम् सुक्षित्यै त्वा सुष्ठु
क्षियन्ति निवसन्ति सर्वभूतानि यस्यां सुक्षितिः(भूमिः) तथा
च श्रुतिः १४॰१॰२॰२४॰सुक्षित्यै त्वेत्ययं वै लोकः सुक्षितिरस्मि-
न्हि लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्त्यथोऽग्निर्वै सुक्षितिरग्निर्ह्य-
स्मिं लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्त्येष उ तृतीयः प्रवर्ग्यस्तदेत-
मेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह सुक्षित्यै त्वेति॥ का॰२६॰१॰२६॰ अ-
जापय करि तीनों महावीरों को सींचै मखाय त्वेति प्रति म-
न्त्र से॥ मख और मखशिर के अर्थ अजापय करि तुझे सींच-
ता हूं॥ एवमितरौ द्वौ॥१०॥ इतिमहावीरसम्भरणं समाप्तम्॥

अ॰२॰ यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे। दे-
वस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सᳬस्पृश-
स्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि॥११॥+

का॰ २६॰२॰१३॰ प्रचरेति ब्रह्मा से आज्ञा पाया अध्वर्यु बैठि
कर यमायत्वेति तीनि मन्त्रों करि प्रचरणीय महावीर को ती-
निवार प्रोक्षण करै॥ ह्व दे-बृ॰ तृतीया दे-ज॰ यमयति (नि-
यच्छति) सर्वमिति यम(आदित्य) तिस की प्रीति के अर्थ तुझे
प्रोक्षण करता हूं तथा च श्रुतिः १४॰१॰३॰५॰सप्रोक्षति यमाय
त्वेत्येष वै यमो य एष तपत्येष हीदᳬसर्वं यमयत्येतेनेदᳬ
सर्वं यतमेष उ प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह यमाय

+ य-त्वा। अ म-त्वा। इ॰ सू-सी। उ॰ दे-तु। त्र॰ पृ-हि। लृ॰ अ-सि। आ॰॥११॥

त्वेति॥ मखाय त्वा। मख (यज्ञ-सूर्यरूप प्रवर्ग्य) की प्रीति के अर्थ तुम्हें प्रोक्षण करता हूं। तथा च श्रुतिः १४·१·३·५· एष वै मखो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह मखाय त्वेति॥ सूर्यस्य त्वा तपसे। तपतीति तपः (तेजः) सूर्य तेजरूप प्रवर्ग्य के अर्थ तुम्हें प्रोक्ष॰ तथा च श्रुतिः १४·१·३·६· एष वै सूर्यो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्यस्तदेवमेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह सूर्यस्य त्वा तपस इति॥ का॰ २६·२·२०· होता करि अञ्जन्ति यं प्रथयन्तीति मन्त्र पाठ करते में आज्य को विधि से संस्कार करि तिस आज्य से अचरणीय महावीर को देवस्त्वेति मन्त्र करि लेपैं (चुपैरे)॥ या-पं॰ सविता देवः सर्वजगद्रूप मधुर आज्य करि हे महावीर तुम्हें लेपै (चुपरै) तथाच श्रुतिः १४·१·३· १३· सर्वं वा इदं मधु यदिदं किं च तदेनमनेन सर्वेण समनक्तीति॥ का॰ २६·२·२१· रजत का शतमान (शतरत्ति का मितरजत) खर में सिकतान्तर उपगूहन करे॥ या-अ॰१। हे रजत संस्पृश (उपद्रव के अर्थ स्पर्श करने हारे राक्षस) से तू महावीर को रक्षा करि। राक्षसों से डर हुए देवता यज्ञरक्षार्थ अग्नि के अपत्य रजत को राक्षसों के घात के लिये रखते हुए और पृथिवी भी महावीरपाक में अग्नि से डरी ततः यह न जलै इस हेतु रजत खर में अन्तर्हित किया यह श्रुति में कथा है तथा च श्रुतिः १४·१· ३·१४· देवा अबिभयुर्यद्वै न इममधस्ताद्रक्षाꣳसि नाष्ट्रा न हन्युरित्यग्नेर्वा एतद्रेतो यद्धिरण्यं नाष्ट्राणाꣳ रक्षसामपहत्या

प्र॰-गा॰ रजत देवस्त्वेति महीष्व॥

इति तथा १४॰ १॰ ३॰ १४॰ अथो पृथिव्यु ह वा॰ एतस्माद्बिभयांचकार यद्वै मायं तप्तः शुशुचानो न हिंस्यादिति तदेवास्या॰ एतदन्तर्दधाति रजतमिति॥ का॰ २६॰ ३॰ ३॰ ४॰ होता करि संसीदस्वेति ११॰ ३७॰ पढते अध्वर्यु अर्चिरसीति मन्त्र से द्विगुणित मुञ्जखण्डों को गार्हपत्य में प्रदीपन करि खर में चारों दिशाओं में प्रति करि तिन मुञ्जों में संस्कृताज्य पूर्ण प्रचरणीय महावीर को स्थापन करै॥ या॰ त्रि॰॥ हे महावीर तू अर्चि (चन्द्रकान्ति रूप) है शोचिः (अग्नि तेजरूप) है तपः (सूर्यतप रूप) है तथा च श्रुतिः १४॰ १॰ ३॰ १७॰ एष वै घर्मो य एष तपति सर्वं वा॰ एतदेष तदेतमेवैतत्प्रीणातीति। स्मृतेश्च भगवद्गी॰ १५॰ १२॰ यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकमिति॥ ११॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य॰ आयुर्मे दाः पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दा आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य॰ ओजो मे दा विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि॥ १२॥ †

का॰ २६॰ ३॰ ५॰ महावीर के ऊपर अङ्गुष्ठाङ्गुलि रखते यजमान को अध्वर्यु अनाधृष्टेति मन्त्रों को पढै॥ सप्त पृथिवीदेवत्यानि यजमानस्याशीः। १॰ ३॰ ४॰ ५॰ यजूंषि २॰ आर्ची मा॰॥ हे पृथिवि जो तू पूर्वदिशा में राक्षसों करि अनाधर्षिता अग्नि के आधिपत्य में

† प्र॰ दाः। अ॰। पु॰ दा॥ इ॰। सु॰ दाः। उ॰। आ॰ दाः॥ ऋ॰। वि॰ दाः। लृ॰। वि॰ हि। आ॰। मसि। ई॰॥ १२॥

होती मेरे अर्थ आयु दे। अग्निमेवास्या अधिपतिं करोतीति १४॰१॰३॰
१९॰ श्रुतेः॥ जो तू दक्षिणदिशा में इन्द्र के आधिपत्य में होती पुत्रयुता सो मेरे
अर्थ पुत्रादिका प्रजा दे। इन्द्रमेवास्या अधिपतिं करोति नाष्ट्रा-
णाᳪ रक्षसामपहत्या इति १४॰१॰३॰२०॰ श्रुतेः जो तू पश्चिमदिशा
में सुसदा है सविता देवता के आधिपत्य में होती मेरे अर्थ नेत्रेन्द्रिय
को दे। देवमेवास्यै सवितारमधिपतिं करोतीति १४॰१॰३॰२१॰श्रु-
तेः॥ हे पृथिवी जोतू उत्तर दिशा में ब्रह्मा के आधिपत्य में होती आश्रु-
ति (आश्रावन करते हैं ऋत्विज जिस में वोह यज्ञिय उत्तरदेश)
है सो तू मेरे अर्थ धन की पुष्टि दे। धातारमेवास्या अधिपतिं क-
रोतीति १४॰१॰३॰२२॰श्रुतेः॥ जो तू उपरि प्रदेश में बृहस्पति के आधि
पत्य में होती सो तू मेरे अर्थ बल दे। बृहस्पतिमेवास्या अधिपतिं करो-
तीति १४॰१॰३॰२३॰श्रुतेः॥ का॰२६॰३॰७॰ विश्वाभ्यो मेति महावीर
से दक्षिण भूमि में यजमान मन्त्र पढते अपने कर को उत्तानस्था-
पन करै॥ या-बृ॰। हे महावीर दक्षिण भूमे सब नाश करने वा-
लों (लोकप्रसिद्ध पिशाचादिकों) से हमलोगों की रक्षा करि।
सर्वाभ्यो गोपायेति १४॰१॰३॰२४॰ श्रुतेः॥ का॰२६॰३॰८॰ मनोरश्वे-
ति महावीर से उत्तर में यजमान अपने प्रादेश को स्थापन करै॥
दे-पं॰। हे घर्मोत्तर भूमे तू मनु राजा की वहने के अर्थ अश्वा (घो-
डी) है। अश्वा ह वा इयं भूत्वा मनुमुवाहेति १४॰१॰३॰२५॰श्रु-
तेः॥१२॥

स्वाहा मरुद्भिः परिश्रीयस्व दिवः सᳪस्पृशस्पाहि।

मधु मधु मधु ॥१३॥ ✝सा-स।अ।दि-हि।म-धु।२॥१३॥

का॰२६·३·४·१०·धृष्टियों से गार्हपत्य के भस्म और अङ्गारों को महावीर के परितः डालि कर प्रागग्रों उदगग्रों त्रयोदश विकङ्कत शकलों से महावीर को वेष्टन करै (अङ्गारों के ऊपर शकलों को डाले) तिसके मध्य दो शकलें स्वाहा मरुद्भिरिति मन्त्र करि स्थापन करै शेषों को चुपके से एवं प्रतिदिश तीनि-तीनि स्थापन करैं में अधिक त्रयोदश को दक्षिण में स्थापन करै॥ महीनों के तेरह होने से तेरह शकलों से स्थापन है त्रयोदश वै मासाः संवत्सरस्य संवत्सर एष य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्य इति १४·१·३·२८ श्रुतेः। या-पं॰ घर्म दे॰। हे घर्म तू स्वाहाकार है (हवि के आधारत्वसे) सूर्यरूप है (एष वै स्वाहाकारो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्य इति १४·१·३·२६ श्रुतेः) अतः तू मरुतों (हम रूप प्रजाओं) से परि श्रीयस्व (सेव्यस्व) अर्थात् मरुतः तुम्हें आश्रय हों। विशो वै मरुतो विशैवतत्क्षत्रं परिबृंहति तदिदं क्षत्रमुभयतो विशा परि वृढमिति १४·१·३·२७· श्रुतिः॥ का॰२६·३·१०·दिवः संस्पृश इति शतरक्तिकामित सुवर्ण करि महावीर को आच्छादन करै॥ दे-ज॰ सुवर्ण देवत्या। हे शतमान द्युलोक सम्बन्धिस्पर्श करनेवालों (देवताओं) को रक्षा करि। देवा राक्षसों से डरि करि महावीर की रक्षा के अर्थ स्वर्ण को स्थापन करते हुए यह श्रुति में कथा है देवा अबिभयुरित्यादि कार्यो १४·१·३·२८॥ का॰२६·४·२· कृष्णाजिन से किये (बनाये) तीनि दण्ड (डांडी) सु

क्त तीनि बीजनाओं से अग्नि को दीपन के अर्थ बीजै मधु मधु मधु इति ॥ त्रीणि यजूꣳषि प्राणदेवत्यानि १-३ दे-उ॰ मधुर रससाम्यात्प्राणो मधु उच्यते-मधु मधु मधु (प्राण उदान व्यान) तीनों महावीर में स्थापन करता हूं इत्यर्थः। तथा च श्रुतिः १४·१·३·३०· अथ धविर्त्रै राधूनोति मधु मध्विति त्रिः प्राणो वै मधु प्राण मेवास्मिन्नेतद्दधाति त्रीणि भवन्ति त्रयो वै प्राणाः प्राण उदानो व्यानस्तान्येवास्मिन्नेतद्दधाति ॥१३॥

अवकाशमन्त्राः

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्। सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्येण रोचते ॥१४॥

का॰ २६·४·११· बीजनाओं से बीजन समय में उत्तरं देववत्परिक्रमणं प्रागक्तं चेदिह तीनि परिक्रमा करि और इतरथावृत्तिको सक्तू करिके गर्भोदेवानामित्यादि नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीरित्यन्त अवकाशसंज्ञक मन्त्रों से यजमान सहित ऋत्विजलोग महावीर को उपस्थान करें॥घर्म देवत्या अवकाशमन्त्रा मा मा हिꣳसीरित्यन्ताः। आद्या ऋचां पङ्क्तिः। अथ मन्त्रार्थः। देव (दीप्यमान महावीर) सविता देवता सहित संगत होता है। और जो घर्म सूर्य सहित एकी भूतः सन् भले प्रकार दीपै है तिसै हम स्तुति करते हैं इति शेषः। कैसा कि देवों (दीप्यमानों रश्मिओं वा सब दृश्यमानों) का गर्भ (गृहीता) है। एष वै गर्भो देवानां य एष तपत्येष हीदꣳ सर्वꣳ संगृभ्णात्येतेनेदꣳ सर्वं गृभीतमेष उ प्रवर्ग्य इति १४·१·४·२·

श्रुतिः। तथा मतीओं (बुद्धिओं) का पिता (पालक-प्रवर्तक) प्रजाओं का पति (पालक) है॥१४॥

समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा सꣳ सूर्येणारोचिष्ट। स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा सꣳ सूर्येणारूरुचत॥१५॥†

समग्निः सा-त्रि० स्वाहेति यजुः वामिलित्वात् ब्रा-अ०। जो अग्नि (घर्म) अग्नि सहित एकी होता है देव एव दैवः सविता देवता सहित संगत होता है और जो सूर्य सहित सं रोचे है॥ अवरं स्वाहाकारं करोति परां देवतामसावेव बन्धुरिति १४·१·४·६· श्रुतेः। स्वाहा सहित अग्नि (घर्म) तप (सूर्यतेज) करि संगत होता है और सविता देवता करि संगत होता है सूर्य सहित सब को भले प्रकार प्रकाश करता है तिसे हम स्तुति करते हैं इति शेषः॥१५॥

धर्ता दिवो विभाति तपसस्पृथिव्या धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः। वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम्॥१६॥

ऊर्ध्वबृहती। वोह देव (घर्म) हमलोगों में वाचा (यज्ञ) को स्थापन करै कैसी वाचा कि देवयुवा (देवताओं को मिश्रित करनेहारीतिस) को अर्थात् देवसमूह को आह्वान करने हारे यज्ञ को समाप्त करै (यज्ञो वै वाग्यज्ञमस्मभ्यं प्रयच्छ येन देवान्प्रीणामेत्येवैतदाहेति १४·१·४·८· श्रुतेः। वोही कौन कि जो देव पृथिवी में शोभै है। कैसा कि द्युलोक का धारयिता। और तप (रश्मिजाल) का धारयिता। और देवताओं का धारयिता। मनुष्यधर्मरहितः (अजर-

† स-च्र। अ० स्वा-त। द्व०॥१५॥

मरः। तप (आदित्य) से उत्पन्न॥१६॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः॥१७॥

त्रिष्टुब्दीर्घतमोदृष्टा। वोह घर्म भुवनों (तीनों लोकों) के मध्य में व्यवस्थियत पुनः-पुनः आवर्तै है। कैसा कि सध्रीचीः (दिशाओं वा रश्मीओं) को आच्छादन करता। विषूचीः (दिशाओं वा रश्मिओं) को आच्छादन करता। सध्रीचीश्च द्येषविषूचीश्च दिशो वस्ते ऽथो रश्मीनिति १४॰१॰४॰१०॰ श्रुतिः। एकः स शब्दः पादपूरणः। वोह कौन कि जिस आदित्यरूप को मैं देखता हूं कैसे को कि गोपायता। न निषद्यमान (अन्तरिक्ष में चलते भी नहीं गिरते) को। पुनः देवमार्गो करि आते और जाते को॥१७॥

विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते। देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान्पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये। मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम्॥१८॥ +

अ॰ यजुः। द्वू॰ सा-उ॰। ऋ॰ आसुरी बृ॰। तृ॰ आसुरीपं॰। हे सब पृथिवीओं के स्वामिन् सर्वप्राणिगतमन के अधिपते सर्वप्राणिवचन के पालक सर्व त्रयीलक्षणवचन के प्रवर्तक हे देवश्रुत (देवप्रसिद्ध) हे देव (दीप्यमान) हे घर्म देव तू देवताओं की रक्षा करि। एवं घर्मं सम्प्रार्थ्याश्विनावाह हे अश्विनो इस यज्ञ में देवतर्पण

+ दि-तो। अ॰ दै-हि। द्वू॰ अ-यो। उ॰ म-मृ। ऋ॰॥१८॥

के अर्थ अनन्तर घर्म तुम्हें तृप्त करें (तुम्हारी तृप्ति से सब देवता तृप्त होते हैं इति भावः क्यों कि जिन तुम्हारे अर्थ दध्यङ्ङाथर्वण नें मधु संज्ञक ब्राह्मण को कहा-दध्यङ् ह वाऽआभ्यामाथर्वणो मधुनाम ब्राह्मणमुवाचेति १४॰१॰४॰१३॰ श्रुतेः। कैसों के अर्थ कि माध्वीभ्यां (मधु ब्राह्मण को जानते तिन्हों के अर्थ। तथा माधूची भ्यां (मधुब्राह्मण को पूजते तिन्हों के अर्थ॥१८॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा। ऊर्ध्वोऽअध्वरं दिवि देवेषु धेहि॥१९॥

परोष्णिक्। हे घर्म हृदयस्वास्थ्य के अर्थ तुझे स्तुति करते हैं इति शेषः मन की शुद्धि के अर्थ तुझे स्तु॰ स्वर्गप्राप्ति के अ॰ (हृदय को शोधि मन को निर्मल करिके स्वर्ग को हमारे को लेजाकर सूर्य को तृप्त करि इति भावः। किं च ऊर्ध्व (सावधान) होकर हमारे यज्ञ को द्युलोक में वर्तमान देवताओं विषें स्थापन करि-यज्ञ के जाने में यजमान भी जाता है इति भावः॥१९॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽअस्तु मा मा हिᳬसीः। त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान्पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहᳬ सहपत्न्या भूयासम्॥२०॥+ +पि-सीः। अ॰। त्व-म्। इ॰॥२०॥

न्यङ्गायत्री वा साम्नी बृ॰। हे महावीर तू हमारा पिता (पालक) है पिता ऐसे हमें बोधन करि सर्वथा तेरे अर्थ नमस्कार हो मुझे मत जीति॥ ॥महावीरोपस्थानं समाप्तम्॥ ॥ का॰ २६॰४॰१३॰

महावीर को देखती अपनीतशिरोवस्त्रा घर्म को देखती पत्नी को अध्वर्यु पढवावे ॥ ऋचां त्रिष्टुप् घर्मदेवत्या पत्न्याशीः। हे घर्म हम मैथुन के अर्थ तुझे स्पर्श करती हैं। कैसी हैं हम कि त्वष्टमन्तः (रेत के अधिकारी त्वष्टा तिस सहिता +। अतः पुत्रों और पशुओं को मेरे विषें स्थापन करि प्रजा (उत्तरोत्तरवंशवृद्धि) हमारे विषें स्थापन करि। किं च पति (भर्तार) सहित मैं अनुपहिंसिता होऊँ अर्थात् भर्तृमती चिरजीऊँ। वृषा वै प्रवर्ग्यो योषा पत्नी मिथुन मेवैतत्प्रजननं क्रियतऽ इति १४·१·४·१६· श्रुतेः ॥२०॥ + मैथुनार्थं परस्परं वीर्य-सिक्तयानिषिक्तोनग्नकुश्च ।

अहः केतुना जुषताᳩ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताᳩ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥२१॥ + अ-हा। अ०। रा-हा॥ इ०॥२१॥

इति सᳩहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २॰

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसᳩहितायां दीर्घपाठे सप्तत्रिᳩशोऽध्यायः॥३७॥

का॰२६·४·१४· उपस्थान और गान की समाप्ति में रौहिण हवनि स्रुचा करि अहः केतुनेति दक्षिण रौक्षिण पुरोडाशसर्वहुत को होमें॥ घर्म देवत्ये यजुषी सामानुष्टुभौ। केतु (आज्ञा वा कर्म) सहित दिन को जुषताम् (रौहिण होम करि प्रीति हों कैसा दिन कि स्वकीयतेज करि शोभन ज्योति जिस की वोह विशिष्टतेजस्क स्वाहा (यह हविः सुहुत हो। रोहति स्वर्गं यजमानो याभ्यां तौ रौहिणौ अग्न्यादित्यौ अहोरात्रे वा इमौ लोकौ वा चक्षुषी

वा शिरः प्रवर्ग्यौ रौहिणौ चक्षुषी तत्र दधातीत्यादि रौहिण प्रशंसा श्रुतौ १४॰२॰१॰१–५॰ ज्ञेया॥ का॰ २६॰ ४॰ १५॰ सायंकालीन प्रवर्ग्य में रात्रिरिति मन्त्रेण दोनों प्रवर्ग्यों को यथाकाल होमें॥ केतु सहिता रात्रिः प्रीयताम् ज्योति करि सुज्योरितिन्युक्तम्॥२८॥

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः२

श्री वेदार्थ प्रदीपन तमो हार्दं निवारयन्॥
घुमार्थांश्चतुरो देयान्महावीरो मखाधिपः३७

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जय किशोर देव वर्म्मात्मज रौहिणेय नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधर भाष्ये शुक्रियायामभ्यादानादि रौहिण होमान्तः सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

हरिः ओम्
ॐ नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्॥
स्वानन्द दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः३८

अ॰ १॰ दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳕ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। आद॑द॒ेऽदि॑त्यै॒ रास्ना॑सि॥१॥+

ॐ नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके॥
अष्टात्रिंशोऽयमध्यायो महावीरः समीर्यते३८

+ दे–मू। अ॰। आ–सि। द्वृ॰॥१॥

का॰ २६॰ ५॰ १॰ अध्वर्यु देवस्य त्वेति रज्जुसंदान को लेकर गार्हप-
त्य के पीछे चलता इड एहीति तीनों वाक्यों करि घर्मदुघा गौ को
बुलावे और असावेहीति नाम करि तीनिवार ऊंचे स्वर से टेरै॥ दे-
वस्य त्वा प्र॰-बृ॰। आददे रज्जुर्देवत्यं प्र॰-गा॰ वा य॰-अ॰। हे रज्जो
सविता देवता की आज्ञा में वर्तमान अश्विनीकुमारों के बाहुओं पू-
षा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूं क्योंकि तू अदिति (देवमाता)
की रसना (मेखला) है॥ १॥

इड॒ एह्यदि॑त॒ एहि॒ सर॑स्वत्येहि॑। असा॒वेह्यसा॒वेह्य-
सा॒वेहि॑॥ २॥ +

अ॰ दे॰-बृ॰ इ॰ उ॰ दे॰-पं॰ गौर्देवत्याः। हे इडे (मानवि) आगमन
करि॥ हे अदिते (देवमातः) आ॰॥ हे सरस्वति (वाणी) आ॰॥ इडा
हि गौरदितिर्हि गौः सरस्वती हि गौरिति १४॰२॰१॰७॰ श्रुतेः॥ ती-
नों नामों से ऊंचे टेरै। दे-बृ॰। असौ (धवलि) आ॰ एवं त्रिः॥ २॥

अदि॑त्यै रास्ना॑सीन्द्रा॒ण्या उ॒ष्णीषः॑। पू॒षासि॑ घ॒र्मा-
य॑ दीष्व॥ ३॥ + + अ॰-ष॰। अ॰ पू॰-सि॰ इ॰ घ॰-वा॰ उ॰॥ ३॥

का॰ २६॰ ५॰ ३॰ आई हुई गौ को अदित्या इति मन्त्रेण पाश करि
बांधि तिस पाश को स्तम्भ में बांधिकर पूषासीति वत्स को छोडे।
य॰-त्रि॰। हे रज्जुपाश तू अदिति की रसना है इन्द्राणी का उष्णी-
ष (शिरोवेष्टन) है अर्थात् इस पाश करि इन्द्रपत्नी उष्णीष करती
है तमेवैनमेतत्करोतीति १४॰२॰१॰८॰ श्रुतेः॥ वत्स को छोडे। पूषासि
दे॰-अ॰ वत्सो देवता। हे वत्स तू पूषा (वायु) है जैसे वायु वृष्टि आप्या-

+ इ॰-हि। अ॰। आ-हि। इ॰। स-हि। उ॰। अ-हि। कर॰। ल॰। आ॰। २॥

यन करता है तैसे तू प्रस्रव करि पय आप्यायन करि इतिभावः।
अयं वै पूषा योऽयं पवत एष हीदꣳ सर्वं पुष्यत्येष उ प्रवर्ग्य इति
१४·२·१·९·श्रुतेः॥का०२६·५·४·गौ को रज्जु करि पिछले पादों
धि (लोमनादे) कर वत्स को पृथक् करै॥दे-पं०वत्सो देवता।हे व-
त्स घर्म के अर्थ पय दे अर्थात् शेष पय छोडि सब मत पीवै॥३॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्व-
स्व। स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्॥४॥+

का०२६·५·५·पिन्वनपात्र (दोहनी) में प्रतिमन्त्र गौ को दुहै॥अ-
नु०-या-गा०वा दे-त्रि०इ-या-उ०दे-ज०वा लिङ्गोक्ता देवता॥
हे पय अश्विनी कुमारों के अर्थ संप्लव हो और सरस्वति के अर्थ
सं० अश्विनौ वा ऽ एतद्यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्तां तावेवैतत्प्रीणा-
तीति श्रुतिः १४·१·२·१३·सरस्वती (वाणी) करि इन्द्र के अर्थ य-
ज्ञशिर अश्विनी कुमारों से जोडा गया इसहेतु तिन्हों के अर्थ क्ष-
र इति भावः॥का०॥२६·५·६·दुहने से गिरे पयविन्दुओं को अ-
भिमन्त्रित करै॥स्वाहेन्द्रवन्मिलित्वात् या-ज०विप्रुषो देवता।
जो दुह्यमान स्कन्न वोह सुहुत हो और इन्द्रसंयुक्त हो॥४॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसु-
विद्यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सर-
स्वति तमिह धातवेऽकः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥५॥+

का०२६·५·७·यस्तऽइति गौ के स्तनों को स्पर्श करै॥वाग्देव-
त्या त्रिष्टुप् दीर्घतमोदृष्टा।हे सरस्वति तिस स्तन को इस स्थान

+अ-स्वा।अ०स-स्वा।इ०इ-स्वा।उ०स्वा-तू।उ०ल०।आ०॥४॥
+य-क।अ०ज-मि।इ०॥५॥

में पानार्थ करि अर्थात मेरे पान के लिये दे। तिस किसै कि जो तेरा स्तन (जैसे) सोता ही है (अन्यै रनुपभुक्तत्वात्॰ यस्ते स्तनो निहितो गुहायामिति १४॰२॰१॰१५॰ श्रुतेः। और जो स्तन सुख प्राप्त करता है सब भूतों को। और जो रमणीय धनों का धारयिता। और जो धन को बिन्दति वा वेत्ति। और जो शोभन दाता (और कोई धनवान् धन देने को नही समर्थ है परन्तु तेरा स्तन धनवान् और दाता यह औरों से आधिक्य है। किं च जिस स्तन करि सब वरणीय वस्तुएँ तू पुष्टि करती है तिस स्तन को मेरे पीने के अर्थ दे इत्यर्थः॥ का॰२६॰५॰११॰ होता करि उपद्रवेति मन्त्र पढते उर्विति मन्त्र करि अध्वर्यु गोसमीप से गार्हपत्य प्रति जावे॥ प्रा॰ गा॰ विशाल अन्तरिक्ष को अनुसरण करिके जाता हूं॥५॥

गायत्रं छन्दो॑ऽसि त्रैष्टु॑भं छन्दो॑ऽसि द्यावापृथिवीभ्यां॑ त्वा॒ परि॑ गृह्णाम्य॒न्तरि॑क्षे॒णोप॑ यच्छामि। इन्द्राश्विना॒ मधु॑नः सार॒घस्य॑ घ॒र्मं पा॑त॒ वस॑वो॒ यज॑त॒ वाट्। स्वाहा॒ सूर्य॑स्य र॒श्मये॑ वृष्टि॒वन॑ये॥६॥

का॰२६॰५॰१२॰ गायत्रमिति मन्त्रों से परीशासों को ग्रहण करे॥ यजुर्गायत्र्यौ वा दे॰ त्रि॰ परीशासौ देवते। हे परीशास तू गायत्री छन्द रूप है॥ त्रिष्टुप्छन्दरूप है॥ इति द्वितीयम्॥ का॰२६॰५॰१४॰ तिन परीशासों से द्यावापृथिभ्यामिति महावीर को लेवे॥ या॰ ज॰ सा॰ गा॰ वा महावीरो देवता। हे महावीर द्यावा पृथिवीओं करिके तुझै परिग्रहण करता हूं (परीशासयोर्द्यावाभूमी अध्यस्ते महावीरे

१ गा॰ सि। अ॰ त्रै॰ सि। द्यु॰ द्या॰ मि। उ॰ अ॰ मि। अ॰ द्र॰ ना। ल॰ म॰ र। आ॰। स्वा॰ ये। द्यू॰॥६॥

चादित्योऽध्यस्तः तथा च श्रुतिः १४॰२॰१॰१६॰ इमे वै द्यावा पृथि-
वीपरीशासावादित्यः प्रवर्ग्योऽमु तदादित्यमाभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां
परि गृह्णातीति॥का॰२६॰५॰१५॰परीशासोंकरि गृहीत महावीर को ऊँचा
करिके मूँज के बने वेद से संमार्जन करि उपयमनि स्रुक् करि
के अन्तरिक्षेणोपयच्छामीति तिसे ग्रहण करै॥या–वृ॰।हे घर्म
अन्तरिक्ष(आकाश वा उदर) करि तुझे निग्रहण करता हूं(उपय-
मन्यन्तरिक्षेणोदरत्वेन च स्तूयते तथा च श्रुतिः १४॰२॰१॰१७॰
अन्तरिक्षं वाऽउपयमन्यन्तरिक्षेण हीदꣳ सर्वमुपयतमथोऽ
उदरं वा उपयमन्युदरेण हीदꣳ सर्वमन्नाद्यमुपयतं तस्मादु
हान्तरिक्षेणोपयच्छामीति॥का॰२६॰५॰१६॰ अजादुग्ध करि चु-
पके से महावीर को सींचिके क्षीणज्वाला में इन्द्राश्विनेति मन्त्रेण
गौ का पय सींचै॥ॠ॰दे–वृ॰–आ॰आर्चीगा॰–इ॰आसु–अ॰
विश्वदेव देवत्यानि मिलित्वाब्रा–गा॰वा।हे इन्द्र हे अश्विनो हे
वसवः(वासयितारः) तुम मधु(मधुर–पय) के घर्म(रस) को पान
करो।कैसे मधु कि सारघ(मधुमक्षिका–भ्रमरा जैसे ऋत्विज
लोग तिन्हो करि किये) का।किं च हे इन्द्रादयः वाट्(वषट्कार क-
रि)स्वाहा(सुष्ठुहुत) सारघ मधु को सूर्य की रश्मि(किरण) के अ-
र्थ तुम देओ(वषट्कृतꣳ हुतमेव तस्यैतद्भवतीति श्रुतेः १४॰२॰
१॰२०॰ कैसी रश्मि कि वृष्टिदेनेहारि के अर्थ(जो रश्मि वृष्टि
देती है तिस के अर्थ मधु देओ।तथा च श्रुतिः १४॰२॰१॰२१॰
सूर्यस्य हवाऽएको रश्मिर्वृष्टिवन्निर्नाम येनेमाः सर्वाः प्रजा वि-

भर्ति तमेवैतत्प्रीणातीति॥६॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा।अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा॥७॥+

का॰२६॰६॰१॰ प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति होता करि उच्चारण करते आहवनी प्रति चलता अध्वर्यु समुद्रायेत्यादीनि वातनामों को स्वर करि जपे॥द्वादश यजूंषि वातनामदेवत्यानि १॰२॰५॰८॰९॰या-पं॰३॰६॰या-त्रि॰४॰या-ज॰७॰११॰१२॰सा-उ॰१०॰आर्ची गा॰।हे घर्म वात के अर्थ तुझे स्वाहा (होमता हूं) कैसे वात कि समुद्र (उत्पन्न होते हैं सर्वभूत जिस से तिस) के अर्थ। अयं वै समुद्रो योऽयं पवतऽएतस्माद्वै समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि समुद्रवन्ति तस्माऽएवैनं जुहोतीति १४॰२॰२॰२॰श्रुतेः॥१॥ सरिर (साथ चलते हैं सिद्धि के अर्थ सर्वभूत जिस से तिस) वात के अर्थ हे घर्म तुझे होमता हूं। अयं वै सरिरो योऽयं पवतऽएतस्माद्वै सरिरात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरतऽइति १४॰२॰२॰३॰श्रुतेः॥२॥ अनाधृष्य (नही पराभव करने को शक्य तिस) के अर्थ। अप्रतिधृष्य (नही प्रतियुद्ध को शक्य तिस) के अर्थ। वातायेत्युक्तम्। अयं वाऽअनाधृष्योऽप्रतिधृष्यो योऽयं पवतऽइति १४॰२॰२॰४॰श्रुतेः॥३॥४॥ अवस्यु (अवनशील) के अर्थ। अशिमिद (क्लेशनिवर्तक) के अर्थ। अन्यदुक्तम्। अयं वाऽअवस्युरशिमि-

+स-हा॰अ॰दू॰अ-हा॰उ॰क्र॰ल॰आ॰॥७॥

वो योऽयं पवत ऽइति १४॰ २॰ २॰ ५॰ श्रुतेः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्य
वते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा। सवित्रे
त्वᳬं ऽऋभुमते वाजमते स्वाहा। बृहस्पतये त्वा
विश्वदेव्यावते स्वाहा॥ ८ ॥ †

वसुमान् रुद्रवान् इन्द्र (वात) के अर्थ हे घर्म तुम्हें होमता हूं। अयं वा ऽइन्द्रो योऽयं पवत ऽइति १४॰ २॰ २॰ ६॰ श्रुतेः ॥ ७ ॥ आदित्ययुक्त इन्द्र (वात) के अर्थ स्वाहा ॥ ॥ ८ ॥ अभिमातिओं (शत्रुओं) के हन्ता वात के अ॰। सपत्नो वा ऽअभिमातिरिति १४॰ २॰ २॰ ८॰ श्रुतेः ॥ ९ ॥ सविता (चेष्टयिता) वात के॰। कैसे के कि ऋभुमान् विभुमान् वाजवान् आङ्गिरस सुधन्वा के तीनि पुत्र तिन्हों करि युक्त। अयं वै सविता योऽयं पवत ऽइति ॥ १० ॥ बृहस्पति (वडोंके पति) तिस वात के अर्थ। अयं बृहस्पतिर्योऽयं पवत ऽइति १४॰ २॰ २॰ १०॰ श्रुतेः ॥ ११ ॥ ८ ॥

अ॰ २॰ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा घ
र्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ९ ॥ †

यम (वायु) के अर्थ हे घर्म तु॰। अयं वै यमो योऽयं पवत ऽइति १४॰ २॰ २॰ ११॰ श्रुतेः। कैसे यम कि अङ्गिरः पितृयुक्त ॥ १२ ॥ वात नामानि समाम्नानि॥ ॥ का॰ २६॰ ६॰ २॰ स्वाहा घर्मायेति उपयमनी स्रुक् करि स्रुक्स्थ घृत को घर्म में सींचे॥ घर्मदेवत्या है-पं॰। घर्म के अर्थ स्वाहा (एतदाज्य सुहुत हो ॥ का॰ २६॰ ६॰ ३॰

† इ-हा। अ॰। इ॰। उ॰। स-हा। ऋ॰। व-हा। ल॰। ॥ ८ ॥
† यं-हा। अ॰। स्वा-य। इ॰। स्वा-त्रे। उ॰। ॥ ९ ॥

अपसव्यवान्दक्षिणास्यः स्वाहेति मन्त्र को स्वरेण जपि कर सव्येन जल को स्पर्श करिके घर्महस्तोऽतिक्रम्याश्राव्य घर्मस्य यजेत्याह॥ घर्म देवत्या है-त्रि॰। स्वाहा घर्मः पित्रर्थ हो॥९॥

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह। स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना॥१०॥

का॰२६॰६॰४॰ वषट् कृते सति घर्म को होमें॥ अश्विदेवत्यानुष्टुप्। इस यज्ञ में दक्षिणतः स्थितोऽध्वर्यु सब दिशाओं और सब देवताओं को पूजता हुआ (दक्षिणतः स्थितो ह्याहुतीर्जुहोति। इसहेतु से कहिता हूं कि हे अश्विनौ वषट्कार के अनन्तर मधुर स्वाद घर्म को तुम पीओ॥१०॥

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः। स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः॥११॥ +

का॰२६॰६॰५॰ महावीर को तीनि बार ऊंचा कँपावे एक वार दिवि धा इति मन्त्रेण दो वार चुपके से॥ घर्मदेवत्यं सा-उ॰ आसु-उ॰ वा। हे महावीर इस मेरे यज्ञ को तू द्युलोक में स्थापन करि (पुनरुक्तिरादरार्था॥ का॰२६॰६॰६॰ अनुवषट् स्वाहेति मन्त्रेण घर्म को होमें॥ या-ज॰। यज्ञहित अग्नि के अर्थ सुकृत हो यजुओं के सकाशसे हमारा सुख हो॥११॥

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः। तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम्॥१२॥

का॰२६॰६॰७॰ ब्रह्मा घर्म को अभिमन्त्रण करे॥ स्वराडुष्णिक्

+ दि-धा॥ अ॰। स्वा-र्भ्यः। दृ॰॥११॥

अश्विनावादित्यो द्यावापृथिव्यौ च देवता:। हे अश्विनौ तुम अवनों करिके घर्म को पिओ कैसे अवनों कि प्रातः सायंकालोमलक्षिताओं से (अवर्ग्यकाल: स एव यत:। कैसे घर्म कि हव्यभिन्न। एवं घर्म पीने के अर्थ अश्विनौ को प्रार्थना करि तिन्हों की सत्य के अर्थ सूर्यादिकों को नमस्कार करता है· तन्त्र (कालचक्र) में निरन्तर चलते सूर्य के अर्थ नमस्कार हो (एष वै तन्त्रायी य एष तपत्येष हीमां लोकांस्तन्त्रमिवानुसंचरन्तीति १४·२·२·२२श्रुते। द्यावा पृथिवीओं (दोनोंलोकों· तिन्हो के अधिष्ठाताओं) के अर्थ नमः॥१२॥

अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी·अंमर्ठंसाताम्। इहैव रातय: सन्तु॥१३॥

का·२६·६·८·यजमान घर्म को अभिमन्त्रित करे॥ककुबुष्णिक् अश्विदेवत्या:। अश्विनौ घर्म को पियें द्यावा पृथिवी भला किया यह जानें अतएव अग्न्यादिकों के प्रसाद से हमारे घर में स्थित हमारें धन हों (इहैवरातय: सन्त्वितीहैव नो धनानि सन्त्वित्येवैतदाहेति १४·२·२·२६·श्रुते:॥१३॥

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मा मेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय॥१४॥

का·२६·६·९·इषे पिन्वस्वेति अनितप्त घर्म को अभिमन्त्रण एक

† इ-स्वा। ऊ-स्वा। ब्र-स्वा। क्ष-स्वा। द्या-स्वा। ध-र्मा। नृ॰। ब्र॰। क्ष॰। वि॰॥१४॥

रे॥ अ०॰ इ०॰ दै–पं०॰उ०॰ अनु०॰ दै–त्रि०॰ल०॰ या–बृ०मिलित्वा न् अनुगायत्री घर्मदेवत्या। हे पिन्वमान (अतितप्त) घर्म वृष्टि के अर्थ पिन्वस्व (पुष्ट हो) अन्न के अर्थ पिन्वस्व (अन्न को बढ़ा) ब्राह्मणों के अर्थ पिन्व० क्षत्रियों के अर्थ पि० द्यावापृथिवीओं के अर्थ पि० (ब्राह्मणक्षत्रीद्यावापृथिवी तृप्त करि॥ का० २६·६·१०· घर्मासीति ईशानी दिशा प्रति उत्क्रमण करै॥ या–गा० घर्मदे०॥ हे घर्म हे सुधर्म (साधुधरणशील) तू धर्म (सब जगत का धारण) है अर्थात् आहुति परिणामद्वारा करि सब को धरता है॥ का० २६·६·११· अमेन्यस्मे इति महावीर को खरपै स्थापन करै॥ खर देवत्यं यजुः। हे घर्म अमेनिः (अक्रुध्यन्) सन् हमारे विषें धनों को स्थापन करि (अक्रुध्यन्नो धनानि धारयेति १४·२·२·३०· श्रुतिः) ब्रह्म क्षत्र और विश को स्थापन करि (विप्रादिकों को हमारे वश करि॥ १४॥

स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः। स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳫं स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः॥ १५॥+

का० २६·६·१२· घर्म में निरन्तर लिप्त करि विकङ्कतशकलों से घर्माज्य को होमें स्वाहा पूष्ण इति प्रतिमन्त्रम्॥ सप्तलिङ्गोक्तदेवतानि १·३·या–उ०२·दै–पं०४·आसु–गा०५·६·या–अ०७·या–पं०। शरसे+ (स्नेह करनेहारे) पूषा (प्राणरूपवायु) के अर्थ सु–

+ स्वा–से।अ०।स्वा–भ्यः।इ०।उ०।ऋ०।स्वा–म्।ल०।स्वा–भ्यः।आ०॥१५॥

+ शरः शब्दो दध्युपरिस्थस्नेहवाचकः अत्र स्नेहमात्रवाची

हुत हो। अवरᳯ स्वाहाकारं करोति परां देवतामिति १४·२·२·३२·
श्रुतेरादौ स्वाहाकारस्ततो देवतापदानि। अयं वै पूषा योऽयं पव-
नऽएष हीदᳯ सर्वं पुष्यत्येष उ प्राणः प्राणमेवास्मिन्नेतद्दधाती-
ति १४·२·२·३२·श्रुतिः॥१॥ ग्रावों (विषय ग्रहणशीलों प्राणों) के
अर्थ स्वाहा। प्राणा वै ग्रावाणः प्राणानेवास्मिन्नेतद्दधातीति १४·२·
२·३३·॥२॥ प्रतिरवों (शब्द करतेओं वा प्रति रमतें हैं जिन्हें पाक-
र तिन प्राणों) के अर्थ स्वाहा। प्राणा वै प्रतिरवाः प्राणान्हीदᳯ स-
र्वं प्रतिरतमिति १४·२·२·३४·श्रुतिः॥३॥ का॰२६·६·१४· चतुर्थ
शाकल्ल को अहुतमेव उदीची को देरवता वेदि के दक्षिणभा-
ग मैंआनिध्याबर्हि में प्रवेश करै॥ पितरों के अर्थ स्वाहा कैसे
पितरों उर्ध्वबर्हिओं (प्रागग्र दर्हिएँ जिन्हों की तिन सोम पीने-
हारों) के अर्थ तथा घर्म पीनेहारों के अर्थ॥४॥ द्यावापृथिवी-
ओं (प्राणोदानौ) के अर्थ स्वाहा। प्राणोदानौ वै द्यावापृथिवी
प्राणोदानावेवास्मिन्नेतद्दधातीति १४·२·२·३६·श्रुतिः॥५॥ वि-
श्वे देवाओं (प्राणों) के अर्थ स्वाहा। प्राणा वै विश्वे देवाः प्राणा-
नेवास्मिन्नेतद्दधातीति १४·२·२·३७·श्रुतिः॥६॥१५॥ +

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्यो-
तिः। अहः केतुना जुषताᳯ सुज्योतिर्ज्योति-
षा स्वाहा॥ रात्रिः केतुना जुषताᳯ सुज्योतिर्ज्यो-
तिषा स्वाहा। मधु हुतमिन्द्रतमेऽअग्नावश्या-
मं ते देव घर्म नमस्तेऽअस्तु मा मा हिᳯसीः॥१६॥ +

+ स्वा-ये। अ॰। स्वा-तिः। दृ॰। अ-हा। ज॰। रा-हा। त्रः॰। म-सी। ल्ठ॰॥१६॥

का॰ २६॰६॰१५॰ मूलाग्रावधि घर्मघृताभ्यक्त सप्तम शकल को द-
क्षिण की ओडी देखता प्रतिप्रस्थाता के अर्थ देवै ॥ रुद्रों + (स्तो
तृयों) से स्तुत रुद्र के अर्थ सुहुत हो ॥ ७ ॥ एवं सप्त यजुषां मध्ये च
तुर्थ सप्तमयोर्विनियोग उक्तः शेषैः पञ्च शाकले राज्य होमः॥
का॰ २६॰६॰१७॰ स्वाहा समिति घर्म सम्बन्धि घृत को उपयमनि
में सींचै॰ पहिले स्रुवस्थ को घर्म में सींचा अब घर्मस्थ को स्रुचि
में डालै ॥ पयो देवत्यम् प्रा॰ गा॰ या॰ अ॰ वा॰ ज्योतिः (घर्मस्थ
घृत) ज्योति (उपयमनीस्थघृत) करि संगत हो स्वाहा (सुहुतमस्तु)
ज्योतिर्वा इतरस्मिन्पयो भवति ज्योतिरितरस्यां ते होतदुभे ज्यो
तिषी संगच्छेते इति १४॰२॰२॰४०॰ श्रुतेः पयो देवता ॥ का॰ २६॰६॰
१८॰ उत्तररौहिण को संज्योतिषा ज्योति एतन्मन्त्रकर्म के अनन्त
र होमें ॥ अहः केतुना ॥ व्याख्याते यजुषी ३७॰२१॰ ॥ का॰ २६॰६॰२०॰
उपयमनी में आनीत घर्माज्य को अग्निहोत्रहोमप्रकारेण सम
न्त्रक होमि के वाजिनवत् उपहवप्रार्थनपूर्वक होता॰ अध्वर्यु॰ ब्र
ह्मा॰ प्रस्तोता॰ प्रतिप्रस्थाता॰ आग्नीध्र॰ यजमान॰ भक्षण करैं॥
घर्मदेवत्यम् आर्ची बृ॰ अग्निमें मधुर (घर्माज्य) हमलोगों नें होमा
कैसे अग्नि कि इन्द्रतम (वीर्यवत्तम) में (मधुहुतमिन्द्रियवत्तमे
ऽग्नावित्येवैतदाहेति १४॰२॰२॰४२॰ श्रुतेः ॥ हे घर्म हे देव तेरे हुत
शेष को हम भक्षण करते हैं तेरे अर्थ नमस्कार हो हमें हिंसा न
करि (अपना परित्राण प्रार्थना करियें हैं ॥ २६ ॥

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः ॥ उत

प्र॰ द्वि॰ सहस्रनामसु ५३२ पृ॰ ३३०

अर्वसा पृथिवीᳪँ सᳪँसीदस्व मुहाँ२॥ऽअसि शो-
चस्व देववीतये।विधूममग्नेऽअरुषं मियेध्य सृज
प्रशस्त दर्शतम्॥१७॥ †

का०२६।६।२५। प्रवरणीय महावीर को अभीममिति समन्त्रक आ-
सन्दी में करै इतरों को चुपके से ततः शान्तिपाठः॥गायत्री बृ-
हत्यो मध्येऽवसानहीने अभीमम् गायत्री सᳪँसीदस्व बृह-
ती यद्वा वसानत्रयोपेतातिशक्करी अग्नि देवत्या एकैवऋक् ऋ-
ग्द्वयं वा।हे अग्ने तेरी महिमा इस दिवि को अभि होती है।कैसी
महिमा कि विप्रः(विशेषेण पूरता है सब को- मेधावी।विस्तार-
सहित।और अव(धन वा यश)करि पृथिवी को अभिभवतीत्यनु
षङ्गः॥सᳪँसीदस्वेति व्याख्याते कादशेऽध्याये षड्त्रिंशी कण्डि-
का ११।३६। तत्र शोचस्वेति पाठःत्र रोचस्वेति अर्थ एक एव॥१७॥

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याᳪँ हविर्धाने।
सा तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा॥
या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे।सा त
ऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा॥ या ते
घर्म पृथिव्याᳪँ शुग्या जगत्याᳪँ सदस्या।सा त
ऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा॥१८॥ †

का०२६।७।४। अध्वर्यु आज्य को संस्कार करि चतुर्गृहीत करि-
के तिस से होमें अग्नीध्रा ध्रियमाण तीनि शलाकात्रिकों में ती-
नों मन्त्रों से तीसरे को वैठि करि॥घर्मदेवत्यानि त्रीणि१।३।

† अ०।द्व०।अभीमम् सᳪँसीदस्व अनवसानत्वात्॥१७॥
† या-हा।अ०।द्व०।उ०॥१८॥

ऋत्वपङ्क्ती। २·यजु·। हे घर्म जो तेरी द्यु में हुई दीप्ति जो गायत्री छन्द में प्रविष्टा जो हविर्धान (यज्ञगृह) में प्रविष्टा सो तेरी दीप्ति बढ़ो दृढ होवो। तिस तेरी दीप्ति और तेरे अर्थ सुहुत हो॥१॥ हे घर्म जो तेरी दीप्ति अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द में और आग्नीध्र सदन में प्रविष्टा सोतेरी द्युति पूर्ववत्॥२॥ जो तेरी हे घर्म पृथिवी में दीप्ति जगती छन्द में प्रविष्टा सद (यज्ञगृह) में स्थिता सो तेरी इत्युक्तम्॥३॥१८॥

अ·३· क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि। विशस्त्वा धर्मणा वयमनुक्रामाम सुविताय नव्यसे॥१९॥

का·२६·७·६· होम के अनन्तर अध्वर्यु पत्नी को आगे करि शाला से निकलै॥ उपरिष्टाद्बृहती घर्म देवत्या। हे घर्म हम तुम्हें अनु चलते हैं तू ब्रह्म के शरीर को पालि। कि मर्थमनुगमनम् कि क्षत्रिय (देव-सूर्य) के परम (उत्कृष्ट) पालने के अर्थ (एतद्वै देवं क्षत्रं य एष तपतीति १४·३·१·२५· श्रुतेः। किंच विशः (यज्ञ) की धारणानिमित्त करि हम तुम्हें अनु चलते हैं (यज्ञो वै विडन्नस्य त्वारिष्ट्यै इति १४·३·१·२५· श्रुतेः॥ किमर्थम् कि नूतन सु प्रसूत कर्म की सिद्ध्यर्थ॥१९॥

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम॥२०॥

का·२६·७·१४· प्रवृञ्जनीय महावीर को उत्तरवेदि में स्थापन

करें॥ महाबृहती घर्मदेवत्या। वोह घर्म हमारा सर्वायुः (पूर्णायुः प्रदः) हो (पुनरुक्तिरादरार्था)। कैसा वोह कि चतुःस्रक्तिः (चारों कोण दिग्रूपा जिस के॰ एष वै चतुःस्रक्तिर्य एष तपति दिशो ह्येतस्य स्रक्तय इति १४॰१॰३॰१७॰श्रुतेः। तथा ऋत (सत्य वा यज्ञ) का नाभि (बन्धनस्थान। सविस्तारः। जगत की आयु का दाता। और सर्वतः प्रथयिता। हे घर्म तेरे प्रसाद करि हमलोगों से द्वेष निकलजावे इति शेषः (वीतराग हों इति भावः) और हमारे से ह्वर (चलन॰ जन्ममरणलक्षण) निकलजावे। हम अन्यव्रत (मनुष्य कर्म के सकाश भिन्न व्रत जगदनुग्रहरूप परमात्मा) को सेवन करते हैं (परमात्मा की सायुज्य को प्राप्त होते हैं इति भावः (अन्यद्ध्या एतस्य व्रतमन्यन्मनुष्याणामिति १४॰३॰१॰१६॰श्रुतेः॥२०॥

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि॥२१॥

का॰२६॰७॰३२॰गर्तयुक्त पात्रों को दुग्ध से पूरण करें और ते पात्र सप्त हैं (३महावीर २पिन्वने १उपयमनि १स्रुवः। अनुष्टुप् घर्मदेवत्या। हे घर्म यह पय तेरा पुरीष (पूरण करने हारा अन्न) है (अन्नं वै पुरीषमन्नमेवास्मिन्नेतद्दधातीति १४॰१॰३॰२३॰श्रुतेः। तिस (पय) करि वृद्ध हो और पूर्ण हो तेरे प्रसाद से हम वर्धिषीमहि आप्यासिषीमहि चेति व्याख्यातम् २॰१४॰॥२१॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सं सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥२२॥

का॰ २६·७·१२· सामगानानन्तर उत्सादन देश में अचिक्रद दिति तीनि वार परितो जलसेक करिके वक्ष्यमाण करै॥ परोष्णिक् यमदेवत्या। घर्मः सूर्यात्मना स्तूयते। आहुतिद्वारेण वृष्टि कर्ता घर्म प्रवृज्यमानः सन् पुनः-पुनः शब्द करता हुआ। कैसा कि हरितवर्ण वा रसों का हर्ता। एष वै वृषा हरिर्य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्य इति १४·३·१·२६· श्रुतिः। महान् प्रभाव से। मित्र ऐसैं दर्शनीय अत एव सूर्य तुल्य प्रकाशै है जल का धर्ता निधि सुखों का इति शेषः॥२॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो॑ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥२३॥

का॰ २६·७·३७· सपत्नीकाः ऋत्विग्यजमानाः चात्वाल में मार्जन करते हैं। पत्न्या अपि मन्त्रपाठः॥ व्याख्यात ६·२२·॥२३॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥२४॥

का॰ २६·७·३८· ऐशानीं दिशा प्रति यजमान चलता है॥ व्याख्याता २०·२१·॥२४॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो

मयि धेहि ॥२५॥ । ए-हि।अ०।स-हि।इ०॥२३॥

का०२६·७·३९· यजमान पीछे को न देखना ईशान देशसे लौटि करि एधोऽसीति मन्त्रेण एक समिध लेके समिदसीति मन्त्रेण आहवनीय में रखे ॥ मन्त्रद्वयं व्याख्यातम् २०·२३·॥२५॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे। तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

का०२६·७·५४· सपवित्रा अग्निहोत्राहवणी में दधिघर्म ग्रहण करे ॥ ब्राह्मी उष्णिक् दधिघर्मदेवत्या इन्द्रदेवत्या च॥ हे इन्द्र अन्न सहित अनुपक्षीण तेरे ग्रह तितने परिमाण को मैं ग्रहण करता हूं और मुरु विषें अनुपक्षीण जैसे हो तैसे ग्रहण करता हूं (तेरे ग्रहण करि मुरु में यज्ञक्षय नहो इत्यर्थः) तितना कितना कि द्यावापृथिवी जितनी और सप्त समुद्र जितने परिमाण देश में विषेण स्थित हैं तितने महत्तर दधिघर्म को ग्रहण करता हूं इत्यर्थः॥२६॥

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः। घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह॥२७॥

का०२६·७·५५· हुतशेष दधिघर्म को यजमान ऋत्विजसोपहव भक्षण करें॥ पञ्चपदा पङ्क्तिर्यजमानाशीर्देवत्या दधिघर्म देवत्या चेति महीधरः॥ वडा वोह (प्रसिद्ध) इन्द्रिय (वीर्य)

मुरू में विराजे। दक्ष (संकल्पसिद्धि) मुरू में वि॰। क्रतु (सत्संकल्प) मुरू॰। विराज (जगत्प्रसिद्ध) ज्योति (तेजआदित्याख्य) सहित और ब्रह्म (त्रयीलक्षण) तेज सहित घर्म मुरू॰। कैसा घर्म कि त्रिशुक् तीनि हैं दीप्तिएँ जिस की वेद॰या ते घर्म दिव्या सुगित्यष्टा दशी कण्डिका शालाक मन्त्र में कह गया॥२७॥

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरा मुत्तराᳬं समाम्। त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः। इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि॥२८॥

इति संᳬंहितायां तृतीयोऽनुवाकः३

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंᳬंहितायां दीर्घपाठेऽष्टात्रिंᳬंशोऽध्यायः॥३८॥

घर्म देवत्या गायत्र्यनवसाना। दधिघर्मभक्षणे एव विनियुक्ता। पय का रेत (वीर्य॰सार॰जगदुत्पत्तिबीज) जो आहरण किया दधियर्मरूप तिस के दोह (प्रपूरण) को हम उत्तरोत्तर इस वर्ष में व्याप्त हों (सर्वदा हम यायजू का हों इत्यर्थः॥ का॰२६॰७॰५६॰ महाव्रतीय दिवस में त्विष इति मन्त्रेण हुत शेष दधिघर्म को भक्षण करना॥ दधि घर्म देवत्यं यजुः॥ हे त्विषः संवृक् (कान्ति के स्वीकरनेहारे) हे सुषुम्णः (शोभन सुखदातः) हे दधिघर्म में उपहव किये सन् तेरा अंश वा तुझे भक्षण करता हूं + कैसा तेरा कि संकल्प का सिद्धिदाता। + एकर्क्षे-पात्र॰ पात्रराज।

+प-म। अ॰। त्वि-मि। इू॰॥२८॥

तथा शोभन सुख भूत। अग्नि में होमा हुआ। इन्द्र करि भक्षित। प्रजापति करि भक्षित। मधुर स्वादोपेत। उपहूत। कृतोपहव। एवं विध तेरे अंश को हे दधिघर्म में भक्षण करता हूं इत्यर्थः॥ समाप्ता घर्मेति कर्तव्यता॥२८॥

इति भाष्ये तृतीयोऽनुवाकः ३

श्रीवेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयान्महावीरो मखेश्वरः ३८

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वय विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देव वर्म्मात्मज रौक्मिणेय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये शुक्रियायांमहावीर निरूपणेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

हरिः ओम्

ॐनमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहु रूपकम्
स्वानन्द दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३९

अ॰ १॰ स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः। पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा। दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा॥१॥+

ॐनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनोपान्त्येऽध्याये प्रदीपके
दर्यते संहिता भाष्ये शुक्ले घर्मादि निष्कृतिः ३९

+स्वा-भ्यः।अ॰।पृ॰-हा।इ॰।अ॰-हा।उ॰ न्त॰।वा-हा।त॰।दि-हा।अ।सू-हा।ई॰।१॥

भवन्ती यर्मभेदे प्रायश्चित्तम् तत्र का॰ २६-७-४६॰ अयधु भूमिभिम् य॰ न्रतेतिचिदिति इन मन्त्रों से भग्नघर्म को स्पर्शकरि घर्मे स्वाहि॰-५०-५५॰ चतुस्त्रिंश्प्राण् आहुतियें होमिके स्वाहा प्राणेभ्य इति आद्या (पहिली) पूर्णाहुति को होमि पृथिव्ये स्वाहेति विंशति २० आहुतियां को सकृद्गृहीत करि होमि के मनस इति अन्त्या (पिछिली) पूर्णाहुति को करे॥ स्वाहा प्राणेभ्यः १-३॰ मान्त्रवर्णिकी देवता। स्वाहा प्राणेभ्यः या-वि॰। मन्त्रार्थस्तु। अधिपतिः (हिरण्यगर्भ) सहित वर्तमान प्राणों के अर्थ स्वाहा (सुहुतमस्तु) इति पूर्णाहुतिमन्त्रः। ततो विंशतिः स्पष्टा मन्त्राः १॰२॰४॰६॰८॰१३॰१५॰१६॰१७॰१८॰१९॰ २०॰ दे-पं॰३॰दे-ज॰५॰७॰१०॰१२॰१४॰ दे-वृ॰९॰११॰दे-त्रि॰। पृथिवी के अर्थ सुहुत हो। एवमग्रेऽपि अग्नये॰ अन्तरिक्षाय॰ वायवे॰ दिवे॰ सूर्याय॥१॥

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा॥२॥+

दिग्भ्यः॰ चन्द्राय॰ नक्षत्रेभ्यः॰ अद्भ्यः॰ वरुणाय॰ नाभिदेवता॰ शोधकदेवता॰॥२॰

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा। चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा॥३॥+

वागधिष्ठात्रे॰ एवमग्रेऽपि। प्राणेन्द्रियाधिष्ठात्रे॰ (प्राणादीनां हि

+दि-हा।अ॰।च-हा।इ॰।न-हा।उ॰अ-हा।अ॰।व-हा।ल॰।ना-हा।आ॰।पू-हा।ई॰॥२॥
+वा-हा।न॰।प्रा-हा।इ॰।उ॰।च-हा।अ॰।ल॰।श्रो-हा।आ॰ ई॰॥३॥

त्वान्मन्त्रावृत्तिः। चक्षु तिस के अधिष्ठात॰। श्रोत्र के अधिष्ठा-
तृ॰॥३॥

मन॑सः॒ काम॒माकू॑तिं वा॒चः स॒त्यम॑शीय। प॒शू॒-
नाᳪ रू॒पमन्न॑स्य॒ रसो॒ यशः॒ श्रीः श्र॑यतां॒ मयि॒
स्वाहा॑॥४॥

द्वितीयः पूर्णाहुतिमन्त्रः। अनुष्टुब्यजमानाशीःश्रीदेवत्या। मैं
मन के अभिलाष और आकूति (प्रयत्न) को प्राप्त होंउ और
वाणी सत्य को प्राप्त होवै। मेरे विषें यह सब तिष्ठे पशुसम्ब-
न्धिनी शोभा अन्न का स्वादुत्व यश (कीर्ति) और लक्ष्मी॥४॥

प्र॒जाप॑तिः सम्भ्रि॒यमा॑णः स॒म्राट् सम्भृ॑तो वैश्व-
दे॒वः सᳪस॒न्नो घ॒र्मः प्रवृ॑क्त॒स्तेज॒ उद्य॑त आश्वि-
नः पय॑स्यानी॒यमा॑ने पौ॒ष्णो विष्य॒न्दमा॑ने मा-
रु॒तः क्लथ॑न्। मै॒त्रः शर॑सि सन्ता॒य्यमा॑ने वाय॒व्यो॒
ह्रि॒यमा॑ण आग्ने॒यो हू॒यमा॑नो वाग्घु॒तः॥५॥

का॰२६॰७॰५०॰ सम्भ्रियमाणाद्यवस्था (महावीरभेद) में प्रजा
पतये स्वाहेत्याद्या यथा काल आहुतियें होमियें हैं॥ तद्यथा
मन्त्रो दर्शयति सम्भ्रियमाण महावीर जब कि फटे टूटे त-
ब प्रायश्चित्तहोम में प्रजापति देवता है॰ प्रजापतये स्वाहेति
प्रायश्चित्ताहुति होमियें हैं इत्यर्थः (प्रजापतिः सम्भ्रियमा-
णो यथाकालं प्रायश्चित्तदेवतेत्युक्तत्वात् अनुक्रम॰४॰
८॰। द्वे ५॰६ यजुषी॥ पयो॰वसेकानन्तर कुशासादन से पूर्व

सम्भृत कहिये है तिस के भेद (फटने॰ टूटने) में सम्राट् प्रायश्चि-त्त देवता॰ सम्राजे स्वाहेति॥ आसादन सें ले मुञ्जप्रलवों पर अधिश्रयण से प्राक् सर्ठसन्नः तहां भेद में विश्वदेव देवत॰ विश्वे-भ्यो देवेभ्यः स्वाहेति॥ अधिश्रयण सें ले परिश्रासों करि ग्रहण से पूर्व प्रवृक्तः (प्रवृज्यत॰ इति) तत्र भेदे॰ घर्माय स्वाहेति॥ उद्यम-न सें ले अजापयो॰ वसेक से प्राक् उद्यतः तत्र भेदे तेजसे स्वा-हेति॥ अजापय के आसिच्यमान घर्मभेद में अश्विदेवत्यः घ-र्म है॰ अश्विभ्या ठं स्वाहेति होमिये हैं॥ विशेषेण स्यन्दमान (घीके बाहिर स्रवते) में घर्मः पूषदेवत्यः॰ पूष्णे स्वाहेति हो०॥ मध्य में घीका आवर्तन तब मरुद्देवत्यः तत्र भेदे मरुद्भ्यः स्वा-हेति जुहोति॥ पयो॰ वसेक में थोपरि तरिका उत्पन्न होती है वो-ह शर कहिलाती है तिस के संताप्यमान (तप्यमान) में मित्रदे-वत्यः तत्र शरआदि हरण से प्राक् भेदे॰ मित्राय स्वाहेति जु०॥ आहवनीय को ह्रियमाण होम से पहिले वायुदेवत्यः तत्र भे-दे वायवे स्वाहेति जु०॥ हूयमान घर्म अग्नि देवत है तत्र तद्भे-दे अग्नये स्वाहेति जु०॥ होम से ऊपर उत्तरघर्मारम्भ से प-हिले वाग्देवतः तत्र भेदे वाचे स्वाहेति जु०॥ एता आहुतियें सकृद्गृहीत आज्य करिकें होमियें हैं॥ ५॥

सविता प्रथमे॰ हन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय॰ आ-दित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम॰ ऋतुः षष्ठे मरु-तः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे वरु-

णो दशुम॒ऽइन्द्र॑ एकाद॒शे विश्वे॑ दे॒वा द्वा॑द॒शे ॥६॥

का॰२६॰७॰५१॰ और सविता प्रथमे ऽहन्निति प्रतिदिन में तथाचा-
नुक्रमणी ८॰४॰ सविता प्रथमे ऽहन्प्रत्यहं क्रमेण॥ प्रथम दिन
घर्म भेद में सविता॰ सवित्रे स्वाहेति जु॰॥ एवमग्रे ऽपि। दूसरे दि-
न घ॰ अग्नि दे॰ अग्नये स्वा॰॥ तीसरे दिन॰ वायवे स्वा॰॥ चौ-
थे दिन आदित्येभ्यः स्वा॰॥ पाँचमें॰ चन्द्रमसे स्वा॰॥ छठवें ऋ-
तु:॥ सातवें॰ मरुतः॥ आठमें॰ बृहस्पतिः॥ नवमे॰ मित्रः॥ दश-
मे॰ वरुणः॥ एकादशे॰ इन्द्रः॥ द्वादशे॰ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा-
हेति जु॰॥ उपसत्सु वृद्धौ एता एवाहुतयः पुनरादित आरभ्या-
वर्त्यन्ते॥६॥

अ॰२॰ उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॒ ध्वान्तश्च॒ धुनि॑श्च। सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भि-
यु॒ग्वा च॑ वि॒क्षिपः॒ स्वाहा॑॥७॥

का॰१८॰४॰२४॰ चयन में मारुतों षट् पुरोडाशों को शुक्रज्यो-
तिश्चेत्यादि षट् मारुतमन्त्रों से १७॰८०-८५॰ होमि के अरण्यमें
अनूच्यसंज्ञक सप्तमपुरोडाश विमुख संज्ञक को उग्रश्चेति
मन्त्र करि होमें तथाचानुक्रमणी ४॰८॰ उग्रश्च मारुती गायत्री
विमुखाख्यो मन्त्रोऽग्नौ विनियुक्तस्तस्मादाग्निक एवास्यऽर्षिः
परमेष्ठी प्राजापत्यो वेति। आग्निकः प्रजापतिर्ऋषिः। अस्यम-
न्त्रस्यात्र पाठोऽरण्ये पाठ्योग्यत्वात्। अथ मन्त्रार्थः॥ जो एते
उग्रादिनामकाः सप्त मरुतः तिन्हों के अर्थ सुहुत हो। उग्र।उ-
त्कृष्ट॥४३॥ विभेदने हारा॥४४॥ शब्द करता॥४६॥ शत्रुओं को

कंपाता॥४६॥ शत्रुओं को अभिभवता॥४७॥ हमारे संमुख योग को प्राप्त होता॥४८॥ रिपुओं को विविध क्षपता॥४९॥७॥

अग्निर्ठं हृदयेनाशनिर्ठं हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना। शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तःपर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम्॥८॥

का०२०।८।६-८। उग्रश्चेति मन्त्र विमुख है तिस से परें देवता अम्बाओं के अर्थ अग्निर्ठं हृदयेनेत्यादिकों से चतुर्गृहीत आज्य को लेलेकर होमें। तत्रापि पक्षद्वयम्। अग्नये स्वाहा हृदयाय स्वाहा अशनये स्वाहा हृदयाग्राय स्वाहा इत्यादि कात्यायनादिकों का अभिप्राय है अग्निर्ठं हृदयेन प्रीणामि स्वाहेत्यादि हरिस्वामिमते प्रयोगः। ततश्चाग्निर्ठं हृदयेनेत्यादीन्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्यन्तों होमों को करिके मान इति अनुवाकों २५। २४-३९। से षोडशाहुतियें होमिके द्यावापृथिवीभ्याᳬ स्वाहेति चरमा आहुति को होमें इति सूत्रार्थः॥ अरण्ये ऽनूच्यान्हुत्वा द्यावापृथिव्यामुत्तमाहुतिं जुहोतीति श्रुतेः। आरण्य में अनूच्यों (पठितों अग्निर्ठं हृदयेनेत्यादिकों विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्येवमन्तों) होमों को करिके द्यावापृथिवीयामुत्तमा आहुति को होमें इति श्रुत्यर्थः॥ तथा चानुक्रमणी ४।८। अग्निर्ठं हृदयेणाश्वमेधिकानि तत्रोक्त एव शर्षिर्लोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिंशत्। तत्राग्निं हृदयेण। उग्रं लोहितेन द्वे कण्डिके ब्राह्मण-

रूपे देवताम्वावयवसम्बन्धविधानात् अरण्येऽध्येयत्वादिह पाठः। लोमादीन्यङ्गान्येव परितानि आयासादयो देवता एव॥ अथ मन्त्रार्थः॥ हृदयाङ्ग करि अग्निदेव को प्रीणामि (तृप्त करता हूं॥ हृदय के अग्रभाग करि अशनिदेव को प्री॰॥ समग्र हृदय करि पशुपतिदेव को प्री॰॥ यकृत् (कालखण्ड) करि भवदेव को प्री॰॥ मतस्नाओं (हृदयास्थिविशेषों तिन्हों) करि शर्वदेव को प्री॰॥ मन्यु (अश्वसम्बन्धि क्रोध) करि ईशान देव को प्री॰॥ अन्तर्वर्ति पर्शव्य (पार्श्वास्थि सम्बन्धि मांस) करि महादेवदेव को प्री॰॥ वनिष्ठुः (स्थूलान्त्र) करि उग्रदेव को प्री॰॥ वसिष्ठदेव का हनुः (कपोलैकदेश) जानना। यद्वा वसिष्ठा जो हनुः (कपोल का अधोभाग हनता आहार को) हनुः लिङ्गव्यत्ययः) वसिष्ठहनुः तिस) करि और कोश्याओं (हृदयकोशस्थमांसपिण्डों) करि शिङ्गि संज्ञकदेवताओं को प्री॰॥ ८॥

उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा। भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तःपार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत्॥ ९॥

लोहित (असृक्) करि उग्रदेव को प्री॰॥ सौव्रत्य (शोभन गत्यादि कर्मकर्तृत्व) करि मित्रदेव को प्री॰॥ दौर्व्रत्य (दुष्ट स्खलनोच्छलनादि व्रत) करि रुद्रदेव को प्री॰॥ प्रक्रीड (प्रकृष्टक्रीडन) करि इन्द्रदेव को प्री॰॥ बल (सामर्थ्य) करि मरुद्देवताओं को प्री॰॥ प्रमुदा

(प्रकृष्ट हर्ष) करि साध्य देवताओं को प्री०॥ कण्ठ में हुआ मांस भव देवता का हो वा कण्ठ में हुए मांस करि भवदेवता को प्री०॥ एवमग्रेऽपि। पार्श्व के मध्य में हुआ मांस रुद्रदेवता का हो॥ यकृत् (कालखण्ड) महादेव-देवता का हो॥ स्थूलान्त्र शर्वदेवता का हो॥ परीतत् (हृदयाच्छादक अन्त्र) पशुपति देवता का हो॥९॥

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा। माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥१०॥

त्रीणि यजूꣳषि॥ लोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिꣳशत्॥ लोमादिक अङ्ग हैं। लोमभ्यः स्वाहा (लोमों को होमता हूं इत्यर्थः २· त्वचे ४· लोहिताय ६· मेदोभ्यः (मेदो-धातुविशेषः ८· माꣳसेभ्यः १०· स्नावभ्यः (स्नायवो-नसाः) १२· अस्थभ्यः १४· मज्जभ्यः (मज्जा-षष्ठोधातुः) १६· रेतसे (वीर्यः) १७· पायवे (गुदा) १८·॥१०॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा॥११॥

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्त्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२॥

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याथं स्वाहा ॥१३॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशाखीयायां वाजसनेयसंहितायां दीर्घपाठे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९

आयासाय (आयासादयो देवविशेषाः) १९· प्रायासाय २०· संयासाय २१· वियासाय २२·उद्यासाय २३·शुचे २४· शोचते २५·शोचमानाय २६· शोकाय २७·तपसे २८· तप्यते २९·तप्यमानाय ३०· तप्ताय ३१· घर्माय ३२·निष्कृत्यै ३३· प्रायश्चित्त्यै ३४·भेषजाय ३५· यमाय ३६·अन्तकाय ३७· मृत्यवे ३८· ब्रह्मणे ३९· ब्रह्महत्यायै ४०· विश्वेभ्यो देवेभ्यः ४१ एतेभ्यो देवेभ्यः सुहुतमस्तु। एता आहुतियें होमिके द्यावापृथिवीभ्याथं स्वाहेत्यन्ता आहुति होमें ४२·॥ ॥एता वता कर्म काण्डं समाप्तम् ॥११॥ १२॥ १३॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयान्महाविष्णुर्मखाधिपः ३९·

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेयनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सुनिर्यायां प्रायश्चित्तवर्णनो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

गिरिप्रसादसर्वस्वे श्रीवेदार्थप्रदीपके
व्यरमत्कर्मकाण्डोऽयं वल्लभाग्निप्रसादत १॰

अस्याग्रे एकेनाध्यायेन ज्ञानकाण्डो भविष्यति

आश्विनस्यामले पक्षे चतुर्थ्यां भानुवासरे
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे कर्मकाण्डः समागमत् १॰

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हरिः ओम्

ॐ नमः परमात्मने

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुत कर्मणे
रूपनामविभेदेन जगत्क्रीडति यो यतः ४०
म॰ १ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्। ते-
न त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥
नत्वा रविं याज्ञवल्क्यं दध्यङ्डाथर्वणं तथा
संहिता चरमाध्याये ज्ञानकाण्डो वितन्यते २

एकोनचत्वारिꣳशताध्यायैः कर्मकाण्डं निरूपितम् इदानीं कर्मोचरणशुद्धान्तःकरणं प्रति ज्ञानकाण्डमेकेनाध्यायेन निरूप्यते। ईशा वास्यमित्यादिमन्त्राणां कर्मसु विनियोगो नास्ति तेषां शुद्धत्वैकत्वापापविद्धत्वाशरीरत्वसर्वगतत्वाद्यात्मयाथात्म्यप्रतिपादनात् तच्च कर्मणा विरुध्यते न हीदृगात्मोत्पाद्यो विकार्य आप्यः संस्कार्यः कर्ता भोक्ता वा भवेद्येन कर्मशेषता स्यात् तस्मादविद्याकृतमात्मनोऽनेकत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वाशुद्धत्वपापविद्धत्वाद्यङ्गीकृत्य लोकबुद्धिसिद्धानि कर्माणि विहितानि यो हि दृष्टेन ब्रह्मवर्चसादिनादृष्टेन स्वर्गादिना कर्मफलेनार्थी सन्नहं द्विजातिः कर्माधिकारवानित्यात्मानं मन्यते तस्य कर्माधिकारः तस्मादेते मन्त्रा आत्मयाथात्म्यप्रकाशनेन शोकमोहादिसाधनमज्ञानं विनिवर्त्यात्मज्ञानं जनयन्तीत्यभिधेयसम्बन्धप्रयोजनानि। इदानीं ते मन्त्रा व्याख्यायन्ते॥

हरिः ओम्
ॐनमो वेदपुरुषाय
गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके
ईर्यते चरमोऽध्यायःपरमात्मनिरूपकः४०

ईशा वास्यम्। आत्मदेवत्य अनुष्टुप्छन्दस्कोऽध्यायो दधीचार्थर्वणेन दृष्टः॥ ॥गर्भाधानादिसंस्कारसंस्कृतमधीतवेदं जनितसुतं यथाशक्तिकृतयज्ञं निष्पापं निःस्पृहं यमनियमोपेतं मुमुक्षुमुपसन्नं शिष्यं पुत्रं वा ऋषिरुपदिशन्नाह॥

ईशा (परमेश्वर) सो ही सब जन्तुओं का आत्मा होते सब को ईष्टे तेन अपने आप करि ईशा यह प्रत्यक्ष से दृश्यमान सब वास्यम् (आच्छादनीय है) परमात्माहमेवेदं सर्वं इति परमार्थसत्यरूपेण आत्मा करि सब यह आच्छादनीय अनृत है परमात्माहमेवास्मि नान्यदस्तीति चिन्तन करै इत्यर्थः। यत् किम् चेति भिन्नक्रमः किंच जो जगती (तीनोंलोक) मेंजगत् (जङ्गमादिक स्वामिसम्बन्धालिङ्गित) हो तिस सब त्यक्त स्वस्वामिसम्बन्ध करि भोग को अनुभव करै मा गृधः (आकांक्षा मत करि) यह मेरा यह बुद्धि त्यागि। किमिति स्विदिति निपातौ वितर्के धन किस का स्वित् किसी का भी नहीं इत्यर्थः सब द्रव्यें अन्योन्य के समीप में जाते दीख पडते हैं इस हेतु यह मेरा यह बुद्धि अविद्या है तिसै छोडते योग में अधिकार है इत्यर्थः॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतᳬसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥२॥

आत्मज्ञानाशक्तस्य कर्मोपदेशमाह। कर्माणि अग्निहोत्रादिकों निष्कामी मुक्ति के हेतुओं को करते ही इस लोक में शत वर्ष तू जीने के लिये इच्छा करै (पुरुषायुषः शतवर्षत्वाच्छत ग्रहणम्। तेरी ऐसे कर्म करते जीतेजी मुक्ति है इतिशेषः इस प्रकार से अन्यप्रकार करि मुक्ति नहीं है अयमर्थः स्वर्गादि प्राप्ति में जैसे नानाप्रकार हें नहीं हें तैसे मुक्ति में इत्यर्थः निष्कामकर्मानुष्ठान करि शुद्धान्तःकरण की ही मुक्ति है इत्यर्थः न तु कर्म की फल करि चाहकरना कथं मुक्तिरित्यत आह न कर्मेति मुक्त्यर्थं क्रियमाण कर्म मनुष्य में न लिपै (बँधै) मुक्तिकारणान्तःकरणशुद्धि अपादकत्व करि अपक्षीणशक्तित्व से जितनी इच्छा तितनें कर्मों में अधिकार यह दिखलाया। उत्तरार्धस्यार्थान्तरं वा इस प्रकार तुझ जीनेंकी इच्छा रखनेहारे नर (नरमात्राभिमानी) में इस कर्म करनेसे अन्यथा (प्रकारान्तर) नहीं कि जिस प्रकार से अशुभकर्म न लिपै अतः शास्त्रविहित कर्म करते ही जीने के लिये इच्छा करै प्रत्यवायपरिहार के अर्थ तदुक्तम् द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तेश्च विभाषित इति॥२॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।

तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥३॥

अथ काम्यकर्मपरान्निन्दति। जे कोइक मनुष्य आत्महनः (आत्महत्यारे) अविद्वांसः काम्यकर्मपराः विद्यमान अजर अमर आत्मा का अविद्यादोष करि अनादर करते हैं ते मृत्यु हो (देहछोडि) कर तिन लोकों (स्थावरान्त जन्मों को प्राप्त होते हैं। तिन किन्हों कि नाम (प्रसिद्ध) जे † लोक (लोकियें देखियें भोगियें हैं कर्मफल जहां इतिजन्म) असुर्याः असुरों (प्राणपोषणपरायणों) के अद्वैत को अपेक्षा करि देवता भी असुर हैं। कैसे लोक कि अदर्शनात्मक अज्ञान करि आछादित हैं। अर्थात् आत्मा के न जाननेहारे पुनः-पुनः उत्पन्न होते और मरते हैं॥३॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥४॥

मुमुक्षुभिर्योदृशं ब्रह्मात्मत्वेनोपास्यम् यस्याज्ञानात्संसारस्तदात्मस्वरूपमाह। त्रिष्टुप्छन्दस्केयमृक्। जो ब्रह्म अनेजत् (नहीं कांपता ‡ चलता सदा एकरूप) एक (अद्वितीय) सब भूतोंमें विज्ञानघनरूप करिके। मन (संकल्पादिलक्षण) से जवीयः (अत्यन्तवेगवान्) ननु अनेजद्वेगवतोर्विरोधः मैवम् निरुपाधित्वकरि अनेजत् और संकल्पविकल्परूप अन्तःकरण की उपाधि के अनुवर्तन से जविष्ठ देहस्थ मन का दूरस्थब्रह्मलो-

† यत्न दीर्घ्यत्यय: ‡ स्वावस्थाप्रच्युतिः कम्पनम् तद्रहितम्

कादिसंकल्पन क्षणमात्र से होता है इस हेतु मन वेगवत्तर लोक में प्रसिद्ध है मनसि दूरं गच्छत्यात्म चैतन्यावभासः प्रथम प्राप्त इव गृह्यते इस कारण मन से जवीय यह कहा गया। देवाः (द्योतनात्मकाः चक्षुः से आदि ले इन्द्रियें) एनत् (प्रकृत आत्मतत्व) को नही प्राप्त होते हैं अर्थात् चक्षुरादिकों से मन जवीय अतः मनोव्यापार में व्यवहितत्व से आत्मा का आभासमात्र भी देवताओं का गोचर नही होता है इत्यर्थः क्योंकि पूर्वमर्शत् (वेगवन्मन से भी प्रथम ही गया-व्योमवद्व्यापित्व से सर्व संसारधर्मवर्जित सो आत्मतत्व निरुपाधिक स्वरूप करि अविक्रिय ही सत् उपाधि करी हुई सब संसारविक्रिया अनुभव करै है ऐसे यह अविवेकियों के प्रतिदेह को अनेक ऐसे प्रतिभासे है इतिभावः यद्वा पूर्वम् (पूर्वविद्यमान) अर्शत् (नही नाश होता+। किं च तत् (जो‡) आत्मतत्व धावतः (शीघ्रचलते) अन्यों (मनोवागिन्द्रियादिकों आत्मविलक्षणों) को अत्येति (अतीत्य जाता) ऐसा है कैसा कि तिष्ठत् (आप अविक्रिय होने से ही चलता है। मातरिश्वा (वायु ५) तस्मिन् (जिसनित्यचैतन्यस्वभाव आत्मतत्व में) अपः (कर्मों को दधाति (धारण करता है कार्यकारणजात जिस में ओत प्रोत हैं और जो सूत्रसंज्ञ सबजगत का विशेष करि धारण करनेहारा सर्वप्राणभृत्क्रियात्मक सो वायु भी प्राणियों की चेष्टालक्षण अग्निरविमेघादिकों के ज्वलन दहन प्रकाशाभिवर्षणादिक कर्मों को जिस ब्रह्म में दधाति

+रिषा हिंसायाम्
‡ तदः स्थाने यदो वृत्तिः

५ मातरि (अन्तरिक्षे) श्वसिति (गच्छतीति)

विभजवाता वा धारण कराता है + सब ही कार्य कारणादि क्रियाएँ सर्वास्पद नित्यचैतन्यरूप ब्रह्म में सत्येव होती हैं इत्यर्थः। यद्वा मातरिश्वा (वायु) अपः (कर्मों * यज्ञ होमादिकों) को जिस में स्थापन कराता है स्वाहा वाते धा इति २॰२१॰ समिष्टयजु में वायुस्थत्व कहिने से कर्मों को तब तक वायु में स्थापन करिये हैं समिष्टरूप वोह वायु भी जिस में कर्मों को स्थापन कराता है यागहोमदानादि कर्मों का परम निधान है इत्यर्थः॥४॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥५॥

रहस्यं सकृदुक्तं चित्ते नायातीति पूर्वमन्त्रोक्तमप्यर्थं पुनर्वदति। सो प्रकृत (आत्मतत्व) एजति (चलता) और सो ही आप से नही चलता है अचल होने से मूढ दृष्टि करि चलता ऐसा है इत्यर्थः। किं च सो दूर में (अविद्वानों को कोटि वर्ष पर्यन्त न प्राप्त होने से दूर में ऐसा है इत्यर्थः। सो ही समीप में (विद्वानोंको आत्मत्व करि भासमानत्व से नहीं केवल दूर और समीप में। इस सब (नामरूपक्रियात्मक जगत) के भीतर सो ही है। इस सब के बाहिर भी सो ही है ब्रह्मनभोवत् व्यापक होनेसे॥ अस्य मन्त्रस्यार्थोन्तरं यथा पूर्वमन्त्रेण कारणरूपमात्मानमुद्दिश्य कार्यरूपमुद्दिश्यति। तदेजति। त्रिस्रोऽनुष्टुभः। सो आत्मतत्व एजति (सर्वजन्तुरूप करि स्थित होने से काँपना क्रियावत होता है। और सो ही स्थावररूपावस्था में नहीं चलता

+ भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति तैत्तिरी॰आर॰८॰८॰ श्रुतेः।

* आप्यन्ते (प्राप्यन्ते) सुखदुःखानि याभिस्ता आपः कर्माणि।

सो ही दूरमें (आदित्यनक्षत्रादिरूप करि स्थितत्वसे) सो ही समीप में (धरादिरूपत्वसे) सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति श्रुतेः। इस सब प्राणिजाति के भीतर में सो ही है विज्ञानघनरूप करिके। इस सब के बाहिर में सो ही है जडरूपत्व से अर्थात् चेतनाचेतनरूप अनन्त ब्रह्म है ऐसे के उपासक का अर्चिरादिमार्ग करि गमन नही है यहां ही ब्रह्मप्राप्ति से नही तिस के प्राण ऊंचे चलते यहां ही भले प्रकार लय होते हैं ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येतीति श्रुतेः॥५॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥६॥

अथोपासनप्रकारमाह। पुनः जो मुमुक्षुः सब भूतों (अव्यक्तों से आदिले स्थावरान्तों चेतनों) को अपने में ही देखता है (मुझ में ही सब भूत स्थित हैं नही हैं मुझ से व्यतिरिक्त) और सब भूतों में अपने को अवस्थित अव्यतिरिक्त देखता है अर्थात् तिन भूतों के स्व आत्मा को आत्मत्व करि देखता है इत्यर्थः। अयमर्थः। इस कार्यकारणसंघात का आत्मा हूं सर्वप्रत्ययसाक्षीभूतश्चेतयिता और निर्गुण और तैसे ही स्वरूप करि अव्यक्तादि स्थावरान्तों का मैं ही आत्मा यह सबों में अपने को निर्विशेष देखता है। ततः (तैसे देखने से) न विचिकित्सति (नही संशय को प्राप्त होता। भाव यह है कि आत्मा को अन्यत् देखते सब संदेह होता है आत्माको अत्यन्त शुद्ध निरन्तर देखते नही है संदेहावकाश इस हेतु आत्मज्ञ की विचारनि-

वृत्ति है ॥६॥

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

इममेवार्थमन्यो मन्त्रो वदति। जिस (अवस्थाविशेष) में विजानतः (यह जानते) कि आत्मा ही है यह (उस सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादि वाक्य विचार करि अवधृत परमार्थ के) सब भूत आत्मा ही हुए (परमार्थदर्शन से आत्मा ही संवृत्त हैं) तिस अवस्था विषें एकत्व (विशुद्धगगणोपम आत्मा के एकत्व) देखते (जानते) कहां मोह और कहां शोक भाव यह कि अविद्या कार्य शोक मोहों के न होने से सकारण संसार का अत्यन्त उच्छेद है ॥७॥

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

एवम्भूतात्मज्ञस्य फलमाह। जगती छन्दस्केयमृक्। जो ऐसे आत्मा को देखता है सो ऐसे ब्रह्म को प्राप्त होता है। कैसे कि शुक्र (शुद्ध) विज्ञानानन्दस्वभाव अचिन्त्यशक्ति। अकाय (शरीररहित। अकायत्व से अव्रण (अक्षत। अस्नाविर (शिरारहित) अकायत्वादेव। शुद्ध (सत्वरजतमों से अनुपहत। अपापविद्ध (क्लेशकर्मविपाकाशयों से अस्पृष्ट + । ऐसे ब्रह्म को आत्मज्ञ प्राप्त होता है इत्यर्थः। पुनस्तस्यैव फलान्तरमाह जो ऐसा उपासक सो अनन्तवर्षप्राप्ति के अर्थ यथास्वरूप स्वस्वा-

+ अकायमव्रणमस्नाविरमिति पुनरुक्तमर्थातिशयद्योतनाय अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्त इति यास्कोक्तेः। निरु० १०।४२।

मिसम्बन्ध छोडि चेतनाचेतन अर्थों से उपभोग करता हुआ। कैसा कि कवि(क्रान्तदर्शी।मनीषी(मेधावी।परिभूः(ज्ञानवल से सर्वरूप।स्वयम्भूः(ब्रह्म रूप करि होनेहार।ऐसा पूर्वोक्तशुक्रमकायमित्यादिविशेषणविशिष्ट ब्रह्म को प्राप्त होता है इत्यर्थः॥एतस्या ऋचोऽर्थान्तरम्।यथा।जो यह अतीतमन्त्रोक्त आत्मा सो सर्वत्र चलता(नभोवत्सर्वव्याप्त) है और व्याप्त होंसाश्वती(नित्या) समा(सम्वत्सरनामा प्रजापतिओं) के अर्थयाथातथ्यतः(यथाभूतकर्मफलसाधन से) अर्थों(कर्तव्यपदार्थों) को व्यदधात्(यथानुरूप विभाग करता हुआ।सो कैसा कि शुक्र(शुद्ध दीप्तिमान्) अकाय(लिङ्गशरीरवर्जित) अव्रण(अक्षत) अस्नाविर(शिरारहित अव्रण अस्नाविर इन दोनो विशेषणों करि स्थूलशरीरप्रतिषेध है) शुक्र(शुद्ध निर्मल) अपापविद्ध(अधर्मादिवर्जित) कवि(सर्वदृक्+) मनीषी(मन का स्वामी सर्वज्ञ) परिभूः(सवों के ऊपर-ऊपर में होता है) स्वयम्भूः आप ही होता जिन्हों के ऊपर में होता और जो ऊपर में होता है) सो आप ही होता है।सो नित्य ईश्वर सब करता हुआ इत्यर्थः॥८॥

अ॰ २॰ अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याᳬ रताः॥९॥

अतः परमुपासनामन्त्रा उच्यन्ते।षडनुष्टुभः।यमनियमसम्बन्धवान्विज्ञानात्मा कोई भी नहीं जलबुद्बुदवज्जीव हैं मदशक्तिवद्विज्ञान है इत्यादि मतवादि बौद्धलोग कहिकर निन्दा करते हैं।

+ भाष्यहस्तलिखित शुद्धः

जे मनुष्य कि असम्भूति (असम्भव-मृतक का फिर सम्भव नही इस हेतु शरीर के अन्त में ही हमारी मुक्ति है यह) उपासते (कहते) हैं ते अन्ध तम (अज्ञानलक्षण) को प्रवेश करते हैं। और जे सम्भूति (आत्मा) में ही रत (आसक्त-कर्म से पराङ्मुख अपनी बुद्धि के लाघव को न जानते आत्मज्ञानमाचरत) हैं आत्मा ही है नही हैं अन्यकर्मादिक कर्मकाण्डज्ञानकाण्ड का सम्बन्ध नही है इस अभिप्रायवाले इत्यर्थः ते मनुष्य तिस अन्धतम से बहुतर+ अज्ञान को प्रवेश करते हैं॥

+ इत्यर्थकी उत्तरार्थ

अस्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते अधुना व्याकृताव्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्दोच्यते। सम्भूति (कार्य की उत्पत्ति तिस) से अन्या असम्भूति प्रकृति कारण अव्याकृताख्य तिस असम्भूति अव्याकृताख्याप्रकृति कारण अविद्याकामकर्मबीजभूता अदर्शनात्मिका) को जे उपासते हैं ते तिसी के अनुरूप ऐसे अन्धतम (अदर्शनात्मकसंसार) को प्रवेश करते हैं। और जे सम्भूति (कार्यब्रह्म-हिरण्यगर्भाख्य) में रत हैं ते तिस से भी बहुतर ऐसे तम को प्रवेश करते हैं॥९॥

अन्यदे॒वाहुः स॑म्भ॒वाद॒न्यदा॑हु॒रस॑म्भवात्। इति॑ शुश्रुम॒ धीरा॑णां॒ ये न॒स्तद्वि॑चचक्षि॒रे॥१०॥

अथोभयोरुपासनयोः समुच्चयकारणमवयव फलभेदमाह। सम्भव (कार्यब्रह्मोपासन) से अन्यदेव (पृथगेव-अणिमाद्यैश्वर्यलक्षण फल) कहिते हैं धीरलोग। तथा असम्भव (अव्याकृ-

तोपासन) से अन्यदेव (अन्धं तमः प्रविशन्तीत्युक्तं प्रकृतिलय यह पौराणिकोक्तफल) कहिते हैं। इति (एवंविध) धीरों (विद्वानों) का वचन हम सुनते हुए कि जे धीरलोग हमारे प्रति तिस (पूर्वोक्त सम्भूत्य सम्भूत्युपासनाफल) को व्याख्या करते हुए ॥१०॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयᳬं सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११॥

सम्भूति (सर्वजगत्सम्भवैकहेतु परब्रह्म। और विनाश (विनाशधर्मक शरीर। तिन दोनो शरीरिशरीररूप को जो योगी एकीभूत जानता अर्थात् मैं देही से भिन्न हूं देही में वास कर्मवश से यह जानि शरीर करि ज्ञानोत्पत्ति करनेहारे निष्काम कर्मों को करता है। सो विनाशी (शरीर) से मृत्यु को तरि (अन्तः करण शुद्धि को सम्पादनकरि) सम्भूति (आत्मज्ञान) करि अमृत (मुक्ति) को प्राप्त होता है॥ अस्या ऋचोऽर्थान्तरम्। यथा। सम्भूत्युपासनयोरेकपुरुषार्थत्वात्समुच्चय एव युक्त इत्याह। अत्र विनाशशब्दद्वयेऽवर्णलोपो द्रष्टव्यः पृषोदरादित्वात् अन्यदाहुरसम्भवादित्युक्तेः॥सम्भूतिमविनाशं च व्याकृताव्याकृतोपासन दोनों को जो एकीभूत उपासना करता है सो योगी अविनाश (अव्याकृतोपासन) करि मृत्यु (अनैश्वर्य और अधर्म कामादि दोषजात) को अतिक्रम करि सम्भूति (हिरण्यगर्भोपासना) से अमृत (प्रकृतिलयलक्षण) को प्राप्त होता है॥११॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो

भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायाᳬ रताः॥१२॥
ये तु कर्मनिष्ठाः कर्म कुर्वन्त एव जिजीविषन्ति तान्प्रत्युच्यते। विद्याविद्ययोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्दोच्यते। विद्या से अन्य। अविद्या(कर्म) जे मनुष्य अविद्या(केवल अग्निहोत्रादिलक्षण) को उपासते(स्वर्गके अर्थ केवल कर्मों को करते) ते अदर्शनात्मक अज्ञान को प्रवेश करते(संसारपरम्परा को अनुभव करते) हैं। और तिन्हों से भी बहुतर तम को ते प्रवेश करते हैं कि जे विद्या(आत्मज्ञान·देवताज्ञान) में ही रत हैं(कर्मों को छोडि कर्म के न करने में प्रत्यवाय के उत्पन्न होते अन्तःकरणशुद्धि के अभाव करि ज्ञान का उदय न होने से इति भावः॥१२॥

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥१३॥
तयोः फलभेदमाह। विद्या(आत्मज्ञान) का फल(अमृतरूप) अन्यत् कहिते और अविद्या(कर्म) का फल (पितृलोकरूप) अन्यत् कहिते हुए धीरलोग+। कि जे धीर (धीमन्त आचार्य) लोग हमारे अर्थ ज्ञान और कर्म को कहिते हुए सो कहा· यह ही धीरों का वचन हमने सुना है॥१३॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयᳬ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥१४॥
समुच्चयमाह। विद्या(देवताज्ञान) और अविद्या(कर्म) तिन दो-

+ कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोक इति श्रुतेः॥

नें विद्याविद्यारूप को जो एकी करि के जानता (एक पुरुष करि
अनुष्ठेय हैं॰ कर्मकाण्ड को ज्ञानकाण्ड का गुणभूत जान
ता) है। सो अविद्या (अग्निहोत्रादिकर्म) करि मृत्यु (स्वाभा
विक कर्म ज्ञान) को उत्तरि के अन्तः शुद्धि करि कृतकृत्य हो विद्या
(देवताज्ञान) करि अमृत (देवतात्मभाव) को प्राप्त होता है + ॥१४॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तᳫं शरीरम्। ओ३
म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतᳫं स्मर ॥१५॥

अथ कृतोपासनो योगी अन्तकाले प्रार्थयते। वायुरनिलम्
अथेदमिति द्वे यजुषी तत्र प्रथमा प्राजापत्या गायत्री द्विती
या याजुषी बृहती। अथेदानीं परीष्यतः मेरा वायु (प्राण॰वा
युग्रहणं सप्तदशकलिङ्गोपलक्षणार्थम्॰ सप्तदशात्मकलि
ङ्ग॰रूप प्राण अध्यात्मपरिच्छेद को छोडि कर) अधिदैवतरू
प सर्वात्मक अमृत सूत्रात्मक अनिल (वायु) को प्राप्त हो
इति वाक्यशेषः ‡ अर्थात् ज्ञानकर्मसंस्कृतलिङ्ग॰ को ऊँच
निकाले ॥१॥ अथ यह स्थूलशरीर अग्नि में होमा हुआ भ
स्मान्त (भस्मरूप हो॰ कृतप्रयोजनत्वात् ॥२॥ अथ योगिनो
ऽवलम्बभूतमक्षरमुच्यते ओमिति ब्रह्मणः प्रतिमा
नाम वा। ओ३मिति परमाक्षरस्य योगिनामालम्बभूतस्य प
रस्य ब्रह्मणः प्रणवाख्यस्यास्थूलादिगुणयुक्तस्य ब्रह्म ऋ
षिः छन्दो गायत्रं ᛋ परमात्मा देवता ब्रह्मारम्भे विरामे च याग
होमादिषु शान्तिपुष्टिकर्मसु चान्येष्वपि काम्यनैमित्तिकादि

+ तद्भूतमुच्यते यद्देवतात्मगमनमिति श्रुतेः।

ᛋ दैवीगायत्री

‡ वायुर्वाव गौतम सूत्रं वायुना गौतम सूत्रेणायं लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्तीति श्रुतेः बृहदा॰ मा
ध्य॰ ३.५.६.।

षु सर्वेषु विनियोगोऽस्येति कात्या० सर्वानु० ४·२५·। ॐ २ प्रतीकात्मकत्वात्सत्यात्मकमग्न्याख्यं ब्रह्माभेदेनोच्यते। क्रतो· क्लिबे· कृतम्· त्रीणि यजूंषि दैवी बृहतीछन्दस्कानि। हे ओम् हे क्रतो (संकल्पात्मक) स्मर (जो मेरा स्मर्तव्य है तिस का यह काल प्रत्युपस्थित है इस हेतु स्मर + जो कि तू ब्रह्मचर्य और गार्हपत्य में मैंने परिचरा तिसे स्मर ॥१॥ क्लिबे स्मर(कल्प्यते भोगायेति क्लृप् लोकः तिस के लिये स्मर (मैं इस के लिये यह लोक दूंगा तिस के लिये स्मर ॥२॥ कृतं स्मर, और जो मैंने बाल्यप्रभृति में अनुष्ठान किया कर्म तिसे स्मर। स्मरेत्यस्यावृत्तिरादरार्था ॥३॥ क्रतो त्रिभिर्यजुर्भिरन्ते यज्ञान्योगी स्मारयतीति कात्या० सर्वा० ४·२५·॥१५॥

+ सुमिर, सम्हारि

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१६॥

पुनरन्येन मन्त्रेणाग्न्याख्यं ब्रह्म प्रति योगी मार्गं याचते। अग्ने नयान्ते नमस्कारोक्तिः। अगस्त्यदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप् व्याख्यातापि ५·३६· विशेषाय पुनर्व्याख्यायते। हे देव (दानादिगुणयुक्त) हे अग्ने हम को शोभनमार्ग (देवयान) करि ले चलि (सुपथ यह विशेषण दक्षिणमार्गनिवृत्त्यर्थ है, गतागतलक्षण दक्षिणमार्गकरि निर्विष्ट हूं इस कारण हे अग्ने तुझे याचता हूं कि पुनर्गमनागमनवर्जित शोभनपथ करि हम कर्मफलविशिष्टों

को ले चलि। किस लिये कि राये (धन, मुक्तिलक्षण कर्मफल भोग के अर्थ। कैसा है तू कि सब वयुनो (कर्मों वा प्रज्ञानों) को जानता। किं च जहुराण (कुटिल, प्रतिबन्धक वञ्चनात्मक) पाप को हमारे सकाश से पृथक् करि अर्थात् नाश करि। फिरि विशुद्ध हुए हम तेरे लिये बहुत-बहुत नमस्कार वचन करेंगे क्यों कि यहां सपापत्व से तेरी परिचर्या करने को नहीं समर्थ हैं तिस हेतु तुम करि पापनाश किये में शुद्ध हुए हम नमस्कार करि तुम्हें परिचरेंगे॥१६॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म॥१७॥
इति सᳪंहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २॰
इति श्री शुक्लयजुर्वेदे माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसᳪंहितायां दीर्घपाठे चत्वारिᳪंशोऽध्यायः॥४०॥

पुनरादित्योपासनमाह। उष्णिक् यजुर्द्वयान्ता। हिरण्य ऐसे (हिरण्मय, ज्योतिर्मय) जो पात्र (मण्डल, पीती हैं जहां स्थित रश्मि मणि रसों को, तिस तेजोरूप मण्डल) करि सत्य (आदित्य मण्डलस्थ अविनाशी पुरुष) का मुख (शरीर) अपिहित (आच्छादित) वर्तै है। तथापि जो असौ (प्रत्यक्षः) आदित्य (रवि मण्डल) में पुरुष है (पुरुषाकारत्व से, पूर्ण है इस से प्राणबुद्धि आत्मा करि समस्त जगत् यह वा परिशयन से सो मण्डलस्थ पु-

रुष असौ (प्रत्यक्षः कार्यकारणसंघातप्रविष्टः) मैं हूं। और इस उपासना को करै इत्यर्थः॥ ओम् खं ब्रह्मेति द्वे यजुषी। ओमिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः खं ब्रह्मेत्याकाशरूपमन्ते ब्रह्म ध्यायेत् कात्या॰ सर्वा॰ ४॰५॰ यद्यपि ब्रह्मचेतन और आकाश अचेतन है तथापि एकदेश में सादृश्य है अर्थात् नभोवद्व्यापक ब्रह्म को ओ३म् यह जपते ध्यान करै। सूर्यमण्डलस्थपुरुष में ही हूं यह अभेद से चिन्तन करै॥ १७॥

अथविचारः॥ विद्यां चाविद्यां चेत्यत्र क॰ १४॰ विद्याशब्देन किं मुख्या परमात्मविद्योच्यते उतोपासना वा अमृतमश्नुत इत्यत्र क॰ १४॰ अमृतशब्देन साक्षान्मुक्तिरुत्तरमार्गेण परम्परया वा। नाद्यः। विद्याकर्मणोर्यस्तद्वेदोभयं सहेति क॰ १४॰ समुच्चयानुपपत्तेः तयोर्विरोधात् विद्योत्पत्तौ तदाश्रयेऽविद्यानुत्पत्तेः वन्हिरुष्णः प्रकाशश्चेति ज्ञानोत्पत्तौ शीतोऽग्निरप्रकाशश्चेति अविद्योत्पत्तिर्न सम्भवति नापि संशयोऽज्ञानं वा यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः तत्र को मोहः कः शोक इत्युक्तत्वात्। किं च विद्याशब्देन परमात्मविद्याग्रहणेऽग्ने नयेति सुपथयाचनमनुपपन्नम्। तस्माद्विद्योपासना अमृतं चापेक्षकमिति दिक्॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्
पुमर्थांश्चतुरो दद्यात्कृष्णः स्वानन्ददायकः ४०

इति श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्ये[illegible]
दान्वयोविश्वामित्रपुराधिपकुरुकुलकमलकमला[illegible]
ज्जयकिशोरदेववर्म्मात्मजरौक्मिणेयगिरिधरदेववर्म्मण[illegible]
स्यानुजनृपतिगिरिप्रसादरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिध[illegible]
भाष्ये गिरिप्रसादसर्वस्वे शुक्रियायां परमात्मवर्णनो नाम
चत्वारिंॅशो ऽध्यायः ॥४०॥

गिरिप्रसादसर्वस्वे श्रीवेदार्थप्रदीपके
व्यरमज्ज्ञानकाण्डोऽयं वालकृष्णः प्रसादतः २॰

आदितो ऽनुवाकसंख्या ११॰
इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्रीवेदा
र्थप्रदीपे चतुर्थाध्यायस्य नवमो खण्डः ९॰
पौषे मासे ऽसिते पक्षे सप्तम्यां रविवासरे
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे शुक्रमन्त्राः समागमन् ६॰
समाप्ता चेयं माध्यन्दिनीया वाजसनेयसंॅहिता
ओं तत्सत् श्रीवालकृष्णार्पणमस्तु
अतः परं सर्वानुक्रमणिभाष्य उच्यते

विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाश्रमयन्त्रालये मुद्रि
तम् विक्रमाब्दाः १९३० शाकाब्दाः १७९५ वैशाखशुक्ला १५ चन्द्रवासरः
ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः

अथ संक्षेपत शुक्लमन्त्राणां सूचीपत्रम्

सर्वानुक्रमणी

अथातश्छन्दोदेवता गायत्र्या अग्निरुष्णिहः सवितानुष्टुभः सोमो बृहत्या बृहस्पतिः पङ्क्तेर्वरुणस्त्रिष्टुभ इन्द्रो जगत्या विश्वे देवा विराजो मित्रः स्वराजो वरुणोऽतिछन्दसः प्रजापतिर्विछन्दसो वायुर्द्विपदायाः पुरुष एकपदाया ब्रह्मा। सर्वाश्च आग्नेय्यः सर्वाणि यजूंषि वायव्यानि सर्वाणि सामानि सौराणि सर्वाणि ब्राह्मणानि च। स्वाहाकारस्याग्निर्वषट्कारस्य विश्वे देवाः। कर्मारम्भे मन्त्राणां देवता वेदितव्याः संन्यस्य मनसि देवतां ततो हविर्दीयते देवतामविज्ञाय यो जुहोति देवास्तस्य हविर्न जुषन्ते स्वाध्यायमपि योऽधीते मन्त्रदैवतज्ञः सोऽमुष्मिं लोके देवैरपीज्यते

तस्माच्च देवता वेद्या मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतो।

मन्त्राणां देवताज्ञानान्मन्त्रार्थमधिगच्छति॥

मन्त्रार्थज्ञानात्तु विधूतपाप्मा नाकमभ्येति

न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन देवताः।

श्रौतानां कर्मणां विप्रः स्मार्त्तानां चाश्नुते फलम्॥१०॥

एवं मन्त्राणां देवानुक्त्वा छन्दसां देवानाह। अथातः छन्दों के देवतेति गायत्री का अग्नि॰ उष्णिक् का सविता॰ अनुष्टुप् का सोम॰ बृहति का बृहस्पति॰ पङ्क्ति का वरुण॰ त्रिष्टुप् का इन्द्र॰ जगती के विश्वे देवा विराट् का मित्र॰ स्वराट् का वरुण॰ अतिछन्द का प्रजापति॰ विछन्द का वायु॰ द्विपदा का पुरुष॰ एकपदा का ब्रह्मा। सब ऋचाएँ (गायत्र्यादि सप्तछन्दों तथा तिनके पदपङ्क्त्यादिभेदों और

अतिजगत्यादि सप्त अतिछन्दों करि लक्षणयुताएँ) अग्निदेवता काहें॰ सब यजुः(कृत्यादि सप्त छन्दों और दैव्यादि एकोनपञ्चाशत् तथा आर्ष्यादि सप्त मिलित्वान् त्रिषष्टि ६३ और छन्दलक्षण रहिताः) वायुदेवता का हैं॰ सब साम (गीती ऋचाएँ) सूर्यदेवत्याः और सब(ऋग्यजुःसाम) ब्रह्मदेवताका हैं। स्वाहाकार का अग्नि॰वषट्कार के विश्वे देवाः। कर्म के आरम्भ में मन्त्रों के देवता जानने चाहियें मन में देवताओं को धारण करि के फिरि हवि होमिये है देवताओं को विनजाने जो होमता है देवता तिस का हवि नही सेवन करते। और स्वाध्याय जो अध्यन करता है मन्त्रदेवता का जाननेहारा सो इस लोक में देवताओं करि पीडा नहीं पाता

तिस हेतु यत्नपूर्वक देवता जानने चाहियें मन्त्र-मन्त्र में क्योंकि मन्त्रों के देवता जानने सें मन्त्र के अर्थ को प्रवेश करता है॥ और मन्त्र के अर्थज्ञान से विधूतपाप्मानाक (स्वर्ग) को प्राप्त होता है

नहीं कोई विप्र(वैदिक) विनजाने जो के तो देवताओं के श्रौत और स्मार्त कर्मों के फल को व्याप्त होता॥१०॥

अनादिष्टमध्वरदो सवान्ते कर्माणि परिभाषितं मन्त्रगणं वक्ष्यामः।सर्वमाग्नेयं गायत्रं गौतमीयर्ठं सर्वर्ठं सावित्रमौष्णिहं भारद्वाजीयर्ठं सर्वर्ठं सौम्यमानुष्टुभमार्थवणिकर्ठं सर्वं बार्हस्पत्यं बार्हतमाङ्गिरसर्ठं सर्वं वारुणं पाङ्क्तमालम्बायनी-

यर्ठं सर्वमैन्द्रं त्रैष्टुभं याज्ञवल्कीयर्ठं सर्वमादित्यदेवतं आगतं कौत्सम्॥२१॥

अध्वर· गृह· सवन· तीनों काण्डविहित कर्म में तिस२ प्रकरणोत्थमन्त्र के ऋष्यादिक इस अनादेश में जानना।समस्त अग्निदेवता के मन्त्रों का गायत्री छन्द गोतम ऋषि है।अन्यत्स्पष्टम्॥२१॥

ज्योतिष्टोमो दीक्षाप्रभृति वक्ष्यामो दीक्षायां भृगुरग्नाविष्णू गायत्री प्रायणीयऽआङ्गिरसोऽदितिरुष्णिक् क्रये विश्वामित्रः सोमोऽनुष्टुप् आतिथ्ये वसिष्ठो विष्णुर्बृहती प्रवर्ग्ये कश्यप आदित्यः पङ्क्तिः उपसत्स्वात्रेय उपसद्देवता त्रिष्टुप् अग्नीषोमीयेऽगस्त्योऽग्नीषोमौ जगती प्रायणीयेऽतिरात्रऽआग्निवेश्योऽहोरात्रेऽअतिजगती चतुर्विर्ठंशत्यहे सौकरायणः संवत्सरः शक्वरी अभिप्लवे षडहे सावर्णोऽर्धमासा मासाश्चातिशक्वरी पृष्ठ्ये षडहे सायकायन ऋतवोऽष्टिः अभिजिति प्रियव्रतोऽग्निरत्यष्टिः स्वरसामसु सरस्वत्यापो धृतिः विषुवति रौहिणायन आदित्योऽतिधृतिः विश्वजिति सौभर इन्द्रः कृतिः गोऽआयुषोर्वाकलिर्मित्रावरुणौ प्रकृतिः दशरात्रेऽआचार्यो विश्वे देवा आकृतिः दाशरात्रिके पृष्ठ्ये षडहे भाल्लवेयो दिशो विकृतिः छन्दोमेषु शौल्वायन इमे लोकाः संकृतिः दशमेऽहनि पराशरः संवत्सरोऽभिकृतिः महाव्रते शैलिनः प्रजापतिरुत्कृतिः उदयनीयेऽतिरात्रे भौवनायनो

वायुश्छन्दांसि सर्वाणि ॥१२॥

ज्योतिष्टोम में दीक्षाप्रभृति वक्ष्यमाण जानना दीक्षा में भृगु ऋषि अग्नाविष्णु देवता गायत्री छन्द एवमग्रेपि स्पष्टार्थः॥१२॥

ऋषिभिरुपलक्षितं वाक्यमृषयः छन्दोभिरुपलक्षिता देवता मन्त्रवर्णाहृग्यजुषयोर्विनियोगतश्च विज्ञेयाः। सर्वमेतच्छन्दो दैवतमार्षं च विज्ञाय यत्किंचिज्जपहोमादि करोति तस्य फलमश्नुते। ब्रह्मयज्ञारम्भे यथाविधि स्नात्वा छन्दःपुरुषमेनोनिर्णोदनं शरीरे न्यसेत् तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः (निरु०१२.३८.बृहदा०भाष्य०२.२.५.६.ब्रह्मसूत्रम् २.४.१.) तस्याक्षिणी गोतम भरद्वाजौ श्रोत्रे विश्वामित्रजमदग्नी नासिके वसिष्ठकश्यपौ वागत्रिः। गायत्रीं छन्दोऽग्निदेवतां शिरसि विन्यसेदेवमेवोष्णिहं सवितारं ग्रीवास्वनूके बृहतीं बृहस्पतिम् बाह्वोर्बृहद्रथन्तरे द्यावापृथिवी मध्ये त्रिष्टुभमिन्द्रं श्रोण्योर्जगतीमादित्यम् मेढ्रेऽतिछन्दसं प्रजापतिम् पायौ यज्ञायज्ञियं वैश्वानरम् ऊर्वोरनुष्टुभं विश्वान्देवान् अष्ठीवतोः पङ्क्तिं मरुतः पादयोर्द्विपदां विष्णुम् प्राणेषु विछन्दसं वायुम् न्यूनातिरिक्तेष्वङ्गेषु न्यूनाक्षरं छन्द आपो देवतेत्येवं सर्वाङ्गेषु योजयित्वा वेदमयः सम्पद्यते शापानुग्रहसमर्थो भवति ब्राह्म्यं तेजश्च वर्धते न कुतश्चिद्भयं विन्दते ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयो ब्रह्ममयस्तेजोमयोऽमृतमयः सम्भूय ब्रह्मैवाभ्येति। तस्मादेतन्नाब्रह्मचारिणे नातपस्विने नासंव-

त्सरोषिताय नाप्रवक्त्रेऽनुब्रूयादनेनाधीतेन चान्द्रायणस्य फल-
मवाप्नोति अनेन च सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मणः सायुज्यं सलो-
कतामाप्नोत्याप्नोति ॥१३॥

इति सर्वानुक्रमणीये चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

ऋषियों करि उपलक्षित वाक्य ऋषि और छन्दों करि उपलक्षि-
ता देवता मन्त्रवर्ण (अक्षरसंख्या) और विनियोग से ऋचा-
ओं और यजुओं के जानना। इस सब छन्द देवत और
आर्ष को जानि जो कुछ जपहोमादिक करता है तिस के फ-
ल को प्राप्त होता है। ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्यायपाठ) के आरम्भ में
विधिपूर्वक स्नान करि एनोनिर्णोदन छन्दः पुरुष को शरीर
में स्थापन करे चमसा का शिरोलक्षण तिर्यग्बिल ऊर्ध्वबु-
ध्न है तिस के नेत्र गोतम और भरद्वाज श्रोत्र विश्वामित्र औ-
र जमदग्नी नासिका वसिष्ठ और कश्यप वाचा अत्रि है।
गायत्री छन्द अग्निदेवता को शिर पर स्थापन करे एवं उ-
ष्णिक्०— न्यूनातिरिक्त अङ्गों में न्यूनाक्षर छन्द जलदेवता
को इति एवं सर्वाङ्गों में योजन करि वेदमय सम्पद्ये है शाप
देने और अनुग्रह करने को समर्थ होता और ब्रह्मतेज बढ-
ता है नही किधर ही से भय प्राप्त होती ऋङ्मय यजुर्मय सा-
ममय ब्रह्ममय तेजोमय अमृतमय हो कर ब्रह्म को प्राप्त हो-
ता है। तिस कारण इस न्यास को अब्रह्मचारी अतपस्वि अ-
संवत्सरोषित अप्रवक्त्र के अर्थ न कहे क्यों कि इस के अध्य-

यन करने से एकवर्ष चान्द्रायणव्रत किये के फल को प्राप्त होता और इस के सम्यग्ज्ञान करि ब्रह्म की सायुज्य और सलोकता को प्राप्त होता है प्राप्त होता है ॥१३॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते वेदार्थ प्रदीपे चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

अथ छन्दांꣳसि गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यतिजगती शक्वर्यतिशक्वर्यष्ट्यत्यष्टिधृत्यतिधृतयः कृतिप्रकृत्याकृतिविकृतिसंकृत्यभिकृत्युत्कृतयश्च तुर्विꣳशत्यक्षरादीनि चतुरुत्तराणि। ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ। पादपूरणार्थं तु क्षैप्रसंयोगैकाक्षरीभावान्व्यूहेत्। आद्ये तु सप्तवर्गे पादविशेषात्संज्ञाविशेषास्ताननुक्रामन्त एवोदाहरिष्यामो विराड्रूपा विराट्स्थानाश्च बह्वना अपि त्रिष्टुभ एवेत्युद्देशः तत्र दशैकादशद्वादशाक्षराणां वैराजत्रैष्टुभजागता इति संज्ञा अनादेशेऽष्टाक्षराः पादाश्चतुष्पदाश्चर्चः॥१॥

छन्दसां स्वरूपमाह। अथछन्दांꣳसीति अथ गायत्र्यादि एकविंशति छन्द चतुर्विंशति अक्षरों से आदि ले चारि-चारि अक्षर वढाकर चतुरुत्तर एक शत अक्षर पर्यन्त हैं। तहां गायत्र्यादि उत्कृति पर्यन्त एकविंशति छन्दों की एक अक्षर ऊन होंने से निचृत् और एक अक्षर अधिक से भुरिक्संज्ञा है तथा दो अक्षर ऊन विराट् और दो अक्षर अधिक स्वराट्।

और जो इतने पर भी अक्षर ऊन रहें तो पादपूरण के अर्थ क्षैप्र संयोग से एकाक्षरी भाव करि व्यूहें यथा तत्सवितुर्वरेण्यम्॰ तत्सवितुर्वरेणियम्॰दिवं गच्छस्वः पत॰दिवं गच्छ सुवःपत इत्यादि। और पहिले वर्ग गायत्र्यादि सप्त में पाद विशे-

१ छन्दांसि			२ अतिछन्दांसि			३ अतिछन्दांसियजूंषि		
संख्या	नाम	अक्षर	संख्या	नाम	अक्षर	संख्या	नाम	अक्षर
१	गायत्री	२४	१	अतिजगती	५२	१	कृति	८०
२	उष्णिक्	२८	२	शक्करी	५६	२	प्रकृति	८४
३	अनुष्टुप्	३२	३	अतिशक्करी	६०	३	आकृति	८८
४	बृहती	३६	४	अष्टि	६४	४	विकृति	९२
५	पङ्क्तिः	४०	५	अत्यष्टि	६८	५	संकृति	९६
६	त्रिष्टुप्	४४	६	धृति	७२	६	अभिकृति	१००
७	जगती	४८	७	अतिधृति	७६	७	उत्कृति	१०४

ष होने से संज्ञाविशेष होजाती हैं तिन्हें क्रमपूर्वक उदाहरण करूंगा विराड्रूपा और विराट्स्थाना बहुत ऊनाभी त्रिष्टुब् (खण्ड ७) ही है यह उद्देश है तहां दश अक्षर का विराट् छन्द का एक पाद और एकादश अक्षर का त्रिष्टुप् द्वादश अक्षर का जगती एक पाद होता है अनादेश में जहां अक्षर नहीं कहे गये तहां अष्टाक्षर का पाद है और जहां पाद संख्या नहीं कही तहां चतुः पाद हैं ॥१॥

प्रथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री। पञ्चकाश्चत्वारः षट्कश्चैकश्चतुर्थश्चतुष्को वा पदपङ्क्तिः। षट्सप्तैकादशा उष्णिग्गर्भा। त्रयः सप्तकाः पादनिचृन्मध्यमः षट्कश्चेदतिनिचृद्दशकश्चेद्यवमध्या। यस्यास्तु षट्सप्तकाष्टकाः सा वर्धमाना विपरीता प्रतिष्ठा। द्वौ षट्कौ सप्तकश्चेति ह्रसीयसी॥१॥
पहिला छन्द त्रिपदा (तीनि पद ८+८+८। का) गायत्री। पदपङ्क्तिर्गायत्री ५+५+५+५+६। अथवा ५+५+५+४+६। उष्णिग्गर्भा गायत्री ६+७+११। पादनिचृद्गायत्री ७+७+७। अतिनिचृद्गायत्री ७+६+७। यवमध्यागायत्री ७+१०+७। वर्धमाना गायत्री ६+७+८। प्रतिष्ठागायत्री ८+७+६। ह्रसीयसी गायत्री ६+६+७॥ ॥गायत्रीउष्णिग्वा २६ अक्षर होने से विकल्प है अध्या॰ १७ काण्डी ८५। अनवसाना (अवसानहीना॰ अवसानरहिता) गायत्री ५॰ ३५। एकपदागायत्री ८ अक्षर होने से ३॰ ९। द्विपदा गायत्री १६ अक्षर होने से २०॰ १। एकद्वित्रिचतुष्पादमिति पिङ्ग॰ खण्ड ६ सूत्र १८॥२॥

द्वितीयमुष्णिक् त्रिपदान्त्यो द्वादशकः। आद्यश्चेत्पुरउष्णिङ्मध्यमश्चेत्ककुप्। त्रैष्टुभजागतचतुष्काः ककुबन्यङ्कुशिरेकादशिनोः परः षट्कस्तनुशिरा मध्ये चेत्पिपीलिकमध्याद्यः पञ्चकस्त्रयोऽष्टका अनुष्टुब्गर्भा। चतुःसप्तकोष्णिगेव॥३॥

दूसरा छन्द पर उष्णिक् ८+८+१२. । पुर उष्णिक् १२+८+८. । ककुबुष्णिक् ८+१२+८. । ककुब्न्यङ्कुशिरोष्णिक् ११+१२+४. । तनुशिरोष्णिक् ११+११+६. । पिपीलिकमध्योष्णिक् ११+६+११. । इति त्रिपदा । अनुष्टुब्गर्भोष्णिक् ५+८+८+८. । उष्णिक् ७+७+७+७. ॥ ॥ विषमपदोष्णिक् (पादानियमात्) २७॥४-२२। वर्धमानोष्णिक् ६+७+८+९. (वृद्धितः) ७०२९. ॥३॥

तृतीयमनुष्टुप् । पञ्च पञ्चकाः षट्कश्चैको महापदपङ्क्तिः । जागतावष्टकश्च कृतिः । मध्ये चेदष्टकः पिपीलिकमध्या । नवकयोर्मध्ये जागतः काविराट् । नववैराजत्रयोदशैर्नष्टरूपा । दशकास्त्रयो विराडेकादशका वा ॥४॥

तीसरा अनुष्टुप्छन्द ८+८+८+८. । महापदपङ्क्तिरनुष्टुप् ५+५+५+५+५+६. । कृतिरनुष्टुप् १२+१२+८. । पिपीलिकमध्यानुष्टुप् १२+८+१२. । काविराडनुष्टुप् ९+१२+९. । नष्टरूपानुष्टुप् ९+१०+१३. । त्रिपदाविराडनुष्टुप् १०+१०+१०. अथवा ११+११+११. ॥ ॥ द्विपदाविराज २० अक्षर होने से ३-२५. एकपदाविराज १० अक्षर ५-३५. ॥४॥

चतुर्थे बृहती तृतीयो द्वादशकः । आद्यश्चेत्पुरस्ताद्बृहती । द्वितीयश्चेन्न्यङ्कुसारिण्युरोबृहती स्कन्धोग्रीवी वा । अन्त्यश्चेदुपरिष्टाद्बृहती । अष्टिनोर्मध्ये दशकौ विष्टारबृहती । त्रिजागतोर्ध्वबृहती । त्रयोदशिनोर्मध्येऽष्टकः पिपीलिकमध्या । नवकाष्टकैकादशाष्टिनो विषमपदा । चतुर्नवका बृह

त्येव ॥५॥

चौथा बृहतीछन्द। पथ्या बृहती ८+८+१२+८। पुरस्ताद्बृहती १२+८+८+८। न्यङ्कुसारिणी वा उरोबृहती वा स्कन्धोग्रीवी ८+१२+८+८।*। उपरिष्टाद्बृहती ८+८+८+१२। विष्टारबृहती ८+१०+१०+८। ऊर्ध्वबृहती १२+१२+१२। पिपीलिकमध्याबृहती १३+८+१३। विषमपदाबृहती ९+८+१०+८। बृहती ९+९+९+९॥ ॥अनुष्टुब्बृहती वा ३४ अक्षर होने से ४-२१॥५॥

पञ्चमं पङ्क्तिः पञ्चपदा। अथ चतुष्पादा विराड्दशाकाः। अयुजौ जागतौ सतीबृहती युजौ चेद्विपरीतायौ चेत्प्रस्तारपङ्क्तिराद्यन्त्यौ चेत्संस्तारपङ्क्तिर्मध्यमौ चेद्विष्टारपङ्क्तिः॥६॥

पाँचवाँ पङ्क्तिछन्द। पञ्चपदापङ्क्ति ८+८+८+८+८। चतुष्पदाविराट्पङ्क्ति १०+१०+१०+१०। सतोबृहती १२+८+१२+८। विपरीताबृहती ८+१२+८+१२। प्रस्तारपङ्क्ति १२+१२+८+८। आस्तारपङ्क्ति ८+८+१२+१२। संस्तारपङ्क्ति १२+८+८+१२। विष्टारपङ्क्ति ८+१२+१२+८॥ ॥पङ्क्तिर्बृहती वा ३८ अक्षर होने से ८-२६। स्वराट्पङ्क्ति १०+१०+११+११ † होने से ११-२९॥६॥

षष्ठं त्रिष्टुप् त्रैष्टुभपदा। द्वौ तु जागतौ यस्याः सा जागते जगती त्रैष्टुभे त्रिष्टुप्। वैराजौ जागतौ चाभिसारिणी। नवकौ वैराजस्त्रैष्टुभश्च द्वौ वा वैराजौ नवकस्त्रैष्टुभश्च विराट्स्थानैकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराड्रूपा। द्वादशिनस्त्रयोऽष्ट-

+ आसुरी: [illegible] पिङ्ग० [illegible]

†पथ्या पूर्वश्चेत्तृतीयः पिङ्ग० ५-७।
* कौष्टुकिमते स्कन्धोग्रीवी। यास्कमते उरोबृहती। पिङ्ग० ५-९-१०।

कश्च ज्योतिष्मती यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः। चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहती। मध्ये जागतश्चेद्यवमध्या। आर्षी दशकावष्टकास्त्रयः पङ्क्त्युत्तरा विराट्पूर्वा वा ॥७॥

छठा त्रिष्टुप्छन्द ११+११+११+११॰। जगती त्रिष्टुबा १२+१२+११+११॰। त्रिष्टुब्जगतीवा ११+११+१२+१२॰। अभिसारिणीत्रिष्टुप् १०+१०+१२+१२॰। विराट्स्थानात्रिष्टुप् ९+९+१०+११॰ यद्वा १०+१०+९+११॰। विराड्रूपात्रिष्टुप् ११+११+११+८॰। उपरिष्टाज्ज्योतितित्रिष्टुप् १२+१२+१२+८॰। पुरस्ताज्ज्योतित्रिष्टुप् ८+१२+१२+१२॰। महाबृहतीत्रिष्टुप् ८+८+८+८+१२॰। यवमध्या त्रिष्टुप् ८+८+१२+८+८॰। पङ्क्त्युत्तरत्रिष्टुप् यद्वा विराट्पूर्वा त्रिष्टुप् १०+१०+८+८+८॰ ॥७॥

सप्तमं जगती जागतपदा। अष्टनस्त्रयः स्वो च द्वौ महासतोबृहती। अष्टकौ सप्तकः षट्को दशको नवकश्च षडष्टका वा महापङ्क्तिः॥

माध्यन्दिनीये वाजसनेयके सर्वानुक्रमणिकैषा कृतिर्भगवतः कात्यायनस्यैषा कृतिर्भगवतः कात्यायनस्य॥५॥

इति सर्वानुक्रमणीये पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

सातवाँ जगती १२+१२+१२+१२॰। महासतोबृहतीजगती ८+८+८+१२+१२॰। महापङ्क्तिर्जगती ८+८+७+६+१०+९॰। अथवा ८+८+८+८+८+८॰॥ माध्यन्दिनीया वाजसनेय संहिताकी सर्वानुक्रमणिका यह करी हुई भगवान कात्यायन की यह

की हुई भगवान कात्यायन की ॥८॥

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्
पुमार्थांश्चतुरो देयात्कृष्णः स्वानन्ददायकः
माधवे त्वसिते पक्षे पञ्चम्यां गुरुवासरे
व्योमरामाङ्कभूवर्षेऽनुक्रमार्थः समागमत्

इति सर्वानुक्रमणीभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्री वेदार्थप्रदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अतः परं अनुवाकाध्यायो भविष्यति

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

अथानुवाकान्वक्ष्यामि ब्रह्मणा विहिता(निर्मिता)न्पुरा
शिष्याणामुपदेशाय यज्ञ संस्करणाय च
विप्राणां यज्ञकालेषु जपहोमार्चनादिषु

ऋषिर्वदति। अब मैं अनुवाकों को कहिता हूं कि जो पहिले ब्रह्मा से उत्पन्न हुई नें निर्माण करीं। किमर्थम् कि विप्रों के यज्ञकाल तथा जपहोमार्चनादिकों में शिष्यों के उपदेश और यज्ञसंस्कार के अर्थ॥

इषेत्वेका वसोः पवित्रं तिस्रोऽग्ने व्रतपते सप्त पवित्रे स्थो द्वे शर्मासि तिस्रो धृष्टिरसि शर्मासि द्विके देवस्य त्वा तिस्रो देवस्य त्वा पञ्च प्रत्युष्टꣳ रक्षस्तिस्रो दशैक त्रिꣳशत् ॥१०॥३१॥१॥

इषे त्वा अनुवाक १ काण्डी १ वसोः पवित्रम् २ ३ अग्ने व्रतपते ३ ७ पवित्रे स्थो ४ २ शर्मासि ५ ३ धृष्टिरसि ६ २ शर्मासि ७ २ देवस्य त्वा ८ ३ देवस्य त्वा ९ ५ प्रत्युष्टꣳ ३ अनुवाक १० काण्डी ३१ अध्याय १ एवमग्रेऽपि

कृष्णोऽसि षडग्ने वाजजित्तिस्रो मयीदमग्नीषोमयोः पञ्चकावग्नेऽदब्धायो चतस्रः संवर्चसा पञ्चाग्नये कव्यवाहनाय षट् सप्त चतुस्त्रिꣳशत् ॥७॥३४॥२॥

समिधाग्निं भूर्भुवः स्वश्चतुष्कावग्निर्ज्योतिर्द्वे उप प्रयन्तः षड्विꣳशतिर्भूर्भुवः स्वश्चतस्रो गृहा मा तिस्रः प्रघासिनः पञ्च पूर्णा दर्वि द्वे अक्षन्नमीमदन्त षडेष ते सप्तदश त्रिषष्टि ॥१०॥६३॥३॥

एदं द्वे महीनां पयश्चतस्र आकूत्या ऋक्सामयोर्द्विकौ व्रतं कृणुत षडेषा ते चतस्रो वस्व्यसि तिस्र एष ते द्वे भुक्त्वा चतस्रोऽदित्यास्त्वगष्टौ दश सप्तत्रिꣳशत् ॥१०॥३७॥४॥

अग्नेस्तनूरापतये चतुष्को नताप्यनी द्वे इन्द्रघोषस्तिस्रो युञ्जतेऽष्टौ देवस्य त्वा चतस्रो देवस्य त्वा पञ्च विभूरसि

चक्षवो ज्योतिरसि षड्डुरु विष्णो तिस्रो दश त्रिचत्वारिँशत्॥ १०॥४३॥५॥

देवस्य त्वा षड्डुपावीरसि पञ्च माहिः षड्डं ते तिस्रः समुद्रं गच्छ हविष्मतीर्द्विकौ हृदे त्वा पञ्च देवस्य त्वाष्टावष्टौ सप्तविंशत् ॥८॥३७॥६॥

वाचस्पतय उपयामगृहीतोऽसित्रिकावा वायोऽयं वां द्विकौ षावामेका तं प्रत्नथा चतस्रोऽयं वेनो ये देवासस्त्रिकाविन्द्राय मूर्द्धानं द्विकौ यत्त एका प्राणाय तिस्रो मघव इन्द्राग्नी आगतमाघोमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगतेन्द्रमरुत्वो मरुत्वन्तं वृषभं मरुतां त्वौजसे सजोषा इन्द्र मरुत्वां२ँ॥ इन्द्र महा२ँ॥ इन्द्रो महा२ँ॥ इन्द्र एकैकोदुत्यमष्टौ पञ्चविंशतिरष्टाचत्वारिँशत्॥२५॥४८॥७॥

आदित्येभ्यः पञ्च वाममद्य द्वे सुशर्मास्येका बृहस्पतिसुतस्य द्वे हरिरसि चतस्रः समिन्द्राणोऽष्टौ माहिरेजतु दशमास्यः पञ्चकावातिष्ठ युक्ष्वाहीन्द्रमिदेकैका यस्मान्न द्वे अग्ने पवस्वोत्तिष्ठन्नहश्रमसुदुत्यमेकैकाजिघ्र द्वे विन इन्द्र वाचस्पतिं विश्वकर्मन्नेकैकाग्नये त्वा चतस्र इह रतिस्तिस्रः परमेष्ठी दश त्रयोविंशतिस्त्रिषष्टिः॥२३॥६३॥८॥

देव सवितश्चतस्रऽइन्द्रस्य वज्रः पञ्च देवस्याहं दशापये तिस्रो वाजस्यमष्टावग्निरेकाक्षरेणैषते चतुष्को सविता द्वे अष्टौ चत्वारिँशत्॥८॥४०॥९॥

अपो देवाश्चतस्रः सोमस्य त्विषिः पञ्चावेष्टाः सप्त सोमस्य त्वा चतस्र इन्द्रस्य वज्रः पञ्च स्योनासि चतस्रः सवितेत्या-श्विभ्यां चतस्रोऽष्टौ चतुस्त्रिंशत् ॥८॥३४॥१०॥

युञ्जान एकादश प्रतूर्तं षोडश देवस्य त्वा दश्शापो देवीर्द्वादशापोह्येकादशादितिष्ट्वा पंचाकूतिमष्टादश सप्तत्यशीति ॥७॥८३॥११॥

दृशानः सप्तदश दिवस्परि द्वादश समिधाग्निं पञ्चदशापेत सप्तदशासुन्वन्तं त्रयोदश या ओषधीः सप्तविंशतिर्मा मा षोडश सप्त सप्तदशशतम् ॥७॥११७॥१२॥

मयि गृह्णामि पञ्चदश ध्रुवासि मधु वाता एकादशको सम्यक्स्रवंतिनवेमं मा षड्पां त्वेकायं पुरः पञ्च सप्ताष्टापञ्चाशत् ॥७॥५८॥१३॥

ध्रुवक्षितिःषट् सजूर्ऋतुभिर्मूर्द्धा वयो द्विकाविंद्राग्नी आयुर्मे षट्त्वावासुस्त्रिवृदेकाग्नेर्भागोऽस्येकया चतुष्कावष्टावेकत्रिंशत् ॥८॥३१॥१४॥

अग्ने जातान्पञ्च रश्मिना सत्याय चतस्रो राज्ञस्यं पुरः पञ्चकावग्निर्मूर्द्धैकोनत्रिंशद्येनऋषयोऽष्टौ तपश्च नव सप्तपञ्चाशत् ॥७॥६५॥१५॥

नमस्ते षोडश हिरण्यबाहव उष्णीषिणो तक्षभ्यो ज्येष्ठाय पञ्चकाः स्रुत्यायचतस्रः शंभवायैका पार्याय पञ्चद्रापे अन्धसोविंशति नव षट्षष्टिः ॥८॥६६॥१६॥

अश्मन्नूर्जं दश नमस्ते पञ्चाग्निस्तिग्मेन नव चतुष्क- पिताष्टावासु: शिशानः सप्तदशेदेनं कमधमग्निना पञ्चदश- कौ सुक्रज्योतिः सप्तेमथं स्तनं त्रयोदश नवैकोनशतम् ॥७॥ ९९॥१७॥

वाजः सप्तमूर्द्धानु का अयमाग्निस्त्रिकाव ठंसु: पञ्चका चतस्रो वाजाय द्वे वाजस्यन्वष्टावृताषाड्ढ्योदशाग्निं युनज्मि सप्त यदाकूता द्वात्रिंहत्याय दशकौ त्रयोदश सप्तसप्ततिः॥१३ ॥७७॥१८॥

स्वाहीं त्वेकादश देवायज्ञं विंठशतिः सुपर्णवर्ण ठं सप्त- दशेदीरतां त्रयोदशाच्याजानु दशसोमो राजाष्टौ सीसेन तन्त्र- ठं षोडश सप्त पञ्च नवतिः ॥७॥९५॥१९॥

क्षत्रस्य योनिस्त्रयोदश यद्देवादशाभ्यादधाम्यष्टौ यो भूतानां चतस्रः समिद्ध इन्द्र एकादशायात्वष्टौ समिद्धो अ- ग्नि द्वादशाश्विना हविस्त्रयोदशाश्विना तेजसैकादश नव नवतिः॥९॥९०॥२०॥

इमं मे समिद्धो अग्निरेकाशकौ वसन्तेन ऋतुना षट्- होता यक्ष द्वादशाश्विनो छागस्य सप्त देवं बर्हिश्चतुर्दश षडेक- षष्टिः॥६॥६१॥२१॥

तेजोऽसि पञ्चाग्नये एका हिंकाराय द्वे तत्सवितुर्दश विभूर्मात्रैका काय द्वे त्रयोदश शेषादेकैकोनविंठशतिश्चतुश्च- ठंशत् ॥१९॥३४॥२२॥

हिरण्यगर्भो यः प्राणतो द्विको युञ्जन्त्यष्टौ वायुष्ट्वा पञ्च प्राणाय तिस्र उत्सक्थ्या द्वादश गायत्री कस्त्वा षट्को काःस्वि दष्टौ कास्विद्दश सुभूः स्वयंभूस्तिस्र एकादश पञ्चषष्टिः ॥११॥ ६५॥२३॥

अश्वस्तूपरो धूम्रान्वसन्ताय समुद्राय शिशुमारान्मयुः प्राजापत्यो दशकाश्चत्वारश्चत्वारिंशत् ॥४॥४०॥२४॥

शादं दद्भिर्नवैकैका हिरण्यगर्भश्चतस्र आनो दश मानो यदश्वस्याष्टकौ यत्ते षडिमानु कं द्वे पञ्चदश सप्तचत्वारिंशत् ॥१५॥४७॥२५॥

अग्निश्च पञ्चदशोच्चात एकादश द्वौ षड्विंशतिः ॥२॥२६॥२६॥

समास्त्वा दशोर्ध्वा अस्य पीवो अन्ना द्वादशकावभि त्वैकादश पञ्चचत्वारिंशत्॥४॥ ४५॥२७॥

होता यक्षदेकादश देवं वर्हिर्द्वादश पुनरप्येवं चत्वारः षट्चत्वारिंशत् ॥४॥४६॥२८॥

समिद्धो अञ्जन्नेकादश यदक्रन्दस्त्रयोदश समिद्धो अद्य द्वादश केतुं कृण्वंश्चतुर्विंशतिश्चत्वारः षष्टिः॥४॥६०॥२९॥

देव सवितः षट्तपसे कौलालं षोडश द्वौ द्वाविंशतिः ॥२॥२२॥३०॥

सहस्रशीर्षा षोडशाग्द्यः संभृतः षट् द्वौ द्वाविंशतिः॥२॥ २२॥३१॥

तदेव सप्त वेनस्तत्त्वव द्वौ षोडश ॥२॥१६॥३२॥

अस्याजरासः सप्तदशापश्चिद्वा दश प्र वायुज एकादश इन्द्रवायू प्रवीरया पञ्चदशकावानस्त्रयोदश सप्त सप्तनवतिः ॥ ७॥९७॥३३॥

यज्जाग्रतः पञ्चनद्यः सोमोधेनुमाक्रषोन पूर्षं तव दशका न तदष्टौ षडष्टापञ्चाशत् ॥६॥५८॥३४॥

अपेतो दशपाद्यं द्वादश द्वौ द्वाविंशतिः॥२॥३२॥३५॥

ऋचं वाचं षोडश द्यौः शान्तिरष्टौ द्वौ चतुर्विंशति ॥२॥२४३६॥

देवस्य त्वा दश यमाय त्वेकादश द्वावेकविंशतिः॥ २॥२१॥३७॥

देवस्य त्वाष्टौ यमाय त्वा क्षत्रस्य त्वा दशको त्रयोऽष्टाविंशतिः॥३॥२८॥३८॥

स्वाहा प्राणेभ्यः षडुग्रश्च सप्त द्वौ त्रयोदश ॥२॥१३॥३९॥

ईशा वास्यमष्टा वन्धं तमो नव द्वौ सप्तदश ॥२॥१७॥४०॥

॥१९७५॥३०३॥ ५०॥

दशाध्याये समाख्याता अनुवाकाः सर्वसंख्यया

शतं दशानुवाकाश्च नवान्ये च मनीषिभिः १

सप्तषष्टिश्चाग्नेयो ज्ञेयाः सौत्र द्वाविंशस्तथा

अश्व एकोनपञ्चाशत्पञ्चत्रिंशत्खिलेस्मृताः २

शुक्रियेषु तु विज्ञेया एकादश मनीषिभिः

एकीकृत्यसमाख्यातं त्रिशतं त्र्यधिकंमतम् त्रिशतं त्र्यधिकंमतम् ३

इत्यनुवाकाध्यायः

आदि के दश अध्यायों में ११८ अनुवाक हैं ॥१॥ और आग्निक आठ अध्यायों में ६७। सौत्र के तीनि अध्यायों में २२। तथा आश्वमेधिक चारि अध्यायों में ४८। खिल के दश अध्यायों में ३५ ॥२॥ शुक्र के पाँच अध्यायों में ११। समस्त संहिता के मिलिकर ३०३ अनुवाक हैं ३०३ अनुवाक हैं ॥

इति वेदार्थप्रदीपे गिरिप्रसादरचिते अनुवाकाध्यायव्याख्या समाप्ता: ॥

माधवे विमले पक्षे पञ्चम्यां गुरुवासरे ।
व्योमरामाङ्कभूवर्षे वेदभाष्यः समागमत् ॥१॥
गिरिप्रसादपुत्रेण गरुडध्वजवर्मणा ।
स्वपित्राल्लब्धविद्येन लिखितोवेददीपकः ॥२॥
श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमार्थांश्चतुरोदेयात्कृष्णः स्वानन्ददायकः ॥३॥

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं नविदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥४॥

परंब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्द की प्रेरणा से मैंनें श्री शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनीया वाजसनेयसंहिता के श्रीवेदार्थ प्रदीप गिरिधरभाष्य कहिने का विचार करि विक्रमसेन के सम्बत् १९२६ शालिवाहन के शाके १७९१ आश्विन शुक्ला नवमी ९ सुर गुरुवासर विजय दशमी को आरम्भ किया परन्तु उस दिन मुहूर्त मात्र करिके सम्बत् १९२७ शाके १७९२ वैशाख शुक्ला पञ्चमी सुरगुरुवासर से मन्त्रार्थ लिखा और उसी अविनाशी की कृपाकटाक्ष से सम्बत् १९२९ शाके १७९४ पौष कृष्णा सप्तमी ७ रविवासर को इषे त्वादि खं ब्रह्मान्त मन्त्रों की व्याख्या समाप्त हुई॥

यद्यपि आश्विन शुक्ला विजयदशामी से पौष कृष्णा सप्तमी पर्यन्त ११६६ दिवस होते हैं तथापि ५११ दिवसों में (इस क्रम से कि दश अध्याय २०१† दिवस में और आग्न १५३ सौत्र ३३ अश्व २६ खिल ७१ शुक्र २७ दिवस में) भाष्य लिखा गया शेष ६५५ दिवस सांसारिक व्यवहार में व्यतीत हुए अब मेरा संस्कृत में भाष्य संग्रह करने और पुनः ब्रज भाषा में भी दूसरी बार लिखने का विचार है सो भी निः सन्देह उसी अन्तर्यामी के अनुग्रह और वैदिकों की आशिषा से पूरा होगा है विद्वानों जहां कहीं भूलचूक हो तहां कृपा करिके शोधोगे ओम् तत्सत्

॥ इत्युपसंहारः॥

अथाशीः॥ हे भगवन् हे वेदपुरुष धन्य है धन्य है धन्य है तू सर्वदा जययुक्त हो तूनें मेरे छोटे छोटे हाथों से बहुत बडा काम करादिया यह तेरी ही सामर्थ्य है हे स्वामिन् जो कुछ तूनें देरखा है तिसे धन्यवादपूर्वक स्वीकार करता हूं तथा जो कुछ देवेगा उसे माथे चढा-

† १ दिवस में मूहूर्त २०० दिवसों में भाष्य

कर लूँगा और धन्य करूंगा हे ईश यह माँगता हूं कि मेरे मातापिता गुरु और ज्येष्ठ भ्राता की स्वर्ग में पदवी तथा मेरी वेद में श्रद्धा वढाई जावै किंच जैसा महाराजा सम्राट् मनु रामचन्द्र युधिष्ठिर परीक्षित के समय में वेद का प्रचार था तैसा इस समय में कराया जावे हे सरबे मेरे वंश में जे हें और जे उत्पन्न होंवें तिन्हें वेद पारगी कीजियो और तुरु तेजपुञ्ज से ही यह प्रदीप हुआ है सो इस की दिन दिन ज्योति तथा जे इसे अनुसरें उन्हों की विद्या शान्ति वढाइयो हमारे समस्त अपराध क्षमा किये जावें और हमारी सेवा स्वीकार हो क्यों कि हम तेरे सेवक हें तथा तू हमारा स्वामी है हरिः ओम् तत्सत्

ओम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ओम् तत्सत्

श्रीमच्छुक्लयजुषो माध्यन्दिनीय शाखाध्येतृ श्रीसोमवꣳशोद्भव व्याघ्रपादान्वय विश्वामित्रपुराधिप कुरुकुलकमलकमलाकर पाण्डव श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रौक्मिणेय श्रीगिरिधरदेववर्मणस्तस्यानुज गिरिप्रसादवर्म रचितः श्रीवेदार्थप्रदीपको गिरिधरभाष्यः समाप्तिमगात् श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ओम् तत्सत् श्रीबालकृष्णार्पणमस्तु

श्रीविश्वामित्रपुरीय नवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशाकाश्मयन्त्रालये मुद्रितमेतन्मङ्गलम् विक्रमाब्दाः १९३० शकाब्दाः १७९५ माघशुक्ला ५ श्रीपञ्चमी सुरगुरुवासरः

ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः

हरिःओम्

भगवदनुग्रह से मैंने श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य लिखा और प्रतिदिन के लेख की समाप्ति पर तिथिवार भी लिखता गया परंतु मूल से भाष्य के साथ ही मुद्रित न हुआ सो विद्वानों के विनोदार्थ उस की प्रति मुद्रित होती है इस में मूल शब्द से काण्डी और सूत्र से सूत्रार्थ तथा भाष्य से मन्त्रार्थ लेना इस से भली भांति करि ज्ञात होगा कि अमुक दिवस में इतना लिखागया॥

संहिता अध्याय	संवत् १९२७ वै	२.१५.भाष्य	९ बुध	३.२८.भाष्य	१५ बुध
१ काण्डी १ मूल	शाख शुक्ला प	२.१६.भाष्य	१० गुरु	दिवस २१	
	ञ्चमी ५ गुरु	२.१८.मूल	१२ भृगु	३.३०.भाष्य	पौषकृ० २ शनि
१.१.भाष्य+	वै० शु० ६ भृगु	२.१९.भाष्य	१३ शनि	३.३४.भाष्य	३ रवि
१.१.भाष्य‡	वै० शु० ७ शनि	२.२१.भाष्य	१४ रवि	३.३७.मूल	४ सोम
१.१.भाष्य	वै० शु० ८ रवि	२.२४.मूल	१५ सोम	३.४०.भाष्य	५ भौम
१.२.भाष्य	९ सोम	दिवस २२		३.४३.मूल	६ बुध
१.४.मूल	१० भौम	२.२६.मूल	आषाढकृ० २ बुध	३.४४.भाष्य	७ गुरु
१.६.भाष्य	११ बुध	२.२८.भाष्य	३ गुरु	३.४६.भाष्य	८ भृगु
१.८.भाष्य	१२ गुरु	दिवस २		३.४८.भाष्य	९ शनि
१.१०.भाष्य	१३ भृगु	२.२९.भाष्य	मार्गशिरकृ० २ गुरु	३.५१.भाष्य	११ रवि
१.१२.भाष्य	१४ शनि	२.३१.भाष्य	४ शनि	३.५५.भाष्य	१२ सोम
१.१४.भाष्य	१५ रवि	२.३३.भाष्य	६ सोम	३.५७.भाष्य	१३ भौम
दिवस ११		२.३४.मूल	७ भौम	३.५९.भाष्य	१४ बुध
१.१६.मूल	ज्येष्ठकृ० २ भौम	३.१.मूल	८ बुध	३.६१.मूल	३० गुरु
१.१६.भाष्य	३ बुध	३.३.भाष्य	९ गुरु	३.६२.भाष्य	पौ० शु० २ शनि
१.१८.भाष्य	५ गुरु	३.५.भाष्य	१२ रवि	४.१.सूत्र	३ रवि
१.२०.भाष्य	६ भृगु	३.७.भाष्य	१३ सोम	४.२.सूत्र	४ सोम
१.२२.मूल	७ शनि	३.८.भाष्य	१४ भौम	४.२.भाष्य	५ भौम
१.२२.भाष्य	१० भौम	३.१०.मूल	३० बुध	४.८.मूल	१२ भौम
१.२६.मूल	१० बुध	३.११.भाष्य	मार्गशु० ३ भृगु	४.४.सूत्र	७ गुरु
१.२८.भाष्य	११ गुरु	३.१४.मूल	४ शनि	४.६.मूल	१० रवि
१.३१.भाष्य	१२ भृगु	३.१५.भाष्य	५ रवि	४.७.मूल	११ सोम
२.२.मूल	शुक्ला २ बुध	३.१६.भाष्य	८ बुध	४.१०.मूल	१३ बुध
२.३.भाष्य	३ गुरु	३.१८.मूल	९ गुरु	४.११.सूत्र	१४ गुरु
२.६.मूल	४ भृगु	३.१९.सूत्र	१० भृगु	४.१२.भाष्य	१५ भृगु
२.७.भाष्य	५ शनि	३.२०.भाष्य	११ शनि	दिवस २४	
२.९.भाष्य	६ रवि	३.२२.मूल	१२ रवि	४.१५.मूल	माघकृ० २ रवि
२.१०.भाष्य	७ सोम	३.२४.भाष्य	१३ सोम	४.१६.मूल	४ भौम
२.१३.भाष्य	८ भौम	३.२६.भाष्य	१४ भौम	४.१९.सूत्र	५ बुध

+ अथ मन्त्रः यहां पर्यन्त लिखा गया   ‡ का० ४.२.९.१० यहां तक लिखागया

४-२१ सूत्र	६ गुरु	६-१५ भाष्य	६ रवि	७-४६ मूल	ज्येष्ठ कृ० १ शानि
४-२२ भाष्य	७ भृगु	६-१८ मूल	७ सोम	८-२ मूल	३ रवि
४-२३ भाष्य	८ शानि	६-१८ भाष्य	९ बुध	८-४ मूल	४ सोम
४-२५ भाष्य	९ रवि	६-२० मूल	१० गुरु	८-८ मूल	५ भौम
४-२७ भाष्य	१० सोम	६-२० भाष्य	११ भृगु	८-९ मूल	६ बुध
४-२९ भाष्य	१२ बुध	६-२२ मूल	१३ शानि	८-११ मूल	७ गुरु
४-३३ भाष्य	मा० शु० ८ शानि	६-२२ भाष्य	१४ सोम	८-१५ मूल	११ सोम
४-३६ भाष्य	८ रवि	६-२४ मूल	शु० १ गुरु सं० १९२०	८-१८ मूल	१२ भौम
५-१ भाष्य	१० भौम	६-२५ मूल	६ सोम	८-२३ मूल	१३ बुध
५-४ भाष्य	११ बुध	६-२७ मूल	७ भौम	८-२६ मूल	१४ गुरु
५-५ भाष्य	१२ गुरु	६-२९ मूल	८ बुध	८-३० सूत्र	३० भृगु
५-७ भाष्य	१३ भृगु	६-३१ भाष्य	९ गुरु	८-३३ भाष्य	शु० २ रवि
५-९ भाष्य+	१४ शानि	६-३६ मूल	१० भृगु	८-३६ सूत्र	३ सोम
दिवस १६		७-३ मूल	११ शानि	८-३८ सूत्र	४ भौम
५-१० भाष्य	फा० कृ० ३ बुध	७-४ मूल	१२ रवि	८-४१ मूल	५ बुध
५-१३ भाष्य	४ गुरु	७-५ भाष्य	१३ सोम	८-४४ सूत्र	६ गुरु
५-१७ भाष्य	५ भृगु	७-१० मूल	१४ भौम	८-४७ सूत्र	७ भृगु
५-२० भाष्य	६ शानि	७-११ भाष्य	१५ बुध	८-५१ सूत्र	८ शानि
५-२२ भाष्य‡	७ रवि	दिवस २१		८-५४ भाष्य‡	९ रवि
५-२३ सूत्र	८ सोम	७-१३ भाष्य	वैशा० कृ० २ भृगु	८-५५ भाष्य	१० सोम
५-२६ मूल	१० भौम	७-१६ मूल	३ शानि	८-५९ भाष्य※	११ भौम
५-२७ मूल	११ बुध	७-१७ मूल	४ रवि	८-६३ सूत्र	१२ बुध
५-२९ सूत्र	१२ गुरु	७-१८ मूल	५ सोम	९-२ सूत्र	१३ गुरु
५-३१ मूल	शु० २ भौम	७-२० मूल	६ भौम	९-५ सूत्र	१४ भृगु
५-३२ भाष्य	३ बुध	७-२२ मूल	९ गुरु	९-६ सूत्र	१५ शानि
५-३५ भाष्य†	४ गुरु	७-२३ मूल	१३ सोम	दिवस २५	
५-३९ भाष्य	५ भृगु	७-२४ भाष्य	शु० ४ रवि	९-९ सूत्र	आषाढ कृ० २ सोम
५-४३ भाष्य	६ शानि	७-२६ सूत्र	४ सोम	९-११ सूत्र	४ भौम
६-२ सूत्र	७ रवि	७-२८ भाष्य	५ भौम	९-१४ भाष्य	५ बुध
६-६ मूल	१० गुरु	७-३१ मूल	६ बुध	९-१९ सूत्र	६ गुरु
६-८ मूल	१५ भौम	७-३५ मूल	८ भृगु	९-२३ सूत्र	७ भृगु
दिवस १७		७-३९ मूल	११ सोम	९-२८ सूत्र	८ शानि
६-९ मूल	चैत्र कृ० ३ गुरु	७-४१ मूल	१२ भौम	९-३१ सूत्र	९ रवि
६-११ मूल	४ भृगु	७-४२ भाष्य	१४ गुरु	९-३५ सूत्र	१० सोम
६-११ भाष्य	५ शानि	दिवस १५		९-३७ सूत्र	११ भौम

+ पूना० ४.५.१.३९. अधिकमासे आशापूर्वक खोदे पर्यन्त

* का० ६.२.८. यहां पर्यन्त भाष्य लिखा ‡ का० ८.७.१. ※ तथा च श्रुतिः १२.५.१.९.२. † का० २५.२.९.

१०-१. मूल	१२ बुध	दिवस २५		१२-९७. मूल	७ बुध
१०-२. मूल	१३ गुरु	११-६४. मूल	[illegible] १ बुध	१२-१०१. मूल	८ गुरु
१०-३. सूत्र	३० शनि	११-६८. सूत्र	३ गुरु	१२-१०५. मूल	९ भृगु
१०-४. भाष्य†	३० रवि	११-७५. सूत्र	४ भृगु	१२-१०७. मूल	११ रवि
१०-७. सूत्र	शु० २ भौम	११-८१. सूत्र	५ शनि	१२-१०९. मूल	१२ सोम
१०-९. सूत्र	४ गुरु	११-८३. भाष्य	६ रवि	१२-११३. मूल	१३ भौम
१०-११. मूल	५ भृगु	११-१. मूल	७ सोम	१२-११७. भाष्य	१४ बुध
१०-१३. मूल	६ शनि	१२-५. मूल	८ भौम	१३-४. मूल	३० गुरु
१०-१६. सूत्र	७ रवि	१२-७. मूल	९ बुध	१३-६. मूल	शु० २ शनि
१०-१९. सूत्र	८ सोम	१२-१२. सूत्र	१० गुरु	१३-१०. मूल	३ रवि
१०-२०. सूत्र	१० बुध	१२-१४. मूल	११ भृगु	१३-१२. मूल	४ सोम
१०-२३. सूत्र	१३ भृगु	१२-१८. सूत्र	११ शनि	१३-१५. मूल	५ भौम
१०-२५. मूल	१४ शनि	१२-२०. मूल	१२ रवि	१३-१६. मूल	६ बुध
दिवस २२		१२-२३. मूल	१३ सोम	१३-१८. मूल	७ गुरु
१०-२८. मूल	श्राव० कृ० २ बुध	१२-२८. मूल	१४ भौम	१३-२०. मूल	८ भृगु
१०-२८. भाष्य‡	४ गुरु	१२-३४. सूत्र	३० बुध	दिवस २०	
१०-३२. भाष्य卍	६ शनि	१२-४६. मूल	शु० २ भृगु	१३-२४. मूल	आश्वि० कृ० २ शनि
१०-३४. भाष्य	आ० कृ० ७ रवि	१२-४८. मूल	३ शनि	१३-२७. मूल	३ रवि
संवत १९२८ दशाध्यायीसमाप्तहुई		१२-५३. मूल	४ रवि	१३-३०. मूल	४ सोम
		१२-५७. मूल	५ सोम	१३-३७. मूल	६ बुध
११-१-३. मूल	८ सोम	१२-६१. मूल	६ भौम	१३-३९. भाष्य++	१० सोम
११-८. मूल	१० बुध	१२-६५. सूत्र	८ बुध	१३-४१. सूत्र	११ भौम
११-१२. मूल	११ गुरु	१२-६७. मूल	९ गुरु	१३-४५. मूल	१२ बुध
११-१६. मूल	१२ भृगु	१२-६९. मूल	१० भृगु	१३-४९. मूल	१४ भृगु
११-१८. सूत्र	१४ रवि	१२-७१. मूल	११ शनि	१३-५३. मूल	३० शनि
११-२१. सूत्र	शु० २ बुध	१२-७३. मूल	१२ रवि	१३-५४. सूत्र	शु० ५ बुध
११-२४. मूल	३ गुरु	१२-७५. मूल	१३ सोम	१३-५५. मूल	६ गुरु
११-२७. सूत्र	४ भृगु	१२-७७. मूल	१४ भौम	१३-५८. मूल	७ भृगु
११-३३. मूल	५ शनि	१२-७९. मूल	१५ बुध	१४-१. मूल	८ शनि
११-३६. मूल	६ रवि	दिवस २८		१४-७. मूल	११ भौम
११-४४. मूल	७ सोम	१२-८१. मूल	द्वि० भाद्र० कृ० २ भृगु	१४-९. भाष्य+‡	१२ बुध
११-४७. भाष्य卐	९ बुध	१२-८४. मूल	३ शनि	१४-११. सूत्र	१५ शनि
११-५२. मूल	१० गुरु	१२-८६. मूल	४ रवि	दिवस १६	
११-५७. भाष्य卐	११ भृगु	१२-८८. मूल	५ सोम	१४-१८. मूल	कार्ति० कृ० २ सोम
११-६०. सूत्र	१२ शनि	१२-९२. मूल	६ भौम	१४-२१. भाष्य+卍	३ भौम

† अध्वर्द्वैवत्य यजु: ‡ का० १५.७.११. 卍 का० १५.१०.२३. 卐 का० १६.३.१४.

卐 करती हे नहतु

१४·२३·भाष्य+	५ गुरु	१६·६१·मूल	२९ गुरु	१८·५४·सूत्र	९·बुध
१४·२४·भाष्य+	६ भृगु	१६·६६·भाष्य	३० भृगु	१८·५६·सूत्र	१० गुरु
१४·२६·मूल	७ शनि	१७·३·मूल	शु० ४ सोम	१८·६१·भाष्य	११ भृगु
१४·२८·भाष्य+	८ रवि	१७·८·सूत्र	५ भौम	१८·७२·मूल	१२ शनि
१४·३०·मूल	९ सोम	१७·१३·सूत्र	६ बुध	१८·७७·भाष्य	चैत्रसुदी १३ रवि
१४·३१·भाष्य	११ बुध	१७·१७·सूत्र	७ गुरु	संवत् १९२९ आगनसमाप्त [illegible]	
१५·४·मूल	१२ गुरु	१७·१८·मूल	८ भृगु		
१५·५·मूल	१३ भृगु	१७·२५·सूत्र	९ शनि	१९·१-३·मूल	१४ भौम
१५·६·भाष्य+	१४ शनि	१७·३०·मूल	फाल० कृ० २ सोम	दिवस २१	
१५·१०·सूत्र	शु० २ भौम	१७·३२·भाष्य	३ भौम	१९·७·मूल	वैशाख कृ० २ गुरु
१५·१५·सूत्र	३ बुध	१७·३६·मूल	६ भृगु	१९·१२·भाष्य+	३ भृगु
१५·२३·मूल	४ गुरु	१७·४३·मूल	७ शनि	१९·२५·मूल	४ शनि
१५·२८·मूल	५ भृगु	१७·५०·सूत्र	८ रवि	१९·३२·सूत्र	५ रवि
१५·३४·भाष्य+	७ रवि	१७·५७·मूल	९ सोम	१९·३८·मूल	शु० २ गुरु
१५·४०·मूल	८ सोम	१७·६०·मूल	११ भौम	१९·४७·सूत्र	३ भृगु
दिवस १७		१७·६२·मूल	१३ गुरु	१९·५०·मूल	४ शनि
१५·४०·भाष्य++	पौषशु० ४ रवि	१७·६५·सूत्र	३० शनि	१९·५७·मूल	७ भौम
१५·४१·मूल	६ भौम	१७·७०·मूल	शु० ११ बुध	१९·६३·मूल	८ बुध
१५·४४·मूल	७ बुध	१७·७८·मूल	१२ गुरु	१९·७१·मूल	९ भृगु
१५·४९·मूल	८ गुरु	दिवस २७		१९·७५·मूल	१० शनि
१५·५४·मूल	९ भृगु	१७·८०·मूल	चैत्रकृ० ३ बुध	१९·८३·मूल	११ रवि
१५·६३·सूत्र	१० शनि	१७·८७·सूत्र	४ गुरु	१९·९१·मूल	१२ सोम
१५·६५·भाष्य	११ रवि	१७·८९·मूल	५ भृगु	२०·१·मूल	१४ बुध
१६·३·मूल	१२ सोम	१७·९१·भाष्य+	६ शनि	दिवस १४	
१६·८·भाष्य	१३ भौम	१७·९३·भाष्य+	८ सोम	२०·५·सूत्र	ज्येष्ठकृ० ३ शनि
१६·१६·भाष्य	१४ बुध	१७·९७·मूल	९ भौम	२०·१४·सूत्र	७ बुध
दिवस १०		१८·१·सूत्र	१० बुध	२०·२१·सूत्र	८ गुरु
१६·२०·मूल	माघकृ० ३ रवि	१८·५·मूल	११ गुरु	२०·३०·सूत्र	९ भृगु
१६·२२·मूल	४ सोम	१८·१३·मूल	१२ भृगु	२०·३६·मूल	१० शनि
१६·२४·मूल	५ भौम	१८·२८·मूल	१३ शनि	२०·४७·मूल	११ रवि
१६·२९·मूल	६ बुध	१८·३१·मूल	शु० २ भौम १९२९	२०·५३·मूल	१२ सोम
१६·३५·मूल	१० रवि	१८·३३·मूल	३ बुध	२०·६१·मूल	१३ भौम
१६·४१·मूल	११ सोम	१८·३८·सूत्र	६ रवि	२०·७८·सूत्र	१४ बुध
१६·४६·भाष्य+	१२ भौम	१८·४१·मूल	७ सोम	२०·८७·मूल	३० गुरु
१६·५२·मूल	१३ बुध	१८·४८·मूल	८ भौम	२१·५·सूत्र	शु० २ शनि

+ [illegible] श्रुत्युक्त:। कारिके स्तुति की + यद्वा घृतधारा एवोच्यन्ते [illegible]

२१॰ १३· मूल	४ सोम
२१॰ ३०· मूल	५ भौम
२१॰ ४०· मूल	६ बुध
२१॰ ४६· मूल	७ गुरु
२१॰ ४७· भाष्य	८ भृगु
२१॰ ५५· मूल	९ शनि
२१॰ ६१· भाष्य	ज्येष्ठ शु· १० रवि
संवत् १९ २४ सौत्र समाप्त हुआ	
दिवस १९	
२२॰ १-५· सूत्र	द्वि·भा·शु· १२ सोम सं· १९२८
२२॰ ६· भाष्य	१३ भौम
२२॰ १५· मूल	१५ गुरु
दिवस ३	
२२॰ १९· भाष्य +	आश्वि· कृ· ५ भौम
२२॰ २०· सूत्र	७ गुरु
२२॰ ३४· भाष्य	७ भृगु
२३॰ ७· भाष्य	८ शनि
२३॰ १३· भाष्य	९ रवि
दिवस ५	
२३॰ १७· भाष्य	माघ कृ० ७ गुरु
दिवस १	
२३॰ २१· भाष्य	वै· कृ· १२ शनि १९२९
२३॰ ३२· भाष्य	१३ रवि
२३॰ ३८· भाष्य	३० भौम
२३॰ ४४· भाष्य	शु० ५ रवि
२३॰ ५२· भाष्य	६ सोम
२३॰ ५८· भाष्य	८ गुरु
२३॰ ६५· भाष्य	१३ भौम
दिवस ७	
२४॰ १-४०· भाष्य	ज्ये· कृ· २ भृगु
२५॰ २· मूल	४ रवि
२५॰ ४· मूल	५ सोम
२५॰ ७· मूल	६ भौम
२५॰ ९· भाष्य	शु० ३ रवि

२५॰ १६· मूल	११ सोम
२५॰ २३· भाष्य	१२ भौम
२५॰ २९· मूल	१३ बुध
२५॰ ३९· भाष्य	१४ गुरु
२५॰ ४७· भाष्य	ज्येष्ठ शु० १५ भृगु
संवत् १९२९ अश्वमेध समाप्त हुआ	
दिवस १०	
द्वितीय भाद्रपद शुक्ला १२ चन्द्रबार संवत् १९२८ से मैनें किसी किसी दिन अश्वमेध पर भाष्य किया इस हेतु से सौत्र के समीप ही समाप्त हुआ	
२६॰ १-८· मूल	आषाढ कृ० २ रवि
२६॰ २०· भाष्य	४ सोम
२६॰ २६· भाष्य	५ भौम
२७॰ ६· मूल	६ बुध
२७॰ १५· मूल	७ गुरु
२७॰ २३· मूल	८ भृगु
२७॰ २६· भाष्य	९ शनि
२७॰ ३४· भाष्य	१० रवि
२७॰ ३९· मूल	११ सोम
२७॰ ४३· भाष्य	१२ भौम
२७॰ ४५· भाष्य	१३ बुध
२८॰ ५· भाष्य	१४ गुरु
२८॰ ११· भाष्य	३० भृगु
२८॰ १६· मूल	शु० २ रवि
२८॰ २६· भाष्य	३ सोम
२८॰ ३७· मूल	४ भौम
२९॰ २· मूल	४ बुध
२९॰ ८· मूल	५ गुरु
२९॰ १५· मूल	६ भृगु
२९॰ २१· मूल	७ शनि
२९॰ २६· मूल	८ रवि
२९॰ ३१· मूल	९ सोम
२९॰ ३८· मूल	१० भौम

२९॰ ४३· मूल	१२ बुध
२९॰ ४७· भाष्य	१३ गुरु
२९॰ ५३· मूल	१४ भृगु
२९॰ ५८· मूल	१५ शनि
दिवस २७	
२९॰ ६०· भाष्य	श्रा० कृ० २ सोम
३०॰ १-२१· भाष्य	३ भौम
३०॰ २२· भाष्य	४ बुध
३१॰ ३· भाष्य	५ गुरु
३१॰ ९· भाष्य	६ भृगु
३१॰ १६· भाष्य	७ शनि
३१॰ २२· भाष्य	९ रवि
३२॰ ७· भाष्य	१० सोम
३२॰ १६· भाष्य	१० भौम
३३॰ ९· मूल	१२ गुरु
३३॰ १६· भाष्य	१३ भृगु
३३॰ २२· भाष्य	१४ शनि
३३॰ २९· भाष्य	३० रवि
३३॰ ३७· मूल	शु० २ भौम
३३॰ ४२· मूल	३ बुध
३३॰ ४७· मूल	५ भृगु
३३॰ ५४· भाष्य	६ शनि
३३॰ ५९ भाष्य	७ रवि
३३॰ ६४· मूल	८ सोम
३३॰ ७०· मूल	९ भौम
३३॰ ७३· भाष्य	१० बुध
३३॰ ७४· भाष्य	११ गुरु
३३॰ ७८· भाष्य	१२ भृगु
३३॰ ८४· मूल	१३ शनि
३३॰ ८९· भाष्य	१५ रवि
दिवस २५	
३३॰ ९३· भाष्य	भाद्र० कृ० २ भौम
३३॰ ९७· भाष्य	३ बुध
३४॰ ३· भाष्य	१२ भृगु
३४॰ ८· मूल	१३ शनि

+ का० २०·२·११

३४·२४·मूल	१४ रवि	३६·१-१०·भाष्य	भा·कृ·४ गुरु [illegible]	३९·५·मूल	[illegible]
३४·१५·मूल	३० सोम	३६·२४·भाष्य	भा·कृ·५ भृगु	३९·८·सूत्र	आ·शु·[illegible] शनि
३४·२५·मूल	शु·२ गुरु	३७·६·मूल	६ शनि	३९·१३·भाष्य	आ·शु·४ रवि
३४·३२·मूल	३ भृगु	३७·८·मूल	७ रवि	संवत् १९२९ कर्मकाण्ड समाप्त हुआ	
३४·४०·भाष्य	४ शनि	३७·११·मूल	८ सोम	दिवस ८	
३४·४६·भाष्य	५ रवि	३७·१४·मूल	९ भौम		
३४·५०·भाष्य	६ सोम	३७·१८·मूल	१० वुध	४०·१·भाष्य	पौ·कृ·२ सोम [illegible]
३४·५४·मूल	८ भौम	३७·२१·भाष्य	११ गुरु	४०·३·भाष्य	पौ·कृ·३ भौम
३४·५८·भाष्य	९ वुध	३८·३·भाष्य	भाद्र·शु·१२ शनि	४०·५·भाष्य	पौ·कृ·४ वुध
दिवस १३		३८·६·मूल	१३ रवि	४०·८·भाष्य	पौ·कृ·४ गुरु
३५·१·सूत्र	आश्वि·कृ·१० भृगु	३८·७·भाष्य	१४ सोम	४०·१४·भाष्य	पौ·कृ·५ भृगु
३५·६·भाष्य	११ शनि	३८·११·मूल	१५ भौम	४०·१६·भाष्य	पौ·कृ·६ शनि
३५·१२·मूल	१२ रवि	दिवस १२		४०·१७·भाष्य	पौ·कृ·७ रवि
३५·१८·भाष्य	१३ सोम	३८·१३·भाष्य	आ·कृ·३ भृगु	संवत् १९२९ ज्ञानकाण्ड समाप्त हुआ	
३५·१९·भाष्य	१४ भौम	३८·१६·मूल	५ शनि	और संहिता भी पूर्ण हुई	
३५·२२·भाष्य	आश्विन·कृ·३० वुध	३८·१८·भाष्य	६ सोम	दिवस ७	
संवत् १९२९ खिल समाप्त हुआ		३८·२५·मूल	७ भौम	इत्याह्निकं समाप्तम्	
दिवस ६		३८·२८·भाष्य	८ वुध	ओम् शान्तिः	

सूचना

विद्वानों को उचित है कि सुरङ्ग लेखनी से भाष्य में चिन्ह देकर आर्वेल पर आह्निक में से तिथिवार उठा कर लिखें इस लिखने से भाष्य वहुत कुछ शोभित हो जावेगा और दृष्टा वलोकन में अतिशयेन चित्त प्रसन्न होगा तथा पाठ के साथ में ही प्रतिदिन का लेख प्रकट होगा॥

पाण्डव गरुडध्वजवर्मा

हरिः ओम्

श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्यस्य शुद्धिपत्रम्

श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य के पढने वालों को उचित है कि पढने से पहिले इस शुद्धिपत्र से जैसे शुद्ध करिलेवें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	भाष्यो	दीपो	१६	६	मभि	माभि
३	२१	षड्गों	षडङ्गों	१७	१३	सावित्री	सावित्रीं
४	४	भारथा	भारता	१७	१७	वैश्वदेवी	वैश्वदेवीं
७	३	द्विरुपं	द्विरूपं	१८	५	ह्न	ह्नो
७	८	ऋषि	ऋषि	१८	१८	गायत्री	गायत्रीं
९	१	मन्त्रा एत	मन्त्राणा	१९	१८	पाण्डु	पाण्डु
८	६	प्राजापत्या	प्राजापत्यं	२०	५	ऐन्द्री	ऐन्द्रीं
८	९	सूर्पो	सूर्यो	२०	१०	ब्रह्म	ब्रह्म
८	२०	घर्मो	घर्मोऽसि	२२	१४	विष्णोलि	विष्णोर्लि
९	११	वैष्णवे	वैष्णवेऽग्ने	२३	१	वीरप्स्व	वीरप्यप्स्व
९	११	देवर्ठं	दैवर्ठं	२३	७	इन्द्र	इन्द्रं
९	१९	यजुरन्त्वाग्ने:	यजुरन्त्वामग्ने:	२६	१२	मा	द्वितीया जगती
९	२१	पवमान्	पवमान्	२७	१९	गृत्समद	गृत्समदस्त्रिष्टुभ
१०	२	लिङ्गोक्ते	लिङ्गोक्तं	२९	१६	नाष्टि	सानाष्टि
१०	३	देवत्या	देवत्यां	३०	२०	त्रातार	त्रातारं स्ति
१०	४	॥७॥ठं	॥७॥म	३१	२	यऽइन्द्र-देवत्याति	यऽइन्द्र इन्द्र-देवत्या-
१०	६	दैवतठं	दैवर्ठं	३३	१५	माहेन्द्री-ऐन्द्री-हती	माहेन्द्रीं-ऐन्द्रीं-हतीं
११	२	वुपवत्यो	वुपवत्या	३४	१०	शुक्र	शुक्र:
११	४	देवताश्च	देववातश्च	३६	५	या	या
११	१८	रज्वा	रन्वा	३६	७	दशाग्निष्टोमिके	दशाग्निष्टुत्याग्निष्टो- मिके
११	२०	स्पत्वे	स्पत्व:	३६	१३	हे	हे
१२	१	नुष्टुवेऽ	नुष्टुब	३६	२०	इन्द्रोहि	इन्द्रे हि
१२	६	एतदा-उष्णिह	एतद्द्रौघ्या-उष्णिहं	३७	१०	इन्द्रं	इन्द्र
१२	१४	मनुष्टुपू ऋर	मनुष्टुभमृ	३८	२०	द्य	द्य
१२	१५	यो	यो:	४०	८	कण्व	काण्व
१२	१६	सुसस्या	सुसस्या:	४१	११	मन्त्रवर्णिको	मान्त्रवर्णिक्यो
१२	१७	स्य	स्व	४२	२	नैमित्तिकादिषु	नैमित्तिकादिषु सर्वेषु
१२	१८	ऽपाधिदे	ऽपधिदे	४२	१४	गृन्थके	गृन्थकी
१२	२१	न्सोम	त्सोम्य	४२	२०	जो जो	जो
१३	१५	यागिन	यावग्नी	४६	८	स्मतार:	स्मर्तार:
१४	२	वक्षं	वक्ष	४६	१६	स्तप	स्तपस्य
१४	१८	ठं	ठं सोम्यठं	४८	९	ग्नायते-छन्दासि	म्नायते-छन्दांसि
१५	१३	दानां	दानं	५२	६	साधार	साधारण
१६	२	त्वमङ्ग:	त्वमङ्ग	५२	१७	छिन्नग्नीति	छिन्नघ्नीति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१८	कि	कि द्यु (स्वर्ग) से	९५	४	भुवन	भुव
५८	८	यहां	यहां ध्रुवाः (शाश्वतिकीः)	९९	७	को	के अर्थ
६२	१	२३	३३	१०१	८	समिदरसीति	समिद्दसीति
६३	११	बोधमा	बोधमात्र	१०१	१५	+ पुत्र	+ पुर
६४	१७	र्ष	र्प	१०२	१८	प्रस्तरण	प्रस्तर
६५	५	यु:	यो	१०६	४	॥१०॥	॥१०॥+म-ष:। अ०।
६६	१३	( )	(हलसा)				उ-हा। इ०॥१०॥
७०	१३	का० २·३·३२·	का०२·३·३१·३२·सम-	१०६	१३	घ	ध
		-के अन्तर्गर्भ	प्रमाण अक्षरितात्र	१०७	४	अम्नाति	आम्नाति
		पत्र	अनन्तर्गर्भ	१०७	१०	२८	१८
७०	१६	हविग्रहण	हविर्ग्रहणी	१०८	११	सविता	सविता देवता
७२	१४	त्य	त्या	१०८	१२	रार्ध:।	रार्ध:।तथास्तु।
७३	७	उलूल	उलूखल	१०९	८	त:।	त:इत्यान्विशेष:।
७३	१९	अग्नि	अग्नि में	११०	४	करें	करता है
७३	२१	अर्था प्रणयनका	+	११०	६	करें	करते हैं
		ल में खोलनेवला		११०	८	करूंगा	करता हूं
७४	१२	नाद्या	नादाद्या	१११	४	वात्	त्वात्
७५	५		का० २·४·१५·	१११	१४	ढंग·	ढंग करिके
७८	१	पहिली	पहिला	११३	९	प्रियत्व	प्रियत्व से
७८	८	उपवेश	उपवेष	११४	८	अब्धायो	अदब्धायो
७९	१४	अन्तरि	अन्तरिक्ष	११४	१८	पूर्वक	पूर्वक एकत्र
७९	१७	को	की	११५	२	॥२१॥	॥२१॥+वे-या:।प्र०।
८१	४	पवनात्मिका	पर्वतात्मिका				दे-धा:।इ०॥२१॥
८१	१३	धिषण	धिषण (पेषण	११८	९	दीखता	देखता
८५	१०	अर्थ	अर्थ प्रवृत्त	११८	१४	आकाश	स्वर्ग
८५	१२	पोषण	पेषण	११९	१७	वर्द युक्त	वर्दद्वययुक्त
८९	१५	पृथिवी	पृथिवीरूपा	१२२	२	रेखा के	रेखा से
९०	५	पय	पर्य	१२२	२०	खाते हुए	खाते हुए+यथाभाग
९१	३	असर	असुर				माशिषरित्येवैतदाहे-
९१	७	दध्यावती	दध्यादिवती				ति २·४·२·२२· श्रुति:।
९१	१४	आत्रेय	अत्रेय	१२३	१४	हेतु	हेतुभूत
९२	१८	हवरण	हवरण का	१२४	१	तुम्हारे विद्यमान	तुम्हारे अर्थ विद्यमान
९२	२०	संमाजन	संमार्जन			से देवें।	से देवें। विद्यमान् धन
९४	१३	उत्तर	उत्तम				से हमलोगों करि दात-
९५	१५	करें॥	करें॥ प्राजापत्यापङ्क्ति:				व्य है।
			रर्षा: देवता	१२९	२०	क्रमेण	क्रमण
९६	१६	पुमार्था	पुमर्थी	१३३	५	सामान	समान
९८	५	दर्भ	दर्भ तू	१३४	१७	तैसे	तैसे यह
९८	२०	स्वास्था	स्वासस्था	१३५	४	भारद्वाज	भरद्वाज

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४१	८	सर्वेत	गार्हपत्य को
१४३	२०	कक्षा	कक्षी
१४४	१८	हे अग्ने तेरे	अग्नि के
१४७	६	ध्याय	ध्यान
१४७	१२	नष्ठान	नुष्ठान
१४७	१५	मण्ड	मण्डल
१४८	१०	को	की
१४९	३	होंउँ॥	होंउँ। तथा हिरण्यादि पुष्टिकरि बहुमूल्यार्हहिरण्यादियुक्त होंउँ॥
१४९	११	मेरीप्रजापुत्रादिका	मेरे पशुओं
१५०	५	हमारे	हमारे अर्थ वा
१५२	१७	रेकेण	रिक्तेन
१५४	४	रत्य	स्त्य
१५६	२	प्रसाद	प्रसाद से
१५६	१४	यम	मय
१६६	१४	का० ७·१·१६·	का० ७·१·३६·
१६६	२०	में	को
१६७	२	क्यों करिके	क्या करते
१६९	४	शाला	प्राचीन शाला
१६९	७	को	के अर्थ
१६९	१५	मुझको	मेरे अर्थ
१७०	१०	सार्थ	शक्त
१७१	४	दे०	दे०+स्वाहाशब्दस्यनिपातत्वेनानेकार्थत्वादुचिता अर्थाः ३·१·३·२५-२८·ब्राह्मणानुसारेण प्राह्याः।
१७१	१२	यह सिद्ध हुआ	एवं सिद्ध इति शेष.
१७२	३	करूं	करूंगा
१७२	५	करें	करता है
१७२	७	२	विद्याधारणशक्तिमन से होती है २
१७३	२	और	वा
१७३	१२	तैसे ही	तैसी
१७३	१७	नरवसामयो	नरवसामे वै
१७४	१३	को	का
१७४	२१	को	का
१७५	१	का०	का० ७·
१७५	१३	की वरावर	की संमित
१७६	१२	की	को
१७६	१६	यज्ञ	यज्ञ की सिद्धि
१७९	१३	गमन्	गन्
१८०	१७	को	का
१८१	१	५·	५· इस से होमें॥
१८१	१९	रूस	रूपे
१८२	६	रूपों	रूपत्व
१८२	२१	दक्षिण	दक्षिणपाद
१८३	८	की	को
१८३	११	हो (जा)	होने के लिये जा।
१८३	१८	१६·	१६· अभिमन्त्रण के अनन्तर उत्तर में लाई सोमक्रयणी को अध्वर्यु यजमानाः अनुगमन करते हैं॥
१८४	११	चलता	फराता
१८४	१२	है	है + पृथिव्या ह्येष मूर्धा यद्देवयजनमिति।
१८४	२०	कोदे	को यजमान के अर्थ देवै
१८४	२१	तेरे	तेरे में
१८६	१२	अधिपत्य	आधिपत्य
१८७	१७	कीजियो	करता
१८७	१९	२०·	२०· कोणों को
१८८	२	लेती (जीती) है	लेवै (जीवै
१८८	१०	वोले	बुलवावे
१८९	४	कहे— वकरी	कहिवावे — अजे
१९०	३	प्रीतिरूप	प्रीतियुक्त
१९०	५	को	की
१९०	६	की	करिये है
१९०	२१	जिसका	जिस के
१९१	१०	३·	३· उदायुषेति
१९२	११	को	को सर्वत
१९२	१३	पढे— को	पढवावे — का
१९२	१५	अपने किये याग	अपनी आज्ञा
१९३	७	के	
१९३	८	के	
१९४	२	अश्वपर चढि	अश्वों करि तू चलता है
१९४	१७	प्रति— पढे	को— पढवावे
१९४	१९	ही	हे सोम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९४	२१	(चोर)मतदोरित्वयो	(सर्वतःचलते हुए तस्कर				र तिसे देखता पांचों म-
			विशेष) नजानें				न्त्रों से होमें॥
१९५	४	घर-तिस-घर	घरों-तिन-घरों	२१३	१२	से हैं	से ही हैं
१९७	१३	करें	करने हें	२१३	१६	गार्ग	मार्ग
१९७	१६	का	को	२१४	८	जैसे	जैसे दक्षिणप्राकर के
१९८	१७	घ्य के आठ	घ्येष्टि के	२१४	१०	हो	होओ
१९९	१	न्हों का	स का	२१५	१	हे	हे देवश्रुतो
१९९	१२	४	४+ तथा च श्रुतिः३.४.	२१५	८	रानेवाले-हेंनेवाले	री-होओ
			१.१२. सा यज्ञायत्रीश्ये	२१५	२०	हुए	ओं के
			नो भूत्वा दिवः सोमम्मा-	२१६	८	हृष्टा	हृष्टे
			हरदिति	२१६	११	कहें	कहते हें
१९९	१८	है	हैं + तदाह तित्तिरिः।या-	२१७	१२	करिये हे	करिये हे सवोंकी इ-
			वद्धिर्वै राजानुचरैरागच्छ-				ति शेषः
			ति सर्वेभ्यो वै तेभ्य आति	२१८	६	प्रति	वर्ति
			थ्यं क्रियते छन्दांसि ख-	२१८	१२	रराटियों के प्रान्त	रराटी के प्रान्तों
			लु वै सोमस्य राज्ञोऽनुच	२१९	१०	देवता में	देवता की आज्ञा में
			राणीति।	२२०	२०	प्रतिक्ष	प्रत्यक्ष हे
२००	१९	१.२२.	१.२२ उर्वशी वाऽप्स-	२२०	२१	बराबर	सदृश
			राः पुरूरवाः पतिरथय	२२१	९	फेंता हूं	फेंकता हूं
			त्तस्मान्मिथुनादजाय-	२२१	१५-१६.	दूसरे यजमा	दूसरे को।द्वादशाहादि
			त तदायुरिति।			नों में राजमान।२	सत्रों में राजमानशत्रुघा-
२०१	७	हो	होओ			तीसरे यज्ञके वि	ती॥२॥तीसरे।यजमानों
२०१	१३	हो	होओ			नाश करने वाला	में राजमान यज्ञविनाश
२०१	२१	स्था	स्थान			राक्षसोंका घाती	करने वाले राक्षसोंका घाती॥
२०२	२१	अज्य	आज्य	२२३	१०	की वराबर	की मात्र
२०३	२०	ही	होते	२२४	२१	करते हें	किये गये
२०३	२१	हें।	हों।	२२५	६	की	
२०६	९	तीव्रं	त्विषं	२२६	२	से	से कुटी
२०६	१५	दर्व	दर्वता	२२७	८	४.	२४.
२०८	३	को	के	२२७	१५	सदस	सद
२०८	१७	ति को	ति के अर्थ	२२९	११	स्तुति समेत	स्तोतुं समेता
२१०	१६	नामा	नामा मध्य देश हे	२३०	११	वर्ति	वर्ति पुरातन
२१०	१९	करें॥	करें॥कैसे कि कोणसू-	२३०	१२	अर्हे	अर्हि:
			त्र प्रदेश करिके।तद्यथा॥	२३१	१	२१.	२१.२२.
			पहिले दक्षिण अंस फि-	२३२	१	आज्य.	(दधिमिश्रत आज्य)
			रि उत्तर श्रोणि फिरि दक्षि-	२३२	५	दीपक	संदीपक
			ण श्रोणि फिरि उत्तर अंस	२३२	१२	होमें	होमी
			फिरि मध्य में।एवं पांच	२३२	२०	पढें	पढ वावे
			स्थानों में हिरण्य रखिक	२३३	१४	तब	ततः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३४	२५	*स्वस्याहा	स्वस्याहा स्वाहा	२५०	१६	कीमनसाकेसंगतहैं	के मन करि संगत हो
२३४	१६	आत्मीहीमेराहै	आत्मीय मैं हूं	२५०	१७	हैं।	हैं।
२३५	८	करै	करता हुआ	२५२	१०	अङ्के ऽ अङ्के	अङ्के ऽ अङ्के
२३५	९	करै	करता हुआ	२५३	१८	संवंध	संवन्धि
२३५	१४	के अर्थ	के लिये गमन करने की	२५५	१	अर्थ	अत एव
२३६	२	यूपों	यूप्यों	२५५	१५	वहते हुए	वहती हुई
२३६	३	यूपों	यूप्यों	२५६	१५	वसतीवरी	वसतीवरीओ
२३६	४	पाया	पाया निकटों से परें न पाया	२५६	१६	हूं	हूं। कैसे अग्नि के कि नहीं है पतित गृह जिस का तिस अविनश्वर गृहके
२३६	५	मैं सेवन करूं	हम सेवन करैं				
२३६	६	मैं	के अर्थ				
२३६	७	न करैं	करैं	२५७	४	जो	जे
२३६	८	न करता	करता	२५७	५	है	हैं
२३६	१९	तेरी मत हिंसा करौ	को तू हिंसा न करि	२५७	६	जिस जल - सो	जिन जलों - ते
२३६	२०	मत हिंसा करो	को हिंसा न करि	२५८	३	उत्कष्ट	उत्कृष्ट करिके
२३७	५	को नही भेदताहूं	कीपीडानकरनीचाहिये	२५९	६	आपत्य	अपत्य
२३७	६	२·२१	२०·२१·	२५९	१७	रषि	रसी
२४०	५	इस	ऐसे	२६०	१५	संग्राम - करै	संग्रामों - करता है
२४०	१०	ब्रह्मई	ब्रह्मदृंह	२६०	१७	पहुंचै	पहुंचता है
२४०	१६	प्रति पढै	को पढवावै	२६०	१८	मैं स्थित	संस्थ में
२४१	५	प्रति पढै	को पढवावै	२६१	११	से - करूं	को - करताहूं
२४१	७	वाप्त - आदि	व्याप्त - आदित्य	२६१	१३	करूं	करता हूं
२४३	८	हूजियो·	हूजियो· पाश करिके बंधने से	२६१	१५	पढै	पढवावै
				२६२	३	से प्रीति	को तृप्त
२४३	१३	३८·	२८·	२६२	५	से प्रीति	को तृप्त
२४३	१४	को	के अर्थ	२६२	१३	९·८·८·	६·४·८
२४४	१९	मैं पहुंचो-मैं पहुंचो	करि संगत हों - करि संगत हों	२६३	१९	कैसी हो	ऐसी हो
				२६३	२०	करनेवाली	करनेवाली वा शिवा वृत्र दैत्य को मारनेवाली
२४४	२०	मैं पहुंचो	करि संगत हों				
२४५	८	प्रति पढै	को पढवावै	२६४	५	तुम-डरो-कांपो	तू-डरै-कांपि
२४५	१२	से अपने को	के आत्मा करि	२६४	६	तुम्हें	तुझे
२४५	१३	अपने को	आत्मा करि	२६४	७	करो - कहे	करि - कहिता है
२४६	६	२·	१·	२६४	१५	प्रति पढै	को पढवावै
२४६	९-	१०प्रति पढै	को पढवावै	२६४	१६	नव ये ऋचा कहीं	सो इन ऋचाओं करि कहे
२४६	१२	आ	समीप में आ	२६६	९	वर्ण्यते१	ईर्यते७
२४६	१८	॥	॥ है	२६६	११	८·	६·
२४८	४	मैं	से	२६६	१४-	१५ पूर्वोत्तरार्धयोद शैर्नेष्टरूपेति लक्षणान्नष्टरूपाविराट्	नववैराजत्रयोदशैर्नेष्टरूपेति लक्षणान्नष्टरूपा॥पूर्वोत्तरार्धयोः
२४९	१२	संवंधियों	संवंधि विप्रुषों				
२५०	१३	देवम्	देवतम्				

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			पांशु ग्रहस्य	२८६	१४	विप्रट	विप्रुट
२६७	८	अन्न	अन्नों	२८७	१७	पढे	पढवावे
२६८	४	उत्पक्त	उत्पत्ति	२८७	१८	प्राण करि	प्राणरूप करि
२६८	१९	तुम परिधि का	तुमें परिधि में	२८८	१३	धनी यो	धवनीयो
२६८	२१	अभिचारिकं	आभिचारिकं	२८९	६	हें	हुए
२६९	३	अपमर्द से मारा हु	(अपमर्द करिके) मार	२८९	७	हें	हुए
		आ + यह	ते सन् + चोह	२९०	१६	मासो॥	मासो॰ सहते: प्रसहना
२६९	१९	स्थाप	स्थापन				र्थस्य प्रयोगः प्रसहनम
२७०	८	ग्रह से	ग्रह में				भिभवनं यतो हेमन्तःशी
२७०	१३	आज्य	आग्रयण				तेन नरानभिभवती॥
२७२	२१	श्रुत	मिश्रित	२९४	१५	द्युलो	द्युलोक
२७३	२०	इस– को	तिस– करिके	२९६	८	पयलक्षण	पयस्यालक्षण जिसके
२७३	२१	में	को	२९६	१०	सोम	सोमों
२७४	११	ह्रादणी	ह्रादश्राणी	२९६	११	अभिषुतों में	अभिषुतों का
२७५	७	प्रत्यय	याप्रत्यय	२९६	१९	महेन्द्र	माहेन्द्र
२७६	६	छोडे विसर्ग–	विसर्ग न– श्रोणिश्रों	२९७	२१	सोम	स्वर्ण
		श्रोणि		२९८	१	दक्षिण	दाक्षिण
२७६	१४	वीर्योपेत	प्रेर्योपेत	२९८	२	रश्मि	रश्मिएं
२७९	१	॥	॥त्रिष्टुबेनदृष्टासोमस्तु	२९८	१०	प्कुत्स	वाङ्गिरसकुत्स
२८०	१०	६·	५· (ति	२९९	२१	का	को
२८१	८	संकल	शाकल	३००	७	हूं— सोमपान	हूं। और अन्तरिक्ष(पि
२८१	१२	दोनों	का॰९·६·१४·दोनों			भूता	तृयानमार्गी) कोदेखता
२८१	१३	औ	औ जे				हूं।– सोपानभूताओं
२८१	१६	तथा– ओ	तथाजे– औ ते	३०१	२०–	२१ की आयु काजी	के अर्थ आयु(जीव
२८२	३	रि।	रि। और यज्ञपति(यज			वन– का	न)– के अर्थ
			मान) की रक्षा करि।	३०३	१	विनिनक्ति	विविनक्ति
२८२	१४	अर्थ वृष्टि के	अर्थ। ऊर्जे(क्षीरादिक)	३०३	२	यो	यस्यो
			के अर्थ। वृष्टि के अर्थ।	३०४	१७	संस्त्रव	संस्त्रवों
२८३	१०	करते हैं	करता हूं	३०४	२०	इन्द्र	इन्द्र तू
२८३	१३	तैसे	तिस	३०५	१४	।मनुष्य।जन्मनी	जन्मनी देव मनुष्य
२८५	४	२·२·	२२·			।देव।	
२८५	१२	को।	को। तथा ऋत(यज्ञनि	३०५	१६	से	में
			मित) में दो अरणियों	३०६	२	सवन	सवन द्युलोकसमान
			से उत्पन्न की।	३०७	५	नो	नओ
२८५	२१	ए	एव	३१०	१-२	रूपमभि औरत	रूपत्वमभि– में और
२८६	२	संस्थान	शंसनप्रस्थान			था में	तथा
२८६	८	पूर्वी	पूर्वोऽ	३११	१	८·१०·	८·१·
२८६	१४	णां	णं	३१२	१७	जाने हुए	आज्ञापाये
२८६	१६	णा	ण	३१२	३	६·८·	८·६·

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१३	६	देवत्या	देवदेवत्या	३३४	१२	एक	भिन्न
३१३	८	ब्रा	ब्र	३३४	२०	१२·	१२·५·
३१४	२	पद्मादि	पद्मादिनव	३३५	१६	पूष्णो	पूष्णे
३१४	८	कत्ते	करते	३३८	१७	रस	स्कन्न रस
३१४	१८	तुमने	तूने	३३८	१९	सोमरूप	स्कन्न
३१४	१९	चलाओ	चलाय	३३८	२०	ह	स्कन्न ह
३१४	२०	चलाओ	चलाऊँ यह कहो	३३९	११	का	के स्कन्न
३१५	१	वा स्वः	घर्म, आदित्यमण्डल	३४०	१५	+ १२·	१२·५·१·१०·
			वा स्वः	३४०	१६	प्रति पढे	को पढवावे
३१७	४	प्रति वांचे	को पढवावे	३४०	२०	दिशा	आठोंदिशा
३१७	११	प्रति वांचे	को पढवावे	३४२	१०	श्रीवेदार्थप्रदीपके	नवमो वेददीपके
३१८	८	तिस	तहां	३४२	११	रम्भान्तोनवमोध्या (ते)	रम्भान्तोऽध्यायईर्यते।
३१९	५	३·४८—अग्न	३·४८॥का० ५·५·३५·	३४३	१	हमारे अर्थे	हमारे
			स्नानानन्तर लौटिके	३४३	११	१४·२·	१४·१·
			देवानाहं समिदिति आ	३४३	१७	ग्र	ग्रह
			हवनीय में समिधा धा	३४४	८	यजुः	र्यजुः
			न करें॥—अग्नि (सि)	३४४	११	सोम	प्रजापति
३१९	११	विषें	विषें माता के सकाश	३४५	१६	ज्र	ज्री
३२०	२	मयि	मयी मन्त्रेण करियें है।	३४६	२	सविता	सविता देव
३२१	९	थि	थिवी	३४६	१२	और	और जलों के
३२१	२०	हुन्	हन्	३४७	१०	जोडें—अश्व	जोडें— अश्व तेरे
३२३	१६	अर्थात्	सोही	३४७	१६	पक्षी	पक्षी जो
३२६	५	की	की करें	३४७	१७	और	और जो
३२६	८	दीप्ति	दीप्त	३४९	१४	पूर्वोक्त	पूर्वो
३२६	९	दीप्ति है—नुष्यों	दीप्त है— मनुष्यों	३४९	१६	को	को अन्न की जय कराई
३२६	१४	सन्त्र	सत्र	३५०	५	पढे	पढवावे
३२७	४	संख्या	सहस्त्र संख्या	३५०	१२	अभि	अनु
३२७	८	रें	रें	३५१	२०	।	।स्वर्काः (सुरुचः वा
३२८	२	तुम्हारे	तेरे				स्वञ्जनाः।
३२९	१४	वर्धयत्र	वर्धयित्रा	३५२	९	पूजा वा	बडे वा पूज्य
३३०	१०	त्वे	त्वऽइ	३५३	१	१·	११·
३३०	१९	जाते	जाते अंशुओं करि	३५३	१६	पढे	पढवावे
३३१	७	रश्मि	रश्मिओं	३५४	१०	पढे	पढवावे
३३१	१२	का	का बहुत बडा	३५४	११	कृशा	कृशा पञ्चवत्तिकः
३३१	१५	सें	के अर्थ	३५५	४	है।	हो।
३३३	४	मात्सत्य—सोम	मात्म—साम	३५५	५	है।—है।	हो।—हो।
३३३	१३	का अक्ष	के अक्ष के	३५५	६	हैं।—है।	हों।—हो
३३३	१४	निकालें।	निकलें। परुच्छेपदृष्टा	३५५	८	है।	हो।
३३४	५	पुष्टि	पुष्टिओं	३५६	१७	दक	दक प्रजापति

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५६	१८	न्त	न्तोंको	३८१	११	३६।	२६।
३५७	१८	विषें	विषें हमारे	३८३	१	श्वरति	श्वरन्ति
३५७	१९	हो	हो। हे	३८३	५-	१६ है ------	हैं-हैं-हैं-हैं-हैं-हैं
३६२	१७	वि	र्वि			हुई करती है	हुई-करती हैं
३६२	२०	में	से	३८३	१८-	२० है	हैं-हैं-हैं
३६४	५	का	का राजा हो तिस का	३८४	३	पात्र	पात्रों के
३६५	१	अर्थ।	अर्थ। बड़े जान राज्य	३८५	४	हे॥	हो॥
			(जनों के आधिपत्य)	३८५	२१	अनि	अना
			के अर्थ	३८६	८	धुर्यु	धुर्य
३६५	५	है	हो	३८६	१०	अन्तर	उत्तर
३६५	२१	सौ	सौवा-१०	३८६	१३	इन्द्रियों	इन्द्रिय
३६६	५	वृक्षपात्र	वृक्ष के पात्रों	३८७	११	वंधे-मणि	वंधे दो-मणिओं
३६६	११	जिस जल	जिन जलों-हें-पेताः-	३८७	१८	तिस शतमान	तिन दोनों शतमानों
			नीएँ-लीएँ-रिणएँ-जिन	३९२	४	॥	॥ब्रह्मन्। ब्रह्म देवतम्।
			जलों-जिनजलों-तिन				यजमान पहिले ब्रह्मा
			जलों				को आमन्त्रण करे।
३६७	१४	आप	आपि				हे ब्रह्मन् ऋत्विक् तु-
३६८	१४	जल	जलों				म्हें आमन्त्रण करता
३७०	८	रते	रती				हूं इति शेषः॥
३७०	१३	षोडा	षोडषा	३९२	११	को	करि
३७०	२०	कैसे	कैसी	३९२	१२	उपाधि दे बोले	नर को बुलवावे
३७१	१	कर्ता	करती	३९२	१५	करते हैं	करता हूं
३७१	१५	सोमें	सामें	३९३	९	भूमि	द्यूतभूमि
३७१	१७	सेव्यंते	सेव्यते	३९३	१२	स्थान	अवस्थान
३७२	४	जल	अभिषेकार्थी जलों	३९४	४	+पक्षः	+पक्षः श्रेयानिति।
३७३	१	एँ।	एँ पात्रों को आच्छाद	३९५	१	कुमार	कुमारों
			न करनेवालीएँ।	४००	४-	५१-३-१०४-७।	५३-९-१०७-१।
३७३	२	स्थान	सहस्थान			११६-१३-१२२-५।	११६-१८-१२०-२१।
३७३	४	कैसाजल	कैसे जलों			६।१२६-६।१३१-	१२१-३।१२६-८।
३७३	५	वली	वालीओं			१३।१३३।१६।१४८-	१३१-१९।१३३।१५।
३७४	१४	विषें	सकाश से			९।१४८-१२।१५२-	१४८-११।१४८-१४।
३७४	२०	प्रति पढे	करिपढवावे			८।१६५-२०।	१५२-६।१६५-१९।
३७५	२१	न्वै	वै	४०२	१७	वैष्णावी	वैणवी
३७८	२३	२४	१४	४०३	८	दृष्टका विषय	दृष्टकादिविषय
३८०	१	+मृ-सि।	+मृ-हि। इ०। ओ-सि	४०३	११	प्रजाति	प्रजापति
			।उ०	४०४	३	विषय	विषया
३८०	७	जीतूं	जीतूंगा	४०४	८	पुण्य	पूरण
३८०	१८	कि है	कि जे	४०४	१०	का	को
३८१	१७	पस्यन्तर्ठ स्व	पश्यतर्ठ स्वं	४०४	१२	अभिज्ञ	प्रयोगाभिज्ञ

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०५	४	हूं	हूं + ब्रह्म शब्देन प्रा-	४२४	११	गमनकुशल	गमन कुशल एसभ
			णाः सप्त ऋषयो ब्रा-	४२४	१७	प्रजा	प्रजाओं
			ह्मणाश्चोच्यन्ते	४२७	१४	कैसी	कैसे
४०५	१५	पृथिवीप्रभृतिलो	पृथिवी प्रभृति तीनों	४२७	१८	का० १६·३·३६·	का० १६·३·१६·
		कों को जाना	लोकों को मान किया	४२८	१८	पश्चाद्धुति कर्म	पश्चाद्धुतिपरिणामकर्म
४०६	२	कथ्यन्ते	कथ्यते	४२८	२०	देवमा	देवत्वमा
४०६	४	परिचिति	परचित्त	४२९	२१	का० १६·३·२७·	का० १६·३·२०·
४०६	५	चितिवर्ति	चित्तवर्त्ति	४३१	४	+आहवनीयाय	आहवनीयोयत्त
४०६	१४	स्त्रिवृदादिक	त्रिवृदादिक			त्तस	स्य
४०७	१६	यशाव्य	पशाव्य	४३१	१८-१९	वाच्मि वना-	वच्मि (कहिता हूं
४०७	१९	चारण	चार			ताहूं	
४०९	२	घ्रगामिन्	शीघ्रगामिन्	४३२	३	उरवा	उरवे
४१०	१४	क्रूडर	क्रूर	४३३	२	भूत।	भूता
४११	५	आग्नेयी	त्रीण्याग्नेयानि	४३४	४	अपषाढ	अषाढा
४११	७	का० १६·३·१२·	का० १६·२·११·	४३४	८-९	आषाढ	अषाढा
४११	१०	का० १६·२·३·	का० १६·२·१३·	४३५	१०	श्रवणीय	श्रवणीय यज्ञ
४१२	२	देखें	देखें हैं	४३८	३-४	सर्वात्मना	सर्वात्मा
४१२	१३	का० १६·१·१७·	का० १६·२·१७·	४३८	६	करो	करोगे
४१३	६	का	को	४३९	११	हो	हो आगमन कराय
४१४	१९	के।	को	४३९	१२	पाले-करे	पालि-करि
४१५	५	हम- ते- तेहैं	मैं ता-ता हूं	४४१	११	आवे तिस-जो	आवें तिन-जे
४१५	१४	परया वहिः	परया-परया वहिः	४४१	१२	है तिस-स्तोमा	हैं तिन-स्तोमाओं को
४१५	१७	का	को	४४२	३	अश्रित	आश्रित
४१५	२०	का-का	को-को	४४२	७	हो	हों
४१६	१६	जायते	जायसे	४४२	१४	ओंके	ओंमें
४१७	१९	पात्र	पत्र	४४३	३-४	करें-करें-करें-	करता है-करता है-
४१८	२	समन्ताम्	समन्तात्			देवे जिघांसे	करता है-मारने की
४१८	९	के	की				इच्छा रखता है
४१८	१०	कैसे	कैसी	४४३	१२	शक्ति	शक्ति शरीर शक्ति
४१८	१५	भीतर में	भीतर (उदर) में	४४४	६	डालि,	उरव्य,
४१८	१७	देवाहवाची	देवाहवींची	४४७	१०	रज्जुएं	रज्जुएँ
४१९	१७	दध्यङ्नामक	दध्यङ्नामक ऋषिः	४४७	१३	निधारण	निवारण
४२०	११	हवि करि पूजता	हवि करि देवताओं	४४९	२	के ऊर्ध्वको	का ऊंचे को
		है	को पूजता है	४४९	३	त्रः	त्रः सः।
४२२	४	पिण्डावरूप	पिण्डावटरूप	४४९	१४	३·	१३·
४२२	१०	॥३९॥	+॥३९॥ नो है ताव-	४४९	१५	दिश	दिशाओं को
			त्यन्याहुतिरस्ति य-	४५०	१७	हे	आग्नेयीमहासतो-
			थैषेति ६·४·३·४·				बृहतीत्रिष्टुप्। हे
			श्रुतेः।	४५१	२	आवृत्ति	आवृत्त्युपावृत्ति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५२	१	करें	करें				षाःआङ्गि[illegible]
४५२	१९	वित	विष्टुप् वित	४७०	११	देव:	दिव:
४५३	३-४	रुशता कि	कि रुशता	४७०	१५	जमन्	जन्मन्
४५३	१५	अर्चि	तप कार्य है अर्चि	४७१	१	पू॥	पू। सब
४५४	६	ज्योति	ज्योति करि	४७१	११	और	और एक
४५४	१३	२९·	२१·	४७२	१८	अत्यन्त एक	ऐक मत्य
४५६	१७	सहस्य	सहस:	४७२	१९	का	कारि
४५७	६	ज्ञान	विज्ञान्	४७३	७	अब	आय
४५७	१८	व्याप्त करता	व्याप्त होता	४७३	२०	ष	षे
४५७	१९	व्याप्त करता	द्युलोक को व्याप्त होता	४७३	२१	रती	रती ऐकमत्य [illegible]
४५८	७	२१	२.१०.				हुई
४५९	१९	नो	नप्सो	४७४	१८	वयव-जो	वयवों- जिस
४५९	२०	करि	करो	४७५	५	भूत	भूति
४६०	३	अन्तर	अनन्तर	४७५	१३	दृति	ति
४६०	६	चित्तिभि:	चित्तिभि:(उद्यमन-	४७५	१६	कस्ता	कारता
			सवीणा	४७५	१७	पत	पेत
४६०	७	मेरें	हमलोगों का	४७६	५	ह	त्रि
४६०	१४	कातमनाशकारि	ओं को नाश मत करि	४७६	६	हल (बैल)	हल को बैलों करि
४६३	१५	३.	३०.	४७६	१६	अनाज	अनाज लुना हुआ इ-
४६३	२०	अग्ने	अग्ने तुम्हे				ति प्रोष:
४६४	३	हे	हे	४१७	२	गी	ग्र
४६४	६	धनपत	(धन)पते	४७८	३	को-गी	—वेगो
४६४	१४	उठा	उठि	४८०	१	जा	
४६४	२१		अ०४.	४८०	५	२६.	२६. मनुष्यों की
४६५	७	अध	अर्ध	४८०	७	कों	कों को
४६६	२५	पूर्व	उत्तर	४८७	७	बहुता हमारे	बहुना हमारा
४६६	१८	कतुष्क	क्रतुष्क	४८४	११	‡ कार्योचा	‡ कार्योपचा
४६७	५	में	में नही	४९०	१४	का	को
४६८	१	हो	होता है	४९१	५	प्रयत्न	प्रायत्न
४६८	४	हें है तिस जल	हें हें तिन जलों	४९१	१२	हे	हे हीन
४६८	९	व्याधि(-का-कृ)	व्याधि जिन्होंकरि(-का	४९२	१३	षण	षेण
			(-क्री:	४९३	१	अस्मर्य	अस्मर्य माण
४६८	११	अहिंसता-ता:	अहिंसितार:-ता:	४९३	१४	विस्तार करै	स्पर्श करै
४६८	१५	पाद्या	पद्याएं	४९४	१८	ब्री	ब्रू
४६८	१९	छेदन	छेदेन	४९५	१	का+	क+
४६९	१४	सावधान-अङ्ग	सादन-अङ्गों	४९६	१५	हृ	न्ह
४६९	११	करि।	करि+।+ नया देवत्त	४९६	१७	क	कर
			येनिवाग्वे सा देवत्त-	४९६	१९	स्ना	स्न
			याङ्गिरस्वदिति प्राणो	४९७	९	शी	सी

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९७	१२	३.२४	४.२.	५१८	१	से	स
४९७	१४	रोचन	रोचनों	५१८	३	सनू	सनू
४९७	१५	निवृत	विवृत	५२१	६	प	पा
४९८	१३	जे	जो	५२१	९	पञ्च-पञ्च	पञ्च-पञ्चाप
४९९	११	तिस्रों	तिस्रों (चन्द्रनादित्यों	५२१	१०	पस्या	पस्या
५००	२	परि सर्पण	परिसर्पण-परिसर्पण	५२३	८	सु	स्रु
५००	९	कैश्र—प्रसित	कैसा—प्रसिति	५२३	११	ज्ञाता	ज्ञाता प्राण
५०१	२०	म्य	मिम	५२५	९	हैं	हैं सौवहैं
५०२	१	कर्ष	कार्ष	५२५	१०	थी	स्थी
५०२	७	३.	१३.	५२७	११	वै	वैं
५०३	१		अ०२.	५२९	१	अ	आ
५०४	१८	विस्तर	विस्तार	५३०	४	पालाय	पालयि
५०५	६	आगे- इन	आगे द्वितीये पद्याले	५३०	१६	हां	हो
			के- इन दो	५३२	१२	करै	करें
५०५	१२	को	को तिन दीप्तिओं से	५३२	१६	बाध	बांध
५०५	१५	सर्वा:	सर्वा	५३४	१३	पति	पते
५०५	१६	ह	हे	५३५	१	(	(विविध
५०६	३	हित- चो	हिते- चौ	५३५	९	निरुक्तानि	निरुक्तानेव पञ्चनि-
५०६	९	इष्टका	इष्टका पद्या				रुक्तानि
५०६	१२	सर्व	सर्वज्योतिओं को	५३६	१	चाहते	योग्य
५०६	१३	कारि	करि	५३८	१	इष्टके	इष्टके तू
५०७	५	पाषा	पाषाण	५३९	१०	२५.	५.
५०७	६	कल्पता	कल्पन्ता	५४०	९	छन्द:	छन्द: यह लोक
५०७	८	कल्पताम्	कल्पन्ताम्	५४२	१९	नु	नू
५०७	१९	को पत्नी क्नता पद्या	पत्नी क्नता पद्या को	५४५	६	रव	स्व
५०८	६	२७.	२७. तीनि ऋचाओं करि	५४६	१२	का	को
५०८	२१	र्ये	र्य	५४६	१४	का	को
५०९	६	पद्या	पद्या लोक	५४६	२०	का है	काएँ हैं
५०९	७	ता शेवाल	ता में शेवाल पर	५४७	३	+	इति शेष: एवंसर्वत्र
५१०	१	रथ्या	स्थ्या	५४७	१३	जया	जङ्घा
५११	५	न्नार्थे	न्नार्थे. रये. घनार्थे.	५४८	१५	ऋतु	ऋसु
५१३	४	होत्रा	हौत्रा	५४८	१८	भूत	भूतों को
५१३	१०	जात	जात और	५४९	६	तुत्यम्	तुल्यम्
५१३	११	और		५४९		करिके	(करिके नव ४ उत्तर
५१५	८	अनन्तर	अन्तर				करिके
५१६	३	सूयमान:	सूयमान: सो तू	५५१	१	भूत	देव:
५१६	५	मामा	मा	५५१	२	नाभि से	
५१६	१८	त्म्र	त्मृ	५५१	१९	स्रसे	स्रजे
५१७	२	एव	स एव	५५२	१२	वी	ती

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५३	२०	चितिमें	चिति के मन्त्र कहिये हैं॥ का०१७।११।१३। पञ्चमी चिति में				सब यजमान जन वा सब जगत के दूतवत्कार्य करने
५५४	५	।	क्या करते कि अहेडन्	५७४	७	सते	जते
			(क्रोधादि शोभनमन	५७४	८	एणढ्ड	एणढ्ड
			स्क हो उपदेश करि इ	५७४	१३	गोप	गुप
			त्यर्थः।	५७५	२०	वा	ह्ना
५५५	४	जिस का	जो	५७६	११	भमषड्विं	भगषड्विं
५५५	१३	ककुप्छन्दः	ककुप्छन्दस्त्रिककुप्छन्दः	५७६	१६	तूये	तूर्ये
				५७७	२	।	आद्या कुमारवृषो दृष्टा।
५५५	२१	दुष्टके	दुष्टके तू तद्रूपा है	५७७	७	जि	जिसे देखि के घर को लौट ते हैं। अर्थात् जि
५५६	१८	भ्रजते	भ्राजते				
५५७	८	वृक्षों	वृक्षादिकों	५७८	८	पद	पद्प
५५७	११	भक्षण	भक्षण	५७८	१०	इस	इस दिन
५५७	१२	सन्तुप	संस्तुपू	५७९	१८	।	ओं करिके।
५५७	१३	॰ध्यते-ष्टपू	॰रुध्यते-ष्टुपू	५८०	१	देवता ओं प्रतिज्ञा ताहै	देवाच्य॰
५५७	१७	धिक्य	धिक्यदर्शन				
५५८	१७	जो	जौ	५८१	१३	करैं	करनेवाले
५५८	१८	+ अयु-३।	असु-३।३।	५८२	१४	प्रति	प्राप्ति
५५९	८	तिस॰	तिस॰ वसुओं के॰	५८३	१	कर्मोविषें) हो	कर्मणी) होवें और यह यजमान तेरे प्रसाद से इष्टापूर्त करि संसष्ट हो॰
५५९	९	तिस॰	तिस॰ आदित्यों के॰				
५५९	१६	तिस॰	तिस॰ ओषधीओं के॰				
५६०	२	मन्त्र	मन्त्रा	५८४	१०	की	क्रता
५६०	७	को	का	५८४	२१	द्वयलोक-तृतीय	लोकद्वय-तृतीय से आरम्भ करि प्रथम-चितिवत्
५६०	१३	मुप	उप				
५६०	१८	॰उत्क्रमण	॰उत्क्राम				
५६०	२०	तू	तू उत्क्रान्ति है	५८५	७	संज्ञा	संज्ञे
५६१	२०	+प्राण	+प्राण	५८५	११	तिस-प्रकाश	तिस से-प्रकाशित
५६२	७	स्तोम:	स्तोमा:	५८६	३	४)	४) के
५६४	९		अ०४॰	५८६	१४	करिके	करिके प्रोक्षण करें।
५६६	९	सर्पा	सर्पा:	५८६	२०	सो	सो २०० प्रतिमन्त्र से
५६७	२०	हैमन्तिको	हैमन्तिकावृतू	५८८	५	प्राजा	प्रजा
५७०	१८	तिस्र	तिस्रो	५८९	२	नेत्य	नेचेत्य
५७१	१६	कृष्णा	होता है	५८९	६	थिव्या	धिष्ण्यां
५७२	११	फल-प्राप्त होता	फलों को-संगत कराना	५९०	६	के	को
५७२	१६	नान	नाना	५९०	११	कैलास	कैलाश
५७३	१	चो	च:	५९१	१८	रुद्र	रुद्र देखते सन्
५७४	५	पर्याप्त-युक्त	पर्याप्त-युक्त शोभन	५९२	२	स्वोपि	स्वरूपी
			यज्ञ जिस के तिसे।	५९२	१८	एक-र्णा	एकं-रणा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५९४	१८	दैवी	दैवी बृहती पञ्चाक्षरं	६१७	३	जल	जलों
			दैवी	६१७	१३	निरस	निरसन
५९५	१६	ङ्गा	ङ्गं	६१९	२	में— गिनते	में दृष्टदा हों-चिनते
५९६	११	का	के	६२०	९	र्य्यत	र्य्य से
५९७	१८	कही	कहीं	६२१	७	ग्रूणया करि	ग्रूप करि स्थित है
५९८	१५	द्रव्यों	द्रव्यो	६२१	८	वग्रे	वग्ने
५९८	१४	तिन्हों	तिन तुम्हारे•	६२३	८	पात्र	पात्री
६००	३	रूपो	रूपीं	६२३	१६	न है	ना हैं
६०१	४	यत्नों	अयत्नों	६२३	२०	विषें	विषें अधिष्ठातृत्वेन
६०१	१५	+विशेषेण	वेषेण	६२५	५	विहव्या	विहव्यो
६०१	२०	यत्नो	यत्ने	६२५	७	कर्मणं	कर्माणं
६०२	७	एड	एिड	६२५	११	स्थितवान्	एक ही रहा
६०२	१३	वेगवान्	वेगवद्‌स्तुओं में हुआ	६२७	१०	ना है	जाता है
६०४	१८	धनुष	धनुष पिनाक	६२७	१४	६·७·अनुवाकयो	४·अनुवाके६·७·क-
६०५	३	मार्गयोग्य	योग्यमार्ग				एिडकयोः
६०५	६	नदी में हुआ ति०	नदी में हुआ तिसजल	६२८	४-५	ते हैं	ना हूं
			रूप के०	६२८	९	सै-सन्	हवि सै-सन् मेरे य-
६०६	४	रूपी	रूपीओं				ज्ञ में
६०८	६	ग्रंहार	संहार	६२९	७	करिके	करते
६०९	१०	सप्ते	स्तप्ते	६३०	६	जिसका	जिस
६१०	५	का	को	६३०	११	असूर्ते	असूर्ते सूर्ते
६१०	११	चीन	चीना	६३०	१४	हैं।	हुए।
६१०	१५	मेढ्व	मीढ्वः	६३०	१५	हैं	हुए
६११	२	वा	वा उन्नत	६३१	१७	त है	त
६११	६	का	को	६३१	१८	हैं	हुए
६११	१८	असंख्यात	असंख्यात अमित	६३२	१८	ऐहिक	ऐहिकामुष्मिक
६१२	७	रुद्र	जे रुद्र	६३३	१४	प्रति	अप्रति
६१२	८	तिन्हों	जिन्हों	६३३	१५	द्वाद	द्वादश
६१२	१२	अद्यो	अघो	६३४	१	जेतं	जेतु
६१३	११	वा पणी	वा जीवन को पणी	६३५	९	ति	ति वा
६१३	२०	विषें	विषें स्थित	६३६	१७	शर्ध	उत्कृष्ट शर्ध
६१४	१६	बांधके	बांधिके सबदिशा-	६३७	१२	है	और है
			ओं में	६३७	२०	हो	हों
६१४	१८	हमें	हमें रक्षा करें ते रुद्र	६४०	७	बड़ा	बढ़ाइ
			हमें	६४०	१६	करें	करें हैं
६१४	१९	जिस	तिस	६४२	१२	है	हैं
६१४	२०	ह्विष्य	हेष्य	६४४	८	एड	एडमध्य
६१५	१८	आन्ना	अन्ना	६४५	१५	उठें	उठे
६१६	२०	अर्थात् अग्नि से	आग्नीध्र	६४७	२	हो।	हो। किं च सबदिशाओं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			को प्रकाश करते सन्	६७७	१४	यह्वा	यह्वा एते
			तू विशेषेण दीप्त हो।	६७८	७	जल से	जलों में
६४७	११	हूं	हूं (पाऊंगा	६७८	११	दिवरा	दिवस
६४७	१२	पं	चं	६७८	११	।मु	।अमु
६४८	७	अग्ने	अग्ने तू	६७८	१९	ते राज्य	तेरा राज्य
६४९	५	मूध	मूर्ध	६७९	२	प्रजा	प्रजाओं
६५२	५	स्वाद	स्वादु	६७९	१५	ॐ यज्ञेन	ॐ यज्ञेन दानेन
६५२	११	वृष्टा	हृष्टा	६८०	८	वप	वपन
६५३	१६	का सा तेन	(कासा तेज)	६८०	१९	त्तम)	त्त)
६५४	८		उषिगगर्भा।	६८१	७	प्रकर्षेन	प्र
६५४	१९	कैसै	कैसे	६८१	१५	देव	ऋतु
६५७	३	अन्न		६८१	१६	ताओं सहित	ओं सहित देवताओं को
६५७	१४	घृत	घृतमय	६८३	४	षध	षधशेष
६५८	५	से	सें सो ऊर्मि:	६८३	९	उदु	औदु
६५८	९	विद्वि	चिद्वि	६८३	२	द्युति:	द्युतिएँ
६५८	१८	मीव — द्वी	वमी — द्वि	६८४	७	र	रो
६५९	४	पितु	यितु	६८४	१७	व्रीद्या	व्रीह्या
६६०	८	नत	ने नत	६८७	१९	+४२·-६-मारुत	+४·२·-६- अवस्यू
६६०	१४	तू	मू	६८९	६	नवा	न इवा
६६०	२१	+ अग्निर्हे	अग्निर्हि	६[illegible]	३	धी के	धि को
६६२	१	श्रू	स्रु	६९१	११	ऐसा	ऐसा है
६६२	४	ऊर्मि(-दक)	ऊर्मिओं(- दकों)	६९३	६	वेश्य	वपूय
६६२	२१	एँ	एँ जातीहुई	६९३	९	तृ	स्तृ
६६३	७	+)	+) अज्यते प्राप्यते	६९४	६-७	तुम्हें-करता है।	कर्मसमाप्ति में तुम्हा-
			स्वर्गो येन स आजि-				रे प्रति आगमन करेगा।
			र्यज्ञ:।	६९४	१४	(वित्त)	
६६३	९	हमारे क	हमारें क	६९४	१६	सब	तब
६६४	५	(मुख)	(जलों के मुख)	६९५	१७	णा-नी	णा:- नीएँ
६६५	२	दाना	दानाध्ययना	६९५	२१	आग्नि	अग्नि
६६९	७	दिनिर्ये	देर्निय	६९६	१	कीच्च	की
६७०	१३	क्लृप्तिं	क्लृप्तं च मे क्लृप्ति	६९६	२०	कं भावयति	कत्वं सम्पादयति
६७२	१०	अर्था	अथा	६९७	४	अहित	हित
६७२	१५	मरुतश्च	मरुतश्च म इन्द्रश्च	६९७	५	आग्ने	अग्नि
६७३	११	इ		६९८	४	भार	भर
६७३	१७	ए	ऐ	६९८	८	जय	इन्द्रसुतजय
६७४	११	शम्यु	शम्यु	६९९	६	+)	+) में
६७५	८		अ० ७।	६९९	९	औोर	और जो
६७५	१९	एक	एका	७००	८	यष्ठ	यजिष्ठ
६७६	३	ना:	न:	७००	१६	प्रकर्षेन	प्रकर्षेण

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७००	२०	समाना	समान ज्ञाना	७३९	२०	इन्द्रियह्वा	यज्ञह्वा
७०४	७	(	(एकी किये	७४०	८	से	से पशुओं की
७०६	७	ऋत्वि:	ऋत्विज:	७४०	१९	रूप के	रूप को
७०८	१	होती	होता	७४१	१४	चूर्ण	चूर्णचरु
७०९	१३	वत्या	वत्या जगती	७४३	२	त्रों)	त्रों) करि
७०९	१५	ओं के अर्थपथ्यवा	ओं का पथ्य वा देवताओं	७४३	७	पत्र	पात्र
७११	१७	अग्नि	अग्निं (करि	७४३	९	पात्र-स्य सिय	पत्र-स्थ शिथल
७१२	२	पितरों	पितरौ	७४४	५	कि तरस्वी (वेग-	कि हरसा तरस्वी (वीर्य
७१४	७	सार	सर			वान्	करि वेगवान्
७१७	१	प्रणवे:	प्रण वे:	७४४	८	हृस-ग्रहों	ग्रहों करि
७१७	४	प्रणव (ओंकार)-	प्रणवों (ओंकारों)-	७४५	६	ते	तैसे
		पस्त्र	शास्त्रों	७४६	१७	लेकर	लेकर इन्द्र के अर्थ
७१९	६	+।	+।+ सुरवान्वा (एवब-	७४७	१७	सोमा	सोमास
			हिंषद्यशो यत्सौत्राम-	७५०	५	वायु	मुरववायु
			णीति १२.८.१.२. श्रुते:।	७५१	१७	पाद्रा	पद्रा
७१९	१४	प्रोरवल से दक्षिण	प्रोल्लूरवल से दक्षिणा	७५३	७	आनति	आनतिरागति:
		में अग्नि विषें	ग्नि में	७५३	८	मन	नमन
७२०	५	सोमे	सोमो	७५३	१०	अन	आन
७२१	६	१९.१.१७.	१९.३.१७.	७५३	१६	निति	स्ति
७२१	९	मन्त्र — मध्यम	मन्त्रकरि — मध्यम	७५५	१४	करे	करें
७२२	७	प्रति वांचे	को पढवावे	७५५	१८	सुद्ध	शुद्ध
७२४	१४	सौत्रामणी	सौत्रामणीं	७५७	२	रुक्त	रुक्ता
७२४	१९	क्रामित	कामित	७५७	१३	व्रतों (कर्मों)	व्रत (कर्म)
७२५	१२	से	से आज्य	७५८	१०	सं	संस
७२६	१	पितरों — मातरों	पिता — माता	७५८	११-	तेरे अंशुएँ-	तेरा अंशु-अंशु-तेरा
७२६	१५	ती — ती	ता — ता		१२	अंशुओं-तेरे-	-पर्व-हो। तेरा
७२६	१६	एवं प्राध्या	एवं हवि: प्राध्यो			पर्वों-हों। तेरे	
७२७	२	दशो	दशा	७५९	८	अपू	अपूप
७२८	२	गून्य	गोरप	७५९	१५	गान	गान करि
७२८	१५	की वेष्टि में	में विष्टि के अर्थ	७६०	८	रव	रवु
७३२	१९	चित्त	चित्तत्व	७६१	२०	द-अ	दशा-आ
७३५	५	पातो	यात्रो	७६२	६	प्त	प्त उरवाओं के
७३५	६	दीधित	दीधिति	७६३	९	मान	मान। रिपुओं के पुरों का
७३५	११	कारण	करण				दारयिता।
७३६	९-१०	नाश	त्याग	७६४	१५	न्त	न्त विक्रान्त
७३६	१२	हुआ-(अ	होवे-अ	७६५	५	प्रा	प्र
७३६	१३	मृत	मृत (	७६५	१९	से।	से। अञ्चनशील: (सर्व
७३७	३	ऋषीष	ऋजीष				जगत:।
७३७	२-३	नाश	त्याग	७६६	१३	ह्र	ह्रे

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६६	२०	भूँ	भूः
७६७	४	सू	इति सू
७६७	२७	युक्तः	युक्त
७७०	१२	गुणा	गुण
७७१	४	कुमारों के	कुमार
७७५	१८	त्पू	चात्पू
७७६	२	ण	ण
७७७	१३	आह	अहा
७७७	२१	हा	हो
७७८	१६	होता	होता॰ जो धनधनान्तर हेतुभूत है
७८०	१२	कर्मो – उदको	कर्म – उदक
७८१	३	प्र	प्रे
७८१	११	जाके	आके
७८१	१९	यन्तो	मन्तो
७८३	७	१७.	७.
७८४	१४	+।	+त्रिष्टुप्।
७८६	५	को	को सुनों
७८६	१०	है	हैं
७८६	२०	दीप्ति	दीप्त
७८७	४	तन्नू (जल)	तनूओं (जलों)
७८७	११	इडा – ता	इडाओं – ताओं
७८७	१४	को	की
७८८	७	यह्वो	यह्वी
७९१	६	२९.	१९.
७९१	७	वाज्या	याज्या
७९१	११	५१.	५९.
७९२	१५	भेष	भेषज
७९३	२	करिके	करता
७९३	११	वेधो	वेधो।
७९५	९	ओंज	ओं
७९५	१४	यज	यँज
७९५	१५	आश्वि	अश्वि
७९५	१९	भेष	भेषज
७९७	६	देवता	देवताओं
७९७	१५	न्द्र	न्द्रमृषभ
७९८	११	चलिंत	चलित
७९८	१३	के	को
८००	५	सर	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८०२	१४	को	के
८०४	४	रक्षया	रक्षण
८०४	१७	दुहे	दुघे
८०६	५	दे।	देता है।
८०७	२	करे (यजे	करता (यजता) हुआ
८०९	९	)	) है
८०९	११	ये	यें
८११	४	का॰२.	का॰२०.
८१२	५	पढे	पढवावे
८१३	२	प्राजापत्यादिक	प्रजापत्यादिक
८१४	१	प्रस्तौति	प्रसौति
८१५	४	प्रति पढे	को पढवावे
८१५	९	कटक	कट
८१६	१७	कदन	क्रन्दन
८१९	६	कर्मो को	कर्म में
८२०	९	हवि	के हवि
८२१	११	ययु	नाम करि ययु
८२२	८	अग्नि होम	अग्नि होत्र होम
८२५	३	मरयति	भूरयति
८२६	४	व्युष्टाये	व्युष्टेने
८२९	५	दृज्यते	रज्यते
८३१	७	ने हविदिया	हवि देते हैं
८३२	२०	प्रति पढे	को पढवावे
८३३	१	और इन्द्र के प्यारे शरीर को अत्यर्थ गया	
८३६	११	संनप्रे	संनप्री
८३६	६	क्रमेण+।	क्रमेण+रथ रश्मि करि (संशित है
८३६	७	वा	)।
८३७	१९	का॰२.	का॰२०.
८३८	१४	हो	ही
८३९	५	रोम	रेत
८४०	४	पसो	पसो
८४०	५	नमोच्चारण	नामोच्चारण
८४२	१	आरोहण	आरोपण
८४२	४	परवतवाई	परतवाई
८४४	१६	+ मन्तो	मन्ततो
८४५	१८	में	में रेवत्
८४६	३	पान्तिएँ	पन्ति एँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८४६	१०	+	+ त्र्यय्यः सूच्योभव-				त्र केजल) अुष्या०
			न्नीत्यादि१३।२।१०।३।	८८२	१३	पूर्वोक्त	पूर्वानुक्त
			श्रुतेः।	८८२	१९	श्रुतेः।	श्रुतेः १३।३।७।५।।
८४७	१७	देवसंवन्धनी	देवसंवन्धिन।	८८८	५	माता और पिता वो	माता पिता और पुत्र
८४८	१६	५-६२।	५७-६२।			ह ही अदिति है।	वोह ही अदिति है।
८५२	३-४	तिष्ठे हे	तिष्ठे हैं			पञ्च	सव देवता अदिति हैं
८५३	१	प्रकाशे हैं।	प्रकाशे हैं। यज्ञ केवे				। पञ्च
			दनहेतु करिके तेरे अ	८८८	१८	करते हैं	करेंगे
			र्थ भली भांति कहिता	८९१	५	आभिमुरव्येनावय	आभिमुरव्येनावय-
८५४	३	रेतं:	रेतो (हूं।।			ति	जति
८५४	८	अश्व	सींचने हारे अश्व	८९२	१०	प्रक्षिप्त	प्रक्षिप्त जो
८५४	१५	नुष्टुप्।	नुष्टुप्। ह इति प्रसिद्ध	८९२	१७	+)	+) में
			म् प्रथम (सब कीआ	८९३	४	करें	करें
			दि) अनादि निधनः	८९३	५	पचें - करें	पचें - करें
८५७	१५	मध्ये	मध्यमे	८९३	२०	अश्व के मांस	अश्व के (हुतशिष्ट)
८५८	१२	रन्ध्रः	रन्ध्रः समन्तं सर्वतः				मांस
			शितरन्ध्रः	८९४	१	होजायगा	होमा जायगा
८५९	१४	लोहितोर्णी	लोहितोर्णी	८९५	८	करने	फिरने
८६०	१	यस्य	यस्यमहदङ्गि यस्य	८९७	६	को जिन अङ्गों में	के जिन अङ्गों को
८६१	२०	चिन्हा	चिन्ह	८९७	७	तिन	तिन-तिन
८६३	२	क्षन्द से	छन्द से	८९८	२	मरणभङ्ग।	मरणमङ्ग।
८६४	११	इन्द्राग्निदेवताः	इन्द्राग्निदेवताः षो	९०१	२३	अग्नि के समीप	सोत्र के समीप
		षो०।	। कृष्णाः कृष्णवर्णा	९०३	३	वि वस्वद्दृष्टानि	विवस्वद्दृष्टानि
			स्त्रियः वारुणाः व	९०३	१६	२७	२६।
			रुण देवताः षो०।	९०४	८	करें	करें
८६५	१	क्रमेणे	क्रमेण	९०५	३	यह	इस
८६५	६	माहेन्द देवताः	माहेन्द्राः महेन्द्रदेव	९०६	२	धनान्ता	धनान्तर
			ताः	९०६	३	।।	।।सादयति
८६६	१।२	शुनार	शुनासीर	९०६	९	हे शतक्रतो	हे इन्द्रदेवत्ये गाय-
८६९	२१	वर्ति	वर्तिका				त्र्यो रम्याक्षिदृष्टे गो-
८७१	९	पर्जन्यः	पार्जन्यः				सवे यज्ञे ग्रह ग्रहणे
८७५	१९	अश्वमेधत्वात्	आश्वमेधिकत्वात्				नियुक्ते सोपयामे
८७६	५	।	। स्वपक्षे तु				।।हे शतक्रतो
८७६	१३	प्राणमीति	प्रीणमीति	९०८	७	हित।	हितः (विप्रादयश्चत्वा
८७७	९	विरूपन्नियों	विरूनीओं				रोवर्णाः निषादश्चेति।
८७७	११	पार्याः	पार्याः	९०९	१०	विभाव	विभावसो
८८१	३	लिङ्गे	लिङ्ग	९०९	१२	के अर्थ	के अर्थ पति प्रति
८८२	११	ऊष्मा	ऊष्मणा	९१०	६	वर्तो	पर्वतों
८८२	१२	प्रीन०।	प्रीन०। अश्रुओं ने	९१०	१७	आके	आकर तिस

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१०	२१	सोम	सोम सो
५१३	२	यन्त्र को	यन्त्रग्रह को
५१३	६	और	और देवों तथा
५१३	१९	को	को समन्तात्
५१८	२	यम	जो यम
५२०	९	गार्हत्य	गार्हपत्य
५२५	५	हे	गृत्समदहृष्टा। हे
५२५	१६	आङ्गिरस्यो	आङ्गिरसो
५२६	७	अर्थात्	अर्थात् विश्व
५२६	११	में	हुए और पृथिवी में
५२६	१७	प्रगाथः	प्रगाथः बृहस्पतिसुत
५२६	२०	सातों	सतों
५२७	६	मारें	मारे अर्थ
५२७	१९	अंशा	अंशा तुम्हें
५२९	१९	चित्याग्नि	चित्यग्निरभि
५३०	५	प्रगमन	प्रगमन और आगमन
५३०	६	है कि	है कि स्वेच्छा से
५३२	१२	तनूनपान्नशंसा	तनूनपान्नराशंसा
५३४	१६	महत्व:	महत्य:
५३७	१६	सत्यं	सस्यं
५३८	८	के	के अर्थ
५३८	१०	क्षपयन्त्यो।	क्षपयन्त्यो। ऊर्जाहुती (ऊर्जयुत होम है जिन्हों का ते। ऊर्ज (रस) को वर्धयन्त्यो
५४५	४	वयोधसे	वायोधसे
५५०	१६	में	की
५५०	१९	सुषिरा	ससुषिरा
५५०	२०	॥५॥	। सुप्रायणा: (प्रकृष्टगमन जिन्हों में) सुगमना: ॥५॥
५५२	१	हवा	पहवा
५५२	९	दिशः	दिशाओं को
५५२	१०	भूत	भूतजात
५५२	१७	प्रति।	प्रति। कैसा वनस्पति कि देवलोक को जानता
५५६	५	मनुष्यसंघां	मनुष्यसंघा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५८	४	यजमानाह	यजमानमाह
५५८	१६	चेतनवान्	चेतनावान्
५६०	२०	यजनीय में	यजनीये
५६३	२	अर्य	मर्य
५६३	८	समाङ्गानि	सङ्गमाङ्गानि
५६५	२१	वराः	वाराः
५६६	३	रूदते हैं	रूदते। अनपव्ययन्तः (अनश्यन्तः) समर्थाः। वाजयन्तः (गतिवन्तः
५६९	१	अहिरवि	अहिरिव
५७०	७	हवियें	हवियों को
५७३	१९-२०	जगतीछन्दकरि स्तु० सप्तदशस्तोम० वैरूप सा०	त्रिष्टुप्छन्द करि स्तु० पञ्चदशस्तोम० बृहत्साम०
५७४	५	संहितानि	संहितों
५७७	१२	भयकरम्	भयंकरम्
५७७	१२	वाचादम्	वाचाटम्
५७८	१५	विदलकारिणीं	विदलकारीं (वंशविदारिणीं)
५७९	१८	शुकमादि	शाकुनादि
५७९	१९	अभिप्रश्निनम्	अभिप्रश्निनमभिप्रश्नवन्तम्
५८०	५	गोपालकम्	गोपालं (धेनुपालकम्)
५८२	५	खङ्ग	खड्गा
५८४	१	जागरूपकम्	जागरूकम्
५८५	१७	परिणघ्न	पारिणघ्न
५८७	१	विरूरूप	विरुद्धरूप
५८७	४	का	को
५८७	१६	रणान्तर	रणानन्तर
५८८	१६	विराज	वैराज
५८९	१७	परः	परं
५९२	११	+ एतच्च	+ एतच्चाथर्वणोत्तरतापनीये (नृसिंहतापनी २.९.) स्पष्टमुक्तम् स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराज देवताः कोशां

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			श्च स्तुष्टात्र प्रविष्ट-	१०३५	१०	प्रतूतिर्ति	प्रतूर्ति
			इव विहरतीति	१०३५	२०	तेदेव	तद्देव
९९२	२१	हु।ए	हुए।	१०३८	१०	तिस	तिस दशापवित्र में
९९४	१२	ब्रह्म	ब्रह्मत्व				सोम डालते सन्
९९५	१४	अनुत्पन्नत्वकरि	अनुत्पन्नत्व करि पुरु	१०३८	१८	के	के मध्य में
			ष स्वरूप को ही	१०३९	१६	भोक्तार	भोक्तार जीवाः
९९९	७	कार्यों में	कार्यों विषें अग्र में	१०३९	२०	अयस्तात्	अवस्तात्
१००१	१७	तैसेही चन्द्रमा	वोह ही चन्द्रमा है	१०४१	१४	देवान्तर	देवतान्तर
१००१	१७	शुक्र	शुक्र (शुल्क) ततू।	१०४१	१७	प्रकर्षेण	प्रकर्षेण धारण
१००३	१४	तिस	जिस	१०४४	११	किं च	किं च इस
१००४	१	कार	करि	१०४५	१५	वा	वा वहुतों के
१००४	२	वृष्टिजन	वृष्टिजनक	१०४६	७	वशीधनो	वशी कृतधनो
१००४	–	कार्यकारण	कार्यकरण	१०४६	१२	को	को अभिमुख
१००६	२	जानि।	जानि। भूरादि लोकों	१०४८	२०	करि	करि उपलखियें है
			को ब्रह्मत्वे ०।				मच्चाः क्रोशन्तीतिव-
१००६	५	प्रथमा	प्रथमजा				त (भूस्थ वर्णाश्रमों
१००९	१४	ज्ञापवक	ज्ञापक				के मनुष्यों करि
१०१२	११	पुरोक्	पुरोरुक्	१०४९	१८	+१०.२९.	+२.२.
१०१३	३	अत्र	अत्रि	१०५०	६	वरुण	वरण
१०१४	२	में	में जे	१०५१	१०	किं च	किं च इस
१०१५	५	उत्कृष्टा।	उत्कृष्टा। तिस किमै	१०५४	४	यह	यह क्या
			कि जिस अन्न करि	१०५७	४	कुजा	कुञ्जा
			हम स्वस्तिमन्त होंगे।	१०५७	१७	स्तू	स्तू
१०१५	२१	नियुत्वों	नियुतों	१०५८	१६	बलभि	वल्मभि
१०१७	८		त्रिष्टुप्	१०५९	१	लादि	लादि करि
१०१८	१३	और	और सब	१०५९	१५	लोकान्तरः	लोकोत्तरः
१०१८	२०	का	को	१०६१	१	यत्त में साधु।	यत्त में साधु। सम्यु।
१०१९	१६	सदित्य	रादित्य	१०६३	१६	दोनों	दोनों पियो सोम को
१०१९	२१	पूजत	पूजते				इति शेषः। दोनों
१०२०	७	दैत	दैते	१०६४	४	वाजसानि	वाजसाति
१०२१	१९	दशन-याती	दर्शन-पाती	१०६४	९	करि	विषें
१०२२	१	सूर्ये)	(सर्य) तू	१०६५	१५	बृहस्पति	ब्रह्मणस्पति
१०२३	१०	नक्षत्र	नक्षत्रचन्द्र	१०६९	६	पदों	पदों हीसे
१०२५	१८	आद्या	अद्या	१०६९	१९	की आ	को आ
१०२६	३	हमें	तिस हमारे को	१०७०	१२	सहित	सहित इस स्थान में
१०२९	१३	कूपटक	टक	१०७२	१	प्रभा-परोक्षण	प्रमा-परीक्षण
१०३०	२	समीप में	समीप में स्थित हो	१०७३	८	हृष्टा	हृष्टा वहु देवत्याः
१०३०	१३	लौकि	लौकिक	१०७३	१३	हारे।	हारे। आहूयमानाः।
१०३४	१७	ओजस्वी	ओजस्वी	१०७३	१८	गार्तमदो	गार्त्समदो

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७८	१२	पूर्वो	पूर्वोपर	१११५	१६	रोक्षि	रोहि
१०७८	१७	अश्रुमय	अश्रुममय	१११५	१७	प्राज्ञा	प्रज्ञा
१०७८	२१	ष्यादिन्	ष्यादन्	१११५	१८	हों	हो
१०८०	४	सीताएं	चारि सीताएँ	१११८	१०	सं	तू सं
१०८१	३	पृथि	पृथिवि	१११८	१२	१.२.	२.१.
१०८१	४	किये	किये अपस्थिरूप	११२०	१२	गो	तहां गो,
१०८१	२१	तेरा	तेरे अर्थ	११२२	४	अर–जेमते	अभुमतेवि–जेवते
१०८३	१६	करावेंगे	होंवेंगे	११२२	१४	ते;	ते; कैसे के कि विश्वे
१०८४	२	कायक	कायिक				देवाओं के समूह युक्त
१०८४	१३	यामस्य	यामस्य दिशं	११२३	९	न्तर	न्तर हुत तिस०
१०८५	१०	परिधि	इस परिधि	११२४	१३	पियें	पीते हुए
१०८५	१३	गमन	गमन लक्षण	११२४	१४	जानें	जानते हुए
१०८५	२१	कारि	करि	११२५	६	ई	ऐ
१०८६	९	धार	घार	११२७	१६	आर्चा–ज्य)	आर्ची–ज्य) को
१०८७	१०	त्रिष्टुप्	त्रिष्टुप् दमनहष्टा	११२७	१९	को	अंश को
१०८८	१०	तुरूं	पुनः तुरूं	११२८	२	तये	तमः
१०९७	७	देरवू	देरवता हूँ	११२८	९	रता	स्ता
१०९८	१९	देवया	देवत्या	११२८	२१	को	से
११००	३	तिः स्वाहो	तिः	११२९	२१	में	में नाभिलग्न
११०१	१०	र्णो।	र्णो।	११३०	४	१.३.	३.१.
११०२	१०	र्णो	र्णो	११३०	९	प्रा	प्रा से
११०२	११	में	में आज	११३१	४	गाण	माण
११०२	१४	पर	पर प्रतीकाओं के	११३१	५	यम	घर्म
			उत्तर में	११३२	१०	कां	को
११०३	१७	मृदा	मृत्पिण्ड	११३२	१२	तेरे	तेरे गृह
११०४	६	इति	इति दक्षिण कर से	११३२	१४	विषे	विशेषे
११०४	१२	१६.	२६.	११३६	१५	स्या	स्या विषें
११०५	१८	पे	प	११३६	१६	हा	हे
११०७	७	ज्ञ	ज्ञ	११३९	१६	मा–आ	मामा–अ
११०७	८	में	में अध्वर्यु	११४०	९	ग्रे	ग्र
११०७	१७	लिये	लिये स्वर	११४०	२०	प्रकी	प्रक्री
११०८	१९	पढे	पढवावे	११४१	४	परी	पुरी
११०९	२१	होती	होती विधृति (विशेषे	११४१	१६	वीर्यः	वीर्यम्
			ण धारण करती–उप	११४४	२१	ध्येय	धेय
			रिष्टाज्जुहोति कं ध्रियते)	११४८	१७	करता	कराता
११०९	१६	भ्यो	भ्यो मार्तिभ्यो	११५३	५	माच	मात्र
१११०	२	१०.	१०. अध्वर्यु	११५४	१५	लापो	लोपो
१११३	६	यत	त	११५४	१७	कराता	करता
१११४	५	जान्	चल	११६३	१८	कर्माणि	कर्मणि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६४	५	कै	कु	११७६	११	पञ्चश	पञ्चाश
११६४	७	क्षेमो	क्षेमे	११७७	१३	मूता	भूता
११६४	१३	धर्मो	धर्म	११७७	१४	दृशा	दृशे
११६४	१७	क	कै	११७७	१६	शाको	दशाको
११६५	१	ष्णु	ष्णू	११७७	२०	कैको	कैकैको
११७१	२	पथ्यावृहती	पथ्याबृहती+	११७८	१३	पञ्च	चत्वारः पञ्च
११७१	८	सती—त्प्रस्ता	सतो—त्प्रस्तारपङ्क्तिः	११७९	२	प्र	विभाड्चतुर्दशप्र
			रन्त्यौ चेदास्तार	११७९	७	पाद्यं—३२	पाद्यं—२२
११७२	८	तिति	त्ति	११८०	१६	पुमार्यां	पुमर्थां
११७५	२०	स्यम	स्येमम				इति शुद्धिपत्रम् १

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०१	१६-	१७ वरुण-दिया	मुरु अग्निरूपापन्न केअर्थवरुणतुम्हे देवे				अर्थ वरुण तुम्हे देवे
३०१	२०-	२१ की आयु का जीवन	का आयु (जीवन)	३०३	१०-	११ यम-दिया	मुरु यम रूप के अर्थ वरुण तुम्हे देवे
३०२	२-३	रुद्ररूप-दिया	मुरु रुद्ररूप के अर्थ वरुण तुम्हे देवे	४६५	२१	पुरीं	पुरीष
				१०००	४	तिस	जिस
३०२	६-७	बृहह-दिया	मुरु बृहस्पति के				इति शुद्धिपत्रम् २

वेशमेति प्रसिद्धिं गतेऽति प्राची विश्वामित्रपुरीय नवल दुर्गस्थ व्याघ्रपाद प्रकाशकाशमयन्त्रालये न्नासीरामकरास्सैर्मुद्रितम् संवत् १९३० शाका १७९५ फाल्गुण कृष्ण १२ शुक्रवासरे

प्रसिद्धिपत्रम्

ग्रन्थकर्ता तथा सम्वाददाताओं को विदित हो कि ४ अप्रेल १८७१ को श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य एकट २५ सीक्सन १८६७ अनुसार रजिस्टरी हुआ और इस के लिखने में मैं ने तथा मेरे ज्येष्ठ पुत्र नें अतिप्रायेन परिश्रम किया है इस से मेरी वा मेरे पुत्र की आज्ञा विना छापने का विचार न करें और जिन्हों को अपनी पुस्तक वा समाचारपत्र में इस से कुछ विषय लेकर छापना हो वोह सुखेन ग्रन्थ के नाम पूर्वक लिखकर मुझे बाधित करें

भाष्यकार
गिरिप्रसादवर्मा

ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः

The White Yajur Vedâ,
Madhyandina - Vâja Saneyi - Sanhitâ with the Commentary of Shree Vedarth Prodeep Girdhur Bhass. –

Fasculi I

Corrected and revised – 15th Jany 1874.
Sumuut 1930 – Shakkâ 1798. –

Notice

To,
The Noble Friend & Patron of Linguistic,
Gentlemen,
I have the honor to request the favor of your sending me the Commentary Published in the year 1871. (i e) From pages 167 to 84 – 187 – 94 – & 199 – 202 – Total 30 pages to be taken out and annexed with these pages, and at the end of the 1st Fasculi (1 – 8 – 51 – 166 and pages 185 – 86 – & 195 – 98) Total 130 pages, As these pages were erroneously printed therefore I have corrected & revised them – Please send them to me just on receipt of this & oblige I shall pay the postage

Your most obedt. Servt.
Gireprasud "Verma"

P. S. –
This will be completed in February 1874 & to be returned in March next. –

R. N. C.